

वीर सेवा मन्दिर  
दिल्ली



क्रम संख्या

काल न०

खण्ड

929V-928 4





\* बन्देजिनवरम् \*

# ॥ आर्यमतलीला ॥

( नैगजटसे उद्धृत )

सिरसावा निवासी वा० जुगलकिशोर जैन, मुख्तार अदालत  
देवबन्द जिला सहारनपुर द्वारा सम्पादित ।

ट्रेक्ट नं० ८

जिसको

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मंत्री

श्री जैनतत्व प्रकाशनी सभा इटावा ने सर्व साधारण के  
हितार्थ लयाकर प्रकाशित की ।

प्रथमावृत्ति } श्री योगनिर्वाण स्वयम्भू { कीमन १२) आ०  
२००० } २७२७ { सेकडा २४) रु०

Printed by P. Bahadur Sharma at the  
Prahm Press Etawah.



# आर्यमत लीला ।

[ क-भाग ]

सत्यार्थ प्रकाश

और

वेद

( १ )

स्वामी दयानन्द सरस्वतीने सत्यार्थ प्रकाश नामक पुस्तक के तेरहवें समुच्चास में ईसाई मत खंडन करते हुवे ईसाई मत की पुस्तक मती रचित पुस्तक का लेख इस प्रकार दिया है:-

“यीशुख्रीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ कि उसकी माता मरियम की यूसफ से संगनी हुई थी पर उनके इकट्ठे होनेके पहिले ही वह देख पड़ी कि पवित्र आत्मा से गर्भवती है । देखो परमेश्वर के एक दूतने स्वप्न में उसे दर्शन दे कहा-हे दाऊद के सन्तान यूसफ तू अपनी स्त्री मरियम को यहां लानेसे मत डर क्योंकि उस को जो गर्भ रहा है सो पवित्र आत्मा से है-”

इस प्रकार लिख कर स्वामी दयानन्द जीने इसका खंडन इस प्रकार दिया है:-

“इन बातों को कोई विद्वान नहीं मान सकता है कि जो प्रत्यक्षादि प्रमाण और सृष्टि क्रमसे विरुद्ध हैं इन बातोंका मानना मूर्ख मनुष्य जं-

गलियों का काम है सभ्य विद्वानों का नहीं । भला जो परमेश्वर का नियम है उसको कोई तोड़ सकता है ? जो परमेश्वर भी नियम को उलटा पुलटा करे तो उस की आज्ञा को कोई न माने और वह भी सर्वज्ञ और निर्भ्रम है । ऐसे तो जिस २ कुमारिका के गर्भ रह जाय तब सब कोई ऐसे कह सकते हैं कि इसमें गर्भ का रहना ईश्वर की ओर से है और झूठ मूठ कह दे कि परमेश्वर के दूतने मुझको स्वप्न में कह दिया है कि यह गर्भ परमात्माकी ओरसे है-जैसा यह असम्भव प्रपंच रचा है वैसा ही सूर्य से कुंती का गर्भवती होना भी पुराणोंमें असंभव लिखा है-ऐसी २ बातों को आंख के अंधे गांठ के पूरे लोग मान कर भ्रमजाल में गिरते हैं-”

इसही प्रकार स्वामी दयानन्दजी आठवें समुच्चास में लिखते हैं ।

“जैसे कोई कहे कि मेरे माता पिता न थे ऐसे ही मैं उत्पन्न हुवा हूं ऐसी असंभव बात पागल लोगों की हैं” ।

स्वामी जी महाराज दूसरे मतों के खंडन में तो ऐसा कह गये परंतु शोक है कि स्वामीजी को अपने नवीन मत में भी ऐसी ही वरन इससे भी अधिक असम्भव बातें लिखनी पड़ी हैं-स्वामीजी इसही तरह आठवें स-

मुसलाम में लिखते हैं कि परमेश्वर ने सृष्टि की आदि में सैकड़ों और हजारों जवान मनुष्य पैदा कर दिये-हमी आती है स्वामी जीके इस लेख को पढ़कर और दया आती है उन भोले मनुष्यों की बुद्धिपर जो स्वामी जी के मत की ग्रहण करते हैं क्योंकि सृष्टि नियम और प्रत्यक्षादि प्रमाण से स्पष्ट सिद्ध होता है और स्वामी जी स्वयं मानते हैं कि बिना माता पिताके मनुष्य उत्पन्न नहीं होसका है। ईसाईयों ने इस सृष्टि नियम को आधा तोड़ा अर्थात् बिना पिता के केवल माता से ही ईसा मसीह की पैदायश बयान की, जिस पर स्वामी दयानन्द जी इतने क्रोधित हुवे कि ऐसी बात मानने वालोंको सूर्ख और जंगली बताया परन्तु आपने सृष्टि नियम के सम्पूर्ण विरुद्ध बिना माता और बिना पिता के सृष्टिकी आदि में सैकड़ों और हजारों मनुष्यों के पैदा होने का सिद्धान्त स्थापित कर दिया और किंचित् भी न लजाये नहीं मालूम यहां स्वामी जी प्रत्यक्षादि प्रमाणों को किस प्रकार भूल गये और क्यों उनको अपनी बुद्धि पर क्रोध न आया और क्यों उन्होंने ऐसे वेदों को झूठा न ठहराया जिसमें ऐसे गपोड़े लिखे हुवे हैं। स्वामी जी ने कुन्ती की सूर्य से गर्भ र-

हने के इस पौराणिक कथन को तो असम्भव लिख दिया और ऐसी बातों के मानने वालों को आंख के अंधे बता दिया परन्तु इससे भी अधिक बिना माता पिता के और बिना गर्भ के ही सैकड़ों और हजारों मनुष्यों की उत्पत्ति के सिद्धान्त को स्वयं अपने चेलों का सिखाया। आश्चर्य है कि स्वामी जी ने अपने चेलों को जिन्होंने ने स्वामीजी की ऐसी असम्भव बातें मानलीं आंखका अंधा क्यों न कहा ? स्वामीजी अपने दिल में तो हंसते होंगे कि जगत के लोग कैसे सूर्ख हैं कि उनको कैसी ही असम्भव और पूर्वापर विरोधकी बातें सिखा दी जावें वह सब बातों को स्वीकार करने के वास्ते तय्यार हैं-

कमे तमाशे की बात है कि सृष्टि की आदि में बिना माता पिता के सैकड़ों जवान मनुष्य आपसे आप पैदा होकर झूदने लगे होंगे। जवान पैदा होनेका कारण स्वामीजी ने यह लिखा है कि यदि बालक पैदा होते तो उनको दूध कौन पिलाता कौन उनका पालन करता ? क्योंकि कोई माता तो उनकी थी ही नहीं परन्तु स्वामी जी को यह खयाल न आया कि जब उनकी उत्पत्ति बिना माता के एक असम्भव रीति से हुई है तो उनका पालन पोषण भी असम्भव

रीतिसे होना क्या मुशकिल है? अर्थात् लिख देने कि बालक ही पैदा हुवे थे और जवान होने तक बिना खाने पीने के बढ़ते रहे थे उनको माता के दूध आदिक की कुछ आवश्यकता नहीं थी—

स्वामी जी ने यह भी मिखाया है कि जीव प्रकृति और ईश्वर यह तीन वस्तु अनादि हैं इनको किसीने नहीं बनाया है और उन लोगों के खंडन में जो उपादान कारण के बिद्वान् जगत् की उत्पत्ति मानते हैं स्वामी जी ने लिखा है कि यद्यपि ईश्वर सर्व शक्तिमान् है परन्तु सर्व शक्तिमान् का यह अर्थ नहीं है कि जो असम्भव बात को करसके, कोई वस्तु बिना उपादान के बनती हुई नहीं देखी जाती है इस हेतु उपादान का बनाना असम्भव है अर्थात् ईश्वर उपादान को नहीं बता सकता है। अब हम स्वामी जीके चेनोंमें पढ़ते हैं कि सृष्टि की आदिमें जब ईश्वर ने एक असम्भव कार्य कर दिया अर्थात् बिना मा बाप के जवान मनुष्य कूदते फांदते पैदा कर दिये तो क्या उनका शरीर भी बिना उपादान के बना दिया ? इस के उत्तरमें स्वामी जीके इस सिद्धान्त को लेकर कि बिना उपादान के कोई वस्तु नहीं बन सकती है आपको यह ही कहना पड़ेगा कि

उपादान से ही बनाया । तो कृपा करके यह भी कह दीजिये कि ईश्वर ने सृष्टि की आदि में पहले मिट्टी के पुतले जवान मनुष्यों के आकार बनाये होंगे वा लकड़ी वा पत्थर वा किसी अन्य धातुकी मूर्ति घड़ी होंगी और फिर उन मूर्तियों के अवयवों को हड्डी चमड़ा मांस रुधिर आदिक के रूप में बदल दिया होगा ? परन्तु यहां फिर आप की मुशकिल पड़ेगी क्योंकि स्वामी जी यह भी लिखते हैं कि “जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैमा अग्नि उष्ण जल शीतल और पृथिव्यादिक सब जड़ों को विपरीत गुण आले ईश्वर भी नहीं कर सका” तब ईश्वर ने उन पुतलों को कैसे परिवर्तन किया होगा। गरज स्वामी जी की एक असम्भव बात मानकर आप हजार मुशकिलों में पड़ जावेंगे और एक असम्भव बातके मिहु करने के वास्ते हजार असम्भव बात मानकर भी पीछा नहीं रुटैगा—

स्वामीजी ने ईश्वरमयी की उत्पत्ति के विषय में लिखा है कि यदि बिना पिता के ईश्वरमयी की उत्पत्ति मानली जाय तो बहुत सी कुमारियों को बहाना मिलेगा कि वह गर्भ रहने पर यह कह दें कि यह गर्भ हम को ईश्वर से है—हम कहते हैं कि यदि यह माना जाय कि

सृष्टि की आदि में ईश्वर ने माता पिता के बिदून मनुष्य उत्पन्न कर दिये तो बहुत सी स्त्रियों को यह मौका मिलेगा कि वह कुत्सित गर्भ रहने पर परदेश में चली जाया करें और बच्चा पैदा होने के पश्चात् प्रसूति क्रिया समाप्त होने पर बालक को गोद में लेकर घर आजाया करें और कह दिया करें कि परमेश्वर ने यह बच्चा आप से आप बनाकर हमारी गोदी में दे दिया इसके अतिरिक्त यह बड़ा भारी उपद्रव पैदा हो सकता है कि जो स्त्रियां अपना व्यभिचार छिपाने के वास्ते उत्पन्न हुये बालक को बाहर जंगल में फेंकवा देती हैं और उस बालक की सूचना होने पर पुलिस बड़ी भारी तहकीकात करती है कि यह बालक किसका है ? स्वामी जी का सिद्धान्त जानने पर पुलिस को कोई भी तहकीकात की ज़रूरत न रहै और यह ही लिख देना पड़ा करेगा कि एक बालक बिना मायाप के ईश्वर का उत्पन्न किया हुआ अमुक जंगल में मिला-इसही प्रकार के और सैकड़ों उपद्रव उठ खड़े होंगे । यह तो उसी समय तक कुशल है जब तक राजा और प्रजा गण इस प्रकार के असम्भव धार्मिक सिद्धान्तों को अपने सांसारिक और व्यावहारिक कार्यों में असम्भव ही

मानते हैं नहीं तो मत के चढ़ने वालों ने तो मन माना जो चाहा चढ़ दिया है-

स्वामीजी ईसाई मत को खंडन करते हुए ईसा मसीह की उत्पत्ति बिना पिता के होने पर तो लिख गये कि "जो परमेश्वर भी नियम को उलटा पलटा करे तो उस की आज्ञा को कोई न माने" परन्तु स्वयं नियम के विरुद्ध बिना माता और पिता के मनुष्य की उत्पत्तिको स्थापित करते समय स्वामीजी को विचार न हुआ कि ऐसे नियम को तोड़ने वाले परमेश्वर के वाक्यों को जो वेद में लिखे हैं कौन मानेगा ? पर स्वामीजी ने तो जांच लिया था कि मंदार के मनुष्यों की प्रकृति ही ऐसी है कि वह न सिद्धान्तों को जांचते हैं और न समझने और सीखने की कोशिश करते हैं वरन जिसकी दो चार वाह्य बातें अपने मन लगती मालूम हुई उसही के पीछे हों लेते हैं और उसकी सब बातों में 'हामेंहां' मिलाने को तैयार हो जाते हैं-स्वामीजी ग्यारहवें समुद्रास में लिखते हैं "यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है इसी लिये इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है इसी लिये सृष्टि की आदि में आर्य

लोग इसी देशमें आकर बसे इस लिये हम सृष्टि विषयमें कह आये हैं कि आर्य नाम उत्तम पुरुषोंका है और आर्योंसे भिन्न मनुष्योंका नाम दस्यु है जितने भूगोलमें देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं । पारस मणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठ है परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारस मणि है कि जिसको लोहे रूप दरिद्र विदेशी कूतके साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं—”

स्वामीजीने यह तो सब ठीक लिखा । यह हिंदुस्तान देश ऐसा ही प्रशंसनीय है परन्तु आश्चर्यकी बात है कि स्वामी जी अष्टम समुत्पत्तिसमें इस प्रकार लिखते हैं—“ मनुष्यों को आदि में तिब्बत देशमें ही ईश्वरने पैदा किये—” “ पहले एक मनुष्य जाति थी पश्चात् श्रेष्ठोंका नाम आर्य और दुष्टोंका दस्यु नाम होनेसे आर्य और दस्यु दो नाम हुए जब आर्य और दस्युओं में सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया, जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग सब भूगोलमें उत्तम इस भूमिके खखड़ को जानकर यहीं आकर बसे इसीसे इस देशका नाम “आर्यावर्त” हुआ इसके पूर्व इस देशका नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्योंके पूर्व इस देश में बसते थे क्योंकि आर्य लोग सृष्टि

की आदि में कुछ कालके पश्चात् तिब्बतसे सूपे इसी देशमें आकर बसे थे— जो आर्यावर्त देशसे भिन्न देश हैं वे दस्यु देश और म्लेच्छ देश कहाते हैं । ”

हम स्वामीजीके चेलोंसे पूछते हैं कि आर्यावर्त देशको ईश्वरने सब देशों से उत्तम बनाया परन्तु उस को खाली छोड़ दिया और मनुष्योंको तिब्बत देशमें उत्पन्न किया क्या यह असंगत बात नहीं है ? जब यह आर्यावर्त देश सबसे उत्तम देश बनाया था तो इसही में मनुष्योंकी उत्पत्ति करता—स्वामीजीने जो यह लिखा है कि मनुष्योंकी प्रथम तिब्बत देश में उत्पन्न किया उसका कारण यह मालूम होता है कि सर्कारी स्कूलोंमें जो इतिहास की पुस्तक पढ़ाई जाती हैं उनमें अंगरेज विद्वानोंने ऐसा लिखा था कि इस आर्यावर्त देशसे उत्तरकी तरफ जो देश था वहांके रहने वाले लोग अन्य देशोंके मनुष्योंकी अपेक्षा कुछ बुद्धिमान् हो गये थे पशु समान बहशी नहीं रहते थे घरन आग जलाना अन्न पकाकर खाना और खेती करना सीख गये थे वह कुछ तो हिन्दुस्तानमें आकर बसे और कुछ अन्य देशोंको चले गये—स्वामीजीके चेलों के हृदयमें स्कूलकी किताबोंमें पढ़ी हुई यह बात पूरी तरहसे समाई हुई थी



इस कारण स्वामी जीने अपने चेलों के हृदयमें यह बात और भी दृढ़ करनेके वास्ते ऐसा लिख दिया कि सृष्टि को आदिमें मनुष्य प्रथम तिब्बत देश में उत्पन्न किये गये क्योंकि हिमालय से परे हिन्दुस्तान के उत्तरमें तिब्बत ही देश है—और यह कहकर अपने चेलोंको खुश कर दिया कि जो लोग तिब्बत से हिन्दुस्तानमें आकर बसे वह बिद्वान् और धर्मात्मा थे इस ही हेतु इस देशका नाम आर्यावर्त देश हुआ है—

अंगरेज इतिहासकारोंकी इतनी बात तो स्वामी जी ने मानी परन्तु यह बात न मानी कि तिब्बत से आर्य लोग जिस प्रकार हिन्दुस्तानमें आये इस ही प्रकार अन्य देशोंमें भी गए वरन हिन्दुस्तान बासियोंकी बड़ाई करनेके वास्ते यह लिख दिया कि अन्य सब देश दस्यु देश ही हैं अर्थात् अन्य सब देशमें दस्यु ही जाकर बसे और दस्युका अर्थ चोर डाकू आदिक किया है यह कैसे पक्षपात की बात है ?—इस प्रकार अपनी बड़ाई और अन्य पुरुषोंकी निन्दा करना बुद्धिमानोंका काम नहीं हो सकता—परन्तु अपने चेलोंको खुश करनेके वास्ते स्वामीजीको सब कुछ करना पड़ा—

अंगरेज इतिहासकारों ने यह भी लिखा था कि आर्योंके हिन्दुस्तानमें

आने से पहिले इस देश में भील सन्थाल आदिक जंगली मनुष्य रहते थे जिन को खंती करना आदिक नहीं आता था । जब आर्य लोग उत्तरकी तरफसे प्रथम पंजाब देशमें आए तो उन्होंने इन भील आदिक बहशी लोगोंसे युद्ध किया बहुतोंको मार दिया और बाकीकी दक्षिण की तरफ भगा दिया और पंजाब देशमें बस गए फिर इस ही प्रकार कुछ और भी आगे बढ़े यह ही कारण है कि पंजाब और उसके समीपस्थ देशमें भील आदिक बहशी जातियोंका नाम भी नहीं पाया जाता है और यह लोग प्रायः दक्षिण ही में मिलते हैं—इस कथन में उत्तरसे आने वाले आर्योंपर एक प्रकार का दोष आता है कि उन्होंने हिन्दुस्तानके प्राचीन रहने वालोंको मारकर निकाल दिया और स्वयम् इस देशमें बस गये—

ऐसा विचार कर स्वामी जीने यह ही लिखना उचित समझा कि जब आर्य लोग तिब्बतमें इस देशमें आये तो उस समय यह देश खाली था कोई नहीं रहता था वरन तिब्बत देशके दस्यु लोगोंसे लड़ाईमें हार मानकर और तड़प आकर यह आर्य लोग इस हिन्दुस्तानमें भाग आये और खाली देश देखकर यहीं आ बसे थे—स्वामी जीको यह भी प्रसिद्ध करना था कि

मनुष्य मात्रको जो ज्ञान प्राप्त हुआ है वह वेदोंसे ही हुआ है बिना वेदों के किसी मनुष्यको कोई ज्ञान नहीं हो सकता है और वेदोंकी सृष्टिके आदि ही में ईश्वरने मनुष्योंको दिये इस कारण यदि वह यह मानते कि आर्योंके हिन्दुस्तान में आने से पहिले भील आदिक वहुशी लोग रहते थे तो सृष्टिके आदिमें ईश्वरका वेदोंका देना असिद्ध हो जाता इस कारण भी स्वामीजीको यह कहना पड़ा कि तिब्बतसे आर्योंके आनेसे पहिले हिन्दुस्तानमें कोई नहीं रहता था—यह बात तो हम आगे दिखावेगे कि वेदोंसे कदाचित् भी मनुष्य को ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ क्योंकि स्वामीजीके अर्थों के अनुसार वेद कोई उपदेश या ज्ञान की पुस्तक नहीं है बरन वह गीतोंका संग्रह है और गीत भी प्रायः राजाकी प्रशंशामें हैं कि हे शत्रुधारी राजा तू हमारी रक्षा कर, हमारे शत्रुओंको बिनाश कर, उनको जानसे मारडाल, उनके नगर ग्राम विध्वंस करदे, हम भी तेरे साथ संग्राममें लड़ें और तू हमको धन दे अन्न दे,—और तमाशा यह कि प्रायः सब गीत इस एक ही विषयके हैं—जो गीत निकालो जो पन्ना खोल कर देखो उस में प्रायः यही विषय और यही मजमून मिलेगा यहां तक कि एक ही

विषयको बार २ पढ़ते पढ़ते तबियत उकता जाती है और नाकमें दम आ जाता है और पढ़ते २ वेद समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि इस एकबात को हजारों बार कैसे कोई पढ़े और इन एक ही बातको हजारों बार पढ़नेमें किस प्रकार कोई अपना चित्त लगावे ? जिससे स्पष्ट सिद्धित होता है कि हजारों कवियोंने एक ही विषय पर कविता की है और इन कविताओंका संग्रह होकर वेद नाम हो गया है—यह सब बात तो हम आगामी लेखोंमें स्वामीजीके ही अर्थोंसे स्पष्ट सिद्ध करेंगे परन्तु इस समय तो हमको यह ही विचार करना है कि क्या सृष्टिकी आदिमें मनुष्य तिब्बतमें पैदा हुए और तिब्बत से आनेसे पहिले हिन्दुस्तानमें कोई मनुष्य नहीं रहता था ? हमको शोक है कि स्वामीजी ने यह न बताया कि यह बात उनको कहांसे मालूम हुई कि सृष्टिकी आदिमें सब मनुष्य तिब्बतमें पैदा किये गये थे ॥

स्वामीजीने अपने चेलोंको खुश करनेके वास्ते ऐसा लिख तो दिया परन्तु उनको यह विचार न हुआ कि भील आदिक जङ्गली जाति जो इस समय हिन्दुस्तानमें रहती हैं उनकी बाबत यदि कोई पूछेगा कि कहांसे आईं तो क्या जवाब दिया जावेगा ?

आर्यावर्त देश जहां तिब्बतसे आकर आर्योंका बास करना स्वामीजीने बताया है उसकी सीमा इस प्रकार वर्णन की है कि, उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पश्चिममें सरस्वती और पूर्वमें अटक नदी--और इस ही पर स्वामीजीने लिखा है कि आर्यों वर्त से भिन्न पूर्व देशसे लेकर ईशान उत्तर वायव्य, और पश्चिम देशोंमें रहने वालोंका नाम दस्यु और म्लेच्छ तथा असुर है और नैऋत दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओंमें आर्यावर्त देशसे भिन्न रहने वाले मनुष्योंका नाम राक्षस है । स्वामीजी लिखते हैं कि अथ भी देखलो वहशी लोगोंका स्वरूप भयङ्कर जैसा राक्षसोंका वर्णन किया है वैसा ही दीख पड़ता है । हम स्वामीजीके चेलोंसे पूछते हैं कि यह भील वाराक्षस या वहशी लोग कहींसे आकर असे वा पहलेसे रहते हैं वा जो आर्या लोग यहां आये उन्होंनेसे राक्षस बनगये ? इसका उत्तर कुछ भी न बन पड़ेगा क्योंकि यह तो स्वामीजी ने कहीं कथन किया ही नहीं है कि दस्यु लोग भी हिन्दुस्तानमें आये और इस बातका स्पष्ट निषेध ही किया है पहिले इस हिन्दुस्तानमें कोई वसता था तब लाचार यह ही मानना पड़ेगा कि आर्योंमें से ही भील आदिक वहशी और भयङ्कर राक्षस बन

गये--परन्तु यह तो बड़ी हेटी बात होगई--स्वामी जी ने तो उत्तरसे आने वालों के शिरसे यह कलंक हटाने के वास्ते कि उन्होंने ने इस देश के प्राचीन भील आदिक वहशी जातियों को मारकर भगा दिया और उनका देश छीन लिया इतिहास कार्यों के विरुद्ध यह मिद्धान्त बनाया था कि हिन्दुस्तान में पहले कोई नहीं रहता था बरण यह देश खाली था परन्तु हम मिद्धान्तसे तो इससे भी बढ़िया दोष लगगया अर्थात् यह मानना पड़ा कि भील आदिक वहशी जातियां जो इस समय हिन्दुस्तान में मौजूद हैं वह विद्वान् आर्योंसे ही बनी हैं ।

प्यारे आर्यसमाजियो ! आप घबराइये नहीं स्वामीजी स्वयम् लिखते हैं कि सृष्टिकी आदिमें प्रथम एकही मनुष्य जाति थी पश्चात् तिब्बत ही देश में उन आदि मनुष्यों की संतान में जो २ मनुष्य श्रेष्ठ हुवा वह आर्या कहलाने लगा और जो दुष्ट हुवा उसका दस्यु नाम पड़गया इस कारण हे आर्यसमाजियो ! सब आर्या अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष अपने दुष्ट भाइयों से डर कर हिन्दुस्तान में तो आगये परन्तु जो हिन्दुस्तान में आये उनकी संतान में भी बहुत से तो श्रेष्ठ ही रहे होंगे और बहुत से तो दुष्ट ही गये होंगे क्योंकि यह नियम तो

है ही नहीं कि जैसा पिता हो उसकी संतान भी वैसीही हो। यदि ऐसा होता तो जब सृष्टिकी आदि में एक जाति के मनुष्य उत्पन्न किये थे तो फिर उनकी संतान अष्ट और दुष्ट दो प्रकार की क्यों हो जाती और वर्ण आश्रम भी जन्म पर ही रहता अर्थात् ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण और शूद्र का पुत्र शूद्र ही रहता स्वामीजीके कथनानुसार मनुष्य की उच्छता या नीचता उनके कर्म पर न रहती परन्तु स्वामी जी तो पुकार पुकार कहते हैं कि ब्राह्मण का पुत्र शूद्र और शूद्र का पुत्र ब्राह्मण हो जाता है। इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि यद्यपि सब अष्ट मनुष्य तिष्ठतसे हिन्दुस्तान में चले आये परन्तु यहां आकर उन की संतान फिर अष्ट और दुष्ट होती रही होगी और यहां तक दुष्ट हुई कि भील आदिक जंगली और राक्षस आदिक भयङ्कर जाति भी इनही आर्याओं की संतान में से होगई। इसही प्रकार जो दुष्ट अर्थात् दस्यु लोग तिष्ठत से रह गये और हिन्दुस्तान के सिवाय भूगोल के सर्व देशों में जाकर बसे उन की संतान में भी अष्ट और दुष्ट होते रहे होंगे अर्थात् इस विषयमें हिन्दुस्तान और अन्य सर्व देश एकमां होगये सर्वही देशों में अष्ट और सर्व ही देशों में दुष्ट सिद्ध हुवे। स्वामी जी के कथनानुसार अष्ट लोग आर्या कहलाते हैं और दुष्ट लोग दस्यु अर्थात् पृथ्वी के सर्व ही देशों में आर्य और दस्यु व-

सते हैं और बसते रहे हैं देखिये स्वामी जी के मन घट्टत कथन का क्या उलटासार निकल गया और आर्या भाइयोंका यह कहना ठीक न रहा कि हिन्दुस्तानके रहने वालोंकी चाहिये कि वह अपने आपको आर्या कहा करें क्योंकि उन्हीं के कथनानुसार सब ही देशोंमें आर्या हैं सब ही देशोंमें दस्यु, अङ्गरेजीमें एक कहावत प्रसिद्ध है कि संग्राम में और दृशक में सब प्रकारके भूट और धोके उचित होते हैं परन्तु धर्मके विषय में असत्य और मायाचार को किसी ने उचित नहीं कहा है परन्तु हमको शोक है कि स्वामीजी सत्यार्थ प्रकाश के ११ वें समुत्पत्तास में लिखते हैं—

“अत्र इसमें विचारना चाहिये कि जो जीव ब्रह्मकी एकता जगत् मिथ्या शङ्कराचार्य का निज मतथा तो वह अच्छा मत नहीं और जो जैनियों के खंडन के लिये उस मत को स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है”

अर्थात् स्वामीजी लिखते हैं कि यदि शंकराचार्य जी ने जैनियोंके मतके खंडन करने के वास्ते भूठा मत स्थापन किया हो तो अच्छा किया अर्थात् हमारे के मतको खंडन करने के वास्ते स्वामी जी भूठा मत स्थापन करने की भी पसन्द करते हैं जिससे स्पष्ट सिद्धित होता है कि चाहे भूठा

मत मनुष्यों में प्रचलित करना पड़े परन्तु जिस तरह होसके दूसरे की बात को खण्डन करनी चाहिये अर्थात् अपना नाक कटै सो कटै परन्तु दूसरे का अपशगुन करदेना ही उचित है इस से पूर्ण रूप से सिद्ध होगया कि स्वामी जी का कोई एक मत नहीं था वरण जिसमें उनके चेले खुशहों वही उनका मतथा यह ही कारण है कि प्रथम बार सत्यार्थप्रकाश पुस्तक छपने और उनके चेलोंके पास पहुंचनेपर जब उनके चेले नाराज हुये और उस सत्यार्थ प्रकाश में लिखी बातें उनको स्वीकार न हुईं तब यह जानकर तुरंत ही स्वामी जी ने उस सत्यार्थप्रकाश को संसूख कर दिया और दूसरी सत्यार्थ प्रकाश नामक पुस्तक बनाकर प्रकाश करदी जिसमें उन सब बातों को रद्द कर दिया जो उनके चेलों को पसन्द नहीं हुई थीं वरण उन प्रथम लेखों के विरुद्ध सिद्धान्त स्थापन कर दिये । इसके सिवाय वेदोंका अर्थ जो स्वामी जी ने किया है वह भी विलकुल मनमाना किया है और जहां तक उनसे हो सका है उन्होंने वेदके अर्थों में वही बातें भरदी हैं जो उनके चेलोंको पसन्द थीं-वरण शायद इस खयाल से कि नहीं मालूम हमारे चेलोंको कौन बात पसन्द हो कहीं २ दो दो और तीन तीन प्रकार के अर्थ करके दिखला दिये हैं जिससे सिवाय

इसके और क्या प्रयोजन हो सका है ? कि यह दिखाया जावे कि वेदों की भाषा इस समय ऐसी भाषा हो गई है कि उसके जो चाहो अर्थ लिखे जा सकते हैं इस हेतु यदि हमारे चेलों को हमारे किये हुये अर्थ अप्रिय हों तो सत्यार्थ प्रकाशकी तरह इन अर्थों को रद्द करके दूसरे अर्थ लिख दिये जायें-देखिये स्वामी जी ऋग्वेद के प्रथम मंडल के छठे अध्यायके सूक्त ९१ में पांचवों ऋचाके दो अर्थ इस प्रकार करते हैं ।

प्रथम अर्थ—“ हे समस्त संसारके उत्पन्न करने वा सब विद्याओंके देनेवाले परमेश्वर ! वा पाठशाला आदि व्यवहारोंके स्वामी विद्वान् आप अविनाशी जो जगत् कारक वा विद्यमान कार्य जगत् है उसके पालने वाले हैं और आप दुःख देने वाले दुष्टों के विनाश करने वाले हैं सबके स्वामी विद्या के अध्यक्ष हैं वा जिस कारण आप अत्यन्त सुख करने वाले हैं वा समस्त बुद्धि युक्त वा बुद्धि देने वाले हैं इन्हींसे आप सब विद्वानोंके सेवने योग्य हैं”

दूसरा अर्थ—“ सब औषधियोंका गुणदाता सोम औषधि यह औषधियों में उत्तम ठीकर पच्य करनेवाले जनों की पालना करने वाला है । और यह सोम मेघके समान दोषोंका नाशक रोगोंके विनाश करनेके गुणोंका प्रकाश करनेवाला है वा जिस कारण यह सेवने योग्य वा उत्तम बुद्धिका हेतु है इसीसे वह सब विद्वानोंके सेवनेके योग्य है”

इन तमाम बातोंसे यह ही विदित होता है कि स्वामीजीकी बृच्छा और कोशिश अपने चेलोंको सुश करने ही की रही है वास्तविक सिद्धान्तसे उनको कुछ मतलब नहीं रहा है। परन्तु इससे हमें क्या गरज स्वामीजीने जो सिद्धान्त लिखे हैं वह अपने मनसे सच समझ कर लिखे हों वा अपने चेलोंको बहकानेके वास्ते, इनको तो यह देखना है और जांच करनी है कि उनके स्थापित किये हुए सिद्धान्त कहां तक पूर्णपर विरोधसे रहित और सत्य सिद्ध होते हैं और स्वामीजीके प्रकाश किये अर्थोंके अनुसार वेदोंका मजमून ईश्वरका वाक्य है वा राजाकी प्रशंसाके गीतोंका संग्रह। इस ही जांच में सबका उपकार है और सबको सब मंतों की इस ही प्रकार जांच करनी चाहिये ॥

## ॥ आर्यमत लीला ॥

( २ )

स्वामीजी ने यह बात तो लिखदी कि सृष्टि की आदि में सृष्टि नियम के विरुद्ध ईश्वरने बिना मा वापके सकड़ों और हजारों मनुष्य उत्पन्न कर दिये परन्तु यह न बताया कि उन्होंने पैदा होकर किस प्रकार अपना पेट भरा और पेट भरना उनको किसने सिखाया ? घर बनाना उनको किस तरह आया और कब तक वह वे घर रहे ? कपड़ा उनको कब मिला और कहां से मिला और कब तक वह नंगे

रहे ? कपड़ा बनाना उन्होंने कहां से सीखा ? अनाज बोना उनको किसने सिखाया ? इत्यादिक अन्य हजारों वस्तु बनानी उनको किस प्रकार आई और कब आई ? ॥

इन प्रश्नों को पढ़कर हमारे विद्वान् भाई इस पर हंसेंगे क्योंकि पशुओं को पेट भरना कौन सिखाता है ? इस के अतिरिक्त बहुत से पक्षी बग्या आदिक अद्भुत रघोंसला बनाते हैं, मकड़ी सुन्दर जाला पूरती है और वनखका अंडा यदि मुर्गी के नीचे सेया जाकर बच्चा पैदा कराया जावे और वह बच्चा मुर्गी ही के साथ पाला जावे तीभी पानी को देखते ही स्वयस् तैरने लग जावेगा—यह तो पशुपक्षियों की दशा है परन्तु पशुपक्षियों में इतना प्रबल ज्ञान नहीं होता है कि वह अपनी जातिके अनुसार पशुज्ञान से अतिरिक्त कोई कार्य कर सकें अर्थात् बग्या जैसा घोंसला बनाता है वैसा ही बनावेगा उसमें उन्नति नहीं कर सकता है परन्तु मनुष्य में पशु से विशेष ज्ञान इस ही बात से सिद्ध होता है कि वह संसार की अनेक वस्तुओं और उनके गुण और स्वभाव को देखकर अनुमान ज्ञान पैदा करता है और वस्तुओं के गुणों का प्रयोग करता है—इस अपनी ज्ञान शक्ति के द्वारा आहिस्ता आहिस्ता मनुष्य बहुत उन्नति कर जाता है और करता रहता है—इस मनुष्य जाति को उन्न-

ति करने में एक यह भी सुबोता है कि इस में बार्तालाप करने की शक्ति है यदि प्रत्येक मनुष्य एक एक बहुत मोटी मोटी बातका भी अनुमान करें तो हजार मनुष्य एक दूसरे से अपनी बातकी कहकर सहज ही में हजार २ बात जान लेते हैं और उन बातोंकी जांच करके नवीन ही बारीक बात पैदा कर लेते हैं । इसके अतिरिक्त आज कल भी वहशी मनुष्य अफरीका आदिक देशोंमें मौजूद हैं जो पशु के समान नंगे बिचरते हैं और पशु के ही समान उनका खाना पीना और रात दिन का व्यवहार है उनमें से बहुत से स्थान के बहशियों ने बहुत कुछ उन्नति भी करली है और बहुत कुछ उन्नति करते जाते हैं और सभ्यता को प्राप्त होते जाते हैं-उनकी उन्नति के क्रम को देखकर विद्वान इतिहासकारों ने इस विषय में बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं । वह लिखते हैं कि किसी समय में जब उन में कोई जरा समझदार होता है वह पत्थरके नोकदार वा धारदार टुकड़ों को धरती के खोदने वा लकड़ी आदिक वस्तुओं के काटने का औजार बनालेता है और उनके देखा देखी अन्यभी सब लोग पत्थरों को काम में लाने लगते हैं-किसी समय में किसी गढ़न वन की देखकर उनमें से किसी को ऐसा ध्यान आजाता है कि यदि वृक्षों की शाखा किसी स्थान पर चारों त-

रफ चिनकी गाड़ कर और ऊपर भी शाखाएं डालकर ऊपर पसे डाल दिये जावैंतो शीत और वर्षासे बच सकते हैं ऐसा समझकर उनही पत्थरोंकी औजार से शाखा काटता है और एक बहुत खराब सा घर बना लेता है किसी को किसी समय उनमें से ऐसा सूझना है कि यदि वृक्षोंके चौड़े पत्तों से शरीर ढांका जावै तो गर्मी आदिकसे आराम मिलता है और इस प्रकार बदन ढांपने का प्रचार होजाता है । पक्षियों के घोंसलों और मकड़ी के जालों को देखकर किसी के ज्ञान में यह आजाता है कि यदि वृक्षों की वेलकी आपुस में उलका लिया जावै अर्थात् घुन लिया जावै तो अच्छा ओढ़ने का बख बन जावै फिर कोई बड़ खजूर, सन, कुंवारा आदिक के बड़े २ देशोंकी घुनने लगजाता है । जंगल में हजारों प्रकार की वनस्पति और फल फूल होते हैं सबको खाते २ उनको यह भी समझ आने लगती है कि कौन वृक्ष गुणकारी है और कौन खाने में दुखदाई-जो गुणकारी होता है उसकी रक्षा करने लगते हैं और दुखदाईको त्याग देते हैं-जंगलमें घांस के बीड़ोंमें आपुसमें रगड़ खाकर आग लग जाया करती है इन आगसे यह बहशी लोग बहुत डरते हैं परन्तु कालान्तर में किसी समय कोई इनके खानेकी वस्तु यदि इस आग में भुन

जानी है और जलती नहीं है और उसकी इनमें से कोई खालेता है तो यह बहुत स्वाद मालम होती है और तब यह विचार होता है कि आग को किसी प्रकार काबू करना चाहिये और इनसे खाने के पदार्थ भून लिये जाया करें। कालान्तर में कोई ज़रा समझदार या निष्ठुर मनुष्य आगको अपने समीप भी ले आता है और लकड़ी में लगाकर उसको रक्ता करता है और उस में हालकर खानेकी वस्तु भून लेता है। क्रम २ पत्थर की सिल वा पत्थर के गोले आदिक से खाने आदिककी वस्तुका चूरा करना सीख जाते हैं फिर जब कभी कहींसे उनको लोहे आदिककी खान मिलजाती है तो उसको पत्थरों से छोट पीटकर कोई औजार बनालेते हैं इसही प्रकार सब काम बुद्धिसे निकालते चलेजाते हैं जब २ उनमें कोई विशेष बुद्धिवाला पैदा होता रहता है तब तब अधिक बात प्राप्त होजाती है यह एक साधारण बात है कि सब मनुष्य एकसां बुद्धिके नहीं होते हैं कभी २ कोई मनुष्य बहुत विशेष बुद्धिका भी पैदा होजाया करता है और उससे बहुत कुछ चमत्कार होजाता है जैसा कि आर्या भाइयोंके कथनानुसार स्वामी दयानन्द सरस्वती जी एक अद्भुत बुद्धि के मनुष्य पैदाहुये और अपने ज्ञान के प्रकाश से सारे भारतके मनुष्यों में उजियाला कर दिया ।

भाईयो ! यद्यपि मनुष्यकी उन्नति इस प्रकार हो सकती है और इस ही कारण किसी प्रश्नके करनेकी आवश्यकता नहीं थी परन्तु हम इन प्रश्नोंके करने पर इस कारण मजबूर हुये हैं कि श्री स्वामी दयानन्दजीने अपने चेनोंको इस प्रकार मनुष्यकी उन्नति होने के विपरीत शिक्षा दी है—स्वामी जी को वेदों की ईश्वरका वाक्य और प्राचीन विदु करने के वास्ते इनकी उत्पत्ति सृष्टिकी आदि में वर्णन करनी पड़ी और उस समय इनके प्रगट करने की ज़रूरत को इस प्रकार ज़ाहिर करना पड़ा कि मनुष्य बिना सिखाये कुछ सीख ही नहीं सकता है । स्वामीजी इस विषयमें इस प्रकार लिखते हैं:—

“जब ईश्वरने प्रथम वेद रचे हैं उन को पढ़ने के पश्चात् ग्रन्थ रचने की सामर्थ्य किसी मनुष्यकी हो सकती है। उसके पढ़ने और ज्ञानके बिना कोई भी मनुष्य विद्वान नहीं हो सकता जैसे इस समयमें किसी शास्त्रको पढ़के किसीका उपदेश सुनके और मनुष्यों के परस्पर व्यवहारोंको देखके ही मनुष्योंको ज्ञान होता है । अन्यथा कभी नहीं होता । जैसे किसी मनुष्यके बालकको जन्म से एकांतमें रखके उसको अन्न और जल युक्तिसे देवे, उसकेसाथ भाषणादि व्यवहार लेशमात्र भी कोई मनुष्य न करे कि जब तक उसका भरण न हो तब तक उसको इसी प्र-



कारसे रखते तो मनुष्य अपनेका भी ज्ञान नहीं हो सका तथा जैसे बड़े बन में मनुष्योंको बिना उपदेशके यथार्थज्ञान नहीं होता है किन्तु पशुओंकी भांति उनकी प्रवृत्ति देखनेमें आती है वैसे ही वेदोंके उपदेशके बिना भी सब मनुष्योंकी प्रवृत्ति होजाती”

इस विषयमें श्रीआखूराम शर्मा एक आर्यासमाजी महाशय “भारतका प्राचीन इतिहास” नामक पुस्तक में लिखते हैं कि:-

“यूरोपके अनेक विद्वानोंने यह सिद्ध करने की चेष्टाकी है कि ज्ञान और भाषा ईश्वर प्रदत्त नहीं है प्रत्युत मनुष्यों ने ही इन्हें बनाया है, परन्तु युक्ति और प्रमाण शून्य होनेसे उनका यह कथन कदापि माननीय नहीं हो सकता” ।

“अतएव सिद्ध है कि मनुष्योंको उत्पन्न करते ही उस परमपिता परमात्माने अपना ज्ञान भी प्रदान किया था जिसके द्वारा मनुष्य अपने भाव एक दूसरे पर प्रगट कर सकें और सृष्टि की समस्त वस्तुओं के गुणागुणों का अनुभव करके उसको धन्यवाद देते हुए अपने जीवन को सुख और शान्ति पूर्वक बितावें ।”

“यदि जेम्सवाटने पकती हुई खिचड़ी के ऊपर खड़कते हुए ठरुने का कारण भाप की शक्ति को अनुभव किया तो भाप के गुण जानने पर भी वह स्टीम इंजिन तक तक नहीं बना

सका जब तक कि उसे न्यूकोमन के बनाये हुए इंजिन की सरम्मत करने का अवसर न मिला ।”

इसही प्रकार अन्य बहुत बातें करके हमारे आर्या भाई वेदों की बड़ाई यहां तक करना चाहते हैं कि दुनिया भर में जो कुछ भी किसी प्रकार की विद्या मौजूद है वा जो कुछ नवीन र कल बनाई जाती हैं वा आगे को बनाई जावेंगी उन सबका ज्ञान वेदों के ही द्वारा मनुष्यों की हुआ है । सृष्टि की आदि में जो कुछ भी ज्ञान मनुष्य को हो सकता है वह सब ज्ञान वेदों के द्वारा तिष्ठत देशमें मनुष्यों के पैदा करते ही ईश्वर ने दे दिया था और पृथिवी भर में सब देशों में तिष्ठत से ही मनुष्य जाकर वसे हैं । इस कारण उस ही वेदोक्त ज्ञान के द्वारा सब प्रकार की विद्या के कार्य करते हैं । यदि ईश्वर वेदोंके द्वारा सर्व प्रकार का ज्ञान न देता तो मनुष्य जाति भी पशु समानही रहती ।

प्यारे पाठको ! यह हिन्दुस्तान किसी समय में अत्यन्त उन्नति शिखर को पहुंच चुका है और अनेक प्रकार की विद्या इस हिन्दुस्तान में होचुकी है कि जिसका एक अंश भी अभी तक अंगरेज आदिक विद्वानोंको प्राप्त नहीं हुआ है परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि जब इस हिन्दुस्तान के अभाग्य का उद्वेग आया उस समयमें ही किसी ऐसे मनुष्य ने जो स्वामी दयानन्द

जेनी बुद्धि रखता था। हिन्दुस्तानियों को ऐसी शिक्षा दी कि मनुष्य अपने विचार से पदार्थों के गुणों का प्रयोग करके नवीन कार्य उत्पादन नहीं कर सकता है। ऐसी शिक्षा के प्रचार का यह प्रभाव हुआ कि विद्या की जो उन्नति हिन्दुस्तान में हो रही थी वह बन्द हो गई और जो विज्ञानकी बातें पैदा करली थीं आहिस्ता २ उन को भी भूल गये क्योंकि विचार शक्ति को काम में लाये बिना विज्ञान की बातों का प्रचार रहना असम्भव ही हो जाता है। यह भी मालूम होता है कि अभाग्य के उदयसे हिन्दुस्तान में नशेकी चीजके पीने का भी प्रचार उस समय में बहुत हो गया था जिस को सोम कहते थे। इस से रहा सदा ज्ञान बिलकुल ही नष्ट होगया और इस देश के मनुष्य अत्यन्त मूर्ख और आलसी हो गये।

यदि वेदों के अर्थ जो स्वामी जी ने किये हैं वह ठीक हैं तो इन अर्थोंसे यह ही ज्ञात होता है कि इस मूर्खता के समय में ही वेदों के गीत बनाये गये क्योंकि स्वामी जी के अर्थों के अनुसार वेदों में सिवाय ग्रामीण मनुष्यों के गीत के और कुछ नहीं है। और वेदों में कुछ भी हो हमको तो शोक इस बात का है कि स्वामी जी इस वर्तमान समय में जब कि हिन्दुस्तानमें अविद्या अन्धकार फैला हुआ है जब कि हिन्दुस्तानी लोग पदार्थ

विद्या और कारीगरी की बातों में अपना विचार लगाना नहीं चाहते हैं, जब कि सब लोग निरुद्यमी और आलसी हो रहे हैं और एक कपड़ा सीने की सुई तक के वास्ते विदेशियोंके आश्रित हो रहे हैं ऐसे नाजुक समय में स्वामी जी की यह शिक्षा कि मनुष्य अपने विचार से कुछ भी विज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है हिन्दुस्तानियों के वास्ते जहर का काम देती है। यदि स्वामी जी के अर्थोंके अनुसार वेदों में पदार्थ विद्या और कारीगरी आदिककी आरम्भिक शिक्षा भी होती तौ भी ऐसी शिक्षा कुछ विशेष हानि न करती परन्तु वेदों में तो कुछ भी नहीं है सिवाय प्रशंसा और स्तुति के गीतों के और वह भी इस प्रकार कि एक २ विषय के एक ही मजमून के सैकड़ों गीत जिनको पढ़ता २ आदमी उकताजावे और बात एक भी प्राप्त न हो। और यह तो हम आगामी दिखावेंगे कि वेदों में क्या लिखा है? परन्तु इस स्थानपर तो हम इतना ही कहना चाहते हैं कि यदि कोई बालक जो मनुष्यों से अलग रक्खा जावे। केवल एक वेदपाठी गुरु उसके पास रहे और उसको स्वामी जीके अर्थके अनुसार सब वेद पढ़ा देवे तो वह बालक इतना भी विज्ञान प्राप्त न कर सकेगा कि छोटीसे छोटी कोई वस्तु जो गांवके गंधार बनालेते हैं बनालेवे। गांवके बाढ़ी चर्खा बनालेते

हैं गांव के जुलाहे मोटा कपड़ा बुन लेते हैं । गांवके भीतर बटाई और टोकरे बनालेते हैं गंवारे लोग खेत खां लेते हैं परन्तु यह बालक सर्व विज्ञान तो क्या प्राप्त करेगा मासूजी गंवारे बालकों के बराबर भी ज्ञान रखने वाला नहीं होगा । ऐसी दशामें हिन्दुस्तानियोंको स्वामीजी का यह उपदेश कि विचार और तत्परता करने से कोई विज्ञान मनुष्यको प्राप्त नहीं हो सकता है बरखा जो कुछ ज्ञान प्राप्त होता है वह वेदों से ही होता है क्या यह अभागे हिन्दुस्तानियोंके साथ दुश्मनी करना नहीं है ?

यदि सर्वविज्ञान जो कुछ संसार में है वेदों ही से प्राप्त होता है तो जब कि स्वामी दयानन्द जी ने वेदों का भाषा से सरल अर्थ कर दिया है हमारे आर्या भाई इन वेदोंको पढ़कर क्यों नाना प्रकारकी ऐसी कल नहीं बनालेते हैं जो अंगरेजों और जापानियोंको भी चकित कर दें परन्तु शब्दों में जो चाहे प्रशंसा कर दी जावे पर स्वामीजीके बनाये वेदोंके अर्थको पढ़कर तो खाट बुनना या मिट्टीके बर्तन बनाना आदिक बहुत छोटे २ काम भी नहीं सीखे जा सके हैं । जापानियों ने आजकल थोड़े ही दिनों में बड़ी भारी उन्नति करली है और अनेक प्रकार की कल और औजार बनाकर अनेक अद्भुत और सस्ती वस्तु बनाने लगे हैं परन्तु यदि जा-

पानमें भी कोई ऐसा उपदेशक उत्पन्न होजाता जो इस बातकी शिक्षा देगा कि मनुष्य बिना दूसरेके सिखाये अपने विचारसे कुछ भी विज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है तो जापान भी बेचारा अभाग ही रहता । परन्तु यह तो अभाग हिन्दुस्तान ही है जो स्वयम् निरुद्यमी हो रहा है और निरुत्साही होने का इस ही को उपदेश भी मिलता है । हे प्यारे आर्य भाईयो ! जरा विचारकी आंखें खोलो और अपनी और अपने देशकी दशा पर ध्यान दो और उद्योगमें लगाकर इस देशकी उन्नतिकरो--हम आपको धन्यवाद देते हैं कि आप परोपकार स्वयम् भी करते हैं और अन्य मनुष्योंको भी परोपकारका उपदेश देते हैं परन्तु कृपा कर ऐसा उपदेश मत दीजिये जिससे इनकी उन्नतिमें बाधा पड़े बरखा मनुष्यके ज्ञानकी शक्तिको प्रकट करो विचार करना, बात स्वभाव खोजना और वस्तु स्वभाव जानकर उनसे नवीन २ काम बनाना सिखाओ--वेदोंके भरोसे पर मत रहो उसमें कुछ नहीं रक्खा है । यदि इस बातका आप को यकीन न आवे तो कृपाकर एकबार स्वामीजीके अर्थ सहित वेदोंको पढ़ जाइये तब आप पर सब कलई खुल जायेगी--दूरकी ही प्रशंसा पर मत रहो कुछ जांच पड़ताल से भी काम लो--कारसी और चूँ के

शास्त्रों अर्थात् कविताओं की आवृत्ति तो यह बात प्रसिद्ध थी कि वह अपनी कविताई में अभिभव गद्य मार दिया करते हैं—जैसा कि एक उर्दू कविने लिखा है—“नातवानोंने बचाया आज मुझकी हिज्ज में हूँ हूँ फिरती कज़ा थी मैं न था”—अर्थात् प्रीतम की जुदाईमें मैं ऐसा दुखना और कृप शरीर हों गया कि मृत्यु मुझकी मारनेके वास्ते आई परन्तु अपने कृप शरीर होनेके कारण मैं मृत्युको टाँप ही न पड़ा और मृत्युसे बच गया। प्यारे पाठको ! विचार कीजिये कविने जैसी गद्य मारी है कहीं शरीर इतना भी कृप हो सकता है कि मृत्युही भी टाँप गोचर न हो—इस प्रकार उर्दूके कवियोंकी गद्य तो प्रसिद्ध थी परन्तु स्वामीजीने यह गद्य इसमें भी बढ़िया उड़ाई है कि सर्व प्रकारका विज्ञान मनुष्य को वेदों से ही प्राप्त होता है—बड़े २ विज्ञान की बातें जो आजकल अमरीका और जापान आदि देश के विद्वानों को मालूम हैं वह तो भला वेदोंमें कहाँ हैं ? परन्तु यदि मोंटी २ शिक्षा भी वेदों में मिलती, जो मृष्टि की आदिमें बिना मा बापके उत्पन्न हुए मनुष्य को मनुष्य बनने के वास्ते जरूरी है, तो भी यह कहना किसी प्रकार उचित हो जाता कि मनुष्यको सर्व शिक्षाये वेदोंही से प्राप्त हुई है परन्तु वेदोंमें तो इस प्रकारकी कुछ भी शिक्षा नहीं है वरन वेद शिक्षाकी पुस्तक ही नहीं है—वेद तो गीतोंका संग्रह है और

स्वामीजीने जो अर्थ इन गीतोंके किये हैं उनसे मालूम होता है कि जो गीत बृहस्पति लोकोने प्रधान पुरुषोंकी बड़ाई करके उन ने दान लेनेके वास्ते जोड़ रखे थे वा जो गीत भंग धतूरा आदिक कोई नशेकी अस्तु पीनेके समय जियकी नीम कहने थे उस समय के लोग गाते थे वा अग्निमें होम करनेके समय गाये जाते थे वा जा गीत प्राणीय लोग लड़ाई भगड़ेके समय लड़ाई की उत्तेजना देने और शत्रुओं की मारनेके वास्ते उकसाने के वास्ते गाते थे वा और प्रकारके गीत जो माधारण मनुष्य गाया करते थे उनका संग्रह होकर वेद बने हैं—इसी कारण एक एक विषयके सैकड़ों गीत वेद में भोजूद हैं—यहां तक कि एक विषयके सैकड़ों गीतोंमें विषय भी वह ही और दृष्टान्त भी वह ही और बहुतसे गीतोंमें शब्द भी वही हैं । आज कल अनेक समाचार पत्रोंमें स्वदेशीके प्रचारके वास्ते अनेक कविता छपती हैं और समाचार पत्रोंसे अलग भी स्वदेशी प्रचार पर अनेक कवितायें बनाई जाती हैं यदि इन सब कविताओंको संग्रह करके एक पुस्तक बनाई जावे तो सर्व पुस्तकमें गीत तो सैकड़ों और हजारों होकर बहुत मोंटी पुस्तक बन जावेगी परन्तु विषय सारी पुस्तकमें इतना ही निकलेगा कि अन्यदेशकी अस्तु खरीदनेके देशका धन विदेशको जाता है और यह देश निर्धन होता

जाता है इस कारण देशकी ही वस्तु लेनी चाहिये चाहे वह अधिक मूल्य की मिले और विदेशी के मुकाबले में सुन्दर भी न हो । यही दशा वेदों के गीतोंकी है । हमको आश्चर्य है कि इस प्रकार के पुस्तककी बावत स्वामी जीने किस प्रकार लिखदिया कि वह ईश्वर वाक्य है और मनुष्यों को जो ज्ञान प्राप्त हुआ है वह इन ही के द्वारा हुआ है ? क्या स्वामीजी यह जानते थे कि कोई इनको पढ़कर नहीं देखेगा और दूरकी ही प्रशंसासे अट्टान ले आवेगा ।

परन्तु हमारा आश्चर्य दूर हो जाता है जब हम देखते हैं कि स्वामी जी सारी ही बातें उनटी पुनटी और बे-मिर पैरकी करते हैं । देखिये स्वामी जीकी यह मिट्टु करना था कि सृष्टि की आदिमें ईश्वरने उन मनुष्योंको वेदोंके द्वारा ज्ञान दिया जो बिना मा बापके उत्पन्न किये गये थे । आज कल जो बालक पैदा होता है वह पदा होने पर मकान-दुकान बाजार-खान पीढ़ा बरतन-अन्न और अनेक वस्तु और मनुष्योंके अनेक प्रकारके काम देखता है परन्तु वह मनष्य जो बिना मा बाप के पैदा हुए होंगे वह तो घिल्कल ऐसी ही दशामें होंगे जैसा कि जंगल में पशु, इस कारण स्वामी जीकी चाहिये था कि ऐसे मनुष्यको जिन जिन बातोंकी शिक्षाकी जरूरत होती है वह बातें वेदोंमें दिखलाते परन्तु उन्होंने

ऐसा न करके और शेखीमें आकर अपने चेलोंको वहकानेके बास्ते इस बात के मिट्टु करनेकी कोशिश की कि उस समयमें रेल भी चलती थी और समुद्रमें जहाज भी जारी थे जिनमें एंजिन जुड़ते थे और आगके जोरसे विमान भी आकाशमें उड़ते थे । वाह स्वामी जी वाह ! आपको शाबाश है आप क्या मिट्टु करना चाहते थे और उस की सिद्धिमें कहगये वह बात जो आपनी ही बातको खण्डन करे—

इस लेखमें हम यह मिट्टु करना नहीं चाहते हैं कि स्वामीजीने किसी प्रकार वेदोंका अर्थ बदल कर उसमें रेल एंजिन जहाज और विमान आदि का वर्णन दिखाया है क्योंकि हमको तो इस मारे लेखमें यही सिद्ध करना है कि स्वामीजीके अर्थोंके अनुसार भी वेदोंसे शिक्षा मिलती है और वेद ईश्वरका वाक्य मिट्टु होते हैं वा नहीं और वह सृष्टिकी आदिमें दिये गये वा नहीं ? हम जो कुछ लेख लिख रहे हैं वह स्वामीजीके अर्थोंको मत्पमान कर ही लिख रहे हैं और स्वामीजीके अर्थोंके अनुसार मर्ब बातें मिट्टु करेंगे—

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके सूक्त ४६ की क्रमशः ऋचा ३-७-८ के अर्थ में इस प्रकार लिखा है—

“हे कारीगरो जो वृद्धावस्थामें वर्तमान बड़े विद्वान् तुम शिल्प विद्या पढ़ने पढ़ाने वालोंको विद्याओंका उपदेश करो तो आप लोगोंका बनाया हुआ

रथ अर्थात् विमानादि सवारी पक्षियोंके तुल्य अन्तरिक्षमें ऊपर चलें ”  
“ हे व्यवहार करने वाले कारीगरो ! जो आप मनुष्योंकी नौकासे पार जाने के लिये हमारे लिये विमान आदि यान समूहोंको युक्त कर चलाइये ”

“ हे कारीगरो ! जो आप लोगोंका यानसमूह अर्थात् अनेक विधि सवारी हैं उनको समुद्रोंके तराने वालों में यान रोकने और बहुत जलके थाह ग्रहणार्थ लोहे का साधन प्रकाशमान बिजली अग्न्यादि और जलादि को आप युक्त कीजिये--”

इस सूक्तसे विदित होता है कि जिस समय यह सूक्त बनाया उस समय आकाशमें चलने वाले विमान और समुद्रमें चलने वाले जहाजोंके बनानेवाले मौजूद थे । परन्तु ऐसे विद्वान् कारीगर अर्थात् बड़े इज्जिनियर किस महान् कालजमें कलोंकी विद्या को पढ़े यह मालूम नहीं होता है । इस सूक्तका यह मन रूढ़न्त अर्थ तो कर दिया परन्तु स्वामीजीने यह न विचार्य कि इससे हमारा सारा ही कथन असत्य होजावेगा क्योंकि जब कि वेदोंमें कलोंके बनानेकी विद्या नहीं बताई गई है और न विमान और जहाज के कल पुर्जे बताये गये हैं तो यह सहज ही में सिद्ध हो जावेगा कि यह सब विद्या मनुष्योंने विना वेदों के ही सीखी और वेद सृष्टिकी आदि में नहीं बने बरन वेद उस समय बने

हैं जब कि मनुष्य विमान और जहाज बनाना जानते थे और ऐसे महान् विद्वान् हो गये थे कि केवल इतनी बातका उपदेश देने पर कि जहाजमें आग पानी और बिजली और लोहा लगाओ वह दुखानी जहाज बनासकें--

स्वामीजीने रेल जहाज तार बरकी विमान आदि का चलना अग्नि जल और बिजली आदिकसे सुनलिया था इस कारण इतने ही शब्द वह वेदोंके अर्थमें ला सके परन्तु शोक इस बातका रहगया कि कलों की विद्याको स्वामीजी कुछ भी नहीं जानते थे यहां तक कि उनको यह भी मालूम नहीं था कि किस २ कल में क्या २ पुर्जे हैं और उन के क्या २ नाम हैं ? नहीं तो कुछ न कुछ कल पुर्जों का जिकर भी वेदों में जरूर मिलता और उस समय शायद कुछ मिलमिला भी ठीक बैठजाता परन्तु अब तो रेलतार और विमान आदिकका जिकर आने से उनका सारा कथन ही भंटा हो गया और वेद ही ईश्वरके वाक्य न रहै

स्वामी जी ने आग और पानीसे सवारी चलाने अर्थात् रेल बनाने का वर्णन और भी कई बार वेदोंमें दिखाया है परन्तु उपरोक्त शब्दोंके सिवाय और विशेष बात नहीं लिख सके हैं--

ऋग्वेदके प्रथम मण्डलके ८७ सूक्तकी ऋचा २ के अर्थमें वह लिखते हैं--

“जो तुम्हारे रथ भेद्योंके समान आकाशमें चलते हैं उन में मधुर और

निर्मल जल की अच्छे प्रकार उपसिक्त करो अर्थात् उन रथोंके आग और पवनके कल घरोंके समीप अच्छे प्रकार छिड़को—”

सूक्त ८८ की ऋ० २ के अर्थमें लिखते हैं—

“जैसे कारीगरीकी जानने वाले विद्वान् लोग उत्तम व्यवहारके लिये अच्छे प्रकार अग्नि के तापसे लाल वा अग्नि और जलके संयोगकी उठी हुई भाकोंने कुछेक श्वेत जोकि विमान आदि रथोंको चलाने वाले अर्थात् अतिशीघ्र उनको पहुंचाने के कारण आग और पानी की कलोंके घरकूपी घोड़े हैं उनके साथ विमान आदि रथनी बज्रके तुल्य पहियोंकी धारसे प्रशंसित बज्रने अन्तरिक्ष वायुको काटने और उत्तेजना रखने वाले शूना धीरता बुद्धिमत्ता आदि गुणोंसे युक्त मनुष्यों के समान मार्गको हनन करने और देश देशान्तरको जाते आते हैं वे उत्तम सुखको घारी औरसे प्राप्त होने हैं वैसेहम भी इसको करके आनन्दित होयें—”

इस अर्थके पहनेसे सात्वत होता है कि स्वामीजीको अंगरेजोंके रेल जहाज विमान आदिकका वर्णन सुनकर उत्तेजना होती थी कि हम भी ऐसी ही कलें बनायें। यही भाव स्वामीजी का वेदोंका अर्थ करने हुये वेदों में आगया। परन्तु शोक है कि इससे यह स्पष्ट सिद्ध होगया कि वेद सृष्टि की

आदिमें नहीं बने। देशक वेदोंका इस प्रकारका अर्थ इस खानकी सिद्ध करने के वास्ते काम में आ सकता है कि हिन्दुस्तानमें भी किसी समय में सर्व प्रकार की विद्या थी और रेल और जहाज आदिक जारी थे परन्तु स्वामी जी तो यह कहते हैं कि वेदों में सर्व प्रकार के विज्ञान की शिक्षा है जो सृष्टि की आदि में ईश्वर ने उन मनुष्यों को दी थी जो बिना मा बापके पैदा हुये थे और जिन्होंने ने मकान बरतन आदिक भी कोई वस्तु नहीं देखी बरन उनकी दशा विमल ऐनी थी जैसी जङ्गली जानवरों की हुआ करती है।

स्वामी जी ने और भी कई सूक्तों में इस का वर्णन किया है।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १०० ऋ० १६ के अर्थमें वह इस मप्रकार लिखते हैं:—

“जिसका प्रकाश ही निवास है वह नीचे लाल ऊपर से काली अग्नि की ज्वाला लोह की अच्छी २ बनी हुई कलाओं में प्रयुक्त की गई वेग वाले विमान आदि यान समूह को धारण करती हुई आनन्द की देने हारी मनुष्यों के इन मन्तानोंके निमित्त धन की प्राप्ति के लिये वर्तमान है उसको जो अच्छे प्रकार जाने वह धनी होता है।”

इस अर्थ से यह सात्वत होता है कि जिनको यह उपदेश दिया गया है वह कम बनाना तो जानते थे परन्तु उस अग्नी को नहीं जानते थे जो ऊपर से

काली और नीचे से लाल होती है । परन्तु इतना ही इशारा करने पर रेल और जहाज बनाना सीख गये ।

सूक्त १११ के अर्थ में ऐसा आशय भी लिखा है । “अग्नि और जलसे कला बनावै”

“हे शिल्प कारियो हमारे लिये विमान आदिक बनाओ”

इससे तो स्पष्ट सिद्ध होगया कि पहलेसे कारीगर लोग विमान बनाना जानते थे । वेदों में कहीं विमान बनाने की तरकीब लिखी तो गई ही नहीं है इस हेतु वेद कदाचित् भी सृष्टि की आदि में नहीं हो सकते हैं बरण उम समय के पश्चात् बने हैं जब कि विमान आदिक बनाना जान गये थे । और यदि कुन वेद उम समय में नहीं बना है तो यह सूक्त तो अवश्य ऐसेही समय का बना हुआ है ।

इस ही प्रकार उक्त प्रथम मंडल के सूक्त ११६ की ऋचा १ नी और तीसरी के अर्थ में लिखा है:-

“हे मनुष्यो जैसे मरुचे पुर्यात्मा शिल्पी अर्थात् कारीगरों ने जोड़ें हुये विमान आदि रथसे जो...खी के समान पदार्थों को निरन्तर एक देश से दूसरे देशको पहुंचाते हैं तैसे अच्छा यत्न करता हुआ मैं मार्ग...वैसे एक देश को जाना हूं”

“हे पवन...तुम शत्रुओंको मारने वाले सेनापति उन नावोंसे एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचाओ ।”

इससे भी सिद्ध होता है कि इस सूक्त के बनने से पहले विमान और नाव काम में लाये जाते थे परन्तु वेदों में कहीं इनके बनाने की तरकीब नहीं मिलती है ।

इसही प्रकार सूक्त ११८ के अर्थों में ऐसा आशय प्रगट किया है-

“विमान से नीचे उतरो” विमान जिसमें ऊपर नीचे और बीच में तीन बन्धन हैं और बाज पखेरू की समान जिमका रूप है वह तुमको देश देशान्तर को पहुंचाते हैं ।

लो साहब ! इस में तो विमान बनाने की तरकीब लिखदी और हमारे आर्यों भाई इससे विमान बनाना सीख भी गये होंगे इसके अतिरिक्त और भी कहीं २ इस ही प्रकार ऐंजन बनाना सिखाया गया है । देखिये नीचे लिखे सूक्त में जब यह बता दिया कि अग्निलाल २ होती है और रथके अगले भागमें उसको लगानी चाहिये तब रेलगाड़ी चलाना सिखाने में क्या कमर छोड़दी ।

ऋग्वेद के पांचवें मंडल के सूक्त ५६ की छठी ऋचाका अर्थ इस प्रकार लिखा है-

“हे बिट्ठान् कारीगरो ! आप लोग बाहन में रक्त गुणों से विशिष्ट घोड़ियोंके सदृश उवालाओंको युक्त कीजिये रथों में लाल गुण वाले पदार्थों को युक्त कीजिये और अग्रभाग में प्राप्त करने के लिये जाने वाले धारण और



आकर्षण को तथा अग्रभाग में स्थानान्तर में प्राप्त होने के लिये अत्यन्त पहुँचाने वाले निश्चय अग्नि और पवन को युक्त कीजिये ।”

गरज कहाँ तक लिलैं यदि स्वामी जी के अर्थ ठीक हैं तो वेदों से कदाचित् यह मिट्ट नहीं होता है कि वेद सृष्टि की आदिमें बिना मा बाप के उत्पन्न हुये जंगली मनुष्यों को सर्व प्रकार का विज्ञान देनेके वास्ते ईश्वर ने प्रकाशे वा इन वेदों से कुछ विज्ञान प्राप्त हो सकता है । हां यहां वेदों में ऐसी मंत्र शक्ति है कि रेलका नाम लेने से रेल बनाना आजावे और जहाज का नाम लेने से जहाज बनाना आजावे तो सब कुछ ठीक है । परन्तु इस में भी बहुत मुश्किल पड़ेगी क्योंकि कलों की विद्या के जानने वाले विद्वानों ने हजारों प्रकार की अद्भुत कलें बनाई हैं और नित्य नवीन कलें बनाते जाते हैं और वेदों में रेल और तार और जहाज और बिमान को ही नाम स्वामी जी के अर्थों के अनुसार मिलता है तब यह अनेक प्रकार की कल कहाँ से बनगई ? समय देखनेकी घड़ी, कपड़ा सीने की चरखी, कुए में से पानी निकालने का पम्प, फोटोकी तसबीर बनाने का केमरा आदिक बहुत सी कलें तो हिन्दुस्तानी सबही मनुष्यों ने देखी होंगी और फोनो ग्राफ का बाजाभी सुना होगा जिस में गाने वालों के गीत भर लिये जाते हैं और

वह गीत उस बाजे में उसही प्रकार गाये जाते हैं इत्यादिक बहुत प्रकार की अद्भुत कलें हैं जिनमें आग पानी, भाप, और बिजलीकी शक्ति नहीं लगाई जाती है इस प्रकार की हजारों कल हैं जिन का हम लोगोंने नाम भी सुना है और इस ही कारण स्वामी जी के अर्थ किये हुवे वेदों में भी उन का नाम नहीं मिलता है । सुनरां यदि वेदों में किसी कल का नाम आने से ही उस कल के बनाने की बिद्या वेद पढ़ने वाले को प्राप्त हो जाती है तो यह हजारों प्रकार की कलें जिनका वेदों में नाम नहीं है कहाँ से बनगई और सब वेदपाठी पूरे इन्जिनियर क्यों नहीं बन जाते हैं ? प्यारे भाइयो कितनी ही बातें बनाई जावें परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि मनुष्य अपने बुद्धिबिचार से वस्तुओं के गुणों की परीक्षा करके उन वस्तुओं को उनके गुण के अनुसार काममें लाकर बहुत कुछ विज्ञान निकाल लेता है और अनेक अद्भुत वस्तु बनालेता है वेदों ही के आकाश से उतरनेकी आवश्यकता नहीं है ।

हमें आश्चर्य इस बात का है कि किस मंह से स्वामीजी ने कह दिया और उनके चेलों ने मान लिया कि कुल विज्ञान जो मनुष्य प्राप्त कर सकता है वह वेदों के ही द्वारा हो सकता है और बिना वेदों के कोई ज्ञान नहीं

हो सकता है क्योंकि संसार में अनेक विद्या वतमान है किस किस विद्या का वर्णन हमारे आर्य भाई वेदों में दिखावेंगे। एक गणित विद्या कोही देखिये कि यह किसनी बड़ी विद्या है। साधारण गणित, बीजगणित, रेखा गणित और त्रिकोण गणित आदिक जिसकी बहुत शाखा है। इस विद्याके हजारों महान् ग्रन्थ हैं जिनको पढ़ते २ मनुष्य की आयु व्यतीत होजावे और विद्या पढ़ना बाकी रहजावे। हमारे पाठकों में से जो भाई सरकारी मदरसों में पढ़ चुके हैं उन्होंने उकलै दस ( Euclid ) और जबर मुकाबला ( Algebra ) पढ़ा होगा और उस ही से उन्होंने ने जांच लिया होगा कि यह कैसा गहन खन है। परन्तु जो रेखा गणित स्कूलों में पढ़ाई जाती है वह तो बच्चों के वास्ते आरम्भिक विद्या है इससे अधिक यह विद्या कालिजों में जी. ए. और एम. ए. के विद्यार्थियों को पढ़ाई जाती है और उससे भी अधिक यह विद्या एम. ए. पास करने के पश्चात् वह पढ़ते हैं जो चांद सूर्य और तारों को और उन की चालको जांचते और भापते हैं। यह गणित विद्या इतनी भारी होने पर भी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी इस गणित विद्या को वेदों से इस प्रकार मिट्टु करते हैं।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में स्वामी जी ने गणितविद्या विषय जिस प्रकार लिखा है उस सबके भाषार्थ की

हम यहां नकल करते हैं।

स्वामी जी ने वेद की ऋचा लिख कर उनका भाषार्थ इस प्रकार लिखा है।

“(एकाच से०) इन मन्त्रों में वही प्रयोजन है कि अङ्क बीज और रेखा भेद से जो तीन प्रकारकी गणित विद्या सिद्ध की है उनमें से प्रथम अंक जो संख्या है ( १ ) सो दो बार गिनने से दो की बाचक होती है जैसे  $१+१=२$  ऐसे ही एक के आगे एक तथा एक के आगे दो वा दो के आगे एक आदि जोड़ने से भी समझ लेना, इसी प्रकार एक के साथ तीन जोड़ने से चार तथा तीन को तीन ३ के साथ जोड़ने से (६) अथवा तीन को तीन से गुणने से  $३ \times ३ = ९$  हुए ॥ १ ॥

इसी प्रकार चार के साथ चार पांच के साथ पांच छः के साथ छः आठ के साथ आठ इत्यादि जोड़ने वा गुणने तथा सब मन्त्रों के आशय को फैलाने से सब गणित विद्या निकलती है जैसे पांच के साथ पांच (५५) वैसे ही पांच २ छः २ (५५) (६६) इत्यादि जान लेना चाहिये। ऐसे ही इन मन्त्रों के अर्थों को आगे योजना करने से अंकों से अनेक प्रकारकी गणित विद्या मिट्टु होती है क्योंकि इन मन्त्रों के अर्थ और अनेक प्रकार के प्रयोगों से मनुष्यों को अनेक प्रकार की गणित विद्या अवश्य जाननी चाहिये और जो कि वेदों का अंग उद्योतिष शास्त्र कहाता है उसमें भी इसी प्रकार के मन्त्रों के अभिप्राय

से गणित विद्या मिट्टी की है और अंकों से जो गणित विद्या निकलती है वह निश्चित और असंख्यात पदार्थों में नि-युक्त होती है और अज्ञात पदार्थों की संख्या जानने के लिए जो बीजगणित होता है सो भी ( एकाच से. ) इत्यादि मन्त्रों ही से मिट्टी होता है उसे ( अ+क ) ( अ-क ) ( क+अ ) इत्यादि संकेत से निकलता है यह भी वेदों ही से ऋषि मुनियों ने निरूपण है और इसी प्रकार से तीसरा भाग जो रेखा गणित है सो भी वेदों ही से मिट्टी होता है ( अ म आ ) इन मन्त्रों के सं-केतों से भी बीज गणित निकलता है।

( इयंवेदिः० अभि प्र० ) इन मन्त्रों से रेखागणित का प्रकाश किया है क्यों कि वेदी की रचना में रेखागणित का भी उपदेश है जैसे तिकोन चौकोन मेन पक्षी के आकार और गोल आदि जो वेदी का आकार किया जाता है सो आर्यों ने रेखागणित ही का दृष्टान्त माना था क्योंकि ( परोक्षन्तः पृ० ) पृथिवी का जो चारों ओर घेरा है उन को परिधि और ऊपर से जो अन्त तक जो पृथिवी की रेखा है उसको व्यास कहते हैं। इसी प्रकार से इन मन्त्रों में आदि, मध्य और अन्त आदि रेखाओं को भी जानना चाहिये इसी रीति से तिर्यक् विषयत् रेखा आदि भी निकलती है ॥३॥ ( कामी श्रं० ) अर्थात् यथार्थ ज्ञान क्या है ( प्रतिमा ) जिस पदार्थों का तोल किया जाय सो

क्या चीज है ( निदानम् ) अर्थात् कार-ण जिस से कार्य उत्पन्न होता है वह क्या चीज है ( आज्यं ) जगत में जनने के योग्य मार भूत क्या है ( परिधिः ) परिधि किमको कहते हैं ( छन्दः ) स्व-तंत्र वस्तु क्या है ( प्र ३० ) प्रयोग और शब्दों से स्तुति करने योग्य क्या है इन मात प्रश्नों का उत्तर यथावत् दिया जाता है ( यद्देवा देव० ) जिस को मध्य विद्वान् जंग पूजते हैं वही परमेश्वर प्रमा आदि नाम वाला है इन मन्त्रों में भी प्रमा और परिधि आदि शब्दों से रेखा गणित साधने का उपदेश पर-मात्मा ने किया है सो यह तीन प्र-कार की गणित विद्या आर्यों ने वेदों में ही मिट्टी की है और इसी आर्यवर्त देश में सर्वत्र भूगोल में गई है—

वाह स्वामी जी वाह ! आपने खूब मिट्टी कर दिया कि गणितकी मध्य विद्या मंनार भर में वेदों से ही गई है—अब जिसको इस विषयमें संदेह है समझना चाहिये कि वह गणित विद्या को ही नहीं जानता है—परन्तु स्वामी जी हम को तो एक संदेह है कि गणित विद्या के मिखाने के वास्ते आपके परमात्माने उपरोक्त तीनचार मंत्र वेदों में क्यों लिखे सारी गणित विद्या के सीखने के वास्ते तो एक ही मंत्र बहुत था और आपके कथनानुसार एक ही मंत्र की आवश्यकता नहीं थी वरण एक और एक दो इतना ही शब्द कह देना बहुत था इस ही से सारी गणित विद्या आज्ञाती

हमारी समझ में तो जो लोग बी. ए. और एम. ए. तक पचासों पुस्तक गणित विद्या की पढ़ते हैं और फिर भी यह कहते हैं कि गणित विद्यामें हमने अभी कुछ नहीं सीखा उनकी बड़ी भूल है उनकी उपरोक्त यह तीनचार वेदों के मंत्र सुननेने चाहिये इस इतिहास में गणितविद्या आज्ञावैगी और परिपूर्ण हो जावेंगे इसी प्रकार जो विद्यार्थी स्कूल में अंक गणित ( Arithmetic ) बीज गणित अर्थात् जबर मुकाबला ( Algebra ) और रेखागणित अर्थात् यूक्लिडस ( Euclid ) पर रात दिन वर्षों टकुर मारते हैं उनकी गायद यह खबर नहीं होगी कि वेदोंके तीन चार ही मंत्रोंके सुननेसे सारी गणित विद्या आज्ञावै तो वेणक यह महान् परिश्रम से बचजाव-और इन मंत्रोंका देखकर वेणक सबको निश्चय और प्रदान करनेना चाहिये कि सर्व विज्ञान और सर्व विद्या वेदों ही में है और वेदों ही से अन्य देशों में गई है-मनुष्यने अपनी बुद्धि विचारसे कुछ नहीं किया है-धन्य है ऐसे वेदको जिसमें इस प्रकार संसारका सर्व विज्ञान भरा हुआ है! और धन्य है स्वामीजीको जिन्होंने ने ऐसे वेदोंका प्रकाश किया।

क्यों स्वामीजी! यद्यपि लोगोंने चांद सूर्य और तारागणकी विद्या की अर्थात् गणित ज्योतिषकी बड़ा बिस्तार दे रक्खा है और इनकी चाल जाननेकी

बाधत बड़े २ महान् हजारों ग्रन्थ रचदिये हैं जिनके द्वारा प्रतिवर्ष पंचांग अर्थात् जंत्री बनाते हैं कि अमुक दिन अमुक तारा निकलेगा और अमुक दिन अस्त होगा और अमुक दिन अमुक समय चांद सूर्यका ग्रहण होगा और इतना प्रयोग। परन्तु आप तो यह ही कहेंगे कि जब वेदोंमें चांद और सूर्यकालाम आगया तो सर्व ज्योतिष विद्या वेदों में गर्भित होगई और वेदों हीसे सर्व संसार में इस विद्याका प्रकाश हुआ। धन्य है हजार बार धन्य है ऐसे वेदों को और स्वामी दयानन्दजी को।

क्यों स्वामीजी संसारमें हजारों और लाखों ओषधि हैं और इन ओषधियों के गुण के विचार पर अनेक महान् पुस्तकें रची हुई हैं और रांग भी हजारों प्रकारके हैं और उनके निदानके हेतु भी अनेक पुस्तकें हैं परन्तु यह विद्या भी तो वेदोंमें ही निकली होगी यद्यपि वेदोंमें किसी ओषधिका नाम और उसका गुण और एक भी बीमारी का नाम और उसका निदान वर्णन नहीं किया गया है परन्तु क्यों स्वामीजी कहना तो यह ही चाहिये कि ओषधि विद्या जितनी संसार में है वह सबवेदों में मौजूद है और ऐसा कहने के वास्ते हेतु भी तो प्रबल है जिसका कुछ जवाब ही नहीं हो सक्ता है अर्थात् जिस प्रकार वेदों में एक और एक दो लिखा हुआ मिलाने से सर्व गणित विद्या वेदों में मिली हुई है इसी प्रकार वेदों

में सोम पदार्थका नाम आने से जिस का अर्थ स्वामी जीने किसी किसी स्थान में औषधियोंका समूह किया है सर्वही औषधियोंका वर्णन वेदोंमें सिद्ध होगया और यह भी सिद्ध होगया कि औषधि की सब विद्या वेदोंसे ही सर्व संसार में फैली है ?

इसही प्रकार यद्यपि अन्य अनेक विद्याओं का नाम भी वेदों में नहीं है जो संसार में प्रचलित हैं परन्तु वेदों में ऐसा शब्द तो आया है कि सर्व विद्या पढ़ो या सीखो फिर कौन सी विद्या रह गई जो वेदोंमें नहीं है और कौन कहसक्ता है कि वेदों की शिक्षाके बिना कोई विद्या किसी मनुष्यने अपनी विचार बुद्धिसे पैदा करली ? इस प्रबल युक्ति से तो हम भी कायल हो गये—

आर्य भाइयो ! हिन्दुस्तान में अनेक देवी देवता पूजे जाते हैं जिन की बाबत स्वामी जी ने लिखा है और आप भी कहते हैं कि इसमें अविद्या अंधकार होजानेके कारण मूर्ख लोगों को जिसने जिस प्रकार चाहा वह-का लिया और पेटार्थ लोगों ने देवी देवता स्थापन करके और उनमें अनेक शक्तियां वर्णन करके जगतके मनुष्यों को अपने काख में करलिया । एक तो वह लोग मूर्ख जो इस प्रकार वह-काये में आये और दूसरे यदि कोई देवी देवता की शक्तिकी परीक्षा करना चाहै तो पूजारियों को यह कहने का मौका कि यह देवी देवता उसही

का मनोरथ सिद्ध करते हैं जो सबसे अद्भुत से इनकी भक्ति और पूजाकरै तुम्हारी अद्भुत में कुछ फरक रहा होगा जिससे कार्य सिद्ध नहीं हुआ । परन्तु हे आर्य भाइयो तुम बिद्यावान और लिखे पढ़े होकर किस प्रकार इन स्वामी जी के अर्थके किये हुये वेदों पर अद्भुत ले आये और यह कहने लगे कि संसारकी सब विद्या वेदों हीमें भरी है तुम्हारी परीक्षाके वास्ते तो कोई देवी देवता नहीं हैं जिसकी परीक्षाके लिये प्रथम ही अद्भुत लानेकी अवश्यता हो वरण तुमको तो वेदों अर्थात् पुस्तकके मज़मून की परीक्षा करनी है जिसकी परीक्षा के वास्ते सहज उपाय उस पुस्तकका पढ़ना और उस पर विचार करना है फिर तुम क्यों परीक्षा नहीं करते हो जिसमें वेदोंकी विस्तृत बतुकी प्रशंसा जैसी अब कर रहे हो न करनी पड़। वेदों में क्या विषय है ? यह तो हम आगे चनकर दिखावगे परन्तु यदि आप जरा भी परीक्षा करना चाहते हैं तो हम वेदोंके बनाने वालेका ज्ञान आपको दिखाते हैं:—

ऋग्वेदके पांचवें मंडलके सूक्त ४५ की सातवीं ऋचाके अर्थमें स्वामी जी ने इस प्रकार लिखा है:—

“जिस में इस संसारमें नवीन गमन वाले दश चैत्र आदि महीने वर्तमान हैं” फिर इसही सूक्त का ११ वीं ऋचाके अर्थ में आप लिखते हैं:—

“हे मनुष्यो जिससे नवीन गमनवाले

दश महीने पार होते हैं इस बुद्धि से हम लोग विद्वानों के रक्षक होवें और इस बुद्धिसे पाप वा पापसे उत्पन्न दुःख का अत्यन्त विनाश करें आपकी दुःख का विभाग करता है जिससे उस बुद्धि को प्राणों में मैं धारण करूँ”

इसके पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वेदका बनाने वाला और विशेष कर इस सूक्त का बनाने वाला वर्षके दस ही महीने जानता था—इसको पढ़ कर तो हमारे आयां भाई बहुत चौंके गे और वंदोंको पढ़कर देखना अवश्य जरूरी समझेंगे—हम आगे चलकर वेदों से ही साफ तौर पर यह सिद्ध कर देंगे कि वे ऐसे ही अविद्या अधकारके समय में बने हैं और उनमें खेती करने वाले और गांव के गंवारोंके सामूली गीतके सिवाय और कुछ भी नहीं है। इस समय तो हमको केवल यह दिखाना है कि वेद ईश्वर वाक्य हो सकते हैं वा नहीं।

## आर्य मत लीला ।

( ३ )

स्वातृगण हो ! अविद्या अधकार के कारण आजकल इस भारतवर्षमें अनेक ऐसी प्रवृत्ति हो रही हैं जिनसे भोले मनुष्य ठगे जाकर बहुत दुःख उठाते हैं दृष्टान्त रूप विचारिये कि भंगी, चमार, कहार और जुलाहा आदिक छोटी जातियोंमें कोई २ स्त्री पुरुष ऐसा कह दिया करते हैं कि हमको किसी देवी वा देवताका इष्ट है, वह हम पर प्रसन्न है, और हम उसके भक्त हैं इस

कारण जब हम उस देवी देवता का ध्यान करते हैं तो वह हमको जो पूछने हैं, सो बना देता है—वा कोई २ ऐसा कह देते हैं कि देवी वा देवता हमारे सिर आता है और उस समय जो कोई कुछ पूछे तो वह ठीक २ बतता देता है—भारतवर्ष के मूर्ख और भोले मनुष्य और विशेष कर कुपट स्त्रियें ऐसे लोगोंके वहकाये में आ जाती हैं और अपने बच्चों के रोगका कारण वा अपने और कुटुम्बियों के किसी कष्ट का हेतु और उनका उपाय पूछने हैं जिसको पूछा लेना कहते हैं और बहुत कुछ भेंट देते हैं और सेवा करते हैं और वह भंगी आदिक देवी देवताके भक्त अटकलपट्ट मन घड़न्त बातें बताकर उनको खूब ठगते हैं—

दुनियाके लोग जो उनसे पूछा पूछने के वास्ते जाते हैं जानते हैं कि यह भक्त लोग साधारण और छोटे मनुष्यों में हैं और अपने नित्यके व्यवहार में ऐसे ही मूर्ख हैं जैसे इनके अन्य भाई बन्धु और आचरण भी इन के ऐसे ही हैं जैसे इनके अन्य भाई वन्दोंके, परन्तु उन पर अट्टा रखने वाले लोग कहते हैं कि हम को इनकी बुद्धि और आचरणकी जांच तो तब करनी होती जब यह भक्त लोग यह कहते कि हमको इतना ज्ञान हो गया है कि गुप्त बात बनाव सकें—पर यह तो ऐसा नहीं कहते हैं वह तो यह ही कहते हैं कि हम को तो कुछ भी ज्ञान

नहीं है, जो कुछ गुप्त बातें हम बताते हैं वह तो हमारे इष्टदेवी देवताका ज्ञान है अर्थात् वह देवी देवता इन अपने भक्तों के द्वारा गुप्त बातें बता देता है—इस हेतु चाहे यह भक्त लोग इस से भी अधिक मूर्ख हों यहां तक कि चाहे वह पागल और जंगली पशुओं के समान अज्ञान हों तो भी हम को क्या ? वह गुप्त शक्ति अर्थात् देवी देवता जो इनके द्वारा हमारी गुप्त बात बताते हैं उन को तो तीन काल का ज्ञान है—यह भक्त लोग तो हमसे वार्तालाप होनेके वास्ते एक निमित्त मात्र के समान हैं—इस कारण हम को इन भक्तोंकी किसी प्रकार की परीक्षा लेने की आवश्यकता नहीं है—चाहे यह कैसे ही पापी और अधम हों और चाहे कैसे ही मूर्ख हों इससे हमारे प्रयोजन में कुछ फरक नहीं आता है—

प्यारे भाइयो ! यह सब अधकार जो भारतमें फैला हुआ है जिसके कारण हमारे भोले भाई और भोली बहनें ठगी जाती हैं और जिमसे अनेक उपद्रव पैदा होते हैं—जिसके कारण बच्चोंके रोंगोंकी औपधि नहीं होती है, योग्य वैद्यों और हकीमोंसे उनका इलाज नहीं होता है, जिम के कारण अनेक बच्चे मृत्यु को प्राप्त होते हैं—जिम के कारण भक्तों की शताईं हुई बातोंसे घरोंमें भारी कलह और बड़े बड़े द्वेष फैल जाते हैं—जिम के कारण उच्च कुलकी स्त्रियों को बड़े बड़े नीच

और अधम कार्य करने पड़ते हैं उस का हेतु एक यह ही है कि भारत के लोगोंके चित्तमें यह अट्टान घुसा हुआ है कि भूत भविष्य और वर्तमानका ज्ञान रखने वाली शक्ति किसी मनुष्य के द्वारा अपना ज्ञान किसी विषय में प्रकट कर सकती है। यदि यह अट्टान हमारे भाइयों के हृदयमेंसे हट जावे तो भारतवर्ष में से यह सब अधकार मिट जावे और इन भक्तों की कुछ भी पूछ न रहे। क्योंकि फिर जो कोई गुप्त बातें बताने का दावा करे वह अपने ही ज्ञानके आश्रय पर करे और किसी गुप्त शक्ति के आश्रय पर कोई बात न हो सके और जब कोई यह कहे कि मुझको इतना ज्ञान हो गया है कि मैं गुप्त बात बता सकूँ तो उसकी परीक्षा बहुत आसानी से हो सके क्योंकि अपने नित्यके व्यवहारमें भी उस को अपने आपको इतना ही ज्ञानवान दिखाना पड़े कि जिमसे उसका तीन काल की बातका जानना सिद्ध होता हो अर्थात् फिर धोका न चल सके।

प्यारे भाइयो ! सच पूछिये तो इस सिद्धान्त ने कि तीन काल की बात जानने वाली गुप्त शक्ति अपने ज्ञानको किसी मनुष्यके द्वारा प्रकट कर सकती है, केवल यही अधिकार नहीं फैलाया है बरण संसार के सैकड़ों जितने मत मतान्तर फैले हैं वह सब इस ही सिद्धान्त के सहारे फैले हैं, क्योंकि जब जब कोई किसी नवीन मत का स्थापन क-

रने वाला हुआ है उसने यही कहा है कि मैं अपने ज्ञान से कुछ नहीं कहता हूँ वरण मुझको यह सब शिक्षा जिस कामें उपदेश करता हूँ परमेश्वरसे प्राप्त हुई है ।

मुसलमानी मतके स्थापन करनेवाले मुहम्मद साहब की निश्चित कहा जाता है कि वह बिना पढ़े लिख साधारण बुद्धिके आदमी थे परन्तु उनके पास परमेश्वरका दूत परमेश्वरके वाक्य लाता था जिसका संग्रह होकर कुरान बना है--परमेश्वर के इन ही वाक्योंका उपदेश मुहम्मद साहब अरब के लोगोंको दिया करते थे--इसामाही और इनसे पहले जो पैगम्बर हुये हैं उनके पास भी परमेश्वर की ही आज्ञा आया करती थी इस ही प्रकार अन्य मत मतान्तरों का हाल है--हाल में भी पंजाबदेश के कादियान नगरमें एक मुसलमान महाशय मौजूद हैं जिनके पास परमेश्वरकी आज्ञा आती है और इस ही कारण भारत वर्षके हजारों हिन्दू मुसलमान उन पर श्रद्धा रखते हैं--

प्यारे आर्य भाइयो ! उपर्युक्त लेखसे आपका पूर्णतया विदित हो गया कि यह सिद्धान्त कि तीन काल का ज्ञान रखने वाली शक्ति अपना ज्ञान किसी मनुष्यके द्वारा प्रकट कर सकती है, केसा भयंकर और अंधकार फैलाने वाला है और इसके कारण अनेक मत मतान्तर फैलानेसे संसारमें केसा उपद्रव मचा है ! परन्तु कृपाकर विचार कीजिये कि

यह सिद्धान्त पैदा कहाँसे हुआ ! इस प्रश्नके उत्तरमें प्यारे भाइयो आपको यह ही कहना पड़ेगा कि वेदोंसे क्योंकि मख मत मतान्तरोंके स्थापित होनेसे पहले वेदों ही का प्रकाश होना बयान किया जाता है और वेदोंकी ही उत्पत्तिमें यह सिद्धान्त स्थापित किया जाता है कि परमेश्वरने सृष्टिकी आदि में हजारों मनुष्यों को बिना मा खाप के पैदा करनेके पश्चात् उनमेंसे चार मनुष्योंका जिनका नाम अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा था एक एक वेद का ज्ञान दिया और उन्होंने उस ईश्वरके ज्ञान को मनुष्यों पर प्रकट कर दिया--प्यारे भाइयो ! आप जैसे बुद्धिमानोंको जो भारतवर्षका अंधकार दूर करना चाहते हैं ऐसा सिद्धान्त मानना योग्य नहीं है वरन आपको इसका निषेध करना चाहिये जिससे इस देशके बहुत उपद्रव दूर हो जावें--

इस स्थान पर हम बड़े गौरवके साथ यह प्रकट करते हैं कि यह केवलमात्र जैनमत के ही तीर्थंकर हुए हैं जिन्होंने इस सिद्धान्तका आश्रय नहीं लिया है जिन्होंने तप और ध्यान के बलसे अपनी अत्मासे मोह आदिक मैल को धोकर आत्माकी निज शक्ति अर्थात् पूर्णज्ञानको प्राप्त किया है और अपनेकेवल ज्ञानके द्वारा चराचर सर्व वस्तुओंको पूर्णरूप जानकर अपनी ही सर्वज्ञताका नाम लेकर सत्यधर्मका प्रकाश किया है--और किसी दूसरेके ज्ञानका आश्रय



नहीं बताया है--अर्थात् उन्होंने मनुष्योंको सीका दिया है कि वह उनकी सर्वज्ञताकी सर्व प्रकार परीक्षा करलेवें और तब उनके उपदेश पर श्रद्धा लावें अन्य मत स्थापन करने वालोंकी तरफसे उन्होंने यह नहीं कहा कि मैं जो कुछ कहता हूँ वह ईश्वरके वाक्य हैं मैं स्वयम् कुछ नहीं जानता हूँ इग कारण इन ईश्वर वाक्योंके सिवाय मेरी अन्य बातोंकी परीक्षा मत करो क्योंकि मैं तुम्हारे ही जैसा साधारण मनुष्य हूँ--

भाइयो ! जैनधर्म में जो तत्त्वार्थ वर्णन किया गया है वह हम ही कारण वस्तु स्वभावके अनुकूल है कि वह सर्वज्ञ का कहा हुआ है--आत्मीक ज्ञान, कर्मोंके ज्ञान, कर्मों के भेद, उन की उत्पत्ति विनाश और फल देनेकी कला-सफी अर्थात् सिद्धान्त इस ही हेतु जैन धर्ममें बड़े भारी विस्तार के साथ मिलता है कि यह ज्ञान सर्वज्ञको ही हो सकता है न कि गुप्त शक्तिके ज्ञान पर आश्रय करने वालीकी--

हे प्यारे आर्य भाइयो ! यह भयंकर और अन्धकार फैलाने वाला सिद्धान्त कि, कोई ज्ञानवान गुप्तशक्ति अपना ज्ञान किसी मनुष्यके द्वारा प्रकाश कर सकती है, यदि आपको मानना भी था तो किसी कार्यकारी वातके ऊपर माना होता परन्तु वेदोंको ईश्वरके वाक्य सिद्ध करनेके वास्ते ऐसे सिद्धान्तका स्थापित करना तो ईश्वरकी निन्दा करना है क्योंकि वेद तो गीतोंका संग्रह हैं वह शिक्षाकी पुस्तक कदाचित् नहीं

हो सकती है । कृपाकर आप इस सिद्धान्त को स्थापित करनेसे पहले स्वामी जीके अर्थ किये हुये वेदों को पढ़ तो लेवें और उन की जरा जांच तो कर लेवें कि ऐसे गीत ईश्वर वाक्य हो भी सकते हैं या नहीं--प्यारे भाइयो ! जब आप जरा भी वेदोंको देखेंगे तो आप को मालूम हो जावेगा कि वेदोंमें साधारण सांगारिक मनुष्यों के गीतों के सिवाय और कुछ भी नहीं है वेदोंमें धार्मिक और सिद्धान्तका कथन तो क्या मिलेगा उनमें तो साधारण ऐसी भी शिक्षा नहीं मिलती है जैसी मनुस्मृति आदिक पुस्तकोंमें मिलती है देखिय क्या निम्न लिखित वाक्य ईश्वरके हो सकते हैं ? ॥

ऋग्वेद मंडल सातवां सूक्त २४ ऋचा २

“ हे परमेश्वर्यके देनेवाले जो नाना प्रकारकी विद्या युक्त वाणी और सुन्दर घालढाल जिसकी ऐसी यह प्रिया स्त्री परमेश्वर्य देनेवाले पुरुषको निरन्तर बुलाती है उसको धारण करती है जिसने तेरा मन ग्रहण किया तथा जो दो से अर्थात् विद्या और पुरुषार्थसे बढ़ता वह उत्पन्न किया हुआ ( सोम ) औषधियोंका रस है [ सोमकी वायत्त हम आगे सिद्ध करेंगे कि यह भंग आदिक नशोंकी कोई वस्तु होती थी जिसके पीनेका उपदेश वेदोंमें बहुत मिलता है ] और जहाँ सब ओरसे सींचे हुये दाख वा शहत आदि पदार्थ हैं उन्हें सेवो--”

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३२ ऋचा ६-८

“ हे मोटी २ जंचाओं वाली जो अ-

तिप्रेमसे विद्वानों की बहन है सो तू मैंने जो सब ओरसे होमा है उस देने योग्य द्रव्यको प्रीतिसे सेवन कर—”

“ हे पुरुषो जैसे मैं जा गुङ्ग मुङ्ग बोले वा जो प्रमास्पदको प्राप्त हुई जो पौर्णमासीके समान वर्तमान अर्थात् जैसे चन्द्रमाकी पूर्णकान्तिसे युक्त पौर्णमासी होती है वैसी पूर्ण कान्तिमती और जो विद्या तथा सुन्दर शिक्षा सहित वाणीसे युक्त वर्तमान है उस परमेश्वर्य युक्तकी रत्ना आदिके लिये बुलाता हूँ उस श्रेष्ठकी स्त्रीकी सुखके लिये बुलाता हूँ वैसे तुम भी अपनी २ स्त्रीकी बुलाओ—”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२३ ऋचा १०-१३  
“ हे कामना करने वाली कुमारी जो तू शरीर से कन्या के समान वर्तमान व्यवहारोंमें अति तेजी दिखाती हुई अत्यंत संग करते हुए विद्वान् पति को प्राप्त होती और सन्मुख अनेक प्रकार सद्गुणोंसे प्रकाशमान जवानीको प्राप्त हुई मन्द मन्द हंसती हुई छाती आदि अंगोंको प्रसिद्ध करती है सो तू प्रभात बेलाकी उपमाको प्राप्त होती है—”

“ हे प्रातः समय की बेला सी अलवेली स्त्री तू आज जैसे जलकी किरण को प्रभात समयकी बेला स्वीकार करती वैसे मनसे प्यारे पतिको अनुकूलतासे प्राप्त हुई हम लोगोंमें अच्छी २ बुद्धि व अच्छे अच्छे कामको धर और उत्तम सुख देने वाली होती हुई हम लोगों की ठहरा जिससे प्रशंसित धन

वाले हम लोगों में शोभा भी हो—”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७९ ऋचा ४

“ इधर से वा उत्तर से वा कहीं से सब ओर से प्रसिद्ध वीर्य रोकने वा अव्यक्त शब्द करने वाले वृषभ आदि का काम मुझ को प्राप्त होता है अर्थात् उनके सदृश काम देव उत्पन्न होता है और धीरज से रहित वा लोप हो जाना लुकि जाना ही प्रतीत का चिन्ह है जिसका सो यह स्त्री वीर्यवान् धीरज युक्त स्त्रियों लेते हुए अर्थात् शयनादि दशा में निमग्न पुरुषको निरन्तर प्राप्त हांती और उससे गमन भी करती है—”

प्यारे पाठको ! वेदों में कोई कथा नहीं है किसी एक स्त्री वा पुरुष का वर्णन नहीं है वरण अनेक पृथक् पृथक् गीत हैं तब किसी विशेष स्त्रीका कथन क्यों आया कथारूप पुस्तकों में तो इस प्रकार के कथन आने सम्भव हैं परन्तु ऐसी पुस्तकमें जिसकी वास्तव यह कहा जाता है कि उस पुस्तक को ईश्वर ने सर्व मनुष्यों को ज्ञान और शिक्षा देने के वास्ते बनाया ऐसा अध्ययन आना असम्भव ही है—यदि हमारे भाई वेदों को पढ़कर इस प्रकार के कथनों की संगति मिला कर दिखा दें तब वे शक हमारा यह ऐतराज हट जावें नहीं तो स्पष्ट विदित है कि जिस बात पर कविताई करते समय कवियोंका ध्यान गया उस ही बात का गीत जोड़ दिया इस प्रकार वेदों के गीतों में कवियों ने अनेक कविताई की है। कविताओं के धनुषकी तारीफमें इस प्रकार गीत हैं—

ऋग्वेद कटा मंडल सूक्त ७५ ऋचा ३  
 “हे शूरवीर जो यह प्रत्यक्षा अर्थात् धनुष की तांति जैसे विदुषां ( विद्वान् स्त्री ) कहने वाली होती वेने अपने प्यारे मित्र के समान वर्तमान पतिको सब ओर से संग किये हुए पत्नी स्त्री कामको निरंतर प्राप्त होती है वैसे धनुष के ऊपर बिस्तारी हुई तांति संग्राम में पार को पहुंचाती हुई गूँजती है उसहीका तुम यथावत् जानकर उसका प्रयोग करो— ऋचा ५

हे मनुष्यो बहुत बाणों की पालना करने वाले के समान इसके बहुत पुत्रके समान बाण संग्रामों को प्राप्त होकर धनुष चींचीं शब्द करता है तथा पीठ पर नित्य बंधा और उत्पन्न होता हुआ ममस्त संग्रामस्थ वैरियोंकी टोनी और सेनाओंकी जीतता है वह तुम लंगों को यथावत् बनाकर धारण करना चाहिये—”

प्रभात वेला अर्थात् सुबहके समयकी प्रशंमामें वेदोंके कवियों ने इस प्रकार गीत बनाये हैं—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२४ ऋचा ७-९

“ यह प्रातः समय की वेला प्रत्येक स्थान को पहुंचती हुई बिन भाई की कन्या जैसे पुरुषको प्राप्त हो उसके समान वा जैसे दुःखरूपी गढ़में पड़ा हुआ जन धन आदि पदार्थों के विभाग करने के लिये राजगृह को प्राप्त हो वैसे सब ऊँचे नीचे पदार्थोंको पहुंचती तथा अपने पतिके लिये कामना करती हुई और सुन्दर बख्ती वाली विवाहिता स्त्री

के समान पदार्थोंका सेवन करती और हमती हुई स्त्री के तुल्य रूप का निरन्तर प्राप्त होती है ।

“ जैसे इन प्रथम उत्पन्न जेठी बहिनियों में अन्य कोई पीछे उत्पन्न हुई छोटी बहिन किन्हीं दिनों में अपनी जेठी बहिन के आगे जावे और पीछे अपने घर को चली जावे वैसे जिन से अच्छे अच्छे दिन होते वं प्रातः समय की वेला हम लोगोंके लिये निश्चय युक्त जिसमें पुरानी धन की धरोहर है उस प्रशंसित पदार्थ युक्त धनको प्रतिदिन अत्यन्त नवीन होती हुई प्रकाश का करें ये अन्धकारको निराला करें—”

पवनकी प्रशंसा में कविनाई

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६८ ऋचा ८  
 “ हे विद्वानों जब पवन मेघोंमें हुई गर्जना रूपवाणीको प्रेरणा देते अर्थात् बहलों को गर्जाते हैं तब नदियां वज्र तुल्य किरणों से अर्थात् बिजुलीकी लपट भपटोंसे क्षोभित होती हैं और जब पवन मेघोंके जन दृष्टीते हैं तब बिजुलियां भूमि पर मुसुकिती सी जान पड़ती हैं वैसे तुम होओ । ”

प्रिय पाठको ! हम इस समय इस बातकी बहम नहीं करते हैं कि वेदों में क्या २ विषय और क्या क्या मजमून हैं इस को हम आगामी लेख में प्रकट करेंगे इस समय तो हम केवल इतना कहना चाहते हैं कि यदि परमेश्वर उन पुरुषोंको जो बिना मा बापके जंगल वयावान में उत्पन्न हुये थे, जो

किसी प्रकार की भी भाषा नहीं जान ले वे कुछ ज्ञान वा शिक्षा देता तो क्या कविताई में शिक्षा देता और कविताई की सिलसिले बार नहीं बरन पृथक् २ गीतों में, और गीत भी एक एक ही विषय के सैकड़ों और गीतोंका भी सिलसिला नहीं कि एक बातकी शिक्षा देकर उस बात के उपरान्त जो दूसरी बात सिखाने योग्य हो दूसरा गीत उस दूसरी बातका हो वरन वेदों में तो स्वामीजी के अर्थोंके अनुसार यह गीत ऐसे बिना सिलसिले के हैं कि यदि एक गीत अग्नि की प्रशंसा में है तो दूसरा जमी के विषय में और तीसरा राजाकी स्तुति में और चौथा वायुकी प्रशंसा में और पांचवां संग्राम करने और शत्रुओंसे बैरीको मारने काटनेके विषय में और छठा सोम पीने के उपदेश में और फिर राजा की स्तुति में और फिर अग्नि की प्रशंसा में और फिर सोमपान के विषय में और फिर वायु की प्रशंसा में गरज इसही प्रकार हजारों गीतोंका वेतुका मिलमिला चला गया है और जिस विषय का जो गीत मिलता है उसमें बहुधा कर वह ही बात होती है जो उस विषयके पहले गीतों में थी यहां तक कि एक विषय के बहुत से गीतों में एक ही दृष्टान्त और एक ही प्रकार के शब्द मिलते हैं—हमको शोक है तो यह है कि हमारे आर्षा भाई वेदोंको पढ़कर नहीं देखते हैं वरन वेदोंके नामसे ही

तृप्त हो जाते हैं और उनको ईश्वर वा ऋष कहते हैं—यदि वह वेदोंको पढ़ें तो अवश्य उनको ज्ञान प्राप्त हो और अवश्य उनके हृदय का यह अंधकार दूर हो ।

## ॥ आर्यमत लीला ॥

( ४ )

वेदोंके प्रत्येक गीतको सूक्त कहते हैं और इन गीतोंकी प्रत्येक कलीको ऋचा कहते हैं—स्वामीजीके अर्थके अनुसार वेदोंका सज्जमून इतना असंगत है कि प्रत्येक सूक्त अर्थात् गीतके सज्जमूनका ही सिलसिला मिलता हुआ नहीं है वरन एक सूक्तकी ऋचाओंका भी सज्जमून सिलसिलेवार नहीं मिलता है अर्थात् एक ऋचा एक विषयकी है तो दूसरी ऋचा बिल्कुल दूसरे विषय की, फारसी व उर्दू में जो कवि लोग गजल बनाया करते हैं उन गजलोंमें तो बेशक यह देखने में आता है कि कवि को इस बातका ध्यान नहीं होता है कि एक गजल की सब ज़ेरें एक ही विषय की हों वरन उसका ध्यान इस ही बात पर होता है कि एक गजल की सब ज़ेरोंकी एकही तुक हो अर्थात् रदीफ़ और काफ़िया एक हो परन्तु संस्कृत और हिन्दीकी कविताईमें ऐसी बात देखने में नहीं आई—वह बात स्वामी जी के अर्थ किये हुये वेदों ही में मिलती है कि एक ही राग अर्थात् एक ही सूक्तकी प्रत्येक ऋचा अर्थात् कली का एक दूसरेसे बिलसक ही विषय है॥

हमारे आर्या भाइयोंका यह अद्वान है कि वेदोंमें मुक्ति आदिक धर्मके विषय तो अवश्य कथन किये होंगे। यद्यपि वेदोंमें ऐसा कथन तो वास्तव में नहीं है परन्तु हमने ढूँढढाँड कर एक सूक्त की ऐसी ऋचा तलाश की है जिसमें मुक्ति शब्द की, अर्थ लिखते हुये जिस तिस प्रकार लिख ही दिया है उसका अर्थ स्पष्ट खुलनेके वास्ते हम वेदोंके शब्दों सहित उसकी स्वामीजीके वेदभाष्यसे लिखते हैं—  
ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४० ऋचा ५

“( यत् ) जो ( कृष्णम् ) काले वर्ण के ( अभवम् ) न होने वाले ( महि ) बड़े ( वर्णः ) रूप की ( ध्वसयन्तः ) बिनाश करते हुए से ( करिक्तः ) अत्यंत कार्य करने वाले जन ( वृथा ) मिथ्या ( प्रेरते ) प्रेरणा करते हैं ( ते ) वे ( अस्य ) इस मोक्ष की प्राप्ति को नहीं योग्य हैं जो ( महीम् ) बड़ी (अवनिम्) पृथिवी की ( अभि, मर्मशत ) सब ओर से अत्यन्त सहता ( अभिश्चसन् ) सब ओर से श्राव लेता ( नानदत् ) अत्यंत बोलता और ( स्तनयन् ) बिजुली के समान गर्जना करता हुआ अच्छे गुणों की ( सीम् ) सब ओर से ( एति ) प्राप्त होता है ( आत् ) इसके अनन्तर वह मुक्ति को प्राप्त होता है—”

वाह वाह क्या बिलक्षण सिद्धान्त स्वामी जी ने वेदों में दिखाया है कि जो मनुष्य काले रंगका है उसकी मुक्ति नहीं हो सकती है और जो बहुत बोलता और गरजता है उसकी मुक्ति हो

जाती है—मारे वेद में ढूँढ ढाँडकर एक तो ऋचा मिली पर उस में भी अनोखाही मुक्तिका स्वरूप स्थापित किया गया परन्तु इस समय इस लेख में तो हमको यह नहीं दिखाना है कि मुक्ति का स्वरूप क्या होना चाहिये था वरना इस समय तो यह कथन आरहा है कि वेदों की एक सूक्तकी प्रत्येक ऋचा का भी विषय नहीं मिलता है वरना एकही सूक्त की एक ऋचा में कुछ है और दूसरी में कुछ और इस ही सूक्त की छठी ऋचा की स्वामी जी के अर्थ के अनुसार देखिये वह इस प्रकार है:-

“जो अलंकृत करता हुआ साधर्म की धारणा करने वालियोंमें अधिक नाम होता वा यज्ञ संबंध करने वाली स्त्रियों को अत्यन्त आत पीत कह सुनाता वा वैरा के समान बलकी और दुख से पकड़ने योग्य भयंकर सिंह सींगों की जैसे जैसे बलके समान आचरण करता हुआ शरीर की भी सुन्दर शोभायमान करता वा निरन्तर चलाता अर्थात् उनसे घेरा करता वह अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है—”

इस ही सूक्त नं० १४० की सातवीं ऋचा के अर्थ को देखिये वह इस प्रकार है:-

“हे मनुष्यो जैसे वह अच्छा ढांपने वा सुख फैलाने वाला विद्वान् सुन्दरता से अच्छे पदार्थों का ग्रहण करता जैसे जानता हुआ नित्य में ज्ञानवती उत्तम स्त्रियों के ही पास सोता हूँ। जो माता

पिता के और विद्वानों में प्रसिद्ध रूप को निश्चयसे प्राप्त होते हैं वे बार बार बढ़ते हैं और उत्तम उत्तम कार्यों को भी करते हैं वैसे तुम भी मिला हुआ काम किया करो—

प्यारे भाइयो ! विचार कीजिये कि इस सूक्त अर्थात् गीत को उपर्युक्त पांचवीं छठी और सातवीं ऋचा अर्थात् कली का विषय मिलता है वा नहीं ? बुद्धिमानो ! यदि आप स्वामी जी के अर्थों के अनुसार वेदको पढ़ेंगे तो आप को विदित हो जावेगा कि इस उपर्युक्त ऋचाओं का विषय तो शायद कुछ मिलता भी है परन्तु ऐसे सूक्त अहुत हैं जिन की ऋचाओं का विषय बिल्कुल नहीं मिलता है—इस कारण वेद कदाचित् ईश्वर वाक्य नहीं हो सकते हैं—

वेदों के पढ़नेमें यह भी प्रतीत होता है कि वेदोंके प्रत्येक सूक्त अर्थात् गीत अलग अलग मनुष्यों के बनाये हुये हैं। यदि एक ही मनुष्य इन गीतों को बनाता तो एक एक विषय के सँकड़ों गीत न बनाता और वेदों का कथन भी सिलसिलेवार होता—स्वामी जी के लेख से भी जो उन्होंने ने सत्यार्थप्रकाशमें दिया है यह विदित होता है कि वेदका प्रत्येक गीत पृथक् पृथक् ऋषिके नामसे प्रसिद्ध है—और प्रत्येक मंत्र अर्थात् गीतके साथ उस गीतके बनाने वाले का नाम भी लिखा चला आता है इस विषय में स्वामी जी सत्यार्थ

प्रकाशके सातवें समुल्लासमें इस प्रकार लिखते हैं:—

“जिस मंत्रार्थ का दर्शन जिस जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मंत्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था किया और दूसरों को पढ़ाया भी इस लिये अद्यावधि उस उस मंत्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है जो कोई ऋषियों को मंत्र कर्ता बतलावे उनको मिथ्यावादी समझें वे तो मंत्रों के अर्थ प्रकाशक हैं—”

हम का शोक है कि इस लेख का लिखते समय स्वामी जी को पूर्वापर का कुछ भी ध्यान न रहा यह बात भूज गये कि हम क्या सिद्ध करना चाहते हैं ? स्वामी जी आप ही तो यह कहते हैं कि वेदों को ईश्वर ने सृष्टिकी आदि में उन मनुष्योंके ज्ञान के वास्ते प्रकाश किया जो सृष्टि की आदिमें बिना मा बाप के जंगल बयाबान में पैदा किये गये थे और जो किसी बात का भी ज्ञान नहीं रखते थे—क्या ऐसे मनुष्यों की शिक्षा के वास्ते ईश्वर ने ऐसा कठिन वेद दिया जिस का अर्थ सब लोग नहीं समझ सकते थे ? बरण वह यहाँ तक कठिन थे कि उस वेदके एक एक मंत्र का अर्थ समझने के वास्ते कोई कोई ऋषि पैदा होता रहा और जिस किसी ऋषि ने एक मंत्र का अर्थ भी प्रकाश कर दिया वह वेद का मंत्र उस ही ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हो गया स्वामी जी का यह कथन वेदों के

मानने वाले पुरुषों को कदाचित् भी माननीय नहीं हो सकता है क्योंकि इस से वेदों का सृष्टि की आदि में उत्पन्न होना खंडित होता है इस कारण यह प्राचीन लेख ही सत्य है कि वेदके प्रत्येक मंत्र अर्थात् गीतकी प्रत्येक ऋषि ने बनाया है और इन सब गीतोंका संग्रह होकर वेद बन गया है इन ऋषियों की यदि हम धार्मिक ऋषि न कहें वरण कवि कहें तो कुछ अनुचित नहीं है क्योंकि कवि लोग साधारण मनुष्यों से अधिक बुद्धिमान् समझे जाया करते हैं आज कल भी जो लोग स्वांग बनाने की कविता करते हैं वह उस्ताद कहलाये जाते हैं और स्वांग बनाने वालों के चेले स्वांग बनाने वाले उस्तादोंकी बहुत प्रशंसा किया करते हैं-

हे आर्य भाइयो ! स्वामी जी ने यह तो कह दिया कि ईश्वरने मनुष्योंको सृष्टि की आदिमें वेदोंके द्वारा ज्ञानदिया परन्तु यह न बताया कि वेदोंकी भाषा समझनेके वास्ते उन मनुष्योंकी वेदोंकी भाषा किसने सिखाई ? स्वामीजीका तो यह ही कथन है कि भाषा मनुष्य अपने आप नहीं बना सकता है वरण ईश्वर ही उन की भाषा सिखाता है तब वेदों के प्रकाश से पहले ईश्वर ने किसी मनुष्य का रूप धारण करके ही उन मनुष्योंको भाषा सिखाई होगी । क्योंकि वेदों में तो भाषा सीखने की कोई विधि नहीं है वरण वेदोंमें तो प्रारम्भ से अन्ततक गीत ही गीत हैं-

प्यारे भाइयो ! स्वामीजीका कोई भी कथन इस विषय में सत्य नहीं होता है क्योंकि आप जानते हैं कि संसारमें हजारों और लाखों प्रकार के वृक्ष हैं और मनुष्यों द्वारा पृथक् २ वृक्ष का पृथक् २ नाम रक्खा हुआ है परन्तु वेदोंमें दश पांच ही वृक्षोंका नाम मिलेगा-संसारमें हजारों और लाखों प्रकारके पशु और पक्षी हैं और अलग अलग सबका नाम मनुष्योंकी भाषामें है परन्तु वेदोंमें दस बीसका ही नाम मिलेगा । संसार में हजारों प्रकार की औषधि हजारों प्रकार के औजार हजारों प्रकारकी वस्तु हैं और मनुष्यों ने सब के नाम रख रखे हैं और जो नवीन वस्तु बनाते जाते हैं उसका भी नाम अपनी पहचान के वास्ते रखते जाते हैं । परन्तु इनमेंसे बीस तीस ही वस्तुके नाम वेदमें मिलते हैं । तो क्या अनेक वस्तुओं के नाम मनुष्यों ने अपने आप नहीं रख लिये हैं और क्या इस ही प्रकार मनुष्य अपनी भाषा नहीं बना लेते हैं । यदि ऐसा है तो फिर आप क्यों स्वामी जी के इस कथन को मानते हैं कि बिना वेदों के मनुष्य अपनी भाषा भी नहीं बना सकता है ?

हम अपने आर्य भाइयों से पूछते हैं कि संस्कृत भाषा सब से श्रेष्ठ और उत्तम भाषा है या नहीं और संवाक भाषा का संस्कार करके अर्थात् शुद्ध करके ऋषियों ने इसको बनाया है वा

नहीं ? । इन बातों के सिद्ध करने के वास्ते तो आप को किसी भी हेतु की आवश्यकता नहीं होगी क्योंकि आप स्वयम् संस्कृत भाषा की प्रशंसा किया करते हैं और संस्कृत शब्द काही वह अर्थ होता है कि वह संस्कारकी हुई है अर्थात् शुद्ध की हुई है । परन्तु प्यारे भाइयो आप यह भी जानते हैं कि वेदोंकी भाषा संस्कृत भाषा नहीं है वरण संस्कृत से बहुत मिलती जुलती है और यह भी आप मानेंगे कि वेदोंकी भाषा पड़ली है और संस्कृत भाषा उसके पश्चात् बनी है अर्थात् वेदोंकी भाषा कोही संस्कार करने अर्थात् शुद्ध करने से संस्कृत नाम पड़ा है । अर्थात् संस्कृतमे पहले भाषा गंधारकी जिसको शुद्ध करके ऋषियों ने मनोहर और सुन्दर संस्कृत भाषा बनाई है । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेदों की भाषा गंधारू है और वेद की भाषा और संस्कृत भाषामें इतना ही अन्तर है जितना गांवके मनुष्यों की और किसी बड़े शहर की भाषा में अन्तर होता है । यदि वेदोंकी भाषा गंधारू भाषा न होती तो वह ऋषि जन जिनको शुद्ध मनोहर संस्कृत भाषा बनाने की आवश्यकता हुई वह संस्कृत भाषा सुन्दर और मनोहर होती तो वेदों की ही भाषाका प्रचार करते परन्तु स्वामी जीके कथनानुसार वेदकी भाषा को तो ईश्वर की भाषा कहना चाहिये तो क्या मनुष्य ईश्वर से भी

उत्तम भाषा बना सकता है यदि नहीं बना सकता है तो ऋषियोंने क्यों संस्कृत बनाई और क्यों आप लोग संस्कृत भाषा की प्रशंसा करते हैं ? वरण उन ऋषियों की मूर्ख और ईश्वर विरोधी कहना चाहिये जिन्होंने ईश्वर की भाषा को नापसन्द करके और उसका संस्कार करके अर्थात् उसमें कुछ अनट पलट करके संस्कृत भाषा बनाई । परन्तु ऐसा न कह कर यह ही कहना पड़ेगा कि वेद ईश्वर का वाक्य नहीं है और वेदों की भाषा ईश्वर की भाषा नहीं है । हम यह नहीं कहते हैं कि गंधारों और मूर्खोंको समझानेके वास्ते विद्वान् लोग उन मूर्खों की भाषा में उपदेश नहीं कर सकते हैं वरण हमतो इस बात पर जोर देते हैं कि मूर्खों और गंधारों को उन की ही गंधारू बोली में उपदेश देना चाहिये जिससे वह उपदेश को अच्छे प्रकार समझ सकें परन्तु जिस समय स्वामी जी के कथनानुसार ईश्वर ने वेदप्रकाश किए उस समय तो कोई भाषा प्रचलित नहीं थी जिस में अपना ज्ञान प्रकाश करने के वास्ते ईश्वर मजबूर होता वरण उस समय तो सृष्टि की आदि थी और आर्या भाइयों के कथन के अनुसार उस समय के मनुष्य कोई भाषा नहीं बना सकते थे इस कारण उन को जो भाषा सिखाई वह ईश्वरने ही सिखाई । वह भाषा जो इस प्रकार सृष्टिकी आदिमें सिखाई वह वेदों



की ही भाषा हो सकती है नकि कोई और भाषा । परन्तु वेदों की भाषाको तो विद्वान् ऋषियोंने नापसन्द किया और उन को शुद्ध करके संस्कृत बनाई । तब क्यों ईश्वर ने सृष्टिकी आदि में ऐसी भाषा दी जिसको शुद्ध करना पड़ा । इससे स्पष्ट सिद्ध होगया है कि वेदोंकी भाषा ईश्वर की भाषा नहीं है बरन प्राचीन ऋषियोंने अपनी गंधार भाषामें कविता की है जिसका संग्रह होकर वेद बन गये हैं ॥

वेदकी भाषाके विषयमें स्वामीजीने एक अद्भुत प्रपंच रचा है वह सत्यार्थप्रकाशके सप्तम समुल्लासमें लिखते हैं ॥

“ ( प्रश्न ) किसी देश भाषामें वेदों का प्रकाश न करके संस्कृतमें क्यों किया ? ”

“ ( उत्तर ) जो किसी देश भाषामें प्रकाश करता तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता क्योंकि जिस देशकी भाषामें प्रकाश करता उनको सुगमता और विदेशियोंकी कठिनता वेदोंके पढ़ने पढ़ानेकी होती इसलिये संस्कृत हीमें प्रकाश किया जो किसी देशकी भाषा नहीं और वेदभाषा अन्य सब भाषाओंका कारण है उसीमें वेदोंका प्रकाश किया । जैसे ईश्वरकी पृथिवी आदि सृष्टि सब देश और देशवालोंके लिये एकसी और सब शिल्पविद्याका कारण है वैसे परमेश्वरकी विद्याकी भाषा भी एक सी होनी चाहिये कि सब देशवालोंको पढ़ने पढ़ानेमें तुल्य परिश्रम होनेसे ईश्वर पक्षपाती नहीं होता और

सब भाषाओंका कारण भी है ॥ ”

आह ! स्वामी दयानन्दजी ! धन्य है आपको ! क्या आपका यह आशय है कि जिस समय ईश्वरने वेदोंको प्रकाश किया उस समय पृथिवीके सब देशोंमें इस ही प्रकार भिन्न भिन्न भाषा थी जिस प्रकार इस समय अनेक प्रकारकी भाषायें प्रचलित हो रही हैं ? यद्यपि इस स्थानपर आप ऐसा ही प्रगट करना चाहते हैं परन्तु दूसरे स्थान पर आप तो वेदोंका प्रकाश होना उस समय सिद्ध करते हैं जब कि सृष्टिकी आदिमें ईश्वरने तिष्ठत देशमें मनुष्योंको बिना मा घाप के पैदा किया था और जब कि पृथिवीमें अन्य किसी स्थान पर कोई मनुष्य नहीं रहता था और जो मनुष्य तिष्ठतमें उत्पन्न किये गये थे उनकी भी कोई भाषा नहीं थी !

मालूम पड़ता है कि स्वामीजीको सत्यार्थप्रकाश में यह लेख लिखते समय उस समयका ध्यान नहीं रहा जब सृष्टिकी आदि में ईश्वर को वेदोंका प्रकाश करने वाला बताया जाता है बरन स्वामीजीको अपने समयका ध्यान रहा और यह ही समझा कि हम ही इस समय वेदोंको प्रकाश करते हैं अर्थात् बनाते हैं क्योंकि स्वामी जीके समयमें वैश्वक पृथिवीके प्रत्येक देशकी पृथक् भाषा है और संस्कृत भाषा जिनमें वेदों का प्रकाश स्वामी जी ने किया स्वामीजीके समयमें किसी देश की प्रचलित भाषा भी नहीं थी । इस

ही कारण स्वामी जी लिखते हैं कि " इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया जो किसी देश की भाषा नहीं " और फिर आगे चलकर इस ही लेखमें इस ही को पुष्ट करते हुए स्वामीजी लिखते हैं " कि सब देशवालों को पढ़ने पढ़ानेमें तुल्य परिश्रम होनेसे ईश्वर पक्षपाती नहीं होता " स्वामीजीका यह कथन बिल्कुल सत्य होता यदि वह अपने आपको वेदों का बनाने वाला कहते परन्तु वह तो ईश्वरको वेदों का प्रकाश करने वाला बताते हैं तब स्वामीजीका यह लेख कैसे संगत हो सकता है क्या स्वामीजीका यह आशय है कि सृष्टि की आदि में जिन मनुष्यों में वेद प्रकाश किये गये वह कोई अन्य भाषा बोलते थे और ईश्वर ने उस प्रचलित भाषा से भिन्न भाषा में अर्थात् संस्कृत भाषा में वेदों का प्रकाश किया ? ऐसी दशा में वेदों के प्रकाश होने के समय सृष्टिकी आदि में उत्पन्न हुये मनुष्य जो भाषा बोलते थे वह भाषा उन को किसने सिखाई और किस रीतिसे सिखाई ? क्या उन्होंने अपने बोलने के वास्ते अपने आप भाषा बनाली ? परन्तु आप तो यह कहते हैं कि मनुष्य बिना निखाये कोई काम कर ही नहीं सकता है और अपने बोलने के वास्ते भाषा भी नहीं बना सकता है इस हेतु लाचार आप को यह ही कहना पड़ेगा कि वेदों के प्रकाश होने से पहले कोई भाषा मनुष्यों की नहीं थी उन्होंने जो भाषा सीखी वह वेदों से ही सीखी । इसके अतिरिक्त यदि वह आदि में उत्पन्न हुये मनुष्य कोई और बोली बोलते थे और वेद जिसके बिरुद्ध मनुष्य को कोई ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता है वह संस्कृत में दिया गया तो उन मनुष्यों में ईश्वर ने वेद को प्रकाश किस तरह किया होगा ? वह लोग तो पशु समान जंगली और अज्ञानी थे अपनी कोई जंगली भाषा बोलते होंगे परन्तु उन मूर्खों की छोटी सी सब बात सीखने के वास्ते उपदेश मिला संस्कृत में जो उन की बोली नहीं थी तो इससे उनको क्या लाभ हुआ होगा ? वेदों का उपदेश प्राप्त करने से पहले उनको संस्कृत भाषा पढ़नी पड़ी होगी परन्तु पढ़ाया किसने और उन्होंने पढ़ा कैसे ? इससे विदित होता है कि वेदों के प्रकाश करनेसे पहले ईश्वरने संस्कृत व्याकरण और संस्कृत कोष और संस्कृत की अन्य बहुत सी पुस्तकें किसी विधि प्रकाश की होंगी जिनसे इतनी विद्या प्राप्त हो सके कि वेदों के अर्थ समझ में आ सकें और वेदों के प्रकाश करने से पहले सृष्टि की आदि में पैदा हुये अज्ञान मनुष्यों के पढ़ने तथा संस्कृत भाषा पढ़ाने के वास्ते अनेक पाठशालायें भी खोली होंगी और सर्व मनुष्यों को उन पाठशालाओं में संस्कृत पढ़ाई होगी । परन्तु इतनी संस्कृत पढ़ने के वास्ते जिससे वेदों का अर्थ समझमें

नहीं थी उन्होंने जो भाषा सीखी वह वेदों से ही सीखी । इसके अतिरिक्त यदि वह आदि में उत्पन्न हुये मनुष्य कोई और बोली बोलते थे और वेद जिसके बिरुद्ध मनुष्य को कोई ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता है वह संस्कृत में दिया गया तो उन मनुष्यों में ईश्वर ने वेद को प्रकाश किस तरह किया होगा ? वह लोग तो पशु समान जंगली और अज्ञानी थे अपनी कोई जंगली भाषा बोलते होंगे परन्तु उन मूर्खों की छोटी सी सब बात सीखने के वास्ते उपदेश मिला संस्कृत में जो उन की बोली नहीं थी तो इससे उनको क्या लाभ हुआ होगा ? वेदों का उपदेश प्राप्त करने से पहले उनको संस्कृत भाषा पढ़नी पड़ी होगी परन्तु पढ़ाया किसने और उन्होंने पढ़ा कैसे ? इससे विदित होता है कि वेदों के प्रकाश करनेसे पहले ईश्वरने संस्कृत व्याकरण और संस्कृत कोष और संस्कृत की अन्य बहुत सी पुस्तकें किसी विधि प्रकाश की होंगी जिनसे इतनी विद्या प्राप्त हो सके कि वेदों के अर्थ समझ में आ सकें और वेदों के प्रकाश करने से पहले सृष्टि की आदि में पैदा हुये अज्ञान मनुष्यों के पढ़ने तथा संस्कृत भाषा पढ़ाने के वास्ते अनेक पाठशालायें भी खोली होंगी और सर्व मनुष्यों को उन पाठशालाओं में संस्कृत पढ़ाई होगी । परन्तु इतनी संस्कृत पढ़ने के वास्ते जिससे वेदों का अर्थ समझमें

आजाये कम से कम १५ वा २० वर्षे लगते हैं आश्चर्य है कि इतने लम्बे समय तक वह लोग जीवित किस तरह रहे होंगे ! क्योंकि जब तक मनुष्य संस्कृत भाषा न सीख लेवे तब तक उनको वेद शिक्षा किस प्रकार दी जावे और स्वामी जी के कथनानुसार मनुष्य बिना वेदोंके कोई ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है न उसको भोजन बनाना आ सकता है और न कपड़ा पहनना और न घर बनाना कर सकता । इस कारण जब तक वह संस्कृत पढ़ते रहे होंगे तब तक पशु की ही समान विचरते रहे होंगे और हंगरों की तरह घाम ही चरते होंगे और ऐसी दशा में उन की भाषा ही क्या होगी क्योंकि जब तक कोई पदार्थ जिनको मनुष्य काम में लाते हैं बना ही नहीं तब तक उन पदार्थों का नाम ही क्या रक्खा जा सकता है और पदार्थों के नाम रखने बिदून भाषा ही क्या बन सकती है ?

इस कारण हमारे आर्य भाइयों को लाचार वह ही मानना पड़ेगा कि वेदों के प्रकाश होने के समय वह ही भाषा बोली जाती थी जिस भाषा में वेदों का मज़मून है और कम से कम यह कहना पड़ेगा कि वेदोंके प्रकाश होने से पहले कोई भाषा नहीं थी वरन् वेदों ही के द्वारा ईश्वर ने मनुष्योंको वह भाषा बोलनी सिखाई जो वेदों में है । नतीजा इन सब बातों का यह हुआ कि वेदों के समय वेद की भाषा

मनुष्यों की बोली थी परन्तु यदि वेदों को ईश्वरकृत कहा जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि ईश्वर ने मनुष्यों को वह भाषा बोलने के वास्ते दी जो वेदों में है । परन्तु वेदों की भाषा वह भाषा नहीं है जो संस्कृत भाषा कहलाती है वरन् वेदों की भाषा की संशोधन करके ऋषि लोगों ने संस्कृत भाषा बनाई है अर्थात् ईश्वर की भाषा की संशोधन किया अर्थात् चाहे वह वेदों की भाषा ईश्वर की दी हुई थी वा ईश्वर की भाषा थी वा जो कुछ थी परन्तु थी वह गंवाक भाषा जिस का संस्कार करके सुन्दर संस्कृत बनाई गई । इस हेतु यदि वह ईश्वरकी भाषा थी तो ऋषिजन जिन्होंने संस्कृत बनाई वह ईश्वरसे भी अधिक ज्ञानवान और ईश्वर से अधिक सुन्दर वस्तु बनाने वाले थे ॥

आर्यमत लीला ।

[ ख-भाग ]

ऋग्वेद

( ५ )

आज कल अफ्रीका देश में इवशी रहते हैं यह लोग अग्नि जलाना नहीं जानते थे वरन् जिस प्रकार शेर वहा-थी अग्नि से डरते हैं इस ही प्रकार ये भी डरा करते थे । अंगरेजों ने इन

के देशों में जाकर बड़ी कठिनाई से इनको अग्नि जलाना, अनाज भूनना और भोजन पकाकर खाना आदिक बहुत क्रियायें सिखाई हैं परन्तु अथ तक भी यह ऐसे नहीं हुये हैं जैसे हिन्दुस्तान के ग्रामीण मनुष्य होते हैं। हमारे ग्रामीण मनुष्य अब भी इनसे बहुत ज्यादा हांगियार और सभ्य हैं अंग्रेजी की एक पुस्तक में एक समय का वर्णन लिखा है कि जिन हवशियों को अंगरेजोंने बहुत कुछ सभ्यता सिखा दी थी और वह बहुत कुछ हांगियार हो गये थे उनके देशमें एक अंग्रेज एक नदी का पुल बनवा रहा था, हवशी लोग सज्दुरी कर रहे थे, अंग्रेज को पुलके काम में गुणिया की जरूरत हुई, रहनेका भकान दूर था इस कारण साहबने एक ईंटपर चिट्ठी लिखकर एक हवशी को दी और कहा कि यह ईंट हमारे भकान पर जाकर हमारी मेमसाहबको देना हवशी ईंट ले गया मेमने पढ़कर गुणिया हवशीको दे दिया कि ले जाओ। हवशीको बहुत अच्छम्भा हुआ और मेमसाहब का हाथ पकड़ कर कहने लगा कि सब प्रता तुम्हें किसने कहा कि साहबको गुणिया दारकार है। मेमने हवशीको बहुत कुछ समझाया कि जो ईंट तू लाया था उस पर लिखा हुआ था परन्तु वह कुछ भी न समझ सका क्योंकि वह लिखने पढ़नेकी विद्याको कुछ भी नहीं जानता था। वह गुणिया लेकर साहबके पास

आया और उससे भी यह ही बात पूछी। साहब ने भी बहुत कुछ समझाया परन्तु उसही कुछ समझमें न आया वह तुरन्त वहांसे चला गया और उस ईंटमें, जिस पर साहब ने चिट्ठी लिखी थी, एक सूराख करके और रस्सी डालकर उसको गलेमें लटकाकर ढोल बजाता हुआ गांव गांव यह कहता हुआ फिरने लगा कि अंग्रेज लोग जा दूंगर हैं जो ईंटके द्वारा बात चीत करते हैं। देखा इस ईंट ने मेमसाहब को यह कह दिया कि साहब गुणिया मांगता है ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने जो वेदोंके अर्थ किये हैं उनके पढ़नेसे भी यह मान्य होता है कि किसी देशमें हवशी लोग रहते थे उन हवशियों ने जिस समय अग्नि जलाना और अग्निमें भोजन आदिक बनाना जान लिया उस समय उनकी बहुत अच्छम्भा हुआ और उन्होंने ही अग्निकी प्रशंसा और अन्य मनुष्योंकी अग्नि जलाना सोखनेकी प्रेरणा आदिक में वेदों के गीत बनाये हैं। इस प्रकारके सैकड़ों गीत वेदोंमें मौजूद हैं परन्तु हम कुछ वाक्य स्वामी दयानन्दजीके वेद भाष्य के हिंदी अर्थोंमें नीचे लिखते हैं:—  
ऋग्वेद दूसरा मण्डल सूक्त ४ ऋचा १ : जैसे-मैं अग्नि को तुम लोगोंके लिये प्रशंसा करता हूं वैसे हम लोगोंके लिये तुम अग्नि की प्रशंसा करो—”

ऋग्वेद दूसरा मण्डल सूक्त ६ ऋचा २  
“हे शोभन गुणोंमें प्रसिद्ध घोड़ेके

इच्छा करने और धूल को न पतन कराने वाले अग्नि के समान प्रकाशमान आपके सम्बंध में जो अग्नि है उसकी इस समिधा से और उत्तमतासे कहे हुए सूक्त से हम लोग सेवन करें—”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त २१ ऋचा १

“संसार पदार्थोंकी निरन्तर रक्षा करने वाले वायु और अग्नि हैं उन को और मैं अपने समीपकामकी सिद्धि के लिये ब्रह्ममें लाता हूं। और उनके और गुणोंके प्रकाश करनेको हम लोग इच्छा करते हैं।”

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ८ ऋ० ४

“जो बिजली रूप चित्र बिचित्र अद्भुत अग्नि अविनाशी पदार्थोंसे सब ओर से सब पदार्थों को प्रकट करता हुआ अग्नि प्रशंसनीय प्रकाशसे आदित्यके समान अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है वह सब को ढंढने योग्य है।”

ऋग्वेद मंडल सात सूक्त १ ऋ० १

“हे विद्वान् मनुष्यो जैसे आप उत्तेजित क्रियाओंसे हाथोंसे प्रकट होने वाली घुमाने रूप क्रियासे (अरण्याः) अरकी नामक ऊपर नीचेके दो काष्ठों में दूर में देखने योग्य अग्नि को प्रकट करें—”

ऋग्वेद मंडल सात सूक्त १५ ऋ० ८

“हे राजन् हम को चाहने वाले सुन्दर बीर पुरुषों से युक्त आप रात्रियों और किरण युक्त दिनों में हमको प्रकाशित कीजिये आप के माथ सुन्दर अग्नियों वाले हम लोग प्रति दिन प्रकाशित हों”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १

हम अग्नि की बारम्बार इच्छा करते हैं—यह अग्नि नित्य खोजने योग्य है अग्नि ही को संयुक्त करने से धन प्राप्त होता है

अग्नि ही से यज्ञ होता है

अग्नि दिव्य गुणवाली है—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२

“हम अग्नि को स्वीकार करते हैं”

“जैसे हम ग्रहण करने वैसे ही तुम लोग भी करो”

“अग्नि होम किये हुए पदार्थ की ग्रहण करने वाली है और खोज करने योग्य है”

“अग्नि की ठीक २ परीक्षा करके प्रयोग करना चाहिये”

अग्नि बहुत कार्याकारी है जो लाल लाल मुख वाली है

“हे मनुष्य सब सुखोंकी दाना अग्नि को सब को समीप सदा प्रकाशित कर जो प्रकाश और दाह गुण वाले अग्नि का सेवन करता है उसकी अग्नि नाना प्रकार के सुखोंसे रक्षा करने वाला है—”

अग्नि की स्तुति विद्वान् करते हैं—

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ९ ऋ० ५

“अग्नि को आत्मा से तुम लोग विशेष कर जानो”

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त २९ ऋ० २

“जिन्होंने अग्नि उत्तम प्रकार धारण किया उन पुरुषों को भाग्य शाली जानना चाहिये—”

ऋ० मं० ३ सू० २९ ऋ० ५ का भावार्थ

“जो मनुष्य मथकर अग्निको उत्पन्न

करके कार्यों को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे संपूर्ण ऐश्वर्य युक्त होते हैं ( नोट ) उस समय दीवासलाई तो थी नहीं इसी कारण दो वस्तुओं को रगड़ कर वा टकराकर अग्नि पैदा करते थे—

ऋग्वेद पंचममंडल सूक्त ३ ऋ० ४

अग्नि की विस्तारते हुए विद्वान्मनुष्य चिल्ला चिल्ला उसका उपदेश दे रहे हैं वे मृत्यु रहित पदवी को प्राप्त होवे—

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ६ ऋ० २

“जिसकी मैं प्रशंसा करता हूँ वह अग्नि है उसके प्रयोग से अध्यापकों के लिये अन्न को सब प्रकार धारण कीजिये,—

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त १७ ऋ० ४

“हे विद्वान् जिम की संपूर्ण प्रजाओंमें ग्रहण करने योग्य अग्नि प्रशंसा को प्राप्त होता है—”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४८ ऋ० १

“विद्वान्जन मनुष्य सम्बन्धिनी प्रजाओं में सूर्यके समान अद्भुत और रूप के लिये विशेषतासे भावना करनेवाले जिम अग्नि को सब ओर से निरंतर धारण करते हैं उस अग्निको तुम लोग धारण करो—”

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १५ ऋ० ६

“हे मनुष्यो ! वह अत्यन्त यज्ञकर्ता देने योग्य पदार्थों को प्राप्त होनेवाला पावक अग्नि हमारी इस शुद्ध क्रिया को और बाणियों को प्राप्त हो उसको

तुम लोग सेवन करो ।”

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३५ ऋ० ११

“हे मनुष्यो जो इस अग्नि का सुंदर सैन्यके समान तेज और अपने गुणोंसे निश्चित आरुष्या अर्थात् कथन प्राणोंके पौत्रके समान वर्तमान व्यवहारसे बढ़ता है वा जिसको प्रवल यौवनवती स्त्री इस हेतु से अच्छे प्रकार प्रदीप्त करती हैं वा जो तेजोमय शोभन शुद्ध स्वरूप जल वा घी और अच्छा शोधा हुआ खाने योग्य अन्न इस अग्निके संबंधमें वर्तमान है उसको तुम जानो—”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३ ऋ० ३

मैं अग्नि जलाता हूँ जो यज्ञमें जलाई जाती है और काली, कराली, मनोज वा, सुलोहिता सुधूम्रवर्णा, स्फुलिगिनी और बिम्बरूपी जिसकी जीभ हैं अग्नि की मात जीभ हैं ॥

वेदोंके पढ़नेसे यह ज्ञात होता है कि उस समयके वहशी लोगोंने अग्निको पाकर और उससे भोजन आदिक अनेक प्रकारकी मिट्टि को देखकर अग्नि पूजना प्रारम्भ किया और अग्नि को जलाकर उसमें घी दूध आदिक वह द्रव्य जिनको वह सबसे उत्तम समझते थे अग्निमें चढ़ाने लगे—इस प्रकार धी पूजाकी वह लोग यज्ञ कहते थे फिर कुछ सभ्यता पाकर यज्ञके संबंधके अनेक गीत उन लोगों ने बना लिये । वेदोंमें ऐसे गीत बहुत ही ज्यादा मिलते हैं—

स्वामी दयानन्द सरस्वतीके वेदभाष्य

के हिन्दी अर्थोंमें से हम कुछ वाक्य इस विषयके नीचे लिखते हैं:-

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त २ ऋचा ४

हे मनुष्यों जैसे विद्वानों के समीप पग पीछे करके सन्मुख घोटूं जिनके हाँ वे विद्यार्थी विद्वान होकर सत्य का सेवन करते और विद्याको धारण करते हुए अन्न के साथ उत्तम घृत आदि को अग्निमें छोड़ते हैं "

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२ ऋ० ५-११

जिसमें घी छोड़ा जाता है वह अग्नि राक्षसोंको विनाश करती है--भौतिक अग्नि अच्छी प्रकार मन्त्रोंके नवीन २ पाठ तथा गान युक्त स्तुति और गायत्री छन्द वाले प्रगाथोंसे गुणोंके साथ ग्रहण किया हुआ उक्त प्रकारका धन और उक्त गुण वाली उत्तम क्रियाको अच्छी प्रकार धारण करता है--"

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३ ऋ० ६-८

" हे विद्वानों : आज यज्ञ करने के लिये घर आदिके अलग २ सत्य सुख और जल के वृद्धि करने वाले तथा प्रकाशित दरवाजोंका सेवन करो अर्थात् अच्छी रचनासे उनकी बनाओ में इस घर में जो इनार प्रत्यक्ष यज्ञको प्राप्त करते हैं उन सुन्दर पूर्वोक्त साम जीभ, पदार्थोंका ग्रहण करने, तीव्र दर्शन देने और दिव्य पदार्थोंमें रहने वाले प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध अग्नियों को उपकारमें लाता हूं ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त २१ ऋ० २

" हे यज्ञ करने वाले मनुष्यो ! तुम

जिस पूर्वोक्त वायु और अग्निके गुणों को प्रकाशित तथा सब जगह कामोंमें प्रदीप्त करते हो उन को गायत्री छन्द वाले वेदके स्तोत्रोंमें षड्ज आदि स्वरोंमें गाओ--"

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ४१ ऋ० १९

" हे स्त्री पुरुषो जो सुख की सम्भावना कराने वाले दोनों स्त्री पुरुष यज्ञ की विद्याओंको प्राप्त होते और इष्ट्य द्रव्यको पहुँचाने वाले अग्नि को प्राप्त होते उन्हींको हम लोग अच्छे प्रकार स्वीकार करते हैं--"

वेदोंके गीत बनाने वालों ने केवल अग्नि ही की प्रशंसा में गीत नहीं बनाये हैं वरण जो लो वस्तु उन को उपकारी प्राप्त होती रही हैं उस ही को पूजने लगे हैं और उस ही के विषयमें गीत जोड़ दिया है । दृष्टान्तरूप जलकी स्तुतिका एक गीत हम स्वामी दयानन्दजीके वेद भाष्यके हिन्दी अनुवादमें लिखते हैं--

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ४९ ऋचा २

" हे मनुष्य जो शुद्ध जल चूने हैं अथवा सोदनेने उत्पन्न होते हैं वा जो आप उत्पन्नहुए हैं अथवा समुद्रके लिये हैं वा जो पवित्र करने वाले हैं वह देदीप्यमान जल इस संसारमें बेरी रक्षा करें--"

नदी की प्रशंसा वेदों में इस प्रकार की गई है--

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ५० ऋ० ४

" जो जाने योग्य नीचे वा ऊपरले देशोंको जाती हैं और जो जलसे भरी

वा जल रहित हैं वे सब नदियां हमारे लिये जलसे सींचती हुईं वा तृप्त करती हुईं भोजनादि व्यवहारों के लिये प्राप्त होती हुईं आनन्द देने और सुख करने वाली हों और भोजनादि स्नेह करने वाली हों—”

बादल की स्तुति वेदोंमें इस प्रकार की गई है—

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४२ ऋ० १४

“ हे स्तुति करने वाले आप जो मेघोंसे युक्त और बहुत जल वाला अन्तरिक्ष और पृथिवी की सींचता हुआ विजुलीके साथ प्राप्त होता है और जो उत्तम प्रशंसा युक्त है उस गर्जना करते हुए की निश्चय से प्राप्त होओ और आप शब्द करते हुए पृथिवीके पालन करनेवालेको उत्तम प्रकार अनाइये ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४२ ऋ० १६

“ हे विद्वन् ..... और दाता आप और जो यह प्रशंसा करने योग्य मेघ वा वह्नि धन के लिये भूमि आकाश और यक्ष आदि ओषधियों तथा षट और अश्वत्थ आदि वनस्पतियों को प्राप्त होता है उस की आप अच्छे प्रकार प्राप्त हुआये वह मेरेलिये सुख कारक होवै जिसमे यह पृथिवी ( माता ) माताके सदृश पालन करने वाली हम लोगोंकी दुष्ट बृद्धिमें नहीं धारण करै—”

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ८३ ऋ० ३

“ हे विद्वन् जो मेघ मारने के लिये रस्मी अर्थात् कोड़ेसे घोड़ों के सन्मुख लाता हुआ बहुत रथवालेके सदृश वर्षाओंमें श्रेष्ठ दूतों को प्रकट करता है

परतन्त्र करनेमें वे दूरसे सिंहके सदृश कम्पाते वा चलते हैं और पर्जन्य वर्षाओंमें हुए अन्तरिक्षको करता अर्थात् प्रगट करता है उसको आप पुकारिये भावार्थ—जैसे सारथी घोड़ों को यथेष्ट स्थानमें लेजानेको समर्थ होता है वैसे ही मेघ जलोंको इधर उधर लेजाता है

जिस प्रकार वेदोंके कवियोंने अग्नि जल आदिक अनेक वस्तुओंसे प्रार्थना की है इस ही प्रकार मर्प आदि भयकारी जीवोंसे भी प्रार्थना की है हम स्वामी दयानन्दजी के अर्थोंके अनुसार कुछ वाक्य यहां लिखते हैं ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सू० १९१ ऋ० ५--६

“ वे ही पूर्वोक्त विषधर वा विषरात्रिके आरम्भमें जैसे चोर वैसे प्रतीतिसे दिखाई देने हैं । हे दृष्टि पथ न आने वाले वा सबके देखे हुए विषधारियो तुम प्रतीत ज्ञानसे अर्थात् ठीक समयसे युक्त होओ ,--

“ हे दृष्टि गोचर न होने वाले और सबके देखे हुए विषधारियो जिन का सूर्यके समान सन्ताप करने वाला तुम्हारा पिता पृथ्वीके समान माता चन्द्रमाके समान भाता और विद्वानोंकी अदीन माताके समान वहन है वे तुम उत्तम सुख जैसे ही ठहरो और अपने स्थानको जाओ--”

जिस प्रकार कविलोग स्त्रियोंका वर्णन किया करते हैं उस ही प्रकार वेदोंके कवियों ने भी स्त्रियों का वर्णन किया है इस कुछ वाक्य स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके वेदभाष्यसे लिखते हैं



ऋग्वेद मंडल सात सूक्त १ ऋ० ६

“ जैसे युवावस्था को प्राप्त कन्या-  
रात्रि दिन अच्छे बन युक्त जिम पति  
को समीपसे प्राप्त होती है.....वैसे अ-  
ग्नि विद्याको प्राप्त होके तुम लोग आ-  
नन्दित होओ--”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५६ ऋ० ५

“ हे सभापति शत्रुओंको मार अ-  
पने राज्यको धारण कर अपनी स्त्रीको  
आनन्द दियाकर । ”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ८२ ऋ० ५

आप के जो सुशिक्षित घोड़े हैं उन  
को रथमें युक्त कर जिस तेरे रथके एक  
घोड़ा दाहिने और बाईं ओर हो उस  
रथपर बैठ शत्रुओंको जीतके अतिप्रिय  
स्त्रीको साथ बैठा आप प्रसन्न और उस  
को प्रसन्न करता हुआ अन्नादि सामग्रियोंके  
समीपस्थ होके तू दोनों शत्रुओं को  
जीतने के अर्थ जाया करो ।

ऋग्वेद चौथामंडल सूक्त ३ ऋ० २

“हे राजन् हम लोग आप के जिस  
गृह को बनावें सो यह गृह स्वामी के  
लिये कामना करती हुई सुन्दर वस्त्रोंसे  
शोभित मन की प्यारी स्त्री के सदृश  
इस वर्तमान काल में हुआ सब प्रकार  
व्याप्त उत्तम गुण जिम में ऐसा हो उस  
में आप निवास करो-

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १४ ऋ० ३

हे विद्या युक्त और उत्तम गुण वाली  
स्त्री तू जैसे उत्तम प्रकार जोड़ते हैं घो-  
ड़ों को जिस में उस बाहन के सदृश  
अपने किरणों से प्राणियों को जनाती

हुई और ऐश्वर्य के लिये जगाती हुई  
प्रकाशसे अद्भुत स्वरूप वाली किंचित्  
लाल आभा युक्त कान्तियों को सब  
प्रकार प्राप्त कराती हुई बड़ी अत्यन्त  
प्रकाशमान प्रातःकाल की बेला जाती  
और आती है वैसे आप हूजिये—”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ८२ ऋ० ६

“हे उत्तम शस्त्र युक्त सेनाध्यक्ष जैसे मैं  
तेरे अन्नादि से युक्त नौकारण में सूर्य  
की किरण के समान प्रकाश मान घो-  
ड़ों को जोड़ता हूँ जिस में बैठके तू  
हाथों में घोड़ों को रस्सी को धारण  
करता है उस रथ से और शत्रुओं की  
शक्तियोंको रोकने हारा तू अपनी स्त्री  
के साथ अच्छेप्रकार आनंदको प्राप्त हो--

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३ ऋ० ५

“हे पुरुषों आप अन्नादि को वा पृथि-  
वी के साथ वर्तमान द्वारों के समान  
शोभावती हुई और ग्रहण की हुई  
जिनकी सुन्दर चाल उधर रहित मनु-  
ष्यों में उत्तमा को प्राप्त उत्तम स्त्रीरूपसे  
युक्त यश और अपने रूपको पवित्र  
करती हुई समस्त गुणों में व्याप्ति र-  
खने वाली देदीप्यमान अर्थात् चमक-  
ती दमकती हुई स्त्रियों की विशेषता  
से आश्रय करो और उनके साथ शास्त्र  
वा सुखों की विशेषता से कहो सुनो,,

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २९ ऋ० १

हे सूर्य के तुल्य विद्याके प्रकाशक ज्ञा-  
नयुक्त नियमों को धारण किये हुए  
विद्वान् लोगो तुम मेरे दूर वा समीप  
में सत्य को प्रवृत्त करो एकांतमें जनने

वाली व्यभिचारिणी के तुल्य अपराध को मत करो—

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३२ ऋ० ४५

“मैं आत्मा से उस रात्रि के जो पूर्ण प्रकाशितचंद्रमा से युक्त है समान वर्तमान सुन्दर स्पर्द्धा करने योग्य जिम स्त्री की शोभन स्तुति के साथ स्पर्द्धा करता हूँ वह उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाली इस लोगों को सुने और जाने न छेदन करने योग्य सूई से कर्म मीने का करे ( शतदायम् ) असंख्य-दाय भाग वाले को साँझै ( उक्थयम् ) और प्रशंसा के योग्य असंख्य दाय भागी उत्तम संतान को देवे—

हे रात्रि के समान सुख देने वाली जो आप की सुन्दर रूपवानी दीप्ति और उत्तम बुद्धि हैं जिनसे आप देने वाले पति के लिये धनों को देती हो उन से हम लोगों को आज प्रनम्रचित्त हुई समीप आओ। हे सौभाग्य युक्त स्त्री उत्तम देने वाली होती हुई हम लोगों के लिये असंख्य प्रकार से पुष्टि को देओ—”

## आर्य मत लीला ।

( ६ )

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने जिस प्रकार वेदोंका अर्थ किया है उन अर्थों के पढ़नेसे मालूम होता है कि वेदोंके गीत हूनवा भाटोंके बनाये हुए हैं जो मनुष्योंकी स्तुति करके और स्तुतिके अनेक कवित्त सुनाकर दान मांगा करते हैं—ग्रामीण लोग ऐसे स्तुति करने

वालोंको बहुत दान दिया करते हैं। हम स्वामी जीके वेद भाष्यसे कुछ वाक्य नीचे लिखते हैं जो इस बातको सिद्ध करते हैं:-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ११९ ऋ० वा ३

“हे बलवान विद्वाना हम लोगोंसे स्तुति किये हुए आप हमको सुखी करो और प्रशंसाको प्राप्त होना हुआ स्तुकार करने योग्य पुरुष अतीव सुखकी भावना करने वाला हो।”

ऋग्वेद प्रथम मण्डल सूक्त १६९ ऋ० वा ४

हे बहुत पदार्थोंके देनेवाले आपतो हमारे लिये अतीव बलवती दक्षिणाके साथ दान जैसे दिया जाय वैसे दान को तथा इस दुग्धादि धनको दीजिये कि जिमसे आपकी और पवनकी भी जो स्तुति करने वाली हैं वे सधुर उत्तम दूधके भरे हुए स्तनके समान चाहती और अन्नादिकोंके साथ बछरों को पिलाती हैं —”

ऋग्वेद सप्तम मण्डल सूक्त २५ ऋ० ४

“हे-सेनापति--आप के सदृश रक्षा करने वालेके दानके निमित्त उद्यत हूँ उस मेरे लिये तेजस्वी आप घर सिद्ध करो बनाओ”

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ३० ऋ० ४

“हम लोग आप की प्रशंसा करें आप हम लोगों के लिये धनों को देओ-”

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ३१ ऋ० ५

“हे सदृगुण और हरणशील घोड़ों वाले हम लोग आप के जिन पदार्थों को मांगते हैं उनको आश्चर्य है आप हम लोगोंके लिये कब देओगे-”

ऋग्वेद मत्तम मंडल सूक्त ४६ ऋ० १

हे विद्वानां जिम स्थिर धनुष वाले शीघ्र जाने वाले शस्त्र अस्त्रों वाले तथा अपनी ही वस्तु और अपनी धार्मिक क्रिया को धारण करने वाले शत्रुओं से न सहे जाते हुए शत्रुओं के सहने को समर्थ तीव्र आयुध शस्त्र युक्त मेधावी शत्रुओं को रुलाने वाले शूरावीर न्याय की कामना करते हुए विद्वान के लिये इन वाणियों को धारण करो वह हम लोगों की इन वाणियों को सुनो ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ११ ऋ० ६

हे अनेक सेनाओं से युक्त दान करने वाले दलवान के सन्तान आप हम लोगों के लिये धनों को देते हैं—

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ६८ ऋ० ८

हे सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य वर्त्तमान हम लोगोंको प्रशंसा करने और देनेवाले राज प्रजा जनो ! जैसे तुम दीनों उत्तम यश होने के लिये धन का संवन्ध करो ऐसे बड़े के बलकी प्रशंसा करते हुए हम लोग नावसे जलोंको जैसे जैसे दुख से उल्लंघन करने योग्य कष्टों को शीघ्र तरें—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४२ ऋ० १०

हे मनुष्य लोगो जैसे हम लोग (सूक्तैः) वेदोक्त स्तोत्रों से सभा और मेनाध्यक्ष को गुण गान पूर्वक स्तुति करते हैं शत्रु को मारते हैं उत्तम वस्तुओं को याचना करते हैं और आपसमें द्वेष कभी नहीं करते वैसे तुम भी किया करो ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४६ ऋ० ६

हे सभा सेनाध्यक्षो हमको अन्नादि

दिया करो ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५१ ऋ० १

हे मनुष्यो तुम.....शत्रुओं को खिदारण करने वाले राजाको वाणियोंसे हर्षित करो उस धनके देने वाले विद्वान्का सत्कार करो—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५२ ऋ० २-१०

“ हे राज प्रजा जन जैसे.....वैसे जो तू शत्रुओंको मार अमररूपात् रक्षा करने हारे वलों में बार २ हर्षको प्राप्त करता हुआ अन्नादि के साथ वर्तमान बराबर बढ़ता रह ” “ आनन्दकारी व्यवहारमें वर्तमान शत्रु का शिर काटते हैं सो आप हम लोगोंका पालन कीजिये । ”

ऋग्वेद मत्तम मंडल सूक्त १८ ऋ० १-२

“ हे राजन् आपके होते जो हमारे ऋतुओं के समान पालना करने वाले और स्तुति कर्ताजन समस्त प्रशंसा करने योग्य पदार्थोंकी याचना करते हैं आपके होते सुन्दर कामना पूरने वाली गीयें हैं उनको मांगते हैं आप ही के हाते जो बड़े २ छोड़े हैं उनको मांगते हैं जो आप कामना करने वालेकेलिये अतीव पदार्थों को अलग करने वाले होते हुए धन देते हैं सो आप सबको सेवा करने योग्य हैं—”

“ हे ऐश्वर्यवान् विद्वान् जो आप उत्पन्न हुई प्रजाओंसे जैसे राजा वैसे धेनु और घोड़ोंसे धनके लिये तुम्हारी कामना करते हुए हम लोगोंको तेज बुद्धि

वाले करो । जो विद्वान् कविताई करनेमें चतुर होते हुए रूपसे वाणियों को तीव्रण करो दिनोंसे ही सब ओर से निरन्तर निवास करते हो उन्हीं आपकी हम लोग निरन्तर उत्साहित करें—”

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त १९ ऋ० ९

“ हे विद्वान् आप हमारे लिये प्रभावको मत नष्ट करो और जो आप की ऐश्वर्यवती दक्षिणा दानकी स्तुति करने वालेके उत्तम पदार्थको पूर्ण करे वह जैसे हम लोगों के लिये प्राप्त हो वैसे इस की विद्या की कामना करने वालोंके लिये सिखाइये जिससे उत्तम बीरों वाले हम लोग निश्चयसे संग्राम में बहुत कहैं—”

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २७ ऋ० १

“ हे विद्वन् ! जैसे मैं महीनोंके तुल्य राजपुरुषों के लिये जिन इन प्रत्यक्ष घृत को शुद्ध कराने वाली शुद्ध की हुई सत्य वाणियोंका जिह्वारूप साधनसे होम करता अर्थात् निवेदन करता हूं उन हमारी वाणियोंको यह मित्र बुद्धि से बने योग्य बलादि गुणोंसे प्रसिद्ध अष्ट चतुर दुष्टोंके सम्पक् विनाशक न्यायाधीश आप सदैव बुनिये—”

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३४ ऋ० ६-१५

“ हे क्रीधसे युक्त मनुष्यो ! तुम हम लोगोंके लिये धनोंकी सिद्ध करो घोड़ीकी समान रात्रि में वाणी की प्राप्त होओ मनुष्योंकी जैसे स्तुति वैसे ऐश्वर्योंकी प्राप्त होओ स्तुति करने वाले

के लिये विज्ञानका जिसमें रूप विद्वान् सम उत्तम बुद्धिको सिद्ध करो—”

“ हे मरुत धर्मा मनुष्यो ! औरक्षा और सुन्दर बुद्धि प्रेरणाओंमें तुम लोगोंकी मनोहरके समान प्रशंसा करें वा जिस से अच्छे प्रकार की सिद्धिको अतीव पार पहुंचाओ और अपराधको निवृत्त करो वा जिससे निन्दाओंकी मोचो अर्थात् छोड़ो वह घोड़ों की प्राप्त होने वाली कीई क्रिया बन्दना करने वालेकी प्राप्त हो ।”

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३२ ऋ० १५-१९

“ हे धन के ईश ! आप का धन हम लोगों में प्राप्त हो और आप की गौके हजारों और सैकड़ों समूहको हम लोग प्राप्त कराते हैं—”

“ हे शत्रुओंके नाश करने वाले ! जिस से आप बहुतों के देने वाले हो इससे आप के सुवर्ण के बने हुए घटोंके दश संख्या युक्त समूह को हम लोग प्राप्त होवें—”

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ६ ऋ० ७

हे विद्वन्...स्तुति करने वालोंके लिये अन्नको अच्छे प्रकार धारण कीजिये—”

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त १० ऋ० ७

“ हे दाता...तथा स्तुति करने वालो ! और स्तुति करने वाले के लिये हम लोगोंकी धारण कीजिये और संग्रामोंमें वृद्धिके लिये हम लोगोंकी प्राप्त हूजिये—”

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३६ ऋ० १

“ हे मनुष्यो जो दाता द्रव्योंके देनेकी जानता और धनोंकी देने वालियोंकी

जानता है वह पिपासासे व्याकुल के सदृश और अन्तरिक्षमें चलने वाले के सदृश सत्य और अन्त्यके विभाग करने वालोंको प्राप्त होने वाला और काम ना करवा हुआ हम लोगोंको सब प्रकार से प्राप्त होवे और प्राणों के देने वाले दुग्ध का पान करै भावार्थ उसी को राजा मानो—”

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ६५ ऋ० ६

“वेदार्थ के जानने वाले हम लोगों का गौश्रों के पीने योग्य दुग्ध आदि में नहीं निरादर करिये—”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५५ ऋ० ७

हे स्तुति की सुनने वाले ! सोम को पीने वाले सभाध्यक्ष !

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५७ ऋ० ५

हे सेनादि बन वाले सभाध्यक्ष आप इस स्तुति करता के कामना को परिपूर्ण करें-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४१ ऋ० १२

“जो प्रशंसा युक्त जिमके रथमें चांदी सोना विद्यमान जो उत्तम प्रकाश वाला जिस के वेगवान बहुत घोड़े वह दान शील जन हम लोगों को सुने और जो गमन शील निवास करने योग्य अग्नि के समान प्रकाशमान जन उत्पन्न किये हुये अच्छे रूप को अतीव प्राप्ति कराने वाले गुणों से अच्छा प्राप्त करे वह हम लोगोंके बीच प्रशंसित होता है।”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४२ ऋ० १०

“हे विद्वान् हम लोगों की कामना करने वाले विद्या और धन से प्रकाश

मान आप हम लोगों के बहुत पोषण करने के लिये और धन होने के लिये नाभि में प्राण के समान प्राप्त होवें और आत्मा से जो तुरन्त रक्षा करने वाला अद्भुत आप्रचर्य रूप ब्रह्म वा परा धन है उस को हम लोगोंके लिये प्राप्त कीजिये—”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १८४ ऋ० ४

हे अच्छे देने वाले ! जो तुम दोनों की सधुरादि गुण युक्त देनि वर्तमान है वह हम लोगों के लिये हो । और तुम प्रशंसा के योग्यकार करने वालेकी प्रशंसाको प्राप्त हो ओ और अपनेको सुननेकी इच्छामें जिन तुमकी उत्तम पराक्रमके लिये साधारण मनुष्य अनुमोदन देते हैं तुम्हारी कामना करते हैं उनको हमभी अनुमोदन दें—”

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त १४ ऋ० १२

“हे धन देने वाले परम ऐश्वर्य युक्त सुन्दर बीरों वाले हम लोग जो तुम्हारा बहुत अद्भुत पृथिवी आदि वस्तुओं से मिदु हुए बहुत मृदु करने वाले धनको अन्नोंके लिये हित करने वाली पृथिवीके बीच प्रति दिन विज्ञानरूपी संग्राम यज्ञमें कहैं उसको हमारे लिये देनेको आप मन्त्र्य करो—”

## आर्यमत लीला ।

( ७ )

एवारे आर्य्य समाजी भाइयो ! तुम की स्वामी दयानन्द सरस्वती जीने यह यकीन दिलाया है कि, परमेश्वर ने

सृष्टि के आदि में प्रथम पृथिवी उत्पन्न की और फिर बिना मा बाप के इस पृथिवी पर कूदते फांदते जवान मनुष्य उत्पन्न कर दिये। वह मनुष्य अज्ञानी थे और बिना मिखाये उनको कुछ नहीं आ सकता था। इस कारण परमेश्वर ने चार वेदों के द्वारा उनको सर्व प्रकार का ज्ञान दिया।

शोक है कि स्वामीजी ने इस प्रकार कथन तो किया परन्तु यह न बताया कि उनकी इस बात का प्रमाण क्या है? और इस बात का बोध उन को कहां से हुआ कि सृष्टि की आदि में बिना मा बाप से उत्पन्न मनुष्यों को वेदों के द्वारा शिक्षा दी गई? स्वामी जी ने ऋग्वेद का अर्थ प्रकाश किया है जिस से स्पष्ट विदित होता है कि सृष्टि की आदि में बिना मा बाप के उत्पन्न हुये मनुष्यों को वेदों के द्वारा उपदेश नहीं दिया गया है बरन स्वामी जी ने जो अर्थ वेदों के किये हैं उन ही अर्थों से ज्ञात होता है कि वेद के द्वारा उन मनुष्यों से सम्बोधन है जो मा बाप से उत्पन्न हुये थे, और जिनसे पहले बहुत विद्वान् लोग हो चुके हैं और उन पूर्वज विद्वानों के श्रुतकूल वेद के नीतों का बनाने वाला गीत बनारहा है-हम इस विषय में विशेष न लिखकर स्वामी दयानन्द जी के अर्थों के अनुसार वेदों के कुछ वाक्य नीचे लिखते हैं और यह हम पहले लिख चुके हैं कि वेदों का सज्मून सिलसिले वार नहीं

है बरन पृथक पृथक गीत हैं जो सूक्त कहलाते हैं—

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त २९ ऋचा ४।

“आप हमारे पिता के समान उत्तम बुद्धि वाले हैं।”

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४४ ऋचा २२

“हे राजन्” जो यह आनन्द कारक अपने पिता के शस्त्र और अस्त्रों को स्थिर करता है—”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३२ ऋ० १

“अगले महाशयो ने किये धन के निमित्त मनुष्यों के समान आचरण करते हुए मनुष्यों को निरंतर रहें।”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३४ ऋ० १

“सोम को अगले सज्जनों के पीने के समान जो पीता है।”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३९ ऋ० ८

“हे ऋतु २ में यज्ञ करने वाले विद्वानो तुम्हारे वे मनातन पुनर्षियों उत्तम बल हम लोगों से सब तिरस्कृत हों

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २ ऋ० ९

“हे पूर्वज विद्वानों ने विद्या पढ़ा कर किये विद्वान आप”

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २० ऋ० ५

“पूर्वाचार्यों ने किई हुई स्तुतिओं को बढ़ावे वह पुरुषार्थी जन हमारा रक्षक हो।”

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २२ ऋ० ४

“वह प्रथम पूर्वाचार्यों ने किया उत्तमता से कहने योग्य प्रसिद्ध मनुष्यों में सिद्ध पदार्थ”।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १८० ऋ० ३

“जो सुवावस्या को नहीं प्राप्त हुई  
उस गी में अवस्थासे परिपक्व भाग गौका  
पूर्वज लोगोंने प्रसिद्ध किया हुआ है”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७६ ऋ० ६

हे योग के ऐश्वर्य का ज्ञान चाहते  
हुए जन जैसे योग जानने की इच्छा  
वाले किया है योगाभ्यास जिन्होंने ने  
उन प्राचीन योग गुण सिद्धियों  
के जानने वाले विद्वानों से योग  
को पाकर और सिद्ध कर सिद्ध होते  
अर्थात् योग सम्पन्न होते हैं वैसे होकर॥”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७१ ऋ० ५

“जिस बलसे वर्तमान समातन नाना  
प्रकारकी वस्तियोंमें मूल राज्यमें परम्प-  
रासे निवास करते हुए बिचारवान वि-  
द्वान्जन प्रजाजनोंको चेतन्य करते हैं ?”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६३ ऋ० १४

“उस अग्निके दिव्यपदार्थ में तीन प्रयो-  
जन अगले लोगों ने कहे हैं उस

को तुम लोग जानो”—तीन प्रकाशमान  
अग्नि में भी बन्धन अगले लोगोंने  
कहे हैं उसीके समान मेरे भी हैं—”

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ६ ऋ० २

“हे राजन अग्निके समान जिन आपकी  
वाणियोंसे मेघ के तुल्य वर्तमान शत्रुओं  
के नगरोंको विदीर्ण करने वाले राजा  
के बड़े पूर्वजराजाओं ने किये  
कर्माँ को—”

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ५३ ऋ० १

“उन सूर्य और भूमिकी अगले वि

द्वान्जन स्तुति करते हुए धारणकर  
ते हैं सन्हीं की अच्छे प्रकारसे प्रशंसा  
करता हूँ—”

ऋग्वेद प्रथममंडल सूक्त ११४ ऋ० ७

“हे सभापति हम लोगोंमें से युद्धे वा  
पढ़े लिखे मनुष्यों को मत मारो  
और हमारे बालक को मत मारो ह-  
मारे जवानोंको मत मारो हमारे गध  
को मत मारो हमारे पिता को मत  
मारो माता और स्त्री को मत मारो

और अन्याय कारी दुष्टों को मारो ।

ऋग्वेद तीसरा मण्डल सूक्त ५५ ऋ० ३

“उन पूर्वजनों से सिद्ध किये गये  
कर्माँ को मैं उत्तम प्रकार विशेष करके  
प्रकाश करूँ ।”

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त ३

हे बलवान् के सन्तान

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त ५

हे बलवान् के पुत्र

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त १२

हे वलिष्ठ के पुत्र ।

ऋग्वेद छठामण्डल सूक्त १५

हे बलवान्के सन्तान ।

ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त १

हे बलवान् के पुत्र—हे बलवान् विद्वान्के पुत्र

ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त ४

हे बलवान् के पुत्र

ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त ८

हे अतिबलवान्के सत्यपुत्र

ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त १५

हे अति बलवान्के पुत्र राजन् ।

ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त १६  
हे बलवान्‌के पुत्र विद्वान्  
ऋग्वेद प्रथममंडल सूक्त ४८  
हे पूर्ण बलयुक्तके पुत्र  
ऋग्वेद प्रथममंडल सूक्त ७९  
हे प्रकाश युक्त विद्वान् बलयुक्त पुरुषके  
पुत्र  
ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त २४  
हे राजधर्मके निवाहक बलवान्‌के पुत्र  
ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त १८  
हे राजा क्षमा शील रखने वालेके पुत्र  
ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२१  
हे बुद्धिमान्‌के पुत्र  
ऋग्वेद प्रथममंडल सूक्त १२२  
विद्याकी कासना करते हुए का पुत्र मैं  
प्यारे आर्या भाइयो ! वेदोंके इन उ-  
पर्युक्त वाक्योंकी पढ़कर आपको आश्च-  
र्य आश्चर्य हुआ होगा और विशेष  
आश्चर्य इस बातका होगा कि स्वामी  
दयानन्द सरस्वतीजी ने आप ही वेदों  
के ऐसे अर्थ किये और फिर आप ही  
सत्यार्थप्रकाश और वेदभाष्य भूमिका  
में लिखते हैं कि सृष्टि की आदिमें  
बिना मा बाप के उत्पन्न हुए मनुष्यों  
में वेदप्रकाश किये गये । परन्तु प्यारे  
भाइयो ! आपने हमारे प्रथम लेखोंके  
द्वारा पूरी तीर से जान लिया है कि  
स्वामीजी के कथन अधिकतर पर्वोंपर  
विरोधी होते हैं । इस कारण आपको  
उचित है कि आप सत्यार्थप्रकाश और  
वेदभाष्य भूमिका पर निर्भर न रहें, बरन्  
स्वामी जी के बनाये वेद भाष्य को,

जिस में सुगम हिन्दी भाषा में भी  
वेदों के अर्थ प्रकाश किये गये हैं और  
जो वैदिक ग्रन्थालय अजमेर से मिलते  
हैं पढ़ें और वेदों के मजमून को जानें ।

स्वामी जी कहते हैं कि वह ईश्वर  
कृत हैं हम कहते हैं कि वह ग्रामीण  
कवियों के बनाये हुवे हैं-स्वामी जी  
कहते हैं कि उनमें सर्व प्रकारका ज्ञान  
है हम कहते हैं कि वह धार्मिक वा  
लौकिक ज्ञान की पुस्तक नहीं हैं बल्कि  
ग्राम के किसान लोग जैसे अपनी सा-  
धारण बुद्धि से गीत जोड़ लिया करते  
हैं वैसे गीत वेदों में हैं और एक एक  
विषय के सैकड़ों गीत हैं बिल्कुल बे  
तरतीब और बे सिल सिला संग्रह  
किये हुवे हैं आप को हमारे इस सब  
कथन पर आश्चर्य आता होगा और  
सम्भव है कि कोई २ भाई हमारा कथन  
पक्षपात से भरा हुआ समझता हो प-  
रन्तु हम जो कुछ भी लिखते हैं वह  
इस ही कारण लिखते कि आप लोगों  
को वेदों के पढ़ने की उत्तेजना हो ।  
स्वामी जी के वेद भाष्य में जो अर्थ  
हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं वह ब-  
हुत सुगम हैं आप की समझ में बहुत  
आसानी से आसक्त हैं । इस हेतु आप  
अवश्य उनको पढ़ें । जिससे यह सब  
बातें आप पर विदित हो जावें । य-  
द्यपि हम भी स्वामी जी के भाष्य में  
से कुछ कुछ वाक्य लिखकर अपने सब  
कथन को सिद्ध करेंगे । परन्तु हम कहाँ  
तक लिखेंगे ? आप को फिर भी यह



ही संदेह रहेगा कि वेदों में और भी सर्व प्रकार के विषय होंगे जो इन्होंने नहीं लिखे हैं। इस कारण आप हमारे कहने से अवश्य वेदों को पढ़ें।

जब हम यह बात कहते हैं कि वेद गंवारों के गीत हैं तो आप को अचम्भा होता है क्योंकि स्वामी जी ने इस के विपरीत आप को यह निश्चय कराया है कि संसार भर का जो ज्ञान है और जो कुछ विद्या धार्मिक वा लौकिक संसार भर में है वा आगे को होने वाली है वह सब वेदों में है और वेदों से ही मनुष्यों ने सीखी है।

परन्तु यदि आप जरा भी विचार करेंगे तो आप को हमारी बात का कुछ भी अचम्भा नहीं रहेगा क्योंकि स्वामीजी यह भी कहने हैं कि सृष्टिकी आदिमें जो मनुष्य बिना सा बाप के ईश्वर ने उत्पन्न किये थे, वह पशु ममान अज्ञानी और जंगली वहशियोंकी समान अनजान रहते यदि उनकी वेदों के द्वारा ज्ञान न दिया जाता। अब आप विचार कीजिये कि ऐसे पशु समान मनुष्योंको क्या शिक्षा दी जा सकती है ? यदि किसी अनपढ़ को पढ़ाया जावे तो क्या उसको वह विद्या पढ़ाई जावेगी जो कालिजोंमें एम० ए० वा बी ए० वालोंको पढ़ाई जाती है ? वा प्रथम अ आ धर्गेह अक्षर सिखाये जावेंगे ? यदि किसीको सुन्दर तमबीर बनाना सिखाया जावे तो उसको प्रथम ही सुन्दर तमबीर खींचनी बताई जा-

वेगी वा प्रथम लकार खींचनी सिखाई जावेगी ? यदि किसीको होशियार बड़ईका काम सिखाना हो तो उसको प्रथम मेज़ कुर्मी व सुन्दर सन्दूककी आदि बनाना और लकड़ी पर खुदाईका काम करना सिखाया जावेगा वा प्रथम कुल्हाड़ेसे लकड़ी फाड़ना ! इस ही प्रकार आप स्वयं विचार करलेवे कि यदि वेदोंमें उन जंगली मनुष्योंके वास्ते शिक्षा होती तो कैसी मोटी और गंवारू शिक्षा होती।

इस के उत्तर में आप यह ही कहेंगे कि उनके वास्ते प्रथम शिक्षा बहुत ही मोटी मोटी बातोंकी होती और क्रम से कुछ कुछ बारीक बातोंकी शिक्षा बढ़ती रहती परन्तु यदि आप वेदोंको पढ़ें तो आप को मालूम हो जावे कि स्वामी दयानन्दजीके अर्थोंके अनुसार वेदोंका सब मज़मून प्रारम्भसे अन्त तक एक ही प्रकार का है। यद्यपि उस में कोई शिक्षाकी बात नहीं है बल्कि साधारण कवियोंके गीत हैं, परन्तु यदि आप उन गीतोंकी शिक्षाका ही मज़मून कहें तो भी जिस प्रकार और जिस विषयका गीत प्रारम्भ में है अन्त तक वैसा ही चलागया है। आप जानते हैं कि ग्रामीण लोग जो खेती करते और पशु पालते हैं वह वहशी जंगली लोगोंसे बहुत होशियार हैं क्योंकि कमसे कम घर बनाकर रहना, आगसे पकाकर रोटी खाना अन्न पहनना, आदिक बहुत काम जानते हैं, और वहशी लोग इन कामों

में से कोई काम भी नहीं जानते ।

स्वामीजी के कथनानुसार जो मनुष्य सृष्टिके आदिमें बिना मा बापके पैदा किये गये थे वह तो वहशियोंसे भी अज्ञान होंगे क्योंकि उन्होंने तो अपनेसे पहले किसी मनुष्यको या मनुष्यके किसी कर्तव्यको देखा ही नहीं है । इस कारण जो शिक्षा ग्रामीण लोगोंको दी जा सकती है उससे भी बहुत मोटी र बातोंकी शिक्षा वहशी लोगों की दी जा सकती है और सृष्टिकी आदि में उत्पन्न हुए मनुष्योंके वास्ते तो बहुत ही ज्यादा मोटी शिक्षाकी जरूरत है-- हम कारण यदि हम यह कहते हैं कि वेदोंका मज़मून ग्रामीण लोगोंके विषयका है तो हम वेदोंकी प्रशंसा करते हैं और जो लोग यह कहते हैं कि वेदोंकी शिक्षा सृष्टिके आदिमें उत्पन्न हुए मनुष्योंको दी गई थी जो जंगली पशुके समान थे अर्थात् ग्रामीण लोगों से भी मूर्ख थे तो वह वेदोंकी निन्दा करते हैं -

खैर ! निन्दा हो वा स्तुति हम को वेदोंके ही मज़मूनों से देखना चाहिये कि उसका मज़मून किन लोगोंके प्रति मालूम होता है-इस बात की जांचके वास्ते हम स्वामी दयानन्द सरस्वती जीके वेदभाष्य अर्थात् स्वामीजीके बनाये वेदोंके अर्थसे कुछ वाक्य निखते हैं जिससे यह सन्न बात स्पष्ट विदित हो आवेगी । और यह भी मालूम हो आवेगा कि वेदोंके द्वारा ईश्वर शिक्षा

देरहा है वा संसारके मनुष्य अपनी अवस्था के अनुसार कथन कर रहे हैं--

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६१ ऋ० ११

“ हे नेता अग्रगन्ता जनों तुम अपने को उत्तम कामकी दृष्टिसे इस गवादि पशुके लिये नाचे और ऊँचे प्रदेशों में काटने योग्य घासको और जलोंको उत्पन्न करो । ”

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ५७ ऋ० ४-५-८

“ हे खेती करने वाले जन ! जैसे बैल आदि पशु सुख को प्राप्त हों, मुखिया कृषावल सुखको करें, इनका अवयव सुख जमे हा वैसे पृथिवीमें प्रविष्ट हो और बैलकी रस्मी सुख पूर्वक बांधी जाय, वैसे खेतीके साधन के अवयव को सुख पूर्वक ऊपर चलाओ । ”

“ हे क्षेत्र के स्वामी और भृत्य आप दोनों जिस इस कृषिविद्याकी प्रकाश करने वाली वाशा और जल की कृषिविद्याके प्रकाशमें करते हैं उनकी सेवा करो इस से इस भूमिकी मीची । जैसे भूमि खोदने की फाल बैल आदिकोंके द्वारा हम लोगों के लिये भूमिको सुख पूर्वक खोदें किसान सुख को प्राप्त हों मेघ मधुर आदि गुण से और जलों से सुखको वर्षावै वैसे सुख देनेवाले स्वामी और भृत्य कृषिकर्म करनेवाले तुम दोनों हम लोगोंमें सुखको धारण करो । ”

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त २७ ऋ० २

“ हे सबमें प्रकाशमान विद्वन् जो उत्तम प्रकार प्रशंसा किया गया अत्यंत बढ़ता अर्थात् वृद्धिको प्राप्त होता हुआ

मेरे गौओंके सैकड़ों और बीशों संख्या वाले समूह को और युक्त उत्तम धुरा जिनमें उन ले चलने वाले घोड़ोंको भी देता है उस तीन गुणों वाले पुरुष के लिये आप गृह वा सुखको दीजिये ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२० ऋ० ८

“ आपकी रक्षासे हम लोगोंकी दूध भरे धनों से अपने बछड़ों समेत मनुष्यादिको पालती हुई गौयें बछड़ोंसे रहित अर्थात् वन्ध्या मत हों और वे हमारे घरोंसे विदेशमें मत पहुँचें । ”

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ५३ ऋ० ९-१०

“ हे सब ओरसे पशुविद्याके प्रकाश करने वाले जो आप की व्याप्त होने वाली, जिस में गौएं परस्पर सोती हैं और जिससे पशुओं को सिद्ध करते हैं वह क्रिया वर्त्तमान है उस से आपके सुखको हम लोग मांगते हैं । ”

“ हे पशु पालने वाले विद्वन् आप हम लोगोंके लिये प्राप्तिके अर्थ गौओंको अलग करनेवाली और घोड़ोंका विभाग करने वाली और अन्नादि पदार्थ का विभाग करने वाली उत्तम बुद्धिको मनुष्यों के तुल्य करो । ”

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ५८ ऋ० २

“ हे मनुष्यो जो भेड़ बकरी और घोड़ों को रखने वाला जो पशुओंकी रक्षा करने वाला तथा घर में अन्नोंको रखने वाला बुद्धिको तुल्य करता है वह समग्र संसार में स्थापन किया हुआ पुष्टि करने वाला शिषि और पदार्थों में व्याप्त बुद्धि और गृहों की अच्छे

प्रकार कामना वा उनका उपदेश करता हुआ विद्वान् प्राप्त होता वा जाता है तथा उत्तमता से वर्जता है उसका तुम लोग सेवन करो । ”

( दूध दुहनेवाले ग्वालेकागीत )

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६४ ऋ० २६

“ जैसे सुन्दर जिसके हाथ और गी को दुहता हुआ मैं इस अच्छे दुहाती अर्थात् कामोंको पूरा करती हुई दूध देने वाली गौ रूप विद्याकी स्वीकार करूँ ”

ऋग्वेद मंडल छठा सूक्त १ ऋ० १२

“ हे वमने वाले आप हम लोगोंमें क- और पुत्रके लिये पशु गौ आदिको तथा ... गृह और... अन्न आदि सामग्रियोंको बहुत धारण करिये जिससे हम लोगों के लिये ही मनुष्योंके सदृश कल्याण कारक उत्तम प्रकार संस्कारसे युक्त अन्न में हुए पदार्थ हों । ”

ऋग्वेद पंचम मंडल सू० ४१ ऋ० ११

“ यज्ञ की कामना करते हुए के लिये हम लोगोंकी रक्षा करिये वा प ओं और अन्नोंके सदृश हम लोगोंके लिये भोगोंको प्राप्त कराइये । ”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सू० २८ ऋ० १-२

३-८

“ हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्य युक्त कर्मके करने वाले मनुष्य तुम जिन यज्ञ आदि व्यवहारोंमें बड़ी जड़का जो कि भूमिसे कुछ ऊँचे रहनेवाले पत्थर और मूसलके अन्नादि कूटनेके लिये युक्त करते हो उनमें उलली मूसलके कूटे हुए पदार्थोंकी ग्रहण

करके उनकी सदा उत्तमताके साथ रक्षा करो और अच्छे विचारोंसे युक्तिके साथ पदार्थमिदु होने के लिये इसको नित्य ही चलाया करो-भावार्थ-भारी से पत्थर में गढ़ा करके भूमि में गाड़ो जो भूमिसे कुछ ऊंचा रहे उसमें अन्न स्थापन करके मूसल से उसको कूटो ।”

“हे ऐश्वर्यवाले विद्वान् मनुष्य तुम दो जंघों के समान जिम व्यवहार में अच्छे प्रकार वा असार अलग २ करने के पात्र अर्थात् शिल बहे होते हैं उन को अच्छे प्रकार सिद्ध करके शिलबहे से शुद्ध किये हुए पदार्थों के मकाश स सारको प्राप्त हो और उत्तम विचार से उमी की बार बार पदार्थों पर चला । भावार्थ । एक तो पत्थरकी शिला नीचे रखे और दूसरी ऊपर से पीमने के लिये बहा जिमको हाथ में लेकर पदार्थ पीसे जाय इससे औषधि आदि पदार्थ पीमकर खावे यह भी दूसरा साधन उसली मूसल के समान बनना चाहिये ।”

हे ( इन्द्र ) इन्द्रियोंके स्वामी जीव तू जिस कर्म में घर के बीच स्त्रियां अपनी संगि स्त्रियों के लिये उक्त उलूख लों से सिद्ध की हुई विद्या को जैसे डालना निकलनादि क्रिया करनी होती है वैसे उस विद्या को शिलासे ग्रहण करती और कराती हैं उस को अनेक तर्कों के साथ सुनो और इस का उपदेश करो ।”

ओ रस खींचने में चतुर बड़े विद्वानों

ने अतिस्थूल काठ के उसली मूसल सिद्ध किये हों जो हमारे ऐश्वर्य प्राप्त करानेवाले व्यवहार के लिये आज मधुर आदि प्रशंसनीय गुणवाले पदार्थों का मिदु करने के हेतु होते होंवे सब मनुष्यों को साधने योग्य हैं ।”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६१ अ० ८  
“ हे उत्तम धनुषवाला में कुशल अच्छे वैद्यो, तुम पच्य भोजन चाहनेवालों से इस जलको पिओ इस मूत्र के तृणों से शुद्ध किये हुए जलको पिओ अथवा नहीं पिओ इस प्रकार से ही कहो औरा को उपदेश देओ ।”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२४ अ० ११ “जैसे यह प्रभात बेला लाली लिये हुए सूर्यकी किरणोंके सेनाके समान समूहको जोड़ती और पहले बढ़ती है वैसे पूरी चौबीस ( २४ ) वर्ष की जवान-खी लाल रंगके गौ आदि पशुओंके समूहको जोड़ती पीछे उन्नति का प्राप्त होती-”

( नोट ) किमी गांवके रहने वाले कवि ने यह उपरोक्त प्रशंसा पशु चराने वाली खी की की है ॥

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३९ अ० २  
“ वखों को ओढ़ती हुई सुन्दर खी के तुल्य ॥ ”

( नोट ) इससे विदित होता है कि उस समय वख पहननेका प्रचार बहुत नहीं हुआ था जो स्त्री वस्त्र पहनती थी वह प्रशंसा योग्य होती थी ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त २६ अ० १

“ हे बल पराक्रम और श्रद्धादि पदार्थोंका पालन करने और कराने वाले विद्वान् तू अस्त्रोंको धारण कर ही । हम लोगोंके इस प्रत्यक्ष तीन प्रकारके यज्ञको मिट्ट कर । ”

[ नोट ] इससे विदित होता है कि उस समय में मनुष्य वस्त्र नहीं पहनते थे इस ही कारण यज्ञके समय वस्त्र पहन कर आने पर जोर दिया गया है ॥

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २८ अ० ६

“ उत्तम प्रतीत कराने वाले द्वारआदि जिस में उम कल्याण करने शुद्ध वायु अल और वृत्त वाले गृहको करिये । ”

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ५५ अ० ५-८

“ जो मनुष्य जैसे मेरे घरमें मेरी नाता सब औरसे सोवे पिता सोव कुत्ता सोवे प्रजापति सोवे सब संबन्धी सब आरसे सोवे यह उत्तम विद्वान् सोवे वेसे तुम्हारे घरमें भी सोवें । ”

“ हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग जो अतीव सब प्रकार उत्तम सुखोंकी प्राप्ति कराने वाले घरमें सोती हैं वा जो प्राप्ति कराने वाले घरमें सोती वा जो पलंग सोने वाली उत्तम स्त्री विवाहित तथा जिन का शुद्ध गन्ध हो उन सबों को हम लोग उत्तम घरमें सुलावें वैसे तुम भी उत्तम घरमें सुनाओ । ”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६२ अ० ६-८-१४

“ जो खम्भेके लिये काष्ठ काटने वाले और भी जो खम्भेको प्राप्त कराने वाले जन घोड़ोंके बांधनेके लिये किसी वि-

शेष वृत्तको काटते हैं और जो घोड़ेके लिये पकानेकी धारण करते और पुष्टि करते हैं । जो उनके बीच निश्चयसे सब और से उत्तमी है वह हम लोगोंको प्राप्त होवे । ”

“ हे विद्वान् इस शीघ्र दूसरे स्थानको पहुंचाने वाले बलवान् घोड़ेकी जो अच्छे प्रकार दी जाती है और घोड़ोंको दमन करती अर्थात् उनके बलको दबाती हुई लगाम है जो शिरमें उत्तम व्याप्त होती वाली रस्मी है अथवा जो इसकी मुखमें तृण वीरुध घास अच्छे प्रकार भरी होवे समस्त तुम्हारे पदार्थ विद्वानोंमें भी हों । ”

“ हे घोड़ेके सिखाने वाले शीघ्र जाने वाले घोड़ोंका जो निश्चित चलना निश्चित बैठना नाना प्रकार से चलाना फिराना और पिछाड़ी बांधना तथा उसको उढ़ाना है और यह घोड़ा जो पीता और जो घासको खाता है वे समस्त उक्त काम तुम्हारे हों और यह समस्त विद्वानोंमें भी हों । ”

( नोट ) इससे विदित होता है कि घोड़ेकी सार्देसीका काम उस समय बहुत अद्भुत समझा जाता था ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५३ अ० १४

“ हे विद्वान् ! आपके अनार्यदेशोंमें बसने वालोंमें गायोंसे नहीं दुग्ध आदिको दुहते हैं दिनको नहीं तपाते हैं वे क्या करते वा करेंगे । ”

( नोट ) इससे विदित होता है कि उस समय ऐसे भी देश थे जहांके रहने

वालोंकी दूधको दुहना आदिक भी नहीं आता था ।

जिस प्रकार खेती करने वाले ग्रामीण लोग आज कल अपना बैठना उठना उस ही मकानमें रखते हैं जिनमें डंगर ( पशु ) बांधे जाते हैं और वहाँ पर अपने गंवारू गीत भी गाते रहते हैं इस ही प्रकार वेदों के बनाने वाले करते थे—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७३ ऋ० १

“ओ सुख सम्बन्धी वा सुखात्पादक अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त आकाशके बीचमें साधु अर्थात् गगन मंडलमें व्याप्त साम गान को विद्वान् आप जैसे स्वीकार करें वैसे गावें और अन्तरिक्षमें जो करवें उन के समान जो न हिंसा करने योग्य दूध देने वाली गौयें मनोहर जिनमें स्थित होते हैं उस घरको अच्छे प्रकार सेवन करें उस सामगान और उन गौओंकी हम लोग सराहें उन का स्तुकार करें ॥”

## आर्यमत लीला ।

( ८ )

प्यारे आर्या भाईयो ! हमने स्वामी दयानन्द सरस्वतीके अर्थोंके अनुसार वेदोंके वाक्योंसे स्पष्ट सिद्ध कर दिया है कि वेदोंके गीतोंमें ग्रामीण लोगों ने अपने नित्यके व्यवहारके गीतगाये हैं इससे आपको वेदोंकी स्वयम् पढ़कर देखने और जांच करनेका शौक अवश्य पैदा होगया होगा जिन भाइयोंकी अब भी वेदोंकी जांच करनेकी उत्तमजा

नहीं हुई है, उनके बास्ते इस यहाँ तक लिखना चाहते हैं कि वेदोंके गीतोंके ग्रामीण मनुष्य अपने ग्रामके मुखिया वा चौधरी वा मुकद्दम वा पटैलकी ही राजा कहते थे । वेदोंमें राजाका बहुत वर्णन है और राजाकी प्रशंसा में ही बहुधा कर वेद भरा हुआ है परन्तु जिस प्रकार अधिक खेती और अधिक पशु रखने वाले ग्रामीणको वेदोंमें राजा माना गया है ऐसा ही वेदोंमें उनकी ग्रामीण बातोंकी प्रशंसा की गई है । इस विषयमें हम स्वामी दया नन्द सरस्वतीजीके वेद भाष्यके हिन्दी अर्थोंसे कुछ वाक्य नीचे लिखते हैं—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ११७ ऋ० ५

“हे दुःखका नाश करनेवाले कृषि कर्म की विद्यामें परिपूर्ण सभा सेनाधीशो तुम दोनों प्रशंसा करनेके लिये भूमिके ऊपर रात्रिमें निवास करते और सुख स सोते हुए के समान वा सूर्यके समान और शोभाके लिये सुवर्णके समान देखने योग्य रूप फारेसे जोते हुए खेत की ऊपरसे बीओ ।”

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४७ ऋ० २२

“हे सूर्यके सदृश अत्यन्त ऐश्वर्यसे युक्त जो आपके बहुत अन्नसे युक्त धन की दशा की ओं खजानोंकी प्राप्त होनेवाली भूमियों की स्तुति करनेवाला ।”

( नोट ) आजकल रैलीआदर करोड़ों

रुपयाका अन्न हिन्दुस्तानसे विलायत की लेजाता है परन्तु वेदोंमें उसकी मात्रसे ज्यादा ऐश्वर्यमान माना गया है

जिसके दस खाती अनाज हो ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त २४ ऋ० ७  
“जो राजा आज...ऐश्वर्य युक्तके लिये  
( सोमम् ) ऐश्वर्यको उत्पन्न करें पाकों  
को पकावें और यवों को भूजें.....बल  
युक्त मनुष्य को धारण करे वह बहुत  
जीतने वाली सेनाको प्राप्त होवै ।”

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त २७ ऋ० १  
“हे राजा जो शत्रुओंकी हिंसा करने  
वाले बलसे कामना करते हुए आप  
मनुष्य जिस में बैठते वा गौयें जिसमें  
विद्यमान ऐसे जाने के स्थान में हम  
लोगों को अच्छे प्रकार सेधिये ।”

( नोट ) ग्रामीण लोगोंके बैठनेका  
वह ही सकान होता है जिस में गौ  
आदि पशु बांधे जाते हैं ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त १५ ऋ० १६  
“हे सुन्दर सेना वाले विद्वान् राजन्  
प्रसिद्ध आप सम्पूर्ण विद्वानों वा वीर  
पुरुषोंके साथ बहुत ऊर्णाके वस्त्रों से  
युक्त गृहमें वर्तमान हो ।”

( नोट ) यह हमने पहले सिद्ध किया  
है कि वेदोंके समय में वस्त्र पहननेका  
प्रचार बहुत कम था और राजा आ-  
दिक बड़े आदमी जो वस्त्र पहनते थे  
उनकी बहुत प्रशंसा होती थी औरऐसा  
मालूम होता है कि रूईका कपड़ा धु-  
नने की विद्या उनको मालूम नहीं थी  
वरण उनसे ही कम्बल आदिक बना-  
लते थे ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २४ ऋ० ४  
“हे बहुत सामर्थ्यवान् दुःखके नाश

करनेवाले बुद्धि और प्रजासे युक्त आप  
की गौओं की गतियोंके सदृश अच्छे  
प्रकार चलने वाली भूमियां और सा  
मर्थ्य वाली बड़होंकी विस्तृत पंक्तियों  
के सदृश आपकी प्रजा हैं ।”

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २८ ऋ० ४  
“हे विद्वानोंमें अग्रणी जनों, जिसराजा  
के होने पर पाक पकाया जाता है भूजे  
हुए अन्न हैं चारों ओर से अत्यंत  
मिला हुआ उत्पन्न ( सोम ) ऐश्वर्यका  
योग वा ओषधिका रस होता है.....  
वह आप हम लोग के राजा हूजिये।”

( नोट ) यह हम अगले लेखोंमें सिद्ध  
करेंगे कि भंगकी सोमरस कहते थे देखो  
वेदोंके समय में जिस राजाके राज्य  
होनेके समयमें भोजन पकाया जावै  
और भुना हुआ अनाज और भंगवाटी  
जावै उसकी प्रशंसा होती थी

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४५ ऋ० २४  
जो दुष्ट चोरोंको मारने वाला राजा  
बुद्धि वाले कर्मोंसे अत्यंत विभाग कर  
ने वालेके प्रशंसित गौयें विद्यमान और  
चलते हैं जिस में उसको प्राप्त होता  
है वह ही हम लोगों को स्वीकार करे

( नोट ) जिस राजाके यहां गऊ और  
घड़नेके वास्ते सवारी उसकी प्रशंसा  
की गई है ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३४ ऋ० ६  
“हे परम बलवान्...जो आपकी समस्त  
गौएं ही भोगनेके कान्तियुक्त घृतको  
पूरा करती और अच्छे प्रकार भोजन  
करने योग्य दुग्धादि पदार्थ को पूरा  
करती ।”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३९ ऋ० २  
“हे सूर्यके समान वर्तमान राजन् आप  
के जो प्रबल उवान वृषभ उत्तम अन्न  
का योग करने वाले शक्ति बन्धक  
और रमण साधन रथ और निरन्तर  
गमन शील घोड़े हैं उनको यत्नवान  
करो अथात् उन पर चढ़ो उन्हें कार्य  
कारी करो ।”

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १८ ऋ० १६  
“जो ऐश्वर्य युक्त शत्रुओंको विदीर्णकर  
ने वाला शुभ गुणोंमें व्याप्त राजा पके  
हुए दूधको पीने वा वर्षने वा बल क-  
रने वाले सेनापतिको पाकर अनैश्वर्य  
को दूर करता है ।”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४२ ऋ० ८  
“ हे मभाध्यक्ष.....उत्तम यव आदि  
औषधि होने वाले देश को प्राप्त की-  
जिये ।,,

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ६० ऋ० ९  
“हे सुखकी भावना कराने वाले सूर्य  
और बिजुलीके समान मभा सेना-  
धीशो आप दोनों जो ये प्रशंसा  
यें प्रशंसा करती हैं उनसे सब ओर से  
उत्पन्न किये हुए दूध आदि रसको  
पियो ।”

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३१ ऋ० १  
“सेनाका ईश गौओंका पालन करने  
वाला ।,,

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त २९ ऋ० १३  
“जो पवित्र हिंसा अर्थात् किसीसे दुख  
को न प्राप्त हुआ राजा जिनसे अच्छे  
जो आदि अन्न उत्पन्न हों उन जलों  
के निकट बसता है ।,,

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३८ ऋ० ४  
“हे वृष्टि करने वाले जिनके खेरी  
(बकरी) और घोड़े विद्यमान हैं ऐसे।,,

ग्रामीण लोगोंमें जैसे खेती  
आदिका काम अन्य मनुष्यों  
से कुछ अधिक जानने वाला  
वृद्धिमान गिना जाता है। इस  
ही प्रकार वेदोंमें जिनको  
विद्वान् वर्णन किया गया है  
वह ऐसे ही ग्रामीण लोगथे  
यथा:-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५३ ऋ० २  
विद्वानोंकी पूजा स्तुति करते हैं जो  
कृषि शिक्षा दें मित्रोंके मित्रों दूध  
देने वाली गौके सुख देने वाले द्वारों  
को जाने उत्तम यव आदि अन्न और  
उत्तम धनके देने वाले हैं ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १४४ ऋ० ६  
“हे सूर्यके समान प्रकाशमान विद्वान्  
आप ही पशुओंकी पालना करने वाले  
के समान अपने से अन्तरिक्ष में हुई  
वृष्टि आदि के विज्ञान को प्रकाशित  
करते हो ।,, ऋ० ५ ऋग्वेद दूसरा मं-  
डल सूक्त ९ “ हे सब विषयों को धा-  
रण करने वाले विद्वान् जो मनोहर  
गौओं से वा बैलों से वा जिन में आ-  
ठ मत्यामत्यके निर्णय करने वाले  
चरण हैं, उन वाणियों से बुलाये हुये  
आप हम लोगोंके लिये सुख दियेहुए  
हैं सो हम लोगोंसे सत्कार पाने योग्य  
हैं ।,, ऋ० ६ ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त



२७ “ हे विद्वान लोगो ! हमको—उपदेश करो और जो यह बड़ी कठिनता से टूट फूटे ऐसे विद्याभ्यानादिके लिये बना हुआ घर है वह हमारे लिये देओ । ”

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ४२ ऋ० ३  
“ कस्यान के कहने वाले होते हुये आप उत्तम घरोंके दाहिनी ओर से शब्द करो अर्थात् उपदेश करो जिससे ओर हम लोगोंकी कष्ट देने की मत मन्थ हो । ”

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त २१ ऋ० १  
“ हे संपूर्ण उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता चिकने घृत और छोटे पदार्थोंके दाता विद्वान ! ”

## आर्यमत लीला ।

( ६ )

राजपूतानेके पुराने राजाओंकी कथाओंके पढ़नेसे मालूम होता है कि राजा लोग लड़ाई में भाटोंकी अपने साथ ले जाया करते थे जो लड़ाईके कबिल चुना कर बीरोंकी लड़नेकी उत्तेजना दिया करते थे । इस प्रकारके गीत वेदोंमें बहुत मिलते हैं । हम स्वामी दयानन्दके वेद भाष्यसे कुछ वाक्य इस विषयके नीचे लिखते हैं ॥  
ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७५ ऋ० ३

“ हे सेनापति जिन कारण शूरवीर निहर सेनाको संविभाग करने अर्थात् पद्मादि व्यूह रचनासे बांटने वाले आप मनुष्या और युद्धके लिये प्रवृत्त किये हुए रथको प्रेरणा दें अर्थात् युद्ध

समयमें आगेकी बढावें और बलवान आप दीपते हुए अग्निकी लपटसे जैसे काष्ठ आदिके पात्रको वैसे दुःशील दुराचारी दस्युको जलाओ इससे मान्यभागी होओ । ”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५२ ऋ० ५  
८-१० “ जो सूर्यके समान अपने शस्त्रोंकी कृष्टि करता हुआ शत्रुओंको प्रगल्भतादि खाने हारा शत्रुओंको छदन करने वाले शस्त्र समूहसे युक्त सभाध्यक्ष हर्षमें इस युद्धकरते हुए शत्रुके ऊपर मध्य टेढ़ी तीन रेखाओंसे सब प्रकार ऊपरकी गोल रेखा समान बनकी भय प्रकार भेदन

करता है ”—हे सभापति भुजाओंके मध्य लोहेके शस्त्रोंकी धारण कीजिये बीरोंकी कराइये ॥

“ बगकारी बज्रके शब्दोंसे और भयसे बनके साथ शत्रु लोग भागते हैं ॥ ”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ६३ ऋ० २-६-७

“ हे सभाध्यक्ष जिस वज्रसे शत्रुओंको मारते तथा जिनसे उनके बहुत नगरोंका जातनेके लिये इच्छा करते और शत्रुओंके पराजय और अपने विजयके लिये प्रतिक्षणके जाते हो इससे सब विद्याओंकी स्तुति करनेवाला मनुष्य आपके भुजाओंके बलके आश्रयसे वज्रकी धारण करता है ।

हे सभाध्यक्ष संग्राममें आपकी निश्रय करके पुकारते हैं । ”

हे उत्तम शस्त्रोंसे युक्त सभाके अधिपति शत्रुओंके साथ युद्धकरते हुये

जिस कारण तुम उन २ शत्रुओं के न-  
गरों को खिदारण करते हो... इस का-  
रण आप हम सब लोगों को सत्कार  
करने योग्य हो ।”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ८० ऋचा १३  
अपनी सभाओंका शत्रुओंके साथ अच्छे  
प्रकार युद्ध करा शत्रुआ को मारनेवाले  
“...आप का यश बढ़ेगा ।”

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४६ ऋ० २  
प्रसिद्ध वीरों को लड़ाइये शत्रुओंको  
पराजय को पहुंचाइये ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६२ ऋचा १  
ऋतु २ में यज्ञ करने हारे हम लोग  
संग्राम में जिस व्रगवान विद्वानों से  
वा दिव्य गुणों से प्रगट हुए घोड़े के  
पराक्रमों का कहेंगे उस हमारे घोड़े के  
पराक्रमों को मित्र श्रेष्ठ न्यायाधीश  
ज्ञाता ऐश्वर्यवान बुद्धिमान और ऋ-  
त्विज लोग छोड़के मत कहें और उसके  
अनुकूल उसकी प्रशंसा करें ।

ऋग्वेद चौथामंडलसूक्त १८ ऋ० का भावार्थ  
जैसे नदियां अलल अर्वाती हुई उ-  
च्चस्वर करती हुई तटों को तोड़ती  
हुई जाती हैं वैसेही सेना शत्रुओं के स-  
न्मुख प्राप्त होव ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १८ ऋ० ८  
सेना से शत्रुओं का नाश करो जैसे  
नदी तटको तोड़ती है ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४१ ऋचा २  
वह महाशयों के साथ संग्रामों में  
शत्रुओं की सेनाओं और शत्रुओं का  
नाश करता है उसको यशस्वी सुन-  
ता हूं ।

ऋग्वेद मत्स्य मंडल सूक्त ६ ऋचा ४  
हे मनुष्यों जो मनुष्योंमें उत्तम २ बा-  
णियों से बुरा चलना जिसमें हो उस  
अन्धकारमें आनन्द करती हुई पूर्वको  
चलने वाली सेनाओं को करता है...  
उसका हम लोग सत्कार करें । ”

वेदोंमें बहुत से गीत ऐसे मिलते हैं  
जो योधा लोग अपनी शूरवीरता की  
प्रशंसामें और लड़ाई की उत्तेजना में  
गाया करते थे तथा:-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६५ ऋ० ६-८  
“ जेमे बलवान् तीव्र स्वभाव वाला  
मैं जो बलवान् समय शत्रुके बधसे न्ह-  
वाने वाले शस्त्र उनके साथ नमता हूं  
उसी मुझको तुम सुखसे धारण करो । ”

“ हे प्राणके समान प्रिय विद्वानो !  
जिसके हाथमें वज्र है ऐसा होने वाला  
मैं जैसे सूर्य मेघको मार जलों को सु-  
न्दर जाने वाले करता है वैसे अपने क्रो-  
धसे और मन से बलसे शत्रुओंको मा-  
रता हूं । ”

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३७ ऋ० १  
“ हे सेना के अधीश जैसे हम लोग  
मेघके नाश करनेके लिये जो बल उस  
के लिये सूर्यके समान संग्राम के सहने  
वाले बलके लिये आपका आश्रय करते  
हैं वैसे आप भी हम लोगोंको इस बल  
के लिये बर्ती । ”

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४ ऋ० १  
“ आपके साथ संग्रामको करते वा  
कराते हुए हम लोग मरण धर्म वाले  
शत्रुओंकी सेनाओं को सब ओरसे जी-  
तें इससे धम, और यशसे युक्त होंगे, ”

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके वेदों के अर्थोंस यह मालूम होता है कि वेदों के गीतोंके बनानेके समय में एक ग्राम वासियोंका दूसरे ग्राम वासियोंसे नि-  
त्य युद्ध रहा करता था और बहुत कुछ मार धाड़ रहती थी—आज कल भी दे-  
खनेमें आता है कि एक ग्राम वाले दू-  
सरे ग्राम वाले की खती काट लेते हैं  
पशु चुरा लेजाते हैं वा सीमापर भू  
गड़ा हो जाता है परन्तु सब ग्राम  
वाले एक राज्यके आधीन होनेके का-  
रण आज कल लड़ाई नहीं बढ़ती है  
बरण अदालतमें मुकदमा चलाया जा-  
ता है परन्तु उस समय जैसा हमने गत  
लेखमें सिद्ध किया है ग्रामका चौ-  
धरी वा मुखिया ही उस ग्रा-  
मका जमीन्दार वा राजा हो  
ताथा इस कारण ग्राम के सब लोग  
उसहीके साथ होकर दूसरे ग्राम वालों  
से लड़ा करते थे और मनुष्य बध कि-  
या करते थे—उस समय कोई कोई राजा  
ऐसा भी होता था जो दो चार वा अ-  
धिक ग्रामोंका राजा हो और लड़ाई  
में कई २ ग्राम के राजा भी सम्मिलित  
होजाया करते थे—वेदोंमें शत्रुओं  
को जान से मारहालने और  
उनके नगरोंकी विध्वंस करने  
की प्रेरणा के विषयमें बहुत  
अधिक गीत भरे हुए हैं स्वामी  
दयानन्द सरस्वतीजीके अर्थों के अनु-

सार तो हमारे अनुमान में प्रायः एक  
तिहाई वेद शत्रुओंके मारने  
की ही चर्चामें भरा हुआ है

ऐसा भी मालूम होता है कि संग्राम  
लूटके वास्ते भी होता था अर्थात् श-  
त्रुओंको पराजय करके उनको लूटलेते  
थे और लूटकी थोड़ा लोग आपस में  
बांट लेते थे हम स्वामी दयानन्द के  
वेद भाष्यके हिन्दी अर्थोंसे कुछ वाक्य  
इस विषयमें नीचे लिखते हैं—

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३७ अ० ५

“जिम प्रकार सेना का अधीनमें—  
शत्रुके नाशके लिये तथा संग्रामोंमें  
धन आदि की बांटनेके लिये  
राजाको समीप मैं कहता हूँ वैसे आप  
लोग भी इसके समीप कहो—”

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ६२ अ० ९

“जिससे हम लोग विभाग क-  
रते हुए शत्रुओंके धनोंकी जी-  
तनेकी इच्छा करने वाले होंगे—”

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २० ऋचा १०

“आप के रक्षण आदि से हम लोग  
सात नगरियोंका विभाग करें।”

वेदोंके गीतोंके बनाने वाले कवियों  
का ऐसा विचार था कि मेघ अर्थात् वा-  
दल पानीकी पोट बाध लेता है और  
पानी की भूमि पर नहीं गिरने देता  
है—सूर्य जो मनुष्यों का बहुत उपकारी  
है वह बादल से युद्ध करता है और  
मार मार कर बादलोंको तोड़ डालता  
है तब पानी बरसता है वेदों के क-  
वियों ने बादलोंको मार डालनेके का-

रण सूर्य को महान योद्धा और सा-  
हसी माना है वेदों के गीतों में वेदों  
के कवियों ने योद्धाओं और वीर पु-  
रुषों की प्रशंसा करते समय वा उन  
को युद्ध की उत्तेजना करते समय  
ही दृष्टान्त दिया है कि जिस प्रकार  
सूर्य मेघों को मारता है इस प्रकार  
तुम शत्रुओं को मारो हमारे अनुमान  
में तो वेदों में एक हजार बार वा इस  
से भी अधिक बार यह ही दृष्टान्त दि-  
या गया है वरण ऐसा भालूम होता  
है कि वेद बनाने वाले कवियों के पास  
इस दृष्टान्त के सिवाय कोई और दृ-  
ष्टान्त ही नहीं था-इस प्रकार वेदों में  
हजारों बार कहे हुये एक दृष्टान्त के  
हम पांच सात वाक्य नमूने के तौर  
पर लिखते हैं—

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त १७ ऋचा १

हे शस्त्र है हस्त में जिनके ऐसे-

मेघोंको सूर्य जैसे ऐसे सम्पूर्ण

शत्रुओं को आप विशेष करके नाश  
करिये।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ३२ ऋ० १-६-११

हे विद्वान् मनुष्यों तुम लोग जैसे  
सूर्य के जिन प्रसिद्ध पराक्रमोंको कहो  
उनको मैं भी शीघ्र कहूँ जैसे वह सब  
पदार्थों के छेदन करनेवाले किरणोंसे  
युक्त सूर्य मेघ को हनन करके वर्षाता  
उस मेघ के अवयव रूप जलों को नीचे  
ऊपर करता उसको पृथिवी पर गि-  
राता और उन मेघों के सकाश से न-  
दियों को छिन्न भिन्न करके बहाता है

मैं जैसे शत्रुओं को मारूँ उनको इधर  
उधर फेंकूँ और उन को तथा किला  
आदि स्थानों से युद्ध करने के लिये  
आई सेनाओं को छिन्न भिन्न करूँ।

दुष्ट अभिगानी युद्ध की इच्छा न क-  
रने वाले पुरुष के समान पदार्थों के  
रखको इकट्ठे करने और बहुत शत्रुओं  
को मारने हारे के तुल्य अत्यन्त बल  
युक्त शूरवीर के समान सूर्य लोक की  
उपस्था से प्रकाशित हुए के सदृश वर्तता  
है जब उनको रोते हुए के सदृश सूर्य  
ने जारा तब वह सारा हुवा सूर्यका  
शत्रु मेघ सूर्य ने घिस जाता है और  
वह इस सूर्य की ताड़नाओं के समूह  
को सह नहीं सका और निश्चय है कि  
इस मेघ के शरीर से उत्पन्न हुई न-  
दियां पर्वत और पृथिवी के बड़े बड़े  
टीलों को छिन्न भिन्न करती हुई वह-  
ती हैं जैसे ही सेनाओंमें प्रकाशमान  
सेनाध्यक्ष शत्रुओं में चेष्टा किया करें ॥

जल को मेघ रोकें हुये हांते हैं लके  
रखते हैं सूर्य मेघ को तोड़कर  
जल बरसाता है।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ६२ ऋचा ४

जैसे सूर्य मेघ को हनन करता है  
वैसे शत्रुओं को विदारण करते हो।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ८० ऋचा १३

सूरज मेघ को जिस प्रकार हनन क-  
रता है इस प्रकार शत्रु को मारनेवाले  
सभापति।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १२१ की ऋ०  
११ का आशय

जिसप्रकार सूर्यमेघको मारता है

इस तरह शत्रुओंको मारकर ऐसी नौद सुलाओ कि वह फिर न जाये ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३० ऋचा ८  
जैसे सूर्य मेघको पीसता है वैसे आप शत्रुओं का नाश करो ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४५ ऋ० २  
सूर्य जैसे मेघों को तोड़ता है वैसे हम लोग भी शत्रुओं के नगरोंके मध्य में वर्तमान बीरों को नाश करें ।

शत्रुओं का मारने के गीतों में तो साराही वेद भरा पड़ा है परंतु उसमेंसे हम कुछ एक वाक्य स्वामी दयानन्दके वेद भाष्य से नाचे लिखते हैं ।

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त ३० ऋचा ३

हे सूर्यके समान वर्तमान इन संग्रामों में...उमड़ोम करने वाले के समान शत्रुओं को युद्ध की आग में होसते हुए अग्नि के समान ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त २१ ऋचा ५  
जिस अग्नि वायुसे शत्रुजन पुत्रादि रहित हों उनका उपयोग सब लोग क्यों न करें ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ३२ ऋचा १२  
आप शत्रुओंको बांध शस्त्रोंसे काटते हैं इस ही कारण यद्धोंमें हम आपको अधिष्ठाता करते हैं ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ३९ ऋचा ३  
जिस प्रकार वायु अपने लक्ष से वृक्षादि को उखाड़ के तोड़ देता है वैसे शत्रुओंकी सेनाओंको नष्ट करो और

निश्चयसे इन शत्रुओंको तोड़ कोड़ उलट पुलट कर अपनी कीर्ति से दिशाओं की अनेक प्रकार व्याप्त करो ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ११७ ऋ० २१  
“ढाकू दृष्ट प्राणीको आग्न से जलाते हुये अत्यंत बड़े राज्यको करो ।”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३३ ऋ० २  
“शत्रुओंके शिरों को छिन्न भिन्न कर ।”

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त १८ ऋ० १  
“उन प्रतिकूल वर्तमान शत्रुओंको भस्म करिये ।”

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३० ऋ० ६  
“दूरस्थल में जिराजमान शत्रुओं की हिना करो ।”

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३० ऋ० १५  
“जो मारनेके योग्य बहुत विशेष शस्त्रों वाले शत्रु मनुष्य हों उनका नाश करके बढ़िये ।”

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४ ऋ० ४-५  
“शत्रुओंके प्रति निरन्तर दाह देओ ।”

“शत्रुओंका अच्छे प्रकार नाश करिये और बार बार पीड़ा दीजिये ।”

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १७ ऋ० ३  
“शस्त्र को प्राप्त होते हुए बलसे शत्रुओं की सेना का नाश करो और सेना से शत्रुओंका नाश करके रुधिरोंको बहाओ ।”

स्वामी दयानन्दजीके अर्थों के अनुसार वेदोंके पढ़ने से यह भी मालूम होता है कि जिन ग्राम वासियों ने वेदके गीत बनाये हैं उनकी कुछ विशेष ग्राम वासियों से शत्रुता पूरी २

जमी हुई थी और उन शत्रुओंको और उनके नगरोंको सर्वथा नाश करना चाहते थे और बहुतसे ग्रामों वाले मिलकर इनके शत्रु हो गये थे । यथा:-

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७४ ऋ० ८

“हे सूर्य के समान प्रतापवान् राजन् आप युद्ध की निवृत्तिके लिये हिंस्र शत्रुजनोंको मढ़ते हो । आप जैसे प्राचीन शत्रुओं की नगरियों की छिन्न भिन्न करते हुए वैसे भिन्न अलग २ शत्रुवर्गोंकी दुष्ट नगरियोंको नमाले ढहाते हो उससे राजस पन संचारते हुये शत्रुगणका नाश होता है यह जो आप के प्रसिद्ध शूरपनेके काम हैं उनकी नवीन प्रजा जन प्राप्त होवें ।”

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १८ ऋ० १३

“जैसे परम ऐश्वर्यवान् राजा बल से इन शत्रुओं के सातों पुरों को विशेषता से छिन्न भिन्न करता ।,

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ३१ ऋ० ४

“हे राजन् आप शत्रुके सैकड़ों नगरोंका नाश करते हो ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ७३ ऋ० २

शत्रुओंकी मारता हुआ तथा धनोंको प्राप्त होता हुआ शत्रुओं के नगरोंकी निगन्तर विदीर्ण करता है वह ही सेनापति होने योग्य है ।”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४१ ऋ० ३

“जो राजा लोग इन शत्रुओंके (दुर्ग) दुःखसे जाने योग्य प्रकोटों और नगरको छिन्न भिन्न करते और शत्रुओंको नष्ट करदेते हैं वे चक्रवर्ती राज्य को

प्राप्त होने को समर्थ होते हैं ।”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५३ ऋ० ७-८

आप हम शत्रुओंके नगर को नष्ट करते हो दुष्ट मनुष्यों के सैकड़ों नगरों को भेदन करते हो ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५४ ऋ० ६

आप दुष्टों के ९९ नगरोंकी नष्ट करते हो ।”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३० ऋ० ७०

“आप शत्रुओं की नष्ट नगरियोंकी विदारते नष्ट भष्ट करते ।,

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३४ ऋ० १

“हे राजपुरुष शत्रुओं के नगरों को तोड़ने वाले आप शत्रुओं का उल्लंघन करो ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३० ऋ० ३०

“जो तेजस्वी सूर्य के सदृश प्रकाशके सेवने वाले और देने वाले के लिये प्रेम्ही के समूहों के सदृश पाषाणों से बने हुए नगरों के सैकड़ों की काटें वही विजयी होने के योग्य होंगे ।”

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३२ ऋ० १०

“हे राजन् कामना करते हुए आप शत्रुओं की जो सेविकाओं (दासियों) के सदृश सब प्रकार रोग युक्त नगरियों को सब ओरसे प्राप्त हो कर जीतते हों उन आपके बल पराक्रमसे युक्त कर्सी का हम लोग उपदेश करें ।”

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त १८ ऋ० १४

“जिन्होंने परमैश्वर्य युक्त राजाके समस्त ही पराक्रम उत्पन्न किये वे अपने

को भूमि चाहते और दुष्ट अधर्मी जनों को मारने की इच्छा करते हुए माठवीर अर्थात् शरीर और आत्माके बल और शूरता से युक्त मनुष्य छः सहस्र शत्रुओं की अधिकतासे जीतते हैं वे भी कामठ सैकड़ों शत्रु जो सेवन की कामना करता है उसी लिये निरंतर सोते हैं ।”

## आर्यमत लीला ॥

( १० )

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने सत्यार्थप्रकाश के अष्टम समुल्लास में लिखा है कि आदि सृष्टि में एक मनुष्य जाति थी पश्चात् अष्टों का नाम आर्य विद्वान् देव और दुष्टों का दस्यु अर्थात् डाकू मूल नाम होनेसे आर्य और दस्यु का नाम हुआ आर्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए-जब आर्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव अविद्वान् जो असुर उन में मदा लड़ाई खड़े हुए किया जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य लोग यहां आकर बसे और इस देश का नाम आर्यावर्त हुआ—

वेदों के पढ़ने से भी यह मालूम होना है कि उनके साथ वेदों के गीत बनाने वालों की लड़ाई रहती थी और नित्य मनुष्यों को मारकर खूब बर्बाद जाना था उन को बहुधा वेदों में दस्यु लिखा है-इस से भी स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेद सृष्टि की

आदि में ईश्वर ने प्रकाश नहीं किये वरण जब कि दस्यु लोगों के साथ लड़ाई हुआ करती थी और मकान और नगर और कोट और दुर्ग अर्थात् किले बन गए थे उस समय वेदों के गीत बनाये गये हैं-वेदों में स्वामी जी के अर्थों के अनुसार दस्यु लोगों की कृष्ण वर्ण अर्थात् काले रंग के मनुष्य वर्णन किया है-जिस से मालूम होता है कि स्वामी जी ने जो दस्यु का अर्थ चोर डाकू किया है वह ठीक नहीं है क्योंकि सृष्टि की आदि में चोर डाकू हो जाने से क्या कोई मनुष्य काले रंग का हो जाता था इस से यह ही मालूम होता है कि जो लोग अपने को आर्य कहते थे वह अन्य देश के रहने वाले थे और काले रंग के दस्यु अन्य देश के रहने वाले थे अर्थात् अंग्रेजों का कथन इस से सत्य होता मालूम होता है कि आर्य लोगों का हिन्दुस्तान में भील गौड़ मण्डाल आदि जंगली और काले वर्ण की जातियों से बहुत भारी युद्ध रहा-

स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि आर्य और दस्यु लोगों का जब बहुत उपद्रव रहने लगा तब लाचार होकर अर्थात् हारकर आर्य लोग तिवत से इन हिन्दुस्तान देश में भाग आये परंतु आवश्यक है कि वेदों को ईश्वर का

वाक्य बताया जाता है और ईश्वर ने वेदों में चित्रित कर और बार बार बरखा हजारों बार यह कहा है कि तुम्हारी जीत हो, तुम शत्रुओं को मारो और दस्युओं का नाश करो परंतु ईश्वर का एक भी वाक्य मरुचा न हुआ और आयों को ही भागना पड़ा- स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश में यह भी लिखा है कि आर्यावर्तदेश से दक्षिण देश में रहने वाले मनुष्यों का नाम राजान है, परन्तु वेदों में राजानों से भी युद्ध करने और उनका सत्यानाश करने का वर्णन है। इससे स्पष्ट सिद्धित होता है कि वेदों के गीतों के बनाने के समय आर्यावर्त देश से दक्षिण में रहने वाले मनुष्यों से भी लड़ाई होनी थी। तिब्बत आर्यावर्त देश के उत्तर में है और राजान आर्यावर्त देश से दक्षिण में है इस हेतु राजानों से लड़ाई हो नहीं सकती जब तक लड़ने वाले आर्यावर्त में न बसते हों। इस से स्वामी जी का यह कथन सर्वथाही भूठ होता है कि तिब्बत देश में सृष्टि की आदि में वेदों का प्रकाश किया गया और तिब्बत से आने से पहले किसी देश में कोई मनुष्य नहीं रहता था क्योंकि यदि कोई मनुष्य नहीं रहता था तो आर्यावर्त देश के दक्षिण में राजान लोग कहां से उत्पन्न हो गये?

आर्यात् तिब्बत देश में प्रथम मनुष्यों का उत्पन्न होनाही सर्वथा असंगत होता है और यह ही मालूम होता है कि सर्व ही देशों में मनुष्य रहते चले आये हैं।

दस्यु और राजानोंको विध्वंस करने के विषय में जो गीत वेदों में है उन में से कुछ वाक्य स्वामी जी के अर्थों के अनुसार नीचे लिखे जाते हैं।

ऋग्वेद चौथा मंडलसूक्त १६ ऋचा १२-१३ महस्त्रों (दस्यून) दुष्ट चोरों को शीघ्र नाश कीजिये मर्माप में छेदन कीजिये सहस्त्रों कृष्णवर्ण वाले सैन्य जनों का विस्तार करो और दुष्ट पुरुषों का नाश करो।

ऋग्वेद चौथा मंडलसूक्त २८ ऋचा ४ (दस्यून) दुष्टों को सबसे पीड़ा युक्तकरें ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३० ऋचा १५ पांचमी वा महस्त्रों दुष्टों का नाश करो ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ३८ ऋचा १ हे राजान आप और सेनापति हारते हैं दस्यु जिससे ऐसे होते हुए।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ०४ ऋचा ६ हे बलवान के पुत्र-बध से (दस्यु) साहस कर्मकारी चौर का अत्यंत नाश करो।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त २९ ऋचा १० मुख रहित (दस्यून) दुष्ट चोरों का बध से नाश करिये।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ७० ऋ० ३ जिससे इस लोग शरीरोंसे (दस्यूनके) दुष्ट चोरों का नाश करें॥

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २३ ऋचा २



दस्युकानाश करिये

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५१ ऋचा ५

हे सभाध्यक्ष-( दस्यु हत्येषु ) डाकुओं के हननरूप संग्रामों में उन का द्विज भिन्न कर दीजिये ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३१ ऋ० २२

हे वीर पुरुषों जैसे हम लोग रक्षा आदिके लिये मेघोंकेअवयवों को सूर्य के समान इस वर्तमान पुष्ट करने के योग्य अन्न आदिके विभाग कारक संग्राम में धनों के उत्तम प्रकार जीतने वाले अति प्रधान संग्रामोंमें नाश करते और सुनते हुए तेजस्वी वृद्धि कर्ता अत्यंत धन से युक्त शत्रुओं के खिदारने वाले का स्वीकार वा प्रशंसा करै वैसे इस पुरुष का आप लोग भी आह्वान कर—

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३४ ऋ० ९

दस्युका नाश करके आर्योंकी रक्षाकरै

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४९ ऋ० २

शत्रुओं को दुख देनेवाले वीरों के माथ दस्यु के आयुः अवस्था का शीघ्र नाश करै उसकी सख का स्वामी करो-

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५३ ऋ० ७

असुर का अर्थ शत्रु ॥

अनेक प्रकार के रूप वा विकारयुक्त रूप वाले शत्रु ॥

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४४० १-१५

सन्ताप देने वाले शस्त्र आदिकों से ( राक्षसः ) दुष्टों को पीड़ा देओ-

(राक्षसः) दुष्टा चरणों को भस्म कीजिये

वेदों के बहने से मालूम होता है कि वेदों के समय में प्रायः तीर और बज्र अर्थात् गुज्र यह दोही हथियार थे । धनुष के द्वारा तीर चलाते थे और गुज्र हाथ में लेकर शत्रु को मारते थे । और तीरों की आघात से बचने के वास्ते कवच जिसका फारसी में जरा बकरत कहते हैं पहनते थे । तीर और गुज्र और कवच का कथन वेदों के अनेक गीतों में आया है । इन के सिवाय और किसी अस्त्र शस्त्र का नाम नहीं मिलता है । परन्तु आज कल तोप और बन्दूक जारी होगई हैं जिनके सामने तीर और बज्र सब हेच हो गये हैं और तोप बन्दूक के गोले गोलियों के मुकाबिले में कवच में कुछ भी रक्षा नहीं हो सकती है । इसही कारण आज कल कोई फौजी सिपाही कवच नहीं पहनता है । और आज कल तोप और बन्दूक भी नित्य नई से नई और अद्भुत बनती जाती हैं । यद्यपि वेदों में तीर, बज्र और कवच के सिवाय और किसी हथियार का वर्णन नहीं है परन्तु जिस प्रकार वेदों के गंधार गीतों में स्वामी जी ने कहीं कहीं रेल और रेल के इंजिन और दुखानी जहाज का नाम अपने अर्थों में जबरदस्ती घुनेइ दिया है, इस ही प्रकार ऋग्वेद प्रथम मंडलके सूक्त ८ की ऋचा ३ के हिन्दी अर्थ में तोप बन्दूक आदिक सब कुछ प्रकाश कराया है अर्थात् इस प्रकार लिखा है ।

हम लोग धार्मिक और शूरावीर हो कर अपने विजय के लिये ( बज्र ) शत्रुओं के बलका नाश करने का हेतु आग्नेयास्त्रादि अस्त्र और ( घना ) अष्ठ शस्त्रों का समूह जिनको कि भाषा में तोप बंदूक तलवार और धनुषबाण आदि कर के प्रसिद्ध करते हैं जो युद्ध की मिट्टी में हेतु हैं उनको ग्रहण करते हैं ।

बुद्धिमान पुरुषो ! विचार करो कि वज्र और घना इन दो शब्दों के अर्थ में किस प्रकार तोप बंदूक आदिक अनेक हथियार घुसेड़ गये हैं ? परन्तु हमारा काम यह नहीं है कि हम स्वामी जी के अर्थों में गलती निकालें क्योंकि हम तो प्रारम्भ से वेदों के विषय में जो कुछ लिख रहे हैं वह स्वामी जी के ही अर्थों के अनुसार लिख रहे हैं और आगामी भी उनही के अर्थों के अनुसार लिखेंगे । इस कारण हमनो केवल इतनाही कहना चाहते हैं कि वेदों में कहीं भी तोप बंदूक के बनाने की विधि नहीं बताई गई है वरण तीर, कमान, वज्र वा घना के बनाने की भी विधि नहीं मिखाई है जिस से यह ही ज्ञात होता है कि वेदों के प्रकाश से पहले से मनुष्य तोप बंदूक आदिक का बनाना जानते थे जिससे वेदों का सृष्टि की आदिमें उत्पन्न होना और वेदों के विना मनुष्यों का

अज्ञाना रहना विल्कुल अप्रमाण सिद्ध होजाता है परन्तु जो कुछ भी हो उन का कथन कितना ही पूर्वोपर विरुद्ध हो जावे और च. हे उन के सारे सिद्धान्त आप से आप खंडित होजावें परन्तु स्वामीजी को तो रेल तारबन्धी, और तोप बन्दूक का नाम किसी न किसी स्थान पर लिख कर यह जाहिर करना था कि वेदों में सर्व प्रकारकी विद्या भरी हुई है । अथ हम स्वामी दयानन्दजीके ही वेदों के अर्थोंको नीचे लिखकर दिखाते हैं कि किस प्रकार वेदोंमें तीर और वज्र, और कवचकाही वर्णन किया है और उन की अवस्था ऐसे ही हथियारोंके धारण करनेकी थी । वेदोंके गीत बनाने वाले ग्रामीण लोग तोप बन्दूककी स्वप्न में भी नहीं जानते थे । और यदि उस समय तोप बन्दूक होते तो शरीर को कवचसे क्यों ढकते ? ॥

ऋग्वेद मत्स्य मंडल सूक्त १६ ऋचा ५

“ विजुली के तुल्य वज्रको दुष्टों पर प्रहार कर-हे हाथमें बज्र रखने वाले ”

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २२ ऋचा ९

“ दाहिने हाथ में ( वज्रम् ) शस्त्र और अस्त्रको धारण करिये । ”

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २३ ऋचा १

“ भुजाओं में वज्र को धारण करते हुए जाते हो । ”

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २५ ऋचा ६

“ तीस सैकड़े कवच की धारण किये हुए । ”

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ५५ ऋचा १-१६-१८

“ हे वीर...कवचधारी होकर अनविधे शरीरसे तुम शत्रुओं की जीतो सो कवचका महत्त्व तुम्हें पाले ”

“ हे बाणों को व्याप्त होने वालों में उत्तम मैं तेरे शरीरस्थ जीवन हेतु अंगोंको कवचसे ढांपता हूं । ”

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३० ऋ० १६

“ इन शत्रुओंमें अतिशय तपते हुए बज्रको फंके इनको उत्तम प्रकार विनाश कीजिये । ”

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५३ ऋ० २४

“ संग्राममें धनुषकी तांत के शब्दको नित्य सब प्रकार प्राप्त करते हैं उसकी और उन की आप अपने आत्माके सदृश रक्षा करो । ”

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३३ ऋ० १

“ संग्राममें त्वचाको आच्छादन करने और रक्षा करने वाले कवच को देते हुए । ”

ऋ० पंचम मंडल सूक्त ४२ ऋ० ११

“ जो सुन्दर बाणोंसे युक्त उत्तम धनुष वाला । ”

## आर्यमत लीला ।

( ११ )

प्यारे आर्य भाइयो ! आधा वेद न-  
ड़ाई करने' शत्रुओं की मारने, मनुष्यों  
का खून करने और लूटसार आदिक  
की प्रेरणा और उत्तेजनमें वा राजासे  
रक्षा की प्रार्थना में भरा हुआ है ।  
जिस का नमूना हम भली भांति पि-  
छले लेख में स्वामी दयानन्द सरस्वती

जीके अर्थों के अनुसार दिखा चुके हैं।  
अब हम सोमका वर्णन करते हैं जिसके  
अधन में भी अनुमान एक चौथाई वेद  
भरा हुआ है ! सोम एक मद करने  
वाली वस्तु थी जिसकी उस समयके  
योग इकट्ठे होकर पीते थे । वेदों में  
सोम पीने की बहुत अधिक प्रेरणाकी  
गई है सोम पीने के वास्ते मित्रों को  
बुलाने के बहुत गीत गाये गये हैं प-  
रन्तु यह नहीं बताया है कि सोम  
क्या वस्तु है ? स्वामी दयानन्द सर-  
स्वती जीने वेदोंके अर्थ करने में सोम  
का अर्थ औषधिका रस वा बड़ी ओ-  
षधिका रस वा औषधि समूह वा सो  
मलता वा सोमवल्ली किया है । पर-  
न्तु यह आपने भी नहीं बताया कि  
जिस सोम पीने की प्रेरणामें एक चौ-  
थाई वेद भरा हुआ है वह सोम क्या  
औषधि है । वेदोंमें सिवाय इस सोम  
के और किसी औषधिका वर्णन नहीं  
है और न किसी रोगका कथन है ।  
इस कारण स्वामी जीको खताना चा-  
हिये था कि यह क्या औषधि है और  
किस रोग के वास्ते है ।

केवल औषधि कह देनेसे कुछ काम  
नहीं चलता है क्योंकि जितनी खाने  
की वस्तु हैं वह सब ही औषधि हैं  
अन्न भी औषधि है और दूध भी, श-  
राब भी औषधि है और सखिया भी  
ऐसा मालूम होता है कि स्वामी जी  
को यह सिद्ध करना था कि संसारभर  
में जो विद्या है चाहे वह किसी विष-  
य की हो वह सब वेदोंमें है और वेदों

से ही संसार के मनुष्यों ने सीखी है वेदों से भिन्न मनुष्य को किसी प्रकार की भी विद्या नहीं हो सकती है। स्वामी जी ने वेदभाष्य भूमिका में वेद की एक कक्षा लिखकर जिसमें यह विषय था कि एक और एक दो और दो और एक तीन होता है यह सिद्ध कर दिया है कि वेदों में सारी गणित विद्या भरी हुई है। और किसी किसी स्थान में ज्वरदस्ती रेल, तारबकी और आग पानी के अंजिन का नाम घुसेड़ कर यह विदित कर दिया है कि वेदों में सर्व प्रकार की कलों की विद्या है। और एक सूक्त के अर्थ में ज्वरदस्ती तोप बंदूक का नाम इस बात के जाहिर करने के वास्ते लिख दिया है कि सर्व प्रकार के शस्त्रों की विद्या भी वेदों में है। इसी प्रकार सोम का अर्थ औषधि का समूह करने का यह भी संज्ञा मालूम होती है कि यह सिद्ध होजावे कि वेदों में सर्व प्रकार की औषधियों का भी वर्णन है और है भी ठीक जब औषधि समूह का शब्द वेदों में आ गया तो अन्य कौन सी औषधि रही जो वेदों में नहीं है? बरन यही कहना चाहिये कि वैद्यक, यूनानी हिकमत, डाक्टरों आदिक जितनी विद्या हम समय संसार में प्रचलित हैं वा जो जो औषधि आगासी को निकाली जावेगी वह भी सब वेदों में मौजूद हैं—

“औषधि समूह” यह मंत्र लिखकर

स्वामी जी ने तो सारी वैद्यक सिखा दी परंतु हम ऐसे अभाग हैं कि हम पर इस मंत्रका कुछ असर न हुआ और हम को किसी एक भी औषधिका नाम वा उस का गुण मालूम न हुआ इस कारण हम को इस बात के खोज करने की जरूरत हुई कि सोम क्या पदार्थ है?—इस हेतु हम इस की खोज वेदों ही से करते हैं—

वेदों में अनेक स्थान में सोम का पीना मद अर्थात् नशे के वास्ते वर्णन किया है स्वामी जी ने मद का अर्थ आनन्द किया है—इस अर्थ से भी नशे की पुष्टि होती है क्योंकि नशा आनन्द के ही वास्ते किया जाता है—वेदों में स्थान स्थान पर सोम को मद के वास्ते ही पीने की प्रेरणा की है परंतु हम काममें से कुछ वाक्य स्वामी जी के वेद भाष्यके हिन्दी अर्थों से नीचे लिखते हैं।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ६८ अथा १०

( गद्यम् ) जिससे जीव आनन्द को प्राप्त होता है उस सोम को पियो—

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४७ अ० १

सङ्ग्राम और ( मदाय ) आनन्द के लिये ( सोम ) अष्ट औषधि के रसका पान करो और पेट में मधुर की लहर को सेवन करो ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १४ अ० ४

हे स्त्री पुरुषो-ये जिस कारण आप दोनों के (सोमः) ऐश्वर्यके सहित पदार्थ इस मेल करने योग्य गृहाश्रम में मधुर गुणों से पीने योग्य के लिये होते हैं

इस कारण उन का इस संसार में सेवन करके पराक्रम वाले होते हुए आप दोनों (मादयेषाम) आनन्दित होवें ।

ऋग्वेद सप्तममंडल सूक्त २६ अ० २  
सोमरस...जीवात्मा को हर्षित करता है  
ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४० अ० १

हे राजन् ! जो आप के लिये (मदाय) हर्ष के अर्थ उत्पन्न किया गया सोम-लता का रस है उसको पीजिये ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४४ अ० ३  
(मदः) आनन्द देने वाला वह (सोमः)

औषधियों का रस उत्पन्न किया गया आप का है उसकी आप वृद्धि कीजिये

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४९ अ० २  
हे राआ और उपदेशक बिद्वान् जनो !

आप दोनों के मुख में ( मदाय ) आनन्द के लिये पान करने को अति उत्तम (सोमः) बड़ी औषधिका रस यह सब प्रकार से सींचा जाता है इस से आप समर्थ होवें ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४३ अ० ५

हे अत्यंत ऐश्वर्य से युक्त बिद्वन् जिन से आप के बड़े प्रीति से सेवन किये गये प्रज्ञान तथा चातुर्य बल और (मदाय) आनन्द के लिये ( सोमः ) बड़ी औषधियों का रस वा ऐश्वर्य उत्पन्न किया जाय ।

हम ऐसा सुनते हैं कि किरंगी बिद्वान् जिन्होंने वेदों का अर्थ किया है और वेदों को पढ़ा है उन्होंने वेदों में यह कथन देखकर कि सोम मदके ब्राह्मते पिया जाता था सोम को मदिरा

समझा है और इस कारण कि सोम रस की उत्पत्ति वेदों में वनस्पति से लिखी है उन्होंने यह नतीजा निकाला है कि ताड़ी आदिक किसी विशेष वृक्ष का यह मद है जिस से नशा पैदा होता है उन का ऐसा समझना कुछ अचम्भे की भी बात नहीं है क्योंकि वेदों में मदिरा का भी वर्णन मिलता है इसकी सिद्धि के अर्थ हम कुछ वाक्य स्वामी दयानन्द जी के वेद भाष्य से लिखते हैं—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७५ अ० २

हे सभापति आप का जो सुख करने वाला स्वीकार करने योग्य वीर्यकारी जिसमें बहुत सहनशीलता विद्यमान जो अच्छे प्रकार रोगों का विभाग करने वाला जिससे मनुष्यों की सेना को सहते हैं और जो मनुष्यस्वभाव से बिलक्षण (मदः) औषधियों का रस है वह हम लोगों को प्राप्त हो ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६६ अ० ७

जो स्तम्भन देने वाले अर्थात् रोक देने वाले जिनका धन विनाशकी नहीं प्राप्त हुवा पूर्ण शत्रुओं के मारने हारे अच्छी प्रशंसाकी प्राप्त जन संग्रामों में शूरता आदि गुण युक्त युद्ध करने वाले के प्रथम पुरुषार्थी बलों को जानते हैं (मदिरस्य) आनन्द दायक रस के ( पीतये ) पीने की सत्कार करने योग्य विद्वान का अच्छा सत्कार करते हैं।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त २० अ० ६

( मदिरम् ) मादक द्रव्य-

परन्तु वेदों में कछुही कथन होमोम कदापि मदिरा नहीं हो सकती है बरन वह भंग और धतूरा है जिसको वेदों के गीत बनने के समय पिया करते थे और जिस को अब भी वेदों के मानने वाले हिन्दू लोग बहुधा कर पीते हैं। यूरुप देश में भंग का प्रचार नहीं है वह लोग भंग को नहीं जानते हैं इस कारण भंग का अनभव होना उन को असम्भव था इसही हेतु उन्होंने ने यह गलती खाई है परन्तु हम स्वामी जी के अर्थों के अनुसार ही वेद वाक्यों से सोम को भंग और धतूरा सिद्ध करेंगे-सोम भंग और धतूरे के सिवाय और कोई वस्तु होही नहीं सकती है-सोम का अर्थ वास्तव में चन्द्रमा है चन्द्रमा शीतल होता है और इसदेश के कवि लोग शीतल वस्तुको चन्द्रमा से ठपमा दिया कहते हैं भंग पीने वाले भंगको ठंडाई कहते हैं इस ही से ऐसा मालूम होता है कि कवियों ने भंग का नाम सोम रखलिया था—

भंग का पत्ता देखने पर मालूम हुवा कि उस पर छोटे छोटे बहुत रोम होते हैं और पत्ते पर तिखी लकीर होती हैं ऐसा ही स्वरूप वेद में सोम का वर्णन किया है—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३५ अ० ६

यज्ञ की चाहना करने वालों ने जलों में उत्पन्न किई ( सोमः ) बड़ी २ ओषधि पुष्टि करती हुई तुम दोनों की

देव और शुद्ध वे लेवें जो ये इकट्ठे होले और तुम दोनों की इच्छा करती हुए ( सोमासः ) ऐश्वर्य युक्त नाश रहित (अतिरोमाणि) अर्थात् नारियल की जटाओं के आकार समान सुखों के समान औरोंसे तिरछे शुद्धि करने वाले पदार्थ और तुम दोनों की चारों ओर से सिद्ध करें उन को तुम पिओ और अच्छे प्रकार प्राप्त होओ—

( नोट ) वेद में अतिरोमाणि शब्द जिसका अर्थ है बहुत रोमवाला स्वामी जी ने भी अतीवरोमा अर्थ किया है परन्तु अर्थ को रलाने के वास्ते यह भी लिख दिया है कि अर्थात् नारियल की जटाओं के आकार ।

भंग मिल बड़ेपर रगड़ी जाती है जिसका वर्णन नीचे लिखे वाक्यों में है और रगड़ कर पानी मिलाने का कथन है ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३० अ० २

हे सभापति अतीव प्यासे बैल के समान वलिष्ठ विभाग करने वाले आप शिलाखंडों से निकालनेके योग्य मेघसे बड़े और संपुक्त किये हुवे के समान सोम को अच्छे प्रकार पिओ—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३१ अ० ३

हे प्राण और उदान के समान सर्व मित्र और सर्वोत्तम सृजनो हमारे अभिमुख होते हुए तुम तुम्हारी जिस निवास कराने वाली धेनु के समान पत्थरों से बड़ी हुई सोम बल्की को

दुहते जलादिसे पूर्ण करते मेघों से (सोमपीतये) उत्तम औषधि रस जिस में पिये जाते उसके लिये ऐश्वर्य को परिपूर्ण करते उसको हमारे समीप पहुँचाओ जो यह मनुष्यों ने सोम रस सिद्ध किया है वह तुम्हारे लिये अच्छे प्रकार पीने को सिद्ध किया गया है ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३५ ऋ० ५

अच्छे प्रकार पर्वत के टुक वा उखली सूतलों से सिद्ध किये अर्थात् कूट पीट बनाये हुये पदार्थों के रस को ( मदाय ) आनन्द के लिये तुम पीओ । ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३६ ऋ० २-६

सेचनों से मथे हुए बढ़ाने वाले रस का पान कीजिये ।

जो राजा श्रेष्ठ पुरुष होता हुआ सभाओं को प्राप्त होवे इससे वह गुणों से पूर्ण औषधियों का सार भाग और (सोमः) औषधियों का समूह जल को जैसे प्राप्त होवे वैसे समृद्ध प्राणियोंको सुख देता है ।

**भंगमें दूध मिलाया जाता है उसका भी वर्णन इस प्रकार है:—**

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५८ ऋ० ४

गौवों के दूध आदि से मिले हुए सोमलता रूप औषधियों के रसों को मित्र लोगों के मदुश देवें ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त २३ ऋ० १

उत्तम ( सोमम् ) दुग्ध आदि रसको पीता है ।

**दूध मिलाने से भंग सफेद**

**दूधिया हो जाता है उसका वर्णन इस प्रकार है ।**

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त २७ ऋ० ५

हे मनुष्यों जो बहुत श्रेष्ठ धन युक्त गौओंसे सम्बद्ध बड़े हुए श्वेत वर्ण बाले घड़े जल और अन्नको पीनेके लिये ( मदाय ) आनन्दके लिये धारण करता है और जो ( शूर ) भयसे रहित अत्यन्त ऐश्वर्यवाला ( मदाय ) आनन्दके लिये अपने नहीं नाश होनेकी इच्छा करने वालोंके साथ मधुर आदि गुणोंके प्रथम प्रयत्नसे सिद्ध करने योग्य आनन्दके पीने को धारण करता है वह नहीं मष्ट होने वाले बलको प्राप्त होता है ।”

भंगमें मीठा मिलाया जाता है उस का वर्णन निम्न प्रकार है और वेदोंके पढ़नेसे यह भी मालूम होता है कि वेदोंके समयमें शहतकी ही मिठाई थी और कोई मिठाई नहीं थी ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४४ ऋ० २१

“आप उत्तम सुखके वर्णाने वालेके लिये पानको स्वादसे युक्त सोमलताका रस ( मधुपेयः ) शहतके साथ पीने योग्य हो ।”

**भंग पीकर दही आदिक भोजन खाते हैं उसका वर्णन इस प्रकार है—**

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १३७ ऋ० २

“हे पढ़ने वा पढ़ाने वाले जो सुन्दर मित्रके लिये पीनेको और उत्तम जलके लिये सत्याचरण और पीनेको प्रभाव

बेलाके प्रबोधमें सूर्य मंडलकी किरणों के साथ औषधियोंका रस सब ओरसे सिद्ध किया गया है उसको तुम प्राप्त हो तुम्हारे लिये ये गोले वा टपकते हुए ( सोमासः ) दिव्य औषधियोंके रस और जो पदार्थ दहीके साथ भोजन किये जाते उनके समान दही से मिले हुए भोजन सिद्ध किये गये हैं उन्हें भी प्राप्त होओ ।,

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५२ ऋचा ७  
हे (शूर) दुष्ट पुरुषके नाश कर्ता उस आपके लिये दधि आदिसे युक्त भोजन करनेके पदार्थ विशेष और भूँजे अन्न तथा पुआको देवे उसको समूहके सहित वर्तमान आप उत्तम मनुष्योंके साथ भक्षण कीजिये और सोमको पान कीजिये।,

**धतूरेके बीज भी भंगमें मिलाये जाते हैं उसका वर्णन इस प्रकार है:—**

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १८७ ऋचा ९  
हे (सोम) यवादि औषधि रस व्यापी ईश्वर गौके रससे बनाये वा यवादि औषधियोंके संयोगसे बनाये हुए उस अन्नके जिस सेवनीय अंशको हम लोग सेवते हैं उससे हे (बातापे) पवन के समान सब पदार्थोंमें व्यापक परमेश्वर उत्तम वृद्धि करने वाले हूजिये ।,

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३६ ऋचा ८

“ जिस पुरुषके दोनों ओरके उदर के अखण्ड (सोमधानाः) सोमरूप औषधियोंके बीजोंसे युक्त गम्भीर जलाशयोंके सदृश वर्तमान हैं ।,

## आर्यमत लीला ॥

( १२ )

वेदों में सोम पीने वाले की बड़ी तारीफ (प्रशंसा) की गई है यहां तक कि जो चोरी करके पीवे उसकी बहुत ही प्रशंसा है भंगड़ लोग भी भंग पीने वाले की इस ही प्रकार प्रशंसा किया करते हैं हम इस विषय में स्वामी जी के वेदभाष्य के हिन्दी अर्थों से कुछ वाक्य नीचे लिखते हैं ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४८ ऋ० ४

जो यह भक्षण करने वाली सेनाओं में साम की चोरी करके पीव...वह राज-ज्य करने के योग्य होवे—

ऋग्वेद मत्स्य मंडल सूक्त ३१ ऋचा १

हे मित्रो तुम्हारे मनुष्य वा हरणशील घोड़े जिसके द्बिद्यमान हैं उस सोम पीने वाले परम ऐश्वर्यवान्के लिये आनंद से तुम अच्छे प्रकार गाओ ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४६ ऋ० १

हे वायु के सदृश बलयुक्त जिस से आप श्रेष्ठ क्रियाओंमें पूर्व वर्तमान जनों का पालन करने वाले हो इससे मधुर रसों के बीच में उत्तम उत्पन्न कियेगये रसको पान कीजिये ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त २९ ऋ० ५

जो सम्पूर्ण विद्वान् जन सोम औषधि पान करने योग्य रस की अनुकूल देते हैं वे बुद्धिसे विशेष ज्ञानी होते हैं ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४० ऋ० ४

जो सोमरसका पीने वाला दुष्ट शत्रुओंका नाश करने वाला हो उसही की अभिष्टाता करो ।



ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ७२ ऋ० २  
हे निश्चित रक्षण और यत्न कराते  
हुए जनों वाले मनुष्यो जो तुम धर्म  
के और धर्म युक्त कर्मके साथ वर्तना-  
न होवै सोम पीने के लिये उत्तम वय-  
वहार में उपस्थित हूजिये ,

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५४ ऋचा ८  
सोम के पीने वाले धार्मिक विद्वान  
पुरुष कर्म से वृद्ध शत्रुओं के बल ना-  
शक...वे सब आप को सभा में बैठने  
योग्य सभासद और भृत्य होंवें ।

आज कल जिस प्रकार भंग पीने वा-  
ले भंगड़ भंग न पीने वालों की बुराई  
करते हैं और भंग की तरंग में गीत  
गाते हैं कि, वेटा होकर भंग न पीवै  
वेटा नहीं वह बेटी है ।

इस ही प्रकार वेदों में भी न पीने  
वाले की बुराई की गई है, वरन उस  
पर क्रोध किया गया है यहां तक कि  
उसको मारने और लूट लेने का उप-  
देश किया है यथा—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७६ ऋ० ४  
हे राजन् आप उस पदार्थ के सार  
खींचने आदि पुरुषार्थ से रहित और  
दुःख से बिनाशने योग्य समस्त आ-  
लसों गन्ध को मारो दंडदेओ कि जो  
विद्वान् के समान व्यवहारों की प्राप्ति  
करता है और तुम्हारे सुख को नहीं  
पहुंचता तथा आप इस के धनको ह-  
मारे अर्थ धारण करो—

सोम की तरंग में इस प्रकार वेतुका  
गीत गाया गया है ।

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त १८ ऋ० ४-५  
हे परम ऐश्वर्य युक्त बुलाये हुए आप  
दो हरण शील पदार्थों के साथ यान  
से आइये चार हरण शील पदार्थों के  
साथ यान से आओ छः पदार्थों से युक्त  
यान से आओ आठ वा दश पदार्थों  
से युक्त यान से आओ जो यह सुत्पन्न  
किया हुआ पदार्थों का पीने योग्य रस  
है उस पदार्थों के रस के पीनेके लिये  
आओ ।

हे असंख्य ऐश्वर्य देने वाले युक्त होते  
हुए आप बीस और तीस हरने वाले  
पदार्थों से बुलाये हुए यानसे जो नीचे  
को जाता है उस सोम आदि औषधियों  
में पीने योग्य रस की प्राप्ति होओ  
आओ चालीस पदार्थों से युक्त रथसे  
आओ पचास हरणशील पदार्थों से  
युक्त सुन्दर रथों से आओ साठ वा  
सत्तर हरणशील पदार्थोंसे युक्त सुन्दर  
रथोंसे आओ--”

(इसही प्रकार आगेकी ऋचामें नव्वे  
और सौ भी कहते चलेगये हैं हम क-  
हां तक लिखें )

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३० ऋचा ७

“ हे मनुष्यो ! जो मुझे तृप्त करे जो  
मुझको सुख देवे तो मुझ को निश्चित  
बोध करावै जो इन्द्रियों से यत्न करते  
हुए मुझ को अच्छे प्रकार समीप प्राप्त  
होवे वह मुझ को सेवने योग्य है जो  
मुझको नहीं चाहता नहीं अन करता  
और नहीं मोह करता इस लोग जिस  
को ऐसा नहीं कहैं उस (सोमम्) औ-

वधि रसको तुम लोग मत खींचो । ”

ऋग्वेद षष्ठा मंडल सूक्त ४७ ऋचा ३

“ हे मनुष्यो ! जैसे यह पान किया गया सोमलता का रस मेरी वाणी को कामना करती हुई बुद्धि को बढ़ाता है जिससे यह जन कामनाको प्राप्त होता है जिससे यह छः प्रकारकी भूमियोंको ध्यान करने वाला बुद्धिमान् जन जैसे निर्माण करता है और जिनसे दूर वा समीप में कभी भी संसारको रचता है यह वैद्यकशास्त्रकी रीतिसे बनाने योग्य है ! ”

सोमके नशेमें जो कोई अ पराध हो जावै उसको क्षमा इस प्रकार मांगी गई है—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७६ ऋचा ५

“ मैं जिस इम हृदयों में पिये हुए ( सोमम् ) ओषधियोंके रसको उपदेश पूर्वक कहता हूं उस को बहुत कामना वाला पुरुष ही सुख संयुक्त करे अर्थात् अपने सुख में उसका संयोग करे जिन अपराधको हम लोग करें उसको शीघ्र सब ओरसे समीपसे सभी जन छोड़ें अर्थात् क्षमा करें— ”

सोम पीकर कामदेव उत्पन्न होता था और भोजन की इच्छा होती थी जिस प्रकार भंगसे होती है । यथा—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६८ ऋ० ३

“ मैं जो पवनोके समान विद्वान् जिनसे सूर्य किरण आदि पदार्थ उत्पन्न होते और वे कूट पीट निकाले हुए सोमादि ओषधि रस हृदयोंमें पिये हुए हों उ-

नके समान वा सेवन करने वालोंके समान बैठते स्थिर होते इनके भुज स्कन्धोंमें जैसे प्रत्येक कामका आरम्भ करने वाली स्त्री संलग्न हो वैसे संलग्न होता हूं जिन्होंने हाथोंमें भोजन और क्रिया भी धारण किई है उनके साथ सब क्रियाओं को अच्छे प्रकार धारण करता हूं । ”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४८ ऋचा १२

“ हे प्रभातके तुल्य स्त्री मैं सोम पीनेके लिये ऊपरसे अखिल दिग्घ गुण युक्त पदार्थों और जिस तुल्यको प्राप्त होता हूं उन्हींको तू भी अच्छे प्रकार प्राप्त हो— ”

सोम इकट्ठे हांकर पिया जाता था जिस प्रकार भंग इकट्ठे होकर पीते हैं । यथाः—

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४५ ऋचा ९

“ हे-विद्वानो ! मैं सज्जन...आज सोम रसके पीनेके लिये प्रातःकाल पुरुषार्थ को प्राप्त होने वाले विद्वानों... और उत्तम आसनको प्राप्त कर । ”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ४७ ऋचा १०

“ हे बहुत विद्वानोंमें बसने वाले... जहां विद्वानोंकी पियारी सभामें आप लोगोंको अतिशय अद्भुत कर बुलाते हैं वहां तुम लोग पीछे मनातन सुख को प्राप्त होओ और निश्चय से सोम को पीओ । ”

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३७ ऋचा ३

“ सब ओर से उद्यम कर और मेल कर प्राप्तसे आप वसन्तादि ऋतुओंके साथ सोमको पीओ— ”

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त १६ ऋ० ४४  
 "हे विद्वान् ! आप हम लोगोंको उत्तम  
 प्रकार सोम रसके पानके लिये सब ओर  
 से प्राप्त होओ—"

**किसीके राजा होनेपर सोम  
 रस आंटा जाता था । यथा:—**

ऋग्वेद छठा मण्डल सूक्त २९ ऋ० ४

"हे विद्वानो में अग्रणी जनो ! जिन  
 राजाके होनेपर पाक पकाया जाता है  
 भंजे हुए अन्न हैं चारों ओरसे अत्यन्त  
 मिला हुआ उत्पन्न सोम रस होता है...  
 वह आप हम लोगोंके राजा हुआये—"

सोमको पेट भर कर पीने की प्रेरणा  
 की जाती थी जिस प्रकार भंगड़ दो  
 दो लोटे पी जाते हैं । " यथा:—

ऋग्वेद दूसरा मण्डल सूक्त १४ ऋ० ११

उम ऐश्वर्यवान को यव अन्न से जैसे  
 मटका को वा छिहरा को वैसे ( सोम  
 भिः ) मोमादि औषधियों से पूरा प-  
 रिपूर्ण करो—

ऋग्वेद सप्तम मण्डल सूक्त २२ ऋ० १

घोड़े के समान सोम को पीओ—

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४४ ऋ० ४

हे मत्स्याचरण वाले अध्यापक और  
 उपदेशक जनो ! आप दोनों इस यज्ञको  
 प्राप्त होओ और मधुर आदि गुणों से  
 युक्त सोमरस का पान करो ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४० ऋ० २-४-५

हे इन्द्र अत्यन्त तृप्ति करने और यज्ञ  
 के सिद्ध करने वाले उत्तम संस्कारों से  
 उत्पन्न सोमकी कामना और पान करो  
 उससे बैल के सदृश बलिष्ठ होओ ।

हे-इन्द्र जो ये आनन्दकारक गीले  
 सोम आप के रहने के स्थान को प्राप्त  
 होते हैं उनका आप सेवन करो ।

जो आप के...स्नेह करने वाले होवें  
 उनके समीप से भोग करने योग्य उ-  
 त्तम प्रकार बनाया सोम को उत्पन्न हो  
 सुख जिस में उस पेट में आप धरो ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त १२ ऋ० १

हे अध्यापक और उपदेशक जनो.....  
 आप सोम रसका पान करने के लिये  
 उत्तम गृह वा आसन में बैठिये ।

वेदों में सोमरस पीनेके आस्ते मनु-  
 ष्यों को बुलाने के बहुत गीत हैं जिस  
 प्रकार भांग पीने वाले भांग घोटकर  
 बुलाया करते हैं । यथा:—

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त १८ ऋ० २

सोमलता के पश्चात् जैसे हरिण दौ-  
 डते हैं वैसे और जैसे दो मृग दौड़ते हैं  
 वैसे आइये ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ६० ऋ० ९

हे नायक...सोमपान के लिये इस  
 अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए जिनसे  
 उत्पन्न करते हैं उस के समीप प्राप्त  
 होओ ।

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १०८ ऋ० १-८

हे स्वामी और सेवको सुख की वर्षा  
 करते हुये आओ-सोम की पिओ ।

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त २४ ऋ० ३

सोम को पीने के लिये हमारे इस  
 वर्तमान उत्तम स्थान वा अवकाश को  
 आओ ।

ऋग्वेद सप्तम मंडल सूक्त २९ ऋ० १

हे बहुधन और प्रशस्त मनुष्य युक्त दारिद्र्य विनाशने वाले जो यह सोम रस है जिसको मैं तो तुम्हारे लिये खींचता हूँ उस को तुम पीओ वह श्रेष्ठ यह जिसका है ऐसे होते हुए आओ हम सुन्दर निर्माण किये और सुन्दर जन के धनों को प्राप्त होते हुए हमारे लिये देओ ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४० व ४१ ऋ०

क्रमः ४ व १

पीने योग्य सोमलता के रसको पीने के लिये समीप प्राप्त हूजिये ।

उत्पन्न किये गये सामन्तता आदि के जल पवित्र करते हैं उसके समीप आइये ।

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ५९ ऋ० १०

उत्तम शिवायुक्त वाशियों के साथ हम सोम के पीने को आओ ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४२ ऋ० ४

सोमरस के पीने के वास्ते ( जिम अत्यंत विद्या आदि ऐश्वर्यवान् को इस संसार में पुकारें वह हम लोगों के समीप बहुत दूर आवे ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ७१ ऋ० ३

हे मित्रश्रेष्ठ ! आप दोनों इस देने वाले के सोमरस को पीने के लिये हम लोगों के उत्पन्न किये हुए पदार्थ के समीप में आइये ।

सोम की प्रशंसा और पीने की प्रेरणा में अनेक गीत गाये गये हैं उन में से कुछ हम यहां लिखते हैं ।

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ३६ ऋ० १-२

हे यज्ञपते आदि भूत आप उत्तम क्रिया के साथ अत्युत्तमता से गृहीत दान के कारण क्रिया से सिद्ध किये हुए सोमरस को अच्छे प्रकार पिओ ।

हे धारण करने वाले के पुत्रो नायक मनुष्यो जैसे अच्छे प्रकार मिले हुए श्वेत वर्ण प्यारे जन अच्छी क्रियाओं से युक्त प्राप्ति कराने वाली पवन की गतियों से प्राप्त हुए समय में और कामना करते हुआ मैं अन्तरिक्ष को पहुँचा कर पवित्र व्यञ्जहार से उत्पन्न हुए प्रकाश से सोमरस को पीते हैं वैसे तुम पिओ ।

ऋग्वेद दूसरा मंडल सूक्त ४१ ऋ० ४

“ हे...अध्यापको ! जो यह तुम दोनों मे सोमरस उत्पन्न हुआ उसको पीके ही यहां से आवाहन को सुनिये--”

ऋग्वेद छठा मंडल सूक्त ४३ ऋ० १

“ यह ( सोम ) बुद्धि और बल का बढ़ाने वाला रस आप के लिये उत्पन्न किया गया है उसका शाय पान करिये । ”

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३२ ऋ० ५

“ निरन्तर अनादि सिद्ध बल के लिये सोम रस को पीओ--”

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५१ ऋ० १०

“ आप बल से इसके इस सिद्ध किये गये सोमलता रूप रस का पान कीजिये निश्चय से और पान करने की इच्छा से इस सोमलता का पान करो--”

ऋग्वेद मंडल चौथा सूक्त ४९ ऋ० ५६

“ हे अध्यापक ! और उपदेशक ज-

नो जैसे हम लोग आशियोंसे इस ( सोमस्य ) ओषधियोंसे उत्पन्न हुए रसके पानके लिये आप दोनोंका स्वीकार करते हैं वैसे इस के उत्पन्न होने पर हम लोगोंका स्वीकार करो—

“ हे राजा और मन्त्री जनो ! आप दोनों दाता जनके स्थानमें ( सोमम् ) अति उत्तम रसका पान करो और हम लोगोंको निरन्तर ( मादयेयाम् ) आनन्द देओ । ”

**सोम पीकर युद्धमें जानेकी प्रेरणा इस प्रकारकी गई है--**

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १७७ ऋ० ३

“ हे-बलिष्ठ राजन् ! हम लोगों को प्राप्त होते और रस आदिसे परिपूर्ण होते हुए आप जो अपने लिये सोम रस उत्पन्न किया गया है उसमें नीटे नीटे पदार्थ सब ओरसे सींचे हुए हैं उस रसको पीकर मनुष्योंके प्रबल हरण शील घोड़ोंसे बृद्ध रथजो जोड़ युद्ध का यत्न करो वा युद्धकी प्रतिष्ठा पूर्ण करो नीचे मार्गसे समीप आओ । ”

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त ५५ ऋ० २

“ जो सभाध्यक्ष...सोम पीनेके लिये बैलके समान आचरण करता है वह युद्ध करने वाला पुरुष...राज्य और सत्कार करने योग्य है । ”

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ४७ ऋ० २-४

“सकल विद्याओंका जाननेवाला पुरुष सोमलता के रस को पीजिये और शत्रुओं को देश से बाहर करके नष्ट करिये ।

वीर पुरुषों के सहित सोमका पान कीजिये ।

ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ५३ ऋ० ४-६

जब कब हम लोग सोमलता के रस संचित करें उसको आप शत्रुओंके संताप देने वाले बिजुली के समान प्राप्त होवें ।

सोमका पान करिये और पीकर श्रेष्ठ संग्राम जिससे उसको प्राप्त हो होइये ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त १८ ऋ० ३

जैसे सेना का ईश प्रकाश के स्थान में...सोमको सेनाओंके मध्यमें पीता है ।

ऋग्वेद चौथा मंडल सूक्त ४५ ऋ० ३-५

हे सेना के ईश...मधुर रसों को पीने वाले वीर पुरुषों के साथ मधुर आदि गुण से युक्त पदार्थ के मनोहर रसको पिओ जो मधुर आदि गुण युक्त सोम को उत्पन्न करता है उनको-सिद्धकरो ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ४० ऋ० १

हे सोमपते...सोम को पान कीजिये और संग्राम को प्राप्त हूजिये ।

वेदों में सोम पीने का समय सुबह और दोपहर वर्णन किया है भंगड़ भी इस ही समय में भंग पीते हैं । यथा-ऋग्वेद तीसरा मंडल सूक्त ३२ ऋ० ३

वीर पुरुषों के साथ समूह के सहित वर्तमान आप मध्य दिन में...सोम लतादि ओषधि का पान करो ।

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३४ ऋ० ३

हे मनुष्यो जो इस के लिये दिन में

भी अथवा प्रभात समय में ( सोमम् )  
जल का पान करता है ।

ऋग्वेद पंचम मण्डल सूक्त ४४ अ० १४

जो ( जागार ) अविद्या रूप निद्रा  
से उठके जागने वाला उसको यह (सोमः)  
सोमनता आदि औषधियों का समूह  
वा ऐश्वर्यके सदृश निश्चित स्थान वाला  
मित्रत्व में आप का मैं हूँ इस प्रकार  
कहता है ।

ऋग्वेद पंचम मण्डल सूक्त ५१ अ० ३

हे युद्धिमान आप प्रातःकाल में जाने  
वाले विद्वानों के और युद्धिमानों के  
साथ सोमनता नामक औषधि के रस  
के पीने के नित्ये प्राप्त हूजिये ।

## आर्यमत लीला ॥

### [ ग-भाग ]

#### यजुर्वेद ।

( १३ )

वेद चार हैं जिन में से ऋग्वेद और  
यजुर्वेद का भाष्य स्वामी दयानन्दजी ने  
किया है बाकी दो वेदों का भाष्य नहीं  
किया है । स्वामी दयानन्दजीके अर्थों  
के अनुसार हमने ऋग्वेदके बहुतसे वा-  
क्य लिखकर पिछले लेखोंमें यह सिद्ध  
किया है कि वेद कोई धर्मशिक्षा की  
पुस्तक नहीं है यहां तक कि बड़ सा-  
धारण शिक्षाकी भी पुस्तक नहीं है ब-  
रन ग्रामीण किसानोंके गीनोंका बेसि-  
लसिले संग्रह है-शायद हमारे पाठकों  
मेंसे कोई यह मन्दह करता हो कि ऋ-  
ग्वेद में ही अनाड़ी किसानों के गंधार  
गीत हैं परन्तु अन्य वेदों में नहीं मा-

लूम क्या विषय होगा? इस कारण इ-  
सको यजुर्वेद के विषय का भी नमूना  
दिखानेकी जरूरत हुई है जिस से प्र-  
गट हो जावे कि यजुर्वेदमें भी ऐसे ही  
गंधार गीत हैं । हम अपने पाठकोंको  
यह भी निश्चय कराते हैं और आगा-  
मी सिद्ध भी करेंगे कि ऋग्वेद और य-  
जुर्वेदके अतिरिक्त जो अन्य दो वेद हैं  
उन में भी वैसे ही गीत है जैसे ऋग्वेद  
में दिखाये गये हैं । बरन उन दो वेदों  
में तो बहुतया वह ही गीत हैं जो ऋ-  
ग्वेद में हैं और यह ही कारण है कि  
स्वामी दयानन्द जी ने उन दो वेदों  
का अर्थ प्रकाश करना व्यर्थ समझा है

यजुर्वेदके मजमून को सिलसिलेवार  
तो हम आगामी लेखों में दिखावेंगे-पर-  
न्तु इससे पहले हम बानगीके तौर  
पर कुछ ऋचाओं का अर्थ स्वामी द-  
यानन्द जी के भाष्य में से लिखते हैं  
जिससे मालूम हो जावेगा कि यजुर्वेद  
में किस प्रकार के गंधार गीत हैं:—

यजुर्वेद अध्याय १८ ऋचा १२

“मेरे चावल और साठीके धान मेरे  
जी और अरहर मेरे उरद और मटर  
मेरा तिल और नारियल मेरे मूंग  
और समका बनाना मेरे चने और  
उसका सिद्ध करना मेरी कंगुनी और  
उसका बनाना मेरे सूखे चावल और  
उन का पाक मेरा समा ( श्यामाकाः )  
और महुआ पटेरा चेना आदि छोटे  
अन्न मेरा पसाई के चावल जो कि  
बिना बोए उत्पन्न होते हैं और हम

का पाक मेरे गेहूं और उनका पकाना तथा मेरी मसूर और इनका संबन्धी अन्य अन्न ये सब अन्नोके दाता परमेश्वर से समर्थ हों”

( नोट ) “यज्ञेन कल्पन्ताम्”—इस वाक्यका अर्थ स्वामीजीने यह किया है सब अन्नोके दाता परमेश्वर से समर्थ हों ।

यजुर्वेद अध्याय १८ ऋचा १४

“मेरा अग्नि और बिजुली आदि [ ‘व’ शब्द का अर्थ बिजुली आदि किया है ] मेरे जल और जलमें होने वाले रत्न सोती आदि [ ‘च’ शब्द का अर्थ जलमें होने वाले रत्न सोती आदि किया है ] मेरे लता गुच्छा और शाक आदि मेरी सोमलता आदि औषधि और फल पुष्पादि मेरे खेतों में पकते हुए अन्न आदि और उत्तम अन्न मेरे जो जंगल में पकते हैं वे अन्न और जो पर्वत आदि स्थानों में पकने योग्य हैं वे अन्न मेरे गांव में हुए गौ आदि और नगर में ठहरे हुए [ ‘च’ शब्द का अर्थ नगर में ठहरे हुये किया है ] तथा मेरे वन में होनेवाले मृग आदि और सिंह आदि पशु मेरा पाया हुआ पदार्थ और सब धन मेरी प्राप्ति और पाने योग्य मेरा रूप और नाना प्रकार का पदार्थ तथा मेरा ऐश्वर्य और उसका साधन ये सब पदार्थ मेल करने योग्य शिल्पविद्या से समर्थ हों [ यज्ञेन कल्पन्ताम् ] इस वाक्य का अर्थ मेल करने योग्य शिल्पविद्या से समर्थ हों किया है ]

यजुर्वेद अध्याय १८ ऋचा २६

मेरा तीन प्रकारका भेड़ों वाला और इससे मिला सामग्री मेरी तीन प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री और इनसे उत्पन्न हुए घृतादि मेरे खंडित क्रियाओंमें हुए विघ्नों की पृथक् करने वाला और इसके संबन्धी मेरी उन्हीं क्रियाओं की प्राप्त कराने हारी गाय आदि और उसकी रक्षा मेरा पांच प्रकार की भेड़ों वाला और उसके घृतादि मेरी पांच प्रकार की भेड़ों वाली स्त्री और इसके उद्योग आदि मेरा तीन बछड़े वाला और उनके बछड़े आदि मेरी तीन बछड़े वाली गौ और उन के घृतादि मेरा चौथे वर्ष को प्राप्त हुवा बैल आदि इसको काम में लाना मेरी चौथे वर्ष को प्राप्त गौ और इस की शिक्षा यह सब पदार्थ पशुओं के पालन के विधान से समर्थ होंगे [ यज्ञेन कल्पन्ताम् ] इस वाक्य का अर्थ-पशुओं के पालन के विधान से समर्थ होंगे किया है ]

यजुर्वेद अध्याय १८ ऋचा २७

मेरे पीठ से भार उठाने हारे हाथी ऊंट आदि और उन के संबन्धी मेरी पीठसे भार उठाने हारी घोड़ी ऊंटनी और उनसे उठाये गये पदार्थ मेरा वीर्य सेवन में समर्थ वृषभ और वीर्य धारण करने वाली गौ आदि मेरी बंध्या गौ और वीर्यहीन बैल मेरा समर्थ बैल और बलवती गौ मेरी गर्भ गिराने वाली और सामर्थ्य हीन गौ मेरा हल और गाड़ी आदि को चलाने

में समर्थ खेल और गाड़ीबान आदि मेरी नवीन व्याती दूध देने हारी गाय और उसकी दोहने वाला जन ये सब पशुशिक्षा रूप यज्ञकर्म से समर्थ होवें ।  
[यज्ञेन कल्पन्ताम्] का अर्थ पशु शिक्षा रूप यज्ञ कर्म से समर्थ होवें कि या है ]

यजुर्वेद अध्याय २४ ऋचा १२

जो ऐसे हैं कि जिनकी तीन भेंड़े वे गाते हुआ की रक्षा करने वाली के लिये जिनके पांच भेंड़े हैं वे तीन अर्थात् शरीर वाणी और मनसंयन्धी सुखों के स्थिर करनेके लिये जो विनाश में न प्रविष्ट हों उन की प्राप्ति कराने वाले संसार की रक्षा करने की जो क्रिया उसके लिये जिन के तीन बछड़ा वा जिनके तीन स्थानोंमें निवास वे पीछे से रोकने की क्रियाके लिये और जो अपने पशुओं में चौथे को प्राप्त कराने वाले हैं वे जिस क्रिया से उत्तमताके साथ प्रसन्न हों उस क्रिया के लिये अच्छा यत्न करें वे सुखी हों ।

यजुर्वेद प्रथम अध्याय ऋचा १४

हे मनुष्यो तुम्हारा घर सुख देनेवाला हो । उन घर से दुष्ट स्वभाव वाले प्राणी अलग करो और दान आदि धर्म रहित शत्रु दूर हों । उक्त गृह पृथिवी की त्वचा के तुल्य हों । ज्ञान स्वरूप ईश्वर ही से उस घर को सब मनुष्य जानें और प्राप्त हों तथा जो अनस्पृशी के निमित्त से उत्पन्न होने

अति विस्तार युक्त अंतरिक्ष से रहने तथा जलका ग्रहण करनेवाला मेघ है उस और इस विद्या को जगदीश्वर तुम्हारे लिये कृपा करके जनावें । विद्वान् पुरुष भी पृथिवी की त्वचा के समान उक्त घरकी रचना को जानें ।

(नोट) इस से मालूम होता है कि उस समय सब लोग घर बनाकर नहीं रहते थे वरन गंधारों से भी अधिक गंधार थे ।

यजुर्वेद तीसरा अध्याय ऋ० ४४

हम लोग अविद्या रूपी दुःख होने से अलग होके बराबर प्रीति के सेवन करने और पके हुए पदार्थों के भोजन करने वाले अतिथि लोग और यज्ञ करने वाले विद्वान् लोगों को सत्कार पूर्वक नित्यप्रति बुनाते रहें ।

(नोट) इससे मालूम होता है कि उस समय के लोग ऐसे गंधार थे कि सब भोजन को पकाकर नहीं खाते थे वरन जो कोई २ भोजन पकाकर खाता था वह बड़ा गिना जाता था ।

यजुर्वेद छठा अध्याय ऋ० २८

हे वैश्यजन ! तू हल जोतने योग्य है तुम्हें अन्तरिक्ष के परिपूर्ण होने के लिये अच्छे प्रकार उत्कर्ष देता हूं तुम सब लोग यज्ञ शोधित जलों से जल और औषधियों से औषधियों को प्राप्त होओ ।

यजुर्वेद १९ वां अध्याय ऋ० २१

हे मनुष्यो तुम लोग होम करने योग्य यंत्र द्वारा खींचने योग्य औषधि रूप



रसके रूपको भुने हुए अन्न मद्यन का साधन सत्तू सघ्न आरसे बीजका बीना दूधदही दहीदूध नींटेका मिलाया हुआ प्रशस्त अन्नो की सम्बन्धी सार वस्तु और शहत के गुण को जानो ।”

यजुर्वेद १८ वां अध्याय अ० २२  
“हे मनुष्यो तुम लोग भुंजें हुए औआदि अन्नोका कोमल बेर सा रूप पिसा न आदि का गेहूं रूप सत्तूओं का बेर फलके समान रूप दही मिले सत्तू का समीप प्राप्त औ रूप है ऐसा जाना करो ।”

यजुर्वेद १८ वां अध्याय अ० २३  
“हे मनुष्यो तुम लोग जो यव हैं उन को पानी वा दूध के रूप मोटे पके हुये बेरी के फलोंके समान दही के स्वरूप बहुत अन्न के सार के समान सोम औषधि के स्वरूप और दूध दही के संयोगसे बने पदार्थके समान सोमादि औषधियोंके सार होने के स्वरूप को निहृ किया करें ।”

यजुर्वेद बीसवां अध्याय अ० ७८  
“हे विद्वन् ! घोड़े और उत्तम बैल तथा अतिबली धीर्यके सेवन करने हारे बैल बंध्यागार्य और मेढ़ा अच्छे प्रकार शिक्षा पाये और सब ओर से ग्रहण किये हुए जिस व्यवहार में काम करने हारे हों उस में तू अन्तःकरण से सोम विद्या को पूछने और उत्तम अन्न के रस को पीने हारे बुद्धिमान अग्नि के समान प्रकाश मान जन के लिये अति उत्तम बुद्धि को प्रगट कर ।”

यजुर्वेद २१ वां अध्याय अ० ४१  
“हे ( होतः ) देने हारे तू जैसे ( होता ) और देने हारा अनेक प्रकार के व्यवहारोंकी संगति करे पशु पालने वा खेती करने वाले ( द्वागस्य ) बकरा गौ भैंस आदि पशु संबन्धी वा ( वपायाः ) बीज बोने वा सूत के कपड़े आदि बनाने और ( मेदसः ) चिकने पदार्थ के लेने देने योग्य व्यवहार का ( जुषेताम् ) सेवन करें वैसे ( यज ) व्यवहारों की संगति कर । हे देने हारे जन तू जैसे ( होता ) लेने हारा मेढ़ाके ( वपायाः ) बीज को बढाने वाली क्रिया और चिकने पदार्थसंबन्धी अग्नि आदिमेढ़ोढ़ने योग्य संस्कार किये हुए अन्न आदि पदार्थ और विशेष ज्ञान वाली वाणीका ( जुषतां ) सेवन करे वा उक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल करे वैसे सब पदार्थोंका यथायोग्य मेल कर । हे देने हारे तू ! जैसे लेने हारा बैलको ( वपायाः ) बढाने वाली रीति और चिकने पदार्थ संबन्धी ( इविः ) देने योग्य पदार्थ और परम ऐश्वर्य करने वाले का सेवन करे वा यथायोग्य उक्त पदार्थोंका मेल करे वैसे ( यज ) यथायोग्य पदार्थोंका मेल कर--”

यजुर्वेद २३ वां अध्याय अ० १२  
“ हे विद्यार्थी जन ! अच्छे प्रकार पाकोंसे स्थूल कार्यरूप पवन काटने की क्रियाओं से काली चोटियों वाला अग्नि और मेघोंसे बट वृक्ष उन्नतिके सात सेवेर वृक्ष तुम्हको पाले--”

यजुर्वेद २३ वां अध्याय ऋचा २३

“हे यज्ञके समान आचरण करने वाले राजा तू इस लोगों के प्रति झूठ मत खोलो और बहुत गप्प सप्प बकते हुए मनुष्य के मुख के समान तेरा मुख मत हो यदि इस प्रकार जो यह राजा गप्प सप्प करिगा तो निर्धूल पखेरुके समान भलीभांति उच्छिन्न जैसे हो इस प्रकार ठगा जायगा ।”

यजुर्वेद २३ वां अध्याय ऋ० ३८

“हे मित्र ! बहुत विज्ञान युक्त तू इस व्यवहार में इन मनुष्यों से जैसे बहुत से श्री आदि अनाज के समूह को भुन आदि से पृथक् कर और क्रम से छेदन करते हैं उन के और जो जल वा अन्न सम्बन्धी बचनको कहकर सत्कार करते हैं उनके भोजनोंको करो ।”

## आर्यमत लीला ।

( १४ )

इससे पूर्वके लेखमें जो ऋचाएं यजुर्वेदकी हमने स्वामी दयानन्दके भाष्य के अनुसार लिखी हैं उनसे हमारे पाठश्रम भलीभांति समझ जावेंगे कि भेड़ बकरियों के चराने वाले गंधार लोगों के गीत यजुर्वेद में भी इस ही प्रकार हैं जिस प्रकार ऋग्वेदमें है--इस प्रकार नमूना दिखाकर अब हम सबसे पहले यजुर्वेदके २४ वें अध्यायको स्वामी दयानन्द जी के भाष्यके हिन्दी अर्थों के अनुसार दिखाते हैं और अपने आर्य भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि वह कृपा

कर अपने विद्वान् पण्डितों से पूछ कर हमको बतावें कि इस २४ वें अध्याय के मजमूनका क्या आशय है ? क्या सोम पीकर भंगकी तरंगमें वेदके गीत बनाने वालोंमें से किसीने यह बरह हांकी है ? वा वास्तवमें परमेश्वरने वेदके द्वारा आर्य भाइयोंको कोई अद्भुत शिक्षा दी है जिसको कोई दूसरा नहीं समझ सकता है और हमारे आर्य भाई उन देवताओं का पूजन करते हैं वा नहीं जिन का वर्णन इस अध्याय में आया है और इन देवताओं का पशु पक्षियों से क्या सम्बन्ध है ? और कौन कौन पशु पक्षी किस २ देवताके निमित्त हैं ?

यजुर्वेद अध्याय २४ ऋचा १

“हे मनुष्यो तुम ! जो शीघ्र चलनेहारा घोड़ा हिंसा करने वाला पशु और गौके समान वर्तमान नीतगाय है वे प्रजापालक सूर्य देवता वाले अर्थात् सूर्य मंडलके गुणों से युक्त जिनकी काली गर्दन वह पशु अग्नि देवतावाला प्रथमसे ललाट के निमित्त मेढ़ी सरस्वती देवता वाली नीचे से ठोड़ी वाम दक्षिण भागों के और भुजाओं के निमित्त नीचे रमण करने वाले जिन का अश्वदेवता वे पशु सोम और पूषा देवता वाला काले रंग से युक्त पशु तुन्दी के निमित्त और बाईं दाहनी ओर के नियम सुफेद रंग और काला रंग वाला और सूर्य वा यम सम्बन्धी पशु वा पैरोंकी गांठियों के पास के भागों के निमित्त जिसके बहुत रोम विद्यमान ऐसे गां-

ठियों के पान के भाग से युक्त त्वष्टा देवता वाले पशु वा पूंछ के निमित्त सुफेद रंग वाला वायु जिनका देवता है वह वा जो कामादीपन समय के बिना वेल के समीप जाने से गर्भ नष्ट करने वाली गी वा विशु देवता वाला और नाटा शरीर से कुछ टेढ़े अंग-वाला पशु इन सभी का जिन के सुन्दर २ कर्ण उस ऐश्वर्य युक्त पुरुष के लिये संयुक्त करो अर्थात् उक्त प्रत्येक अंग के आनन्द निमित्त उक्त गुण वाले पशुओं की नियत करो ।

(नोट) कृपाकर हमारे आर्य भाई बतायें कि शरीर के पृथक् २ अवयव जैसे ललाट, ठाढ़ी, भुजा, तुदी पैरों की गठियाँ, आदिक के निमित्त पृथक् पृथक् पशु पक्षी क्यों वर्णन किये गये हैं—

ऋचा २

हे मनुष्यो तुमको जो सामान्य लाल धुमेला लाल और पके घेर के समान लाल पशु हैं वे सोम देवता अर्थात् सोम गुण वाले जो न्योला के समान धुमेला लालामी लिये हुए न्योले के समान रंग वाला और शुग्गा की समता को लिये हुए के समान रंग युक्त पशु हैं वे सख बरुण देवता वाले अर्थात् श्रेष्ठ जो शिति रन्ध्र अर्थात् जिन के मर्म स्थान आदिमें सुपेदी जो और अंग में छेद से हो वैसी जिनके जहाँ तहाँ सुपेदी और जिनके सख और से छेदों के समान सुपेदी के चिन्ह हैं वे सख सविता देवता वाले जिन के अंगले भुजाओं में सुपेदी के चिन्ह जिस

के और अंग से और अंगमें सुपेदी के चिन्ह और जिसके सख और से अंगले गोड़ों में सुपेदी के चिन्ह हैं ऐसे जो पशु हैं वे बृहस्पति देवता वाले तथा जो सख अंगों से अच्छी छिटकी हुई सी जिस के छोटे २ रंग किरण छोटें और जिस के मोटे २ छोटें हैं वे सख प्राण और उदान देवता वाले होते हैं यह जानना चाहिये—

ऋचा ३

“ हे मनुष्यो ! तुम को जो जिस के शुद्ध बाल वा शुद्ध छोटे छोटे अंग जिसके समस्त शुद्ध बाल और जिसके मणिके समान चिलकते हुए बाल हैं ऐसे जो पशु वे सख सूर्य चन्द्र देवता वाले अर्थात् सूर्य चन्द्रमा के समान दिव्य गुण वाले जो सुपेद रंग युक्त जिनकी सुपेद आंखें और जो लाल रंग वाला है वे पशुओं की रक्षा करने और दुष्टों को रक्षामे हारके लिये जो ऐसे हैं कि जिनसे काम करते हैं वे वायु देवता वाले जिनके उत्पत्ति युक्त अंग अर्थात् स्थूल शरीर हैं वे प्राण वायु आदि देवता वाले तथा जिनका आकाश के समान नीलारूप है ऐसे जो पशु हैं वे सख मेघ देवता वाले जानने चाहिये । ”

ऋचा ४ ॥

“ हे मनुष्यो ! जो पूछने योग्य जिसका तिरछा स्पर्श और जिसका ऊँचा वा उत्तम स्पर्श है वे वायु देवता वाले जो फलों को प्राप्त हों जिनकी लाज ऊर्ण अर्थात् देह के बाल और जिनकी चंचल सपल आंखें ऐसे जो पशु हैं वे स-

रखती देवता वाले जिसके कानमें घी-  
हा रोम के आकार बिन्दु हों जिसके  
सूखे कान और जिसके अच्छे प्रकार प्रा-  
प्त हुए सुवर्ण के समान कान ऐसे जो  
पशु हैं वे सब त्वष्टा देवता वाले जो  
काले गले वाले जिसके पांजरकी और  
सुपेद अंग और जिन की प्रसिद्ध जंघा  
अर्थात् स्थूल होनेसे अलग विदित हों  
ऐसे जो पशु हैं वे सब पवन और वि-  
जुली देवता वाले तथा जिसकी कली-  
दी हुई चाल जिसकी थोड़ी चाल और  
जिन की बड़ी चाल ऐसे जो पशु हैं वे  
सब उषा देवता वाले होते हैं यह जा-  
नना चाहिये । ” अथा ५

“ हे मनुष्यो ! तुमको जो सुन्दर क-  
पवान् और शिल्प कार्यों की सिद्धि क-  
रने वाली विश्वेदेव देवता वाले वाणी  
के लिये नीचे से ऊपर की चढ़ने यांज्य  
को तीन प्रकारकी भेड़ें पृथिवीके लिये  
विशेष कर न जानी हुई भेड़ आदि  
धारण करने के लिये एकसे रूप वाली  
तथा दिव्य गुण वाले विद्वानोंकी स्त्रि-  
योंके लिये अतीव छोटी २ थोड़ी अ-  
वस्था वाली वस्त्रिया जाननी चाहिये । ”

( नोट ) हम नहीं समझते कि वि-  
द्वानोंकी स्त्रियां थोड़ी अवस्था वाली  
छोटी २ वस्त्रियाओंसे क्या कारण सिद्ध  
कर सकती हैं और यदि स्त्रियोंका कोई  
कार्य इन से सिद्ध होता है तो विशेष  
कर विद्वानोंकी ही स्त्रियोंके वास्ते ही  
क्यों यह छोटी २ वस्त्रिया वर्णन की  
गई हैं । अथा ६

“ हे मनुष्यो ! जो ऐसे हैं कि जिन  
की खिंची हुई गदन वा खिंचा हुआ  
खाना निगलना वे अग्नि देवता वाले  
जिनकी सुपेद भेड़ें हैं वे पृथिवी आदि  
वस्तुओं के जो लाल रंगके हैं वे प्राण आ-  
दि स्वारह रुद्रोंके जो सुपेद रंगके और  
अवरोध करने अर्थात् रोकने वाले हैं  
वे सूर्य सम्बन्धी गहोंनोंके और जो ऐसे  
हैं कि जिन का जलके समान रूप है वे  
जीव मेघ देवता वाले अर्थात् मेघ के  
सदृश गुणों वाले जानने चाहिये । ”

अथा ७

“ हे मनुष्यो ! तुमको जो ऊंचा और  
श्रेष्ठ टेढ़े अंगों वाले नाटा पशु हैं वे वि-  
जुली और पवन देवता वाले जो ऊं-  
चा जिसका दूसरे पदार्थको काटती छां-  
टती हुई भुजाओं के समान बल और  
जिसकी सूक्ष्म की हुई पीठ ऐसे जो पशु  
हैं वे वायु और सूर्य देवता वाले जि-  
नका सुगोंके समान रूप और वेग वाले  
कबरे भी हैं वे अग्नि और पवन देवता  
वाले तथा जो कालेरंग के हैं वे पुष्टि  
निमित्तिक मेघ देवता वाले जानने चा-  
हिये । ” अथा ८

“ हे मनुष्यो ! तुमको ये पूर्वोक्त द्वि-  
रूप पशु अर्थात् जिनके दो दो रूप हैं  
वे वायु और विजुली के संगी जो टेढ़े  
अंगों वाले व नाटे और खेल हैं वे सोम  
और अग्नि देवता वाले तथा अग्नि  
और वायु देवता वाले जो वन्ध्या गी  
हैं वे प्राण और उदान देवता वाली  
और जो कहीं से प्राप्त हों वे मित्र के  
प्रिय व्यवहारमें जानने चाहिये । ”

ऋचा ९

“हे मनुष्यो ! तुमको जो काले गलेके हैं वे अग्निदेवता वाले जो न्योले के रंग के समान रंग वाले हैं वे सोमदेवता वाले जो सुपेद हैं वे वायु देवता वाले जो विशेष चिन्ह से कुछ न जाने मये वे जो कभी नाश नहीं होती उस उत्पत्ति रूप क्रिया के लिये जो ऐसे हैं कि जिनका एकसा रूप है वे धारण करने हारे पवन के लिये और जो छोटी २ बछिया हैं वे सूर्य आदि लोकों की पालना करने वाली क्रियाओं के जानने चाहिये ।”

(नोट) आश्चर्य है कि छोटी २ बछिया सूर्य लोक में क्या काम देसकी हैं और सूर्य लोक का उपकार उनसे किस विधि से लेना चाहिये ? ॥

ऋचा १०

“हे मनुष्यो ! तुमको जो काले रंग के वा खेत आदि के जताने वाले हैं वे भूमि देवता वाले जो धूमेले हैं वे अन्तरिक्ष देवता वाले जो दिव्य गुण कर्म स्वभाव युक्त बढ़ते हुए और थोड़े सुपेद हैं वे बिजुली देवतावाले और जो संगल करानेहारे हैं वे दुख के पार उतारने वाले जानने चाहिये ।”

ऋचा १४

“हे मनुष्यो ! तुम को जो काले गले वाले हैं वे अग्नि देवता वाले जो सब का धारण पोषण करने वाले हैं वे सोम देवता वाले जो नीचे के समीप गिरे हुए हैं वे सविता देवता वाले जो

छोटी २ बछिया हैं वे वाणी देवता वाली जो काले वर्ण के हैं वे पृथ्वी क-रने हारे मेघ देवता वाले जो पूछने योग्य हैं वे मनुष्य देवता वाले जो बहु रूपी अर्थात् जिनके अनेक रूप हैं वे समस्त विद्वान् देवता वाले और जो निरन्तर चलकते हुए हैं वे आकाश पृथिवी देवता वाले जानने चाहिये ।”

ऋचा १५

“हे मनुष्यो ! तुमको ये कहे हुए जो अच्छे प्रकार चलने हारे पशु आदि हैं वे इन्द्र और अग्नि देवता वाले जो खींचने वा जोतने हारे हैं वे वरुण देवता वाले और जो चित्र बिचित्र चिन्ह युक्त मनुष्य कैसे स्वभाव वाले हिंसक हैं वे प्रजापति देवता वाले हैं यह जानना चाहिये ।”

ऋचा १७

“हे मनुष्यो ! तुमको जो ये वायु और बिजुली देवता वाले वा जिन के उत्तम शींग हैं वे महेन्द्र देवता वाले वा बहुत रंग युक्त विश्व कर्म देवता वाले जिनमें अच्छे प्रकार आते जाते हैं वे मार्ग निरूपण किये उनमें जाना आना चाहिये ।” ऋचा १९

“हे मनुष्यो ! तुम जो ये शुनासीर देवता वाले अर्थात् खेतीकी सिद्धि करने वाले आने जाने हारे पवन के समान दिव्य गुण युक्त सुपेद रंग वाले वा सूर्यके समान प्रकाशमान सुपेद रंग के पशु कहे हैं उन को अपने कार्योंमें अच्छे प्रकार निरन्तर नियुक्त कर ।”

ऋचा २० ।

“हे मनुष्यो ! पक्षियोंको जानने वाला जन वसन्त ऋतुके लिये जिन कपि-जल नामके विशेष पक्षियों ग्रीष्म ऋतु के लिये चिरीटा नामके पक्षियों वर्षा ऋतुके लिये तीतरों शरद ऋतुके लिये घनकों हेमन्त ऋतुके लिये ककर नाम के पक्षियों और शिशिर ऋतु के अर्थ बिककर नाम के पक्षियों को अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उन को तुम जानो । ”

ऋचा २१

“ हे मनुष्यो ! जैसे जलके जीवोंकी पालना करनेकी जानने वाला जन महा जलाशय समुद्र के लिये जो अपने बालकों को मार डालते हैं उन शिशु मारों मेघके लिये मेघुकों जलोंके लिये मछलियों मित्रके समान सुख देते हुए सूर्यके लिये कुलीपन नामके जंगली पशुओं और बरुण के लिये नाके मगर जल जन्तुओंको अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ । ”

ऋचा २२

“ हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियोंके गुणका विशेष ज्ञान रखने वाला पुरुष चन्द्रमा वा ओषधियों में उत्तम सोम के लिये हंस्तों पवनके लिये ब्रगुलियों इन्द्र और अग्नि के लिये सारसों मित्रके लिये जन के कडवों वा सुनरमुर्गी और बरुणके लिये चकई चकवोंको अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ । ”

ऋचा २३

“ हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियोंके गुण जानने वाला जन अग्निके लिये मुर्गी ब-

नस्पति अर्थात् बिना पुष्प फल देने वाले वृक्षोंके लिये उसलू पक्षियों अग्नि और सोंसके लिये नीलकंठ पक्षियों सूर्य चन्द्रमाके लिये मयूरी तथा मित्र और बरुणके लिये कबूतरोंको अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इनको तुम भी प्राप्त होओ । ”

ऋचा २४

“हे मनुष्यो ! जैसे पक्षियों का काम जानने वाला जन ऐश्वर्य के लिये बटेरों प्रकाश के लिये कौसीक नामके पक्षियों विद्वानों की स्त्रियों के लिये जो गौओंको मारती हैं उन पखेरियों विद्वानों की बहिनियोंके लिये कुलीक नामक पखेरियों और जो अग्निके समान वर्तमान गृह पालन करनेवाला उनके लिये पारुष्ण पक्षियों को प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ । ”

( नोट ) ममभ में नहीं आया कि विद्वानों की स्त्रियों के वास्ते गौओं का मारने वाला कौन सा पक्षी बताया है और है और किसकार्यके अर्थ ? और विद्वानों की वहनोंके वास्ते कौन सा पक्षी नियत किया गया है और किस काम के वास्ते ? ॥

ऋचा २५

“हे मनुष्यो ! जैसे काल का जानने वाला दिवन के लिये कोमल शब्द कहने वाले कबूतरों रात्रि के लिये सी-आपू नामक पक्षियों दिन रात्रि के सन्धियों अर्थात् प्रातः सायंकालके लिये जतू नामक पक्षियों महीनोंके लिये

काले कौश्यों और वर्षके लिये बड़े २ सुन्दर २ पंखों वाले पक्षियोंको अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी इनकी प्राप्त होओ ।,

ऋचा २६

“हे मनुष्यो ! जैसे भूमि के जंतुओंके गुण जानने वाला पुरुष भूमि के लिये मूषों अन्तरिक्ष के लिये पंक्ति रूपके चलने वाले विशेष पक्षियों प्रकाश के लिये कश नाम के पक्षियों पूर्वआदि दिशाओं के लिये नेत्रों और अवा-न्तर अर्थात् कोण दिशाओंके लिये भूरे भूरे विशेष नेत्रों की अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे तुम भी प्राप्त होओ

ऋचा २७

“हे मनुष्यो ! जैसे पशुओं के गुणोंका जानने वाला जन अग्नि आदि वसुओं के लिये ऋश्य जातिके हरिणों प्राण आदि रुद्रों के लिये रोज नामी जंतु-ओं वारह सहीनों के लिये न्यङ्कु ना मक पशुओं सशस्त्र दिव्य यदार्थों वा विद्वानोंके लिये पृथक् जाति के मृग विशेषों और सिंह करने के योग्य हैं उनके लिये तुलुङ्ग नाम के पशु विशेषों की अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे इन का तुम भी प्राप्त होओ ।,

( नोट ) क्या वारह सहीनोंकी भी अग्नि वायु आदि के समान देवता माना है ? और वारह सहीने के वर-हते न्यङ्कु नाम का पशु किस कारण से नियत किया है ? उक्त पशु को वा रह सहीने वाले देवता के नाम पर

अर्पण कर देना चाहिये और यदि क-रना चाहिये तो किस प्रकार ? ॥

ऋचा ३१

“हे मनुष्यो ! तुमको प्रजापति देवता वाला किनर निन्दित मनुष्य और जो छोटा कीड़ा विशेष सिंह और बिला-र हैं वह धारणा कर ने वाले के लिये उजली चील्ह दिशाओंके हेतु धुङ्का नामकी पक्षिणी अग्नि देवता वाली जो चिरौटा लाल सांप और तालाव में रहने वाला है वे सब त्वष्टा देवता वाले तथा वाणी के लिये सारस जान ना चाहिये ।,

ऋचा ३२

“हे मनुष्यो ! यदि तुमने सोम के लिये जो कुलंग नामक पशु वा बनेला बक-रा न्योला और सारथ्य वाला विशेष पशु हैं वे पुष्टि करने वालेके सम्बन्धी या विशेष मियार के हेतु सामान्य मियार वा ऐश्वर्य युक्त पुरुष के अर्थ गौरा हिरण वा जो विशेष मृग किमी और जातिका हरिण और ककूट नाम का मृग है वे अनुमति के लिये तथा सुने पीछे पुनाने वाली के लिये चकई चकवा पक्षी अच्छे प्रकार युक्ति किये जावें तो बहुत काम करने को समर्थ हो सकें ।,

(नोट) सोमको ऋग्वेद में एक प्रका-र की उपरूपति वर्णन किया है जिस की सिल बड़े से पीसकर और पानी और दूध और मिठाई मिलाकर नद

के वास्ते पीते थे जिसकी स्वामी जीने औषधि लिखा है और हमने अपने पिछले लेखों में भंग सिद्ध किया है उस सोमके साथ कुलंग नामका पशु वा जं गली बकरा किस प्रकार युक्त किया जा सकता है और उससे क्या कार्य सिद्ध होता है हमारी समझमें नहीं आया ?।

ऋचा ३३

“हे मनुष्यो ! तुमको जिसका सूर्य देवता है वह खगुलिया तथा जो पपीहा पक्षी सृज्य नामवाला और श्यांढ पक्षी हैं वे प्राण देवता वाले भृग्वी पुरुष के समान खोलने हारा शुग्गा नदी के लिये सेही भूमि देयता वाली जो केशरी सिंह भेड़िया और सांप हैं वे क्रोध के लिये तथा शुद्धि करने हारा शुआ पक्षी और जिसकी मनुष्य की खोली के समान खोली है वह पक्षी समुद्र के लिये जानना चाहिये ।”

ऋचा ३६

“हे मनुष्यो ! तुमको जो हरिणी है वह दिन के अर्थ जो मेंडुका मूषटी और तीतरि पक्षी हैं वे सर्पों के अर्थ जो कोई बनचर विशेष पशु वह अश्व देवता वाला जो काले रंगका हरिण आदि है वह रात्रि के लिये जो रीछ जतू नाम वाला और सुषिली का पक्षी है वे और मनुष्यों के अर्थ और अंगोंका संकोच करने हारी पक्षिणी विष्णु देवता वाली जानना चाहिये ।”

ऋचा ३७

“हे मनुष्यो ! तुमको जो कीकिला पक्षी

है वह पखवाड़ोंके अर्थ जो ऋश्यजाति का मृग मयूर और अरुद्धे पंखों वाला विशेष पक्षी है वे गाने वालों के और जलोंके अर्थ जो जलचर गिंगचा है वह महीनों के अर्थ जो ककुआ विशेष मृग कुंडऋणाची नामकी बनमें रहने वाली और गोलत्तिका नाम वाली विशेष पशु जाति है वह किरण, आदि पदार्थों के अर्थ और जो काले गुण वाला विशेष पशु है वह मृत्यु के लिये जानना चाहिये ।

( नोट ) अफसोस है कि परमेश्वर ने जिसको वेदका बनाने वाला कहा जाता है मृत्यु के लिये जो पशु है उसका कुछ भी पता न दिया केवल इतना ही कह कर छोड़ दिया कि काले गुण वाला विशेष पशु । स्वामी दयानन्द जी के कथनानुसार वेद तो मनुष्योंको उस समय दिये गये जब वह कुछ नहीं जानते थे और जो विद्यावेद में नहीं है उसको कोई मनुष्य जान नहीं सकता है । यदि ऐसा है तो वेद के बनाने वाले परमेश्वर को यह न सूझी कि जगत् के मनुष्य मृत्यु के पशु को किस तरह पहचानेंगे ? और वह परमेश्वर वेद में यह भी लिखना भूल गया कि उस पशु का मृत्यु से क्या सम्बंध है मृत्यु के लिये उस पशु से क्या और किस प्रकार काम लेना चाहिये ?।

ऋचा ३८

“हे मनुष्यो ! तुमको जो वर्षाकी बुलाती है वह मेंडुकी वसन्त आदि अ-



तुओं के अर्थ सूषा सिखाने योग्य कश नाम वाला पशु और मान्धाल नामी विशेष जन्तु हैं वे पालना करने वालों के अर्घ्य बल के लिये बड़ा सांप अग्नि आदि वस्तुओं के अर्थ कपिञ्जल नामक जो कबूतर उल्लू और खरहा हैं वे नि-श्रान्ति के लिये और वरुण के लिये बनेला मेढ़ा जानना चाहिये ।,

(नोट) यह बात हमको वेदों से ही मालूम हुई कि वर्षा की मेंडक ही बु-लाता है, यदि मेंडक न बुलावे तो शा-यद वर्षा न आवे। यदि ऐसा है तो मेंडक को अवश्य पूजना चाहिये क्यों कि वर्षा के बिहून जगत के सर्व मनु-ष्यों का नाश हो जावे। वर्षा ही म-नुष्य की पालना करती है और वर्षा आती है मेंडकों के बुनाने से तबतो मेंडक ही सारे जगत के प्रतिपालक हुये। भाईयो! जितना २ आप विचार करेंगे आप को यह ही सिद्ध होगा कि यह गंधारों के गीत हैं? ग्रामीण बुद्धि हीन अनाड़ी लोगों का जैसा विचार था वैसे वेतुके और वे मतलब गीत उन्होंने जोड़ लिये। बेचारे भेड़ बकरी चराने वाले गंधार इससे अच्छे और क्या गीत जोड़ सकते थे? ॥

ऋचा ३९

“हे मनुष्यों तुमको जो चित्र विचित्र रंगवाला पशु विशेष वह समय के अवयवों के अर्थ जो ऊंट तेजस्वि वि-शेष पशु और कंठ में जिसके घन ऐसा बड़ा बकरा है वे सब बुद्धि के लिये

जो नीलगाय बड़ बन के लिये जो सुग विशेष है वह रुद्र देवता वाला जो कृषि नामका पक्षी मुर्गा और कीआ हैं वे घोड़ों के अर्थ और जो कोकिला है वह कामके लिये अच्छे प्रकार जा-नने चाहिये ।,

(नोट) अफसोस है कि न तो वेद बनाने वाले परमेश्वरने ही वेदमें लिखा और न स्वामी दयानन्द जीने अपने अर्थों में जाहिर किया कि बड़ा बकरा जिस के कंठ में घन है बुद्धि के वास्ते किस प्रकार कार्यकारी हो सका है? शायद आर्य भाइयों के कान में स्वामी जी इसकी तरकीब बता गये हों और आर्य भाइयोंने ऐसी कोई तरकीब की भी हो। यह ही कारण मालूम होता है कि वह ऐसे बड़े बुद्धिमान् होगये हैं कि वेदों के गंधार गीतों की ईश्वरका वाक्य कहते हैं क्योंकि बुद्धिमान् आर्य भाइयो! स्वामी दयानन्दजीने तो वेदों को प्रकाश करके उनका भाष्य बनाकर जगत्का उपकार किया है आप कृपा कर इतना ही बता दीजिये कि मुर्गे और कठबे घोड़ों के अर्थ किस प्रकार हैं? ॥

ऋचा ४०

“हे मनुष्यो तुम को जो ऊँचे और पैने सींगों वाला गेंडा है वह सब वि-द्वानोंका जो कालेरंग वाला कुत्ता बड़े कानों वाला गदहा और व्याघ्र हैं सब वे सब राक्षस दुष्ट हिंसक हवयियों के अर्थ जो सुअर है वह शत्रुओं को

बिदारने वाले राजाके लिये जो सिंहा है वह बहुत देवता वाला जो गिर मिटान घिपका नाम की पहिली और पल्लिमात्र है वे सब जो शरबियों में कुशल उत्तम है उसके लिये और जो पृथज्जाति के हरिण हैं वे सब विद्वानोंके अर्थ जानना चाहिये ।”

( नोट ) प्रिय पाठको अब आप समझ गये होंगे कि इस अध्याय में कैसे गीत हैं ? इसही प्रकारका वर्णन सारे अध्याय में है परन्तु भेड़ बकरी चराने वाले गंवारों की जैसी बुद्धि होती है वैसा ही उन विचारों ने गीतोंमें अटकलपट्ट वर्णन किया है ॥

## आर्यमत लीला ।

( १५ )

वेदोंमें मांसका भी वर्णन मिलता है स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके अर्थोंके अनुसार इन कुछ वेद मंत्र लिखते हैं और अपने उन आर्या भाइयोंसे जो मांसका निषेध करते हैं प्रार्थना करते हैं कि वह कृपा कर इन मंत्रोंकी पढ़ें और विचार करें कि—वेदोंमें मांसका वर्णन किस कारण आया है ? और यदि भले प्रकार विचारके पश्चात् भी उनकी यह ही सम्मति हो कि वेद ईश्वर वाक्य हैं और अवश्यमानने योग्य हैं तो परोपकार बुद्धिसे वह इन मंत्रों का आशय प्रकाशित कर दें ॥

ऋग्वेद प्रथम मंडल सूक्त १६२ अ० १३

“जो मांसाहारी जिसमें मांस पकाते हैं उस पाक सिद्ध करने वाली बटलोई का निरन्तर देखना करते उसमें वैसनस्य कर जो रसके अच्छे प्रकार सेचनके आधार वा पात्र वा गरमपन उत्तम पदार्थ बटलोइयोंके मुख ढांपनेकी दकनियां अन्न आदिके पकानेके आधार बटलोई कड़ाही आदि बर्तनोंके लक्षण हैं उनकी अच्छे जानते और घोड़ोंकी सुशोभित करते हैं वे प्रत्येक काममें प्रेरित होने हैं ॥”

ऋग्वेद पंचम मंडल सूक्त ३४ अ० २

“हे मनुष्यो जो कामना करता हुआ बहुत धनसे युक्त जन सोमलतासे उत्पन्न रससे उदरकी अग्निकी अच्छे प्रकार पूर्ण करे और मधुर आदि गुणोंसे युक्त अन्न आदिका भोग करके आनन्द करे और जो अत्यन्त नाश करने वाला ( मृगाय ) हरिणकी मारनेके लिये हजारों दहन जिमसे उस बधकी सब प्रकारसे देवै वह सब सुखको प्राप्त होता है ॥”

यजुर्वेद २१वां अध्याय अ० ५८

“हे मनुष्यो जैसे यह पचानेके प्रकारों की पचाता अर्थात् सिद्ध करता और यज्ञ आदि कर्ममें प्रसिद्ध पाकीकी पचाता हुआ यज्ञ करने द्वारा सुखोंके देने वाले आगकी स्वीकार वा जैसे प्राण और अपान के लिये छेरी ( बकरी का वच्चा ) विशेष ज्ञान युक्त कण्ठीके लिये भेड़ और परम ऐश्वर्यके लिये बैल की बांधते हुए वा प्राण अपान विशेष

ज्ञान युक्त वाणी और भली भांति र-  
क्षा करने हारे राजाके लिये उत्तम रस  
युक्त पदार्थों का सार निकालते हैं वैसे  
तुम आज करो-”

यजुर्वेद २१ वां अध्याय ऋ० ६०

“हे मनुष्यो जैसे आज भली भांति  
समीप स्थिर होने वाले और दिव्य गुण  
वाला पुरुष बट वृद्ध आदिके समान  
जिसर प्राण और अपानके लिये दुःख  
बिनाश करने वाले खेरी आदि पशुसे  
वाणीके लिये मेढ़ासे परम ऐश्वर्यके लिये  
वैलसे भोग करें उन सुन्दर चिकने  
पशुओंके प्रति पचाने योग्य वस्तुओंका  
ग्रहण करें प्रथम उत्तम संस्कार किये  
हुए विशेष अन्नसे वृद्धिको प्राप्त हों प्राण  
अपान प्रशंसित वाणी भलीभांति रक्षा  
करने हारा परम ऐश्वर्यवान राजा को  
अरक खींचनेसे उत्पन्न हों उन औषधि  
रसोंको पाँचै वैसे आप होवो-”

यजुर्वेद २५ वां अध्याय ऋ० २९

“जो यज्ञ खंभाके छेदने बनाने और  
जो यज्ञस्तम्भ को पहुंचाने वाले घोड़ा  
के बांधनेके लिये खंभाके खंभको का-  
टते कांटते और जो घोड़ाके लिये जि-  
समें पाक किया जाय उस कामको अ-  
च्छे प्रकार धारण करते वा पुष्ट करते  
और जो उत्तम यज्ञ करते हैं उन का  
सब प्रकारसे उद्यम हम लोगोंकी व्याप्त  
और प्राप्त होवे-”

यजुर्वेद २५ वां अध्याय ऋ० ३१-३२

“हे विद्वन् ! प्रशस्त वेग वाले इस  
बलवान् घोड़ेका जो उदर बन्धन अ-

र्थात् तंगी और अगाड़ी पिछाड़ी पर  
आदिमें बांधनेकी रस्सी वा जो शिर  
में होने वाली मुंहमें व्याप्त रस्सी मु-  
हेरा आदि अथवा जो इस घोड़ेके मुख  
में घास दूब आदि विशेष तृण उत्तम-  
तासे धरी हो वे सब पदार्थ तेरे हों  
और यह उक्त समस्त वस्तु ही विद्वान्-  
नोंमें भी हो-”

“हे मनुष्यो ! जो मक्खी चलते हुए  
शीघ्र जाने वाले घोड़ेका भोजन करती  
अर्थात् कुछ मल रुधिर आदि खाती  
अथवा जो स्वर बज्जके समान वर्तमान  
हैं वा यज्ञ करने हारेके हाथोंमें जो वस्तु  
प्राप्त और जो नखों में प्राप्त है वे सब  
पदार्थ तुम्हारे हों तथा यह समस्त व्य-  
वहार विद्वानोंमें भी होवें ।”

यजुर्वेद २५ वां अध्याय ऋ० ३५

“जो घोड़ेके मांसके मांगनेकी उपा-  
सना करते और जो घोड़ा को पाया  
हुआ मारने योग्य कहते हैं उनकी नि-  
रन्तर हरो दूर पहुंचाओ-जो वेगवान्  
घोड़ोंकी पक्षा मिखाके सब ओरसे दे-  
खते हैं और उनका अच्छा सुगन्ध और  
सब ओरसे उद्यम हम लोगों की प्राप्त  
ही उनके अच्छे काम हम को प्राप्त हैं  
इस प्रकार दूर पहुंचाओ ।”

यजुर्वेद २५ वां अध्याय ऋ० ३६

“जो गरमियोंमें उत्तम ढांपने और  
सिचाने हारे पात्र वा जो मांस जिस  
में पकाया जाय उस बटलोई का नि-  
कृष्ट देखना वा पात्रोंके लक्षणा किए हुए  
प्रसिद्ध पदार्थ तथा बढ़ाने वालेके घो-

इको सब ओरसे सुशोभित करते हैं वे सब स्वीकार करने योग्य हैं । ”

यजुर्वेद २५ वां अध्याय ऋ० ३७

“ हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन जिस चाहे हुये प्राप्त चारों ओरसे जिसमें उद्यम किया गया ऐसे क्रियासे सिद्ध हुए वेगवान् घोड़ेकी प्रति प्रतीतिसे यहण करते उसको तुम सब ओरसे जानो उसको धुआंमें गन्ध जिसका वह अग्नि-जल शब्द करे वा उसको जिमसे किसी वस्तुको सूंघते हैं वह चमकती वटलीई मत हिसवावे । ”

यजुर्वेद २८ वां अध्याय ऋ० ४६

“ हे मन्त्रार्थ जानने वाले विद्वान् पुरुष ! जैसे यज्ञ करने द्वारा इस समय नाना प्रकार के पाकोंकी पकाता और यज्ञमें होमनेके पदार्थकी पकाता हुआ तेजस्वी होता को आज्ञा स्वीकार करे वैसे सबके जीवन की पढ़ाने द्वारे उत्तम ऐश्वर्यके लिये छेद न करने वाले बकरी आदि पशुको बांधते हुए स्वीकार कीजिये--”

यजुर्वेद २५ वां अध्याय ऋ० ४२

“ हे मनुष्यो ! जैसे अकेला बसन्ति आदि ऋतु शोभायमान घोड़ेका विशेष करके रूपादिका भेद करने वाला होता है वा जो दो नियम करने वाले होते हैं वैसे जिन तुम्हारे अंगों वा पिबड़ोंके ऋतु सम्बन्धी पदार्थोंकी मैं करता हूं उन २ की आगमें होमता हूं--”

( नोट ) अंगों वा पिबड़ोंके ऋतु सम्बन्धी पदार्थ क्या वही पशु पक्षी

आदि हैं जिनका वर्णन यजुर्वेद अध्याय २४ वें में किया है ?

आर्यमत लीला ।

[ च—भाग ]

आर्योंका मुक्ति

सिद्धान्त ।

( १६ )

भेड़ बकरी चराने वाले गंवारोंके जो गीत वेदोंसे उद्धृत कर हम स्वामी दयानन्दजी के अर्थों के अनुसार जैनगजट में [ पिछले लेखों में ] लिखते रहे हैं उस को पढ़ते पढ़ते हमारे भाई उकता गये होंगे—हमने बहुत सा भाग वेदोंका जैनगजट में छाप दिया है शेष जो छपने से रह गया है उस में भी प्रायः इसही प्रकार के गंवारू गीत हैं इस कारण यदि आगामी भी हम वेदों के वाक्य छापते रहेंगे तो हमारे पाठकों की असुविधा हो जावेगी—

अतः अब हम वेद वाक्योंका लिखना छोड़कर आर्यमतके सिद्धान्तों और स्वामी दयानन्द जी की कर्तूत की दिखाना चाहते हैं—

हमारे पाठक जानते हैं कि पृथ्वी पर अनेक देश हैं परन्तु हिन्दुस्तानके अतिरिक्त अन्य किसी देश वासियों की जीवात्मा के गुण स्वभाव और कर्म का ज्ञान नहीं है—आजकल अंगरेज लोग बहुत बुद्धिमान कहलाते हैं और पदार्थ विद्या में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने अनेक ऐसी कलें ब-

नाई हैं जिन को देखकर हिंदुस्तानी आश्चर्य मानते हैं परंतु उनका सब ज्ञान जड़ अर्थात् अचेतन-पद्वल पदार्थ के विषयमें है जीवात्मा के विषय को वह कुछ भी नहीं जानते हैं और वह यह मानते भी हैं कि जीवात्मा के विषय में जो कुछ ज्ञान प्राप्त हो सकता है वह हिंदुस्तानसे ही हो सकता है--यह ही कारण है कि वह हिंदुस्तान के शास्त्रों की बहुत खोज करते हैं और हिंदुस्तान का जो कोई धार्मिक विद्वान् उनके देशमें जाता है उसका वह आदर सत्कार करते हैं और उसके व्याख्यान को ध्यानसे सुनते हैं।

जीवात्मा के विषय को जानने वाले हिन्दुस्तानियों का यह सिद्धांत सर्वमान्य है कि जीव नित्य है, अनादि है, अनन्त है, जड़ अर्थात् अचेतन पदार्थ से भिन्न है, कर्मवश बंध में फंसा है इसी से दुःख भोगता है परंतु कर्मों को दूर कर बंधन से मुक्त हो सकता है जिस को मुक्ति कहते हैं और मुक्ति दशा को प्राप्त होकर सदा परमानन्द में मग्न रहता है। यह गृह्य बात हिन्दुस्तान के ही शास्त्रों में मिलती है कि जीव का पुरुषार्थ सुख की प्राप्ति और दुःख का वियोग करना ही है। दुःख प्राप्त होता है इच्छा से और सुख नाश है इच्छा के न होने का इसकारण परम आनन्द जिन को मुक्ति कहते हैं वह इच्छाके सम्पूर्ण अभाव होने से ही होती है। इस ही हेतु इच्छा वा राग द्वेष के दूर करनेके साधनोंका

नाम धर्म है। इसही साधन के गृह्य और सन्यास आदिक अनेक दर्जे महर्षियों ने बांधे हैं और इस ही के साधनों के वर्णन में अनेक शास्त्र रचे हैं। इन ही शास्त्रोंके कारण हिन्दुस्तानका गौरव है और सत्य धर्म की प्रवृत्ति है।

यद्यपि इस कलिकाल में इस धर्मपर चलने वाले खिले ही रह गये हैं विशेष कर वाह्य आहम्बर के ही धर्मात्मा दिखाई देते हैं परन्तु अविप्रणीत शास्त्रोंका विद्यमान रहना और मनुष्यों की उन पर श्रद्धा होना भी गनीमत था और इतनेही से धर्म की बहुत कुछ स्थिति थी। परन्तु इस कलिकाल को इतना भी संजूर नहीं है और कुछ न हुवा तो इस काल के प्रभाव से स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज पैदा होगये जिन्होंने धर्म को सर्वथा निर्मूल करदेना ही अपना कर्तव्य समझा और धर्मको एक बच्छों का खेल बनाकर हजारों भोले भाईयों की मति (बुद्धि) पर अज्ञान का पर्दा डाल दिया और उस हिन्दुस्तान में जो जीवात्मा और धर्म के ज्ञान में जगत् प्रसिद्ध है ऐसा विषका बीज बाँकर चलादिये कि जिनसे सत्य धर्म विलकुल ही नष्ट भूट हो जावे वह अपने खेलों को यह विलक्षण सिद्धान्त सिखा गये हैं कि जीवात्मा कभी कर्मों से रहित हो ही नहीं सकता है वरन इच्छा द्वेष आदिक उपाधि इस के सदा बनी ही रहती हैं।

प्यारे आर्य्य भाइयो ! यदि आप धर्म के निद्वान्त और उन के लक्षणों पर ध्यान देंगे तो आप को मालूम होजायेगा कि स्वामी जी का यह नवीन सिद्धान्त धर्म की जड़ पूरी तौर पर उखाड़कर फेंक देने वाला है परन्तु क्या किया जाय आप तो धर्मकी तरफ ध्यान ही नहीं देते हैं ? आप ने अपना सारा पुरुषार्थ संसार की ही वृद्धि में लगा रक्खा है। प्यारे आर्य्य भाइयो ! संसार में अनेक प्रकार के अनन्त जीव हैं परन्तु धर्म को समझने और धर्म साधन करने की शक्ति एक मात्र मनुष्य को ही है नहीं मालूम आपका और हमारा कौन पुण्य उदय है जो यह मनुष्य जन्म प्राप्त हो गया है और नहीं मालूम कितने काल मनुष्य शरीर के अतिरिक्त अन्य कीड़ी मकौड़ी कुत्ता बिल्ली आदिक जीवों के शरीर धारण करते हुये चलते फिरते रहे हैं ? हमारा यह ही अहो भाग्य नहीं है कि हमने मनुष्य जन्म पाया बरखा इससे भी अधिक हमारा यह अहो भाग्य है कि हम ने हिन्दुस्तान में जन्म लिया जहां ऋषि प्रणीत अनेक सत् शास्त्र जीवात्मा का ज्ञान प्राप्त कराने वाले हमको प्राप्त हो सकते हैं इस कारण हमको यह समय बहुत गनीमत समझना चाहिये और अपने कल्याण में अवश्य ध्यान देना चाहिये और सत्य सिद्धान्तोंकी खोज करनी चाहिये।

ज्यादा मुशकिल यह है कि आप लोग स्वामी दयानन्द जी से विरुद्ध

कुछ सुनना नहीं चाहते हैं क्योंकि आप के हृदय में यह दृढ़ प्रतीति है कि स्वामी जी ने हिन्दुस्तान का बहुत उपकार किया है और जो कुछ धर्म का आन्दोलन हो रहा है वह उन ही की कृपा का फल है। प्यारे भाइयो ! यह आप का ख्याल एक प्रकार बिल्कुल सच्चा है और हम भी ऐसा ही मानते हैं परन्तु जरा ध्यान देकर विचारिये कि संसार में जो हजारों मत फैल रहे हैं वा जो लाखों मत फैलते रहे हैं उन मतों के चलाने वाले क्या परोपकारी नहीं थे ? और क्या उस समय उनसे संसार का उपकार नहीं हुवा है ? परन्तु बहुतसे धर्म के चलाने वाले परोपकारियों का परोपकार उस समय के अनुकूल होने से थोड़े ही दिनों तक रहा है पश्चात् वहही उनके सिद्धान्त विषये समान हानिकारक हो गये हैं-दृष्टान्त रूप विचारिये कि आपके ही कथनानुसार उस समय में जब कि यवन लोग हिंदुओं की कन्याओंको जबरदस्ती निकाह में लेने (विवाहने) लगते तो काशीनाथ जी इस आशय का श्लोक चढ़के कि दश वर्ष की कन्या का विवाह कर देना चाहिये हिन्दुओं का कितना बड़ा भारी उपकार किया परन्तु वास्तव में वह उपकार नहीं था अपकार था और पूरी दुश्मनीकी थी क्योंकि काशीनाथ जी ने सत्य रीति और सत्य शिक्षा से

काम नहीं लिया बरन धोके से काम लिया और उस समय के मनुष्यों को बहकाया कि दश वर्ष की कन्या का विवाह कर देना चाहिये हमके उपरांत विवाह न करने से पाप होता है - यद्यपि उस समय के लोगों को उनका यह कृत्य उपकार नजर आया परंतु उसका यह जहर खिला ( फैला ) कि इस ही के कारण सारा हिंदुस्तान निर्बल और शक्ति शून्य हो गया और हमही के प्रचारके कारण बाल विवाह के रोकनेमें जो कठिनाई प्राप्त हो रही है वह आप का मन ही जानता है ।

प्यारे आर्यभाइयो ! जितने मत मतान्तरोंका स्वामी जीने खण्डन किया है और आप खण्डन कर रहे हैं उनके चलाने वाले उसही प्रकार परोपकारी थे जिस प्रकार स्वामी दयानन्द जी और उस समयके लोगोंने उन को ऐसा ही परोपकारी मानाथा जैसा कि स्वामी दयानन्द जी माने जाते हैं परन्तु जिन परोपकारियों ने सत्य से काम लिया यद्यपि उन के परोपकार का प्रचार कम हुआ परंतु वह सदा के वास्ते परोपकारी रहेंगे और जिन्होंने काशीनाथ की तरह बनावट से काम लिया और समय की ज़रूरत के अनुसार मनघड़त सिद्धांत स्थापित करके काम निकाला उन्होंने यद्यपि उस समय के वास्ते उपकार किया परंतु वे सदा के वास्ते अधर्म रूपी विष फैला गये हैं ।

मेरे प्यारे भाइयो ! यदि आपने स्वामी दयानन्द जी के वेदों के भाव्य को पढ़ा होगा और यदि नहीं पढ़ा तो जैनगण्ट में जो वेदों के विषय में लेख छपे हैं उनसे जान गये होंगे कि वेद कदाचित् भी ईश्वर कृत नहीं कहे जा सकते हैं बरन वह किसी विद्वान् मनुष्य के बनाये हुवे भी नहीं हैं वह केवल भेड़ बकरी चराने वाले मूर्ख गंवारी के गीत हैं । उनमें कोई विद्या की बात नहीं है परन्तु सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी जीने वेदों को ईश्वरकृत समझाया है और दुनियां भरकी विद्या का भण्डार उनको बताया है । इसका कारण क्या ? स्वामी दयानन्द जी जिन्होंने स्वयम् वेदों का अर्थ किया है क्या इस बात को जानते नहीं थे कि वे कोई ज्ञान की पुस्तक नहीं है ? वह सब कुछ जानते थे परन्तु सीधे मछवे रास्ते पर चलना उनका उद्देश नहीं था वह अपना परम धर्म इस ही में समझते थे कि जिस बिधि हो अपना मतलब निकाला जावे । वह जानते थे कि हिन्दुस्तान के प्रायः सर्व ही मनुष्य वेदों पर अढ़ा रखते हैं इस कारण उनको भय था कि वेदों के निषेध करने में कोई भी उनकी न सुनैगा इस कारण उन्होंने वेदों की प्रशंसा की । परंतु सच पूछो तो इस काम में उन्होंने आर्य समाज के साथ दुश्मनी की क्योंकि आज कल हिन्दी भाषा और संस्कृत विद्या का

प्रचार अधिक होता जाता है लोग पहले की तरह ब्राह्मणों वा उपदेशकों के वाक्यों पर निर्भर नहीं है वरण स्वयम् शास्त्रों का स्वाध्याय करते हैं इस कारण जब आर्य लोगों में वेदों के पढ़ने का प्रचार होगा तब ही उन को आर्यभट भूटा प्रतीत हो जावेगा।

प्यारे आर्य भाइयो ! आपको संदेह होगा और आप प्रश्न करेंगे कि स्वामी जी को आर्यभट स्थापन करने और भूट सच बातें बनावकर हिन्दुस्तान के लोगों को अपने फंडे तले लाने की क्या आवश्यकता थी ? इस का उत्तर यदि आप विचार करेंगे तो आप को स्वयम् ही मिल जावेगा कि स्वामी जी एक प्रकार से परोपकारी थे-उनके समय में बहुत हिंदू लोग ईसाई होने लगे और अंगरेजी लिखे पढ़ों को हिन्दू धर्म से घृणा होने लगी थी। स्वामी जी को इस का बड़ा दुःख था उन्होंने ने जिस तिस प्रकार अंगरेजी पढ़ने वाले हिन्दुओं को ईसाई होने से बचाया और जो २ बातें उन लोगों को प्रिय थीं वह सब प्राचीन हिंदू ग्रन्थों में सिद्ध करके दिखाई--और वेद जो सब से प्राचीन प्रसिद्ध थे उन को नवीन सिद्धान्तों का आश्रय बनावलिया। अंगरेजी पढ़े लिखे हिंदू भाई जिन्हों ने अंगरेजी फ़िलासफ़ी में अचेतनपदार्थ का ही वर्णन पढ़ा था उनकी समझ में जीवात्मा का कर्म रहित होकर मुक्ति में नित्य के लिए रहने का सिद्धान्त कब आने

लगाया ? इस कारण स्वामी जी को उस समयके अंगरेजी पढ़े हिन्दुओंकी रुचिके वास्ते जहां अन्य अनेक नवीन सिद्धान्त पढ़ने पड़े वहां मुक्तिके विषयमें भी धर्मका विस्कुल विध्वंस करने वाला यह सिद्धान्त नियत करना पड़ा कि जीवात्मा कभी कर्मोंसे रहित होही नहीं सकता है और इच्छा द्वेष इससे कभी दूर होही नहीं सकते हैं ॥

प्यारे आर्य भाइयो ! हमारा यह अनुमान ही नहीं है वरण हम सत्यार्थ-प्रकाशसे स्पष्ट दिखाना चाहते हैं कि स्वामी जी अपने हृदयमें मानते थे कि इच्छाके दूर होनेसे ही सुख होता है। इच्छा द्वेषके पूर्ण अभावसे ही परमानन्द प्राप्त होता है। परमानन्द ही का नाम मुक्ति होता है और मुक्ति प्राप्त होकर फिर जीव कर्मोंके बंधनमें नहीं पड़ता है--परन्तु ऐसा मानते हुए भी स्वामीजीने इन सब सिद्धान्तोंके विरुद्ध कहना पसन्द किया। देखिये--

(१) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २५० पर स्वामीजी लिखते हैं--

“सब जीव स्वभावसे सुख प्राप्ति की इच्छा और दुःखका वियोग होना चाहते हैं--।”

(२) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८८ पर स्वामीजी लिखते हैं--

“जब उपामना करना चाहे तब एकान्त शुद्ध देशमें जाकर आसन लगा प्राणायाम कर बाह्य विषयोंसे इन्द्रि-



योंको रोक.....अपने आत्मा और परमात्माका विवेचन करके परमात्मा में सग्न होकर संयमी होवें,,

“धैसे परमेश्वरके समीप प्राप्त होनेसे सबदोष दुःख छूटकर परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके सदृश जीवात्माके गुण स्वभाव पवित्र होजाते हैं”

( ३ ) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २५० पर स्वामीजी लिखते हैं—

“ मुक्तिमें जीवात्मा निर्मल होनेसे पूर्णज्ञानी होकर उसको सब सन्नहित पदार्थोंका भान यथावत् होता है,,

( ४ ) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २३६ पर स्वामीजी प्रश्नोत्तररूपमें लिखते हैं:—

“ ( प्रश्न ) मुक्ति किसको कहते हैं ?

( उत्तर ) “ मुमुक्षुन्ति पृथग्भवन्ति जना-यस्यां सा मुक्तिः” जिसमें छूटजाना हो उसका नाम मुक्ति है ( प्रश्न ) किमसे छूटजाना ? ( उत्तर ) जिससे छूटनेकी इच्छा सब जीव करते हैं ? ( प्रश्न ) किससे छूटनेकी इच्छा करते हैं ( उत्तर ) जिससे छूटना चाहते हैं ( प्रश्न ) किस से छूटना चाहते हैं ? ( उत्तर ) दुःखसे ( प्रश्न ) छूटकर किमको प्राप्त हों और कहाँ रहते हैं ? ( उत्तर ) सुखको प्राप्त होते हैं और ब्रह्ममें रहते हैं”

( ५ ) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २३७ पर स्वामीजी लिखते हैं:—

“ मोक्षमें भौतिक शरीर वा इन्द्रियोंके गोलक जीवात्माके साथ नहीं र-

हते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं ”

( ६ ) सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ ३८ पर स्वामी जी लिखते हैं:—

“ क्योंकि जो शरीर वाले होते हैं वे सांसारिक दुःखसे रहित नहीं हो सकते जैसे इन्द्रसे प्रजापतिने कहा है कि हे परम पूजित धनयुक्त पुरुष ! यह स्थण शरीर मरण धर्मा है और जैसे सिंहके मुखमें बकरी होवे यह शरीर मृत्युके मुखके बीच है सा शरीर इम मरण और शरीर रहित जीवात्माका निवासस्थान इमीलिये यह जीव सुख और दुःखमें मदा ग्रस्त रहता है क्योंकि शरीर सहित जीवके सांसारिक प्रसक्तता का निवृत्ति होती है औरजा शरीर रहित मुक्ति जीवात्मा ब्रह्ममें रहता है उसका सांसारिक सुख दुःखका स्पर्श भी नहीं होता किन्तु सदा आनन्दमें रहता है”

स्वामीजीके उपर्युक्त वाक्योंसे स्पष्ट विदित होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी मृत्यु सिद्धान्तकी झलकको समझते और जानते थे परन्तु अपने बेलोंकी धहकाने और राजी रखने के वास्ते उन्होंने इसही सत्यार्थप्रकाशमें ऐसी अग्रहोनी बातें कहीं हैं जिनको पढ़कर यह ही कहना पड़ता है कि वह कुछ भी नहीं जानते थे और बिल्कुल अज्ञान ही थे ।

देखिये इस बातके सिद्ध करनेमें कि मुक्तिसे लौटकर फिर जीव संसारके बंधनमें आता है स्वामीजी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २४०-२४१ पर लिखते हैं:-

“दुःखके अनुभवके बिना सुख कुछ भी नहीं हो सकता जैसे कटु नहीं तो मधुर क्या जो मधुर नहीं तो कटु क्या कहावे? क्योंकि एक स्वादके एकरसके विरुद्ध होनेसे दोनोंकी परीक्षा होती है जैसे कोई मनुष्य मधुर ही खाता पीता जाय उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकारके रसोंको भोगने वालोंको होता है-और जो ईश्वर अन्त वाले कर्माका अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट हो जावे जो जितना भार उठासके उतना उस पर धरना बुद्धिमानोंका काम है जैसा एक मनभर उठाने वाले के शिर पर दशमन धरनेसे भार धरने वालेकी निन्दा होती है। वैसे अल्पज्ञ अल्प सामर्थ्य वाले जीव पर अनन्त सुख का भार धरना ईश्वरके लिये ठीक नहीं”

पाठकगण ! क्या उपरोक्त लेखको पढ़कर यह ही कहना नहीं पड़ेगा कि या तो स्वामीदयानन्दजी निरे मूर्ख थे और मुक्ति विषयकी कुछ भी समझ नहीं सकते थे, अथवा जान बूझकर उन्होंने उलटी अधर्मकी बातें सिखानेकी कोशिश की है-हमारी समझमें तो नादान बालक भी ऐसी उलटी बातें न करेंगे ऐसी उलटी पुलटी बातें तो बालवा ही किया करता है जिसके दिमागमें फरक आगया हो—

मालूम पड़ता है कि स्वामीजीको इन्द्रियोंके विषयकी अत्यन्त लोलुपता थी और विषय भोगकी ही बड़ परम सुख मानते थे तबही तो बड़ मुक्ति सुखके निषेधमें लिखते हैं कि “कि जैसे कोई मनुष्य सीठा मधुर ही खाता पीता जाय उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकार के रसों को भोगने वालेको होता है”-वाह ! स्वामीजी वाह ! ! धन्य है आपको ! वेशक मुक्तिके स्वरूप को आपके मित्राय और कौन समझ सकता है ? इस प्रकार मुक्तिका स्वरूप न किमीने समझा और न आगेको कोई समझेगा ! क्योंजी ! मुक्तिको प्राप्त होकर और ईश्वरसदृश गुण, कर्म, स्वभाव धारण कर जीवात्मा को मुक्तिका आनन्द भोगते २ उकता जाना चाहिये और सांसारिक विषय भोगों के वास्ते संसारमें फंमना चाहिये ? वाह स्वामीजी ! क्या कहने हैं आपकी बुद्धिके ! आपका तो अवश्य यह भी सिद्धान्त होगा कि जिम प्रकार एक सीठा ही खाता हुआ मनुष्य उतना सुख प्राप्त नहीं कर सकता है जितना सर्वप्रकारके रसोंको भोगने वालेको होता है । इस ही प्रकार एक पुरुषसे सन्तुष्ट विवाहिता स्त्री को इतना सुख प्राप्त नहीं होता है जितना वेश्याओंको होता है जो अनेक पुरुषोंसे रमख करती हैं और आपका तो शायद यह ही उपदेश होगा कि जिस प्रकार इन्द्रियोंके नाना भोग भोगनेके वास्ते मुक्त जीवकी संसारमें

फिर जन्म लेना चाहिये इन ही प्रकार विप्रादिता स्त्रीको भी चाहिये कि वह निज भरतारको छाड़कर वेश्या बनकर अनेक पुरुषोंसे रमण करे—?

क्यों स्वामीजी ! ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर भी तो एकही स्वरूप है जब जीवात्माको मुक्तिदशा में ब्रह्मके गुण कर्म स्वभाव के सदृश होकर

एक स्वरूपमें रहनेसे उतना सुख प्राप्त नहीं हो सकता जितना संसारमें जन्म लेकर इन्द्रियोंके अनेक विषय भोगोंके भोगनेसे होता है । तो अवश्य आपके कथनानुसार ईश्वर तो अवश्य दुखी रहता होगा और संसारी जीवोंकी नाईं अनेक जन्म लेकर संसारकी सर्वप्रकार की अवस्था भोगनेकी इच्छामें तड़फना रहता होगा कि मैंभी जीव क्यों न हो गया जो संसारके सर्वप्रकारके रस चखता?

पहले यह लिखकर भी कि “ मुक्ति में जीव ब्रह्म में रहता है और ब्रह्मके सदृश उसके गुण कर्म स्वभाव होजाते हैं, ” मुक्ति जीवकी संसारमें लानेकी आवश्यकता को मिट्ट करनेमें स्वामी जी ! आपको यह दृष्टान्त देते हुए कुछ भी लज्जा न आई कि एक मीठा मीठा ही खाते हुए को उतना सुख नहीं होता है जितना सर्वरसोंके चखने वालेकी होता है । क्यों स्वामी जी ! आपके कथनानुसार तो सत्य ही बोलने वालेको उतना सुख नहीं होता होगा जितना उसकी होता होगा जो कभी सत्य बोले

और कभी झूठ ? इन कारण झूठ भी अवश्य बोलना चाहिये—

धर्मात्मा पुण्यवान् जीवोंकी जब ही पूर्णसुख मिलता होगा जब वह साथ २ पाप भी करते रहें । मनुष्य जन्म पाकर धर्मात्मा बनना और इस बातका यत्न करना मूर्खता होगा कि आगामी की भी मैं मनुष्य जन्म ही लेता रहूं बरण आपने तो मनुष्य जन्मके सुख से उकताकर इस ही बातकी कोशिश की होगी कि आगामीका मनुष्यजन्म प्राप्त नही बरण कीड़ी मकीणा कुत्ता विष्ठा आदिक अनेक सर्वप्रकारके जन्मोंके भोग भोगनेको मिलें ? ॥

स्वामी जी ! आप मुक्तिके साधनके वास्ते स्वयम् लिखते हैं कि, “ वास्तविक विषयोंसे इन्द्रियोंकी रोक अपने आत्मा और परमात्माका विवेचन करके परमात्मामें मग्न हो संयमी होखें, ” जिस से स्पष्ट बिदिन है कि इच्छा और द्वेष से रहित होने से ही मुक्ति होती है जितना जितना इच्छा द्वेष दूर होता जावेगा उतना ही अन्तःकरण निर्मल होता जायगा अन्तःकरणकी ही सफाई को धर्म कहते हैं इस ही के अनेक साधन ऋषियोंने दर्शन किये हैं और इच्छा द्वेषके ही सर्वथा छूटजानेका नाम मुक्ति है परन्तु फिर भी आप जीवात्माको इतना अधिक विषयामक्त बनाना चाहते हैं कि मुक्तिसे भी लौट आनेका सालाच दिलाते हैं और कहते हैं कि एक स्वरूपमें रहनेसे आनन्द नहीं

मिनेगा वरण मुक्तिसे लौटकर और संसार में भ्रमण कर संसारके सर्व विषय भोगोंसे ही आनन्द आवैगा !

प्यारे आर्य्य भाइयो ! क्या उपरोक्त स्वामीजीके सिद्धान्तसे सत्यधर्मका नाश और अधर्मकी प्रवृत्ति नहीं होती है ? अवश्य होती है क्योंकि धर्म वह ही हो सकता है जो जीवको रागद्वेषके कम करने या दूर करनेकी विधि बतावे और अधर्म वह ही है जो रागद्वेषमें फंसाव वासमार्ग इस ही कारण तो निन्दनीय है कि वह विषयाशक्त बनाता है—इस ही हेतु जो सिद्धान्त रागद्वेष और संसारके विषयभोगकी प्रेरणा करे वह अवश्य निन्दनीय होना चाहिये ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी अपने नवीन सिद्धान्तको सिद्ध करनेके वास्ते यह भी भय दिखाते हैं कि “ जो ईश्वर अन्त वाले कर्मोंका अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट होजाय, जो जितना भार उठानेके उतना उस पर धरना बुद्धिमानोंका काम है जैसे एकमन भार उठाने वालेके शिर पर दश मन धरनेसे भार धरने वालेकी निन्दा होती है वैसे अल्पज्ञ अल्प सामर्थ्यवाले जीव पर अनन्त सुखका भार धरना ईश्वरके लिये ठीक नहीं”—

प्यारे पाठको ! इस हेतुसे भी स्वामी जीकी बुद्धिमानी टपकती है क्योंकि प्रथम यह सिद्ध कि “ परमेश्वरके गुण कर्म स्वभाव के मद्दुग जीवात्माके गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं और

जो शरीर रहित मुक्ति जीवात्मा ब्रह्म में रहता है उसको सांसारिक सुख दुःख का स्पर्श भी नहीं होता किन्तु सदा आनन्दमें रहता है” फिर यह लिखना कि परमेश्वर फिर जीवात्माको मुक्तिसे लौटाकर संसारमें भसाता है परमेश्वर को साक्षात् अन्याई बनाना है—जीवात्मा ने तो अपने आप को निर्मल और पवित्र करके मुक्ति में पहुंचाया यहां तक कि उसको स्थान भी ब्रह्ममें ही वास करने का मिला परन्तु स्वामीजीके कथनानुसार ब्रह्मने फिर उसकी निर्मलताको बिगाड़ा और संसार के पापोंमें फंसानेके वास्ते मुक्तिसे धाहर निकाला—

स्वामीजी ! यदि आपको यह सिद्ध करना था कि जीवात्मामें मुक्ति प्राप्त करने की शक्ति ही नहीं है—आप की अद्भुत समझके अनुसार यदि उसका निर्मल होना उस पर अधिक बोझ लादना है तो आपने यह क्यों लिखा कि “ जीवात्माके गुण कर्म स्वभाव ईश्वरके गुण कर्म स्वभावके अनुसार पवित्र हो जाते हैं और वह सदा आनन्दमें रहता है”—आपको तो यह ही लिखना था कि जीवात्मा कभी इन्द्रियोंके विषय भोगसे विरक्त हो ही नहीं सकता है वरण सदा संसार के ही सजे उड़ाता रहता है—परन्तु स्वामी जी क्या करें ऋषियों ने तो सर्व ग्रन्थों में यह ही लिखदिया कि जीवात्मा रागद्वेषसे रहित होकर स्वच्छ और निर्मल हो-

जाता है और इस मुक्त दशा में वह परम आनन्द भोगता है जो कदाचित् भी संसारमें प्राप्त नहीं हो सकता है इन कारण उनको ऋषियोंके वाक्य लिखने ही पड़े परन्तु जिस तिम प्रकार उन को रद्द करने और संसार बढ़ानेका उ-पदेश देतेकी भी कोशिश की गई ।

## आर्यमत लीला ।

( १७ )

यह बात जगत् प्रसिद्ध है कि एक असत्य बात की संभालने के वास्ते हजार झूठ बोलने पड़ते हैं और फिर भी वह बात नहीं बनती है-यह ही मुश्किल स्वामी दयानन्द की पेंगशाई है-स्वामी जी ने अपने अंगरेजी पढ़े चेनों के राजी करने के वास्ते यह स्थापन तो कर दिया कि मुक्ति से जीव लौट कर फिर संसार में रुकता है परन्तु इस गलत विद्वान के स्थिर रखनेमें उनका जितना उल्टा पटांग बातें बनानी पड़ी हैं-

स्वामी जी को यह तो लाचार मानना पड़ा कि जीवात्मा स्वच्छ और निर्मल होकर मुक्ति को प्राप्त होकर ब्रह्म में बाम करता है परन्तु मुक्ति में भी जीव को इच्छा के दश में फँसाने के वास्ते स्वामी जी ने अनेक बातें बसाई हैं । यथा:-

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २३६

“(प्रश्न) मुक्ति में जीव का नय होता है वा विद्यमान रहता है ? (उत्तर)

विद्यमान रहता है ( प्रश्न ) कहां रहता है ? ( उत्तर ) ब्रह्म में ( प्रश्न ) ब्रह्म कहां है और वह मुक्तजीव एक ठिकाने रहता है वा स्वच्छाचारी हो कर सर्वत्र बिचरता है ? ( उत्तर ) जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसी में मुक्तजीव अव्याहत गति अर्थात् उम को कहीं रुकावट नहीं विज्ञान आनन्द पूर्वक स्वतंत्र बिचरता है-”

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २३८

“उम से उन को सब लोक और सब काम प्राप्त होते हैं अर्थात् जो जो संकल्प करते हैं वह वह लोक और वह वह काम प्राप्त होता है और वे मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़ कर संकल्प मय शरीर से आकाशमें परमेश्वरमें बिचरते हैं-”

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २४५

“मुक्ति तो यही है कि जहां इच्छा हो वहां बिचरे”

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २४८

“अर्थात् जिन जिन आनन्द की कामना करता है उस २ आनन्द को प्राप्त होता है यही मुक्ति कहाती है-”

पाठक वृन्द ! विचार कीजिये कि जीव की इच्छा में फँसाने के वास्ते स्वामी जी ने मुक्ति को कैसा बालकों का खेल बनाया है ?-स्वामी जी को इतनी भी समझ न हुई कि जहां इच्छा है वहां आनन्द कहां ? जब तक जीव में इच्छा बनी हुई है तब तक वह शुद्ध और निर्मल ही कहां हुआ है ?-इच्छा ही के तो दूर करनेके वास्ते मंथन सन्यास और योगाभ्यास

आदि साधन किये जाते हैं—मुक्ति तो बहुत दूर बात है संसार में भी सा-  
मारण साधु की निन्दा की जाती है  
और वह बहुरूपिया गिना जाता है  
यदि वह इच्छाके वश होता है—संसार  
के सर्व जीव इच्छा ही के तो बंधनमें  
फसे हुये भटकते फिरते हैं परन्तु स्वा-  
मी दयानन्द जी ने जीवात्माको सदा  
के लिये भटकने के वास्ते मुक्ति दशा  
में भी उस को इच्छा का गुनाम बना  
दिया ! स्वामी जी को दुःख तो भी मुक्त  
न हुई कि इच्छा ही का नाम  
दुःख है जहां इच्छा है वहीं दुःख है  
और जहां इच्छा नहीं है वहीं सुख है  
परन्तु स्वामी जी को यह बात सूझती  
कैसे ? उन का तो उद्देश्य ही यह था  
कि वैराग्य धर्म का लोप करके संसार  
वृद्धिकी शिक्षा अनुप्यमात्र को दी जावे—  
स्वामी जी महाराज ! हम आप से  
पूछते हैं कि मुक्ति दशा में जीवात्मा  
ब्रह्म में वास करता है ऐसा जो आप  
ने लिखा है इस का अर्थ क्या है ? क्या  
ब्रह्म कोई भगवान् वाला क्षेत्र है जिसमें  
मुक्ति जीव जा बसता है ? आप तो  
ब्रह्म को निराकार मानते हैं उस में  
कोई दूसरी वस्तु वास कैसे कर सकती  
है ? यदि आप यह कहें कि जिस प्र-  
कार ब्रह्म निराकार है उस ही प्रकार  
जीव भी निराकार है इस कारण नि-  
राकार वस्तु निराकार में वास कर  
सकती है । परन्तु स्वामीजी महाराज !  
जरा अपनी कही हुई बात को याद

भी रखना चाहिये आप तो यह भी  
कहते हैं कि जीवात्मा मुक्ति प्राप्त क-  
रने के पश्चात् संकल्प मय शरीर से  
इच्छानुसार विचरता रहता है शरीर  
संकल्प मय हो वा स्थूल हो परन्तु  
शरीर जब ही कहनायैगा जब कि आ-  
कार हीगा और जब कि मुक्ति दशा  
में भी जीव का शरीर रहता है तो  
जीव को आप निराकार कह ही नहीं  
सकते हैं । आप ने तो अपना मुंह  
आप बन्द का लिया । आप को तो  
जीव तो अकारणिक साकार मानना  
पड़ गया । यदि आप यह कहें कि  
ब्रह्म सर्वव्यापक है कोई स्थान ब्रह्म  
से खाली नहीं है और सर्व जगत् उस  
ही में वास करता है तो यह कहना  
बिल्कुल व्यर्थ हुआ कि मुक्ति दशा को  
प्राप्त होकर जीवात्मा ब्रह्म में वास क-  
रता है क्योंकि इस प्रकार तो जीव  
सदा ही ब्रह्म में वास करता है वह  
चाहे मुक्त हो चाहे संसारी चाहे पु-  
न्यवान हो वा पापी बरण कुत्ता बि-  
ल्ली डेंट पत्थर सब ही ब्रह्म में वास  
कर रहा है मुक्त जीवके वास्ते ब्रह्म में  
वास करने की कोई विशेषता न हुई—  
पाठक गण ! स्वामी जी स्वयम्  
एक स्थान पर यह लिखते हैं कि  
मुक्त होकर जीवात्माके गुण  
कर्म और स्वभाव ब्रह्मके स-  
मान हो जाते हैं और स्वामीजी  
को यह भी लिखना पड़ा है कि

**मुक्त जीव ब्रह्म में रहकर सदा आनन्द में रहता है**

स्वामी जी के इन वाक्यों के साथ जब आप इस वाक्य पर ध्यान देंगे कि, मुक्ति जीव ब्रह्म में बास करता है तो इस का अर्थ स्पष्ट आप को यह ही प्रतीत होगी कि मुक्त जीव ब्रह्म ही हो जाता है—परन्तु स्वामी जी ने इस बात को रलाने के वास्ते ऐसी ऐसी वंतुकी बातें मिलाई हैं कि मुक्त जीव इच्छा के अनुसार संकल्प मय शरीर बनाकर ब्रह्म में बिचरता रहता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी यह तो मानते हैं कि मनुष्य का जीव जन्मान्तर में अन्य पशु पक्षी का शरीर धारण कर लेता है परन्तु हाथी का शरीर बहुत बड़ा है और चींवटी का बहुत छोटा और बहुतसे ऐसे भी कीड़े हैं जो चींवटी से भी बहुत छोटे हैं और मनुष्य का संकला शरीर है इस कारण हम स्वामी जी से पूछते हैं कि जीवात्मा स्वाभाविक कितना लम्बा चौड़ा है ? क्या जीव की लम्बाई चौड़ाई परिमाणबद्ध है और छोटी बड़ी नहीं हो सकती ? यदि ऐसा है तो जीव चींवटी आदिक छोटे जीवों का जन्म धारण करके शरीर से बाहर निकला रहता होगा और हाथी आदिक बड़े जीवों का जन्म धारण करके जीवात्मा शरीर के किसी एक ही अंग में रहता होगा और शेष अंग जीव से रहित ही रहता होगा परंतु

ऐसी दशा में वह कौन से अंग में रहता है और शेष अंग किस प्रकार जीवित रहता है ? इन बातों के उत्तर देने में आप को बहुत कठिनाई प्राप्त होगी । इस कारण आप को निश्चय रूप यह ही मानना पड़ेगा कि जीवात्मा में संकोच विस्तार की शक्ति है उस की परिमाणबद्ध कोई लम्बाई चौड़ाई नहीं है वरण जैसा शरीर उस को मिलता है उस ही के परिमाण जीव लम्बा चौड़ा हो जाता है और बालक अवस्था से वृद्धावस्था तक ज्यों ज्यों शरीर बढ़ता वा घटता रहता है उस ही प्रकार जीव की लम्बाई चौड़ाई भी घटती बढ़ती रहती है और यदि शरीर का कोई अंग कट जाता है तो जीव संकोच कर शेष शरीर में रह जाता है इस प्रकार समझाने के पश्चात् हम स्वामी दयानन्द जी से पूछते हैं कि जीव मुक्ति पाकर कितना लम्बा चौड़ा रहता है ? जिस प्रकार संसार में अनेक जीवों के शरीर का परिमाण है कि हाथी का शरीर बड़ा और चींवटी का शरीर बहुत छोटा इस ही प्रकार क्या मुक्त जीव का कोई परिमाण है वा जिस शरीर से मुक्ति होती है उतना परिमाण मुक्त जीव का होता है ?

इस के उत्तर में यह ही कहना पड़ेगा कि मुक्ति जीव की मुक्ति होने के समय वह ही लम्बाई चौड़ाई होगी जो उस मनुष्य शरीर की थी जिसको

त्यागकर मुक्ति प्राप्त की और यह न माना जावे और मुक्ति जीव का कोई नियमित शरीर माना जावे तो भी स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज मुक्तजीव में इच्छा का दोष पैदा करने के वास्ते यह ही कहेंगे कि मुक्ति होते समय जीव का कुछ ही शरीर हो परन्तु मुक्ति अवस्था में मुक्त जीव अपनी कल्पना अर्थात् इच्छाके अनुसार अपना शरीर घटाता बढ़ाता रहता है।

इस पर हम यह पूछते हैं कि मुक्त जीव अपने आपको अपनी कल्पना के अनुसार इतना भी बढ़ाबना सकता है वा नहीं कि वह सर्वव्यापक में फैल जावे अर्थात् ईश्वर की नाई सर्व व्यापक हो जावे ? यदि यह कहा जावे कि वह ऐसा कर सकता है तो सर्वमुक्त जीव मुक्ति पाते ही सर्वव्यापक क्यों नहीं हो जाते हैं जिस से उन को नाना प्रकार के संकल्पी रूप धारण करने और जगह जगह बिचरने अर्थात् सुख की प्राप्ति में भटकते फिरने की आवश्यकता न रहे बरण एक ही समय में सुखों का सजा स्वामी जी के कथनानुसार उड़ाते रहें।

यदि यह कहो कि मुक्ति जीव सर्व व्यापक नहीं हो सकता बरण आकाश और परमेश्वर यह दोही सर्वव्यापक हैं और हो सकते हैं तो यह क्यों कहते हो कि मुक्त जीवन के गुण कर्म स्वभाव ब्रह्मके सदृशहीकर

वह परमानन्द भोगता है ? क्योंकि जब मुक्त जीव में भी स्वामी दयानन्द के कथनानुसार इच्छा है और वह अपनी इच्छा के अनुसार आनन्द भोगता फिरता रहता है तो क्या उस को ऐसी इच्छा होनी असम्भव है कि सर्व स्थानों का आनन्द एक ही बार भोगलू ? और जब उसको ऐसी इच्छा हो सकती है और उस इच्छा की पूर्ति न हो सके तो उस इच्छा के विपरीत कार्य होने ही का तो नाम दुःख है-दुःख इसके विवाय और तो कोई वस्तु नहीं है फिर परमानन्द कहाँ रहा ?

गरज स्वामी जी की यह असत्यवात कि, मुक्ति जीव में इच्छा रहती है, किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं हो सकती है बरण असम्भवही है।

क्यों प्यारे आर्य भाइयो ! हम आप से पूछते हैं कि स्वामी दयानन्दके इस सिद्धान्त पर कभी आपने ध्यान भी दिया है कि मुक्त जीव अपनी इच्छा के अनुसार अपने संकल्पी शरीर के साथ सब जगह बिचरता हुआ परमानन्द भोगता रहता है ? प्यारे भाइयों ! यदि ज़रा भी आपने इस पर ध्यान दिया होता तो कदाचित् भी आप इस सिद्धान्त को न मानते। परन्तु स्वामी जीने आप को संसार की वृद्धि में ऐसा आसक्त कर दिया है कि आप को इन धार्मिक सिद्धान्तों पर विचार करने का अवसर ही नहीं मिलता है। आप जानते हैं कि जीवको



एक प्रकार के कार्य को छोड़कर दूसरे प्रकार का कार्य ग्रहण करने की आवश्यकता तभी होती है जब प्रथम कार्य से घृणा हो जाती है अर्थात् वह दुखदाई हो जाता है व दूसरा कार्य उससे अधिक सुखदाई प्रतीत होने लगता है इस ही प्रकार मुक्त जीव अपने एक प्रकार के संकल्पी शरीर को तभी छोड़ देगा और एक स्थान से दूसरे स्थान में तब ही विचरेगा जब कि पहला संकल्पी शरीर उसको दुखदाई प्रतीत होगी वा दूसरे प्रकार का शरीर वा दूसरा स्थान अधिक सुखदाई मालूम होगा। अब आप ही विचार लीजिये कि यदि मुक्ति में इस प्रकार मुक्त जीव की अवस्था होती रहती है तो क्या यह कहना ठीक है कि मुक्त जीव परमानन्द में रहता है? कदापि नहीं ॥

संसार में जो कुछ दुःख है वह यह इच्छा ही तो है उसके विनाय संसार में भी और क्या दुःख है? नहीं तो संसार की कोई वस्तु वा कोई अवस्था भी जीव के वास्ते सुखदाई वा दुखदाई नहीं कही जा सकती है—इस हमारी बात को स्वामी दयानन्द ने मत्पार्थप्रकाश के पृष्ठ २४९ पर एक दृष्टान्त देकर सिद्ध किया है जिस को हम उद्योक्तों लिखते हैं:—

“जैसे किसी माहूकार का विवाद राज घा में लाख रुपये का हो तो वह अपने घर से पालकी में बैठकर कचहरी में उष्ण काल में जाता हो बाजार में हो के उस को जाता देखकर अज्ञानी लोग कहते

हैं कि देखो पुन्य पाप का फल, एक पालकी में आनन्दपूर्वक बैठा है और दूसरे बिना जूते पहिरे ऊपर नीचे से तप्यमान होते हुए पालकी को उठाकर ले जाते हैं परन्तु बुद्धिमान लोग इसमें यह जानते हैं कि जैसे कचहरी निकट आती जाती है वैसे माहूकार को बड़ा शोक और मन्देह बढ़ता जाता और कचहरी को आनन्द होता जाता है”-

प्रिय पाठको! उपर्युक्त लेख में स्वामी जीने स्वयं सिद्ध कर दिया कि सुख दुःख किसी मासप्री के कम बेश मिलने पर नहीं है वरण इच्छा की कमी वा बहुता पर है—परन्तु इन तमाम बातों को जानते हुए भी स्वामी दयानन्द ने धर्म की नष्ट भूत करत और हिन्दुस्तान के जीवों को संसार के विषयों में मोहित करने के प्रारम्भ इच्छा का यहां तक सबक या पाठ पढ़ाया कि मुक्तिदश में भी इच्छा सिखा दी और संसार की इतनी सहिमा गाई कि मुक्ति में भी संसार में आने की आवश्यकता बता दी—

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को अपनी अमृत्य और अधर्म की बातें सिद्ध करने के वास्ते बड़ी बलुकी दलीलों का काम में लाना पड़ा है। आप लिखते हैं कि यदि मुक्ति में जीव जाते ही रहें और लौटें नहीं तो मुक्तिके स्थान में बहुत भीड़ भड़का हो जावेगा।

\* मत्पार्थप्रकाश के पृष्ठ २४० पर।

हम रे आर्य भाई स्वामीजीके इस हेतु पर फूले नहीं समाते होंगे परन्तु हम कहते हैं कि ऐसी बातोंकी हेतु कहना ही लज्जाकी बात है क्या कि स्वामीजी स्वयम् कहते हैं कि, जीव मुक्ति पाकर ब्रह्ममें रहता है और ब्रह्म सर्वव्यापक है और मुक्ति जीव सब जगह विचरता फिरता रहता है--अफ-सोम ! इतनी बात मूर्खोंने मूर्ख भी समझ सकता है कि सर्वब्रह्माण्ड जिसमें ब्रह्म सर्वव्यापक है और जो मुक्तजीवों का स्थान स्वामीजीके कथनानुसार है उसमें ही जगत्की सर्वव्यापकता स्थित है जगत्की सर्वव्यापकता से तो भीड़ हुई नहीं परन्तु मुक्ति जीवोंसे भीड़ भड़का होजायेगा ऐसी अद्भुत बुद्धि स्वामी दयानन्द की ही हो सकती है और किमकी होनी ? ।

इसके अतिरिक्त स्वामीजी परमेश्वर को सर्वव्यापक कहते हैं जब वह सर्व-स्थानमें व्यापक होगया तो अन्य वस्तु उस ही स्थानमें कैसे आ सकती है ? परन्तु स्वामीजी स्वयम् यह कहते हैं कि जिस सर्वस्थानमें ईश्वर व्यापक है उस ही सर्वस्थान में आकाश भी सर्व व्यापक है--ईश्वरने सर्वमें व्याप कर भीड़ नहीं करदी वरण जिस २ स्थान में ईश्वर है उस सर्वही स्थानमें आकाश भी व्याप गया और ईश्वर और आकाश के सर्वव्यापक होने पर भी उस ही स्थान में जगत् की सर्ववस्तुयें व्याप गईं पर-

न्तु जगत् की स्थूल वस्तु अन्य स्थूल वस्तुको उसही स्थानमें आने नहीं देती है और भीड़ करती हैं स्वामीजी वि-चारेने संसारी स्थूल वस्तुओंको देखकर यह हेतु लिखमारा । वह वंचारे इन बातोंको क्या समझें ? परन्तु हम सम-झाते हैं कि निराकार वस्तु भीड़ नहीं किया करती है वरण भीड़ स्थूल वस्तु से ही हुआ करता है--निराकार और स्थूलमें यह ही तो भेद है--ईश्वर को स्वामीजी निराकार कहते हैं इस का-रण उनके सर्वव्यापक होनेसे भीड़ नहीं हो सकती--

इस ही प्रकार आकाश निराकार है इस हेतु उससे भी भीड़ न हुई परन्तु संसारकी अन्य स्थूल वस्तुओंसे भीड़ हुई स्वामीजीको चाहिये था कि पहले यह विचार लेते कि मुक्त जीव की बावत यह कहाजाता है कि वह ब्रह्ममें बास करता है तो क्या वह स्थूल शरीरके साथ बास करता है ? स्वामी जी स्व-यम् ही कई स्थान पर लिखते हैं कि स्थूल शरीर मुक्ति अवस्था में नहीं रहता है तब तो यही कहना पड़ेगा कि मुक्ति में निराकार ब्रह्म में जीव नि-राकार अवस्था ही में बास करता है तब भीड़ भड़का की बात कैसे उठ सकती है ? परन्तु स्वामी जी को तो अपना संसार सिद्ध करने के वास्ते वस्तु-की हांकने से सतलब, चाहे वह बात युक्ति पूर्वक हो वा न हो ।

## आर्यमत लीला ।

( १८ )

गत दो लेखों में हमने दिखाया है कि, स्वामी दयानन्दने वैराग्य धर्मको नष्ट करने और ससार के विषय कषायों में मनुष्यों को फंमाने के वास्ते हिन्दुस्तान के जगत् प्रसिद्ध सिद्धान्त के विरुद्ध यह स्थापित किया है कि, मुक्ति प्राप्त होने के पश्चात् भी जीव बंधन में फंसता है और संसार में रलता है । स्वामी जी को अपने इस अद्भुत और नवीन सिद्धान्त का यहां तक प्रेम हुआ है कि वह मुक्ति को जेलखाना बताते हैं सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २४१ पर स्वामी जी लिखते हैं:—

इस लिये यही व्यवस्था ठीक है कि मुक्ति में जाना वहां से पुनः आना ही अच्छा है । क्या थोड़े से कारागार से जन्म कारागार दंड वाले प्राणी अथवा फांसी को कोई अच्छा मानना है जब वहां से आना ही न होतो जन्म कारागार से इतना ही अंतर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती और ब्रह्ममें लय होना समुद्रमें डूब मरना है ॥

पाठक गण ! नहीं मालूम स्वामीजी की मुक्ति दशा से क्यों इतनी घृणा हुई है कि उन्होंने उस को कारागार और फांसी के समान बताया । यदि स्वामी जी को मुक्ति ऐसी ही बुरी मालूम होती थी, तो जिस प्रकार उन्होंने स्वर्ग और नरकका निषेध कि-

या है और अपने चेलों को दिखाया है कि स्वर्ग और नरक कहीं नहीं है, इस ही प्रकार मुक्ति का भी निषेध कर देते, और कह देते कि कुछ सुख दुःख होता है वह इस पृथ्वी पर ही हो रहता है । परन्तु मुक्ति को स्थापन करके उसको कारागार बताना बहुत अन्याय है ।

क्या मुक्ति से लौटा कर संसार में फिर वापिस आने की आवश्यकता को दिखाने के वास्ते स्वामी जी को कोई और दृष्टान्त नहीं मिलता था, जो कारागार का दृष्टान्त देकर यह समझाया कि अनित्य मुक्ति तो ऐसी है जैसा किसी को दो चार बरसके वास्ते कैद खाना हो जावे, और नियामद पूरी होने पर अपने घर पर फिर वापिस चला आवे और नित्य मुक्ति ऐसी है जैसा किसी को जन्म भरके वास्ते कैद खाना हो जावे और घरवापिस आने की उम्मेद ही न रहे, वा जैसा किसी को फांसी हो जावे कि वह फिर अपने घर वापिस ही न आसके ? तात्पर्य इसका यह है कि जिस प्रकार गृहस्थी लोग अपने घरपर अपने बाल बच्चों में रहना पसन्द करते हैं और जेल खाने में फंसना महा कष्ट समझते हैं, इस ही प्रकार जीवका मनुष्य पशु पक्षी आदिक अनेक शरीर धारण करते हुए संसार में बिचरना अच्छा है, और मुक्ति का हो जाना महा कष्ट है स्वामी जी के कथनानुसार मुक्ति में

और जेल खाने में इतना ही अन्तर है कि मुक्ति में सजदूरी नहीं करनी पड़ती और जेल खाने में करनी पड़ती है। परन्तु स्वामी जी को मालूम नहीं कि कैद भी दो प्रकार की होती है एक कैद सुगन्धित जिसमें मिहनत करनी पड़ती है और दूसरी कैद महज जिसमें मिहनत नहीं करनी पड़ती। इस कारण स्वामी जी के कथनानुसार मुक्ति में जाना कैद महज हो जाने के समान है। इसी हेतु स्वामी जी चाहते हैं कि यदि मुक्ति हो भी तो मर्दा के वास्ते नहीं, बरखा थोड़े दिनों के वास्ते हो जिस को जिस तिस प्रकार भुगत कर फिर जीव संसार में आसक्त और संसार के विषय भोग भोग सकें।

प्यारे आर्य्य भाइयो ! स्वामीजीके इस कथनसे स्पष्ट विदित होता है कि स्वामीजीको संसारके विषय भोगोंकी बड़ी लालसा थी और उन्होंने जितना उनसे होसका है, मनुष्योंको धर्म से हटाकर मुक्तिके साधनोंसे घृणा कराकर संसारकी पुष्टि और वर्द्धिमें लगानेकी कोशिश की है। इस कारण आपको उचित है कि आसक्त मोक्षकर स्वामी दयानन्दके वाक्योंका अनुकरण न करें बरखा अपने कल्याणके अर्थ सत्यधर्मकी खोज करें और सत्यके ही पहचानकी चेष्टा करें।

प्यारे भाइयो ! इस स्वामी जी के आभारी है कि उन्होंने हिन्दुस्तानमें रहने वाले प्रजादमें फंसे हुये मनुष्यों

को सोते से जगाया। फजूल खर्ची, बाल विवाह और अन्य कुसनियोंको हटाना सिखाया जिससे हमारा गृहस्थ अत्यन्त दुःखदाई होरहा था, संस्कृत विद्याके पढ़नेकी रुचि दिलाई जिस को हम बिल्कुल भूल बढे थे और सबसे बड़ा भारी उपकार यह किया कि हिन्दुओंको ईसाई और मुसलमान हानिसे बचाया। परन्तु इस प्रयोजनके वास्ते उनको सत्य धर्मको बिल्कुल नष्ट भ्रष्ट करना पड़ा और ऐसे मिदुअंत स्थापन करने आवश्यक हुवे जो उन पुरुषोंकी रुचिकर थे जो अंगरेजी पढ़कर ईसाई या मुसलमानी धर्मकी तरफ आकर्षित होते थे। इस कारण स्वामीजीका उपकार किसी समय में अपकारका काम देगा और संसार में अत्यन्त अधर्मको फैलाने वाला होजावेगा। इस हेतु प्यारे भाइयो ! आप को उचित है कि आप कमर हिम्मत की बांधे और प्राचीन आचार्योंके मत की खोज करें और वेधड़क होकर स्वामीजीके उन मिदुअंतोंकी रद्दकर देव जो अधर्मके फैलाने वाले हैं। ऐसा करनेसे आपका आर्य्य नाम मार्थक ही जावेगा और आर्य्यसमाज मर्दाके लिये कल्याणकारी होकर अपनीवृद्धिकरेगा।

प्यारे भाइयो ज्यों ज्यों आप स्वामी जीके लेखोंपर विचार करेंगे त्यों त्यों आप को मालूम होगी कि या तो स्वामी जी आत्मिक धर्म को समझते ही नहीं थे या उन्होंने जान बूझ कर

बावला बनना पसन्द किया है। देखिये स्वामीजी सत्यार्थ प्रकाशमें मुक्ति से लौटकर फिर संसार में आने की आवश्यकता को मिट्टु करने के वास्ते पृष्ठ २४१ पर लिखते हैं—

“और जो ईश्वर अन्त वाले कर्मोंका अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय”

प्यारे भाइयो ! क्या इस से यह स्पष्ट विदित नहीं होता कि स्वामी जी मुक्ति प्राप्ति को भी कर्मों का फल समझते हैं ? अर्थात् जिस प्रकार जीव के कर्मों से मनुष्य, पशु पक्षी, आदिकी पर्याय मिलती है उसही प्रकार मुक्ति भी एक पदार्थ है जो जीवके कर्मोंके अनुसार ईश्वर देता है—

प्यारे भाइयो ! यदि आपने पूर्वोक्तार्थों के ग्रन्थ पढ़े होंगे तो आप को मालूम हो जावेगा कि मुक्ति कर्मोंका फल नहीं है बरन् कर्मोंसे रहित होकर जीव का स्वच्छ और शुद्ध होजाना है अर्थात् सर्व उपाधियां दूर होकर जीवका निज स्वभाव प्रगट होना है इस बात को हम आगामी भिदु कहेंगे। परन्तु प्रथम तो हम यह पूछते हैं कि यह मानकर भी कि मुक्ति भी कर्मों का ही फल है क्या स्वामीजी का यह हेतु ठीक है कि अंत वाले कर्मोंका अनन्त फल नहीं मिल सकता है ? क्या स्वच्छ स्वश के दाने के समान एक छंदे से जीव में यह का बहुत बड़ा वृक्ष नहीं बन जाता है ? और

यदि ईश्वर जगत् कर्ता है और वृक्षभी वह ही पैदा करता है तो क्या स्वामी जी का यह अभिप्राय है कि छोटे से बीज से बड़ा भारी वृक्ष बना देने में ईश्वर अन्याय करता है ? यदि कोई किसी को एक थप्पड़ मार दे तो राजा उसको बहुत दिनों का कारागार का दंड देता है। क्या स्वामी जी के हेतु के अनुसार राजा इस प्रकार दंड देने में अन्याय करता है और एक थप्पड़ मारने का दंड एक ही थप्पड़ होना चाहिये क्या जितने दिनों तक जीव कोई कर्म उपाजन करे तस कर्म का फल भी उतने ही दिनोंके वास्ते मिलना चाहिये ? और वैसा ही मिलना चाहिये अर्थात् कोई किसी को गाली दे तो गाली मिले और भोजन दे तो भोजन मिले यदि ऐसा है तो भी स्वामी जी को समझना चाहिये या कि कर्मों का फल मुक्ति कदाचित् भी नहीं हो सकता है क्योंकि कोई भी कर्म ऐसा नहीं हो सकता है जो मुक्ति के समान हो क्योंकि कर्म संसार में किये जाते हैं और वंश अवस्था में किये जाते हैं और मुक्ति संसार और बंध दोनों से विनष्ट है।

प्यारे आर्य भाइयो ! मुक्ति के स्वरूप को जानने की कोशिश करो। आचार्यों के लेखों को देखो और तर्क वितर्क से परीक्षा करो। मुक्ति कर्मों का फल कदापि नहीं हो सकती है बरन् कर्मों के क्षय होने तथा जीवका

शुद्ध स्वभाव प्राप्त करने का नाम मुक्ति है। इस भय से कि स्वामी दयानन्द के वचनों में आसक्त होकर आप हमारे हेतुओं और आचार्यों के प्रमाणों को शायद न सुनै हम इस विषय की पुष्टि स्वामी दयानन्द के ही लेखों से करते हैं—

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १८२

“केवल्य मोक्ष का लक्षण यह है कि (पुरुषार्थ) अर्थात् कारण के सत्त्व, रजो और तमो गुण और उन के सब कार्य पुरुषार्थ से नष्ट होकर आत्मा में विज्ञान और शुद्धि यथावत् होके स्वरूप प्रतिष्ठा जैसा जीवका तत्त्व है वैसा ही स्वभाविक शक्ति और गुणों से युक्त होके शुद्ध स्वरूप परमेश्वर के स्वरूप विज्ञान प्रकाश और नित्य आनन्द में जो रहता है उसी को केवल्य मोक्ष कहते हैं”

प्यारे पाठको ! उपर्युक्त लेख के अनुसार मुक्ति कर्मों का फल है वा कर्मों के सर्वथा नष्ट होने से मुक्ति मिलती है? जब सत्त्व, रज और तम तीनों उपाधिक गुण और उनके कार्य नष्ट होगये और जीव शुद्ध यथावत् जैसा जीवका तत्त्व है वैसा ही स्वभाविक शक्ति और गुण सहित रह गया तो क्या फिर भी जीव के साथ कोई कर्म बाकी रह गये? ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में इस प्रकार जो मुक्ति का लक्षण वर्णन किया है हमसे तो किंवित् मात्र भी संदेह नहीं रहता है वरण स्पष्ट विदिन हो-

ता है कि कर्मों के क्षय होने और जीव के शुद्ध स्वच्छ और निर्मल हो जाने का ही नाम मुक्ति है।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के ऊपरके लेख से यह भी विदिन होता है कि मुक्ति नित्य के वास्ते है अनित्य नहीं है। वेशक जब कि सर्व उपाधि दूर होकर अर्थात् कर्मों का सर्वथा नाश होकर जीव के शुद्ध निज स्वभाव के प्रगट होने का नाम मुक्ति है तो यह सम्भव ही नहीं हो सकता है कि जीव मुक्ति से लौटकर फिर संसार में आवै क्योंकि संसार को दुःख मागर और मुक्ति को परम आनंद वार २ कई स्थान में स्वयम् स्वामी दयानन्द जीने भी लिखा है। इस कारण मुक्ति जीव अपने आप तो मुक्ति के परमानन्दको छोड़कर संसार के दुःख में फंमना पसंद कर ही नहीं सकता है और किसी प्रकार भी संसार में आ ही नहीं सकता है और यदि ईश्वर जगत्का कर्ता हो तो वह भी ऐसा अनपाई और अपराधी नहीं हो सकता है कि शुद्ध, निर्मल और उपाधिरहित मुक्ति जीवको बिना किसी कारण, बिना उसके किसी प्रकार के अपराध के परमानन्द रूप मुक्तिस्थान से धक्का देकर दुःख दार्द्र संसार कूप में गिरादे और मुक्त जीव को स्वच्छता और शुद्धता को नष्ट भष्ट करके सत्, रज, और तम आदि उपाधियों उस के साथ चिमटादे। ऐसा कठोर हृदय तो मित्राय स्वामी

दयानन्द जीके और किसी का भी नहीं हो सकता है कि निरपराधी मुक्त जीवों को स्वयम् संसारमें फंसाकर अपराध करना सिखावें।

पाठक गण ! जीव की दो ही तो अवस्था हैं एक बंध और दूसरी मोक्ष यह दोनों अवस्था प्रति पक्षी हैं। बंध शब्द ही इस बात को बता रहा है कि जब तक जीव उपाधियों में फंसा रहता है तब तक बंध अवस्था कहाती है और जब उन उपाधियोंसे मुक्त हो जाता है अर्थात् छूट जाता है तब मोक्ष अवस्था होती है। आश्चर्य है ! कि स्वामीजीको इतनी भी समझ न हुई कि कर्म उपाधिसे मुक्त होना अर्थात् छूटनेका नाम मुक्ति है वा मुक्ति भी कोई उपाधी है जो कर्मोंके अनुसार प्राप्त होती है परन्तु वे सोचे समझे भोले लोगोंको वहकानेके वास्ते यह लिखमारा कि अनित्य कर्मोंका फल नित्य मुक्ति नहीं हो सकती है। स्वामीजी जब कर्म उपाधि जीवने क्षय करदी और वह शुद्ध निर्मल होगया तभी तो वह मुक्त कहाया। वह कर्म कौनसा बाकी रहगया जिस का फल आप मोक्ष बताते हैं ? क्या आपके न्यायमें किसी वस्तुके शुद्ध हो-जानेके पश्चात् फिर उसका अशुद्ध और मल सहित होना बिना कारण भी आवश्यक है ?

यह बात, कि मुक्ति कर्मोंका फल नहीं है बरन् कर्मोंको क्षय करके जी-

वका शुद्ध होजाना है, ऐसी मोटी और सीधी है कि इसके वास्ते किनी हेतु की जरूरत नहीं है परन्तु स्वामी दयानन्दके प्रेमी ! भोले भाइयोंके समझानेके वास्ते हमने स्वयम् स्वामीजी की बनाई पुस्तक ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकाका भी लेख दिखादिया है—इस पर भी यदि किसी भाईको यह शंका हो कि नहीं मालूम स्वामीजीने यह लेख भूमिकामें किस अभिप्रायसे लिखा हो हम स्वामीजीकी पुस्तकके और भी बहुतसे लेख उद्धृत करते हैं जिनके पढ़नेसे कुछ भी सन्देह बाकी न रहेगा—  
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १८२

“जब मिथ्या ज्ञान अर्थात् अविद्या नष्ट होजाती तब जीवके सब दोष जब नष्ट होजाते हैं उसके पीछे (प्रवृत्ति) अर्थात् अधर्म अन्याय विषयाशक्ति आदिकी बामना भय दूर होजाती है। उसके नाश होनेसे (जन्म) अर्थात् फिर जन्म नहीं होता उसके न होनेसे सब दुःखोंका अत्यन्त अभाव होजाता है। दुःखोंके अभावसे पूर्वोक्त परमानन्द मोक्षमें अर्थात् सब दिनके लिये परमात्माके साथ आनन्द ही भोगनेकी बाकी रहजाता है इसीका नाम मोक्ष है,

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८७

“अर्थात् सब दोषोंसे छूटके परमानन्द मोक्षको प्राप्त होते हैं जहां कि पूर्ण पुरुष सद्यमें भरपूर सद्यसे सूक्ष्म अर्थात् अविनाशी और जिसमें हानि

लाभ कभी नहीं होता ऐसे परमपदको प्राप्त होके सदा आनन्दमें रहते हैं ”

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८७

“ पूर्व लिखी हुई चित्तकी पांच वृत्तियोंको यथावत् रोकने और मोक्षके साधनमें सब दिन प्रवृत्त रहनेसे पांच बलेश नष्ट होजाते हैं १ अविद्या २ अस्मिता ३ राग ४ द्वेष ५ अभिनिवेश उनमेंसे अस्मितादि चार क्लेशों और निष्काम भाषणादि दोषोंकी माता अविद्या है जो कि मूढ़ जीवोंको अन्धकार में फसाके जन्म मरणदि दुःखसागरमें सदा डुबाती है । परन्तु जब विद्वान् और धर्मात्मा उपामकोंकी मत्तविद्या से अविद्या भिन्न २ होके नष्ट होजाती है तब वे जीव मुक्तिको प्राप्त होजाते हैं । ”

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८२

“ जब अविद्यादि क्लेश दूर होके त्रिद्यादि शुभ गुण प्राप्त होते हैं तब जीव सब बन्धनों और दुःखोंसे छूटके मुक्तिको प्राप्त होजाता है ”

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८२

“ जब सब दोषोंसे अलग होके ज्ञानकी ओर आत्मा मुक्तता है तब कैवल्य मोक्ष धर्मके संस्कारसंचित परिपूर्ण होजाता है तभी जीवको मोक्ष प्राप्त होता है क्योंकि जबतक बन्धनके कामोंमें जीव फंसा जाता है तबतक उसको मुक्ति प्राप्त होना अमम्भव है—”

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८१ पर मुक्तिके साधनोंमेंसे एक साधन तप है जिसकी व्याख्या स्वामीजी इस प्रकार करते हैं—

“ जैसे सोनेको अग्निमें तपके निर्मल करदेते हैं वैसे ही आत्मा और मनको धर्मोचरण और शुभ गुणोंके आचरण रूपसे निर्मल करदेना ”

पाठकगणों ! आपको आश्चर्य होगा कि स्वामी दयानन्दजी अपनी पुस्तक ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में स्वयम् उपर्युक्त प्रकार लिखकर फिर सत्यार्थप्रकाशमें इस बातके सिद्ध करनेकी कोशिश करते हैं कि मुक्ति सदाके वास्ते नहीं होती है और कर्मोंके लयसे मुक्ति नहीं होती है वरण मुक्ति भी कर्मोंका फल है । परन्तु यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है क्योंकि जो कोई असत्यकी पुष्टि करता है उसके वचन पूर्वपर विरोध रहित हुआ ही नहीं करते हैं । स्वामीजीने अनेक ग्रन्थोंको पढ़ा और प्रायः सर्वशास्त्रोंमें मुक्तिको सदाके वास्ते लिखापाया और मुक्ति प्राप्त होनेका कारण सर्वकर्मोंका लय होकर जीवका शुद्ध और निर्मल होजाना ही सर्व आचार्योंके वाक्योंमें पाया इस कारण स्वामीजी सत्य बातको छिपा न सके और ऋग्वेदादि भाष्यभूमिकामें उनको ऐसा लिखना ही पड़ा । परन्तु अपने शिष्योंको खुश करनेके वास्ते इधर उधर की अटकलपट्टी बातोंसे उन्होंने मुक्तिसे लीटना भी सत्यार्थप्रकाशमें वर्णन करदिया ॥

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के उपर्युक्त वाक्योंसे हमारे आर्य भाइयों को यह भी विदित होगया होगा कि मुक्ति का-



रागार नहीं है-जेलखाना नहीं है जि-  
ससे छूटना जरूरी हो वरण मुक्ति तो  
ऐसा परमानन्दका स्थान है कि वह  
आनन्द संसारमें प्राप्त ही नहीं हो स-  
कता है । परन्तु स्वामी दयानन्द सर-  
स्वतीने मुक्तिको अनित्य वर्णन करके  
और मुक्तिसे लौटकर फिर संसारके ब-  
न्धनमें पड़नेकी आवश्यक स्थापित क-  
रके मुक्तिके परमानन्दको धूलिमें मिला  
दिया । क्योंकि प्रियपाठक! आप जा-  
नते हैं कि यदि हम किसी मनुष्यको  
कहदें कि तुम्हको राजा कैद करदेगा  
वा अन्य कोई महान् विपत्ति तुम्ह पर  
आने वाली है और उसको इस बात  
का निश्चय वा संदेह तक भी होजाये  
तो कैदमें जाने वा अन्य विपत्तिके आने  
से जो क्लेश होगा, उससे अधिक क्लेश  
उम मनुष्यको अभीसे प्राप्त हो जावेगा  
और याद वह इस समय आनन्दमें भी  
था तो उसका वह आनन्द सब मिट्टी  
में मिल जावेगा । इस ही प्रकार यदि  
मुक्तिसे लौटकर संसारके बन्धनमें फं-  
सना मुक्ति जीवोंके भाग्यमें आवश्यक  
है तो यह बात मुक्ति जीवोंको अव-  
श्य मालूम होगी क्योंकि स्वामी दया-  
नन्दजीने स्वयम् सत्यार्थप्रकाशमें मिट्टी  
किया है कि मुक्ति जीव परमेश्वरके स-  
दृश होजाते हैं और उनका संसारियों  
की तरह स्थूल शरीर नहीं होता है  
और न इन्द्रियोंका भोग रहता है व-  
रण वह अपने ज्ञानसे ही परमानन्द  
भोगते हैं । यह मालूम होने पर कि  
हमको यह परम आनन्द छोड़कर सं-

सार में फिर रुकना पड़ेगा और दुःख  
सागरमें डूबना होगा, मुक्त जीवोंको  
जितना क्लेश हो सकता है उसका व-  
र्णन जिह्वासे नहीं हो सकता है और  
उनकी दशाको परमानन्दकी दशा क-  
हना तो क्या सामान्य आनन्दकी भी  
दशा नहीं कह सकते हैं । इस हेतु मु-  
क्तिसे लौटकर संसारमें आनेके विद्वान्-  
तको मानकर मुक्तिका सर्व वर्णन ही  
नष्ट भूट होता है-और सर्व कथन नि-  
श्वा हो जाता है ॥

## आर्यमत लीला ।

( १८ )

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी की सं-  
सारके विषय भोगोंका इतना प्रेम है  
कि वह संसारके विषयोंको भोगनेके  
वास्ते मुक्त जीवोंका भी मुक्तिसे वापिस  
आना आवश्यक समझते हैं और इस  
ही पर वन नहीं करते वरण वह मिट्टी  
करना चाहते हैं कि जितने दिन जीव  
मुक्तिमें रहता है उन दिनोंमें भी मुक्ति  
जीव इच्छासे वंचित नहीं रहता है  
वरण मुक्त दशा में भी स्वेच्छानुसार  
सर्व ब्रह्मांड में विचरता रहता है और  
जगह २ का स्वाद लेता रहता है यदि  
कोई ऐसा कहै कि मुक्ति में जीव इच्छा  
द्वेष से रहित रहता है तो स्वामीजी  
को बहुत बुरा मालूम होता है और  
तुरंत उसके खगडन पर तय्यार होते हैं  
स्वामीजीको तो संसार के मनुष्यों की

संसार से प्रेम कराना है इस कारण मुक्ति जीवका एक स्थान में स्थिर रहना उनको कष्ट उड़ाता है। वह तो यह ही चाहते हैं कि जिस प्रकार संसारी जीव इच्छा बश विचरते फिरते हैं उस ही प्रकार मुक्त जीवों की वास्तव कक्षा जावे मुक्त जीवोंमें संसार के जीवोंमें कुछ विशेषता मिट्ट नही

स्वामी जी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ४४५ पर लिखते हैं:-

“ वह शिला पैतानीम लाखसे दूनी नखेनाख कोशकी होती तो भी वे मुक्त जीव बंधन में हैं क्योंकि उस शिला वा शिवपुरके बाहर निकलने से उन की मुक्ति छूट जाती होगी और मदा उसमें रहने की प्रीति और उसमें बाहर जाने में अप्रीति भी रहती होगी जहां अटकाव प्रीति और अप्रीति है उसको मुक्ति क्यों कर कह सकते हैं”

पाठकगण ! इस लेख का अभिप्राय यह है कि जैनी लोग पैतानीम लाख योजन का एक स्थान मानते हैं जिस में मुक्तजीव रहते हैं स्वामीजी इसके बिरुद्ध यह सिखाना चाहते हैं कि मुक्त जीव सर्व ब्रह्माण्डमें घूमता फिरता रहता है इसकारण स्वामीजी जैनियों के सिद्धान्तकी हंसी उड़ाते हैं कि यदि मुक्त जीव मुक्ति लोकसे बाहर चला जाता होगा तो उसकी मुक्ति छूट जाती होगी और मुक्ति स्थान में ही रहते रहते उसको मुक्ति स्थानसे प्रीति और मुक्ति स्थान से बाहर जो लोक है उस

से अप्रीति होजाती होगी । परन्तु स्वामी जी ने यह न समझा कि ऐसा कहने से स्वामीजी अपनी ही हंसीकराते हैं क्योंकि यह अनोखा सिद्धान्त कि, कर्मोंके बंधनसे मुक्त होकर और रागद्वेष को छोड़कर और स्वच्छ निमन होकर और मुक्तिको प्राप्त होकर भी प्रीति और अप्रीति करने का गुण बाकी रहता है और इधर उधर विचरने की भी इच्छा रहती है, स्वामी जीके ही मुखसे प्रोभता है अन्य कोई विद्वान् ऐसा ढीठ नहीं हो सका है कि ऐसी उलटी बातें बनावे । अफसोस ! स्वामीजीने अनेक ग्रंथ पढ़े परन्तु मुक्ति और आनन्द का लक्षण न जाना स्वामीजी केचारे तो आनन्द इस ही में समझते रहे कि जीव सर्व प्रकारके भोग करता हुआ स्वच्छन्द फिरता रहे और किसी प्रकारका अटकावा किसी काम में रोक टोक न माने और जो चाहे सो करे ॥

पाठकगण ! जिस प्रकार बाजारी रं-डियें गृह स्थानी स्वभर्त्ता संतुष्टा स्त्रियों पर हंसा करती हैं कि इन स्वच्छन्द हैं और विवाहिता स्त्रियें बंधन में फंसी हुई कारागारका दुःख भांगती हैं वा जिस प्रकार शराबी कबाबी लोग त्यागियों की हंसी उड़ाया करते हैं कि यह त्यागी लोग संसारका कुछ भी स्वाद न ले सकेंगे इस ही प्रकार स्वामी दयानन्दजी भी शुद्ध निर्मल स्वभावमें स्थित उन मुक्त जीवोंकी हंसी उड़ाते

हैं जिनकी कुछ भी इच्छा नहीं है और एक स्थानमें स्थिर हैं और उनको बंधन में बतलाते हैं और इनके विरुद्ध यह सिद्ध करना चाहते हैं कि मुक्त होकर भी जीव सारे ब्रह्मांड में सजे उड़ाता फिरता रहता है "उल्टा चोर कोतवालको डांट" वाला दृष्टान्त यहीं घटता है—

प्यारे आर्य्य भाइयो! इस बारस्वार आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप भिद्वान्तों को विचारें और आचार्योंके लेखोंको पढ़ें स्वामी दयानन्दजीके पूर्वापर विरुद्ध वाक्यों पर निर्भर न रहें क्योंकि स्वामी दयानन्दजीने कोई धर्म बंधन का मार्ग प्रकाश नहीं किया है वरण असजाल रचा है। आइये! इस आप को स्वयम् स्वामी दयानन्दजीके ही लेख दिखायें जिससे उनका सब असजाल प्रगट हो जावे।

श्रग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १७२

"जैसे जलके प्रवाहको एक ओर से दृढ़ बांधके रोक देते हैं तत्रजिम ओर नीचा होता है उस ओर चनेके कहीं स्थिर होजाता है। इसी प्रकार मन की वृत्ति भी जब बाहर से रुकती है तब परमेश्वरमें स्थिर होजाती है। एक तो चित्तकी वृत्ति को रोकनेका यह प्रयोजन है और दूसरा यह है कि उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहारमें प्रवृत्त होते हैं तब योगीकी वृत्ति सदा इर्ष शोक रहित आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्द युक्त रहती है और संसारके म-

नुष्य की वृत्ति सदा इर्ष शोक रूप दुःख सागर में ही डूबी रहती है"

प्यारे पाठकों! जरा स्वामीजी के इस लेख पर विचार कीजिये। जिस प्रकार तालाब का जल स्थिर होजाता है। इस प्रकार मनकी वृत्तिकी रोक कर स्थिर करने का उपदेश स्वामीजी श्रग्वेदादि भाष्य भूमिकामें लिखते हैं और चित्तमें स्थिर होना ने से आनन्द और चंचल होने से दुःख बताते हैं परन्तु मत्पार्थ प्रकाशमें जहां उनको जैनियोंके खखडन पर लेखनी उठाने की आवश्यकता हुई वहां मुक्ति जीवोंके एक स्थानमें स्थिर रहने को बंधन बताया और सर्व ब्रह्माण्ड में स्वच्छानुसार घूमते फिरने को परमानन्द ससंभाया। यदि इस ही प्रकार स्वामीजी को जैनियोंका खखडन करना था तो उनको उचित था कि मुक्ति का मोक्ष न चित्त वृत्ति का रोकना और मनको स्थिर करना न बताते वरण वामना गिणों की तरह स्वच्छाचारी रहने और मनको बिल्कुल न रोकने में ही मुक्ति बताते और चित्तकी वृत्ति को रोकना, उपासना और ध्यान आदिक को महा बंधन और दुःख का कारण बताते। मुक्ति से लौटकर फिर संसार में आने की आवश्यकता सिद्ध करने में जो २ हेतु स्वामीजीने दिये हैं उन से तो यहही मालूम होता है कि स्वामीजीकी इच्छा तो ऐसी ही थी क्योंकि उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि, मीठा वा

खड़ा एक प्रकारका ही रस चखने से वह आनन्द नहीं आ सकता जो नाना प्रकार के रस चखनेसे आता है इन कारण मुक्ति जीवों को संसार के ना-नाप्रकार के विषयभोग भोगने के वास्ते मुक्ति को छोड़कर अवश्य समा-रमें आना चाहिये केवल इतना ही नहीं वरन् स्वामीजीने तो यहां तक लिख दिया है कि मुक्ति कैद के समा-न है यदि वह कुछ काल के वास्ते हो तो उषों त्यों भुगती भी जावे परन्तु यदि सदा के वास्ते हो तो अत्यन्त ही दुःख दाई है । इससे ज्यादा स्वामीजी अपने हृदयके विचारका और क्या प-रिचय देते ?

यद्यपि मुक्तिके साधनोंका वर्णन करते हुये पूर्वाचार्यों के वाक्योंके अनु-सार स्वामी जीको यह ही लिखना पड़ा कि सन्यासी अपने चित्तकी वृत्ति को संसार की ओर से रोककर स्थिर करे परन्तु ऐसा लिखनेका दुःख उनसे हृदय में बराबर बनाही रहा और वह यह ही चाहते रहे कि मुक्ति का सा-धन करनेवाला वहही माना जावे जो संसार में ही लगा रहै । इस ही हेतु स्वामी जी नित्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १३५ पर नीचे लिखा एक श्लोक लिखकर उसका खगडन करते हैं—

यतीनांकाञ्चनंद्या-

नाममूलं ब्रह्मचारिणाम् ।

चौराणामभयद्व्या-

त्सनरीनरकं व्रजेत् ॥

“इत्यादि बचनों का अभिप्राय यह है कि संन्यासियों को जो सुखर्ष दान दे तो दाता नरक को प्राप्त होवे”-

पाठक गणो ! संन्यासी का काम है कि संसार को त्याग करने और अपने चित्त को स्थिर करने की कोशिश कर-ता रहै और संसार व्यवहार में न पड़े परन्तु सुखर्ष अर्थात् नकदी माल संसार में कमाने का कारण होता है इस का-रण हम श्लोक में किमी ने उपदेश दिया है कि जो कोई सन्यासी को नकदी का दान देना है वह उस सं-न्यासी को संसार में कमाने का कारण बनता है अर्थात् अधर्मकरता है परन्तु स्वामी दयानंद जी इस श्लोक से ब-हुत नाराज हुये हैं और श्लोक लिख कर वह अपनी टिप्पणी इस प्रकार देते हैं ।

“यह बात भी बर्णाश्रम विरोधी सं-प्रदायी और स्वार्थमिथु जाने पौरा-णिकों की कल्पी हुई है । क्योंकि सं-न्यासियों को धन मिलेगा तो वे हम-सारा खंडन बहुत कर सकेंगे और हम-सारी हानि होगी तथा वे हमारे आ-धीन भी न रहेंगे और जब भिक्षा दि व्यवहार हमारे आधीन रहेगा तो हारते रहेंगे”-

इस उपयुक्त लेख से स्वामी दयानंद जी का अभिप्राय पाठकों को मालूम हो गया होगा कि वह संन्यासियों की वृत्ति किस प्रकार की हो जानी चाह-ते थे और यह वहने ही मालूम हो

बुका है कि वह जोड़को केसा दुःख दा-  
ई मानते थे ।

स्वामी जी का अभिप्राय कुछ भी  
हो हमने यह खोज करनी है कि जिस  
प्रकार जैनी मानते हैं-जीव के स्थिर  
रहने में परमानन्द है वा जिस प्रकार  
स्वामी दयानन्द जी सिखाते हैं-जीवके  
खेड्डालुमार सर्वस्यान में विचरने में  
खुश है ? इस की परीक्षा में हम अ-  
पने आर्य्य भाइयों के वास्ते उपनिष-  
द् का एक लेख पेश करते हैं जिसको  
स्वामी जी ने भी स्वीकार करके स-  
त्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ १८७ पर लिखा है-

समाधि निर्धूतपलम्य चेन्मोनिवे-  
शितस्वारात्मनि यत्मुखं भवेत् । न श-  
क्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वगन्तदन्तः  
करणेन गृह्यते ॥

जिस पुनप के समाधि योगसे अवि-  
द्यादि मल नष्ट हो गये हैं आत्मस्थ हो  
कर परमात्मा में चित्त जिमने लगा-  
या है उस की जो परमात्मा के योज  
का सुख होता है वह बःणी से कहा  
नहीं जा सकता क्योंकि उस आनन्दको  
जीवात्मा अपने अन्तःकरण से ग्रहण  
करता है ।

पाठक गण ! इस उपर्युक्त श्लोक में  
यह दिखाया गया है कि समाधि से  
अविद्यादि मल नष्ट हो जाते हैं और  
जीव कम गीम्य हो जाता है कि वह  
अपनी आत्मा में स्थिर हो सके इस  
प्रकार जब जीव अपनी आत्मा में स्थिर

होकर परमात्मा से योग लगाता है तो  
उस की परमानन्द प्राप्त होता है-

स्वामी दयानन्द जी ने जो सत्यार्थ  
प्रकाश में यह लिखा है कि मुक्तजीव  
ब्रह्म में वास करता है उस के भी के-  
वल यह ही अर्थ हो सकते हैं कि जीव  
अपनी आत्मा में स्थिर होकर परमा-  
त्मा से युक्त हो जाता है इस ही का-  
रण स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में  
लिखा है कि मुक्त जीव ब्रह्मके सदृश  
हो जाता है । इस अर्थ की स्पष्ट क-  
रने के वास्ते स्वयम् स्वामी दयानन्द  
जी ज्ञानदेवादि भाष्य भूमि का के पृष्ठ  
१८६ पर लिखते हैं-

दीप्ते अग्नि के बीच में लोहा भी  
अग्नि रूप हो जाता है । इसी प्रकार  
परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय होके  
अपने शरीर की भी भूले हुए के स-  
मान ज्ञान के आत्मा की परमेश्वर के  
प्रकाश स्वरूप आनन्द और ज्ञानसे  
परिपूर्ण करनेको समाधि कहते हैं-

पूर्याक्त उपनिषद् के श्लोक में यह  
दिखलाया था कि प्रथम समाधि ल-  
गाकर अविद्यादि मल अर्थात् इच्छा,  
द्वेष आदिक को दूर करे फिर अपनी  
आत्मा में स्थिर हो जावे और इस  
वाक्य में समाधि का स्वरूप दिखला-  
या है कि संसार से चित्त की वृत्तिको  
हटा कर यहां तक कि अपने शरीरको  
भी भूल कर परमात्मा के ज्ञान में इस  
प्रकार लीन हो जावे कि अपने आपे  
का भी ध्यान न रहे जिस प्रकार कि

लोहा अग्नि में पड़कर लाल अग्नि रूप ही हो जाता है और अंगारा ही मालूम होने लगता है इस ही प्रकार परमात्मा के ध्यानमें ऐसा ही तल्लीन हो जावे कि अपने आपका भी ध्यान न आवे इस ही अवस्था में परमानन्द प्राप्त होता है—

वह आनन्द ऐसा आनन्द नहीं है जो संसारियों को नानाप्रकार की वस्तुओं के भोगने या नानाप्रकार की क्रियाओं के काने से प्राप्त होता है वरन् संसार का सुख हम सुखके सामने दुःख ही है और भूठा सुख है। अगली आनन्द और परमानन्द जीव की वृत्तियों के रुकने और आत्मा में स्थिर होनेसे ही होता है क्योंकि संसारका सुख तो यह है कि किसी बात की इच्छा उत्पन्न हुई और दुःख प्राप्त हुआ। फिर उस इच्छा के दूर होने से जो दुःख की निवृत्ति हुई उससे सुख मान लिया। संसार के जितने सुख हैं वह सब पापेक्षिक हैं। बिना दुःख के संसार में कोई सुख ही नहीं सकता है। यदि भूख न लगे तो भोजन खाने से सुख न हुआ करे यदि प्यास न लगे तो पानी पीने से सुख न हुआ करे या कामकी पीड़ा न हो तो स्त्री भोग में कुछ भी आनन्द न हो। इसही प्रकार चलना फिरना सैर सपाटा आदिक जिन २ संसारीक कामोंमें सुख कहा जाता है वह यही ही है कि प्रथम इच्छा उत्पन्न होती है और उस इच्छासे दुःख होता है फिर जब इच्छाके अनुसार

काम होजाता है तो उस दुःख के दूर होने की यह जीव सुख मान लेता है परन्तु इच्छा द्वेष आदिक दूर होकर और इच्छा द्वेषके कारण जो चित्तकी प्रवृत्ति संसार की नाना वस्तुओं और नाना रूप कार्यों पर होती है उस प्रवृत्ति के रुकनेसे और जीवात्माके आत्मा में स्थिर होनेसे किसीप्रकार भी दुःख नहीं हो सकता है और न वह संसार का भूठा सुख प्राप्त होता है जो वास्तव में दुःख का किंचित् मात्र दूर होना है वरन् हम प्रकार रागद्वेष दूर होकर और जीवात्मा शुद्ध और निर्मल होकर उसके ज्ञानके प्रकाश होनेसे जो सुख होता है वह ही सच्चासुख और परमानन्द है।

परमानन्द का उपर्युक्त स्वरूप होने पर भी स्वामी दयानन्द मरस्वती जी संसार सुख को ही सुख मानते हैं और युक्ति जोय को भी आनन्द की खोजमें सर्व ब्रह्मांड में भ्रमता हुआ फिराना चाहते हैं और एक स्थान में स्थिर अपने ज्ञान स्वरूप में मग्न मुक्त जीवों को वंचन में बंधा हुआ बताकर जैनियों की हंसी उड़ाते हैं-परन्तु वास्तव में हंसी उसीकी उड़ाती है जो अटकल पत्र और उलटी बातें बनाता है-

हमको अत्यंत आश्चर्य है कि स्वामी जी ने यह कैसे कह दिया कि, मुक्त जीवों के एक स्थान में स्थिर रहने से उनको उस स्थान से प्रीति होजावैगी

और उस स्थान से बाहरके स्थान से अप्रीति करने लगेगे? क्या स्वामी जी की समझमें मुक्ति प्राप्त होने पर भी राग द्वेष जीव में बाकी रह जाता है और प्रीति करने की उपाधि उस में बनी रहनी है? शायद यह ही समझ कर कि उस में ऐसी उपाधि का कोई अंश बाकी रह जाता है स्वामी जी ने यह कहा है कि मुक्ति जीव अपनी इच्छाद्वारा आनंद भोगता हुआ सर्व ब्रह्मांड में फिरता रहता है। परंतु ऐसा मानने से तो बड़ी हानि आवेगी क्योंकि जब एक स्थान से प्रीति और अन्य स्थान से अप्रीति स्वामी जी के कथनानुसार हो सकती है तो अन्न वस्तुओं से प्रीति या अप्रीति क्यों नहीं हो सकती? और जब स्वामी जी के कथनानुसार मुक्त जीव सर्व ब्रह्मांडमें घूमता फिरता रहता है तो नहीं मालूम किस वस्तु से प्रीति कर बैठे और किस विषय में आमक्त हो जावे वा न मालूम किस वस्तु वा जीवसे अप्रीति अर्थात् द्वेष कर लेवे और उससे लड़ बैठे?

किस प्रकार मुक्ति जीव के एक स्थान में अपने ज्ञान स्वरूप में स्थिर न रहने और इच्छानुसार ब्रह्मांड में विचरते फिरने से संवारी और मुक्ति जीव में कुछ भी अंतर नहीं रहना है और शायद इस ही अंतर को हटाने और मुक्ति के साधने से अरुचि दिलाने ही

के वास्ते स्वामी जी ने यह सब प्रपंच रचा है—

स्वामी जी ! यह मानने से कि मुक्त जीव इच्छानुसार घूमते फिरते रहते हैं बड़ा भारी बखेड़ा उठ खड़ा होगा क्योंकि आप सत्यार्थप्रकाश में यह लिख चुके हैं कि “यादे मुक्ति से जीव लौटता नहीं है तो मुक्ति में अवश्य भीड़ भड़का हो जायेगा,” जिसने विदित होता है कि आप मुक्ति जीवों का ऐसा शरीर मानते हैं जो दूसरे मुक्त जीव के शरीर को रोक पैदा करे ऐसा शरीर धरते हुवे क्या यह सम्भव नहीं है कि एक मुक्ति जीव जिस समय जिस स्थान में जाना चाहे उसही स्थान में उस ही समय दूसरा मुक्त जीव जाने की वा प्रवेश करने की इच्छा रखता हो और स्वामी जी के कथनानुसार मुक्त जीवों का ऐसा शरीर है नहीं जो एक ही स्थान में कई जीव सदा सके वरण एक जीव दूसरे जीव के वास्ते भीड़ करता है तब तो उन दोनों मुक्ति जीवों में जो एक ही स्थान में प्रवेश करना चाहते होंगे खूब लड़ाई होती होगी वा एक मुक्त जीव को निराश होकर वहां से लौटना पड़ता होगा और इस में अवश्य उसकी दुःख होना होगा और ऐसा भी हो सकत है कि निधन एक मुक्त जीव जाना हो उधर से दूसरा मुक्त जीव जाना हो और दोनों आपस में टकरा जावें यदि कोई कहने लगे कि एक उन में से अलग हट कर दूसरे को रास्ता दे

देता होगा तो स्वच्छन्दता न रही दूसरे के कारण से अलहदा हटना पड़ा संसार बंधन में जो दुःख है वह यह ही तो है कि संसार के अन्य जीवों और अन्य वस्तुओं के कारण अपनी इच्छानुकूल नहीं प्रवर्त सकते हैं ।

इस को बड़ा आश्चर्य है कि जब स्वयम् स्वामी जी यह लिखते हैं कि मुक्ति का साधन रागद्वेषका दूर करना और अपनी आत्मा में स्वरूप स्थिर होना है इस ही साधन ने जीवात्मा शुद्ध और निर्मल होता है और इस ही से उसकी सर्व उपाधियां दूर होती हैं तब नहीं मालूम स्वामी दयानन्द की समझ में मुक्ति को प्राप्त करने के पश्चात् जीवात्मा में कौन सी उपाधि चिमट जाती है जिसके कारण वह अपनी स्वरूपस्थित स्थिर अवस्था को छोड़कर सारे ब्रह्मांड की भ्रम करता फिरने लगता है ? देखिये मुक्ति के साधन में स्वयम् स्वामी जी इस प्रकार लिखते हैं—

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १८३

“जो वायु बाहर से भीतर को आता है उसको श्वास और जो भीतर से बाहर जाता है उन को प्रश्वास कहते हैं उन दोनों के जाने आने को विचार से रोके नासिका की हाथ से कभी न पकड़े किन्तु ज्ञान से ही उनके रोकने को प्राणायाम कहते हैं.....इनका अनुष्ठान इस लिये है कि जिससे चित्त निर्मल होकर उपासना में स्थिर रहे।”

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १९०

“इसी प्रकार बारंबार अभ्यास करने से प्राण उपासक के बग में हो जाता है और प्राण के स्थिर होनेसे मन, मन के स्थिर होनेसे आत्मा भी स्थिर हो जाता है ।”

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८५

“धारणा उसको कहते हैं कि मनको चंचलता से छुड़ा के नाभि, हृदय मस्तक, नासिका और जीभ के अग्रभाग आदि देशों में स्थिर करके ओंकारका जप और उसका अर्थ जो परमेश्वर है उसका विचार करना , , ।

तथा धारण के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेनेके योग्य जो अंतर्गामी व्यापक परमेश्वर है उस के प्रकाश और आनन्द में अत्यंत विचार और प्रेम भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है ।

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पृष्ठ १८६

ध्यान और समाधि में इतना ही भेद है कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला जिस मनसे जिस चीजका ध्यान करता है वे तीनों विद्यमान रहते हैं परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर हीके आनन्द स्वरूप ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है वहाँ तीनों का भेद भाव नहीं रहता ।

प्यारे पाठको ! मुक्ति के साधन में तो स्वामी जीने उपर्युक्त लेखके अनुसार यह बताया कि ध्यान करने वा-



ला और जिस मनसे ध्यान करना है और जिस का ध्यान करता है इन तीनों बातों का भी भेद मिटाकर परमेश्वर के आनन्द स्वरूप ज्ञान में ऐसा मग्न हो जाय कि इस बात का भेद ही न रहे कि कौन ध्यान करता है और किस का ध्यान करता है परन्तु मुक्ति प्राप्त होने के पश्चात् स्वामी जी यह बताते हैं कि वह सर्वब्रह्मांड की सैर करता हुआ फिर ! क्या मुक्ति प्राप्त होनेके पश्चात् जीव को परमेश्वर के आनन्द स्वरूप ज्ञानमें मग्न रहने और अपने आपे को भुलाकर परमेश्वर ही में तल्लीन रहनेकी जरूरत नहीं रहती है क्या मुक्ति साधन के समय तो आनन्द ईश्वर में तल्लीन होने से प्राप्त होता है और मुक्ति प्राप्त होने के पश्चात् इच्छानुसार सारे ब्रह्मांड में घूमते फिरने से प्राप्त होता है ?

अफसोस ! स्वामी जी ने बिना विचारों जो चाहा लिखमारा और आनन्द के स्वरूप को ही न जाना ।

## आर्यमत लीला ।

( २० )

सत्यार्थ प्रकाश के पढ़ने से मालूम होता है कि स्वामी दयारंजं सरस्वती जी ने जीव के स्वरूप को उलटा समझ लिया और इस ही कारणसे जीव के मुक्ति से लौटने और मुक्ति में भी सुख के अर्थ बिचाते फिरनेका सिद्धान्त स्थापित कर दिया । देखो स्वामी जी इस प्रकार लिखते हैं—

सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ६०

इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्या-  
त्मनो लिंगमिति ॥ न्यायः ॥ अ०  
१ । आ० १ । सू० १०

जिसमें ( इच्छा ) राग, ( द्वेष ) वैर,  
( प्रयत्न ) पुत्रार्थ, सुख, दुःख, ( ज्ञान )  
जानना गुण हों वह जीवात्मा । वैशेषिक में इनका विशेष है “प्राणाऽपान-  
निमेषोन्मेष जीवन मनोगतीन्द्रि-  
यान्तर विहाराः सुख दुःखेच्छाद्वेषप्र-  
यत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि, ॥ वै० ॥ अ०  
३ । आ० २ । सू० ४ ॥

( प्राण ) भीतर से वायु को निका-  
लना ( अपान ) बाहर से वायु को  
भीतर लेना ( निमेष ) आंख को नीचे  
ढांकना ( उन्मेष ) आंख को ऊपर उ-  
ठाना ( जीवन ) प्राण का धारण क-  
रना ( मनः ) मनन विचार अर्थात्  
ज्ञान ( गति ) यथेष्ट गमन करना  
( इन्द्रिय ) इन्द्रियों को विषयों में च-  
लाना उनसे विषयों का ग्रहण करना  
( अन्तर्विकार ) क्षुधा, तृषा, उषर, पी-  
डा आदि विकारों का होना, सुख,  
दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब  
आत्माके लिङ्ग अर्थात् कर्म और गुण हैं ।

स्वामीजीने अनेक ग्रन्थ पढ़े और स्था-  
न स्थान पर सत्यार्थ प्रकाशमें पूर्वाचार्यों  
के वाक्य उद्धृत भी किये परन्तु समझमें  
उनकी कुछ भी न आया । वह न्याय  
और वैशेषिक शास्त्रों में उपरोक्त सूत्रों  
को पढ़कर यह ही समझ गये कि सांख्य  
लेना, आंख को खोलना मंदना, जहां

चाहे आना जाना, इन्द्रियों का विषय भोग करना, भूख, प्यास, शारीरिक बीमारी, सुख, दुःख, रुद्धा, द्वेष और प्रयत्न यह सब बातें जीव के स्वाभाविक गुण हैं, अर्थात् यह सब बातें जीव के साथ सदा बनी रहनी हैं और कभी जीव से अलग नहीं हो सकती हैं। तब ही तो स्वामी जी यह कहते हैं कि मुक्ति दशा में भी जीवात्मा अपनी रुद्धा के अनुसार सर्व ब्रह्मांड में घूमता फिरता रहता है और सर्व स्थान के स्वाद लेता रहता है और तब ही तो स्वामी जी यह समझाते हैं कि जैनी लोग मुक्त जीवों के वास्ते एक स्थाव नियत करके और उनकी स्थिर अवस्था बना कर उनको कड़वस्तु के समान बनाना चाहते हैं।

जिस प्रकार तोते को बहुत सी खोली खोलनी गिखा दी जाती हैं और वह पक्षी उन गिखाये हुए शब्दों को खोलने लगता है परन्तु उन वाक्योंका अर्थ बिल्कुल भी नहीं समझता, इस ही प्रकार स्वामी जी की दशा मालूम होती है कि अनेक ग्रन्थ देख डाले परन्तु समझा कुछ भी नहीं। स्वामीजी को इतनी भी मोटी समझ न हुई कि उपर्युक्त जो लक्षण जीव के न्याय वा वैशेषिक दर्शनों में वर्णन किये हैं वह संसारी जीव के हैं देहधारी के हैं। क्योंकि मुक्ति में जीव शरीर रहित निर्मल और स्वच्छ हो जाता है। देह धारण करना जीवका औपाधिक भाव

है स्वाभाविक भाव नहीं है इस ही कारण मुक्ति में शरीर नहीं होता है, यदि देह धारण करना जीव का स्वाभाविक भाव होता तो मुक्ति में भी शरीर कदाचित् न छूट सकता। देखो स्वामी जी स्वयम् सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार लिखते हैं—

सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १२८

“ न स शरीरस्य सतः प्रियप्रिययोर  
पहतिरस्य शरीरं वा वसन्त न प्रिया-  
प्रिये स्पृशतः ” ॥ छान्दो० ॥

जो देहधारी है वह सुख दुःख की प्राप्ति से पर्युक्त कभी नहीं रह सकता और जो शरीर रहित जीवात्मा मुक्ति में सर्व व्यापक परमेश्वर के साथ शुद्ध होकर रहता है तब उनकी सांसारिक सुख दुःख प्राप्त नहीं होता—

ऊपर के लेखसे स्पष्ट विदित है कि सांसारिक अवस्था औपाधिक अवस्था है स्वाभाविक अवस्था नहीं है क्योंकि मुक्ति में जीव शुद्ध अवस्था में रहता है और संसार में उनकी अवस्था अशुद्ध है—स्वभाव से बिरुद्ध अवस्था को ही अशुद्ध अवस्था कहते हैं अशुद्धि, उपाधि और विकार यह सब शब्द एक ही अर्थके वाचक हैं और इनके प्रतिपक्षी शुद्ध, स्वच्छ और निर्मल एक अर्थ के वाचक हैं जब सब प्रकार की उपाधि जीव की दूर जाती हैं और जीव साफ होकर अपने असली स्वभाव में रह जाता है तब ही जीव की मुक्ति दशा कहलाती है। मुक्ति कहते हैं छूटनेकी छूटना किमसे? विकारसे—

अब देखना यह है कि उपाधि वा विकार जो संसारी जीवों को लगे रहते हैं वह क्या है और जीव का असली स्वाभाव क्या है ?=

उपर्युक्त लेख से यह तो विदित ही है कि शरीर धारी होना जीवका स्वभाव नहीं है वरण शरीर भी जीवके वास्ते एक उपाधि है ।

इस प्रकार समझने के पश्चात् जब हमारे प्यारे आर्य भाई न्याय और वैशेषिक शास्त्रों के कथन किये हुये जीवके लक्षणों को जांच करेंगे तो मालूम होजावेगा कि वह सब लक्षण संसारी देहधारी जीवके हैं अर्थात् जीव के उपाधिक भाव के लक्षण हैं । जीव के असली स्वाभाव के वह लक्षण कदाचित् नहीं हो सकते हैं क्योंकि वह सब लक्षण देहधारी जीव में ही हो सकते हैं, देह रहित में कदाचित् नहीं हो सकते क्योंकि सांस लेना, आंखों को खोलना मूंदना, आंख, नाक, और जीभ आदिक इन्द्रियोंका होना और इन्द्रियों के द्वारा विषय भोग करना आदिक सर्व क्रिया देहधारी जीव में ही हो सकती हैं । देहरहित मुक्त जीव में इनमें से कोई भी बात नहीं हो सकती है । और संसारमें जो सुख दुःख कहलाता है वह भी देहधारी ही में होता है । मुक्त जीव तो संसारिक सुख दुःख से प्रथक होकर परमानन्द ही में रहता है । संसारिक सुख दुःखता कारण सिवाय रागद्वेषके और कुछ नहीं

हो सकता है । इस वास्ते रागद्वेष भी संसारी देहधारी उपाधिसहित जीवोंमें ही होता है । मुक्त जीव में रागद्वेष भी नहीं हो सकता है । देखिये स्वामी दयानन्द जी मुक्ति सुखको इस प्रकार वर्णन करते हैं-

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १८२

“सब प्रकार की बाधा अर्थात् इच्छाविघात और परतन्त्रता का नाम दुःख है फिर उस दुःख के अत्यन्त अभाव और परमात्माके नित्य योग करने से जो सब दिनके लिये परमानन्द प्राप्त होना है उसी सुखका नाम मोक्ष है-”

उपर्युक्त लेख से स्पष्ट विदित होता है कि इच्छा और द्वेष ही जीव की बाधा पहुंचाती हैं और इन ही के दूर होनेसे जीव स्वच्छ और निर्मल होकर अपना असली स्वभाव प्राप्त करता है ।

प्रयत्न भी संसारी जीव ही को करना पड़ता है क्योंकि प्रयत्न उसही बात के वास्ते किया जाता है जो पहले से प्राप्त नहीं है और जिसकी प्राप्ति की इच्छा है अर्थात् जिसकी अप्राप्ति से जीव दुःख मान रहा है । मुक्ति में न इच्छा है और न दुःख है इस कारण मुक्ति में प्रयत्न की कोई आवश्यकता ही नहीं है । इच्छानुसार गमनागम भी एक प्रकार का प्रयत्न है इस कारण यह भी मुक्तिमें नहीं हो सका है

वरण मुक्ति में तो शांति और स्थिरता ही परमानन्द का कारण है।

स्वामीदयानन्द सरस्वतीने भी स्थिरताको ही मुक्ति और परमानन्द का उपाय पूर्वाचार्यों के अनुसार लिखा है।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १८७

“जो ..... आर्य अर्थात् शुद्ध चक्षु रूपी बन में स्थिता के साथ निवास करते हैं वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं,,

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ १७५

“जिससे उपाय का मन एकाग्रता प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो,,

सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १२६

“यच्छेद्वाङ्मनसीप्राज्ञ-

स्तद्यच्छब्दं ज्ञानमात्मनि ।

ज्ञानमात्मनिनहति नियच्छे,

स्तद्यच्छब्दं ज्ञानमात्मनि ॥

संन्यासी बुद्धिमान् पाखी और भन की अधर्म से रोके उपाय ज्ञान और आत्मा में लगावे और ज्ञानस्वात्मा को परमात्मा में लगावे और उस विज्ञान को शान्त स्वरूप आत्मा में स्थिर करे--”

उपर्युक्त स्वामीजी के ही लेखों से सिद्ध होगया कि शान्ति और स्थिरता ही जीवके वास्ते मुक्तिका साधन और स्थिरता ही परमानन्द का कारण है। इस हेतु मुक्तिजीव इधर उधर डोलते नहीं फिरते हैं वरण राग द्वेष रजित स्थिर चित्त ज्ञान स्वरूप परमानन्द में मग्न रहते हैं।

स्वामी दयानन्दजीने बड़ा धोखा

खाया जो न्याय और वैशेषिक शास्त्रों के पूर्वोक्त संसारी देहधारी जीवके लक्षणको अर्थात् औपाधिक भावकी जीवका असली स्वभाव मान लिया और ऐसा मानकर शुद्ध स्वरूप मुक्त जीवों में भी यह सब उपाधियां लगा दी और मुक्त जीवको भी संसारी जीवके लक्षण बनाकर कल्याणके मार्गको नष्ट कर दिया और धर्मकी जड़ काट दी।

धरि आर्य भाइयो ! यह तो आप की मान्य होगया कि जिस प्रकार स्वामी दयानन्दजी ने जीवका लक्षण समझा है और न्याय और वैशेषिक शास्त्रोंसे हवाले में लिखा है वह विचार लजित मंदिर में कभी दुपे जीव का लक्षण है परन्तु अब आप यह जानना चाहते हैं कि जीवका असली लक्षण क्या है ? इस कारण हम आपको बताते हैं कि जीवका लक्षण ज्ञान है।

लक्षण यह होता है जो तीन प्रकार के दोषोंसे रहित हो। १ अव्याप्त २ अनिव्याप्त ३ अव्यय। जो लक्षण किसी वस्तु का दिया जाय यदि वह लक्षण उस वस्तु से कभी पाया जावे और कभी न पाया जावे वा उन के एक देश में पाया जावे तो उस लक्षण में अव्याप्ति दोष कहलाता है जैसा कि जो लक्षण स्वामी जी ने न्याय और वैशेषिक शास्त्रोंके कथनके अनुसार वर्णन किये हैं वह जीवके लक्षण नहीं हो सके क्योंकि वह लक्षण संसारी जीव में पाये जाते हैं और मुक्ति जीव में नहीं, इस कारण इन लक्षणोंसे अ-

व्याप्त दोष है। वरण यदि अधिक विचार किया जावे तो संसारी जीव के भी यह लक्षण नहीं हो सके हैं क्योंकि संसारी जीवों में स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाशमें वृक्ष आदिक स्थावर जीव भी माने हैं, जो अपनी इच्छा के अनुसार चल फिरनहीं सकते हैं और उन के आंखें भी नहीं होती हैं जिनको वह खोल मूंद सकें। और स्वामी दयानन्द जी ने वैशेषिक शास्त्रके आधार पर अपनी इच्छा के अनुसार चलना फिरना और आंखोंका मूंदना खोलना भी जीवका लक्षण वर्णन किया है। लक्षण वहही हो सकता है जो कभी किसी अवस्थामें भी लक्ष्य वस्तुसे दूर न हो सके।

जो लक्षण किसी वस्तुका कहा जावे यदि वह लक्षण उस वस्तुसे पृथक् अन्य किसी वस्तु में भी पाया जावे तो उस लक्षणमें अतिव्याप्त दोष होता है जैसे आंखोंका खोलना मूंदना आदिक क्रिया धातुके खिलौने में भी हो जाती हैं जिनमें कोई कल लगा दी जाती है।

जिस वस्तुका लक्षण वर्णन किया जावे यदि वह लक्षण उस वस्तुमें कभी भी न पाया जावे तो उस लक्षणमें असंभव दोष होता है ॥

जीवका लक्षण वास्तवमें ज्ञानही हो सकता है क्योंकि इस लक्षणमें इन तीनों दोषोंमेंसे कोई भी दोष नहीं है। कोई अवस्था जीवकी ऐसी नहीं हो सकती है जब इसमें थोड़ा वा बहुत ज्ञान न हो क्योंकि जिसमें किंचिन्मात्र

भी ज्ञान नहीं है वह ही तो वस्तु जड़ व अचेतन कहलाती है। इस हेतु इस लक्षणमें अतिव्याप्त दोष नहीं है। इसमें अतिव्याप्ति दोष भी नहीं है क्योंकि जीवके सिवाय ज्ञान किसी अन्य वस्तु में होही नहीं सकता है। जीवमें ज्ञान प्रत्यक्ष विद्यमान है इस कारण इसमें असंभव दोष भी नहीं है ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी यह तो मानतेही हैं कि मुक्ति अवस्थामें जीव देह रहित होता है और ज्ञान उसका देहधारी जीवोंसे अधिक होता है। इस हेतु जीवके ज्ञानका आधार आंख नाक कान आदिक इन्द्रियों पर नहीं हो सकता है वरण संसारी जीव रागद्वेष आदिक विकारोंके कारण अशुद्ध हो रहा है जिससे इसका ज्ञान गुण मैला रहता है और पूर्णकाम नहीं कर सकता है। इस कारण संसारी देहधारी जीवको इन्द्रियोंकी इस ही प्रकार आवश्यकता होती है जिस प्रकार आंखके विकार वालोंको ऐनककी आवश्यकता होती है वा जिस प्रकार खुट्टे वा कमजोर मनुष्यको लाठी पकड़ कर चलनेकी ज़रूरत होती है। वयों वयों इच्छा द्वेष आदिक संसारी जीव के सैल ध्यान, तप और समाधि आदिकसे दूर होते जाते हैं त्यों त्यों जीवकी ज्ञानशक्ति प्रकट होती है और अतीन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होता जाता है। इस विषयमें स्वामी दयानन्द जी इस प्रकार लिखते हैं।—

अग्नेदादिभाष्य भूमिका पृष्ठ १८५

“इस प्रकार प्राणायाम पूर्वक उपासना करनेसे आत्माके ज्ञानका आवरण अर्थात् ढांकने वाला जो अज्ञान है वह नित्यप्रति नष्ट होता जाता है और ज्ञानका प्रकाश धीरे २ बढ़ता जाता है-”

स्वामी दयानन्दजीने यह सब कुछ लिखा परन्तु स्वामीजीको मुक्तिमें कुछ ऐसी चिड़ थी कि उनको मुरतजीवकी प्रशंसा तनक भी नहीं भाली थी। जब ही तो उन्होंने मुक्तिको कैदखानेके समान लिखा और नाना प्रकार के स्वाद लेनेके वास्ते मुक्तिसे लौटकर संसारमें आनेकी आवश्यकता बताई। तब वह यह कब मान सकते थे कि मुक्ति में जीवको पूर्णज्ञान प्रकट हो जाता है और वह सब कुछ जानने लगता है अर्थात् सर्वज्ञ होजाता है। इस कारण स्वामीजीने यह नियम बांध दिया कि जीव अल्पज्ञ है वह सर्वज्ञ होही नहीं सकता है अर्थात् मुक्तिमें भी अल्पज्ञ ही रहता है ॥

मुक्तजीवोंकी बुराई करने में स्वामी जी ऐसे पक्षपाती बने हैं कि वह अपने लिखेको भूलजाते हैं देखिये वह सत्यार्थप्रकाशमें इस प्रकार लिखते हैं।

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४७

“प्राणायामादशुद्धिद्वयेज्ञान दीप्तिराबिवेक रूपातेः ॥

“जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर कालमें अशुद्धि का नाश और ज्ञानका प्रकाश होजाता

है-जयतक मुक्ति न हो तब तक उस के आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है-”

इस प्रकार लिखने पर भी स्वामी जीको यह न सूझी कि मुक्ति अवस्था तक बढ़ते बढ़ते कहाँतक ज्ञान बढ़ जाता है। और कहाँ तक बढ़ना रुकजाता है। स्वामीजीको प्रिचारना था कि ज्ञानका इस प्रकार बढ़ना जीवमें पृथक् किमी दूसरी वस्तुके सहारे पर नहीं है।

जिस प्रकार कि पानीका गर्म होना अग्निके सहारे पर होता है कि जितना अग्नि कमती बढ़ती होगी पानी गर्म होजावेगा वरण यहाँ तो जीवके निज स्वभावका प्रगट होना है। जीव के ज्ञानपर जो आवरण आरहा है उस का दूर होना है-अर्थात् इच्छा द्वेषादिक भेन जितना दूर होता जाता है उतना उतना ही जीवके ज्ञानका आवरण दूर होता जाता है। और जीव का ज्ञान प्रगट होता जाता है। जब जीव पूर्ण शुद्ध हो जाता है अर्थात् पूर्ण आवरण नष्ट हो जाता तब जीव का पूर्ण ज्ञान प्रकाशित हो जाता है तात्पर्य यह है कि मुक्ति दशामें जीवके ज्ञानमें कोई रुकावट बाकी नहीं रहती है-अर्थात् वह सर्वज्ञ होजाता है।

सर्वज्ञ के शब्द पर जायद हमारे आर्य भाई खटकगे क्योंकि वह कहें कि सर्वज्ञ तो ईश्वरका गुण है। इस कारण यदि जीव मुक्ति पाकर सर्वज्ञ होजावे तो मानो वह तो ईश्वरके तुल्य होगया

परन्तु प्यारे आर्य भाइयो ! आप च-  
खराइये नहीं स्वयम् स्वामी दयानन्दने  
यह बात मानली है कि मुक्त जीव  
ईश्वर के तुल्य होता है-देखो वह इस  
प्रकार लिखते हैं—

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ १८८

“सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वरके  
गुण कर्म स्वभावके सदृश जीवात्माके  
गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं ।

स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाशमें  
कई स्थान पर यह भी लिखा है कि  
मुक्त जीव ब्रह्ममें रहता है परन्तु ब्रह्म  
में रहने का अर्थ सिवाय हमके और  
कुछ भी नहीं हो सकता है कि वह ब्र-  
ह्मके सदृश हो जाता है क्योंकि ब्रह्मको  
सर्व व्यापक मानने से मुक्त अमुक्त  
सब ही जीवोंका ब्रह्ममें निवास सिद्ध  
होता है फिर मुक्त जीवों में कोई  
विशिष्टता बाकी नहीं रहती । प्यारे  
आर्य भाइयो ! स्वामीजीने मुक्तजीव  
को अप्रपञ्च तो वर्णन कर दिया परन्तु  
उस अप्रपञ्चना की कोई सीमा भी  
बांधी ? यदि आप इस पर विचार  
करेंगे तो आप को नाखूब हो जावेगा  
कि न तो स्वामीजी कोई सीमा मुक्त  
जीवके ज्ञानकी बांध मके और न बांध  
सकती है । देखिये स्वयं स्वामीजी इस  
प्रकार लिखते हैं—

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २५७

“जैसे सांसारिक मनुष्य शरीरके आ-  
धारसे भोगता है वैसे परमेश्वरके आ-  
धार मुक्तिके आनन्दको जीवात्मा भो-  
गता है । वह मुक्तजीव अनन्त व्यापक

ब्रह्ममें स्वच्छन्द घूमता, शुद्ध ज्ञान से  
सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्तों के  
साथ मिलता, सृष्टि विद्याको क्रमसे  
देखता हुआ सब लोक लोकान्तरोंमें अ-  
र्थात् जितने ये लोक दीखते हैं और  
नहीं दीखते उन सब में घूमता है ।

वह सब पदार्थोंको जो कि उसके ज्ञान  
के आगे हैं देखता है जितना ज्ञान  
अधिक होता है उसको उतना ही आ-  
नन्द अधिक होता है—मुक्तिमें जीवा-  
त्मा निर्मल होने से पूर्णज्ञानी होकर  
उसको सब सन्निहित पदार्थों का भान  
यथावत् होता है । ”

प्यारे आर्य भाइयो ! स्वामी दया  
नन्द जी का उपर्युक्त लेख पढ़नेसे स्वा-  
मी जी का यह मत तो स्पष्ट विदित  
हो गया कि सर्व ब्रह्माहमें कोई स्थूल  
वा सूक्ष्म वस्तु ऐसी नहीं है जिसका  
ज्ञान मुक्त जीव को न हो सकता हो  
वरण सर्वका ज्ञान उसको होता है और  
वह पूर्ण ज्ञानी है । और ज्ञान ही उस  
का आनन्द है । स्वामीजी कोई सीमा  
जीवके ज्ञानकी नहीं बांध सके कि अ-  
मुक्त वस्तुका वा उसके स्वभावका ज्ञान  
होता है, और अमुक्त का नहीं, वरण  
वह स्पष्ट लिखते हैं कि उसको सर्व  
ज्ञान होता है और पूर्णज्ञान होता  
है । और इसके विरुद्ध लिखा भी कैसे  
जा सकता है ? क्योंकि जब मुक्त  
जीव के आनन्द का आधार उसका  
ज्ञान ही है और जितना २ जीव  
निर्मल होता जाता है और उसका  
ज्ञान बढ़ता जाता है उतना आनन्द

बढ़ता जाता है। तब यदि मुक्तजीव अल्पज्ञ रहेगा उसका ज्ञान पूर्ण नहीं होगा अर्थात् वह सर्वज्ञ नहीं होगा तो उसको परमानन्द भी प्राप्त नहीं होगा। जितनी उसके ज्ञानमें कमी होगी उतना ही उसका आनन्द कम होगा। परन्तु स्वामी दयानन्द जी पूर्वाचार्योंके आधार पर बारम्बार यह लिख चुके हैं कि मुक्तजीव ईश्वर के सदृश होकर परम आनन्द भोगता है। उसके आनन्द में कोई बाधा नहीं रहती है। और न उसका कोई समावट रहती है जिससे उसको दुःख प्राप्त हो। फिर मुक्तजीव को सर्वज्ञ न मानना वास्तवमें उसको दुःखी वर्णन करना है।

प्यारे पाठको ! सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २५० से जो लेख हमने स्वामीजी का लिखा है उसके पढ़नेसे आपको स्वामी जी की चालाकी भी मालूम हो गई होगी। यद्यपि पूर्वाचार्योंके कथनानुसार स्वामी जी को लावार यह लिखना पड़ा कि ज्ञान ही मुक्तजीवोंका आनन्द है और उन को पूर्ण ज्ञान होकर पूर्ण आनन्द अर्थात् परम आनन्द प्राप्त होता है, परन्तु स्वामीजी तो संसार सुखको सुख मानते हैं- प्रेम और प्रीतिके ही मोह जालमें फंसे हुये हैं और नाना प्रकार के ही रस भोगने को आनन्द मानते हैं इस कारण इस लिखने से न रुके कि वह आपमें मुक्त जीवोंसे मिलते हुये फिरते रहते हैं, अर्थात् मोहजाल में वह भी फंसे रहते हैं और मुक्त

जीवोंके पूर्ण ज्ञान का विरोध करनेके वास्ते चुपके से यह भी लिख दिया कि यद्यपि उनको पूर्ण ज्ञान सर्वपदार्थों का होता है, परन्तु एक साथ नहीं होता है, वरण क्रम से ही होता है, और सन्निहित पदार्थोंका ही ज्ञान होता है अर्थात् जो पदार्थ उनके सम्मुख होता है उसही का ज्ञान होता है। मानो स्वामी जी ने मुक्त जीवके ज्ञानकी सीमा बांधदी और सर्वज्ञ से कमती ज्ञान सिद्ध करदिया।

सन्निहित अर्थात् सन्निकर्ष ज्ञान चा-वाक नास्तिकों ने माना है। जो वस्तु इन्द्रियोंसे भिड़जाये उस ही का ज्ञान होना दूरवर्ती पदार्थका ज्ञान न होना सन्निकर्ष ज्ञान कहलाना है। वेचारे स्वामी दयानन्द को मुक्त जीव की सर्वज्ञता नष्ट करने के वास्ते नास्तिक का भी मिद्वान्त ग्रहण करना पड़ा परन्तु कार्य कुछ न बना, क्योंकि संसारी जीव जो विकार सहित होनेके कारण इन्द्रियोंके द्वारा ही ज्ञान प्राप्त करता है वह भी सूर्य और ध्रुवतारा आदिक बहुत दूरवर्ती पदार्थोंको देखसक्ता है। इस कारण विकार रहित ज्ञान स्वरूप मुक्तजीवमें सन्निकर्ष ज्ञान को स्थापन करना तो अत्यन्त ही मूर्खता है। स्वामी जी स्वयम् सत्यार्थ प्रकाश में कहते हैं कि संसारी जीवों पर अज्ञान का आवरण होता है। यह आवरण दूर होकर ही जीवका ज्ञान बढ़ता है और जब यह आवरण



पूर्ण नष्ट होजाता है तब जीवको मुक्ति होजाती है। परन्तु मुक्तजीवमें स्वामी जी सन्निकर्ष ज्ञान स्थापित करते हैं अर्थात् संसारी जीवोंसे भी कमती ज्ञान सिद्ध करना चाहते हैं।

शायद कोई हमारा आर्यभाई यह कहने लगे कि सन्निकर्ष पदार्थों का अभिप्राय यह है कि जो पदार्थ मुक्तजीव के सन्मुख होते हैं उनहींको देख सकता है। परन्तु ऐसा कहना भी बिना बिचारे है क्योंकि शरीर धारी जीवों में तो उनकी इन्द्री एक स्थान पर स्थित होती है जैसा कि आंख मुखके ऊपर होता है। संसारी जीव आंखके द्वारा देखता है। इस कारण आंख के सन्मुख जो पदार्थ है उसही को देख सकता है आंखके पीछे की वस्तुको नहीं देख सकता है। परन्तु मुक्त जीवके शरीर नहीं होता है उसका ज्ञान किसी इन्द्री के आश्रित नहीं होता है, वरण यह स्वयम् ही ज्ञान स्वरूप है अर्थात् सब ओरसे देखता है। उसके वास्ते सर्वही पदार्थ सन्मुख हैं। इस हेतु किसी प्रकार भी सन्निकर्ष पदार्थ के ज्ञानका नियम कायम नहीं रह सकता है।

यदि स्वामी दयानन्दजीके कथनानुसार मुक्त जीवको पदार्थोंका ज्ञानक्रम रूप होता है अर्थात् सर्व पदार्थोंका एक समयमें ज्ञान नहीं होता है वरण जिस प्रकार संसारी जीव को संसार दशा को देखने के वास्ते एक नगर से दूसरे नगरमें और एक देशसे दूसरे देश में डोलते हुये फिरना पड़ता है। इस

ही प्रकार मुक्त जीव की डोलना पड़ता है तो मुक्त जीवको परमानन्दकी प्राप्ति कदाचित् भी नहीं कही जा सकती है। क्योंकि जितने स्थान या जितनी वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना बाकी है उतनी ही मुक्तजीवके ज्ञान में कमी है। यह बात स्वामीजी कह ही चुके हैं कि पूर्ण ज्ञानका होना ही मुक्त जीव का आनन्द है। इसके अतिरिक्त जब मुक्त जीवको भी यह अभिलाषा रही कि मुक्तको अमुक २ स्थानों या अमुक २ पदार्थों को जानना है तो उसको परम आनन्द हो ही नहीं सकता है वरण दुःख है। जहां अभिलाषा है वहां दुःख अवश्य है। इस कारण यह ही मानना पड़ेगा कि मुक्तजीवमें पूर्ण ज्ञान होता है अर्थात् वह सर्वज्ञ ही होता है।

## आर्यमत लीला ।

[ कर्म फल और ईश्वर ]

( २१ )

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं कि यदि परमेश्वर मुक्ति जीवों को, जो राग द्वेष रहित इंद्रियों के विषय भोगों से बिहीन स्वच्छ निर्मल रूप अपने आत्म स्वरूप में ठहरे हुये हैं और अपने ज्ञान स्वरूप में सदा परमानन्द भोग रहे हैं, मुक्ति स्थान से ढकेलकर संसार रूपी दुःखसागरमें न गिरावें और सदा के लिये मुक्ति ही में रहने दे तो

परमेश्वर अन्यायी ठहरता है। पाठक गण आश्चर्य करेंगे और कहेंगे कि अन्यायी तो मुक्ति से हटाकर फिर संसार में फँसाने से होता है न कि इस के विपरीत। परन्तु स्वामी जी तो मुक्ति को जेलखाना और संसार को मजे उठाने का स्थान स्थापित करना चाहते हैं इस कारण वह तो ईश्वरको अन्यायी ही बतावेंगे यदि वह मुक्त जीवों को सदा के वास्ते मुक्ति में रहने दे।

स्वामी जी का कथन है कि ईश्वर ही जीवों के घुरे भले कर्मों का फल देता है और मुक्ति प्राप्त करना भी कर्मों का फल है। कर्म अनित्य हैं इस कारण उनका फल नित्य नहीं हो सकता है इस हेतु यदि ईश्वर अनित्य कर्मों का फल नित्य मुक्ति देवे तो अन्यायी हो जावेगा। परन्तु यह बात हम ने पिछले अंक में भलीभाँति सिद्ध करदी है कि मुक्ति कर्मों का फल नहीं है वरण मुक्ति नाम है कर्मों के क्षय हो जाने का-सर्वथा नाश होजाने का और जीवात्मा के स्वच्छ और निर्मल हो जाने का सर्व औपाधिक भाव दूर हो जाने का। आज इस लेख में हम यह समझाना चाहते हैं कि मुक्तजीव को सदा के वास्ते मुक्ति में रहने देने में ईश्वर अन्यायी नहीं होता है वरण बिना कारण मुक्ति से ढकेल कर संसार के पापों में फँसाने में अन्यायी होता है। और

इस से भी अधिक हम यह समझना चाहते हैं कि जीव को कर्मों का फल देने ही में ईश्वर अन्यायी होता है वरण हम से भी अधिक अर्थात् यह कि यदि ईश्वर कर्मों का फल देवे तो वह पापी हो जाता है और ईश्वर ही नहीं रहता है।

हमारे आर्य भाई जिन्होंने ने अभी तक कर्म और कर्मफलका स्वरूप नहीं समझा है, इस बात से आश्चर्य करेंगे, परन्तु उनको हम प्रेम के साथ समझाते हैं और यकीन दिलाते हैं कि वह विचार पूर्वक आद्योपान्त इस लेख को पढ़ लें तब उनका यह सब आश्चर्य दूर हो जावेगा। इस बात के आश्चर्य करने में उनका कुछ दोष नहीं है क्योंकि स्वयम् स्वामी दयानन्दजी, जिन की शिक्षा पर वह निर्भर हैं, कर्म और कर्म फल के स्वरूप को नहीं समझते थे तब विचारे आर्य भाई तो क्या समझ सकते हैं? परन्तु उन को उचित है कि वह इस प्रकार के सिद्धांतों की खोज करते रहें और सीखने का अभ्यास बनाये रखें-तब वह सब कुछ सीख सकते हैं, क्योंकि पूर्वोचार्यों और पूर्व विद्वानों की कृपा से हिन्दुस्तान में अभी तक आत्मिक तत्त्वके विषय में सर्व प्रकारके सिद्धांत हेतु और विचार सहित मिल सकते हैं।

प्यारे आर्य भाइयो! आप संसार में देखते हैं कि संसारी मनुष्य राग द्वेष में फँसे हुये अनेक पाप किया क-

रते हैं और आप यह भी जानते हैं कि रागद्वेष जीव का निज स्वभाव नहीं है बरण यह उस का औपाधिक भाव है जो पूर्व कर्मों के वश उस को प्राप्त हुआ है। देखिये स्वयम् स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ १२९-१३० पर लिखते हैं:-

“इन्द्रियाणां निरोधेन,

राग द्वेष क्षयेण च ।

अहिंसया च भूताना

ममृतत्वाय कल्पते ॥

यदा भावेन भवति,

सर्वे भावेषु निःस्पृहः ।

तदा सुखमवाप्नोति,

प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥

इन श्लोकों का अर्थ स्वामी जी ने पृष्ठ १३१ पर इस प्रकार लिखा है -

(१) “इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक, राग द्वेषको छोड़, सब प्राणियों से निर्झर बर्तकर मोक्ष के लिये सामर्थ्य बढ़ाया करे ॥

(२) जब संन्यासी सब भावों में अर्थात् पदार्थों में निःस्पृह कांक्षा रहित और सब बाहर भीतर के व्यवहारों में भाव से पवित्र होता है तभी इस देह में और मरण पाके निरंतर सुख को प्राप्त होता है”-

इस से स्पष्ट विदित हो गया कि राग द्वेष आदिक भावों को स्वामी जी भी औपाधिक भाव बताते हैं इस ही कारण तो मुक्ति के साधन के वास्ते संन्यासी को इन के छोड़ने का उ-

पदेश देते हैं ।

इस ही प्रकार स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ४८ पर लिखते हैं-

“इन्द्रियाणां विचरताम्,

विषयेष्वपहारिषु ।

संयमे यत्नमातिष्ठ-

विद्वान् यन्तेव वाजिनान् ॥”

अर्थ-जैसे विद्वान् मारुति घोड़ों को नियत में रखता है वैसे मन और आत्मा को खोट कानों में खँचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करें ।

इन्द्रियाणां प्रसंगेन,

दोषमृच्छत्यसंशयम् ।

सन्नियम्यतु तान्येव,

ततः सिद्धिं नियच्छति ॥

अर्थ-जीवात्मा इन्द्रियों के वश हो के निमित्त बड़े बड़े दोषों को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को अपने वश करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च,

नियमाश्च तपोऽसि च ।

न विप्र दुष्ट भावस्य,

सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

अर्थ-जो दुष्टाचारी अज्ञितेन्द्रिय पुरुष है उसके वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप तथा अन्य अच्छे काम कभी सिद्धि को नहीं प्राप्त होते ।

प्यारे आर्य्य भाइयो ! अब विचारणीय यह है कि राग, द्वेष और इन्द्रियों के विषय भोग की बाँछा आदिक बीसारी जिनके कारण यह जीव

सर्वे प्रकार के पाप करता है और जिन को दूर करने से हम को मुक्ति सुख मिलता है इस जीवात्मा में किस का रण लग जाती हैं ? इस का उत्तर सब भाई शीघ्रताके साथ यह ही देखेंगे कि जीव के पूर्व उपार्जित कर्म ही हमके कारण हैं परन्तु उन पूर्वोपार्जित कर्मों का फल देता कौन है ? हमका उत्तर देना जरा कठिन बात है क्योंकि यदि ईश्वर फल देता है तो ईश्वर अवश्य अन्यायी, पापी और पापकी प्रवृत्ति कराने वाला तथा पापकी सहायता करने वाला ठहरेगा ।

विचारवान् पुरुषो ! यदि किसी अपराधी को जिसने एक मनुष्य का सिर काट कर उसको प्राणान्त कर दिया है, राजा यह दंड देवे कि इसके सारे शरीरसे ऐसे इयियार बांध दो जिस से यह अपराधी मनुष्यों को मार ने के निधाय और कोई काम ही न करे, वा किसी चोर को यह दंड देवे कि कुंवल ( नकव ) लगाने के इयियार और ताला तोड़नेके औजार इसके हाथोंसे बांध दिये जावें जिससे यह चोरी ही का काम किया करे, वा किसी अपराधी को जिसने परस्त्री सेवन किया हो यह दंड देवे कि उस को ऐसी औपधी खिला दो जिस से यह सदा कामातुर रह कर और इस अपराधी को ऐसी नगर में छोड़ दो जहां दयविचारणी क्रियें बहुत मिल सकती हैं, और साथ ही इसके यह ढंडोरा भी पिटवाता है

कि जो कोई मनुष्य हिंसा वा चोरी, जारी करेगा उसको बहुत बहुत दंड दिया जावेगा-तो क्या वह राजा स्वयम् अपराधी नहीं है ? क्या वह स्वयम् अपराध की प्रेरणा और सहायता नहीं करता है ? राजा और न्याय कर्ता वा दंड दाता का तो यह काम है और दंड इस ही हेतु दिया जाता है कि ऐसा दंड दिया जावे जिस से अपराधी फिर वह अपराध न करे । यह कदाचित् भी दंड नहीं हो सका है कि अपराधी को ऐसा खना दिया जावे कि वह पहले से भी अधिक अपराध करने लगे ।

प्यारे भाइयो ! ईश्वर जीवों के वास्ते क्या कर्तव्य चाहता है ? क्या वह यह चाहता है कि जीव सदैव राग द्वेष और इन्द्रियों के विषय में फंसे रहें ? वा यह चाहता है कि इनसे विरक्त होकर परमानंद रूप मुक्तिको प्राप्त हों ? यदि वह राग, द्वेष और इन्द्रियों के विषय में फंसने को पाप समझता है तो राग, द्वेष करने वालों और इन्द्रियों के विषयमें फंसने वाले जीवों को उनके इन पाप का यह दंड क्यों देता है कि वह आगामी को भी राग द्वेष के वश में रहें और इन्द्रियों के विषय में फंसे । जिसने हिंसा का पाप किया उस को तो यह दंड दिया कि भील, डाकू आदिक म्लेच्छोंमें उस का जन्म हो जिससे वह सदा ही मनुष्यों को मार कर उनका धन हरण

किया करे, वा सिंह आदिक क्रूर जीव बना दिया जिससे उस का उदर पोषण भी जीव हिंसासे ही हुआ करे और हिंसा के सिवाय और कुछ काम ही न हो। जो कोई स्त्री व्यभिचारिणी हो उस को यह दंड दिया कि वह रंडी के घर पैदा की जावे जहां सदा व्यभिचार ही होता रहे। इस ही प्रकार अन्य अपराधों के भी दंड दिये। अथवा यदि हिंसा के अपराध का दंड हिंसक बनाना और व्यभिचार के अपराध का दंड व्यभिचारी बनाना न भी हो तो भी हिंसक, व्यभिचारी डाकू आदिक जितने पापी जीव दृष्ट पड़ते हैं वह सब किसी न किसी अपराध के ही दंड में ऐसे बनाये गये हैं जो आत्मा की अधिक पाप करें। देखिये स्वामी दयानन्द जी भी सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ २५२-पर लिखते हैं:-

“जन से किये दुष्ट कर्मों से चांडाल आदि का शरीर मिलता है-”

“जब रजो गुणका उदय सत्त्व और तमो गुण का अन्तर्भाव होता है तब आरंभ में रुचिता धैर्य त्याग असत् कर्मों का ग्रहण निरन्तर विषयों की सेवा में प्रीति होती है तभी समझना कि रजो गुण प्रधानता से मुक्त में वर्त रहा है”

“जब तमो गुणका उदय और दोनों का अन्तर्भाव होता है तब अत्यंत लोभ अर्थात् सब पापों का मूल बढ़ता, अत्यन्त आलस्य और निद्रा, धैर्य का

नाश, क्रूरता का होना, नास्तिक्य अर्थात् वेद और ईश्वरमें अज्ञाना न रहना, भिक्षु अन्तःकरण की वृत्ति और एकाग्रता का अभाव और किन्हीं वृत्तियों में फंभना होवे तब तमो गुणका लक्षण विद्वान् को जानने योग्य है-

इस ही प्रकार सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ २५४ पर स्वामी जी लिखते हैं-

जो मध्यम तमोगुणी हैं वे हाथी घोड़ा, शुद्ध, स्लेच्छ, निन्दित कर्म करने हारे सिंह, व्याघ्र, बराह अर्थात् सूकर के जन्म की प्राप्ति होते हैं। जो उत्तम तमो गुणी हैं वे चारण, सुन्दर पक्षी, दांभिक पुरुष अर्थात् अपने सुख के लिये अपनी प्रशंसा करने हारे राक्षस जो हिंसक, पिशाच, अनाचारी अर्थात् मद्यादि के आहार कर्ता और मलिन रहते हैं वह उत्तम तमोगुण के कर्मका फल है जो मद्य पीने में आसक्त हो ऐसे जन्म नीच रजो गुण का फल है-

प्यारे भाइयो! अब आपने जान लिया कि पाप कर्म का फल यह मिलता है कि आत्मा की भी पाप में ही आसक्त रहे। परन्तु क्या ईश्वर ऐसा फल दे सकता है? कदाचित् नहीं बरख ऐसी दशा में ईश्वर को कर्मों के फलका देने वाला बताना परमेश्वर को कलंकित करना और उसको अपराधी ठहराना है क्योंकि जो कोई अपराध की सहायता वा प्रेरणा करता है वह भी अवश्य अपराधी ही होता है। क्या कोई पिता ऐसा हो सकता है जो अपने बालक की जो पाठशाला में क-

मती जाता है और पढ़ने में ध्यान कम लगाता है वरण अधिकतर खेल कूद में रहता है पाठशाला से उठा-लेख, सर्व पुस्तकें उससे छीन लेवे और नेंद बल्ला ताश, चौपड़ आदिक खेल की वस्तु उसको ले देवे ? वा किसीका बालक व्यभिचारी मालूम पड़े तो उस को ले जाकर रंड़ियों के चकले में छोड़ देवे ? वा बालक और कोई अपराध करे तो उस को उसका पिता उन ही अपराधका अधिक अभ्यास करावे और अपराध करने का अधिक सुभीता और अधिक प्रेरणा देवे ? और साथ साथ यह भी कहता रहे कि जो कोई विद्या पढ़ेगा उसको मैं सुख दूंगा और जो अपराध करेगा उसको दंड दूंगा । क्या वह पिता महामूर्ख और अपनी संतान का पूरा शत्रु नहीं है ? अवश्य है-इस कारण प्यारे भाइयो ! जीव के कर्म का फल देने वाला कदाचित् भी परमेश्वर नहीं हो सकता है-परमेश्वर क्या वरण कोई भी चेतन अर्थात् कुछ भी ज्ञान रखने वाला ऐसा उलटा कृत्य नहीं कर सकता है ।

इसके अतिरिक्त यदि कोई चेतन शक्ति जीवोंके कर्म का फल दिया करती तो अवश्य जीव को यह सुझा दिया करती-अच्छी तरह बता दिया करती कि अमुक कर्म का तुम को यह फल दिया जाता है जिससे वह सावधान हो जावे और आगामी को उस पर असर पड़े जीव को कुछ भी नहीं मालूम होता है कि सुझ को मेरे किस

किस कर्म का क्या क्या फल मिल रहा है ? इस से स्पष्ट सिद्धित होता है कि कर्मों का फल देने वाली कोई चेतन शक्ति नहीं है वरण वस्तु स्वभाव ही कर्म फल का कारण है अर्थात् प्रत्येक वस्तु अपने स्वभावानुसार काम करती है उस ही से जगत् के सब फल प्राप्त होते हैं । जो पुरुष मदिरा पीयेगा तो मदिरा और जीव के शरीर का स्वभाव मिल कर यह फल अवश्य प्राप्त होगा कि पीने वाले को नशा होगा, उसके ज्ञान गुण में फरक आवेगा और अनेक कुचेष्टा उत्पन्न होगी । मदिरा को इससे कुछ मतलब नहीं है कि किसी का भला होता है वा बुरा किसी को दंड मिलता है वा लाभ वह तो अपने स्वभाव के अनुसार अपना काम करेगी ।

बहुत से मनुष्य ऐसे मूर्ख और जिह्वा इंद्री के ऐसे बशीभूत होते हैं कि वह बीमारीमें परहेज नहीं करते और उन वस्तुओंको खा लेते हैं जिन को विद्य बतता है कि इनके खाने से बीमारी अधिक बढ़ जावेगी ऐसी वस्तुओं के खाने का फल यह होता है कि बीमारी अधिक बढ़ जाती है और रोगी बहुत तकलीफ उठाता है । बहुत से लोग यह कह दिया करते हैं कि कोई मनुष्य अपना मुकसान नहीं चाहता है और कोई अपराधी अपनी राजी से कैदखाने में जाना नहीं चाहता है परन्तु नित्य यह ही देखने में आता है कि बहुत से रोगी कुपच्य से-

घन करके अपने हाथों अपना रोग बड़ा लेते हैं और अत्यंत दुःख उठाते हैं। बहुत से बालकों को देखा है कि वह खेल कूद में रहते हैं और विद्या-अभ्यास में ध्यान नहीं देते। उनके माता पिता और मित्र बहुतेरा समझाते हैं कि इस समय का खेल कूद तुम को बहुत दुःखदाई होगा परन्तु वह खेल कूद में रह कर स्वयम् विद्या विहीन रहते हैं और मूर्ख रहकर अपनी जिन्दगी में बहुत दुःख उठाते हैं। बहुत से पिताओं को समझाया जाता है कि तुम छोटी अवस्था में अपनी संतान का विवाह मत करो परन्तु वे नहीं मानते और जब संतान उन की वीर्यहीन निर्बल नपुंसक हो जाती है तो माथा पीटते हैं और हकीमों से पुष्टी के मुखे लिखवाते फिरते हैं। यहुन से धनवानों को यह समझाया जाता है कि वह बेटा बेटा के विवाह में अधिक द्रव्य न लुटावें परन्तु वह नहीं मानते और बहुत कुछ व्यर्थ व्यय करके अपने हाथों दरिद्री हो जाते हैं। इत्यादिक संसार के सारे कामों में कोई फल देने वाला नहीं आता है वरण जैसा काम कोई करता है उसका जो फल है उसको अवश्य भोगना पड़ता है और यदि वह काम खोटा है और उसका फल दुःख है तो दुःख भी उसको अवश्य भोगना पड़ता है। वास्तव में वह दुःख उसने आप ही अपने वास्ते पैदा किया। जगत में नित्य यह ही

देखने में आता है कि अनेक प्रकार के उलटे काम करके नुकसान उठाते हैं अर्थात् अपने हाथों अपने आप को मुसीबत में डालते हैं।

संसारी जीवों पर अभ्यास और संस्कार का बहुत असर पड़ता है। यदि वह विद्यार्थी जो पढ़ने पर बहुत ध्यान रखता है, एक महीने के वास्ते भी पाठशाला से अलग कर दिया जावे और उसको एक महीने तक खेल कूद ही में लगाया जावे तो महीने के पश्चात् पाठशाला में जाकर कई दिन तक उस की रुचि पढ़ने में नहीं लगेगी वरण खेल कूद का ही ध्यान आता रहेगा। इस ही प्रकार यदि भले आदमी को भी दुष्ट मनुष्य की संगति में अधिक रहना पड़े तो कुछ कुछ दुष्टता उस भले मनुष्य में भी आ जावेगी। इन सब कामों का फल देने वाली कोई अन्य शक्ति नहीं आवेगी वरण यह उस के कर्म ही उस को बुरे फल के दायक होंगे।

कारण से कार्य की मिट्टि स्वयम् स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं। तब जीव का कर्म जो कारण है उस से कार्य अर्थात् कर्मफल अवश्य प्राप्त होगा इस में चाहे जीव को दुःख हो वा सुख। इसको आश्चर्य है कि स्वामीजी स्वयम् जीव और प्रकृति अर्थात् जड़ पदार्थों को नित्य मानते हैं और जब इनकी नित्य मानते हैं तो इनके स्वभावको भी नित्य बताते हैं। गो क्या यह सर्व

अपने अपने स्वभाव के अनुसार कार्य नहीं करती हैं और उन से फल नहीं प्राप्त होते हैं ? बहुत से मनुष्यों की वास्तव आप ने सुना होगा कि उन्होंने अपनी मूर्खता से मिट्टी के तेल का कनस्तर आग से ऐसी अनावधानी से खोला कि आग कनस्तर के अंदर पहुँच गई और आग भड़क कर मारा मकान जल भुनकर खाक हो गया । इस मदान् दुःख के कार्य में क्या उस की मूर्खता ही कारण नहीं हुई और क्या यह कहना चाहिये कि मूर्खताका काम तो मनुष्य ने किया परंतु उन का फल अर्थात् मारे मकान का जला देना यह काम ईश्वरने आफर किया ।

प्यारे भ्रातृयो ! यह जीव जब मान माया, लोभ और क्रोध आदिक कषायों के बश होकर मान, माया, लोभ और क्रोध आदिक करता है और जब यह इन्द्रियों के विषय में लगता है तो इन की इन मान माया आदिक का संस्कार होजाता है और इन कामों का इस को अभ्यास पड़ जाता है अर्थात् मान, माया, लोभ क्रोध आदिक उपाधियां इन में पैदा हो जाती हैं और उसका जीवात्मा मग्न हो जाता है । यह ही उसके कर्मों का फल है । इत्यादिक और भी जो जो कर्म यह जीव समय समय पर करता रहता है उनका प्रभु इनके वित्त पर पड़ता रहता है और जीवात्मा अशुद्ध होता रहता है । और ज्यों ज्यों यह

जीव धर्मसेवन करता है त्यों त्यों मान माया, लोभ, क्रोध आदिक की कालिमा उस से दूर होती रहती है क्योंकि धर्म उसही मार्ग का नाम है जो मान, माया, लोभ और क्रोध आदिक कषायों को दूर करने वा दवाने वा कम करने का हेतु हो । और जब इन कषायों की बिलकुल रोककर यह जीव आत्मस्थ होता है अर्थात् अपनी ही आत्मा में स्थिर हो जाता है तब आगामी कर्म पैदा होने बंद हो जाते हैं और पिछले कर्म भी आदिस्ते २ क्षय हो जाते हैं तब ही यह जीव स्वच्छ और शुद्ध होकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी इस ही प्रकार लिखा है—

सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २५५

“इम प्रकार सत्त्व, रज और तमो गुण युक्त वंग से जिन २ प्रकारका कर्म जीव करता है उस २ को उमी २ प्रकार फल प्राप्त होता है । जो मुक्त होते हैं वे गुणातीत अर्थात् सब गुणों के स्वभावों में न फँसकर महायोगी होके मुक्ति का साधन करें क्योंकि—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥१॥

तदा द्रष्टुः स्वरूपेयस्थानम् ॥२॥

ये योग शास्त्र पातंजलि के सूत्र हैं । मनुष्य रजो गुण तमो गुण युक्त कर्मों से मन को रोक शुद्ध सत्त्व गुण युक्त कर्मों से भी मनको रोक शुद्ध सत्त्व गुण युक्त हो पश्चात् उसका निरोध कर



एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्म युक्त कर्म इन के अग्र भागमें चित्तका ठहरा रखना निरुद्ध अर्थात् मग्न और से मन की वृत्ति को रोकना ॥१॥ जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सब के दृष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है—

प्यारे भाइयो ! इस सर्व लेख का अभिप्राय यह है कि स्वामी दयानन्द का यह कहना कि मुक्ति भी कर्मों का फल है बिल्कुल असत्य है, बरण मुक्ति तो सर्व कर्मों के क्षय से प्राप्त होती है अर्थात् जीव का सर्व प्रकार की उपाधी से रहित होकर स्वतत्त्व रूप निर्मल और स्वच्छ हो जाना ही मुक्ति है।

इस कारण स्वामी जी का यह कहना कि ईश्वर यदि मुक्ति जीव को मुक्ति से निकाल कर और उसका परमानन्द छुड़ाकर फिर उसको संसार में न डाले और दुःख और पापों में न फँसावे तो ईश्वर अन्यायी ठहरता है बिल्कुल ही अनाड़ी पन की बात है—

असल यह है कि स्वामीदयानन्दजी ने कर्म और कर्म फलके गूढ़ निहान्त को समझा ही नहीं। कर्म फिलोसफी Philosophy का वर्णन जितना जैन ग्रंथों में है उतना और किसी भी मत के ग्रंथों में नहीं है। स्वामी जी ने संसारी जीव के तीन गुण सत्व, रज और तम वर्णन किए हैं। परन्तु जैन शास्त्रों में इन विषय को इतना विस्तार के साथ लिखा है कि

इसके १४ गुणस्थान वर्णन किये हैं और प्रत्येक गुणस्थान के बहुत २ भेद किये हैं और कर्म प्रकृतियों के १४८ भेद किये हैं। प्रत्येक गुणस्थान में किसी ३ कर्म की सत्ता, उदय और बंध होता है इनको वर्णन किया है—और कर्मों के उत्कर्षण अपकर्षण संक्रमण आदिक का वर्णन बहुत विस्तारके साथ किया है। इस कारण सत्य की खोज करने वालों को उचित है कि वह पक्षपात छोड़कर जैन ग्रंथोंका स्वाध्याय करें जिससे उनकी अविद्या दूर होकर कल्याण का मार्ग प्राप्त होंगे।

## आर्यमतलीला ।

(ईश्वरकी भक्ति और उपासना)

( २२ )

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १९२ पर यह प्रश्न उठाते हैं कि “ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं ?” फिर आप ही इस प्रश्नका उत्तर इस प्रकार देते हैं—

“ नहीं क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट होजाय और सब मनुष्य महापापी होजायें क्योंकि क्षमा की बात सुनही कर उनको पाप करनेमें निर्भयता और उत्साह होजाय जैसे राजा अपराधको क्षमा करदे तो वे उत्साह पूर्वक अधिक अधिक गड़े २ पाप करें क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा करदेगा और उनको भी भरोसा होजाय कि राजासे हम हाथ जोड़ने

आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा-  
लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे  
भी अपराध करनेसे न डरकर पाप क-  
रनेमें प्रवृत्त होजायेंगे । इसलिये सब  
कर्मोंका फल यथावत् देना ही ईश्वरका  
काम है सना करना नहीं । ”

प्यारे आर्य भाइयो ! स्वामीजीके उ-  
पर्युक्त लेखसे स्पष्ट विदित है कि जो  
कोई ईश्वरकी भक्ति करता है वा जो  
कोई भक्ति स्तुति नहीं करता है वा  
जो कोई ईश्वरको मानता है वा नहीं  
मानता है, ईश्वर इन सब जीवोंको  
समान दृष्टिसे देखता है । भक्ति स्तुति  
करने वालेके ऊपर रिश्तायत नहीं क-  
रता अर्थात् उनके अपराधोंको छोड़  
नहीं देता और उनके पापोंको मुआफ़  
नहीं करता और उनके पुण्य कर्मोंसे  
अधिक कुछ लाभ नहीं पहुंचाता बरख  
जितने जिसके पुण्य पाप हैं उनही के  
अनुसार फल देता है और भक्ति स्तु-  
ति न करने वालों पर क्रोध नहीं क-  
रता और उनपर नाराज होकर  
ऐसा नहीं करता है कि उनके पुण्य  
फलको न देवे वा न्यून पापका अधिक  
दण्ड देदेवे बरख उनके पाप पुण्य क-  
र्मोंके अनुसार ही उनको फल देता है ।

इस ही प्रकार स्वामी दयानन्द जी  
सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८२ पर प्रश्न क-  
रते हैं “क्या स्तुति आदि करनेसे ईश्वर  
अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना क-  
रने वालेका पाप छुड़ादेगा ? ” इसके  
उत्तरमें स्वामीजी लिखते हैं । नहीं ”  
इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि

ईश्वर स्तुति और प्रार्थना आदिक क-  
रनेसे वा न करनेसे राजी वा नाराज  
नहीं होता है ॥

इस ही प्रकार स्वामी दयानन्द जी  
सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८६ पर लिखते हैं

“ ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चा-  
हिये और न परमेश्वर उनको स्वीकार  
करता है कि जैसे हे परमेश्वर ! आप  
मेरे शत्रुओंका नाश, मुझको सबसे बड़ा  
मेरीही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब  
होजायें इत्यादि क्योंकि जब दोनों शत्रु  
एक दूसरेके नाशके लिये प्रार्थना करें  
तो क्या परमेश्वर दोनोंका नाश कर  
दे ? जो कोई कहै कि जिसका प्रेम अ-  
धिक हो उसकी प्रार्थना सफल होजावे  
तब हम कह सकते हैं कि जिसका प्रेम  
न्यून हो उसके शत्रुका भी न्यून नाश  
होना चाहिये—ऐसी मूर्खता की प्रार्थ-  
ना करते २ कोई ऐसी भी प्रार्थना क-  
रेगा हे परमेश्वर ! आप इसको रोटी  
बनाकर खिलाइये, मकानमें भाड़ ल-  
गाइये बख धो दीजिये और खेती  
बाड़ी भी कीजिये—”

स्वामी दयानन्दजीके उपरोक्त लेख  
से तो खुल्लम खुल्ला यह ज्ञात होयगा  
कि धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, स्त्री, कुटु-  
म्ब, महल, मकान, जमीन, जायदाद,  
प्रतिष्ठा, और शरीर कशल आदिक  
संसारी कार्योंके वास्ते ईश्वरसे प्रार्थना  
करना और इसके अर्थ उसकी भक्ति  
स्तुति करना बिल्कुल व्यर्थ है । ईश्वर  
खुशामदी नहीं है जो किसीकी भक्ति  
स्तुति वा प्रार्थनासे खुश होकर उसका

काम करदेवे-वा खुशामदसे बहकायेमें आजावे-वा जो उनकी स्तुति आदिक न करे उससे रुष्ट होकर उसका काम खिगाड़ देवे। परन्तु ईश्वर तो बिल्कुल निष्पक्ष रहता है उस पर निन्दा वा स्तुतिका कुछ भी असर नहीं होता है बरण पूर्ण न्याय रूप होकर जीव के भले बुरे कर्मोंका बुरा भला फल बराबर देता रहता है-

इसही की पुष्टिमें स्वामीजी पृष्ठ १८६ पर इसके आगे लिखते हैं:-

“इन प्रकार जो परमेश्वरके भरोसे आलसी होकर बैठे रहते वं महामूर्ख हैं क्योंकि जो परमेश्वरकी पुरुषार्थ करने की आज्ञा है उसको जो कोई तोड़ेगा वह सुख कभी न पावेगा--”

इसहीकी पुष्टिमें स्वामीजी पृष्ठ १८७ पर लिखते हैं:-

“जो कोई गुड़ मीठा है ऐसा कहता है उसको गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यज्ञ करता है उसको श्रीगुरु वा ब्रह्मसे गुड़ मिल ही जाता है,”

अभिप्राय इस का यह है कि ईश्वर की स्तुति करने और ईश्वरके उत्तम गुणोंकी प्रशंसा करनेसे कुछ नहीं होता है बरण जीवको उचित है कि पुरुषार्थ करके ईश्वरके समान अपने गुण, कर्म और स्वभाव उत्तम बनावे और पुरुष उपाजन करे जिस से उस के समारण सिद्ध हो-

किर सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८३ पर स्वामीजी यह प्रश्न करते हैं “तो किर

स्तुति प्रार्थना क्यों करना ?” इसके उत्तरमें स्वामीजी लिखते हैं “उनके करनेका फल अन्य ही है” “स्तुतिसे ईश्वरमें प्राप्ति उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभावका सुधारना, प्रार्थनासे निरभिमानता उत्साह और सहायका मिलना उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना,”

आशय स्वामी दयानन्दजीके लेखका यह है कि ईश्वर सबसे उत्तम गुणोंका धारी है इस कारण यदि ईश्वरके गुणोंका चिन्तन और उसके उत्तम गुणोंकी स्तुति कीजावगी तो स्तुति करने वाले जीवके भी उत्तम गुण हो जावेंगे क्योंकि जीव अभी संगति करता है, जैसी धारें देखता है, जिन बातोंसे प्रेम करता है, जिन बातोंकी चर्चा वा चिन्तन करता है और जैसी शिक्षा पाता है वैसे ही उन जीवके गुण, कर्म, स्वभाव होजाते हैं। जो मनुष्य बदमाशोंके पास बैठेगा वा बदमाशोंकी बातें सुनेगा वा बदमाशोंकी धारोंमें प्रेम लगावगा वा बदमाशोंकी प्रशंसा करेगा उनके चित्तमें बदमाशोंका अंश अवश्य समाजावेगा और जो कोई धर्मात्माओंकी संगति करेगा, उनसे प्रेम रखेगा, उनकी प्रशंसा करेगा तो धर्म का अंश उसके हृदयमें अवश्य आवेगा यह ही कारण है कि जुवारीके पास बैठने वा रखियोंके मोहसे तर्कमें जाना वा अश्लील पुस्तकोंका पढ़ना और अश्लील मूर्तियों तकका देखना बुरा समझा जाता है ॥

इस ही आशयकी पुष्टीमें स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८३ पर लिखते हैं:-

“इससे अपने गुण कर्म स्वभाव भी करना जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी हों और जो केवल भांडके समान परमेश्वरके गुण कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है-”

अभिप्राय इस लेखका बहुत ही स्पष्ट है। स्वामी दयानन्द जी समझाते हैं कि जो कोई परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना इस कारण करता है कि परमेश्वर मुझ से प्रसन्न होगे तो उसका ऐसा करना बिल्कुल व्यर्थ है क्योंकि परमेश्वर अपनी स्तुति प्रार्थना करने वालेसे राजी खा न करने वालेसे नाराज नहीं होता है वरण परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना करनेका हेतु तो यह ही है कि परमेश्वरके गुणानुवादसे परमेश्वर जैसे गुण हममें होजायें इस कारण स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना करने वालेकी उचित है कि अपने गुण कर्म स्वभावोंको परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावों के अनुकूल करनेकी कोशिश करता रहे और सदा हम बात का विचार रखे कि मैं परमेश्वरके जिन गुण कर्म स्वभावोंकी स्तुति करता हूँ वेमे ही गुण कर्म स्वभाव मेरे भी होजायें-तबही उसकी स्तुति प्रार्थना फलदायक होगी और यही ईश्वरकी स्तुति प्रार्थनाका अभिप्राय है ॥

इसही की पुष्टीमें स्वामी दयानन्द जी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८४ १-८५ पर प्रार्थना और स्तुतिका कुछ नमूना लिखते हैं कि किस प्रकार प्रार्थना और स्तुति करनी चाहिये? जो प्रार्थना करने वालेमें उत्तम गुणोंके देने वाली है उसका कुछ सारांश हम नीचे लिखते हैं

“आप प्रकाश स्वरूप हैं कृपाकर मुझमें भी प्रकाश स्थापन कीजिये।”  
“आप निन्दा स्तुति और स्वअपराधियोंका सहन करने वाले हैं कृपासे मुझको वैसा ही कीजिये।”  
“मेरा मन शुद्धगुणोंकी इच्छा करके दुष्ट गुणों से पृथक् रहे। हे जगदीश्वर! जिससे सब योगी लोग इन सब भूत, भविष्य वर्तमान, व्यवहारोंको जानते जो नाश रहित जीवात्माको परमात्माके साथ मिलके सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है जिसमें ज्ञान क्रिया है, पांच ज्ञानेन्द्रिय बुद्धि और आत्मायुक्त रहता है उस योगरूप यज्ञको जिससे बढ़ाते हैं वह मेरा मनयोग विज्ञान युक्त होकर विद्यादि क्लेशोंसे पृथक् रहे।”  
“हे सर्व नियन्ता ईश्वर! जो मेरा मन रस्सीसे घोड़ोंके समान अथवा घोड़ोंके नियन्ता सारथीके तुल्य मनुष्योंकी अत्यन्त इधर उधर डुलाता है जो हृदयमें प्रतिष्ठित गतिमान् और अत्यन्त वेगवाला है वह सब इन्द्रियोंकी अधमोचरसे रीकके धर्मपथमें सदा चलाया करे ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये।”  
हे सुखसे दाता! स्वप्रकाशरूप सबको

जानने द्वारे परमात्मन्! आप हमको अष्टमार्गसे संपूर्ण प्रज्ञानोंको प्राप्त कराइये और जो हममें कुटिलपापाचरणरूपमार्ग है उससे पृथक् कीजिये। इसीलिये हमलोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुतसी स्तुति करते हैं कि आप हमको पवित्र करें।”

स्वामी दयानन्दजी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८७ पर उपासनाका अर्थ इस प्रकार लिखते हैं—

“उपासना शब्दका अर्थ समीपस्थ होना है अष्टांगयोगसे परमात्माके समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी रूपसे प्रत्यक्ष करनेके लिये जो २ काम करना होता है वह २ सब करना चाहिये—”

स्वामीजी सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १८८ पर इस प्रकार लिखते हैं—

“परमेश्वरके समीप प्राप्त होनेसे सब दोष दुःख छूटकर परमेश्वरके गुण कर्म स्वभावके सदृश जीवात्माके गुण कर्म स्वभाव पवित्र होजाते हैं। इसलिये परमेश्वरकी स्तुति प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये।”

प्यारे पाठकी! स्वामी दयानन्दजी के कथनानुसार ईश्वर सर्वव्यापक है अर्थात् सब जगह मौजूद है यहां तक कि सब जीवोंके अन्दर व्याप्त है चाहे वह पापी है वा धर्मात्मा। इस कारण उपासना करनेमें ईश्वरके समीपस्थ होनेके यह अर्थ तो होही नहीं सकते हैं कि ईश्वरके पास जाबैठना क्योंकि समीप तो वह सदाही रहता है वरण

समीपस्थ होनेके यहही अर्थ हो सकते हैं कि ईश्वरके गुणोंके ध्यासमें इतना मग्न होजाना कि मानो अपने महगुणों सहित ईश्वर समीप ही विराजमान है।

प्यारे आर्य भाइयो! वह अति उत्तम गुण क्या हैं जिनकी प्राप्तिके वास्ते और वह निकट अवगुण क्या हैं जिनके दूर करनेके वास्ते ईश्वरकी स्तुति प्रार्थना और उपासनाकी आवश्यकता है? इनके उत्तरमें आपकी विचारना चाहिये कि जीव स्वभावसे तो रागद्वेष रहित स्वच्छ और निर्मल है इस ही कारण स्वामीजीने कहा है कि उपासनासे जीव के गुण कर्म स्वभाव ईश्वरके सदृश पवित्र हो जाते हैं परन्तु कर्मों के वश होकर राग द्वेष आदिक उपाधियां इस जीवके साथ लगी हुई हैं इस ही कारण संसारी जीव मोहान्धकारमें फँसकर मान माया लोभ क्रोध आदिक कषायोंके बशीभूत हुआ पांच इन्द्रियोंके विषय भोगोंका गुलाम बना हुआ अनेक दुःख उठाता और भटकता फिरता रहता है और संसार में कभी इसकी चैन नहीं मिलती है जब यह सब उपाधियां इसकी दूर होजाती हैं तब मुक्ति पाकर परमानन्द भोगता है और शान्तिके साथ सच्चा सुख उठाता है इस हेतु इन उपाधियोंका दूर करना और स्वच्छ और निर्मल होजाना ही इसका परम कर्त-

व्य है और रागद्वेष रहित होकर नि-  
र्मल होजाना ही इसका उत्तम गुण है  
जिसके वास्ते जीवकी सब प्रकार के  
साधन करना चाहिये और वही मार्ग  
धर्म कहलाता है जो जीवको इन उ-  
पाधियों और दुःखसे रहित कर देवे  
परन्तु चिरकालका जन्म हुआ मेल व-  
हुत मुश्किल से दूर हुआ करता है ।  
जन्म जन्मान्तर में बराबर रागद्वेष में  
फंसे रहनेके कारण यह सब उपाधि एक  
प्रकार का संसारी जीव का स्वभावसा  
होगया है और इनसे विरक्त होना इ-  
सको बुरा लगता है । संसारी जीवकी  
दशा बिल्कुल ऐसी ही है जैसे अफीमी  
की होजाती है जिसको चिरकाल तक  
अफीम खाते २ अफीम खानेका अभ्यास  
होगया हो यद्यपि यह जानता हो कि  
अफीम खानेसे भुक्त हो बहुत नुकसान  
होता है शरीर कृश होगया है, इन्द्रि-  
यां शिथिल होगई हैं, पुरुषार्थ जाता  
रहा है और अनेक रोग व्याप गये हैं  
परन्तु तो भी अफीम का छोड़ना उस  
के वास्ते कष्टमाध्य ही होता है वह  
प्रथम कुछ कम खानी शुरू करता है  
और अफीम खाना छोड़ने का साहस  
और उत्साह अपने में पैदा हो-  
नेके वास्ते ऐसे पुत्थोंसे मिलता है जि-  
न्होंने अफीम खानी छोड़ दी हो उन  
से पूछता है कि उन्होंने किस २ प्रकार  
अफीम छोड़नेका अभ्यास किया, मनमें  
उनकी प्रशंसा करता है जिन्होंने अ-  
फीम छोड़ी और अपनी निन्दा करता  
है कि तू इस अफीमकी ही बशमें हो

रहा है और यह जरासा साहस भी तुम्ह  
से नहीं होसका कि अफीम खाना छोड़  
देव, इस प्रकार बहुत कुछ श्रम करके  
अफीम खाने का अभ्यास छोड़ता है ।

प्यारे भाइयो ! बिल्कुल ऐसी ही द-  
शा संसारी जीव की है—एक दम राग-  
द्वेषकी छोड़ अपनी आत्मा में आत्मस्थ  
होजाना और स्वच्छ निर्मल होकर  
ज्ञान स्वरूप परमानन्द भोगना जीवके  
वास्ते दुःसाध्य है इस कारण वह प-  
हले राग, द्वेष रूप को कम करता है  
अर्थात् यद्यपि रागद्वेष कार्य करता है  
परन्तु अन्याय और अपर्णके कामोंको  
त्यागता है ।

इस विषय में स्वामी दयानन्द जीने  
सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८७ पर इस प्र-  
कार लिखा है:—

जो उपासनाका आरम्भ करना चा-  
हे उसके लिये यह ही आरम्भ है कि  
वह किसीसे बैर न रखे, सबदा सब  
से प्रीति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी  
न बोले चोरी न करे सत्य व्यवहार  
करे, जितेन्द्रिय हो, लंपट न हो, नि-  
रभिमानी हो अभिमान कभी न करे  
यह पाँच प्रकार के यम मिलके उपा-  
सना योग का प्रथम अंग है=,

इनके आगे स्वामी दयानन्दजी दू-  
सरा अंग इस प्रकार लिखते हैं अर्थात्  
जब सब यमोंके साधनका अभ्यास हो  
जावे तब इस प्रकार अगाही बढ़े ।

“राग द्वेष छोड़ भीतर और जलादि  
से बाहर पवित्र रहै धर्मसे पुरुषार्थ क-  
रनेसे लाभमें न प्रसक्तता और हानिमें

न अप्रसन्नता करे प्रसन्न होकर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे, सदा दुःख सुखोंका सहन और धर्म ही का अनुष्ठान करे अधर्मका नहीं सर्वदा सत्य शास्त्रोंकी पढ़े पढ़ावे सत्पुरुषोंका संग करे,

सात्पर्य्य इस सब लेखका यह है कि रागद्वेषको त्यागकर नीचके शुद्ध निर्मल होने के जो जो उपाय हैं वह ही धर्म कहलाते हैं और संसारके सर्व प्रकारके मोहको परित्याग कर अपनी आत्मामें स्थित होनाही परम साधन है—यह संसारी जीव धर्म मार्गमें लग कर जितना २ इससे होसका है राग द्वेषको कम करता जाता है अर्थात् धर्म सेवन करता है और अपनेमें रागद्वेष के अधिक छोड़ने और संसारके मोहजालसे निकलने की अधिक उत्तेजना और अधिक साहस होनेके वास्ते धर्म शास्त्रोंकी पढ़ता है, धर्मात्माओं की शिक्षा और उपदेश सुनता है धर्मात्माओंकी संगति करता है उन जीवों के जीवन चरित्रोंको पढ़ता और सुनता है जिन्होंने रागद्वेषको त्यागकर मुक्ति प्राप्त करली है—मुक्ति जीवोंसे प्रेम रखता है और उन का ध्यान करता है ।

संसारके मोह जालसे छूटनेकी इस ही प्रकारकी उत्तेजना और साहस पैदा करने हीके वास्ते स्वामी दयानन्दजी ने परमेश्वरके उत्पन्न गुणोंकी भक्ति अर्थात् प्रार्थना स्तुति और उपासनाको कार्य कारी और आवश्यक बताया है

परन्तु प्यारे भाइयो ! यदि आप विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि जिस प्रकार स्वामीजी परमेश्वरका स्वरूप वर्णन करते हैं उस प्रकारके परमेश्वरकी प्रार्थना, स्तुति और उपासनासे वह कार्य सिद्ध नहीं होसका है जो आप सिद्ध करना चाहते हैं क्योंकि जीवको साध्य है रागद्वेषका छूटना संसारका भ्रमत्व दूर होना संसारके बखेड़ेमें से अलग निकल कर एक चित्त शान्तिस्वरूप होना और परमेश्वरके गुण स्वामी दयानन्दजी बताते हैं इसके विपरीति वह कहते हैं कि ईश्वर जगत् का कर्त्ता है—कभी सृष्टि बनाता है कभी प्रलय करता है, संसारमें जो कुछ होरहा है वह उस ही का किया हो रहा है—समय समय पर संसारमें जो कुछ अलटन पलटन होती है वह सब वह कर रहा है—सर्व संसारी जीवोंकी जो कुछ सुख दुःख पहुंच रहा है, जो मरना जीना रोग नीरोग, धन, निर्धन आदिक व्यवस्था समय समय पर जीवोंकी पलट रही है वह ईश्वर ही उनके कर्मानुसार पलटा रहा है—तब प्यारे भाइयो ! विचार कीजिये कि यदि ईश्वर अर्थात् उसके गुणों का विचार किया जावेगा उस के गुणों की स्तुति की जावेगी या उस के गुणों से ध्यान बांधा जावेगा तो राग पैदा होगा या वैराग्य, संसार के बखेड़ों से प्रीति होगी या अप्रीति प्यारे आर्य भाइयो ! ऐसे ईश्वर की भक्ति से तो संसार ही

सूक्तों का और कायदा कुछ भी न होगा। देखिये स्वामी दयानन्द जी ने जो नमूना प्रार्थना का सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८४ पर दिया है और जिस का कुछ सारांश हम ने पूर्व इस लेख में दिया है और जिस से स्वामी जी ने इस बात के सिद्ध करने की कोशिश की है कि इस प्रकार प्रार्थना से ईश्वर के उत्तम गुण प्रार्थना करने वाले में पैदा होते हैं उसी नमूने में स्वामी जी को इस प्रकार लिखना पड़ा है—

“आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं मुझको भी वैसा ही कीजिये।

हे रुद्र ! ( दुष्टों को पापके दुःख स्वरूप फल को देखे चलाने वाले परमेश्वर) आप हमारे छोटे बड़े जिन, गर्भ, पिता, और प्रिय, बंधुधन तथा शरीरों का ध्वनन करने के लिये प्रेरित मत कीजिये ऐसे मार्ग से हम को चलाइये जिस से हम आप के दंडनीय न हों।

देखिये प्यारे अर्य भाइयो ! आग-ई राग, द्वेष की भक्तकया नहीं ? साधन तो है राग, द्वेष छोड़ने का और उल्टा राग, द्वेष पिचलने लगा-प्यारे भुइयो ! कर्ता ईश्वर की भक्ति करनेसे कदाचित् भी संसार से विरक्तता नहीं हो सकती है बरण संसार के ही बखेड़ों का ध्यान आवेगा और संसारके बखेड़े ही ईश्वर के गुण होंगे जिनका ध्यान किया जावे-देखिये हमारे इस ऐतराज का भय स्वयम् स्वामी दया-

नन्द जी के हृदयमें व्याप चुका है इस ही कारण उन को ईश्वर में सगुण और निर्गुण दो प्रकार के भाव स्थापित करने पड़े हैं-और वह सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १८३ पर लिखते हैं—

जिस २ राग द्वेषादि गुण से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है।

स्वामी दयानन्द जी फिर इस ही बात को पृष्ठ १८६ पर लिखते हैं—

अर्थात् जिस २ दोष वा दुर्गुण से परमेश्वर और अपने को भी पृथक् मान के परमेश्वर की प्रार्थना की जाती है वह विधि निषेध मुख होने से सगुण निर्गुण प्रार्थना।

फिर निर्गुण प्रार्थनाको मुख्य बताने के वास्ते स्वामी जी पृष्ठ १८८ पर लिखते हैं—

वहां सर्वज्ञादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण और द्वेष, रूप, रस, गंध, स्पर्शादि गुणों से पृथक् मान अति सूक्ष्म आत्मा के भीतर बाहर व्यापक परमेश्वर में दृढ़ स्थिति हो जाना निर्गुणोपासना कहाती है।

प्यारे आर्य भाइयो ! जरा विचार कीजिये कि यह कैसा भ्रम जाल है ? ईश्वर को कर्ता मानकर उस को संसार के अनेक बखेड़ों में फंसाना और जब जीव को अपने कल्याण के अर्थ राग द्वेष छोड़ने की आवश्यकता हो और इस कार्य में अपना उत्साह और अ-



भ्यास बढ़ाने के लिये राम, द्वेष रहित के ध्यान और मनन की आवश्यकता जीव को हो तो उसही कर्ता ईश्वरको निर्गुण बताकर उसकी उपासना का उपदेश देना-जो ईश्वर सदा संसार के धंधों में लगा रहता है क्या उस का निर्गुण रूप ध्यान जीव को हो सक्ता है ? और यदि अधिक आत्मीय शक्ति रखने वाले तपस्वी पुरुष ऐसा ध्यान बांध भी सकते हैं तो उन को ईश्वर का सहारा लेने की क्या आवश्यकता है वह अपनी आत्मा में ही एकान्त ध्यान क्यों न करेंगे ?

प्यारे आर्य भाइयो ! संसारी जीवों को तो यह ही उचित है कि वह अपनी आत्मीय शक्ति बढ़ाने, संसार के मोह जाल से घृणा पैदा करने और रागद्वेष को त्यागने का उत्साह और साहम अपने में उत्पन्न करने और इन्द्रियों और क्रोध मान माया लोभादिक क्रषाओं को ब्रह्म में करने के वास्ते उन शुद्ध जीवों की भक्ति, स्तुति और उपासना करें उन के गुणों का चिन्तन करें, उनकी जीवनी को विचारें जिन्होंने सर्वथा रागद्वेष को त्याग कर और संसार के मोह जालको बिल्कुल छोड़कर और सर्व प्रकार की उपाधियों और मैल को दूर करके स्वच्छ और निर्मल होकर मुक्ति प्राप्त करली है वा उन सच्चे संन्यासियोंकी जो बिल्कुल इस ही साधन में लगे हुए हैं ।

प्यारे भाइयो ! यह जैन धर्म का सिद्धान्त है जो मुक्त जीवों और साधुओं की ही भक्ति, स्तुति और उपासना का उपदेश देता है परन्तु ऐसा मालूम होता है कि स्वामी दयानन्द जी ने इस ही भय से कि यह सत्य सिद्धान्त ग्रहण करके संसार के जीव कल्याण के मार्ग में न लग जावें मुक्ति दशा की निन्दा की है और मुक्ति जीवों को यह कलंक लगाया है कि यह इच्छानुसार कल्पित शरीर बनाकर आनन्द भोगते हुवे फिरते रहते हैं और उनको फिर संसार में आने की आवश्यकता बताकर मुक्ति को जेलखाना बताया है ।

## आर्यमत लीला ।

( सांख्यदर्शन और मुक्ति )

( २३ )

स्वामी दयानन्द सत्यजीने अपने षट्दर्शनका मानने वाला बताया है और उनही के कथनानुसार हमारे आर्य भाई भी अपनेको षट्दर्शनोंका मानने वाला बताते हैं परन्तु स्वामी दयानन्दजीने सत्यार्थप्रकाशमें जो सिद्धान्त स्थापित किया है वह दर्शन सिद्धान्तोंके बिल्कुल विरुद्ध स्वामी जी का मन घड़न्त है। सिद्धान्त है-शोक है कि हमारे आर्य भाई केवल सत्यार्थप्रकाशको पढ़कर यह समझने लगते हैं कि सत्यार्थप्रकाशमें जो लिखा है वह

मत्स्य ही है और श्रुति, स्मृति और दर्शन शास्त्रोंके अनुकूल ही है परन्तु यदि वह कुछ भी परीक्षा करें तो उनको महजही में सत्यार्थप्रकाशका मायाजाल मालूम हो सकता है और उनका भ्रमजाल दूर होकर सच्चाईका मार्ग मिल सकता है--

यद्यपि जैनशास्त्र धर्मरत्नोंका भण्डार है और उनके द्वारा सहजही में सत्यमार्ग दिखाया जा सकता है और युक्तिप्रमाण द्वारा अज्ञान अन्धकार दूर किया जा सकता है परन्तु संसारके जीवोंको पक्ष और द्वेषने ऐसा घेरा है कि वह दूसरेकी बातका सुनना भी पसन्द नहीं करते हैं इस कारण अपने आर्य भाइयोंके उपकारार्थ हम उनहीके मान्य ग्रन्थोंसे ही उनका मिथ्यात्व दूर करनेकी कोशिश कर रहे हैं जिससे उनको सत्यार्थप्रकाशका वागजाल मालूम होकर पक्षपात और द्वेषका आवरण दूर हो और सत्य और कल्याण मार्गके खोजकी चाह उत्पन्न हो--

प्यारे आर्य भाइयो! आप षट्दर्शनोंकी बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते हैं और उनको आर्य्यावर्तके अमूल्य रत्न समझते हैं परन्तु शोक है कि आप उनको पढ़ते नहीं हो, उन रत्नोंके प्रकाशसे अपने हृदयको प्रकाशित नहीं करते हो। देखिये षट् दर्शनोंमें सांख्यदर्शनके कुछ विषय हम आपको दिखाते हैं जिससे आपको मालूम होजावेगा कि सत्यार्थप्रकाशमें श्री सिद्धान्त स्वामीजी

ने वर्णन किये हैं यह प्राचीन शास्त्रोंके विरुद्ध और धर्म अद्भुतसे भ्रष्ट करके जीवको संसारमें रुलाने वाले हैं--

मुक्तिसे लौटकर फिर संसारमें आने के ही उल्टे सिद्धान्तकी बाबत खोज लगाइये कि प्राचीन आचार्य इस विषयमें क्या कहते हैं--

सांख्यदर्शनमें महर्षि कपिलाचार्यने मुक्तिसे लौटने के विषयमें इस प्रकार लिखा है--

“तत्र प्राप्त विवेकस्यानावृत्तिश्रुतिः”-  
सांख्य । अ० १ ॥ सू० ८३ ॥

सांख्यमें अविवेकसे बन्धन और विवेक प्राप्त होनेकी मुक्ति वर्णन किया है--हम सूत्रमें कपिलाचार्यजी लिखते हैं कि, श्रुति अर्थात् वेदोंमें विवेक प्राप्त अर्थात् मुक्त जीवको फिर लौटना नहीं लिखा है--

प्यारे आर्य भाइयो! सांख्यशास्त्रके बनाने वाले प्राचीन कपिलाचार्य यह बताते हैं कि वेदोंमें मुक्तिसे लौटना नहीं लिखा परन्तु स्वामी दयानन्दजी वेदों और दर्शन शास्त्रोंको भी उल्लंघन कर यह स्थापित करते हैं कि मुक्ति दशासे उकताकर संसारके अनेक विषयभोग भोगनेके वास्ते जीवका मुक्तिसे लौटना आवश्यक है और इस ही कारण मुक्तिको कारागारकी उपमा देते हैं--क्या ऐसी दशमें स्वामीजीका बचन माननीय हो सकता है ? ॥

प्यारे आर्य भाइयो! यदि स्वामीजी के वचनों पर आपको इतनी अट्टा है

कि उसके मुकाबलेमें वेद बचन भी प्र-  
माण नहीं तो साफ़ माफ़ तौर पर वेदों  
और दर्शन शास्त्रोंसे इनकार करके के-  
वल सत्यार्थप्रकाश पर ही भरोसा क-  
र लो--परन्तु सत्यार्थप्रकाशमें तो स्वामी  
जीने अपने कपोल कसिपत मिदुान्त  
लिखकर यह भी लिख दिया है कि वेद  
और षट्दर्शनोंको ही मानना चाहि-  
ये और यह भी बहका दिया है कि  
स्वामीजीके कथित मिदुान्त वेद और  
दर्शनोंके अनुकूल ही हैं--इस कारण  
हमारे भोले आर्ये साईं भूमजालमें फंस  
गये हैं--

देखिये सांख्यदर्शनमें मुक्तिसे फिर  
लौटनेके विषयमें कैसी स्पष्टताके साथ  
विरोध किया है--

“ न मुक्तस्य पुनर्बन्ध योगोऽप्यना-  
वृत्ति श्रुतेः ” ॥ सां० अ० ६ सू० १७

अर्थ--मुक्त पुरुषका फिर दोबारा बंध  
नहीं हो सकता है क्योंकि श्रुतिमें क-  
हा है कि मुक्तिसे जीव फिर नहीं लौ-  
टता है--

“ अपुरुषार्थत्व सन्यथा ” ॥ सां० ॥  
अ० ६ ॥ सू० १८

अर्थ--यदि जीव मुक्तिसे फिर बंधन  
में आ सकता हो तो पुरुषार्थ अर्थात्  
मुक्तिका माधन ही व्यर्थ होजावे--

“ अविशेषापत्तिरुभयोः ” ॥ सां० अ०  
६ सू० १९

अर्थ--यदि जीव मुक्तिसे भी लौटकर  
फिर बंधनमें फंसता है तो मुक्ति और  
बन्धनमें फरक ही क्या रहा ?

“ मुक्तिरन्तराय ध्वस्तेर्न परः ॥ ”

सां० अ० ६ सू० २०

अर्थ--मुक्ति कोई पर पदार्थ नहीं है  
जिसकी प्राप्तिसे मुक्ति होती हो और  
प्राप्त होनेके पश्चात् किसी समय किसी  
कारणसे उस पदार्थके खिनजानेसे मुक्ति  
न रहती हो वरण मुक्ति तो अन्तराय  
के नाश होनेका नाम है अर्थात् जीव  
की निज शक्ति अर्थात् केवल ज्ञान पर  
जो अनादि कालसे अविवेकका पटल  
पड़ाहुआ था उस पटल के दूर होने  
और निज शक्तिके प्रकट होनेका नाम  
मुक्ति है इस हेतु जब जीव को निज  
शक्ति प्राप्त होगई और उसका ज्ञान  
प्रकाश होगया तब कौन उसको ब-  
न्धनमें फंसा सकता है ? भावार्थ फिर  
बन्ध नहीं हो सकता है--

प्यारे आर्ये भाइयो ! सांख्यदर्शन में  
इस प्रकार स्पष्ट सिद्ध करने पर भी कि,  
मुक्तिसे फिर जीव लौट नहीं सकता  
है, स्वामीजीने मुक्तिसे जीवके लौटने  
का मिदुान्त सत्यार्थप्रकाशमें स्थापित  
किया है और साथ ही इसके यह भी  
लिख दिया है कि दर्शनशास्त्र सच्चे और  
मानने योग्य हैं--ऐसी पूर्वापर विरोध  
से भरीहुई सत्यार्थप्रकाश नामकी पु-  
स्तक क्या भोले मनुष्योंको भूमजालमें  
फंसाने वाली नहीं है ? और क्या वह  
विद्वान् पुरुषोंके मानने योग्य हो स-  
कती है ? कदाचित् नहीं--

सत्यार्थप्रकाश में तो स्वामी जी को  
मुक्तिसे जीवोंके लौटनेका इतना पक्का

हुआ है कि यदि किसी, वाक्य में न लौटनेका उनको गन्ध भी आया है तो वहीं अपने वाग्जालने उनको छिपाने की कोशिश की है--देखो सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ २५५ पर स्वामीजीको सांख्यदर्शनके प्रथममूत्र को लिखनेकी जरूरत पड़ी है जो इस प्रकार है--

“अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः”

अर्थात् पुरुषका अत्यन्त पुरुषार्थ यह है कि तीन प्रकारके दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति करदे परन्तु दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति तो तबही कहला सकती है जब कि फिर दुःख किसी प्रकार भी प्राप्त न हो इस कारण इस सूत्रमें स्वामीजीको दुःखोंकी निवृत्तिके साथ अत्यन्तका शब्द खटका और इसको अपने मिदुान्तके विरुद्ध समझा, स्वामी जीने तो अन्यथा अर्थ करनेका सहज मार्ग पकड़ ही रक्खा था--इस कारण यहां भी इस सूत्रका अर्थ करते हुए अत्यन्त का अर्थ न किया और केवल यह ही लिखदिया है कि त्रिविध दुःखको छुड़ाकर मुक्ति पाना अत्यन्त पुरुषार्थ है-

प्यारे भाइयो ! क्या स्वामी जी की ऐसी चालाकी इसही कारण नहीं है कि वह जानते थे कि संस्कृतका प्रचार न रहनेके कारण संस्कृत पढ़ने वाले नहीं रहे हैं इस हेतु हिन्दी भाषामें हम जिस प्रकार लिख देंगे उसही प्रकार भोले मनुष्य वहकायेमें आजावेंगे--यह आकस्मिक--इत्फाककी बात नहीं है

कि स्वामीजीसे अत्यन्त शब्दका अर्थ लिखना रह गया वरण स्वामीजीने जानबूझकर इस प्रकारकी सावधानी रक्खी है--देखो सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २४८ पर स्वामीजीने मुण्डकउपनिषद्का एक श्लोक इस प्रकार दिया है:-

“भिद्यते हृदयग्रंथि-

प्रिच्छद्यन्ते सर्वे संशयाः ।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि,

तस्मिन्दृष्टे पराऽवरे=”

इस श्लोकमें कर्मोंके क्षय होनेका वर्णन है परन्तु स्वामी दयानन्दजी को कर्मके क्षय होनेका कथन कब सुझाता था क्योंकि वह तो कर्मोंके क्षयसे मुक्ति नहीं मानते वरण मुक्तिको भी कर्मोंका फल स्थापित करते हैं और मुक्ति अवस्थामेंभी कर्म कायम करना चाहते हैं इस कारण उन्होंने इस श्लोकके अर्थ में दुष्ट कर्मोंका ही क्षय होना लिखा जिसका भावार्थ यह हो कि श्रेष्ठ अर्थात् पुण्य कर्म क्षय नहीं होते हैं-

प्यारे आर्य भाइयो ! यदि आप संस्कृत जानते हैं तो स्वयम् नहीं तो किसी संस्कृत जानने वाले से पूछिये कि इस श्लोकमें सर्वकर्मोंका क्षय लिखा है वा केवल दुष्ट कर्मोंका ? और क्या श्लोकमें कोई भी ऐसा शब्द है जिससे दुष्ट कर्मके अर्थ लगाये जा सकें ? और कृपा कर यह भी पूछिये कि कहीं इस श्लोकमें परमेश्वरमें वास करनेका भी कथन है कि नहीं जो स्वामीजीने अर्थों में लिखदिया है ? ।

यह बहुत खोटी बातें हैं परन्तु स्वामीजीने बड़ा बड़ा ठेठ किया है और भोले मनुष्योंकी आंखोंमें धूल डालनेकी कोशिश की है—देखिये उन्होंने सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २३९ पर उपनिषद्का एक बचन इस प्रकार लिखा है:—

नच पुनरावर्त्तते नच पुनरावर्त्ततइति” जिसका अभिप्राय यह है कि मुक्ति से जीवका फिर वापिस आना नहीं-होता है—

इसही प्रकार एक सूत्र शारीरकसूत्र का इस प्रकार दिया है:—

“अनावृत्तिः शब्दादानावृत्तिः शब्दात्”

जिसका भी यह ही अभिप्राय है कि मुक्तिसे जीव नहीं लौटता है—इस प्रकार उपनिषद् और शारीरक के बचन लिखते हुये सरस्वती दयानन्द जी प्रश्न उठाते हैं “इत्यादि बचनोंसे विदित होता है कि मुक्ति वही है कि जिन से निवृत्त होकर पुनः संसारमें कभी नहीं आता” इस प्रकार प्रश्न उठाकर स्वामीजी उत्तर देते हैं “यह बात ठीक नहीं क्योंकि वेद में इस बातका निषेध किया है—”

पाठकगण ! स्वामीजीके इस उत्तर को पढ़कर क्या संदेह उत्पन्न नहीं होता कि महाराज कपिल जीतो सांख्य शास्त्र में ऐसा लिखते हैं कि वेदोंसे यह ही सिद्ध है कि मुक्तिसे फिर लौटना नहीं होता और दयानन्द सरस्वतीजी लिखते हैं कि वेदोंमें लौटना लिखा है इन दोनोंमें से किसकी बात सत्य है?

क्या सांख्य दर्शनके कर्ता कपिलाचार्य से भी अधिक दयानन्दजीको सरस्वती का वर मिलगया कि कपिलाचार्यसे भी अधिक वेदके ज्ञाता होगये और उपनिषदोंके बनाने वालोंको भी वह बात न सूझी जो सरस्वती जीको सूझी ? यहां तक कि व्यासजी महाराज ने भी अपने शारीरक सूत्रमें गलती खाई और इन सबकी गलतियोंको दुरुस्त करनेवाले कि वेदोंमें मुक्तिसे जीवका लौटना लिखा है एक स्वामी जीही हुये ? और तिसपर भी तुरा यह कि स्वामीजी सांख्य दर्शनको प्रामाणिक मानते हैं ।

पाठकगण ! मुक्तिसे जीवका न लौटनाकेवल एकही उपनिषद् में नहीं लिखा है बरन् सब उपनिषद् आदि ग्रन्थों में ऐसा ही लिखा है यथा:—

“एतस्माज् पुनरावर्त्तन्ते” ( प्रश्नोपनिषद् )

अर्थ—उसको प्राप्त होकर फिर नहीं लौटते—

तेषु ब्रह्म लोकेषु परा परावतो ज-सन्ति तेषां न पुनरावृत्तिः

( वृहदारण्यक )

अर्थ उस ब्रह्म लोक में अनन्तकाल वास करते हैं उनके लिये पुनरावृत्ति नहीं इस ही प्रकार सर्व प्राचीन ग्रन्थों में जिन को स्वामी जीने माना है और जिनके आधार पर वेदोंका भाष्य करना सरस्वती जी ने लिखा है यहही लिखा मिलता है कि मुक्ति सदा के वास्ते है वहां से लौटकर फिर संसार

में फंसना नहीं होता। परन्तु दयानन्दजी के कथन से इस विषय में सर्व ग्रन्थ भूटे और किसी ने आज तक वेदों का नहीं समझा। सृष्टि की आदिसे आज तक सिवाय दयानन्द जी के और कोई वेदों को समझ भी नहीं सकता था क्योंकि साक्षात् सरस्वती तो दयानन्द जी ही हुये हैं इन्होंने ने ही यह बात निकाली कि मुक्ति से लौट कर जीव को फिर संसार में भ्रमण करना पड़ता है।

प्यारे पाठको ! यह तो सब कुछ सही, सब भूटे और अविद्वान् ही सही परन्तु जरा यह तो जांच करलो कि मुक्ति से लौटना वेदों में कहाँ लिखा है और किस प्रकार लिखा है ?

स्वामी जी ने वेदों में से मुक्ति से जीव के लौटने के दो मंत्र ढूँढ़कर निकाले हैं और उनको सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ २३९ पर इस प्रकार लिखा है—

कस्यनूनं कतमस्या मृतानामनामहे चारुदेवस्यनाम। कोनोमह्याअदितये पुनर्दात् पितरञ्च दृशेयं मातरञ्च ॥१॥

“अग्नेर्नूनं प्रथमस्यामृतानामनामहे चारुदेवस्यनाम। मनो मह्याअदितये पुनर्दात् पितरञ्च दृशेयं मातरञ्च ॥२॥

अ० सं० १ ॥ सू० २४ सं० १ ॥२॥

प्रिय पाठको ! इन दोनों श्रुतियों का अर्थ इस प्रकार है—

हम लोग देवतों के मध्य में किस प्रकार के देवताके शोभन नाम को उच्चारण करें-कौनसा देवता हम को

फिर भी बड़ी पृथिवी के लिये दे जिस से हम पिता और माता को देखें ॥१॥

हम लोग देवतों के मध्य में प्रथम अग्नि देवता के सुंदर नाम को उच्चारण करें वह हम को वही पृथिवी के लिये दे जिससे हम पिता और माता को देखें ॥२॥

पाठकगणो ! इन दोनों श्रुतियों में न मुक्ति का कथन है न मुक्तिसे लौट आने का परन्तु इनका अर्थ स्वामीजी ने सत्यार्थप्रकाश में इस प्रकार दिया है।

( प्रश्न ) हम लोग किस का नाम पवित्र जानें ? कौन नाश रहित पदार्थों के मध्य में वर्तमान देव सदा प्रकाश रूप है हम को मुक्ति का सुख भुगा कर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता पिता का दर्शन कराता है ॥१॥

( उत्तर ) हम इस स्वप्रकाश रूप अनादि सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हम को मुक्ति में आनंद भुगाकर पृथिवी में पुनः माता पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता पिता का दर्शन कराता है वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सब का स्वामी है ॥२॥

सरस्वती जीके इन श्रुतियों को पढ़कर बड़ा आश्चर्य होता है कि स्वामी जी ने किस प्रकार यह अर्थ लगा दिये ? हमकी खोजमें स्वामी जीके वेद भाष्य को देखने पर मालूम हुआ कि सारेही अर्थ मन घड़न्त लगाये हैं हमको ज्यादा खोज इस बात की थी कि “हम

### को मुक्तिका सुख भुगाकर”

इस प्रकार किन शब्दों का अर्थ किया गया है। स्वामी जी के वेदभाष्य से मालूम हुआ कि यह अर्थ “नः” शब्द के किये गये हैं और इस प्रकार अर्थ किए हैं—

संस्कृत पदार्थ प्रथममंत्र

( नः ) अस्मान्

भाषापदार्थ प्रथममंत्र

(नः) मोक्षको प्राप्त हुए भी हमलोगोंको।

संस्कृतपदार्थ दूसरामंत्र

( नः ) अस्मभ्यम्

भाषापदार्थ दूसरा मंत्र

( नः ) हमको-

इस को आश्चर्य है कि प्रथममंत्र के भाषार्थ में जो “नः” शब्द का अर्थ “मोक्ष को प्राप्त हुए भी हमलोगों को” किया गया है वह किस व्याकरण वा कोश के आधार पर किया गया है? शायद स्वामी जी के पास कोई गुप्त पुस्तक हो वा परमेश्वर ने स्वामी जी के कान में कह दिया हो कि यद्यपि शब्दार्थ से मालूम नहीं होता परन्तु मेरा अभिप्राय ही यह है और इस अभिप्राय को मैं ने आज तक किसी पर नहीं खोला एक तुम पर ही खोलता हूँ क्योंकि तुम साक्षात् साख्यी हो-

प्यारे भाइयो! दयानन्द जी इन एक “नः” शब्द के अपने कल्पित अर्थ के ही आधार पर यह भिदु करना चाहते हैं कि मुक्ति प्राप्त होकर भी जीव फिर जन्म लेता है परन्तु स्वामी जी से कोई पूछे कि “नः” के अर्थ हम को

वा हमारे लिये तो सब जानते हैं परन्तु आप के गुरु ने ऐसी कौनसी अद्भुत अष्टाध्यायी व्याकरण आप को दिया है जिस के आधार पर “नः” शब्द का अर्थ आप ने “मोक्षको प्राप्त हुये भी हम लोगों” ऐसा करके सारे मंत्र का ही अर्थ बदल दिया और मुक्ति से लौटना वेदों में दिखाकर सर्व पूर्वाचार्यों के वाक्य फूटे कर दिये-

इन मंत्रों (अध्याओं) का जो अर्थ स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश में किया है उस का अभिप्राय तो यह मालूम होता है कि इन मंत्रों के द्वारा ईश्वर ने जगत् के मनुष्यों को यह सिखाया है कि माता पिता के दर्शन इतने आवश्यक हैं कि उन के वास्ते मुक्ति से लौटकर फिर जन्म लेने की आवश्यकता है। इस ही वास्ते प्रथम मंत्र में उस महान् देवता की खोज की गई है जो जीव का यह भारी उपकार कर दे कि लौटकर माता पिता के दर्शन करादे और दूसरे मंत्र में उत्तर दिया गया है कि ऐसा उपकारी महान् देव परमेश्वर ही है परन्तु वेदभाष्य में स्वामी दयानन्द जी इन से भी अगाड़ी बढ़े हैं और प्रथममंत्र के अर्थ में इस प्रकार लिखा है:-

जिनसे कि हम लोग पिता और माता और स्त्री पुत्र ग्रन्थु आदि को देखने की इच्छा करें-

और दूसरे मंत्र के अर्थ में इस प्रकार लिखा है-

जिस से हम लोग फिर पिता और माता और स्त्री पुत्र बंधु आदि की देखते हैं--

अर्थात् वेदभाष्यके अर्थों के अनुसार माता पिता के दर्शनों के कारण नहीं बरण संसार के सर्व प्रकार के मोह के कारण वेद में इन मंत्रों द्वारा ऐसे न-हान् देवता के तलाश की शिक्षा दी गई है जो मोह से निकाल कर फिर जन्म देवे ।

कुछ भी हो हम तो स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के साहम की प्रशंसा करते हैं हम ने इस लेख में सांख्य दर्शन के अनेक सूत्र लिखकर दिखाया है कि सांख्य दर्शन ने मुक्ति से लौटनेका स्पष्ट खंडन किया है परन्तु स्वामी जी ने उपनिषदों और व्यास जी के शरीरक सूत्र को असत्य सिद्ध करने और मुक्ति से लौटकर संसार में पड़ने की आवश्यकता साबित करने के वास्ते सांख्य का भी एक सूत्र सत्यार्थप्रकाश में दिया है आगामी में हम उस की भी व्याख्या करेंगे और सांख्यदर्शन के शब्द शब्दसे नित्य मुक्ति दिखावेंगे ।

## आर्यमत लीला । ( सांख्यदर्शन और मुक्ति ) ( २४ )

सांख्यदर्शन को स्वामी दयानन्दजी ने इतना गौरव दिया है और ऐसा मुख्य माना है कि उपनिषद् और महात्मा व्यास जी के शरीरक सूत्र में

मुक्तिसे लौट कर फिर नहीं आने के विषय में जो लेख हैं उनको भूटा करने के सबूतमें सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ २३९ पर सांख्य का यह सूत्र दिया है:-

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ।”

और अर्थ इसका इस प्रकार किया है:-

“जैसे इस समय बंध मुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं अत्यन्त विच्छेदबंध मुक्ति का कभी नहीं होता किन्तु बंध और मुक्ति सदा नहीं रहती-”

पाठकगण ? सांख्यदर्शन में स्वयम् बहुत जोर के साथ मुक्तिसे लौटने का निषेध किया है जैसा निम्न सूत्रोंसे विदित होता है:-

“न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यना-  
वृत्ति श्रुतेः ॥ सां० अ० ६ सू० १९

अर्थ-मुक्त पुरुष का फिर दोबारा बंध नहीं हो सकता है क्योंकि श्रुतिमें कहा है कि मुक्तजीव फिर नहीं लौटता है ॥

“अपुरुषार्थत्वमन्यथा” ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० १८

अर्थ-यदि जीव मुक्तिसे फिर बन्धन में आ सकता हो तो पुरुषार्थ अर्थात् मुक्तिका साधन ही व्यर्थ हो जावे-

ऐसी दशा में यह संभव ही नहीं सकता कि सांख्यदर्शन में कोई एक सूत्र क्या वरण कोई एक शब्द भी ऐसा हो जिससे मुक्तिसे लौटना प्रकट होता हो-फिर स्वामी दयानन्दजीने उपर्युक्त सूत्र कहांसे लिख सारा ? इसकी जांच अवश्य करनी चाहिये-

प्यारे आर्य्य भाइयो ! उपर्युक्त सूत्र



सांख्य दर्शनके प्रथम अध्याय का १५९ वां सूत्र है जो अद्वैतवादके खंडनमें है—  
सूत्र १५९ से अद्वैतका खंडन प्रारम्भ किया है यथा:—

“जन्मादि व्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्  
॥ सां० अ० १ ॥ सू० १५९

अर्थ—जन्मआदि की व्यवस्थासे पुरुषोंका बहुत होना सिद्ध होता है अर्थात् पुरुष एक नहीं है वरण अनेक हैं इस प्रकार अद्वैत के विरुद्ध लिखते हुये और उस का खण्डन करते हुये सांख्य इस प्रकार लिखता है:—

“वामदेवादिमुक्तो नाद्वैतम्, ॥ सां०  
॥ अ० १ ॥ १५९

अर्थ—वामदेव आदि मुक्त हैं यह अद्वैत नहीं है क्योंकि इससे तो द्वैत सिद्ध होता है कि अमुक पुरुष तो मुक्त हो गया और अन्य नहीं हुए। अद्वैत तो तब हो जब कि सर्वजीव मुक्त होकर ब्रह्म में लय हो जावें और सिवाय ब्रह्म के और कुछ भी न रहे। परन्तु—

“अनादावद्यावदभावाद्भविष्यदप्येवम्” ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ १५८

अर्थ—अनादिकाल से अब तक सर्व जीव मुक्त होकर अद्वैत सिद्ध हुआ नहीं तो भविष्यत कालमें कैसे होसका है? क्योंकि (अब वह सूत्र लिखते हैं जिसको स्वामी जी ने लिखा है)

“इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः”  
॥ सां० ॥ अ० १ ॥ १५८

अर्थ—वर्तमान काल के समान कभी भी सर्वनाश नहीं होता है।

भावार्थ—जैसा वर्तमान कालमें संसार विद्यमान है और प्रयत्न २ जीव हैं इस ही प्रकार सर्व काल में भी समझना चाहिये—ऐसा कभी नहीं होता कि संसार का सर्वनाश हो कर सब कुछ ब्रह्ममें लय हो जावे और एक ब्रह्म ही ब्रह्म रह जावे—

आश्चर्य है कि इस सूत्र के अर्थमें सरस्वतीजी ने यह किस शब्द का अर्थ लिख दिया “किन्तु बंध और मुक्ति सदा नहीं रहती”

यदि सांख्यदर्शनको स्वामी जीने आद्योपांत पढ़ा होता और उनके हृदय में यह बात न होती कि अविद्या अंधकार फैला हुआ है, भोले मनुष्य जिस तरह चाहे बहकाये जा सकत हैं तो मुक्तिसे लौटने के सबूत में कभी भी वह सांख्यदर्शन का नाम तक न लेते क्योंकि सांख्यदर्शनके तो पद २ और शब्द २ से मुक्ति सदा हीके वास्ते सिद्ध होती है—सांख्य ने बड़ी बड़ी युक्तियोंसे मुक्ति से न लौटना सिद्ध किया है यथा:—

“प्रकारान्तरासम्भवादविवेकएवबंधः॥  
सां० अ० ६ ॥ सू० १६

अर्थ—अन्य प्रकार संभव न होनेसे अविवेकही बंध है—अर्थात् बंधका कारण अविवेकही है अन्य कोई भी कारण बंधके वास्ते सम्भव नहीं है।

“नैरपेक्षेऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम्” ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ६८॥

अर्थ—अपेक्षा न होने में भी प्रकृति

के उपकारमें अविवेक निमित्त है अर्थात् यद्यपि जीव और प्रकृति का संबंध नहीं तो भी प्रकृति से जो कार्य होते हैं अर्थात् जीव का बंधन होकर वह अनेक प्रकार के नाश नाशता है उस का निमित्त अविवेकही है—

“इतर इतरवत्तद्दोषात्” ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ६४ ॥

अर्थ—जिसको ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ वह अज्ञानीके समान अज्ञान दोष से बंधन में रहता है—

“अनादिरविवेको अन्यथा दोषद्वय प्रसक्तेः” ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० १२

अर्थ—अविवेक अनादि है अन्यथा दोष होनेका प्रसंग होने से अर्थात् अविवेक जिसके कारण जीव बंधन में पड़ा हुआ है वह जीवके साथ अनादिकाल से लगा हुआ है—यदि ऐसा न माना जावे तो दो प्रकार के दोष प्राप्त होते हैं—प्रथम यदि अविवेक अनादि नहीं है और किसी कालमें जीव उससे पहिले बंध में नहीं था अर्थात् मुक्त था ऐसा मानने से यह दोष आये कि मुक्त जीव भी बंधन में फंस जाते हैं परन्तु ऐसा होना असम्भव है। दूसरा दोष यह है कि यदि अविवेक अनादि नहीं है और किसी समय जीव में उत्पन्न हुआ तो उसके उत्पन्न होनेका कारण क्या है ?—कर्म आदिक भी जो कारण अविवेक पैदा होनेके वर्णन किये जावें यदि उनका भी कारण ढूंढा जावे तो अविवेक ही होगा इस हेतु अनव

स्था दोष हो जावेगा लाचार यह ही मानना पड़ेगा कि अविवेक जीव के साथ अनादि है—

“न नित्यः स्यादात्मवदन्यथानुच्छित्तिः” ॥ सां० अ० ६ ॥ सू० १३

अर्थ—अविवेक आत्माके समान नित्य नहीं है क्योंकि यदि नित्य हो तो उसका नाश नहीं हो सका अर्थात् अविवेक जीव के साथ अनादि है परन्तु वह नित्य नहीं है और आत्मा नित्य है इस कारण अविवेक का नाश हो जाता है—

“प्रतिनियतकारणनाशत्वमस्यध्वान्तवत्” ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० १४ ॥

अर्थ—जिस प्रकार प्रकाश से अधकार का नाश हो जाता है इसही प्रकार नियमित कारणोंसे अविवेक का भी नाश हो जाता है। अर्थात् विवेक प्रकट हो जाता है।

“विमुक्तबोधानसृष्टिः प्रधानस्य लोकवत्” ॥ सां० ॥ ६ सू० ४३ ॥

अर्थ—विमुक्त बोध होने से लोकके तुल्य प्रधान की सृष्टि नहीं होती—अर्थात् जब प्रकृतिको यह मालूम हो गया कि अमुक जीव मुक्त होगया है तो वह प्रकृति उस जीवके वास्ते सृष्टि को नहीं रखती अर्थात् फिर वह जीव बंधनमें नहीं आता।

“नान्योपसर्पणोपि मुक्तोपभोगो निमित्ताभावात्” ॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० ४४

अर्थ—यद्यपि प्रकृति अविवेकियोंको बंधनमें फंसाती रहती है परन्तु किसी

प्रकार भी मुक्त जीवको बंधनमें नहीं फंसा सकती है क्योंकि जिस निमित्तसे प्रकृति जीवोंको बन्धनमें फंसा सकती है वह निमित्त ही मुक्तजीवमें नहीं होता है। भावार्थ--जीव अविवेक से बंधनमें पड़ता है वह मुक्तजीवमें रहता ही नहीं फिर मुक्त जीव कैसे बंधनमें पड़ सकता है ?

“नर्तकीवत्प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारि-  
तादृयात्” ॥ सां० ॥ अ० ३॥ सू० ६९ ॥

अर्थ--नाचनेवालीके समान चरितार्थ होनेसे प्रवृत्ति भी निवृत्ति होती है अर्थात् जिस प्रकार नाचने वाली उसही समय तक नाचती है जब तक उसका नाच देखने वाला देखना चाहता है। इसही प्रकार प्रकृति उसही समय तक जीवके साथ काम करके प्रवृत्ति होती है जब तक जीव उसमें रत रहता है अर्थात् उसको अविवेक रहता है और जब जीवको ज्ञान प्राप्त होता है और प्रकृतिसे उदासीन होजाता है तब प्रकृति भी उसके अर्थ प्रवृत्ति करना छोड़देती है ॥

“दोषबोधेऽपिनोपसर्पणं प्रधानस्य  
कुलवधूवत्” ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ७०

अर्थ--दोषके ज्ञात होजाने हीसे कुल बंधूके समान प्रधान अर्थात् प्रकृतिका पास जाना नहीं होता--अर्थात् जिस प्रकार श्रेष्ठ घरोंकी स्त्री दोष मालूम होने पर पतिको मुंह नहीं दिखातीं इसही प्रकार जब जीवको ज्ञान होगया और यह जान गया कि प्रकृति ही

में रत होनेके कारण भूष्ट होरहा हूं और संसार भ्रमण कर रहा हूं तब फिर दोबारा वह कैसे प्रकृतिसे रत होसका है ? एक बार मुक्त हुआ जीव सदा ही के वास्ते मुक्त रहेगा प्रकृति को तो उसके पास भी फटकनेका हौसला नहीं होगा।

“बिभ्रिक्तबोधाः सृष्टि निवृत्तिः प्रधानस्य  
सूदवत्पाके” ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ६३ ॥

अर्थ--जीवमें ज्ञान प्राप्त होजाने पर प्रधान अर्थात् प्रकृतिकी सृष्टि निवृत्ति होजाती है जैसे रसोइया रसोई बन जाने पर अलग होजाता है फिर उसे कुछ करना बाकी नहीं रहता है।

सहाराज कपिलाचार्य ऐसी दशाकी मुक्ति ही नहीं मानते हैं जहांसे फिर लौटना हो वहतो मुक्त उसहीकी मानते हैं जो सदाके वास्ते ही और मुक्ति के वास्ते पुरुषार्थ करनेका हेतुही उन्होंने यह वर्णन किया है कि उसमें सदा के वास्ते दुःखोंसे निवृत्ति रहती है यथा--

“नदृष्टतत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात् ॥ सां० ॥ अ० १॥ सू० २ ॥

अर्थ--जो पदार्थ जगत्में दिखाई देते हैं उनकी प्राप्ति से दुःखोंकी अत्यन्त निवृत्ति नहीं होती क्योंकि जगत्में देखा जाता है कि दुःख दूर होकर भी कुछ समयकेपश्चात् फिर दुःख प्राप्त होजाता है--

“नानुप्रविकादपितत्सिद्धिः साध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम् ॥ सां० ॥ अ० १॥ सू० ८२ ॥

अर्थ--वेदोक्त कर्मसे भी मुक्ति नहीं होसक्ती क्योंकि यदि उनसे कार्यसिद्धि भी हो अर्थात् स्वर्गादि प्राप्ति भी हो तबभी वहांसे फिर वापिस आना होगा  
 "नकारणलयात्कृतकृत्यतामग्नवदुत्थानात्" ॥ सां० ॥ अ०३ ॥ सू० ५४

अर्थ--कारणमें लय होने से कृतार्थता नहीं है मग्नके समान फिर उठनेसे अर्थात् अर्द्धित वादियोंके अनुसार यदि एक ब्रह्म ही माना जावे और सर्व जीवोंको ब्रह्मकाही स्वरूप कहा जावे और जीवके ब्रह्ममें लय होजायेकी मुक्ति माना जावे तो कार्य सिद्ध नहीं होता है क्योंकि कृतकृत्यता तो लय हो जब कि फिर कभी बंधन न होवे परन्तु यदि एक ही ब्रह्म है और उस ही का अंश बंधन में आकर जीव रूप होजाता है जो जीव ब्रह्ममें लय होनेके पश्चात् फिर बंधनमें आसक्ता है अर्थात् डूबकर वही दशा रहेगी---

पाठक ! देखो, सांख्य दर्शनमें महर्षि कपिलाचार्यने मुक्तिसे वापिस लौटने के सिद्धान्तका कितना जोरके साथ विरोध किया है और स्वामी दयानन्दने उनके एक सूत्रका कितना दुरुपयोग करके भोले मनुष्योंको अपने माया-जालमें फंसानेकी चेष्टा की है ।

हम अपने आर्य भाइयोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे अपने मान्य ग्रन्थ सांख्य दर्शन को आद्योपान्त पढ़ें और स्वामी दयानन्दके वाक्योंकी ही ईश्वर वाक्य न समझकर कुछ उनकी परीक्षाभी

किया करें। अब हम आगामी लेखमें यह सिद्ध करेंगे कि स्वामी दयानन्दने मुक्ति के विषयमें जो २ कपोल कल्पित सिद्धान्त सत्यार्थप्रकाशमें वर्णन किये हैं वे सब उनके मान्य सांख्य दर्शन से खिड़ित होते हैं ।

## ॥ आर्यमत लीला ॥

( २५ )

पिछले अंक में हमने स्वामी दयानन्द और आर्य भाइयोंके परम मान्य सांख्य दर्शन से दिखाया है कि महर्षि कपिलाचार्य ने किस जोर के साथ मुक्ति से वापिस आनेके सिद्धान्त का विरोध किया है और पूरे तौर पर मिट्टा किया है कि मुक्ति से कदाचित् भी जीव वापिस नहीं आसकता है अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि मुक्ति के विषय में जो जो कपोल कल्पित सिद्धान्त दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में वर्णन किये हैं वह सबही उनके मान्य ग्रन्थ सांख्य दर्शन से खिड़ित होते हैं ।

स्वामी जी मुक्ति से वापिस आनेके सिद्धान्त को मिट्टा करने के वास्ते एक अद्भुत सिद्धान्त यह स्थापित करते हैं कि मुक्ति भी कर्मों का फल है और हम बात को लेकर सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि कर्म अनित्य हैं नित्य नहीं हो सकते और कर्मों का फल ईश्वर देता है इस हेतु यदि ईश्वर अनित्य कर्मों का फल नित्य मुक्ति देवे तो

वह अग्न्यायी हो आवै इस कारण ई-  
श्वर अनित्य ही मुक्ति देता है ।

यद्यपि यह बात सब जानते हैं कि  
मुक्ति कर्मों का फल नहीं हो सकती  
बल्कि कर्मोंके क्षय होनेका नाम मुक्ति  
है परन्तु अपने आर्य्य भाइयों को स-  
मझाने और सत्य मार्ग पर लाने के  
वास्ते इन उन के परममान्य ग्रन्थ  
सांख्य दर्शन से ही सरस्वती जी की  
अविद्या को सिद्ध करते हैं-और उनके  
नाया जाल से अपने भाइयों को ब-  
चाने की कोशिश करते हैं:-

“न कर्मण उपदानत्वायोगात्”  
सां० अ० १ सू० ८१

अर्थ-कर्मसे मुक्ति नहीं है क्योंकि कर्म  
उसका उपदान होने योग्य नहीं है ।

काम्येऽकाम्येऽपि साध्यत्वा विशेषा-  
त् । सां० अ० १ सू० ८५ ॥

अर्थ-चाहे कर्म निष्काम हो चाहे  
सकाम हो परन्तु कर्म से मुक्ति नहीं  
है क्योंकि दोनों प्रकार के कर्म के सा-  
धन में समानता है ।

आर्य्य धर्म के मुख्य प्रचारक स्वामी  
दर्शनानन्द ने इस सूत्र की पुष्टिमें यह  
श्रुति भी लिखी है ।

“न कर्मणा न प्रणया न धने-

न त्यागे नैकेऽमृतत्वमानुशुः”

अर्थात् न तो कर्मसे मुक्ति होती है  
न प्रजासे न धन से

निजमुक्तस्य बंधध्वंसमात्रं परं न  
ब्रह्मानन्दम्” सां० अ० १ सू० ८६ ॥

अर्थ-आत्मा स्वभाव से मुक्त है इस  
हेतु मुक्ति प्राप्त होना बंध की निवृ-  
त्ति होना अर्थात् दूर होना है समान  
होना नहीं है-

भाषार्थ-बंध का नाश होकर  
निज शक्ति का प्रकट होना मुक्ति है  
किसी वस्तु का प्राप्त होना वा किसी  
परशक्ति का उत्पन्न होना मुक्ति नहीं  
है इस हेतु मुक्ति किसी प्रकार भी  
कर्मोंका फल नहीं हो सकती है ।

“न स्वभावतो बहुस्य मोक्षसाधनो  
पदेश विधिः” ॥सां० अ० १ सू० ७

अर्थ-बंध में रहना जीव का स्वभाव  
नहीं है क्योंकि यदि ऐसा होंवै तो मोक्ष  
साधन का उपदेश ही व्यर्थ ठहरै ।

बाशक्योपदेशविधिरूपदिष्टेऽप्यनुप-  
देशः । सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ८

अर्थ-जो अशक्य है ( नहीं हो सक-  
ता ) उसका उपदेश नहीं दिया जा-  
ता क्योंकि उपदेश दिये जाने पर भी  
न दिये जाने की बराबर है अर्थात्  
किसी को उसका उपदेश नहीं होता ।

स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठान ल-  
क्षणमप्रामादयम्” ॥सां०॥ अ० ॥१॥ सू० ८

अर्थ-स्वाभाविक गुण अविनाशी हो-  
ते हैं इस कारण श्रुतिमें जो मोक्ष सा-  
धन का उपदेश है वह अप्रामाद हो  
जावेगा ।

नित्य मुक्तत्वम्-सां ॥अ०१॥ सू० १६२

अर्थ-स्वाभाव से जीव नित्य मुक्तही  
है अर्थात् निश्चय नय से वह सदा मु-  
क्त ही है ।

ओदासीन्यं चेति ॥ सां० ॥ अ० १ सू० १६३  
अर्थ--और निश्चय नय से वह सदा  
उदासीन भी है-

स्वामी दयानन्द जी की जितनी बातें  
हैं वह सब अद्भुत ही हैं वह सत्यार्थ  
प्रकाश में लिखते हैं कि, मुक्ति प्राप्त  
करने के पश्चात् मुक्ति जीव अपनी इ-  
च्छा के अनुसार आनन्द भोगता हुआ  
घमता फिरता रहता है, मुक्ति जीवों  
से मेल मुलाकात करता है और जगत्  
के सर्व पदार्थों का आनन्द लेता फि-  
रता रहता है, इसके बिरुद्ध जैनियों ने  
जो मुक्तिजीव के एक स्थान में अपनी  
आत्मा में स्थिर और अपने ज्ञान स्व-  
रूप में मग्न रहना लिखा है उस का  
सत्यार्थप्रकाश में मखील उड़ाया है--

देखिये इस विषयमें स्वामी दयानन्द  
जीके मान्य ग्रन्थ सांख्यदर्शन से क्या  
सिद्ध होता है--

निर्गुणादिश्रुति विरोधश्चेति । सां०  
अ० १ सू० ५४ ॥

अर्थ-साक्षी चेता केवली निर्गुणश्च इ-  
त्यादिक श्रुतियोंमें जीव को निर्गुण  
कहा है यदि कोई क्रिया वा कर्म जीव  
में माने जावेग तो श्रुतिसे विरोध होगा--

निर्गुणत्वमात्मनोऽसंगत्वादिश्रुतेः सां०  
॥ अ० ६ ॥ सू० १० ॥

अर्थ-श्रुति में जीव को असंग वर्णन  
किया है इस कारण जीव निर्गुण है--

निष्क्रियस्य तदसंभवात् ॥ सां० ॥  
अ० १ ॥ सू० ४९ ॥

अर्थ-क्रिया रहित को वह असंभव  
होने से-अर्थात् जीव क्रिया रहित है

उस में गति असम्भव है-क्रिया और  
गति प्रकृतिका धर्म है-गति का वर्णन  
इस-से पूर्व के सूत्र में है ।

“न कर्मजाप्य तदुर्मत्वात्” ॥ सां० ॥  
अ० १ ॥ सू० ५२ ॥

अर्थ-कर्मसे भी पुत्रका बंधन नहीं है  
क्योंकि कर्म जीवका धर्म नहीं  
है वरण देहका धर्म है ॥

“उपरागात्कर्तृत्वं चित्तानिध्यात्,”  
॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० १६४ ॥

अर्थ-जीव में जो कर्तापना है वह  
चित्त अर्थात् मन के संसर्ग से उपराग  
पैदा होने से है--

“असंगोऽयं पुरुष इति,” सां० अ० १  
सू० १५ ॥

अर्थ-पुरुष संग रहित है अर्थात् अ-  
पने स्वभाव में स्थित स्वच्छ और नि-  
र्मल है ।

प्यारे आर्य भाइयो ! जब मुक्तजीव  
के प्रकृति से बना शरीर ही नहीं है  
वरण मुक्ति दशा में वह असंग निर्मल  
और स्वच्छ है और क्रिया प्रकृति का  
धर्म है अर्थात् जो क्रिया संचारी जीव  
करता है वह सत, रज, तम इन तीन  
गुणों में से किसी एक गुण के आश्रित  
करता है और यह तीनों गुण प्रकृति  
से उत्पन्न होते हैं मुक्तिदशा में प्रकृति  
से अलग होकर जीव निर्गुण हो जा-  
ता है तब उसके चलना फिरना आ-  
दिक काम कैसे बन सकते हैं ?

“द्वयोरैकतरस्य वोदासीन्यमपवगः”

सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ६५

अर्थ-दोनों वा एक का उदासीन होना मोक्ष है-अर्थात् जीव और प्रकृति दोनों का वा इन दोनों में से एक का उदासीन हो जाना अर्थात् दोनों का सम्बन्ध छूट जाना ही मोक्ष कहलाता है-

पाठक गणो ! जरा मुक्ति के साधन पर ही ध्यान दो कि सांख्य में क्या लिखा है ? इस ही से विदित हो जावेगा कि मुक्तिजीव स्थिर रहते हैं वा अन्य मुक्तिजीवों से मुलाकात करते फिरते रहते हैं--

तत्त्वाभ्यासान्नेतिनेतीति त्यागाद्विवेकसिद्धिः ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ७५

अर्थ-यह आत्मा नहीं यह आत्मा नहीं है इस त्याग रूप तत्त्व अभ्यास में विवेक की भिद्धि है-अर्थात् जीव जिस को अपने से पृथक् प्रत्यक्ष हो जावे उस को त्याग करता जावे इस प्रकार त्याग करते करते सर्व का त्याग हो जावेगा और केवल अपने ही आत्मा का विचार रह जावेगा यह ही विवेक है इस से मुक्ति है । देह मेरा आत्मा नहीं, स्त्री पुत्रादिक जगत् सब जीव मेरे आत्मा से भिन्न हैं और इस ही प्रकार जगत् के सर्व पदार्थ भिन्न हैं इस प्रकार आत्मबोध हो जाता है--

( नोट ) परन्तु क्या बोध प्राप्त होने के पश्चात् अर्थात् मुक्ति प्राप्त करने के पश्चात् अन्य वस्तु अर्थात् मुक्तिजीवों वा जगत् की अन्य वस्तु की ओर ध्यान

लगा सकता है ?

ध्यानं निर्विषयं मनः ॥ सां० अ० ६ सू० २५

अर्थ-मनको विषय से रहित करने का नाम ध्यान है-

रागोपहृतिर्ध्यानम् ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ३०

अर्थ-राग के नाश का जो हेतु है वह ध्यान है ॥

वृत्ति निरोधात् तत्तिष्ठतिः ॥ सां० अ० ३ ॥ सू० ३१

वृत्ति के निरोध से ध्यानकी सिद्धि होती है ।

ध्यारे पाठको ! सांख्य ने मुक्ति को प्राप्त होना कृतकृत्य होना मिथु किया है अर्थात् जिस के पश्चात् कुछ भी करना बाकी न रहे । परन्तु अफसोस है कि स्वामी दुःखानन्द की संमारी जीवों की तरह मुक्त जीवों को भी कार्यों में संलग्न और आनन्द प्राप्ति की पटक में कल्पित शरीर बनाकर जगत्पर में मुक्ति जीवोंका भ्रमण करता सत्यार्थप्रकाश में व्यर्थन करते हैं -

त्रिप्रकाशः प्रप दुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यत्वात्तत्त्वान्तेवपि ॥ सां० ॥ अ० ३ सू० ८४

अर्थ-त्रिप्रकाश ने समस्त दुःख निवृत्त होने पर कृतकृत्यता है दूसरे से नहीं अर्थात् पूर्ण ज्ञान होने ही से दुःखकी पूर्ण परी निवृत्ति होती है और जब पूर्ण ज्ञान हो गया तब कुछ करना बाकी नहीं रहा अर्थात् कृतकृत्य हो जाता है--

अत्यन्त दुःख निवृत्त्या कृतकृत्यता  
॥ सां० ॥ अ० ६ ॥ सू० ५ ॥

अर्थ-दुःख की अत्यन्त निवृत्ति से कृतकृत्यता होती है अर्थात् जीव कृतकृत्य तब ही होता है जब दुःख की विलकुल निवृत्ति हो जावे किसी प्रकार का भी दुःख न रहे--

यथा दुःखात्क्रेशः पुरुषस्य न तथा  
सुखादभिलाषः ॥ सां० ॥ अ० ६ सू० ६

अर्थ-जीवको जैसा दुःख से द्वेष होता है ऐसी सुख की अभिलाषा नहीं है।

यद्वातद्वातदुःखिच्छतिः पुरुषार्थस्तदु-  
च्छतिः पुरुषार्थः ॥ सां० अ० ६ ॥ सू० ७

अर्थ-जिस किसी निमित्तमें हो उस का नाश पुरुषार्थ है अर्थात् जीव और प्रकृति का सम्बंध जो अनादि काल से हो रहा है वह चाहे कर्म निमित्त से हो चाहे अविद्येक से हो या यह सम्बंध किसी अन्य कारण से हो परन्तु इस सम्बंध का नाश करना ही पुत्र्यार्थ है क्योंकि इस संबंध ही से दुःख है और इस संबंध के नाश ही से जीव की शक्ति प्रकट होती है-

स्वामीदयानन्द भी तो ऐसी आज्ञा-  
दी में आए हैं कि स्वर्ग और नरक से भी इन्कार कर दिया है वरण ऐसी अंगरेजियन में आए हैं कि जगत् में ऊपर नीचे की अवस्था की ही आप नहीं मानते वरण जैनियोंका जो यह सिद्धांत है कि मोक्ष स्थान लोक शि-  
खर पर है इस बात की हंसी इस ही हेतु से उड़ाई है कि ऊपर नीचे कोई

अवस्था ही नहीं हो सकता है परन्तु सांख्य दर्शन में ऊपर नीचे सब कुछ माना गया है:-

“देवादिप्रभेदाः” ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥  
सू० ४६

अर्थ-सृष्टि वह है जिस में देव आदि भेद हैं अर्थात् देव-नारकी मनुष्य और निर्यच-

“ऊर्ध्वं सत्त्व विशाला” ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ४८

अर्थ-सृष्टि के ऊपर के विभाग में सत्त्वगुण अधिक है अर्थात् ऊपर के भाग में सतीगुणी जीव रहते हैं भावार्थ ऊपर स्वर्ग है जहां देव रहते हैं।

“तमो विशाला मूलतः” ॥ सां० ॥ अ० २ ॥ सू० ४९

अर्थ-सृष्टि के नीचे के विभाग में तमोगुण अधिक है अर्थात् नीचे के भाग में तमोगुणी जीव रहते हैं भावार्थ नीचे नरक है जहां नारकी रहते हैं।

सध्यं रजो विशाला ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ५०

अर्थ-सृष्टि के मध्य में रजागुण अधिक है भावार्थ मध्य में मनुष्य और तिर्यक्ष रहते हैं-

आगे लेख में हम दिखलावेंगे कि सांख्य दर्शन में कर्ता ईश्वर का भगी भाति खंडन किया है और मुक्तिजीवों की ही पूजा उपासना और जीवन मुक्त अर्थात् केवल ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् जब तक शरीर रहै उन का ही उपदेश मानने के योग्य है और किसी का नहीं।



## आर्यमतलीला ।

### सांख्यदर्शन और ईश्वर ( २६ )

प्रिय पाठको ! स्वामी दयानन्दजीने यह प्रकट किया है कि वह षट्दर्शनके मानने वाले हैं और उनके अनुयायी हमारे आर्य भाई भी ऐसा ही मानते हैं—षट्दर्शनोंमें सांख्यदर्शन भी है जो बड़े जोरसे अनेक युक्तियोंके माधकता ईश्वर का खण्डन करना है और जीव और प्रकृति यह दोही पदार्थ मानता है—इस कारण आर्य भाइयोंको भी ऐसा ही मानना उचित है—

प्यारे आर्य भाइयो ! सांख्यशास्त्रको देखिये और स्वामी दयानन्दजीके भ्रम जालसे निकल कर सत्य का ग्रहण कीजिये जिससे कल्याण हो—देखिये हम भी कुछ सारांश सांख्य के हेतुओं का आपको दिखाते हैं—

“नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्तिष्ठेः” ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० २  
अर्थ—ईश्वरके अधिष्ठित होनेमें फलकी सिद्धि नहीं है कर्मसे फलकी सिद्धि होनेसे अर्थात् कर्मों ही से स्वाभाविक फल मिलता है यदि ईश्वरको फल देने वाला माना जावे और कर्मों ही से स्वाभाविक प्राप्ति न मानी जावे तो ठीक नहीं होगा और फलकी प्राप्तिमें बाधा आवेगी -

“न रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियत कारणात्वात् ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ६

अर्थ—प्रतिनियत कारण होनेसे बिना राग उसकी सिद्धि नहीं—अर्थात् बिना राग के प्रवृत्ति नहीं हो सकती है इस कारण ईश्वरका कुछ भी कार्य माना जावे तो उसमें राग अवश्य मानना पड़ेगा—

“तद्योगोऽपि न नित्यमुक्तः” ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ७ ॥

अर्थ—यदि उसमें राग भी मान लिया जावे तो क्या दर्ज है इसका उत्तर देते हैं कि फिर वह नित्यमुक्त कैसे माना जावेगा ? ईश्वरके मानने वाले उसको नित्यमुक्त मानते हैं उसमें दोष आवेगा—

“प्रधानशक्तियोगाच्छेत् सङ्गापत्तिः” ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ८

अर्थ—जिस प्रकार कि जीवके साथ प्रकृतिका संग होकर और राग आदि पैदा होकर संसारके अनेक कार्य होते हैं इस ही प्रकार यदि ईश्वरका सृष्टि कर्तापन प्रधान अर्थात् प्रकृति के संग से माना जावे तो उसमें संगी होने का दोष आता है ।

“सत्तामात्राच्छेत् सर्वेश्वर्यम्” ॥ सां० ॥ अ० ५ ॥ सू० ९

अर्थ—यदि यह माना जावे कि प्रकृति का संग सत्तामात्र है—जिस प्रकार सणि के पास डांक रखने से सणिमें डांक का रंग दीखने लगता है इस ही प्रकार प्रकृतिकी सत्तासे ही ईश्वर काम करता है प्रकृति उस में मिल नहीं जाती, तो जितने जीव हैं वह सबही ईश्वर हो जायेंगे क्योंकि जितने संमारी जीव हैं उन की व्यवस्था सांख्यने इसही प्रकार मानी है ॥

“प्रमाणाभावात्तत्सिद्धिः” ॥ सां० ॥

अ० ५ ॥ सू० १०

अर्थ--ईश्वरकी सिद्धिमें कोई प्रमाण नहीं घटता है इस कारण ईश्वर है ही नहीं। प्रत्यक्ष प्रमाण तो ईश्वरके विषय में है ही नहीं क्योंकि ईश्वर नजर नहीं आता इस कारण अनुमान की बात कहते हैं।

“सम्बन्धाभावात्मानुमानम्” ॥ सां० ॥

॥ अ० ५ ॥ सू० ११

अर्थ--सम्बन्ध के अभाव से अनुमान भी ईश्वरके विषयमें नहीं लगता है-- अर्थात् बिना व्याप्तिके अनुमान नहीं हो सकता है।

साधन का साध्य वस्तु के साथ नित्यसम्बन्ध की व्याप्ति कहते हैं। जब यह संबंध पहले प्रत्यक्ष देख लिया जाता है तो पीछे से उन सम्बन्धित वस्तुओं में से साधन के देखने से साध्य वस्तु जान ली जाती है इस की अनुमान कहते हैं-जैसे कि पहले यह प्रत्यक्ष देखकर कि धुआं जब पैदा होता तब अग्निसे होता है अग्नि और धुएं का सम्बन्ध अर्थात् व्याप्ति मान ली जाती है पश्चात् धुएं को देखकर अग्नि का अनुमान कर लिया जाता है परन्तु ईश्वर का प्रत्यक्ष ही नहीं है इस हेतु उसका किसी से संबंध ही कैसे माना जावे और कैसे व्याप्ति कायम की जावे जिससे अनुमान हो जब सम्बन्ध ही नहीं तो अनुमान कैसे हो सकता है-

श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य ॥ सां० ॥

॥ अ० ५ सू० १२

अर्थ-यदि यह कहा जावे कि प्रत्यक्ष और अनुमान नहीं लगते हैं तो शब्द प्रमाण से ही ईश्वर की मान लेना चाहिये-उमके उत्तर में सांख्य कहता है कि श्रुति अर्थात् उन शास्त्रों में जिन का शब्द प्रमाण ही ईश्वर का वर्णन नहीं है बरण श्रुति में भी सर्व कार्य प्रधान अर्थात् प्रकृति के ही बताया गये हैं--

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ १८९ पर सांख्य के यह तीन सूत्र दिये हैं--

“ईश्वरा सिद्धेः” ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ९२

“प्रमाणाभावात्तत्सिद्धिः” ॥ सां० ॥

अ० ५ ॥ सू० १०

“सम्बन्धाभावात्मानुमानम्” ॥ सां० ॥

अ० ५ ॥ सू० ११

और अर्थ इनका सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ १९० पर इस प्रकार सरस्वती जी ने लिखा है-प्रत्यक्ष से घट सकते ईश्वर की सिद्धि नहीं होती ॥१॥ क्योंकि जब उमकी सिद्धि में प्रत्यक्ष ही नहीं तो अनुमानादि प्रमाण नहीं हो सकता ॥२॥ और व्याप्ति सम्बन्ध न होने से अनुमान भी नहीं हो सकता पुनः प्रत्यक्षानुमान के न होने से शब्द प्रमाण आदि भी नहीं घट सकते इस कारण ईश्वर की सिद्धि नहीं होसकी।

इसका उत्तर सरस्वती जी इस प्रकार देते हैं।

(उत्तर) यहां ईश्वर को निद्रि में प-  
त्यन्न प्रमाण नहीं है और न ईश्वर  
जगत् का उपादान कारण है और पु-  
रुष से विरक्तता अर्थात् सर्वत्र पूर्ण  
होने से परमात्मा का नाम पुरुष और  
शरीर में शयन करने से जीव का भी  
नाम पुरुष है क्योंकि इसी प्रकार में  
कहा है-

प्रधानशक्तियोगाच्चैत्संगापत्तिः ॥ मं०  
॥ अ० ॥ ५ ॥ सू० ८

सत्तामात्राच्चैत्सर्वैश्वर्यम् ॥ मं० ॥  
अ० ५ ॥ सू० ९

श्रुतिरपि प्रधान कार्यत्वम् ॥ मं० ॥  
अ० ५ ॥ सू० १२

इनका अर्थ सरस्वती जी ने इन प्र-  
कार किया है ।

यदि पुरुष को प्रधान शक्ति का योग  
हो तो पुरुष में संगापत्ति हो जाय  
अर्थात् जैसे प्रकृति : इन से मिलकर  
कार्य रूप में संगत हुई है वैसे परमे-  
श्वर भी स्थूल हो जाय इस लिये पर-  
मेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं  
किन्तु निमित्त कारण है जो चेतन से  
जगत् की उत्पत्ति हो तो जैसा परमे-  
श्वर सम्यैश्वर्ययुक्त है वैसा संसार में भी  
सर्वैश्वर्य का योग होना चाहिये सो  
नहीं है इस लिये परमेश्वर जगत् का  
उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त  
कारण है क्योंकि उपनिषद् भी प्रधान  
ही को जगत् का उपादान कारण  
कहाता है ।

अस्माकं लोहित शुक्ल कृष्णं वहीः  
प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः ॥ श्वेताश्व-

तर उपनिषद् अ० ४ । मं० ५ ॥

अर्थ इनका स्वामी जी इस प्रकार  
काते हैं ।

जो जन्म रहित सत्व, रज, तमोगुण  
रूप प्रकृति है वही स्वरूपाकार से व-  
हुत प्रजारूप हो जाती है अर्थात्  
प्रकृति परिणामिनी होने से अवस्था-  
न्तर हो जाती है और पुरुष अपरि-  
णामी होनेसे वह अवस्थांतर होकर  
द्वन्द्वरूप में कभी नहीं प्राप्त होता  
मदा दूटस्थ निर्विकार रहता है । "

इस प्रकार लिखकर सरस्वतीजी व-  
हुत श्रेणीमें आकर इस प्रकार लिखते हैं-

" इसलिये जो कोई कपिलाचार्यको  
अनीश्वरवादी कहना है जानो वही  
अनीश्वरवादी है कपिलाचार्य नहीं । "

पाठकगण ! देखी सरस्वतीजीकी उ-  
द्गहना ! इस प्रकार लिखने वालेको  
सरस्वतीजी पदवी देना इस कलिकाल  
ही की महिमा नहीं तो और क्या है ?  
सरस्वतीजीके इस वचनकी ओ प्रमाण  
मानते हैं उनसे हम पूछते हैं कि ई-  
श्वर उपादान कारण न मही निमित्त  
कारण ही मही परन्तु कपिलाचार्यने  
जो यह सिद्ध किया है कि ईश्वर में  
कोई प्रमाण नहीं लगता है अर्थात् न  
वह प्रत्यक्ष है न उसमें अनुमान लगता  
है और न शब्द प्रमाणमें उसका वर्णन  
है इस हेतु ईश्वर असिद्ध है इस का  
उत्तर सरस्वती जी ने क्या दिया है ?  
क्या उपादान कारणके ही सिद्ध करने  
के वास्ते प्रमाण होते हैं और निमित्त  
कारणके वास्ते नहीं ? सृष्टिके वास्ते

उपादान ही चाहे निमित्त परन्तु आप के कथनानुसार अस्तु तो है और आप उस को अनादि मानते हैं इस कारण सृष्टिका नहीं परन्तु अपना तो उपादान है--वा इस स्थान पर आप यह मानलेंगे कि जो उपादान सृष्टि का है वही परमेश्वरका है? कुछ ही किसी न किसी प्रमाणसे ही सिद्ध होगा तब ही माना जावेगा अन्यथा कबे माना जा सकता है--कपिलाचार्य कहते हैं कि वह किसी भी प्रमाणसे सिद्ध नहीं इस कारण अवस्तु है--और सांख्यदर्शनके अध्याय ५ के सूत्र ८ और ९ के अर्थमें जो सरस्वतीजीने यह शब्द अपने कपोलकल्पित लिखमारे हैं "किन्तु निमित्त कारण है," यह उक्त सूत्रमें तो किसी शब्दसे निकलते नहीं। यदि सरस्वती जी का कोई खेना बतादे कि अमुकरीतिसे यह अर्थ निकलते हैं तो हम उनके बहुत अनुपहीन हों।

हम ही प्रकार उपनिषद् का वाक्य लिखकर उनके अर्थमें जो यह लिखा है

"और पक्ष अपरिणामी होने से वह अवस्थान्ता होकर दूसरे रूपमें कर्मा नहीं प्राप्त होता मदा कूटस्थ निर्विकार रहता," यह कीनसे शब्दोंका अर्थ है? अतिमें तो ऐसा कोई शब्द है नहीं जिसका यह अर्थ किया जावे, हा यदि सरस्वतीजीको सरस्वतीका यही खर हो कि वह अर्थ करते समय शब्दों से भिन्न भी जो चाहें लिखदिया करें तो हमका कुछ कहना ही नहीं है।

दयानन्दजीको यह लिखनेमें लज्जा

आनी चाहिये यी कि सांख्यदर्शनके कर्ता कपिलाचार्य ईश्वरवादी थे--देखिये सांख्य कैसी सफाईके साथ ईश्वरसे इन्कार करता है।

"ईश्वरसिद्धः" ॥ सं० ॥ अ० ॥ १॥सू० ८२

अर्थ--इस कारणसे कि ईश्वरका होना सिद्ध नहीं है।

"मुक्तबहुपोरन्यतराभावाजतत्सिद्धिः" ॥ सं० ॥ अ० १ ॥ सू० ८३ ॥

अर्थ--चेतन्य दोही प्रकारका है मुक्त और बहु इस से अन्य कोई चेतन्य नहीं है इस हेतु ईश्वरकी सिद्धि नहीं है।

"उभययाप्यमतकरतवम्" ॥ सं० ॥ अ० १ ॥ सू० ८४

अर्थ दोनों प्रकारसे ईश्वरका कर्तव्य सिद्ध नहीं होता अर्थात् यदि वह मुक्त है तो उसका विशेष क्या काम हो सकता है? जते अन्य मुक्तजीव ऐसा ही वह और यदि वह बहु है तो अन्य समारी जीवों के समान है--दोनों अवस्थाओंमें ऐसा कोई कार्य नहीं जिसके आस्ते ईश्वरकी स्थापित किया जावे।

आर्यभाइयो! यदि आपकुछ भी विचारका काममें लावगे और सांख्यदर्शनको पढ़ेंगे तो आपको मालूम होगा कि सांख्यने ईश्वरवादियोंका मखोल नक नड़ाया और प्रधान अर्थात् प्रकृतिको ही ईश्वर कर दिखाया है यथाः--

"सहिनर्घवित् सर्वकर्ता" ॥ सं० ॥ अ० ३ सू० ५६

अर्थ--निश्चयसे वहही सब कळ जाने वाला और सर्व कर्ता है।

हेतुश्वरसिद्धिः सिद्धा ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥

सू० ५१

अर्थ-ऐसे ईश्वर की सिद्धि सिद्ध है ।

भावाय इन दोनों सूत्रों का यह है कि सांख्यकार जीव और प्रकृति यह दोही पदार्थ मानता है-सांख्यकार जीव को निर्गुण और क्रिया रहित अकर्ता सिद्ध करता है और सृष्टि के सर्व कार्य प्रकृति से ही होता हुआ बताया है इस ही कारण सांख्यकार ने प्रकृति का नाम प्रधान रक्खा है और उस ही को सर्व कार्यों का कारण बताया है ।

सांख्यकार कहता है कि प्रधान (प्रकृति) ही सब कुछ जानने वाला और सब कुछ करने वाला है और यदि उन को ईश्वर माना जावे तो वंशक ऐसे ईश्वर का होना सिद्ध है-

सूत्र ५८ में प्रकृति का कर्ता होना स्पष्ट हो जाता है-

प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वादुष्टकुंभं वहनवत्=

अर्थ-यद्यपि प्रधान अर्थात् प्रकृति सृष्टि को करती है परंतु वह सृष्टि दूसरों के लिये है क्योंकि उस में स्वयं भोग की सामर्थ्य नहीं है भोग उसका जीव ही करते हैं, जैसे ऊंट का कुंभ को लादकर ले जाना दूसरों के लिये है-

और सूत्र ५९ में प्रकृति के समझदारी के कार्य सिद्ध किये हैं-

“अचेतनत्वोपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानम्”-

अर्थ-यद्यपि प्रधान अर्थात् प्रकृति अचेतन है परंतु दुग्ध की तरह कार्य उसके चेष्टित होते हैं-

कपिलाचार्य ने सांख्यदर्शन में ईश्वर की अस्तित्व में इतना जोर दिया है कि प्रथम अध्याय के सूत्र ९२, ९३, और ९४ में जैसा कि इन सूत्रों का अर्थ हमने ऊपर दिया है, ईश्वर की अस्तित्व साफ साफ दिखाकर आगे यहां तक लिखा है कि पूजा उपामना भी मुक्त जीवों की ही है और शब्द भी उनके ही प्रमाण हैं न किमी एक ईश्वर की पूजा उपामना है और न उसका कोई शब्द वा उपदेश प्रमाण है जैसा कि निम्न लिखित सूत्रों में विदित होता है-

मुक्तात्मनः प्रशंसा उपासा निदुर्यवा ॥ सां० अ० १ ॥ सू० ९५

अर्थ-प्रशंसा उपासना मुक्त आत्मा की है वा निदुर्य की-

तत्प्रसन्नानां दधिष्ठातृत्वं मणिवत् ॥ सां० ॥ अ० १ ॥ सू० ९६

अर्थ-उसके सन्निधान से मणि के समान अधिष्ठातापना है अर्थात् मुक्त वा सिद्ध जीवों की उपासना का कारण यह नहीं है कि वह कुछ देते हैं वा कोई कार्य सिद्ध कर देते हैं वरण उनके सन्निधान से ही असर पड़ता है इस कारण मुक्ति जीवों को अधिष्ठातापना है ।

विशेष कार्येष्वपि जीवानाम् ॥ सां० अ० १ ॥ सू० ९७

अर्थ-विशेष कार्यों में संसारी जीवों

को भी इस ही प्रकार अधिष्ठातापना होता है अर्थात् उन की प्रशंसा उपासना भी की जाती है ।

सिद्धरूपोद्भवाद्वाक्यार्थोपदेशः ॥ सां० अ० १ ॥ सू० ९८

सिद्धरूपों के यथार्थ ज्ञाता होने से उनका वाक्यार्थ ही उपदेश है अर्थात् उन ही का वाक्य प्रमाण है ।

जीवन्मुक्तश्च ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० १८  
जीवन मुक्त भी अर्थात् केवल ज्ञान प्राप्त होने पर जब तक शरीर बना रहता है तब तक की अवस्था को जीवन मुक्त कहते हैं—

उपदेशोपदेशत्वात् तत्तिष्ठति ॥ सां० अ० ३ ॥ सू० १८

अर्थ-उपदेश के योग्य को उपदेश करने वाले के भाव से उसकी सिद्धि है अर्थात् उपदेश करने का अधिकार जीवन मुक्त की ही है क्योंकि उससे पहले केवल ज्ञान नहीं जो सर्व पदार्थों का जानने वाला हो और केवल ज्ञान होने पर देह त्यागने के पश्चात् उपदेश ही नहीं सकता क्योंकि उपदेश बचन द्वारा ही हो सकता है और देह होने की ही अवस्था में जबन उत्पन्न होता है इस कारण उपदेश कर्ता जीवन्मुक्त ही हो सकता है—

अतिश्च ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ८०  
अर्थ—अति में भी इनका प्रमाण है—  
इतरधान्यपरम्परा ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ८१

अर्थ—यदि जीवन्मुक्त की ही उपदेश का अधिकार न हो और किसी

अन्य का भी वचन प्रमाण हो तो अध्याधुन फैल जावे क्योंकि केवलज्ञानके सिद्धन जो मन में आवै सो कहै—

चक्रभ्रमणवद्वनशरीरः ॥ सां० ॥ अ० ३ ॥ सू० ८२

अर्थ—जिम प्रकार कुम्हार अपने चाक की लाठी से चलाता है परंतु लाठी के निकाल लेने और कुम्हार के अलग हो जाने के पश्चात् भी चक्र चलता रहता है इस ही प्रकार जीव अखिवेक से बंधन में पड़ा था और संसार के चक्र में फंसा हुआ था अब अखिवेक दूर हो गया और केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई परंतु अखिवेकने जो संसार चक्र घुमाया था वह अखिवेक के दूर होने पर अभी तक बंद नहीं हुआ इस कारण देह का संस्कार बाकी है जब सर्व संस्कार शान्त हो जावेंगे तब देह भी छूट जावेगा और जीव सिद्ध पद को प्राप्त हो जायगा—

संस्कारलेशात् तत्तिष्ठति ॥ सां० अ० ३ ॥ सू० ८३

अर्थ—कुछ संस्कार का लेश बाकी रह गया है इस ही कारण जीवन्मुक्त होने पर भी शरीर बाकी है—

## आर्यमत लीला

योग दर्शन और मुक्ति ।

( २० )

षट् दर्शनके मानने वाले प्यारे आर्य भाइया ! यद्यपि स्वामी दयानन्द ने आपको बड़काया है कि सत्यार्थप्रकाश में जो सिद्धान्त उन्होंने स्थापित किये

हैं वे षट्दर्शनके विरुद्ध नहीं हैं परन्तु यदि आप षट्दर्शन को पढ़ें तो आप को मालूम हो जावेगा कि स्वामीजी के सर्वसिद्धान्त कपोल कल्पित, पूर्वाचार्योंके विरुद्ध और मनुष्योंका धर्मसे भ्रष्ट करने वाले हैं।

प्यारे आर्य भाइयो ! योगदर्शन को आप जिन आदरकी निगाहसे देखते हैं जितना आप इस ग्रन्थको मुक्तिका मार्ग और धर्म की बुनियाद समझते हैं उसको आप ही जानते हैं परन्तु यदि आप योगदर्शन और कृत्यार्थप्रकाशको मिलावें तो आप को मालूम होगा कि स्वामीजी ने मुक्ति और उन के उपायोंकी जड़ ही उखड़ दी है—अर्थात् धर्मका नाश ही कर दिया है निम्न लिखित विषय अधिक विचारणीय हैं—

(१) दर्शन कार कर्मोंके क्षय से मुक्ति मानते हैं परन्तु स्वामीजी मुक्ति को भी कर्मों ही का फल बताते हैं मानो स्वामीजीकी समझमें जीव कभी कर्म बंधनसे छूट ही नहीं सकता है।

(२) मुक्ति किसी नवीन पदार्थकी प्राप्ति या किसी नवीन शक्तिकी उत्पत्तिका नाम नहीं है बल्कि प्रकृति का संग छोड़कर जीवका स्वच्छ और निर्मल होजाना ही मुक्ति है इसही हेतु मुक्तिके पश्चात् जीवके फिर जन्ममें जं-सनेका कोई कारण ही नहीं है परन्तु स्वामीजी सिखाते हैं कि मुक्तिके बाद कर जीवको फिर बंधनमें पड़ना आवश्यक है—फल स्वामीजीके सिद्धान्त का

यह है कि मनुष्य मुक्ति साधन से निरुत्साही होजावें। क्योंकि—

“ चलना है रहना नहीं  
चलना विसय बीस ।

ऐसे सहज सुहाग पर  
कौन गुदावे सीस ॥”

(३) दर्शनकारों के मतके अनुसार प्रकृतिके संगमे जीवमें सत, रज और तम तीन गुण पैदा होते हैं और इन ही गुणोंके कारण जीवकी अनेक क्रिया में और चेष्टायें होती है और यही दुःख है दर्शनकारोंके अनुसार जीव स्वभावसे निर्गुण है और इसही हेतु अपरिणामी है—संसारमें जीवका जो कुछ परिणाम होता है वह प्रकृति के उपरोक्त तीन गुणोंके ही कारण होता है—प्रकृतिका सग छोड़कर अर्थात् मोक्ष पाकर जीव निर्गुण और अपरिणामी रहजाता है और निर्मल होकर सर्व प्रकारके संकल्प विकल्प छोड़कर ज्ञान स्वरूप अपने आत्मा ही में स्थित रहता है और ज्ञानानन्दमें मग्न रहता है परन्तु स्वामी दयानन्दजी इसके विपरीत यह सिखाते हैं कि मुक्ति पाकर भी जीव अपनी इच्छाानुसार संकल्पों शरीर बना-लेता है और सर्व स्थानों का आनन्द भोगता हुआ फिरता रहता है और अन्य मुक्तजीवोंसे भोग सुनावात करता रहता है। फल उनकी इस शिक्षाका यह कि संसारी जीवों और मुक्तजीवों में कोई अन्तर न रहै और मुक्ति साधन व्यर्थ समझा जाकर मनुष्य संसार को ही उन्नति में लग रहें।

(४) दर्शनकारों के मतके अनुसार जीव स्वभावसे सर्वज्ञ है परन्तु प्रकृति संयोगसे उसके ज्ञान पर आवरण पड़ा हुआ है जिससे वह अल्पज्ञ होकर अ-विबेकी होरहा है और इसके अविबेक के कारण संसार में फँसकर अनेक दुःख उठा रहा है—

इस आवरणके दूर होने और सर्वज्ञता प्राप्त होने ही का नाम मोक्ष है—परन्तु स्वामी दयानन्दजी लिखाते हैं कि जीव स्वभावसे ही अल्पज्ञ है इस हेतु मोक्षमें भी अल्पज्ञ रहता है अर्थात् पूर्ण विवेक मोक्ष में प्राप्त नहीं होता है इसही कारण संकल्पी शरीर बनाकर संमारी जीवोंकी तरह आनन्दकी खोज में भटकता फिरता है। यह शिक्षा भी मनुष्यकी मुक्तिके साधनमें निरुत्साही बनाने वाली है।

(५) योगदर्शनमें मुक्तिका उपाय स्थिर चित्त होकर संसारकी सर्व वस्तुओंसे अपने ध्यानको हटाकर अपनी ही आत्मामें सम होना बताया है—इसही से सर्व बन्धन और सर्व आवरण दूर होते हैं और इसही से ज्ञान प्रकट होता है और ज्ञानस्वरूप आत्मामें ही स्थिर रहना मोक्षका स्वरूप और मुक्तिका परम आनन्द है परन्तु दयानन्द मरस्वतीजी ऐसी अवस्थाकी हमें उड़ाते हैं और इसको जड़वत् ही जाना बताते हैं स्वामीजीको तो संमारी जीवोंकी तरह अनेक चेष्टा और क्रिया करना ही पसन्द है इसही हेतु

स्वामीजी अपरिग्रही और वैरागी योगीको नापसन्द करते हैं वरण यदांतक शिक्षा देते हैं कि योगीकी यहां तक परिग्रही होना चाहिये कि स्वर्ण आदिक भी अपने पान रखे गुण स्वामीजीकी नियत इससे यह गालू पड़ती है कि धर्मके सर्व साधन दूर होकर मनुष्योंकी प्रवृत्ति संसारमें दृढ़ हो ॥

एवम् आर्य भाइयो! आज इस योग दर्शनका कुछ सांश इस लेखमें आप को दिवाते हैं जिनमें स्वामीजीका लिखाया हुआ भ्रमज्ञान दूर होकर हमारे भाइयों की रुचि सत्यधर्मकी ओर लगे देखिये योगशास्त्रमें मुक्तिका स्वरूप इसप्रकार लिखा है—

“पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रति-  
प्रभवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वाचिनि  
शक्तिरिति योऽग्र ४ सू०-३४

अर्थ—पुरुषार्थ शून्य गुणोंका फिर पैदा न होना कैवल्य है वा स्वरूप प्रतिष्ठा है वा चैतन्यशक्ति है—अर्थात् मत रज और तम यह तीन प्रकारके प्रकृतिके गुण जब जीवोंकी किसी प्रकारका भी फल देना छोड़देते हैं पुरुषार्थ रहित होजाते आगामीकी यह गुण पैदा होजाने बंद होजाते हैं। भावार्थ—जब सब प्रकारके कर्माँ और सस्कारोंकी निर्जरा और संवर होजाता है तब जीव कैवल्य अर्थात् खालिम और शुद्ध रहजाता है और अपनेही स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है, अपने स्वरूपसे भिन्न जगत् की अन्य किसी वस्तुकी तरफ जीवकी



प्रवृत्ति नहीं होती है और चेतनाशक्ति अर्थात् ज्ञान ही ज्ञान रह जाता है—

नोट—योगशास्त्रके इस सूत्रसे सत्यार्थप्रकाशके मुक्तिविषयक सर्व निदुःख अस्त्य हो जाते हैं—क्योंकि इस सूत्रके अनुसार मुक्ति कर्मोंका फल नहीं वरण कर्मोंके नाशका काम मुक्ति है—मुक्ति के पश्चात् आगामी भी कर्मोंकी उत्पत्ति बन्द हो जाती है इस हेतु मुक्तिसे लौटना भी नहीं हो सकता है—सन, रज और तम तीनों गुणोंका नाश हो कर मुक्तिजीवमें प्रवृत्ति भी नहीं रहती है जिससे वह संकल्पी शरीर बनाने और कहीं घूमना फिर वरण अपनेही स्वरूप में स्थित रहता है और इस प्रकार स्थिर रहनेसे वह पाषाण की मूर्तिके समान जड़ नहीं हो जाता है वरण अपने ज्ञानमें सग्न रहता है वह पूर्ण चेतन स्वरूप अर्थात् ज्योतिस्वरूप हो जाता है—

“तद्भिः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी”  
यो० अ० १ सू० ५०

अर्थ—उक्त समाधिसे जो उत्पन्न हुआ संस्कार वह अन्य संस्कारोंको नाश करने वाला होता है—अर्थात् मुक्तिका उपाय समाधि है और उसमें सर्व संस्कार अर्थात् कर्मनाश हो जाते हैं—इसके प्रागे जो संस्कार समाधिसे उत्पन्न होता है उनके नाशका वर्णन करते हैं—

“तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्वीजस्माधिः” अ० १ सू० ५१ ॥

अर्थ—उस संस्कारके भी निरोध से

निर्वीज समाधि होती है—अर्थात् संस्कार विलकुल बाकी नहीं रहता है और जीव अपनी आत्मा ही में स्थित हो जाता है।

नोट—उपर्युक्त साधनोंमें अर्थात् कर्मोंका सर्वथा नाश करनेसे योगदर्शनमें मुक्तिकी प्राप्ति कही है परन्तु दयानन्द सरस्वती जी मुक्ति भी कर्मोंका फल बताते हैं और कहते हैं कि यदि ईश्वर अनित्य कर्मोंका फल नित्य मुक्ति देवे तो वह अन्याई हो जावे।

“क्लेशमूनः कर्माण्यो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः” ॥ अ० २ सू० १२ ॥

अर्थ क्लेश अर्थात् राग द्वेष अविद्या आदि ही कर्म आशयके मूलकारण हैं जो दृष्ट तथा अदृष्ट जन्मों में भोगा जाता है।

“तेलहाद परितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात्” ॥ २ ॥ १४ ॥

अर्थ—वे आनन्द और दुःख फल युक्त हैं पुण्य और पापके हेतु होनेसे अर्थात् कर्मोंके दो भेद हैं पुण्य कर्म और पाप कर्म पुण्यकर्मोंमें सामारिक सुख मिलता है और पापकर्मोंमें दुःख मिलता है।

“सत्त्व पुरुषयोः शुद्धिमाग्येकैवलयमिति” ॥ अ० ३ ॥ सू० ५४ ॥

अर्थ—जब सत्त्व और पुरुष दोनों शुद्धतामें समान हो जाते हैं तब कैवल्य हो जाता है—अर्थात् किसी वस्तुमें जब कोई दूसरी वस्तु मिलती है तबही खोट कहा जाता है जब दोनों वस्तु अलग २ कर दी जायें तो दोनों वस्तु स्व-

रुद्ध और खालिम कहलाती हैं—इसही प्रकार जीव और प्रकृति मिलकर खोटा पैदा होता है—प्रकृति के तीन गुण हैं सत्व, रज और तम—रज और तम के दूर होनेका वर्णन तो योगशास्त्रमें पूर्व किया गया—योगी में एक सत्व गुणका खोटा रह गया था उसका वर्णन इस सूत्र में करते हैं कि जब सत्व भी आत्मासे अलग होजावे और आत्मा और सत्व दोनों अलग २ होकर शुद्ध होजावें तब आत्मा कैवल्य अर्थात् खालिम होजाना है—मत रज और तम इनही तीनों गुणोंसे कर्म पैदा होते हैं जब प्रकृति के यह तीनों गुण नाश होकर आत्मा कैवल्य होगया तब कर्मका तो लेश भी बाकी नहीं रह सकता है।

नोट—नहीं मालूम म्यामीजीकी कहां से सरस्वतीका यह बर मिला है कि मुक्तिको भी कर्मोंका ही फल वर्णन करते हैं? जिससे हमारे लाखों भाइयों का अट्टान भ्रष्ट होगया और होनेकी सम्भावना है।

दयानन्दजीने मुक्तिको संसारके ही तुल्य बनानेके वास्ते मुक्ति पाकर भी जीवको अल्पज्ञ ही वर्णन किया है और मोक्षमें भी उसका क्रमवर्ती ज्ञान कहा है अर्थात् जिस प्रकार संसारी जीव अपने ज्ञान पर कर्मोंका आवरण होने की वजहसे इन्द्रियोंका सहारा लेते हैं और आत्मिक शक्ति ढकी हुई होनेके कारण संसारकी वस्तुओंको क्रम रूप देखते हैं अर्थात् सर्व वस्तुओं को एक साथ नहीं देखसके हैं ऐसी ही दशा

दयानन्दजीने मुक्तजीवोंकी बताया है कि वह भी क्रमरूप ही ज्ञान प्राप्त करते हैं—परन्तु प्यारे पाठकी! दर्शन कार इसके विरुद्ध कहते हैं और आत्माकी शक्ति सर्वज्ञताकी बताकर मोक्षमें सर्वज्ञताकी प्राप्ति दिखाते हैं—देखो योगदर्शन इसप्रकार कहता है:—

“ परिणामत्रयसंप्रसादनीतानागत ज्ञानम् ” ॥ अ० ३ ॥ सू० १६ ॥

अर्थ—तीन परिणामोंके संयमसे भूत और भविष्यतका ज्ञान होता है।

“ सत्वपुरुषान्यतरुयातिमात्रस्य सर्व भावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥ ४८ ॥

अर्थ—सत्व पुरुषकी अन्यतरुयाति मात्रको सर्व भावोंका अधिष्ठातापना और सर्वज्ञपना होता है।

ज्ञानतत् क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ३ ॥ ५१

अर्थ—ज्ञान ( काल का सब से छोटा भाग ) और उसके क्रम में संयम करने से विवेकज ज्ञान होता है।

नोट—आश्चर्य है कि योगशास्त्र तो क्रम में संयम करने का उपदेश करता है और उससे ही विवेक ज्ञान की प्राप्ति बताता है और दयानन्द जी ऐसी दया करते हैं कि मुक्तजीव के भी क्रमवर्ती ज्ञान बताते हैं आगे योग दर्शन विवेक ज्ञानको सर्वज्ञता बताता है

तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषयस-  
कसंचेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ ३ ॥ ६१

अर्थ—तारक अर्थात् संसार से तिराने वाला ज्ञान जो सर्व विषय को और उन की सर्व अवस्थाओं को युगपत

जानने वांता होता है अर्थात् भूत भविष्यत वर्तमान सर्व पदार्थों की एक ही वस्तुमें जानता है उसको चित्रकज्ज्ञान कहते हैं ।

नोट-प्यारे भाइयो, योगशास्त्र कैसी स्पष्टता के साथ योगी को सर्वज्ञता प्राप्त होने का वर्णन करता है पर स्वामी दयानन्द जी मुक्ति पाने पर भी उसको अलग ही रखना चाहते हैं।

सच तो यह है कि स्वामी दयानन्द जी ने या तो आत्मिक शक्ति ही जाना नहीं है या अस्मिक सिद्धान्तों को छिपा कर मनुष्यों को संसार में डराने की चेष्टा की है यदि हमारे भाई एक न-जा भी योग शास्त्र को देख जावें तो उन को मालूम हो जावे कि दयानन्द जी ने मुक्ति को बिल्कुल बच्चों का खेल ही बना दिया है। स्वामी जी को सत्यार्थप्रकाश में यह लिखते हुये अवश्य लज्जा आनी चाहिये थी कि मुक्ति जीव भी मंजरी शरीर बनाकर आनन्द के वास्ते जगह २ फिरता है और अन्य मुक्त जावां से भी मिलता रहता है ।

तासात्मनादित्वंवाशिषो नित्यत्वान् ॥ ४ ॥ १०

अर्थ-वै वासना अनादि हैं सुख की इच्छा नित्य होने से ।

हेतुफलप्रयत्नसम्पन्नैः संगृहीतत्वा देशान्मन्वतदभावः ॥ ४ ॥ ११

अर्थ-हेतु, फल, आश्रय और आत्मसम्पन्न से वासनाएं संगृहीत होती हैं

और इन हेतु, फल आदि के अभावसे वासनाओं का भी अभाव हो जाता है भावार्थ इन दोनों सूत्रों का यह है कि यद्यपि वासनाएं अनादि हैं परंतु मसाधि व्रत से वासनाओं का नाश हो जाता है और मुक्ति अवस्था में कोई वासना नहीं रहती है ।

मुक्ति में कोई कर्म बाकी नहीं रहना कोई वासना नहीं रहती सत्व, रज और तम कोई गुण नहीं रहता प्रकृति से भेद नहीं रहना जीवात्मा निर्गुण हो जाता है और कैवल्य, स्वच्छ रह जाता है फिर नहीं मालूम स्वामी जी को यह लिखने का कैत माहस हुआ कि मुक्त जीव इच्छानुसार मंजरी शरीर बनाकर सर्वस्थानों के आनन्द भोगते हुये फिरते रहते हैं ?

देखिये योग दर्शन में वैराग्यका लक्षण इस प्रकार किया है ।

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वर्णाकार संज्ञावैराग्यम् ॥ १ ॥ १५

अर्थ-दृष्ट और अनुश्रविक विषयों की तृष्णासं रहित चित्त के बश करने को वैराग्य कहते हैं ।

तत्परमपुरुष ख्यातेर्गुण, वैतृष्यधम् ॥ १ ॥ १६

अर्थ-वह वैराग्य परम पुरुष की ख्याति से प्रकृति के गुण अर्थात् सत्व रज तम और उन के कार्य में तृष्णा रहित होना है ।

अब हम पूछते हैं कि जीव जब सत्व, रज और तम प्रकृति के इन ती-

नों गुणों से रहित स्वच्छ हो तब वह संकल्पी शरीर बना सकता है या नहीं और संकल्पी शरीर बनाने की इच्छा और सर्व स्थानों का आनन्द लेते फिरना राग है या वैराग्य ? क्या वैराग्य के द्वारा मुक्ति प्राप्त करके मुक्त होते ही फिर जीव रागी हो जाता है ? क्या यह अत्यंत ब्रह्म बात नहीं है ? और यदि ऐसा हो भी जाता है तो वह अवश्य दुःख में है क्योंकि जहां राग है वहां ही दुःख है देखिये योगशास्त्र में ऐसा लिखा है-

सुखानुशयी रागः ॥ २ ॥ ७

अर्थ-सुख के साथ अनुबंधित परिज्ञान को राग कहते हैं--भावायं यदि मुक्त जीव को सुखके अर्थ संकल्पी शरीर धारण करना पड़ता है और जगह २ घूमना होता है तो उस में अवश्य राग है परंतु राग को योगदर्शन में क्लेश वर्णन किया है-

अविद्याःस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः  
पञ्चक्लेशाः ॥ २ ॥ ३

अर्थ अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष और अभिनिवेश यह पांच प्रकार के क्लेश हैं—

इन हेतु दयानन्द जी के कथनानुसार दयानन्द जी की मुक्त जीवों पर ऐसी दया होती है कि उन को वह क्लेशित बनाना चाहते हैं—क्लेशित केवल राग ही के कारण नहीं बरण अविद्या के कारण भी क्योंकि जबतक

सर्वज्ञ नहीं है तब तक ज्ञान में कमी ही है और इस कारण क्लेश है सरस्वतीजी का भी यह ही कथन है कि सर्वज्ञ होने के कारण जीव एक ही समय में सर्व वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करके एक साथ ही आनन्द नहीं ले सकता है बरण अल्पज्ञ होने के कारण उस को स्थान स्थान का ज्ञान प्राप्त करने के वास्ते जगह २ घूमना पड़ता है क्या यह थोड़ा क्लेश है ? और तिसपर स्वामी जी कहते हैं कि मुक्तजीव परमानन्द भोगता है । योगशास्त्र में तो अविद्या को ही सर्व क्लेशों का मूल वर्णन किया है-

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनु वि-  
च्छिन्नो दाराणाम् ॥ १ ॥ ४ ॥

अर्थ-प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार रूप अगले सर्व क्षेत्रों का कारण ( क्षेत्र ) अविद्या ही है ।

अभिविवेश का लक्षण योगशास्त्र में इस प्रकार है-

स्वरसवाही विदुषोपि तथा रुद्धोभि-  
निवेशः ॥ १ ॥ ९

अर्थ जो भूर्ख तथा पण्डितों को एक मगान प्रवेश हो उसे अभिनिवेश कहते हैं योगशास्त्र के भाष्यकारों ने इस का दृष्टान्त यह लिखा है कि जैसे इस बात का क्लेश मय को होता है कि हम को मरना है इन ही प्रकार के क्लेश अभिनिवेश कहाते हैं स्वामीजी ने मुक्ति से लौटकर संसार में फिर लौटने का भय दिखाने के कारण मुक्त

जीवों की अभिनिवेश क्लेशमें भी फंसा दिया इस ही प्रकार स्वामी जी के कथनानुसार अस्मिता और द्वेषभी मुक्त जीवोंमें घटते हैं अर्थात् मुक्त जीव पाँचों प्रकार के क्लेशों में फंमता है। नहीं सालूम सरस्वती जी को मुक्त जीवों से क्यों इतना द्वेष हुआ है कि उन को सर्व प्रकार के क्लेशों में फंमना चाहते हैं ? परन्तु मुक्त जीवों पर तो स्वामी जी का कुछ वश नहीं चलैगा। हाँ, कहना तो उन संसारी मनुष्यों पर आनी चाहिये जो दयानंद जी की शिक्षा पाकर मुक्ति साधन से अरुचि करलेंगे और संसार के ही बंधाने में लगे रहेंगे-

प्यारे आर्य भाइयो। योग दर्शनकी पढ़ी और उस पर चलो जिसमें ऐसा लिखा है, सत्यार्थप्रकाश के भरोसे पर कपों अपना जीवन खराब करते हो--  
दृष्टदृश्ययोः संयोगो हेय हेतुः ॥ २॥१७

अर्थ-देखनेवाला और देखने योग्य वस्तु इनका जो संयोग है वह त्याज्य का मूल है अर्थात् मोक्ष साधनमें त्याग ही एक उपादेय है और त्याग का मुख्य तत्त्व यह है कि ज्ञेय वा दृश्य अर्थात् देखने योग्य सर्व वस्तुओं का जो संयोग देखने वाला करता है वह त्याग दिया जावे-

परन्तु स्वामी जी इस के विरुद्ध कहते हैं कि मुक्त जीव इस ही संयोग मिलने के वास्ते संवत्सरी शरीर बनाता है और जगह २ घूमता फिरता है।

तत्त्वहेतुरविद्या ॥ २ ॥ २४

अर्थ-उस संयोग का हेतु अविद्या है। तब ही तो स्वामी जी ने मुक्तजीव को अल्पज्ञ बताया है परन्तु प्यारे आर्य भाइयो! स्वामी जी कुछ ही कहें आप जरा योग दर्शन की शिक्षा पर ध्यान दीजिये देखिये कि सस्पृष्टतासे कहा है--

तद्भावात्संयोगाभावो हानम् तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ २ ॥ २५॥

अर्थ-उसके अर्थात् अविद्या के अभाव से संयोग का अभाव होता है और वही दृष्टाका कैवल्य अर्थात् मोक्ष है बिना सर्वज्ञता प्राप्त होनेके और सर्व पदार्थों में प्रवृत्ति की हटाकर आत्मस्य होनेके बिदून मुक्ति ही नहीं हो सकती है। भावार्थ मत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी ने मुक्ति का वर्णन नहीं किया है वरन् मुक्ति को हमी का स्थान बना दिया है।

## आर्यमतलीला ॥

( २८ )

संसारमें तो यह ही देखने में आता है कि तृष्णावान् को दुःख है और सन्तुष्टोंको सुख--एक महाराजाको सात खरबका राज्य मिलने से उसना सुख प्राप्त नहीं होता है जितना जंगलमें पड़ेहुए एक योगीको सुख है। धर्म सुखप्राप्तिका मार्ग है इस ही हेतु धर्म का मूल त्याग है--इन्द्रियोंको विषय भोगोंसे हटाना चित्त की वृत्तियों की

रोकना सुखप्राप्ति का उपाय है-और संसारके मर्त्य पदार्थों में चित्तको दृढ़ कर अपने ही आत्मा में स्थिर और शान्त होजाना परम आनन्द है और यह ही मोक्षता उपाय है-इस ही हेतु मोक्ष में परम आनन्द है क्योंकि वहां ही जीवात्मा प्रकृतिके मय विकारोंसे रहित हो कर पूर्णरूप स्थिर और शान्त होता है--

परन्तु स्वामी दयानन्दजी इस सुख को नहीं मानते हैं वह इस स्थिर और शान्तिदशा को पथरकी मूर्त्तिके समान जड़ अनजाना बनाते हैं इस ही कारण मुक्ति जीवोंके वास्ते भी वह आवश्यक समझते हैं कि वह अपनी इच्छानुसार कल्पित शरीर बनाकर जगद् २ का आनन्द भोगते हुए फिरते रहें-स्वामीजीको मुक्ति का साधन करने वाले योगियों का परिग्रह त्याग और आत्मध्यान भी व्यर्थता ही क्लेश प्रतीत पड़ता है उनको यह कब रुचि कर हो सक्ता है कि योगी संसारकी सर्व वस्तु और शरीरका समत्व छोड़ दे और कपड़े पहनेका खेड़ा न रख कर नग्न अवस्था धारण कर आत्मध्यानमें लगे? वरण स्वामीजी तो यहां तक चाहते हैं और सत्यार्थप्रकाशमें उपदेश देते हैं कि योगीको चांदी मोना धन दौलत भी रखनी चाहिये= परन्तु प्यारे आर्यभाइयो ! अपने और स्वामीजीके मान्य ग्रन्थ योगदर्शन की देखिये जिसकी आप मुक्ति सोपान

समझते हैं--उससे आपको विदित हो जायगा कि सरस्वतीजीकी जिज्ञा वि-लकुण धर्ममार्गके विरुद्ध और संसारमें फंसाने वाली है ।

देखिये योगदर्शन इस प्रकार लिखता है--

“ योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ” यो० अ० १ सू० २

अर्थ-चित्तकी वृत्तियोंके निरोध अर्थात् रोकनेको योग कहते हैं--भावार्थ अपने ही आत्मा में स्थिरता हो इस से बाहर किसी वस्तु को तरफ प्रवृत्ति न हो ॥

“ तदाद्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ” ॥१॥३॥

अर्थ--उस समय अर्थात् चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होने पर जीवात्मा का अपनेही स्वरूपमें अवस्थान होता है-

“ वृत्तिसारूप्यमितरत्र ” ॥ १॥ ४॥

अर्थ-अन्य अवस्था में अर्थात् जब चित्तकी सर्ववृत्तियोंको रोककर जीवात्मा अपनेही स्वरूपमें मग्न नहीं होता है तब वह चित्तवृत्तियोंके रूपको धारण करलेता है--यह दशा सर्व संसारी जीवोंकी रहतीही है--

नोट--सहस्रियोंने मुक्तिका साधन तो यह बनाया कि चित्त की वृत्तियों को रोककर अपनीही आत्मा में अवस्थित होजायें--परन्तु स्वामीजी कहते हैं कि मुक्ति प्राप्त होने पर यदि जीवात्मा अपने ही आत्म में स्थिर रहे और नाना प्रकार चेष्टा न करे, इच्छा प्राप्त न हो-इच्छानुसार कल्पित शरीर न

बनावे और जगह २ घूमता न फिरे तो यह पत्थरके समान जड़ होजावे--परन्तु हमको आश्चर्य है कि सरस्वतीजी ने इतना भी न विचारा कि यदि मुक्ति अवस्थामें इस प्रकार प्रवृत्ति करने और चित्त वृत्तियों में लगने और संसारी जीवों के समान वृत्तियों का रूप धारण करने की जरूरत है तो मुक्ति-साधन के वास्ते इन वृत्तियों के रोकने और अपने आत्मा में ही स्थिर होने की और योग धारण करने की क्या जरूरत है ? योग धारण करना और चित्त वृत्तियों को रोककर आत्मा में स्थिर होना कोई सहज बात नहीं है इसके वास्ते योगी को बहुत कुछ अभ्यास और प्रयत्न करना पड़ता है परन्तु जब मोक्ष में जाकर भी इन वृत्तियों में कंमना और आत्म स्थिरता को छोड़कर चंचल बनना है तो दयानन्द जी के कथनानुसार योग साधन का सब उपाय व्यर्थ का ही कष्ट डहरता है--

देखिये योगदर्शन चित्त की वृत्तियों को रोककर आत्मस्थ होने के वास्ते क्या क्या उपाय बताता है--

“अभ्यास विराग्याभ्यान्तजिरोधः” ॥

१ ॥ १२ ॥

अर्थ--वह निरोध अर्थात् चित्त की वृत्तियों का रोकना अभ्यास और विराग्य से होता है--

तच्चस्थितौ यत्रोऽभ्यासः ॥ १ ॥ १३ ॥

अर्थ--आत्मा में स्थिर होने में यत्न

करने को अभ्यास कहते हैं ।

सतुदीर्घकाल नैरन्तर्यं सत्कारासेवितो दृढ भूमिः ॥ अ० १ सू० १४

अर्थ--वह अभ्यास बहुत काल तक निरन्तर अर्थात् किसी समय किसी अवस्था में वा किसी विघ्न से त्याग न करते हुये अधिक आदरके साथ सेवन करने से दृढ़ होता है--

एवारे आर्य्य भाइयो ! योगशास्त्र तो हम प्रकार अत्यंत कष्टनायक आत्म स्थिति और चित्त वृत्तियों की रोकने में आनन्द बताता है स्वामी दयानन्द जी उसको पत्थर के समान जड़ अवस्था कहें वा जो कुछ चाहें कहें--

“निर्विचार देशरद्वैतपात्मप्रसादः” ॥ १ ॥ ४७ ॥

अर्थ--निर्विचार समाधि के विचारद भाव में अध्यात्मिक प्रसाद है--अर्थात् आत्मिक परम आनन्द प्राप्त होता है--

एवारे आर्य्य भाइयो ! योगदर्शन तो प्रारम्भ से अंत तक चित्त वृत्तियों के रोकने और आत्मा में स्थिर होने ही को मोक्ष मार्ग और धर्म का उपाय बताता है--

तत्र स्थिर सुखमामनम् ॥ २ ॥ ४६

अर्थ--जिसमें स्थिर सुख हो वह आसन कहाना है अर्थात् जिसकी महायत्ना से मनी भांति धैर्य जाय उसे आसन कहते हैं । वह पद्मासन, दण्डासन, स्वस्तिक के नाम से विख्यात हैं यह आसन जब स्थिर वक्त्र रहित और योगी को सुख दायक होते हैं

तब योग के अंग कहे जाते हैं-

नोट-स्वामी दयानन्द जी तो आसन की जड़ पत्थर के समान ही हो-जाना समझते/होंगे।

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापित्तिभ्याम्

॥ २ ॥ ४९

अर्थ-प्रयत्न के शिथिल होने और अनन्त समापित्ति से आसन की मिट्टि होती है अर्थात् आसन निश्चय होते हैं और चित्त की चंचलता क्षय हो जाती है-

नोट-दयानन्द सरस्वती जी तो इन बातों को कभी न मानते होंगे ? क्योंकि प्रयत्न तो वह जीव का लिंग बताते हैं और हम ही हेतु मांस में भी जीवका प्रयत्न मिट्टु करते हैं स्वामी जी तो जेनियों से हम ही बानसे रुष्ट हैं कि जेनी मुक्तिजीव का प्रयत्न रहित एक स्थान में स्थित ज्ञान स्वरूप आनन्दमें मग्न रहना बताते हैं और इसके ख-यहन में सत्यार्थप्रकाश में कई कागज काले करते हैं-प्राणधारी मनुष्य अर्थात् योगी के वास्ते हम प्रकार पत्थर बन जाने को तो वह कब पसन्द करेंगे ?

परन्तु स्वामी जी जो चाहें मखीन सड़ावें योगशास्त्र की तो ऐसी ही शिक्षा है

तस्मिन् सतिश्वासप्रश्वासयोगगतिवि-  
च्छेदः प्राणायामः २ ॥ ४८

अर्थ-आसन स्थिर होनेपर जो श्वासोश्वास की गति का अवरोध होता है

उसे प्राणायाम कहते हैं अर्थात् आसन स्थिर होकर श्वास उश्वास के रुक-ने को प्राणायाम कहते हैं।

नोट-दयानन्द जी मुक्त जीवों पर तो आप की दया होगई जो उनको स्थिरता से छुड़ाकर इन प्रयत्न में लगा दिया कि वह संकल्पों शरीर बनाकर जगह जगह का आनन्द लेते फिरा करें परन्तु योगियों पर भी तो कुछ दया करनी चाहिये थी ? देखो मह-र्षि पातञ्जलिने तो योग दर्शन में उन का मांस रोक कर सचमुच ही पत्थर की मूर्ति बना दिया हमारे आर्यभट्ट प्राणायाम के यहुत शोकीन हैं इनको भी कोई ऐसा प्रयत्न बना दिया हो-ता जिन को करते हुं भी प्राणायाम मिट्टु होता है और चंचलता भी यनी रहै ?

वाच्याभ्यन्तर विषयास्तेपीचतुर्थः ॥२॥५०

अर्थ-जिममें वाच्य और आभ्यन्तर विषयों का परित्याग हो वह चीथा प्राणायाम है-तीन प्रकारके प्राणायाम पहले दर्शन करके इस सूत्र में चीथा वर्णन किया है।

नोट-दयानन्द जी तो मुक्तजीव को भी विषय रहित नहीं बनाना चाहते हैं हम ही हेतु इच्छानुसार कल्पित शरीर बनाकर असक्त करना और अन्य मुक्त जीवों से मिलना जुलना आवश्यक बताते हैं। इस प्रकार की क्रिया वाच्य विषय से हो वा आ-



भ्यन्तर विषय से इन की सरस्वतीजी ही जानते होंगे ! परन्तु योगदर्शन में तो प्राणायाम ही में जो योग और मुक्ति साधन का एक बहुत छोटा दर्जा है, व्यास और आभ्यन्तर दोनों विषयों की उड़ा दिया ।

ततःतीयते प्रकाशावगन्तु ॥ २ ॥ ५१ ॥

अर्थ-प्राणायाम निद्रि के अनन्तर ज्ञान का आवरण समाप्त हो जाता है अर्थात् ज्ञान का प्रकाश होने लगता है ।

नोट-दयानन्द जी ने मुक्ति निद्रि पर मुक्त जीवों के माथ फिर वह विकार लगा दिये हैं जो प्राणायाम में छोड़े गये थे अर्थात् प्रयत्न चञ्चलता और विषय धारणा इन ही कारण जो ज्ञान का आवरण प्राणायाम के पश्चात् दूर हुआ था वह दयानन्द जी ने मुक्त जीवों पर डाल कर उन ही अप्रपञ्च बना दिया !

द्वारे पाठको ! योगदर्शन के अनुसार योगी के वास्ते मध्य में प्रथम काम पांच यम पालन करना है ।

यमनियमाऽऽवनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानमसाध्याष्टावंगानि ॥ २ ॥ २९

अर्थ-यम, नियम, आमन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, योग के यह आठ अंग हैं ।

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिलयेज्ज्ञानदीप्तिराविशेषरूपमतेः ॥ २ ॥ २८ ॥

अर्थ-योग के अंगों की क्रमशः अनुष्ठान करने से अशुद्धि के लय होने पर ज्ञान का प्रकाश होता है... क्रमशः का भावार्थ यह है कि यम के पश्चात् नियम और नियम का पालन होने पर आमन इस ही प्रकार मिल मिले वार प्रदत्त करता है । अर्थात् यम मध्य से क्रम दर्जे में और मध्य से प्रथम है । इन के पालन बिदून तो आगे चल ही नहीं सकता है ।

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्याऽपरिग्रहायमाः ॥ २ ॥ ३०

अर्थ-तिनमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह यह पांच यम हैं ।

जातिदेशकालमयाऽनवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥ २ ॥ ३१

अर्थ जाति देश, काल और समय की मर्यादा से न काके सर्वथा पालन करना महाव्रत है-अर्थात् उपरोक्त पांच धर्मों को बिना किसी मर्यादा के सर्वथा पालन करना महाव्रत है और मर्यादा सहित पालन करना अनुव्रत है ।

अब द्वारे आर्य भाइयो ! विचार-ने की बात है कि, परिग्रह कहते हैं सामाजिक वस्तुओं ( अस्वाद्य ) और उन की अभिवाच को संभार का कोई भी अस्वाद्य न रखना और न उस में समत्व रखना अपरिग्रह कहलाता है । अपरिग्रह महाव्रत धारण करने में किसी प्रकार की मर्यादा नहीं रह-

ती है कि अमुक वस्तु रखें वा अमुक न रखें महाव्रत तो बिना मर्यादा ही होता है इस हेतु आप ही सोचिए कि महाव्रती योगी वस्त्र रखेगा वा नहीं ? क्या एक लंगोटी रखना भी अपरिग्रह महाव्रतकी मंग नहीं करेगा ? अवश्य करेगा--महाव्रती को यो गदर्शनके अनुसार अवश्य नग्न रहना होगा । इसके अतिरिक्त प्यारे भाइयो जब आप योगके आठों अंगोंकी समझेंगे और वैराग्य ही को योगका साधन जानेंगे तब आपको स्वयम् निश्चय हो जायगा कि योगीकी वस्त्र, लंगोटी का ध्यान तो क्या अपने शरीर का भी ध्यान नहीं होता है--नग्न रहनेकी लज्जा करना वा अन्य कारणोंसे वस्त्र की आवश्यकता समझना योगसाधन का बाधक है और जिनको इस प्रकार लज्जा आदिकका ध्यान होगा उससे तो संसार छूटा ही नहीं है वह योग साधन और मुक्तिका उपाय क्या कर सकता है ?

प्यारे भाइयो ! साधुके वास्ते मोक्षके माधनमें नग्न रहना इतना आवश्यक होनेपर भी हमारे बहुतसे आर्य भाई नग्न अवस्थाकी हंसी उड़ाकर क्या धर्म की हंसी नहीं उड़ाते हैं ? अवश्य उड़ाते हैं ।

मुश्किल यह है कि स्वामी दयानन्दजी ने अंगरेजी पढ़े हुये भाइयोंकी अपनी और आकर्षित करनेके वास्ते उनके

आजादीके खयालको लेकर सब बाहि-यात और भूटका पाठ पढ़ाना शुरू कर दिया और बहुत सी बातोंको असम्भव और नामुमकिन बताकर भोले लोगोंके खयाल को बिगाड़ दिया ॥

अफसोस है कि स्वामीजीके ऐसे व-तांसे हमारे आर्यभाई जीवात्माकी शक्तियोंको समझनेसे वंचित रहेजाते हैं और अंगरेजीकी तरह जड़ पदार्थ की ही शक्तियोंके दृढ़ने और मानने में लगते जाते हैं--महर्षि पातञ्जलि ने योगशास्त्र में जो आत्मिक अतिशय वर्णन की हैं उनका सारांश हम नीचे लिखते हैं और अपने आर्य भाइयोसे प्रार्थना करते हैं कि इनमें अपना विचार दें--और आत्मिक शक्तियोंकी खोजमें लगें ।

“ अहिंसा प्रतिष्ठायांतत्संनिधी वैर त्यागः ॥ २ ॥ ३५ ॥

अर्थ--योगीका चित्त जब अहिंसा में स्थिर होजाता है तब उसके समीप कोई प्राणी वैर भाव नहीं करता है अर्थात् शेर, सांप विच्छू आदिक दुष्ट जीव भी उसकी कुछ बाधा नहीं पहुँचा सके हैं ।

“ शठद्वार्यप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभाग संयगात् सर्व भूतकृतज्ञानम् ” ॥ ३ ॥ १७

अर्थ-- शब्द अर्थ और ज्ञानमें परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होनेसे शब्द स-झरता है और उनके विभागमें संयम

करनेसे प्राणीमात्र की भाषाका ज्ञान होता है-अर्थात् पातञ्जलि ऋषिका यह मत है कि योगीको मर्त्य जीवोंकी भाषा समझने का ज्ञान होसکتा है भावार्थ ज्ञानवरोंकी भी झोली समझ सकता है ।

“संस्कारमाज्ञात् करणात् पूर्वजाति ज्ञानम्” ॥ ३ ॥ १८ ॥

अर्थ--संस्कारोंके प्रत्यक्ष होनेसे पूर्व जन्मोंका ज्ञान होता है ॥

“कण्ठकूपेक्षुत्पिपामानिवृत्तिः ॥३॥२९  
अर्थ--कंठके नीचे कूपमें संयम करने से भूख और प्यास नहीं रहती ।

“मूर्ध्नि ज्योतिषि भिद्दर्शनम् ॥३॥३१  
अर्थ--कपालस्थ ज्योतिमें संयम करनेसे सिद्धोंका दर्शन होता है ।

“तदान जयांजल पंकटकादिपत्र संउत्क्रान्तिश्च” ॥ ३ ॥ ३८

अर्थ--उदानादि वायुके जीतनेसे कंठकादि का स्पर्श नहीं होता और उत्क्रान्ति भी होती है ।

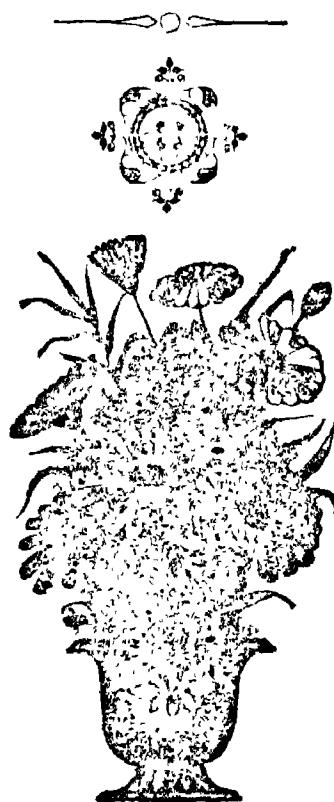
“काया काशयोः सम्यन्धसंयमाल्लघूत्तलसमापत्तेश्चाकाश गमनम्” ॥ ३॥४१

अर्थ--शरीर और आकाशके सम्यन्ध से संयम करनेसे और लघू आदि पदार्थोंकी समापत्तिसे आकाशमें गमन सिद्ध होता है ।

प्यारे आर्य भाइयो ! विशेष हन क्या कहें आपको यदि अपना कल्याण

करना है तो हिन्दुस्तानके महात्माओं और ऋषियोंने जो आत्मिक शक्तियों की खोजकी है और जिस कारण यह हिन्दुस्थान मर्यापारि है उसको समझो और मुक्तिके मच्च मार्गकी पहचानो ।

दिन शुभम् ।



## ॥ निवेदन ॥

आर्यसमाज नामक संस्थाके चतुर संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने अपने लेख और सिद्धान्तोंमें यथा शक्ति यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि वेद ( ऋग, यजु, साम और अथर्व नामक चारोंसंहिता ) ईश्वर प्रणीत हैं, वह सर्व कल्याणकारी विद्याओंके उत्पादक स्थान हैं तथा उन्हींके उपदेशानुकूल चलनेसे मनुष्यका यथार्थ कल्याण होसका है और अब भी स्वामी जीके अनुयायी हमारे आर्यसमाजी भाई अपने प्रयास भर वैसा प्रतिपादन करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। उपरोक्त वेदोंके वर्तमान में सायण, महीधर और मोक्षमूलर ( Maxmuller ) आदि कृत अनेक भाष्य पाये जाते हैं और वह इतने विशद् हैं कि अनेक परस्पर विरुद्ध संप्रदायों यहाँतक कि बाममागादि ने भी अपना सिद्धान्त पोषक स्थान वेदको ही माना है परन्तु हमारे स्वामीजीने यह कहकर उन सर्व प्राचीन भाष्योंको अमान्य करा दिया है कि वे सृष्टिक्रम विरुद्ध, हिंसा और व्यभिचारादि घृणित कार्योंसे परिपूर्ण हैं और उनके पढ़ने से वे सर्ववैद ईश्वर प्रणीत होना तो एक ओर किसी बुद्धिमान् भी मनुष्य कृत प्रमाणित नहीं होसके और इसी अर्थ अपने मन्तव्यों को पोषण करने के अर्थ स्वामीजीने उनपर अपना एक स्वतन्त्र नवीन भाष्य रचा है। यद्यपि यह विषय विवाद ग्रस्त है कि स्वामीजीका वेद भाष्य ही क्यों प्रामाणिक है परन्तु इसपर कुछ ध्यान न देते हुये जैनगजटके भूतपूर्व सुयोग्य सम्पादक सिरसावा निवासी श्रीयुत बाबू जुगलकिशोर जी मुख्तार देवबन्दने अपने सम्पादकत्व कालमें सन् १९०८ ई० के जैनगजट के २८ अंकों में यह “आर्यमत लीला” नामक विस्तृत और गवेषण पूर्ण लेखमाला निकालकर समाजका बड़ा उपकार किया है। बाबू साहबने अपनी सुपाठ्य और मनोरंजक सरल भाषामें स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके भाष्यानुसार ही आर्यसमाजके माने हुये प्रामाणिक वेद व अन्य सिद्धान्तोंकी जो यथार्थ समालोचना कर सब साधारण विशेषकर हमारे उदार हृदय, समाज सुधारक ( Social Reformer ) सांसारिक उन्नतिकी उत्कट आकांक्षा रखनेवाले, उन्नतिशील और सच्चे धर्मके अन्वेषी आर्यसमाजी भाइयोंका भ्रमान्धकार दूर करनेका जो श्लाघनीय परिश्रम किया है उसके कारण आप शतशः धन्यवादके पात्र हैं। जैनगजटके अंकों में ही इस “लीला” के बने रहनेसे सर्व साधारणका यथा उचित विशेष उपकार नहीं होसकता ऐसा विचारकर हमारी सभाने अपने हृदय से केवल सत्यासत्य निर्णयार्थ सर्वको यथार्थ लाभ पहुंचाने के सद् उद्देश्यसे ही इसको पुस्तकाकार मुद्रित कर प्रकाशित किया है। अन्तमें हमको पूर्ण आशा तथा दृढ विश्वास है कि इसको निष्पक्ष एक बार पठन करने से और नहीं तो हमारे प्रिय आर्यसमाजी भाइयों को ( जिनका कि वेदोंको पढ़ना और पढ़ाना परम धर्म भी है ) अवश्य ही वेदोंको-जिनका कि पढ़ना और समझना अब प्रत्येक पर्याप्त हिन्दी जानने वाले साधारण बुद्धिमान् पुरुष को भी वैदिक ग्रन्थालय अजमेर से स्वल्प मूल्यमें ही प्राप्तव्य स्वामि भाष्य वेदोंसे सुलभ साध्य होगया है-कमसे कम एकवार पाठ करनेका उत्साह और उसपर निष्पक्ष विचार करनेसे उनको वेदोंका यथार्थ ज्ञान प्रगट होजायगा और ऐसा होनेपर उनको निज कल्याणार्थ सत्य धर्म की अवश्य ही खोज होगी। हमारी यह आन्तरिक मङ्गल कामना है कि मनुष्य मात्र वस्तु स्वभाव सच्चा धर्म लाभकर अपने अनन्त, अविनाशी, स्वाधीन, निराकुल, और आत्मस्वरूप आनन्दको प्राप्त होवे ॥ इति शुभम् ॥

जीवमात्रका हितैषी—

जनवरी १९११ ईस्वी

हटाया

}

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मन्त्री

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा

श्री जैनतत्व प्रकाशिनी सभा इटावाके

## मुख्योद्देश्य ।

प्रियवर सुहृद्गण ! काल दोष तथा अन्य भी कई कारणोंसे वर्तमान समयमें जैनधर्मके विषयमें सर्व साधारणका प्रायः मिथ्या ज्ञान होरहा है । अतः उसको और जैन जातिपर लगे हुये मिथ्या दोष व किम्बदन्तियोंको दूर कर लेख और व्याख्यानादि द्वारा जैनधर्मकी सच्ची प्रभावना करना “अहिंसा परमोधर्मः” का प्रकाश विद्याका प्रचार और कुरीतियां दूर करना इस सभाके मुख्योद्देश्य हैं ॥

## विकाऊ ट्रेक्ट ।

आर्योंका तत्वज्ञान । ट्रेक्ट नं० १-२

इसमें ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्व और वेद प्रकाशत्व पर विचार तथा आकाश और उसके शब्दगुण होनेपर विचार है की० ॥ सैकड़ा २)

ईश्वरका कर्तृत्व । ट्रेक्ट नं० ३

इसमें ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्वका खण्डन है । की० १ पाई सैकड़ा ॥ ३)

भजन मंडली । ट्रेक्ट नं० ४

जैनतत्व स्वरूप प्रदर्शक और कुरीति निषेधक नवीन सामयिक भजन हैं । की० ॥ सैकड़ा २)

कुरीति निवारण । ट्रेक्ट नं० ५

इसमें बाल विवाह, वृद्ध विवाह, कन्या विक्रय, वेश्यानृत्य, आतशवाजी, फुलवारी और अश्लील गानकी खराबियां दिखाई हैं । की० ॥ सैकड़ा १)

जैनियोंके नास्तिकत्व पर विचार । ट्रेक्ट नं० ६

यथा नाम तथा गुणः । की० ॥ सैकड़ा १)

धर्माभ्युपगम रसायन ट्रेक्ट नं० ७

संसार दुःखसे संतप्त पुंसोंके अर्थ रसायन । विना मूल्य वितरित ।

आर्यमत लीला । ट्रेक्ट नं० ८

इसमें आर्य वेदों और मिथ्यान्तोंकी पोल है । की० ॥ सैकड़ा २४)

मिलनेका पता—

मन्त्री-चन्द्रसेन जैन वैद्य-इटावा ॥

\* मन्देजिनवरम् \*

श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाका अट्टारहवां दौरा,  
शास्त्रार्थ अजमेरका पूर्वरङ्ग  
और दो मौखिक शास्त्रार्थोंका

\* पूर्ण विवरण ॥

जिसको

चन्द्रसेन जैनवैद्य सम्प्रदायी श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी  
सभाने सर्वसाधारणके हितार्थ छपाकर  
प्रकाशित किया ॥

श्रीवीर निर्वाणारब्द २४३८

प्रथमावृत्ति }  
१५००

{ की० = )॥ डार्ड आना  
सैकड़ा १४) रु०

Printed by B. D. S. at The Brahm  
Press—Etawah.

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाको

## विकाज पुस्तकें !

॥ आर्योंका तत्त्वज्ञान ॥

इसमें ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्व और वेद प्रकाशकत्व पर विचार तथा आकाश और उसके शब्द गुण होने पर विचार ऐसे दो लेख हैं। कीमत ॥ आध आना । से० २)

॥ ईश्वरका कर्तृत्व ॥

इस में ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्व का खण्डन है । की० एक पाई । से० ॥३)

॥ कुरीति निवारण ॥

इस में बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय, वेश्यानृत्य, आतशवाजी, फुलबारी और अश्लील गानकी खराबियाँ दिखाई हैं। की० ॥ एक पैसा । से० १)

॥ भजनमण्डली प्रथमभाग ॥

जैनतत्त्वस्वरूपप्रदर्शक और कुरीतिनिषेधक नवीन सामयिक भजन हैं । की० ॥ से० २)

॥ जैनियों के नास्तिकत्व पर विचार ॥

यथा नाम तथा गुणः । की० ॥ एक पैसा से० १)

॥ धर्माभूत रसायन ॥

संसार दुःखसे संतप्त पुरुषोंको सुख शान्त दाना नही पधि । की० -) एक आ० से० ५)

॥ आर्यमत लीला ॥

इस में आर्य वेदों और सिद्धान्तोंकी पोल है । की० ॥ २) कः आना । से० २४)

॥ भजनमण्डली द्वितीय भाग ॥

उपर्युक्त प्रकारके उत्तमोत्तम भजन हैं । की० ॥ आध आना । से० २)

॥ भजन स्त्रीशिक्षा ॥

इसमें स्त्रीशिक्षाके उत्तमोत्तम भजन हैं । की० ॥ एक पैसा । से० १)

॥ सृष्टिकर्तृत्व मीमांसा ॥

इसमें सृष्टिकर्तृत्व पर उत्तम विवेचन है । की० -) एक आना । से० ५)

॥ भूगोल मीमांसा ॥

कीमत ॥ आध आना । से० २)

॥ आर्योंकी प्रलय ॥

इसमें आर्यों के प्रलय सिद्धान्त की पोल है । की० -) एक आना । से० ५)

॥ कंवर दिग्वजय सिंह का सचित्र जीवन चरित्र और व्याख्यान ॥  
कीमत की पुस्तक ॥ आध आना । से० ३)

पता:—मन्वी चन्द्रसेन जैनवेद्य-इटावा ।

\* चन्दे जिनवरम् \*

श्रीजैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाका अठारहवां दौरा ।

और

शास्त्रार्थ अजमेरका पूर्वरङ्ग ।

अजमेरमें कुछ दिनोंसे वहाँके उत्साही और मात्सर जैन नवयुवकोंने एक श्रीजैन कुमारसभा अजमेर नामक संस्था स्थापित कर रखी है और उसके द्वारा वह निज ज्ञान और चरित्र की वृद्धि करते हुए जैन धर्मकी सच्ची प्रभावना कर स्वपर कल्याण करनेका सदैव उद्योग किया करते हैं । विशेषतः अङ्गरेजी शिक्षा प्राप्त या प्राप्त करने वाले नवयुवकोंको काम करनेका बड़ा उत्साह हुआ करता है और जहाँ कहीं वे काम होता हुआ देखते हैं उसमें जाकर सम्मिलित हो जाते हैं । वर्तमानमें कालदोष तथा अन्य भी कई कारणोंसे हमारा जैनसमाज अपने सत्यधर्मके प्रचार करनेके उद्योग और तद्द्वारा संसारको लाभ पहुंचाने के कार्यमें बहुत पिछड़ा हुआ है, अतः जैनसमाजके होनहार और साक्षर नवयुवकोंमेंसे बहुतसे जैनसमाजमें कुछ काम होता हुआ न देखकर उससे उदासीन हो जाते हैं और उन आर्यसमाजादि संस्थाओंमें ( जो कि प्रचार आदिके करनेके अर्थ प्रसिद्ध हैं जैसा कि उनकी कार्यप्रणाली व नित्यप्रति वृद्धिगत होती हुई संख्यामें किसीकी अप्रगट नहीं हैं ) जाकर सम्मिलित हो काम करने लगते हैं । इसी नियमके अनुसार श्रीजैन कुमारसभा अजमेरके कई होनहार व शिक्षा प्राप्त करने वाले सभासद ( विशेष कर उसके कार्यपरायण और धर्मप्रचारका बड़ा उत्साह रखने वाले सुयोग्य सन्नी वाष्ू घीसूलाजी अजमेरा ) अजमेरकी आर्यकुमार सभामें जाकर सम्मिलित हो गये थे और वहाँपर उन्होंने अच्छा काम किया । इटावहमें श्रीजैन तत्त्वप्रकाशिनी सभाकी स्थापना और उसकी स्थान स्थानपर जाकर व्याख्यान लेख तथा शङ्कासमाधानादि द्वारा जैनधर्मके प्रचार करनेके कार्यको देखकर तथा उसके प्रकाशित आर्यमतलीलादि ट्रैक्टोंको पढ़कर अन्य अनेकोंके साथ हमारे इन अजमेरके नवयुवकोंको भी बोध हुआ और उन्होंने भलीभाँति जान लिया कि यद्यपि आर्यसमाज प्रत्यक्षमें शारीरिक सामाजिक और नैतिक उन्नति में जैनसमाजसे बहुत बड़ा बड़ा प्रतीत होता है परन्तु उसमें आत्माके यथार्थ कल्याण करनेवाली आत्मिक उन्नति बिल्कुल नहीं है जिससे कि वह



ग्रन्थ रहित देशों के फल समान व्यर्थ ही है। जिस प्रकार अन्नका बोने वाला पुरुष अन्नके साथ ही वृणादि भी प्राप्त कर लेता है ठीक उसी प्रकार जैन धर्म द्वारा आत्मिक कल्याण के साथ ही हमारी सांसारिक उन्नतियाँ भी बराबर होती रहती हैं। ऐसा ज्ञान और ज्ञानकर हमारे ये नव युवक आर्य्य धर्म और आर्य्य कुमार सभा अजमेर को तिलाञ्जलि देकर जैन धर्म में दृढ़ हुये और उन्होंने स्वयं कल्याणार्थ श्री जैन कुमार सभा अजमेर नामक संस्था खोली। इसी सभाका वार्षिकोत्सव अजमेर में तारीख २८ जून से १ जुलाई सन् १९१२ ईस्वी तक होना निश्चित हुआ और उसके अर्थ यह निम्न विज्ञापन प्रकाशित किया गया।

॥ अन्देजिनवरम् ॥

अहिंसा परमो धर्मः \* यतो धर्मस्ततो जयः

श्रीजैन कुमार सभा अजमेर का

प्रथम वार्षिकोत्सव ।

प्यारे सज्जनों ! जिस प्राचीन सर्व व्यापी जैन धर्मके नवयुवकोंकी यह सभा है वह धर्म किसी समयमें तीर्थंकरादि महर्षियोंके सिंहनिनादसे समस्त भूमिवल पर बिस्तारित होरहा था और उसकी विजय पताका चहुं ओर फहरा रही थी परन्तु कालदोषसे उसही धर्मके मार्तण्ड संचालकोंके अभावसे और इन दिनों अनेक मतमत्तान्तरोंके घोर आच्छादन के कारण सारा संसार अन्धकारयुक्त होरहा है, ऐसी दशा देखकर हमारी परम आदरणीय ( श्रीमती जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा ) ने पुनः सर्व सभ्य समाजके समक्ष सार्व-भौम जैन धर्मका डंका बजाकर व्यावृद्ध गर्भित अनेकान्त नवसे तथा सम्पद्-र्जन, ज्ञान और चारित्र रूपी रत्नोंके प्रकाशसे उस अन्धकारको नाश करनेका बीड़ा उठाया है।

आज हम लोग सहर्ष आप लोगोंके समक्ष यह हर्षोत्पादक शुभ समाचार सुनाते हैं कि हमारे इस वार्षिकोत्सवके समय ( ता० २८ जूनसे १ जुलाई सन् १९१२ ई० तदनुसार मित्ती आषाढ़ प्रथम शुक्ल १४ शुक्लवारसे मित्ती आषाढ़ द्वितीय कृष्ण २ सोमवार संवत् १९६९ (तक) उपर्युक्त श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा यहाँ पधार कर हम लोगोंके उत्साहको बढ़ावेगी और इसही अ-

कसर पर और भी अनेक विद्वज्जन उपस्थित होकर भिन्न २ विषयों पर अनेक रोचक और सुनने योग्य व्याख्यान सुनावेंगे और शंका समाधानादि करके अज्ञानांधकारका नाश करेंगे ।

अतः सर्व साधारण सज्जन महानुभावोंसे सविनय निवेदन है कि इस उत्सवपर अवश्यमेव पधारकर इस महोत्सवकी शोभा बढ़ावें ।

## कार्यक्रम ।

प्रातःकाल

सायंकाल

ता० २८ जून सन् १९१२ शुक्रवार—रथयात्रा नगर कीर्तन, भजन व उपदेश,

७ बजेसे ११ बजे तक । ७ बजेसे १० बजे तक ।

ता० २९ जून सन् १९१२ शनिवार—भजन व उपदेश, भजन व उपदेश

१० बजेसे १ बजे तक । ७ बजेसे १० बजे तक ।

ता० ३० जून सन् १९१२ रविवार--शंका समाधान, भजन व उपदेश, भजन व उपदेश

१० बजेसे १ बजे तक । ७ बजेसे १० बजे तक ।

ता० १ जुलाई सन् १९१२ सोमवार--शंका समाधान, भजन व उपदेश, भजन व उपदेश

१० बजेसे १ बजे तक । ७ बजेसे १० बजे तक ।

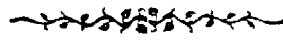
**श्रीजैन तत्त्व प्रकाशिनी सभाके शंका समाधानके नियम ।**

( १ ) शंका समाधान प्राइवेट व पब्लिक दो प्रकारसे होगा । ( २ ) प्राइवेट शंका समाधान जिज्ञासुओंके अर्थ सन्त्री की आज्ञानुसार उचित समय पर किया जावेगा । ( ३ ) पब्लिक शंका समाधानके अर्थ लिखित प्रश्नपत्र प्रथमवार तारीख २९ जून व द्वितीयवार तारीख ३० जूनको प्रातःकाल १० बजे से १ बजे तक सन्त्रीको दे देना चाहिये । ( ४ ) विद्वानोंके कहे हुए व्याख्यान और दिगम्बर जैनश्रद्धि प्रणीत ग्रन्थोंमें तत्त्वविषयक ही शंकायें ली जावेंगी । ( ५ ) एक दिनमें तीनसे अधिक प्रश्नपत्र नहीं लिये जावेंगे जिनमेंसे एक धर्म का एक ही प्रश्नपत्र लिया जावेगा परन्तु हां यदि अन्त समय तक भिन्न २ धर्मावलम्बियोंके तीन प्रश्नपत्र न प्राप्त हों तो एक धर्मके अधिकसे अधिक दो प्रश्नपत्र लिये जा सकेंगे । ( ६ ) एक प्रश्नपत्रमें तीनसे अधिक प्रश्न व एक प्रश्नमें एकसे अधिक प्रश्न न होना चाहिये । ( ७ ) प्रथम दिवसके प्रश्नकर्त्ता महाशयोंको दूसरे दिवस तदीन प्रश्न करनेका अधिकार न होगा । यदि उनको अपने प्रश्नोंके उत्तरोंसे सन्तोष न हो तो वे उसी दिन ५ बजेके भी-

तब उनपर पुनरपि शंकायें लिखकर दे सकते हैं जिनका कि उत्तर द्वितीय दिवस दिया जावेगा । ( ८ ) प्रश्नके लिखित उत्तर प्रश्नकर्ताओंको सभामें व्याख्यानके साथ सुनाकर देदिये जायेंगे और यदि उनके प्रश्न नियम विरुद्ध होंगे तो जिस समय लिये जावेंगे उभी समय लीटादिये जावेंगे । ( ९ ) प्रश्नकर्ता महाशयोंको अपना माननीय धर्म वा नामादि स्पष्ट अवश्यमें लिखना चाहिये । ( १० ) सभामें कोई अनुचित व असम्प्य व्यवहार नहीं कर सकता और न सभापतिकी आज्ञा बिना कोई खोल ही सकता है ॥

नोट--समयानुसार प्रोग्राम बदला भी जासकेगा ॥

प्रार्थी—धीसूलाल अजमेरा, मन्त्री—श्रीजैन कुमारमभा अजमेरा,



आर्यसमाज अजमेरसे श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा खिपी हुई न थी । उसने उसके प्रकाशित आर्यमतलीलादि ट्रेक्ट पढ़े थे । सभाके कार्यक्रम, दौरीकी रिपोर्ट, शंका समाधानके पत्र और कई प्रार्थीको जैन बनानेके आदिका नि-  
वरण भी आर्यसमाज अजमेरसे अग्रगट न था उनके कृष्णलाल गुप्त आदि स-  
भासदोंने अपने आर्यनित्रमें प्रकाशित “नास्तिक मतके नमूने” आदि लेखोंका मुंह तोड़ उत्तर जैनमित्र आदि पत्रोंमें पढ़ा था । संक्षेपमें आर्यसमाज अजमेर को श्रीजैन तत्त्वप्रकाशिनी सभाकी बढ़ी बढ़ी शक्ति सर्वथा अग्रगट थी । उसकी भय हुआ कि जब वही श्रीजैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा अजमेरमें श्रीजैन कुमार सभाके वार्षिकोत्सवमें आती है तो वह अवश्य ही आर्यसमाजका खण्डन कर उसकी पोल सर्वसाधारणको दिखलावेगी जिससे कि बहुत सम्भव है कि पूर्व ही चंगुलमें आये हुए जैनकुमारोंकी भांति हमारे सत्यासत्य खोगी कहे निष्प्रज्ञ सभामद आर्यसमाजको तिलाञ्जलि दे जायें । इस भयसे अपनेकी र-  
क्षित रखनेके अर्थ उसकी बड़े सोच विचारके बाद एक चाल सूझी और वह यह थी कि प्रथमसे ही जैनियोंका ऊटपटांग खण्डन प्रारम्भ करदो जिससे कि उन खण्डनके खण्डन करनेमें ही जैन विद्वानोंका सारा समय व्यतीत हो जाय और उनको आर्यसमाजका खण्डन करनेके अर्थ समय ही न मिले । आ-  
र्यसमाज इन युक्तिको सोचकर अतिद्विषित हुआ और उसने इसीके अनुसार स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती आदि अपने विद्वानोंको बुलाकर जैनधर्मका जिस तिस प्रकार खण्डन निम्न विज्ञापन निकलवा कर प्रारम्भ करवा दिया ।

\* ओ३म् \*

## व्याख्यान ॥

सर्व साधारणको सूचित किया जाता है कि श्रीगान् स्वामी दर्शनानन्द जी सहाराकने कृपापूर्वक यहाँ ठहर कर नीचे लिखे अनुसार व्याख्यान देना स्वीकार किया है, अतः आप अपने इष्टमित्रों सहित अवश्य पधारकर लाभ उठावें

तारीख २७-६-१२ वृहस्पतिवार--सायंकालके ८ बजे,

विषय--"जैनियोंकी मुक्ति"

स्थान--आर्यसमाज भवन,

जयदेव शर्मा, मन्त्री-आर्यसमाज, अजमेर



सभाका वार्षिकोत्सव प्रारम्भ होनेके एकदिन पूर्व ही तारीख २७ जूनको उपर्युक्त विज्ञापनके अनुसार स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वतीका "जैनियोंकी मुक्ति" पर एक व्याख्यान हुआ जिसमें कि उन्होंने उसको विना समझे हुए ऊटपटांग खण्डन किया। व्याख्यान समाप्त हो जानेपर एक अल्प वयस्क जैन नवयुवकने शंका करनेकी आज्ञा चाही जो कि दी गयी। परन्तु उस नवयुवकका विना भलीभांति समाधान किये ही उसकी शंकाओंका समाधान कार्य बन्द करदिया गया जिसका कि बहुत बुरा प्रभाव सर्वसाधारणपर पड़ा।

## शुक्रवार २८ जून १९१२ईस्वी।

प्रातःकाल श्री कुंवर दिग्विजयसिंह जी, श्री जैन सिद्धान्त पाठशाला मोरेना ( ग्वालिपर ) के विद्यार्थी मन्मथलाल जी, विद्यार्थी देवकीनन्दन जी, विद्यार्थी उमरावसिंह जी, चन्द्रसेन जैन वैद्य आदि सज्जन इटावा की भजन मण्डली सहित मुम्बई जाने वाली हाकगाड़ीसे अजमेर पहुंचे। कुंवर साहब व मण्डलीका स्वागत वड़े धूम धामसे अजमेर में हुआ।

स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती के कल २७ जून के दिये हुये "जैनियोंकी मुक्ति" वाले व्याख्यानकी यथार्थ समीक्षा कर सर्व साधारण में उसके द्वारा किये हुये अज्ञानको दूर करना निश्चित हुआ अतः निम्न विज्ञापन सभाकी ओर से प्रकाशित किया गया।

॥ अम्बे जिनवरम् ॥

**स्वामी दर्शनानन्द जी के व्याख्यान की समीक्षा ।**

सर्व साधारण सज्जन सहोदरोंकी सेवामें निवृत्त है कि आज सायंकाल को ८ बजेसे स्थान गोदोंकी नशियां में आगरे दरवाजेके बाहर श्रीमान् कुंवर दिग्विजयसिंहजी माडिब स्वामी दर्शनानन्दजीके कलके दिये हुये जैनियोंकी मुक्ति विषयक व्याख्यानकी समीक्षा करेंगे ॥ अतः सर्व सज्जन महाशय उपर्युक्त समय पर अवश्यमेव पधारे और व्याख्यान अवश कर लाभ उठावें । विज्ञेयलम् ॥

**प्रार्थी—धीसूलाल अजमेरा मंत्री—श्री जैन कुमार सभा अजमेर । ता० २८ जून १९१२**

—०—

सन्ध्याको आगरे दरवाजे के बाहर गोदोंकी नशियों के विस्तृत और सुसज्जित पौडालमें सभाकी प्रथम बैठक हुई । भजन व नङ्गलाचरण होने के पश्चात् माष्टर पांचूलाल जी काला ने स्वागत कारिणी कमेटी के सभापतिकी हैसियतसे एक वक्तृता दी जिसमें कि आपने सर्व भाइयोंका स्वागत करते हुये जैन धर्मकी सच्ची प्रभावनाकी बड़ी आवश्यकता दिखलायी । सर्व सम्मतिसे राय बहादुर सेठ नेमीचन्द जी सोनीके सुपुत्र कुंवर टीकमचन्द श्री उत्तमाही और धर्मात्मा सज्जन सभापति निश्चित हुये और आपने अपनी पुस्तकाकार छपी हुई वक्तृता पढ़ी जिसकी कि सुन्नित प्रतियां सभामें बांट दी गयीं । सभापतिका भाषण यह था:—

॥ श्रीः ॥

**श्री जैनकुमार सभा अजमेर के प्रथमाधिवेशन के समय सभापति श्रीयुत कुंवर टीकमचन्द्र जीका भाषण ।**

( संगलाचरण अकलङ्कस्तोत्रका ९ वां श्लोक )

मान्यवर सहोदय ! आज अत्यन्त दुर्घका समय है कि आप जैसे परोपकारी धर्मात्मा सज्जनोंने अजमेर नगर में पधार कर हम लोगोंकी आभारी किया है, मैं इसके लिये आप लोगोंकी हार्दिक अभ्यवाद् भेंट करता हूं जो पद सभा मुझे देना चाहती है उसके योग्य यद्यपि मैं नहीं हूं तथापि आपके कहनेकी टाल भी नहीं सकता, अतः मैं इस पदको सहर्ष स्वीकार करता हूं

और आशा करता हूँ कि अगर मेरी ओरसे इस कार्यमें कोई त्रुटि रहेगी तो विद्वज्जन मुझे क्षमा करेंगे ।

प्रिय सज्जन पुरुषों ! इस स्थानपर हम लोगोंके उपस्थित होनेका मुख्य कारण यह है कि आपस के सम्मेलनसे धार्मिक तथा लौकिक उत्थिति पर विचार किया जावे, इस प्रकार सभाओंका स्थान २ पर बार बार होना बड़ा लाभकारी है । मैनोंमें दूर दूरसे हजारों स्त्री पुरुष आते हैं और धार्मिक लाभ उठाते हैं । यद्यपि आजकल जैसा चाहिये वैसा मैनोंसे लाभ नहीं है क्योंकि जिन कार्यके अर्थ मैनोंकी स्थापना की गई थी उनका परिवर्तन अन्यरूपसे होता जाता है और धर्मोत्थिति व जात्योत्थितिपर कोई विशेष विचार नहीं होता । इस बातपर विचार कर विद्वानोंने सभाओं द्वारा इस त्रुटिको दूर करनेकी चेष्टा की और वे इसमें फलीभूत हुए, आजकी सभा इस फलप्राप्तिका एक खास नमूना है ।

प्राचीनकालमें जाति व धर्मसम्बन्धी समस्त कार्य पंचायतों द्वारा ही सम्पादित होते थे, परन्तु कई एक कारणोंसे अब पंचायतें इस उत्थितिकी ओरसे मौनस्थ हैं । संसारका काम रुका नहीं रहता किसी न किसी सूत्रमें अपना मार्ग बना ही लेता है । सभा सुसाइटियोंके स्थापन होनेसे जातिसुधारमें लाभ पहुँचा है पर खेदके साथ कहना पड़ता है कि अनेक स्थानोंमें सभाओंकी स्थापना ही नहीं हुई और जहाँ कहीं हुई है उनमें से कई सभाओंने तो बातोंके सिवाय अधिक कार्य नहीं किया । जब मैं “तत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावा” की ओर लक्ष्य डालता हूँ तब मुझे खुशी होती है । यह सभा अवश्य कार्य करनेमें तत्पर है और जो कुछ कार्य अवतक किया वह प्रशंसनीय है । धन्य है उन महाशयोंको जो अपने गृहकार्योंसे खुट्टी पाकर इस प्रकार दूर देशान्तरोंमें धार्मिक उत्थितिके अर्थ प्रयत्नशील हैं ।

पदार्थ विज्ञानकी प्रबल शिक्षा प्रचारके कारण भूमंडलके अनेक मतमतान्तरोंमें खलबली पड़ी हुई है, परन्तु इस खलबलीमें जैनधर्म दृढ़ताके साथ अट्टान किया जा रहा है । जिन आंगल भाषाके उच्च वेत्ताओंने जैनधर्मका अध्ययन किया वह इस धर्मकी फिलासोफी तथा तत्त्व विज्ञानपर सुग्ध हो गये । सत्यका ऐसा कुछ महात्म्य है कि वह असत्यतासे कितनी ही क्यों न दबाई जाय समय पाकर अपने आप प्रकाशमें आजाती है । अमेरिका इंग्लैंड आदि देशोंमें जहाँ हिंसाका अत्यन्त प्रचार है अहिंसा धर्मकी शिक्षा

देनेको कौन उपस्थित हुआ था, परन्तु विज्ञानकी शिक्षाके कारण Soul and matter की विवेचना हुई तो अपने आप आत्माका महत्व आत्मापर जन गया और अनेक पुरुषोंने सांसादि अभेद्य पदार्थोंका त्याग अहिंसा धर्मको चारण किया, जो जैन धर्मका एक मुख्य अंग है। कुछ दिन हुए अंग्रेजीके लीडर नामक पत्रमें यह बात पढ़कर अत्यन्त आनन्द हुआ कि अमेरिकीके प्रेसीडेंटने एक नियम निकाला है कि जानवरोंके आपसमें युद्ध कराकर हाथविनोद प्राप्त करना उन जानवरोंकी अत्यन्त कष्टदाई है। इस प्रकार अब उस देशमें राजनियम द्वारा कारगृह वा आर्थिक दंडसे इस प्रकारका विनोद बंद किया गया। सांसाहारी पुरुषोंके चित्त में जो इस बारीक हिंसा से हानिका लक्ष्य हुआ है यही सत्यताकी विजय है। लंडनकी विजिटेरियन सोसाइटी शीघ्रतासे सांस भोजन का देशसे निष्काशन कर रही है, यह अहिंसा धर्मके प्रचारका दूसरा नमूना है। पत्रोंके पढ़नेसे ज्ञात हुआ है कि कुछ लंडन निवासी महाशयोंने जैनधर्मका उपदेश सुना और वे जैनधर्मानुयायी हुये। कहनेका सारांश यह है कि सर्व जीव हितकारी जैनधर्मके तत्वोंकी शिक्षा का प्रचार वैज्ञानिक देशोंमें पत्रादि द्वारा किया जाय तो बिना कठिनताके सफलता प्राप्त होगा सम्भव है। यह कार्य उन महाशयों से ही सकता है जो इंग्लिश भाषाके साथ २ धर्मकी तात्त्विक शिक्षाके भी जानकार हैं ॥

यहाँके कतिपय उत्साही योग्य कुमारोंने एक सालसे "जैनकुमार" नामक सभा स्थापित कर रखी है जिसके द्वारा अपनी उन्नतिका मार्ग खड़ा रहे हैं आज उक्त जैनकुमार सभाका वार्षिकोत्सव है। मेरी आन्तरिक इच्छा है कि जैसी कुमारसभा यहां है वैसी जैनजातिमें प्रायः हर जगह हों, क्योंकि वास्तवस्थासे जो विचार स्थिर होते हैं वे भविष्यमें बड़े लाभकारी होते हैं।

सभा सोसायटीके सेम्बर होने तथा उनमें योग देनेसे अतुल लाभ होते हैं; वाणी की चतुरता मालूमतका कोष, कामका उत्साह, वातसह्यता, देश-हित, धर्मकी दृढ़ता, विचारोंकी तथा शुद्धाचरणोंकी उच्चता आदि अनेक महत्तु गुण केवल एक सभा सत्संगसे प्राप्त होते हैं जिनकी मवयुबकोंके लिये मुख्य करके अत्यन्त आवश्यकता है।

ब्रिटिश सुराज्यमें हर मनुष्यको अपनी उन्नति करनेकी स्वतंत्रता है, इस स्वतन्त्रता में भारतकी प्रायः सबही समाज उन्नति के मैदानमें आरुढ़ हैं।

ऐसे समयमें जैनियोंने भी कुछ उद्योग किया है; परन्तु अन्य कई समाजोंकी अपेक्षा जैनजाति अभी उन्नति के मार्ग से कोसों दूर है, इसका मुख्य कारण यह है कि विद्याकी उन्नति पर हर प्रकार की उन्नति निर्भर है जिसकी अन्त भी समाजमें बड़ी आवश्यकता है। धन्य है सरकार गवर्नमेण्टको कि जिसके सुपबंधसे स्थान २ पर स्कूल कालेजोंकी स्थापना है, परन्तु समाजका कर्तव्य है कि जातीय पाठशालाओं द्वारा धार्मिक, लौकिक वा प्रारम्भिक शिक्षाका प्रचार अधिकताके साथ करे और फिर अपनी सन्तानोंको सरकारी कालिजों में उच्चकक्षाकी शिक्षा दिगावे। क्या अच्छा हो, अगर पञ्चायत अपने सन्तानों के लिये बलात् शिक्षाका नियम पान करे, क्योंकि इस प्रकारका विल भारत सरकार की कौन्सिलमें पास होनेको उपस्थित है यह एक दिन अवश्य पास होगा। यदि हम लोग पहिलेही से इसको कार्यमें लावें तो अति उत्तम हो। अगर सबसे प्रथम किसी स्थानकी पञ्चायत इस प्रकारके नियम प्रचारमें आरुढ़ हो तो अन्य समाज के लिये अनुकरणीय हो सकता है।

अब मैं भारत मन्त्रालय श्रीमान् पञ्चमगार्ज तथा श्रीमती महारानी मेरी साहिबा व यहां के सुयोग्य शासनकर्ताओं की सेवा में धन्यवाद भेंट करता हूँ और यहां पर उपस्थित सज्जनोंका ध्यान उपरोक्त विषयों पर आकर्षित करता हुआ अपने भाषण की समाप्त करता हूँ और आशा रखता हूँ कि आप धार्मिक तथा लौकिक उन्नतिके अर्थ उत्तम २ विचार प्रकट करेंगे तथा उनको वर्ताव में लानेकी चेष्टाभी करेंगे, यही मेरी आंतरिक अभिलाषा है ॥

इति ॥

सभापतिका भाषण समाप्त होते ही कुंवर साहबका परिचय सर्वे साधारण को कराया गया और आप तालियों की गड़ गड़ाहट व हर्ष ध्वनि के साथ स्वामी दर्शनानन्द जी के जैनियों के मोक्ष विषयक व्याख्यान की समीक्षा करने को खड़े हुये। आपने अपने व्याख्यानमें प्रथम ही जीव और उस के बन्ध की निहितकृते हुए मोक्ष की विस्तृत व्याख्या की और उन सर्व आक्षेपों का यथोचित उत्तर दिया जो कि २७ जून को स्वामी जी ने उस पर किये थे। कुंवर साहब के व्याख्यान में ही अजमेर के आर्य समाजी भाइयों ने अपना निम्न विज्ञापन अर्थात्—

॥ ओ३म् ॥

**कुंवर दिग्विजयसिंहकी समीक्षाका खण्डन ॥**



सर्व साधारण को सूचित किया जाता है कि कल सा० २८—६—१२ शनिवारको सायंकाल के ६॥ बजे आर्य्य समाज भवन कैसरगंजमें श्रीमान् स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज, कुंवर दिग्विजय सिंहजी के आज्ञाके व्याख्यानका खंडन करेंगे कृपा कर अवश्य पधारे ॥ } { जयदेव शर्मा मन्त्री  
सा० २८—६—१२ } { आर्य्य समाज अगमेर



आंटना प्रारम्भ कर दिया था जिससे कि हमारे कुछ भाई मली भांति समझ सकते हैं कि उनकी सत्यासत्य से कुछ प्रयोजन नहीं केवल उनके सिद्धान्त के विरुद्ध जो कुछ कहा जाय उस पर जिस तिस प्रकार कुछ कहकर पब्लिक को यह दिखला देना मात्र इष्ट है कि हमने उसका खण्डन कर दिया। कुंवर साहब के व्याख्यान समाप्त हो जाने पर द्वितीय दिवसके कार्य्य क्रमकी सूचना दे जय अवकार ध्वनि से सभा समाप्त हुई।

## शनिवार २८ जून १८१२ ईस्वी।

प्रातः काल से मध्याह्न तक श्री जी की रथ यात्रा और नगर कीर्तन छड़े राज सामान और धून धानसे हुआ। श्रीजी के रथके आगे कई भजन मण्डलियां कुरीति निवारक और जैनतत्त्व प्रदर्शक भजन व्याख्या और ताल स्वर से गाकर सर्व साधारण पर बड़ा प्रभाव डालती थीं। आज प्रातःकाल की हाक गाड़ी से श्रीमान् स्वादाहारिधि वादिगजकेवरी पंडित गोपालदासजी वरैठ्या और न्यायाचार्य्य पंडित माणिकचन्द जी पधारे और आप लोगों से कुछ पूर्व बाबू अर्जुन लाल जी सेठी बी० ए० आदि।

कुछ समय हुआ कि स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती ने अपने "जैनी पंडितों से प्रश्न" शीर्षक लट्टू पैम्फलेटमें बीस प्रश्न जैन विद्वानों से किये थे जिस का कि उत्तर श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभाके तृतीय वार्षिकोत्सव पर सा० ७ अप्रैल को कुंवर दिग्विजय सिंह जी ने दिया था। वह प्रश्नोत्तर बाद में श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा की ओर से पैम्फलेट रूप में तारीख १ जून को प्रकाशित किये गये जिनपर कि स्वामीजी महाराजने "जैनी पंडितों के प्रश्नोत्तरों की समीक्षा" शीर्षक समीक्षा लिखने का कष्ट किया और श्रीजैन तत्त्व प्रकाशिनी सभाके "सृष्टि कर्तृत्व मीमांसा, नामक ट्रैक्ट नम्बर १२ के प्रारम्भ के कुछ भाग को लेकर "जैनमत समीक्षा, नामक छोटासा ट्रैक्ट उस के

खण्डन रूपमें लिखा । उक्त दोनों उनके ट्रेक्टरोंका उत्तर देना उचित समझा गया अतः समाकी ओर से निम्न विज्ञापन प्रकाशित किया गया ।

॥ बन्दे जिनवरम् ॥

### स्वामी दर्शनानन्द जी की "समीक्षा" की समालोचना

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंकी सेवामें निवेदन है कि आज सायंकाल के ८ बजेसे स्थान गोदोंकी नशियां में आगरे दरवाजे के बाहिर श्रीमान् कुंवर दिग्विजयसिंह जी साहिब स्वामी दर्शनानन्द जी की "जैनी पंडितोंके प्रश्नोत्तरों की समीक्षा", शीर्षक पुस्तककी समालोचना करेंगे तथा उनकी "जैन मत समीक्षा", नामक पुस्तककी भी समालोचना, होवेगी ॥ अतः सर्व सज्जन महाशय उपरोक्त समय पर अवश्य मेत्र पधारें और व्याख्यान श्रवण कर लाभ उठावें विज्ञेयलम् ॥

प्रार्थी:—

अजमेर

घीसूलाल अजमेरा

ता० २९ जून १९१२

मंत्री-श्रीजैनकुमार सभा,

सन्ध्याकी सभाके पैरहाल में समाकी द्वितीय बैठक हुई । सज्जन व मङ्गलाचरण समाप्त होने पर कुंवर साहब स्वामी दर्शनानन्द जी के "जैनी-पंडितोंके प्रश्नोत्तरों की समीक्षा" शीर्षक ट्रेक्टर की समालोचना करने की उठे और आपने उस समीक्षाका भली भांति शान्ति पूर्वक खण्डन और अपने दिये हुये उत्तरों की प्रमाणा और युक्तियों से मसखन किया । कुंवर साहबका यह खण्डन मसखन "समीक्षा वीक्षण" के नामसे शीघ्र ही प्रकाशित होगा । पूर्व नियमानुसार ही आर्य्यसनाजी भाइयों ने कुंवर साहब के व्याख्यान में ही अपना निम्न विज्ञापन वांटा ।

॥ ओ३म् ॥

कुंवर दिग्विजयसिंहजी की समालोचना की प्रत्यालोचना ॥

सर्व साधारणको सूचित किया जाता है कि कल ता० ३०-६-१२ रविवार

को सोयङ्गाशके ६॥ अजे आर्यसमाज भवन कैसरगंज में श्रीमान् स्वामी दर्शनानन्दजी महाराज, कुंवर दिग्विजयसिंहजी के आजके व्याख्यानका खंडन करेंगे। कृपा कर अवश्य पधारे ॥

ता० २९—६—१२

{ जयदेव शर्मा मन्त्री—

आर्यसमाज, अजमेर ॥

स्वामी दर्शनानन्दजी ने अपने "जैनी पण्डितों के प्रश्नोत्तरों की समीक्षा" शीर्षक ट्रेक्ट के अन्तमें यह चेलेझु छपवा रक्खा था।

चेलेझु।

हमने जैनी पण्डितोंसे २० प्रश्न किये थे, जिनका उत्तर किसी जैनी पण्डित ने तो नहीं दिया, परन्तु जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावा ने श्रीमान् कुंवर दिग्विजयसिंह जी कीधूपुरा इटावा द्वारा उनका उत्तर दिलाया। कुंवर दिग्विजयसिंहजी जैनधर्मके प्रतिष्ठित विद्वान् न होनेके कारण सम्भव है कि उनके दिये यह उत्तर जैनियोंके लिये प्रामाणिक अथवा सर्वमान्य न हों, परन्तु जैनतत्त्वप्रकाशिनीसभा इटावा द्वारा प्रकाशित किये जानेसे यह उत्तर प्रामाणिक भी समझे जा सकते हैं। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है वह सत्यासत्य की परीक्षा करे कि जिससे असत्य को त्याग सत्यको ग्रहण करता हुआ वह अपने जीवन को सत्याश्रित कर सफल कर सके। इस हिन्दुस्तानके समस्त जैनधर्मावलम्बी विद्वानोंको चेलेझु करते हैं कि यदि वे कुंवर साहिब के उत्तरों को, जो हमारी समझ में असत्य और असमूलक हैं, सत्य समझते हों तो सत्य सिद्ध करने के लिये शास्त्रार्थ करें। यदि इन उत्तरों को असत्य और अप्रामाणिक समझते हों तो ऐसा किसी पत्र द्वारा प्रकाशित कर दें और हमारे किये प्रश्नोंका सत्य उत्तर प्रदान करें। इस शास्त्रार्थकी सूचना शास्त्रार्थ की तिथिसे एक मास पूर्व "दयानन्द वेदप्रचारक मिशन लाहौर" के पते से मेरे पास पहुंचनी चाहिये, इस कारण कि किसीको अनुविधान हो। शास्त्रार्थ देहली, आगरा, अजमेरमेंसे किसी स्थानपर हो सकता है। जैन विद्वानों का इन उत्तरोंकी सत्य सिद्ध करना और हमारा पक्ष उन को असत्य सिद्ध करना होगा और जो आक्षेप जैनधर्मावलम्बी विद्वान् वैदिक धर्मपर करेंगे, उनका उत्तर हम देंगे ॥

वैदिकधर्मका सेवक—

दर्शनानन्द सरस्वती

श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभाकी ओरसे स्वामीजीके इस चेलेझुपर निम्न मुद्रित चेलेझु कुंवर साइबकी समालोचना समाप्त होते ही वांट दिया गया ।

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

## आर्यसमाजी स्वामी दर्शनानन्दजीको उनके चेलेझुपर चेलेझु ॥

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा कुंवर दिग्विजयसिंहजीके आपके प्रश्नोंपर दिये हुये उत्तरोंको अक्षर प्रत्यक्षर सत्य समझती है और उसपर शास्त्रार्थ करनेके लिये सर्वथा उद्यत है यदि आप उन्हें असत्य और भ्रममूलक समझते हों तो हम आपके चेलेझुानुसार शास्त्रार्थ करनेको अभी अजमेरमें ही ता० १ बीलाई १९१२ ई० तक ( जब तक कि हम लोग यहां ठहरेंगे ) उद्यत हैं । यदि आप इस समय असमर्थ हों तो आपके लेखानुसार ही हम आजसे एक मास पश्चात् इटावा या मुरैनामें सहर्ष शास्त्रार्थके लिये सज्ज हैं । पूर्ण आशा तथा दृढ़ विश्वास है कि आप शास्त्रार्थसे पीछे न हटकर हम लोगोंको अनु-यहीत करेंगे । विज्ञापनम् ।

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मन्त्री

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा ।

तारीख २९ जून १९१२

—:0:—

“सृष्टि कर्तृत्व मीमांसा” वादिगजकेसरी जीकी लिखी हुयी है अतः उसके खण्डनमें लिखी हुयी स्वामीजीके “जैन मत समीक्षा” नामक ट्रैक्टकी समालोचना करनेका भार वादिगजकेसरी जीके एक छोटे विद्यार्थी देवकी नन्दनजीने अपने ऊपर लिया और बड़ी योग्यतासे स्वामीजीकी समीक्षाका खण्डन और मीमांसामें प्रतिपादित विषयका मखन किया । यह खण्डन स-खण्डन शीघ्र ही पुस्तकाकार प्रकाशित होगा । विद्यार्थी देवकीनन्दनजी की समालोचना समाप्त होते ही श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाकी ओरसे निम्न चेलेझुका मुद्रित विज्ञापन वांट दिया गया ।

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

विज्ञापन ।

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंको सूचित किया जाता है कि स्वामी द-

दर्शनानन्दजीने हमारे सृष्टिकर्तृत्वजीनांसा नामक ट्रेड नं० १२ के प्रारम्भके कुछ भागको लेकर जैनसत्त्वजीका नामक पुस्तकमें बिना समझे छटपटांग खंडन किया है। अतः हम उपर्युक्त स्वामीजीकी चैलेझ देते हैं कि यदि आप को अपने खंडनपर अभिमान हो तो आप इस विषयमें यहां अभी अजमेर में ही ता० १ जुलाई सन् १९१२ ई० तक ( जब तक कि हम यहां ठहरेंगे ) शास्त्रार्थ कर लें। यदि आप ऐसा न करेंगे तो आपकी असमर्थता समझी जावेगी।

**चन्द्रसेन जैन वैद्य मन्त्री**

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा।

ता० २९ ई-१९१२

—:०:—

उपर्युक्त कार्यवाहीके पश्चाद् आजकी सभाका कार्यसामान्द जय जयकार ध्वनिसे समाप्त हुआ।

**रविवार ३० जून १९१२ ईस्वी।**

कल रातको जो दो चैलेझ ( एक स्वामी दर्शनानन्द जी के चैलेझपर चैलेझ और दूसरा अपनी ओरसे स्वामी दर्शनानन्द जी को चैलेझ ) श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभाकी ओरसे स्वामी दर्शनानन्द जीको दिये गये थे उनके उत्तरमें आज प्रातःकाल ८॥ वजेके लगभग स्वामी जी की ओरसे निम्न विज्ञापन प्राप्त हुआ।

॥ ओ३म् ॥

**जैनियोंका चैलेझ मंजूर।**

जैन सभाको विदित हो कि जहां कहीं वह बुलाया चाहे वहां मैं शास्त्रार्थ करनेके लिये तय्यार हूं। कृपा कर स्थान, समय, विषय और प्रबन्धके लिये मध्यस्थ नियत करके सूचना देवें।

ता० ३०-६-१२  
प्रातःकाल के ९ वजे

}

{

दर्शनानन्द,  
अजमेर

—:०:—

स्वामीजी के इस विज्ञापन का निम्न लिखित उत्तर अर्थात्—

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

**शास्त्रार्थ की स्वीकारता पर हर्ष।**

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंको विदित हो कि आर्यसमाजी स्वामी

दर्शनानन्दजीके जेलेखानुसार इनको शास्त्रार्थ करना मंजूर है और उनकी जिज्ञासानुसार प्रगट करते हैं कि यह शास्त्रार्थ स्थान गोदोंकी नसियोंमें आज ही दिनके २ बजेसे ५ बजे तक विषय "जगतका कर्ता ईश्वर है या नहीं" अथवा हमारे पूर्व प्रकाशित विषयपर होगा । और प्रबंधके लिये मध्यस्थ पुलिस भीजूद् ही है ।

### चन्द्रसेन जैन वैद्य, मंत्री

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा

अजमेर ता० ३० जून १९१२ प्रातःकाल

—:०:—

सबसे प्रथम पत्र द्वारा स्वामीजीको भेज दिया गया और पश्चाद् यही छपाकर सर्वसाधारणमें वितरित कर दिया गया । इसके उत्तरमें बारह बजेके लगभग स्वामी जीका निम्न पत्र अर्थात्:—

॥ ओ३म् ॥

नं० ३१३

श्रीमन्—नमस्ते !

आपका पत्र ता० ३० जून १९१२ का अभी ९॥ बजे प्राप्त हुआ उत्तर में निवेदन है कि वैदिक धर्मोपलम्बियोंके लिये इससे अधिक प्रसन्नताकी बात और क्या हो सकती है कि मत मतान्तरोंके लोग सभ्यता पूर्वक पारस्परिक प्रेमभावसे लक्षण प्रमाणोंकी दार्शनिक मर्यादानुसार स्वमन्तव्यमन्तव्य पर विचार करके सत्यके ग्रहण और असत्य के त्याग करनेमें तत्पर हों । दो से ५ बजे तक गोदों की नसियां नामक स्थान में नियम पूर्वक शास्त्रार्थ करना स्वीकार है तदनुसार उपस्थित रहूंगा । कृपया एक ऐसे प्रधानका प्रबंध करें जो नियमादि पालन करानेका यथावत् प्रबंध कर सके ।

भवदीय-दर्शनानन्द सरस्वती

३०।६।१२।११ बजे प्रातः

—:०:—

और एक बजेके लगभग आर्य्यसमाजकी ओरसे निम्न विज्ञापन प्राप्त हुआ ।

॥ ओ३म् ॥

जैनियों से शास्त्रार्थ ।

सर्व साधारणकी सूचना दीजाती है कि आज तारीख ३०-६-१२ ई० को दुपहरके २ बजेसे गोदोंकी नसियोंमें जैनियोंकी जिज्ञासानुसार श्रीमान् स्वामी

दर्शनानन्द जी शास्त्रार्थके लिये पधारेंगे ।

## जयदेव शर्मा मंत्री आर्यसमाज अजमेर

ता० ३०-६-१२ समय १२ बजे, ।

—:०:—

दो पहरकी सभाका प्रारम्भ ठीक समयपर हुआ और भजन व मङ्गला-  
चरण होने के पश्चात् वादिगङ्गकेशरी जी की श्री जैन सिद्धान्त पाठशाला के  
विद्यार्थी मक्खन लाल जी ने स्वामी दर्शनानन्द जी के उस व्याख्यानका जो  
कि उन्होंने कल २९ जूनकी सन्ध्याको कुंवर साहबके २८ जूनके रात्रिकी स-  
मीक्षाके खण्डनमें दिया था भली भाँति युक्ति और प्रमाणों से खण्डन किया ।  
विद्यार्थी मक्खनलाल जी ने २८ जून की रात्रिकी ही ( जब कि वह आर्य-  
समाज भवनमें आर्य विद्वानोंके व्याख्यानोके नोट लेने गये थे ) स्वामी जीका  
खण्डन समाप्त हो जाने पर उसपर शङ्का समाधानकर कुंवर साहब की समी-  
क्षा सत्य निरुद्ध करनेकी आज्ञा माँगी थी पर हमारे आर्यसमाजी भाई तो  
२९ जूनके शङ्का समाधानसे सीखे हुये थे अतः उन्होंने किसी प्रकार आज्ञा  
न दी ॥

स्वामी दर्शनानन्द जी स्वामी सर्वदानन्द जी के साथ १॥ बजे के लग-  
भग सभामें पधारे और उनके पीछे ही सैकड़ों आर्यसमाजी भाई । स्वामी  
जी के लिये अपने ग्लेटफार्म के सामने ही दूसरा ग्लेटफार्म बहुत बढ़िया बना  
दिया गया और उसपर दोनों स्वामी जीके लिये दो कुर्सीयाँ व उनकी ढेर  
की ढेर पुस्तकें ( जो कि वह अपने साथ लाये थे ) रख दी गयीं । सभाका  
पैयडाल आज खचाखच भरा हुआ था और उसमें कई हजार आदमी थे ।  
सभा के सभापति थे सेठ ताराचन्द जी रईस नसीरावाद । स्वामी जी की  
इच्छानुसार ही शास्त्रार्थ मौखिक रक्खा गया और पाँच पाँच मिनिट दोनों  
ओरके वक्ताओं की बोलनेका समय निश्चित हुआ । यद्यपि स्वामी जी की  
इच्छा यह थी कि शास्त्रार्थ तो मौखिक ही होय परन्तु दोनों ओरके तीन  
तीन रिपोर्टर उसकी अक्षर प्रत्यक्ष लिखते जाय और एक एक वक्ताके बोल  
चुक्नेपर उन सबके लेख सुनकर और जाँचकर दोनों पक्षके हस्ताक्षर होजाय  
पर इस पर इस कारण इन्कार कर दिया गया कि यहांके रिपोर्टर लोग सं-  
क्षिप्तलिपिप्रणाली में दक्ष नहीं हैं अतः वह दोनों वक्ताओंके शब्दोंको अ-  
क्षर प्रत्यक्ष नहीं लिख सकते और एक भी शब्द या अक्षर के इधर उधर हो

जाने से आर्थिक विपर्यय हो सकता है। यदि प्रत्येक रिपोर्टरके लेखपर जांच जांचकर हस्ताक्षर किये जाय तो सारा पत्रिकाका समय यों ही नष्ट हो जा-यगा। इसपर दोनों ओरसे यह निश्चय हुआ कि अपने अपने रिपोर्टर लिखें। शास्त्रार्थका विषय यह था कि ईश्वर इस जगत्का कर्ता है या नहीं। श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाकी ओरसे श्रीमान् स्याद्वाद्वारिधि वादि गज केसरी पंडित गोपालदास जी वरैया खोलने वाले थे और सधरसे स्वयम् स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती। शास्त्रार्थका प्रारम्भ ठीक दो बजे दिनके हुआ।

श्रीमान् स्याद्वाद्वारिधि वादि गज केसरी पंडित गोपाल दास जी वरैया द्वारा श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा और आर्य समाजी स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती में ईश्वर के सृष्टि कर्तृत्व के विषय में जो मौखिक शास्त्रार्थ हुआ वह इस रिपोर्ट के अन्त में परिशिष्ट नम्बर "क," में प्रकाशित किया जाता है।

शास्त्रार्थ समाप्त हो जाने पर आर्य समाज की ओर से बाबू मिट्ठनलाल जी बकौल और जैन समाज की ओर से चन्द्रसेन जैन वैद्यने सम्राट पंचम मार्ज व वृट्टिश गवर्नरगटकी (जिन के निष्कष्टक राज्य में यह शास्त्रार्थ इस प्रकार शान्ति और प्रेम से समाप्त हुआ) धन्यवाद दिया और अन्त में सभा-पति की सर्व उपस्थित सज्जनों को धन्यवाद देने आदि की उपसंहार संक्षिप्त वक्तृता होकर सानन्द सभा समाप्त हुयी।

आज रात्रिको पंडित दुर्गादत्त जी शास्त्री जैन भूतपूर्व उपदेशक आर्य समाज का "जैन धर्म और वैदिक धर्म की तुलना तथा दयानन्दकृत वेद भाष्योंकी पोल,, पर व्याख्यान होना निश्चित हुआ था अतः निम्न विज्ञापन काशित किया गया।

\* वन्दे जिनवरम् \*

**जैन धर्म और वैदिक धर्मकी तुलना तथा दयानन्द  
कृत वेद भाष्यों की पोल।**

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंकी सेवा में निवेदन है कि आज ता० ३१  
६।१९१२ ई० रविवार सायंकाल को श्रीमान् पंडित दुर्गादत्त जी शास्त्री जैन  
भूतपूर्व उपदेशक आर्य समाज का "जैन धर्म और वैदिक धर्म की तुलना  
तथा आर्य वेदों की पोल,, पर स्थान गोर्दीकी नसियां में व्याख्यान होवे-



या : कुमारा सर्व सज्जन कर्मरूपमेव प्रचारका नाम सदायै । विवेकचन्द्रम् ।

प्रार्थीः—

श्रीसूला अजमेरा मंत्री—श्री जैन कुमार सभा,

अजमेरा ता० ३० जून १९१२

पंडित दुर्गादत्त जी से हमारे पाठक अपरिचित न होंगे । आप पंजाब प्रदेशान्तरगत रोहतक जिले के महिम ग्राम के निवासी पंडित श्रीधर जीके पुत्र श्री आर्य समाज के भूतपूर्व सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् पंडित गणपति जी शर्मा के निकटस्थ बन्धु गोड़ ब्राह्मण हैं । आपने आर्य समाज में कई वर्षों तक उसके तत्वों का मनन और उपदेशकी का काम किया पर जब आप को सबसे सन्तोष और शान्ति की प्राप्ति न हुई तब आपने सहर्ष जैनधर्म ग्रहण किया और वैशाख कृष्ण द्वितीया वीर निर्वाणार्द्ध २४३८ के बारहवें अङ्क के जैन मित्र पत्र में बारहवें पृष्ठपर उसकी निम्न सूचना प्रकाशित करायी ।

**मैंने जैनधर्मकी शरण क्यों ली ।**

**उद्योगेन सर्वाणि कार्याणि सिद्ध्यन्ति ॥**

मनुष्य संसार में पुरुषार्थ से कठिन से कठिन कार्य कर सकता है । यहां तक कि यदि वह खोज करे तो आत्मिक शान्ति या उन्नति भी कर सकता है मुझको धार्मिक बातों से प्रेम विद्यार्थी अवस्था से ही था और वास्तविक अर्थ को पाना चाहता था । लेकिन खोज करने पर भी वह वास्तविक अर्थ उपलब्ध न होने से मैंने आर्यसमाजिक ग्रन्थों को देखा और मैं उपदेशक बन गया । भिन्न प्रदेशों में ३ वर्ष तक उपदेशक पदपर रहा, लेकिन इतने काल आर्य समाज में रहने पर भी मेरी आत्मा को संतुष्टि न हुई । अतः मैं सीभाग्य बस स्थालकोट के जिले में पिसरूर दो मास पर्यन्त उपदेशार्थ ठहरा । इस रास्ते में मुझको जैनी भाइयों से निलाप हो गया और इन लोगों ने मुझे जैनधर्म सुरुबन्धी पुस्तकें अवलोकनार्थ दीं । मैंने अच्छी तरह से उन्हें पढ़ीं और पुस्तक देखने के अनन्तर मुझे मेरी आत्मा ने साक्षी दी कि मैं यदि सच्ची ज्ञानि प्राप्त कर सकता हूं, तो एक जैनधर्म में ही कर सकता हूं । इस क्षण में मैं अपने पिसरूर के जैनी भाइयों का अत्यन्त उपकार मानता हूं और यह सत्यवाद के योग्य है ।

मुझे आर्यधर्म में जीने २ समझेंगे वे उनका वर्णन में दूसरे समय में मैजगा ।

आपका हितैषी:-

**दुर्गादत्त उपदेशक जैन भूतपूर्व आर्यसमाज ।**

पिचकर [रयालकोट] ता० ३१—३—१२

आपके इस सूचनाके प्रकाशित होने पर "आर्य मित्र" के तारीख ८ मई सन् १९१२ ईस्वीके अंकमें इन्द्रपाल वर्मा मन्त्रीने आपसे कुछ प्रश्न पूछे जिस के कि उत्तरमें आपकी ओर से द्वितीय आषाढ़ कृष्ण द्वितीया धीर निर्वा-  
वाब्द २४३८ के अट्टारहवें अंक के "जैन मित्र" पत्र में तीसरे पृष्ठपर निम्न घोषणा प्रकाशित हुई ।

## आर्यसमाज को घोषणा ।

आर्यमित्र में मेरे विषय में कुछ झूठ तथा अयुक्त बातोंके साथ कुछ प्रश्नादि भी किये हैं । उन्होंने पूछा है कि आपने जैन धर्म क्यों ग्रहण किया है, और आर्यधर्म किस कारण हेय समझा है । इत्यादि महाशय जी, मुझ को यह पूर्ण विश्वास है कि वेदोंमें सांसादि की स्पष्ट आज्ञा है, मैं उनको निरुक्तादि कोषोंके द्वारा करके बतला सकता हूँ । दूसरे वेद ईश्वरोक्त नहीं हो सकते । यथा पुनरुक्ति दोष, बदतोव्याघात दोषों से रहित वेद नहीं है मैं यह भी प्रतिष्ठा करता हूँ कि उपनिषद् प्रश्नोपनिषद् और सांख्यादि दर्शनके कर्ता ईश्वर को सृष्टिकर्ता नहीं मानते । आपने जो यह लिखा है कि, आप किस समाजके सभासद् रहे हैं, सो आपकी नितान्त भूल है । क्योंकि इस समयभी जितने आर्य पवित्र आर्यसमाज में कार्य कर रहे हैं, वह किसी खास समाज के सभासद् नहीं कहला सकते इसीलिये आपका यह प्रश्न व्यर्थ समझ के कुछ उत्तर देने की आवश्यकता नहीं समझता । महाशय जी, मैंने आर्यधर्मको परित्यग करके जैनधर्म को ग्रहण क्यों किया, इस विषय के आरम्भ करनेको मैं तय्यार हूँ । यदि आपके अन्दर साहस है तो आप मैदान में निकलें । मैं जैनमित्रमें उपनिषद् को कि खामी दयानन्द जी ने प्रमादिक मानी हैं और दर्शनादि शास्त्रोंसे भी यह सिद्ध करने को लैख लिखना आरम्भ करूंगा कि वे आचार्य ईश्वर की जगत्कर्ता नहीं मानते थे । फिर दूसरा द्रव्यों की विवेचनापर होगा, वैशेषिककार और जैनधर्म का मुकाबला, पुनर जोस नित्य

है या अनिष्ट है इस विषय पर लेख होगा इत्यादि । यदि आप लोग चाहते हैं कि आर्यधर्म की रक्षा हो तो आपका कर्तव्य है कि अपने आर्यमित्रों हमारे लेखका उत्तर देना प्रारम्भ करें । यह आपको प्रथम ही घोषणा के रूप में जैनमित्र में प्रकाशित किया जाता है ॥

## दुर्गादत्त शर्मा उपदेशक जैन भूतपूर्व आर्यसमाज ।

सन्ध्याकी निश्चित समयपर सभा का कार्य्य पुनः प्रारम्भ हुआ । भजन व मङ्गलाचरण होनेके पश्चाद् पंडित दुर्गादत्तजी का व्याख्यान प्रारम्भ हुआ । आपने अपने सुरीले और मधुर व्याख्यानमें जैन धर्मके विषयमें अज्ञानताके कारण प्रचलित नास्तिक, वासनागो और बौद्ध धर्म की शाखा होने आदि किम्बदन्तियोंका निराकरणकर यह दिखलाया कि सुख और शान्तिकी प्राप्ति जैन धर्मसे ही हो सकती है । वेदों के विषयमें आपने कहा कि स्वामी दयानन्दजीके भाषानुसार वह ईश्वर कृप कदापि सिद्ध नहीं होते और उनसे सुख शान्ति ही मिल सकती है; उनमें सिवाय भेद व करियों व मामूली संसारी बातोंके और कुछ नहीं । अनेक अवसरोंसे वेदोंकी पोल दिखलाते हुये आपने यह कहा कि वेदों की पोल में कहाँ तक दिखलाऊँ उसमें तो निरी पोल ही पोल भरी है । आर्यसमाज के उत्साह और कार्य्यकी प्रशंसा करते हुये आपने जैन भाइयोंसे सर्व जीवों के कल्याणार्थ जैन धर्मके सर्व को प्रकाशित करनेका अनुरोध कर निज व्याख्यान समाप्त किया । पंडितजी के आसन ग्रहण कर लेने पर चन्द्रसेन जैन वैद्यने स्वामीजीके यजुर्वेद भाष्यसे अनेक अवतरण पढ़कर सुनाये जिनसे कि वेदोंकी निरर्थकता और उनका ईश्वर कृत न होना सर्वथा झलकता था । इसके पश्चाद् कुंवर दिग्विजयसिंहजी ने करताल ध्वनिके मध्य खड़े होकर अनेक झमूठी मुक्तियों से वेदोंका ईश्वर कृत न होना और जैन धर्मका ही ईश्वरका उपदेश होना मली भांति सिद्ध किया । भजन व मङ्गल होनेके पश्चाद् जयजयकार ध्वनिसे सभा समाप्त हुई।

## चन्द्रवार १ जुलाई १९१२ ईस्वी ।

मध्याह्नकी भजन व मङ्गलाचरण होने के पश्चात् सभाका कार्य्य पुनः प्रारम्भ हुआ । आज सभामें स्त्रियोंके विशेष अनुरोधसे उनको भी पर्देके यथोचित प्रबन्धमें स्थान दिया गया था और उन के अर्थ स्पेशल रीतिपर च-

मन्त्रसेन जी जैन वैद्यका कुरोति निवारण और जी शिक्षापर बीच बीचमें म-  
जनोंके साथ बड़ा सुन्दर व्याख्यान हुआ । इस के पश्चाद् सर्व लोगोंके अनु-  
रोधसे कुंवर द्विविजय सिंह जी खड़े हुए और आपने जैन धर्मकी सफाई  
प्रभावना और उसकी आवश्यकतापर बड़ी गम्भीरता और मार्मिकतासे प्र-  
भावशाली विवेचन किया । मज्जन होनेके पश्चाद् सभा सानन्द समाप्त हुई ।

आज रात्रिको श्रीमान् स्याद्वादु वारिषि बादि गजकेसरी पंडित गो-  
पालदास जी वैरेण्याका व्याख्यान होना निश्चित हुआ था तदनुसार निम्न  
विज्ञापन प्रकाशित किया गया ।

॥ वन्दे जितवरम् ॥

आइये ! पधारिये !! लाभ उठाइये !!!

## एक अपूर्व व्याख्यान ।

आज ता० १ जुलाई सन् १९१२ ई० को स्थान गोदोंकी नसियांमें श्री  
मान् स्याद्वादु वारिषि बादिगज केसरी पं० गोपालदासजी वैरेण्याका जैन  
सिद्धान्त (Jain Philosophy) पर सायंकालके ८ बजेसे एक अद्वितीय सुल-  
लित व्याख्यान होगा । अतःसर्व सज्जन महोदयगण अवश्यमेव पधारकर  
और व्याख्यान श्रवण कर घन लाभ उठावें ।

प्रार्थी—घोसूलाल अजमेरा मंत्री

श्री जैन कुमार सभा अजमेर ता० १ जुलाई १९१२

—:०:—

कल तारीख ३० जूनके मध्यरात्रिको ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्वके विषयमें जो  
मीथिक शास्त्रार्थ बादिगज केसरी द्वारा श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा और  
स्वामी दर्शनानन्द जीसे जैन धर्मकी बड़ी सकलता और बड़ी प्रभावनासे  
हुआ था और उसका जो उत्तम प्रभाव सर्व साधारण पर पड़ा था वह स्वा-  
मीजी और आर्यसमाजियोंकी असह्य हुआ । उन्होंने उस प्रभावको नष्ट  
करने और अपने कर्तव्य के अनुसार पुनः प्राप्त करने के अर्थ एक प्रपंच ( सर्व  
साधारण के आंखों में धूल डालनेको ) रचा । स्वामीजीने पंडित दुर्गादत्तजी  
को एक अनुषंग द्वारा राय बहादुर सेठ येनिचन्द जी सोनीके रङ्ग मङ्गलसे  
अपने मिलनेके अर्थ आर्यसमाज भवनमें बुलावा भेजा और वहाँपर उनकी

जिस तिस प्रकार जैन धर्म परित्याग शीर्षक एक विज्ञापन निकालनेकी वाञ्छ किया। अनेक दिवशींके पश्चाद् पंडित दुर्गादत्तजीसे साक्षात्कार होने पर ज्ञात हुआ कि स्वामी जी और आर्यसमाज ने उनकी ऐसे बड़ावे दिये कि तुम ऐसे योग्य और ब्राह्मणके पुत्र होकर इन कैश्योंके शिष्य बने और वेदोंका खरबहन करने लगे यह कितने शोक और अथः पतनकी बात है। जब तुमसे ही योग्य ब्राह्मण वेदोंका खरबहन करने लगेंगे तो उनकी कैसे रक्षा होगी। देखो अभी हालमें ही तुम्हारे निकटस्थ प्रिय बन्धु गणपति जी शर्मा मर गये उनके स्थानकी पूर्ति तुम्हें करना चाहिये। हम सम्पासी, तुमसे बड़े और तुम्हारे शिष्य हैं इस लिये हमारा अनुरोध तुमको अवश्य मानना चाहिये। हमारे जिते तुम जैन धर्ममें नहीं जा सकते। इत्यादि। स्वामी जी और आर्यसमाजकी इन हृदय विदारक बातोंने पंडित जीके हृदयको (जो कि उनके निकटस्थ प्रिय बन्धु पंडित गणपति जी शर्माके अकालिक वियोगके कारण-जिसकी कि सूचना पंडित जी को आज ही प्राप्त हुई थी-अत्यन्त शोकाकुल था) पिचला दिया और वह अपने नैतिक धर्मसे ऊपुत हो गये। बहुत दवाव पहने पर उन्हें स्वामी जी और आर्यसमाजका डापट किया हुआ निम्न विज्ञापन प्रकाशित करनेकी अनुमति देने ही पड़ी।

### जैनधर्म परित्याग ॥

कल जो मेरा लेखक जैनसम्प्रदायमें वैदिकधर्म और जैनधर्मकी तुलना इस विषयपर हुआ था और उस विज्ञापनमें वेदोंकी पोल खोलना भी जैन भाइयोंने प्रकाशित किया था, परंच दिनमें शास्त्रार्थ जोके श्रीस्वामी दर्शना-कन्द जीके सम्प्रदाय पंडित बोधराजदासजी, कलकत्ता हुआ था उस समय पत्रिकावकी देखभाल मुझे पूर्वोक्त समीपद्वय अत्यन्त यत्नात्प करना पड़ा और मैंने अपने दमस्त्यानमें वेदोंकी पोल खोलनेके स्थानपर वेदोंका बहस ही दर्शयः आच भी मैं जैन धर्मके प्रभावका प्रामाणिक करने वेदोंके महत्त्वपर कुछ प्रवेग काटता ॥

सम्प्रदाय-समीक्षा ५ वजे से

स्थान—आर्यसमाज भवन अजमेर।

२० दुर्गादत्त शर्मा, ता० १-७-१२ ई०

आचार्य समाजकी ओरसे प्रकाशित पंडित दुर्गादत्त जी के सम्बन्धित विज्ञापनका समाजकी ओरसे निम्न किम्बदन्त द्वारा उत्तर दिया गया ।

॥ चन्दे जिनवरम् ॥

**मानकी सरम्मत ।**

सर्व साधारण सज्जन ज्ञेयोंको यह प्रगट करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि कल जो शास्त्रार्थ जैन और आचार्य समाजमें श्रीमान् स्याद्व्यास-रिषि वादि गज केसरी पं० गोपालदासजी बरैया और स्वामी दशनामन्द जी सरस्वती महाराजमें हुआ था उसमें तीन घण्टे विषयसे विषयान्तर होते हुए स्वामीजी महाराज ईश्वरकी स्वाभाविक क्रियामें सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्व सिद्ध न करनेके पर आचार्यसमाजकी किसी प्रकार अपने टूटे हुए मान की सरम्मत करना इष्ट थी इस कारण उसने पं० दुर्गादत्तजी शर्मा ( जिनका कि अट्टान कुछ समयसे आर्यसमाजसे विचलित होकर जैन धर्मपर आता हुआ मालूम होता था ) को किसी प्रकारका आश्वासन देकर पुनः आर्यसमाजकी वजानेकी चेष्टा करके अपने मानकी सरम्मत की है पर समाजकी विश्वास रखना चाहिये कि इस प्रकारकी कार्रवाइयोंसे उसके मानकी सरम्मत कदापि नहीं हो सकती यदि यथार्थमें पंडित दुर्गादत्तजीकी दोषहरके शास्त्रार्थके बाद ही जैनधर्मपर शंकायें होगई थीं तो उन्होंने रात्रिके निम्न व्याख्यानमें वेदों की पोल क्यों खोली और क्यों यह कहा कि मैं वेदोंकी पोल कहां तक दिखलाऊं उसमें तो निरी पोल ही पोल भरी है यथार्थमें यदि पंडित दुर्गादत्त जी को जैन धर्मपर शंकायें होगई हैं तो हम उनको उनके कल्याणार्थ पुनः जैनधर्मपर निम्न सवस्त शंकाओंके समाधान और वेदोंके महत्त्व सिद्ध करनेका मौका देते हैं यदि और कोई बात हो तो आप सुशी से आर्यसमाज में सम्मिलित हुआये पर साथ ही विश्वास रखिये कि इस प्रकारकी कार्रवाइयोंसे जैन मतका कुछ भी नहीं बिगड़ता क्योंकि उसके सिद्धान्त नितान्त सत्य और अटल हैं ।

**प्रार्थी—धीरूलाल अजमेरा मंत्री**

श्री जैन कुमार सभा अजमेर ता० १ जुलाई १९१२

—:०:—

सम्प्रदायकी सभाका अधिवेशन पुनः प्रारम्भ हुआ रात्रिके वादि गजके-सरीजीके व्याख्यानका मौकित होनेसे बड़ी भीड़ थी और अल्प पुरुषोंके

साथ ही साथ दीवान बहादुर पंडित गोविन्द रामचन्द्र खांडेकर भूतपूर्व ए-कस्ट्रा जुडिशल कमिश्नर, राय बहादुर पंडित सुखदेव प्रसाद जी भूतपूर्व दीवान जोधपुर, राय सेठ चान्दमल जी आनरेरी मैजिस्ट्रेट, कुंवर जगन्मल जी आनरेरी मैजिस्ट्रेट, पंडित दामोदर दास जी प्रोफेसर आव संस्कृत गवर्नमेंट कालेज, सेठ सुदु करख जी मेहता और राय बहादुर सेठ सोभाग मल जी डड्डा आदि सज्जन पधारे थे। भजन व मङ्गलाचरण होनेके पश्चात् सर्व सम्मति से राय बहादुर सेठ सोभाग मल जी डड्डा ने सभापतिका आसन सुशोभित किया। घोर करताल और हर्ष ध्वनिके मध्य श्रीमान् वादि गजकेसरी जी व्याख्यान देनेको सठे और आपने लगभग दो घण्टे तक जैन तत्त्वोंका स्वरूप ऐसी योग्यता और विद्वत्तासे सरल भाषामें वर्णन किया कि लोग सुनकर दङ्ग रह गये और पंडितजीके विद्या, बुद्धि और व्याख्यान शैलीकी प्रशंसा सहस्र मुखसे करने लगे। भजन होने के पश्चाद् जयकार ध्वनिसे सभा समाप्त हुई।

## मङ्गलवार २ जुलाई १९१२ ईस्वी।

यद्यपि पूर्व निश्चित प्रोग्रामके अनुसार सभाका अधिवेशन कल ही समाप्त हो जाना चाहिये था परन्तु सर्व साधारण के अनुरोधसे आजका दिवस और बढ़ाया गया। मध्याह्नको नियत समयपर सभाका कार्य पुनः प्रारम्भ हुआ। भजन व मङ्गलाचरण होनेके पश्चाद् विद्यार्थी देवकी मन्दन जी ने शि-मरघो निवासी शम्भुदयाल जी तिबारी वर्तमान निवास स्थान वाखू हरि पदो मुकर्जी पीरमिट्टागली गांधान अजमेरकी शङ्काओंका निम्न पत्र पढ़ कर सुनाया ॥

ओ३म्

अजमेर ३०—६—१२

श्रीमान् मंत्री

जैन कुमार सभा अजमेर

कृपया मेरे दो प्रश्नोंके उत्तर जो निम्न लिखित हैं और जिनकी मुझे शंका है जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाके किसी योग्य सञ्चालक से सर्व साधारण के सा-म्झने प्रगट करा कर मेरे पास शीघ्र भेजने की कृपा करें।

श्रीयुत ठाकुर दिग्विजय सिंह जी ने जो व्याख्यान ता० २९—६—१२ की रात्रि को दिया था उसी में जैनधर्मके सम्बन्ध में ये शंकाएं उद्भूत हुई हैं।

(१) अभय राशिकी पट्यायमात्र बढाने पर श्री जैन धर्म मुक्ति नहीं दे सका। हां स्वर्गादि सुख उसे भी प्राप्त हो सकते हैं।

शंका—जब अभव्य राशिको रूपान्तर करने पर भी जैन धर्म से मुक्ति प्रदान नहीं कर सका और स्वर्गादि सुख ही दे सका है तो ऐसे धर्म से क्या फायदा है जो सबका भला न कर सके । अगर अभव्य राशि वाला कोई जिज्ञासु इस धर्म से मुक्ति चाहने की इच्छा करे तो वह उसे कहां प्राप्त हो सकती है ऐसा धर्म जब जिज्ञासु जनों का ही कल्याण नहीं कर सकता तब इसे कोई क्योंकर ब्रह्म धर्म समझे । “कीरति भूत सुलभ गति सोई,” “सुरसरि सम सब कर दित होई,,

( २ ) परोपकार—इस शब्द का अर्थ जैन धर्म में क्या है और वह राग में है या राग से बाहर है ।

जैनतत्त्व प्रकाशनी सभाका चिरपरिचित—

शंभुदयाल तिवारी



तिवारी जी के उपर्युक्त दोनों प्रश्नोंके उत्तर श्रीजैनतत्त्व प्रकाशनी सभा की ओरसे निम्नलिखित लेखबद्ध दिये गये थे जिनको भी देखकीमन्दनजीने पढ़कर सुनाये और उनपर नियमानुसार ऐसी व्याख्या की कि सर्व धाधारण उनके भावको भलीभांति समझ गये ।

वन्दे जिनवरम् ।

श्रीमान् शंभुदयाल जी शर्मा तिवारी के प्रश्नोंके उत्तर ।

१ जैनधर्म आत्माका स्वभाव है और वह प्रत्येक ही जीवमें अनादि काल से कर्मवश विकृत रहता है । भव्यजीव उनको कहते हैं जो कारण नाशनी मिलनेसे धर्मकी स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त हो कर मोक्षको पा लेता है । परन्तु अभव्य जीवमें एक ऐसी प्रतिवन्धक शक्ति है जो धर्मकी स्वाभाविक अवस्था नहीं होने देती । जैसे जो स्त्री वन्ध्या नहीं है उसके पुत्रसंप्रयोग होने पर सन्तानोत्पत्ति हो सकती है परन्तु वन्ध्या स्त्री के एक ऐसी प्रतिवन्धक शक्ति है कि जिससे उस के सन्तानोत्पत्ति नहीं होती । उस ही प्रकार भव्य और अभव्यका स्वरूप जानना, अभव्य जीव अपने कर्मों का नाश न कर सकने के कारण कहीं भी कभी मोक्षको प्राप्त नहीं हो सकता ॥

२ परोपकारका अर्थ दूसरे को लाभ पहुंचाना है और वह राग रहित या राग सहित दोनों अवस्थाओंमें होकरके पहुंचाया जा सकता है । यथा मेघ



सर्वको बिना राग ही लाभ पहुंचाता है और हम लोग अपने कुटुम्ब आदि को राग भटित हो कर लाभ पहुंचाते हैं ॥

**चन्द्रसेन जैनवेद्य मन्त्री श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा**

**इटावा । स्थान अजमेर ता० १ । ७ । १२**

—:०:—

प्रश्न और उत्तर सुनाये जानेके पश्चात् निवारीजीकी सभामें खोज कीगयी पर आप उपस्थित न थे इस कारण यह निश्चय हुआ कि उत्तर पत्र श्री जैन-कुमार सभाके मन्त्री बाबू घीमूलालजी अजमेराके पास रहे और वह उसको निवारीजीसे मिलनेपर उनको देदे । हमके पश्चात् विद्यार्थी मकखन्तलालजीने पण्डित दुर्गादत्तजीके उस व्याख्यानका खसडन किया जो कि उन्होंने आर्य-समाज भवनमें तारीख १ जुलाईकी रात्रिकी दिया था । यद्यपि अपने व्या-ख्यान में पण्डित दुर्गादत्तजीने जैनधर्मके खसडन और वेदोंके महत्त्व प्रदर्शन में कुछ नहीं कहा था—क्योंकि उनको यद्यार्थमें जैनधर्मपर अग्रद्वारा और वेदोंपर अद्वारा तो थी नहीं—और जो कुछ उनको कहना पड़ा था वह सब ऊपरी भयसे सामान्य बातें थीं पर तो भी सर्व साधारणके भूम निवारार्थ उनका खसडन किया गया । सर्व सभाकी इच्छानुसार न्यायाचार्य पण्डित साखिकचन्द्रजीने वही योग्यतासे मूर्तिपूजन पर विवेचन किया और उसके पश्चात् कुंवर दिग्वि-जयसिंहजीने प्रतिनिधि हो कर श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाका मन्देशा श्री जैनकुमार सभा अजमेरको सुनाया जिसमें कि अपने ज्ञान और चारित्रकी वृद्धि करते हुए जैनकुमारोंकी जैनधर्मकी मऊवी प्रभावना करनेका हृदयपादी श-ब्दोंमें उपदेश था । वादिगज केवरीजीने कुंवर साहबका मनर्थन करते हुए स-पसंहार वक्तृता दी जिसमें कि अनिर्योको बड़े जोर और शोरसे जैनधर्मका प्रचार कर स्वपर कल्याण करनेका उपदेश था । अन्तमें धन्यवाद और वधाई आदि के अजन हो कर जैनधर्मकी वही प्रभावनाके साथ जयजयकार ध्वनिसे सभा का सतमय समाप्त हुआ ॥

सन्ध्याकी आंकीकी रथयात्रा बड़े ठाठ वाट और धूमधामसे हुयी और इस प्रकार प्रोग्रामानुसार श्री जैनकुमार सभा अजमेरका प्रथम वार्षिकोत्सव बड़े धूमधाम और सफलतासे समाप्त हुआ ॥

आज मन्ध्याकी आर्यसमाजकी ओरसे निम्न विज्ञापन प्रकाशित हुआ ।

ओ३म्

## अब हठधर्मीसे काम नहीं चलेगा ।

जिन निर्पक्ष विद्वानोंने परसों के शास्त्रार्थकी सुना होगी, उनको भली भाँति प्रकट होगया होगा कि श्रीमान् स्वामी दर्शनानन्दजी महाराजके कई बार जुदी जुदी दलीलें व अनेक प्रकार की मिसालें देकर ईश्वर कर्ता सिद्ध करने पर भी जैन पंडित गोपालदास जी अपनी कमजोरी प्रकट न होने देने व भोले भाले लोगों पर अपना प्रभाव डालने के लिये उल्टा २ कुद् २ कर यही कहते रहे कि "मेरे प्रश्नका उत्तर नहीं मिला" यह चाल इन्होंने पहिले से ही सोच ली थी इसी कारण बार २ कहने पर भी लेखबटु शास्त्रार्थसे इनकार किया, परन्तु सत्य छिपाये कब छिप सकता है ! यह तो चालवाजी के ७ पर्दे फाड़कर भी प्रकट होजाता है ।

जुनांचे स्वामी की शान्तवृत्ति और अखण्ड शास्त्रोक्त दलीलोंका प्रभाव अनेक आत्माओं पर पड़ा जो स्वामी जीके पास आकर अपने संशय मिटाते रहे, इनमेंसे मुख्य पं० दुर्गादत्तजी पूर्व जैन उपदेशक हैं, जिन्होंने शुद्ध हृदय से जैन धर्म की तिलांजलि देकर वैदिकधर्मकी शरण लेने का अपने आप विज्ञापन दिया और दूसरे शुभदत्तजी नामी महाशय ने भी जैनमत से अपनी घृणा प्रकट की, इससे घबराकर हमारे जैनी भाइयोंने अपनी शर्म उतारने के लिये पंडित जी के शुद्ध भावों पर व्यर्थ लांछन लगाया. शायद उन्होंने न सब लोगों की बेवकूफ ही समझ रक्खा है, परन्तु लोग भले प्रकार समझ गये हैं कि अगर पण्डित जी ऐसे ही होते जैसा कि जैनी अब चिढ़कर लिखते हैं तो काहे को जैन लोग एक दिन पहले इनकी विद्वत्ता का लम्बा चीड़ा विज्ञापन देते और सभा में बड़े जोर शोर से इनकी तारीफ़ करते । अब जब इन्होंने जैनमत की पोल खोलदी तो खिसियाने होकर आर्यसमाज और पण्डितजी पर झूठे दोष लगाने लगे ।

मन्त्रीजी ! यदि पण्डित जी ने अपने व्याख्यान में ( जो कि जैनसभामें ३० जूनको हुआ था ) वेदों की पोल ही खोली थी तो आपने व्याख्यान के बीच में कागज़के टुकड़े पर क्या लिखकर दिया था और उसके उत्तरमें पण्डितजीके इन शब्दों का क्या आशय था कि "कि वेदों में निरी पोल ही पोल है जिसमें आप सब समा जायेंगे, ।

महाशय ? इन झूठी बातों से अब कुछ नहीं बनेगा अच्छा हो कि हठ को छोड़कर सत्यको ग्रहण करें और सबके मालिक ईश्वरपर विश्वास लायें, इसीमें कल्याण है ।

पण्डितजी हर समय आप लोगों के संशय मिटाने की तटपार हैं ।

तारीख  
२-७-१२

}

जयदेव शर्मा मन्त्री-  
आर्यसमाज, अजमेर

ठ्यावर के कुंवर राम स्वरूप जी रानी वाले, वहां के दिगम्बर जैन सभा के सभ्यों और पण्डों के अनुरोध से श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा आज रात को ठ्यावर पधारी ।

**बुधवार ३ जुलाई १९१२ ईस्वी ।**

कलके "अब हठ धर्मी से काम नहीं चलेगा,, शीर्षक आर्य समाज के विज्ञापन का उत्तर निम्न विज्ञापन द्वारा दिया गया ।

\* वन्दे जिनवरम् \*

**आर्य समाजी ढोलकी पोल**

**और**

**उसकी शास्त्रार्थका पुनःचैलेउज ।**

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंकी सेवा में निवेदन है कि कल एक विज्ञापन "अब हठ धर्मी से काम नहीं चलेगा" शीर्षक आर्य समाज की ओरसे निकला है जिसमें कि उसने सत्यका बिलकुल पास भी नहीं फटकने दिया है।

क्या आर्य समाज प्रज्ञा का उत्तर न देकर अपने स्वामीजीके विषय से विषयान्तर होते हुए अप्रसंग कहते जाने को ही प्रज्ञा का उत्तर देना समझती है? यदि उसकी समझमें वादि गज केसरीजीके ईश्वरकी स्वाभाविक क्रिया में सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्वके परस्पर विरोधी गुणके दूषण का समाधान हो गया था तो क्यों नहीं उसने पब्लिक के ज्ञापनार्थ "मानकी मरकमल,, शीर्षक हमारे विज्ञापन में प्रकाशित एक दूषणका निराकरण जापा । जापती कैसे उसके रूपते ही उसकी सारीपोल खुल जाती ।

स्वामी दर्शनानन्द जी की इच्छानुसार ही शास्त्रार्थ भीखिक रक्खा गया

या । यदि समाजको जबभी लिखित शास्त्रार्थ करनेका होसला और जाकी रह गया है तो हम उसको फिर भी चैलेखु देते हैं कि वह अति शीघ्रही लिखित भी शास्त्रार्थ करके अपने मनके होसले निकाल ले ।

समाजको विश्वास रखना चाहिये कि सखलता कूदता नहीं है जिसका कि पक्ष ठीक होने का उसके हृदयमें निश्चय होता है और जिसका पक्ष ठीक नहीं होता वह घबड़ा जाया करता है ।

पं० दुर्गादत्त जीको पूर्व जैन उपदेशक बतलाना सरासर लोगोंकी आंखों में धूल फेंकना है क्योंकि वह पहले आर्यसमाजी थे और उन्होंने समाजमें ३ वर्ष तक उपदेशकीका काम किया था । जब उनको समाज में शान्ति प्राप्त न हुई तब उन्होंने तिरके ३ नहीने से जैन धर्म की शरय पढ़ख की थी जैसा कि "जैन मित्र," के ३ अप्रैल सन् १८९२ ई० के अंत १२ वें में पृष्ठ १२ पर प्रकाशित "मैंने जैनधर्म की शरय क्यों ली," शीर्षक उनके लेख से प्रगट है । वह जैनधर्मके सिद्धान्तोंको अच्छी तरह नहीं जानते थे पर समाजका विचार जैन विद्वानोंसे जैन सिद्धान्तोंके अध्ययन करने का था कि इतने में ही ता० ३० जूनके शास्त्रार्थ में भारी बकाह खाने से अपने टूटे हुए मानकी मरम्मत करनेके अर्थ समाज ने उनको जिसतिस प्रकार पुनः आर्य समाजी बनाने का प्रयास किया है ।

तारीख ३० जूनके शास्त्रार्थका क्या परिचय हुआ था पं० दुर्गादत्त जी ने वेदोंके विषयमें कहा कहा यह हमारे और समाजके कहने की बात नहीं है इस को तो विश्व पब्लिक स्वयंही जानती है अब उसके अन्यथा कहनेसे क्या हो सका है ।

जो हो । हमको अब इस प्रकार कामजी घोड़े दौड़ा कर अपना व पब्लिकका असुख समझ नष्ट करना इष्ट नहीं है अतः हम समाजकी लिखित शास्त्रार्थ करके भी अपने मनका होसला निकाल लेनेका मौका देते हैं ।

पूर्व जाशा तथा कुछ विचार है कि समाज इस चैलेखुकी बाते को कीरम शास्त्रार्थ करने की कीकारता प्रदान कर हम लोगोंको धरम अनुग्रहीत करेगी ।

यदि इस विषय में समाजका कोई समुचित उत्तर तारीख ४ जुलाई सन् १८९२ ई० की शान तक [ जब तक कि हमारी श्री. जैन तत्त्व प्रकाशिनी सम्भ

समाजके वादकी खाज फिरभी निटानेकी यहां उपस्थित है ] न प्राप्त हुआ तो यह समझा जावेगा कि समाजकी आख्यार्य करना इष्ट नहीं केवल धर्मकी देकर के ही पबलिकको धोखेमें डाल रही है ।

सा—३—७—१८१२ अजमेर

घीसूलाल अजमेर मन्त्री श्री जैनकुमार सभा अजमेर

आज सन्ध्याको व्याख्यार्यमें सेठ ताराचन्द जी रईस नसीरावादके सभाप-  
तित्वमें सभा प्रारम्भ हुई । आत्म विज्ञापन वांटे जानेके कारण सभामें खूब  
भीड़ थी । भजन व मङ्गलार्चन होनेके पश्चात् न्यायाचार्य पंडित माखि-  
चन्द जीका “अनेकान्त” पर विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यान हुआ । कुंवर दिग्विज-  
यसिंह जी ने “जैन धर्मके सौन्दर्य” पर प्रभावशाली भाषण किया । आदि  
गजकेसरी जीने “सम्पत्त्व” पर अपूर्व विवेचन कर सर्व साधारणको मुग्ध  
कर दिया । भजन व मङ्गल होकर जय जयकार ध्वनिसे सभा सानन्द समा-  
प्त हुई ॥

**बृहस्पतिवार ४ जुलाई १८१२ ईस्वी ।**

नसीरावादके सेठ ताराचन्द जी, लाला प्यारेलाल जी, सेठ लक्ष्मी चन्द  
जी और दिगम्बर जैन सभाके सभ्यों और पुरुषोंके अनुरोधसे आज सभा  
नसीरावाद पधारी ।

आर्यसमाजकी ओरसे आज निम्न विज्ञापन श्री जैन कुमार सभाके “आ-  
र्यसमाजी ढोलकी पोल और उसको आख्यार्यका पुनः चैलेकु” शीर्षक विज्ञापन  
के उत्तरमें प्रकाशित हुआ ।

॥ ओ३म् ॥

**सरावगियोंकी नंगी पोल, भीतर तांबा ऊपर भोल ।**

सर्व साधारणको विदित हो कि जैनियोंसे जब हमारे साथे सच्चे विज्ञा-  
पनका कुछ उत्तर न बन पड़ा तो मालियोंपर ऊतारू होगए हैं और एक  
विज्ञापन “ढोलकी पोल” नामक निकाला है जिसके छठ्ठे-र से झूठ टपक  
रहा है । स्वामीजीकी अखण्ड दलीलोंका प्रभाव जैसा विचारशील पुरुषों पर  
पड़ा, वह उसकी मतीजेसे ही प्रकट है शक्ति तो नींदके सनाम और नाम  
रखें आदिगजकेसरी ठीक, आंखोंके आंखे और नाम जैनसुख, अपने मुंह नि-

यामिटू खनता इसीकी कहते हैं परन्तु इस घोषे आह्वयोंसे भोले भाले लोग भले ही धोखा खा जायें, समझदार तो खूब समझते ही हैं "मानकी मरम्मत" नासक विज्ञापनका हरएक बातका उत्तर होते हुए भी यह लिखना कि उसका निराकरण क्यों नहीं खाया, कितनी इठधर्मी है।

श्रीस्वामीजीने अनेक दलीलों व मिसालोंसे बख़्सी प्रकार मिट्टु कर दिया था कि चैतन्य शक्तिकी क्रिया अनेक परिणाम वाली होती है इससे देखरमें कुछ विरोध नहीं आता, परन्तु हमारे सरावगी भाइयोंने तो एक मंत्र सीख रक्खा है कि हरएक बानके पीछे कह देना कि "इसका उत्तर नहीं हुआ" यह तो वही मसल हुई कि मुझांजी ! तुमने हराया तो बहुत पर हमने हार मानी ही नहीं यह लिखना कितना अमत्य है कि श्रीस्वामी दर्शनानन्दजी की इच्छानुसार ही शास्त्रार्थ मौखिक रक्खा गया था। श्री स्वामीजी तथा बाबू मिट्टुनलालजी वकीलने मभामें कई बार कहा कि शास्त्रार्थ लेखबदु हो ताकि किसीकी अपनी बातसे पलट जानेका मौका न रहे, परन्तु इन लोगों ने माना ही नहीं, उधर श्रीस्वामी जीने झूठेको उनके दरवाजे तक पहुंचाने का दृढ़ संकल्प कर लिया था, इसी कारण इन लोगोंकी हरएक बातकी ही मंजूर कर लिया, इससे बढ़कर निहारना व वैदिक सत्यतापर दृढ़ विश्वास क्या होगा कि इन्हींका स्थान, इन्हींका दिया हुआ कुवक्त, इन्हींका सरावगी प्रधान, इन्हींका रटा हुआ विषय और इन्हींकी सभामें जाकूदे ताकि यह लोग किसी प्रकार भी टांगमटोल न कर सकें। अब हारकर लिखते हैं कि लिखित शास्त्रार्थ फिर कर लो, सो हमारा तो चैलेझु पहिलेसे ही मौजूद है कि जब चाहो सत्यासत्य निरायके लिये शास्त्रार्थ करलो। यह लोग लिखते हैं कि उछलता कूदता वही है जिसका पक्ष ठीक हो और जिसका पक्ष ठीक नहीं हो तो वह घबरा जाता है सो यह तो कहरसे कहर जैनी भाई भी कहते हुए हुनाई दिये कि स्वामी जी कैसी शान्ति और धीरजसे अन्त तक उत्तर देते रहे, परन्तु पंडित गोपालदासजी की तरह उन्होंने घैटवर्गको नहीं छोड़ा। उछलना कूदना सत्यकी निशानी नहीं, दम्भकी है, क्हांकि बोधा चखा बाजे चखा।

यदि पं० दुर्गादत्त जी जैन उपदेशक नहीं थे और जैन सिद्धान्तोंकी अच्छी तरह नहीं जानते थे तो उनके द्वारा जैनमतकी वैदिक धर्मसे तुलना कराने का विज्ञापन किस जितने बर दिया गया था ? यह विज्ञापन झूठेके मुंहपर

कोलस लगानेके लिये सर्वदा नीजुद् रहेगा । पश्चित्तजी जब तक जैनी से तब तक तो शास्त्री और विद्वान् से और अब जैनमतको तिलाञ्जलि देते ही कमलियाकत होगये, परन्तु इस मित्रवाप्रसापको पञ्चलिक भली प्रकार समझती है । इन लोगोंने हरएक बातमें बालाकी सीखली है, पहिले भी शास्त्रार्थको टाजनेके लिये ९॥ बजे चिट्ठी भेजी और बिना उत्तर पाये ही दो बजे सकुत गर्मीका वक्त यह समझ कर मुकर्रेर कर दिया कि न तो ऐसी कड़ी शर्तें मंजूर होंगी और न शास्त्रार्थ होकर । अब भी बालवाजी से विज्ञापन व्यावर में रूपवा कर ३ तारीखकी रातको बांटा और शास्त्रार्थके लिये ४ बी तारीखका समय दिया है । यदि ऐसा ही होसला था तो शास्त्रार्थके पीछे जब खाभीजीने सभामें कईबार शास्त्रार्थकई दिनों तक जारी रखनेके लिये कहा था तो इन लोगोंने क्यों इनकार कर दिया, और । यदि अब भी स्वामीजीके चले जानेके पश्चात् कुछ होसला आगया हो और ३ वर्षकी अवला जैनतत्त्व-प्रकाशिनी सभामें ३७ वर्षके प्रौढ आर्यसमाजके वादकी खान मिटानेकी शक्ति पैदा होगई है तो आर्यसमाजके लिये इनसे बहुत और खुशी क्या हो सकती है ? । हम इन्के की चोट कहते हैं कि लेखबद्ध शास्त्रार्थके लिये हम हरवक्त तय्यार हैं आप शीघ्र ही आरम्भ करें, परन्तु इस जिम्मेवारीके लिये किसी योग्य प्रतिष्ठित अजमेर निवासीकी ओरसे जिम्मेवारीका विज्ञापन होना चाहिये, लौहों के द्वारा ऐसे काम पूरे नहीं हो सकते ।

जयदेव शर्मा मन्त्री आर्यसमाज अजमेर

तारीख ४-७-१२

सन्ध्याको नसीरावादमें कुंवर रामस्वरूपजी रानी वाले रहैस व्यावरके सभापतिपदमें सभोका अधिवेशन प्रारम्भ हुआ । आन मोटिव बटजाने और श्रीजैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाकी ख्याति हो जानेके कारण आज सभामें बड़ी भारी भीड़ थी । भजन होनेके पश्चात् न्यायाचार्य पश्चित्त बाबिकचन्दजी का मङ्गलाचरण रूपमें एक संक्षिप्त व्याख्यान हुआ । कुंवर दिग्विजयसिंह जी चोर करताल ध्वनिके मध्य "मूर्तिपूजन", पर व्याख्यान देनेको खड़े हुए । आपने ऐसी योग्यतासे मूर्तिपूजन सिद्ध किया कि लोग दङ्ग रहगये और बाह बाह करने लगे । इसके पश्चात् वादिगजकेसरीजीका "कर्ताव्यहन", पर ऐसी सरल और निष्ठ वाचोंमें व्याख्यान हुआ कि लोगोंके हृदयमें उसकी लीक खिंच गयी और बड़े २ विद्वान् कर्तावादियोंको भी इस विषयमें अङ्गायें हो गयीं ।

हम लोगोंके प्रभावको नष्ट करनेके अर्थ अजमेर के आर्यसमाजियोंने न-  
सीरावादमें पहुँच कर तरह तरह की गप्पें उड़ाकर सर्वसाधारणको भ्रममें डाल  
रक्खा था जिनका कि प्रतिवाद करना उचित समझा गया । उसके अर्थ कुं-  
वर दिग्विजयसिंहजीने सड़े हो कर सर्व यथार्थवार्ता कह सुनायी जिससे कि  
आर्यसमाजियोंका सर्व प्रपञ्च लोगों पर प्रगट हो गया । अपनी पोल इस  
प्रकार खुलते देखकर पण्डित लालताप्रसादजी असिस्टेण्ट सेक्रेटरी परोपका-  
रिन्की सभा अजमेरसे न रहा गया और आपने सभामें सड़े होकर फिर लोगों  
को भ्रममें डालना प्रारम्भ किया पर दो तीन बार उत्तर प्रत्युत्तर होने पर  
आपकी बन्द होकर लज्जित होना पड़ा । अपनी लज्जाको दूर करनेके अर्थ  
आपने उसी समय लिखित शास्त्रार्थ करनेकी धमकी दी जिसपर हमारी ओर  
से इर्ष प्रगट किया जाकर आपसे पूछा गया कि यह लिखित शास्त्रार्थ आप  
स्वयं करते हैं या किसी समाज की ओर से । आपने आर्यसमाज अजमेर का  
नाम लिया जो कि हमारी ओरसे बिना उसकी स्वीकारता दिखलाये अस्वी-  
कार किया गया । इस पर आर्यसमाज नसीरावादने आपको अपनी ओर से  
शास्त्रार्थ करनेका प्रतिनिधि नियत किया ॥

दोनों ओरके निश्चयके अनुसार वही सभामें एक एक प्रश्न परस्पर लिखा  
जाने लगा और हमारी ओरसे निम्न प्रश्न लिखा गया ॥

आप ऐसे मूल पदार्थ कितने और कौन से मानते हैं  
जिनमें कि सर्व पदार्थ गभित हो जाय और वे किसीमें ग-  
भित न हों और उनके लक्षण क्या हैं ! प्रमाण से इन प-  
दार्थोंका निर्णय किया जायगा अतः प्रमाण के सामान्य  
और विशेष लक्षण लिखिये ॥

—:—

हमारी ओरका उपर्युक्त प्रश्न लिखा जाकर सभामें सुनाया जानेको ही  
था कि पण्डित लालताप्रसादजीने ( अपना प्रश्न लिखना बन्द करके ) सड़े  
हो कर यह कहा कि यह शास्त्रार्थ बहुत दिवस तक जारी रहैगा अतः आप  
लोग अपनी सभा बन्द करके प्रथम नियमादि निश्चित कर लीजिये तब कल  
से शास्त्रार्थ बसाइये । आपकी बात कईवार हमारे प्रतिवाद करने पर भी



मानना ही पड़ी और भजन व अन्तिम मङ्गल होकर जयजयकार ध्वनिसे सभा समाप्त हुयी ॥

जबतक हम लोग समाप्त करें करें तबतक पण्डित लालताप्रसादजी सभा से अपने मित्रमण्डल सहित चुपचाप खिसक गये और बहुत दूढ़ लोग करने पर भी आपका पता न चला ॥

## शुक्रवार ५ जुलाई १९१२ ईस्वी ।

प्रातःकाल होते ही मसीरावाद आर्यसमाज के मन्त्री खुलाने पर आये और शास्त्रार्थके विषयमें पूछे जाने पर कहा कि हमारे पण्डित लोग तो अजमेर चलेगये अब हम क्या करें। हमारी ओर से आपको वही हमारा कल रातको लिखा हुआ प्रश्न दे दिया गया और कह दिया गया कि इसका उत्तर वादमें जब आपसे हो सके भिजवा दीजियेगा ॥

कल रातको ठयारूपान सुनकर ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्व और मूर्तिपूजन के विषयमें अनेक सन्देहों को प्राप्त विद्वान् वैष्णव पण्डित चुकीलाल जी शर्मा हम लोगोंके स्थान पर पधारे और न्यायाचार्यजी से संस्कृतमें उपर्युक्त दोनों विषयों पर डेढ़ दो घण्टे तक वाद विवाद कर सन्तोषको प्राप्त हुये और जैन-धर्मकी प्रशंसा करते हुये चलेगये ॥

आज दिनको मध्याह्न समय सभा पुनः अजमेर लौट आयी । सन्ध्या की वादिगज केसरीजीकी मन्दिरजीमें शास्त्र सभा हुयी और आपने उसमें कई तर्कों और बातोंका अपूर्व स्वरूप दिखला कर सबको आनन्दित किया ॥

कलके आर्यसमाजके विज्ञापनका उत्तर निम्न विज्ञापन द्वारा दिया गया ।

॥ बन्दे जिनवरम् ॥

**आर्यसमाज की खुलगई पोल । शास्त्रार्थ से टालम टोल ।**

सर्व साधारण सज्जन महोदय की सेवा में निवेदन है कि कल एक विज्ञापन " सरावगियों की नङ्गी पोल भीतर ताँबा ऊपर झोल " शीर्षक आर्यसमाज की ओरसे निकला है जिसमें कि गालियों और असभ्य बातोंके सिवाय सारवात का लेशमात्र भी नहीं है और यह प्रत्यक्ष ही है कि जो हीन शक्ति हुआ करता है वही इस प्रकार गालियों तथा असभ्य शब्दों का प्रयोग किया करता है ।

गीदह कीन है और सिंह कीन है यह ठहरने तथा भागजानेके कृत्योंसे ही पबलिक को स्वयं प्रगट है ।

समाज का यह लिखना कि उसने "मानकी मरम्मत" शीर्षक हमारे विज्ञापनकी समग्र बातोंका उत्तर प्रकाशित कर दिया है नितान्त ही असत्य है क्योंकि उसके "अब हठधर्मी से काम नहीं चलेगा" शीर्षक विज्ञापनमें ईश्वर की स्वाभाविक क्रिया में सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्व के परस्पर विरोधी गुण के हमारे दिये हुये दूषण का कुछ भी समाधान नहीं है और न इस विज्ञापन में ही कुछ है । इससे भली भांति प्रगट होता है कि समाज के पास उसका उत्तर है ही नहीं ।

जब कि श्री जैन तत्त्व प्रकाशनी सभा अपने मामूली से मामूली शब्दा समाधानको भी लिखित प्रणाली से करती है जैसा कि समाजको उसके विज्ञापनों और कार्रवाहियों से प्रगट होना तो इतने बड़े भारी शास्त्रार्थके विषयको यह कब मौखिक रख सकती थी । क्या समाज इस बात से इन्कार कर सकता है कि स्वामी जीने पांच पांच मिनट मौखिक शास्त्रार्थके लिये नहीं रखे थे और जब उस ने उन की ही बात को स्वीकार कर लिया तो क्या इससे यह प्रगट नहीं है कि उनकी इच्छानुसार ही मौखिक शास्त्रार्थ रक्खा गया था । निस्सन्देह श्रीजैन तत्त्व प्रकाशनी समाने दोनों पक्षोंकी ओरसे कहे हुए मौखिक शब्दोंकी रिपोर्टपर जो कि दोनों ओरके रिपोर्टोंने लिखी थी हस्ताक्षर करनेसे इस लिये इन्कार कर दिया था कि वहांके रिपोर्टर लोग ऐसे संक्षिप्त लिपि प्रणालीमें चतुर नहीं थे जो कि कहे हुए शब्दों को अक्षर प्रत्यक्ष लिख सकें और एक भी अक्षर या शब्द चूक जानेसे भाव अन्यथा हो जाता है । यदि समाज के प्रस्तावानुसार ही दोनों ओरके तीन तीन रिपोर्टोंनेसे प्रत्येकके लेख जांच करके हस्ताक्षर किये जाते तो शास्त्रार्थका सारा समय इसीमें नष्ट होजाता ।

समाजको विश्वास रखना चाहिये कि पराजित पुरुष कभी भी विजयी का कोनना करनेके लिये मैदानमें नहीं ठहर सकता किन्तु शीघ्रही भाग जाता है । विजयी पुरुष ही पराजित पुरुषके अपनी पराजयसे इन्कार करने पर उसको पुनः परास्त करनेके लिये मैदानमें आनेको ललकारता है ।

यदि समाजको इस बातका विश्वास है कि "ईश्वर इस सृष्टिका कर्ता नहीं

ही हमकी यह लिख देना चाहिये कि हमारी श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा कल के बजे उसके समाज भवनमें लिखित शास्त्रार्थकी आवे ॥

यदि इस विज्ञापनके पानिके समयसे १२ घंटेके भीतर आर्यसमाज इस विज्ञापनका समुचित उत्तर न देगी तो हमारी श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा आर्यसमाजकी शास्त्रार्थ करनीमें सर्वथा असमर्थ संसक्त अपने स्थानकी चली जावंगी क्योंकि अब वह अपना समय शास्त्रार्थकी केवल प्रतीक्षामें ही व्यर्थ नष्ट नहीं कर सकती ॥

धीसूनाल अजमेरा मन्त्री—श्रीजैन कुमार सभा अजमेर

तारीख ५ जुलाई सन् १९१२ ई०

आज प्रेसोंमें कुछी होनेके कारण उपर्युक्त विज्ञापन दिनमें प्रकाशित न हो सका अतः रातों रात छपवाया गया और प्रातःकालके पांच बजे इस विज्ञापन की कई कापियां आर्यसमाज भवनमें भिजवा और चिपकवा दी गयीं।

## शनिवार ६ जुलाई १९१२ ईस्वी।

मध्याह्नकी आर्यसमाज अजमेरका निम्नपत्र प्राप्त हुआ।

ओ३म्

आर्यसमाज अजमेर

सं० ३०-१

ता० ६ जुलाई १९१२ ई०

श्रीयुक्त मन्त्रीजी श्रीजैन कुमार सभा अजमेर।

महाशय ! नमस्ते,

सुनागया है कि आज आपकी ओरसे कोई विज्ञापन निकला है परन्तु इस वक्त ( मध्याह्नके १२ बजे ) तक हमारे पास उसकी प्रति नहीं आई है अतः कृपा कर १ प्रति इस पत्रके पाते ही शीघ्र भेजदियें।

महदीय जयदेव शर्मा मन्त्री आर्यसमाज अजमेर।

कद्यपि आर्यसमाजमें विज्ञापन प्रातःकालके पांच बजे ही पहुँच गया था परन्तु समय बढ़ानेके अर्थ जो मन्त्री आर्यसमाजमें उपर्युक्त पत्र भेजा तो आपकी विज्ञापनकी एकप्रति पुनः भेज दी गयी।

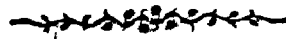
आज सन्डेवाकी कुंवर साहबकी 'सूतिपत्रिका', पर व्याख्यान होना निश्चित हुआ अतः निम्न विज्ञापन प्रकाशित किया गया ॥

+ दण्डे जिनवरम् +  
**मूर्तिपूजन परं व्याख्यान ।**

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंकीसेवामें निवेदन है कि आज ता० ६ सु-  
 लाई सन् १९१२ ईस्वी शनिवारकी सन्ध्याको ८ बजेसे स्थान-गोदोंकी मञ्चि-  
 यामें श्रीमान् कुंवर दिग्विजयसिंहजीका "मूर्तिपूजन," पर व्याख्यान होगा ।  
 अतः सचिवस्य प्रार्थना है कि आप सर्व सज्जन महोदय उक्त समय पर अव-  
 श्यमेव पधार कर हम सबकी परम अनुपमोदित करिये ॥

नोट—हमने आर्यसमाजियोंको शरारतका खेलेझू दे रक्खा है । यदि उ-  
 न्होंने हमारे इसी व्याख्यानके समयमें शास्त्रार्थ करना स्वीकार करलिया तो  
 हम अपने व्याख्यानको बन्द कर उनसे शास्त्रार्थ करनेको चले जायेंगे ॥

श्रीसूलाल अजमेरा मन्त्री श्रीजैनकुमारसभा अजमेरा ।



सन्ध्याको नियत समय पर श्रीमान् रघुदादवारिधिवदिगजकेसरी प-  
 चिह्नित गोपालदासजी वरैपाके सम्भाषित्वमें सभाका कार्यप्रारम्भ हुआ । व्या-  
 याचार्य पचिह्नित साखिकचन्द्रजीके मङ्गलाचरणस्वरूप एक संक्षिप्त-व्याख्यान हो-  
 नेके पश्चात् कुंवर साहब हर्षध्वनिके मध्य व्याख्यान देनेको खड़े हुये । आपने  
 बड़ी योग्यता और विद्वत्तासे अनेक युक्तियों और प्रमाणों द्वारा मूर्तिपूजन  
 सिद्ध किया ॥

कुंवर साहबका व्याख्यान हो ही रहा था कि सिकन्दराबाद गुरुकुल के  
 अध्यक्षपद पचिह्नित यशदत्त जी शास्त्री आर्यसमाजियों की बड़ी भीड़ सहित  
 सभामें पधारे और आपने आते ही निम्न पत्र सभापतिजीको दिया ॥

ओ३म्

श्रीमन्मो नमो नमोभावाः ॥

समुचित शिष्टाचारानन्तरम्—

वयं संप्रति श्रीमत्तः परिषदि शास्त्रार्थं चिकीर्षया समुत्सुकी भूत्वा सभा-  
 याताः । तदायां कुर्वाणा वयं कथयामः श्रीमद्भिः शास्त्रार्थः कर्तव्यः । देवभा-  
 वायां शास्त्रार्थः सदादयमा भाषयामिति इच्छामुसारेण आज्ञापयिष्यन्तीति—  
 आशां कुर्मः । स्वरया श्रीमानुत्तरप्रभु—इति आर्यवार्त्तिक ।

निवेदको—यशदत्त शर्मा शास्त्री आर्यवर्तनसेवकः

ता० ६—७—१२

शास्त्रीजीका पत्र प्राप्त होते ही सभापतिजी ने इनको उसी समय शास्त्रार्थ करने की आज्ञा प्रदान की और कुंवर साहब ने अपना उपारूपान संकोच लिया ॥

आचार्य पण्डित माधवचन्द्र जी द्वारा श्री जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा और आर्यसभाजी शास्त्री पण्डित यशदत्तजीसे जो शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्व के विषयमें मौखिक रीति पर हुआ वह इस रिपोर्टके अन्तमें प्रिन्सिपल नम्बर ( ख ) में प्रकाशित किया जाता है ॥

रात्रि अधिक व्यतीत हो जाने के कारण सर्व उपस्थित सज्जन सभ्य न-होद्यों की आज्ञानुसार शास्त्रार्थ बन्द किया गया और जय जयकार ध्वनि से सभा समाप्त हुई ।

आज रात्रिकी निम्न विज्ञापन आर्यसभाजी ओरसे प्रकाशित हुआ ।

ओरेम्

### शास्त्रार्थ का सर्वदा तय्यार ।

यह कितनी हंसीकी बात है कि इस रीशनीके जनानेमें भी हमारे कुछ सरावगी भाई यह समझ बैठे हैं कि हम सर्वसाधारणकी आंखोंमें जिस प्रकार चाहेंगे धूल डाल देंगे, पर यह खयाल उनका सरासर असत्य है । निश्चय खोलना व लिखना ऐसी खोटी आदत है कि वह मनुष्य को अज्ञान प्रीतिर नहीं सोचने देती और एक झूठके सिद्ध करनेके लिये हजार झूठ बुलवाती है, इसी लिये महाकवि श्री स्वामी तुलसीदास जीने लिखा है कि:—

जाको प्रभु दास्य दुख देहीं, बाकी मति पहिले हरलेहीं ।

कपे हुए विज्ञापनकी मीजूगीमें यह लिखना कि आर्यसभा शास्त्रार्थ से टालमटोल करता है, कितना सत्य है । सब लोग भले प्रकार जान गये हैं कि शास्त्रार्थसे मुँह सरावगी लोग छिपा रहे हैं, जो बार २ कहने व लिखने पर भी राखी नहीं हुए या आर्यलोग को बिना नियम तक किये हुए ही घनसे शास्त्रार्थके लिये जाकूदे । अब हजार आह्वान रखो कि सभाके पञ्चात् स्वामी जीने शास्त्रार्थके लिये नहीं कहा और फिर चटक चले गये, परन्तु जो लोग वहाँ मौजूद थे वे भले प्रकार जानते हैं कि स्वामीजी और बा० निम्बलाल जी बकीलने एक बार नहीं कई बार शास्त्रार्थ जारी रखनेके लिये कहा और स्वामीजी बहसि एकदम नहीं आये किन्तु कई निमट तक जब

तक सारी भीड़ न हट गई, बैठे भी रहे परन्तु जैनसभ प्रकाशित सभा के सम्प शास्त्रार्थके लिये रागी नहीं हुए-पर नहीं हुए, बल्कि उनको मन्त्री वैद्य चन्द्रसेनजी ने तो अपनी सम्पत्तिका यहां तक परिचय दिया कि आगे होकर लोगोंसे तालियां पिटवाई और सभाके लिये नादान दोस्तका काम किया, क्योंकि इस कामसे सरावगियोंकी ही हिन्दा हुई ॥

गीदड़ बड़ है जो वार २ कहतेपर भी मुकाबलेके लिये तय्यार नहीं और दूर २ से भत्रकियें बताते रहें कि देखो मैं सिंद हूं । ता० ३ की रातको ११ बजे विज्ञापन बांटे जिसका समाजने ४ तारीखकी दिनके १० बजे पहिले ही उत्तर छपवा दिया और सिंदराजकी मन्दिरोंमें ढंडा, कन्दिरोंमें खोजा, छान की दुर्वीनसे मुक्ति शिखरकी शिला पर दृष्टि फेकाई, परन्तु सर्वत्र पोल ही पोल नजर आई ।

अब दो दिन बाद फिर कुछ हीश सम्भाल ६ तारीखके विज्ञापन पर ५ तारीख छपवा कर १२ घंटेकी मियाद दे शास्त्रार्थकी टाला है ( यह विज्ञापन ६ ता० की १ बजे १० मिनटपर मन्त्री जैनकुमारसभाको पत्र लिखने पर प्राप्त हुआ ) इसीलिये तो हमने लिखा था कि यह लोकोंका सा खेल कर रक्खा है किमी जिम्मेवर आदमीकी ओरसे नोटिस होना चाहिये, परन्तु यह आज तक नहीं किया और मन्त्रीजी अरना लोकता होना स्वीकार करते हैं ।

ठीक है महाशय ! आप अभी बालक हैं कुछ दिन संसारकी इताखाइयें यह अभिमान आपको गढ़े में गिरायेगा । "स्वामीजी क्यों चले गये ?" यही आपकी बड़ी भारी समस्या का नमूना है ।

हमके विषय में आप कुंवर दिग्विजयसिंहजीने पृष्ठलें कि क्या वे स्वामीजीसे बीसों मनुष्यों के सामने यह नहीं कह आये थे कि "महाराज अब शास्त्रार्थ नहीं हो सक्ता आप तो माधु हैं, महीने भर तक ठहर सकते हैं, परन्तु हमें जाना है, वार २ उत्तर मिलने परभी यह कहे जाना कि "ईश्वरके सृष्टि-कर्तृत्व विषय का कुछ उत्तर नहीं मिला, इसका क्या इलाज है ।

सरावगी लोगों की परिणाम और गुणमें भेद मालूम नहीं है, ईश्वरसत्ता को क्या समझ सकते हैं "फिर नोट करलें कि प्रलय ईश्वरक्रिया का ही फल है उसका विरोधी नहीं,, ।

ईश्वर स्रष्टा कर्ता स्वयं सिद्ध है क्योंकि जो चीज बनती हुई है वह बिना

कर्ताके हो नहीं सकती । यदि कोई नादान लड़का यह कहे कि मेरा तो कोई बाप नहीं तो क्या कोई बुद्धिमान इसको बिना बापके पैदा हुआ मान लेगा, ईश्वर ज्ञानका विषय है वितण्डाका नहीं, किसी कविने कहा है ।

हर जगह मौजूद है पर वह नजर आता नहीं ।

योगसाधनके बिना उसको कोई पाता नहीं ॥

ईश्वरका धन्यवाद है कि इन की कलम से ये तो निकला कि जैनतत्त्व-प्रकाशिनी सभा ने इसलिये इन्कार किया कि उनके पास अच्छे लेखक नहीं थे परन्तु यह केवल टालनेकी बात थी, क्योंकि जब लिखा हुआ पढ़कर सुना दिया जाता तो जो कुछ भूल होती उसी समय ठीक हो सकती थी ।

आर्यसमाजने तो इन की चालाकी की पोल खोलने के लिये ईश्वरसृष्टि कर्तृत्व विषयका नमूना बतलाया था, नहीं तो इस के लिये सब विषय एकसे हैं जिसमें जब चाही शास्त्रार्थ करलो ॥

पं० मिट्टनशालजी वकीलके विषयमें मनघड़न्त करने का सबक तो इन्होंने घूंटोसे ही सीखलिया है ॥

एक दो दूसरे प्रतिष्ठित लोगों के विषयमें भी मिथ्या खबरें उड़ादीं जिसका हाल जब उनको मालूम हुआ तो इनको बड़ा डाटा ॥

पं० दुर्गादत्तजीके विषय में वे हजार खैचातान करें, यह तो उम्भर की शूल उनके लिये होगई और शम्भुदत्तजी पूर्वसहायक सम्पादक जैनमित्र ज्ञान गोली चलाने वाले और खड़े हो गये । सहारनपुर से एक और तीरन्दाज की खबर आई है । अब आपके कृत्रिम सिंहके बच्चेको पिंजरे में रखिये, क्यों कि हाथियोंकी लड़ाईका समय नहीं है । न ज्ञान गोलेके सामने कृत्रिम सिंह ठहर सकता है न खपाली लोकशिखर व शिला ।

पहिले वाला शास्त्रार्थ ॥

वैद्य चन्द्रसेनजी मन्त्री जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाके हस्ताक्षरी पत्रकी जिम्मेवारी पर हुआ था, न कि कुमार सभाके भरोसे पर । अब जब कि लोग टहीकी आड़ में हो गये और खोकरों को आगे करदिया तो हमें सारी पोल खोलनी पड़ी ॥

इस फिर भी साफ २ शब्दों में लिखे देते हैं कि आर्यसमाज हर समय शास्त्रार्थ करनेको तैयार है परन्तु कोई अजमेर निवासी प्रतिष्ठित जिम्मेवार सामने आवे, क्योंकि बाहरके आदमियोंने पहिले ही स्वयं तालियां पिटवा कर अपनी असभ्यता का परिचय देदिया है ॥

यदि किसी ऐसे प्रतिष्ठित योग्य पुरुषकी जिम्मेवारीका प्रबन्ध आप नहीं कर सकते हैं तो आप स्वयं ही ( यद्यत् कि आप कानूनी तौर पर बालिग हों ) आकर कल २ बजे दिनके लेखपट्ट शास्त्रार्थ के लिखित नियम तय कर जायें ताकि व्यर्थ नोटिसबाजीमें समय नष्ट न हो। यदि कल २ बजे तक आप आर्यसमाजमें आकर शास्त्रार्थके नियम आदि न तय कर जायेंगे तो समझा जायगा कि आप लोग शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते केवल विज्ञापनबाजी करके पब्लिकको धोखा देना चाहते हैं ॥

लयदेव शर्मा मन्त्री—आर्यसमाज अजमेर

ता० ६—७—१२

इस कारण कि आर्यसमाज ने अपने उपर्युक्त विज्ञापन में लिखित शास्त्रार्थ करना स्वीकार करलिया था और उस के नियम तय करनेके अर्थ हम लोगोंकी कल ( दूसरे दिन ) आर्यसमाजभवनमें बुलाया था अतः उसके इस विज्ञापनका उत्तर विज्ञापन द्वारा प्रकाशित नहीं किया गया। परन्तु उसके इस विज्ञापनमें कई भ्रामक बातें हैं अतः सर्व साधारणके हितार्थ उनका उत्तर प्रकाशित किया जाता है। आर्यसमाजका हम लोगों पर मिथ्या बोलने और लिखनेका व्यर्थ ही गुस्तर दोष लगाकर प्रथम आरोप यह है कि हम लोग आर्यसमाजकी शास्त्रार्थसे टालमटोल करनेका व्यर्थ ही दोषारोपण करते हैं वह तो शास्त्रार्थकी सर्वदा तैयार हैं। परन्तु विचारनेकी बात है कि कोई यह कहदे कि मैं इस कामकी तैयार हूं और निस्प्रयोजन उसमें अड़के लगावे तो क्या वह उसके अर्थ तैयार समझा जा सकता है। देखिये शास्त्रार्थसे टालमटोल करनेका दोष आर्यसमाज पर लगानेके यह निम्न सहेतु शब्द हैं और विचारिये कि वे कितने सत्य हैं। “अब जो आर्यसमाज किसी योग्य प्रतिष्ठित अजमेर निवासीकी ओरसे शास्त्रार्थकी जिम्मेवारीका विज्ञापन प्रकाशित होने पर शास्त्रार्थ करना चाहती है सो यह उसका डूबते हुए को तिनकेकी शरण लेनेके समान निरर्थक है और इससे उसकी असमर्थता ही प्रगट होती है क्योंकि जब कुमारों के प्रबन्ध द्वारा ही श्रीजैन कुमार सभा अजमेर का प्रथम वार्षिकोत्सव, आर्यसमाजका श्रीजैनतत्वप्रकाशिनी सभासे तारीख ३० जून का भीखित शास्त्रार्थ निर्विघ्न और शान्ति पूर्वक समाप्त हो गया तो अब डरनेका कारण प्रगट करना सिर्फ टाल टूल ही है। ”



हम पर दूसरा दोष यह आरोपित किया गया है कि हम लोग बार बार कहने और लिखने पर भी शास्त्रार्थसे मुंह छिपा रहे हैं। पर यह तो विचारिये कि आर्यसमाजने कब हमको शास्त्रार्थ के अर्थ कहा या लिखा और हम लोग उससे मुंह छिपा गये। हम लोग किसीके ललकारने पर सदैव शास्त्रार्थ के अर्थ उद्यत रहे और हैं जैसा कि सबको हमारे कृत्यों और विज्ञापनोंसे स्वयं प्रगट है। यदि आर्यसमाजको हमारे कृत्य और पिछले विज्ञापनों की बात भूल गयी थी तो कमसे कम उसे हालके ही प्रकाशित "आर्यसमाजकी खुल गयी पील। शास्त्रार्थके टालमटोल" शीर्षक विज्ञापन की बात तो जरूर याद रहनी चाहिये थी। विचारिये कि उनमें प्रकाशित यह निम्न शब्द शास्त्रार्थ से हमारा मुंह छिपाना प्रगट करते हैं या उस के अर्थ पूर्ण सन्नदुता। "विश्वास रहे कि अबतक आर्यसमाज लिखित शास्त्रार्थ न काले या शास्त्रार्थ से इन्कार न करदे तबतक हम उसको उसके किसी भी बड़ाने या टालन टूल से छोड़ने वाले नहीं हैं। यदि आर्यसमाज को यह भय है कि श्रीजैनकुमार सभा शास्त्रार्थका यथोचित प्रबन्ध नहीं कर सकती तो हम अथकीवार आर्यसमाजके नियत किये हुये स्थान, समय, विषय और प्रबन्धमें शास्त्रार्थ करनेको उद्यत हैं। परन्तु हम अपना बहुमता समय इस शास्त्रार्थकी इन्तजारीमें नहीं नष्ट कर सकते अतः समाजको इस विज्ञापनके पाते ही हमको यह लिख देना चाहिये कि हमारी श्रीजैनत्वप्रकाशिनी सभा कल के अजे उसके समाजप्रबन्धमें लिखित शास्त्रार्थको आवे।"

स्वामी जी और बाबू गिट्टनलालजीका सभा में कईवार शास्त्रार्थ जारी रखने के लिये कहना लिखकर सरानर लोगोंको धोखा देना है।

तीसरा मन्त्री चन्द्रसेनजी तीन बैठक आगे होकर तालियां पीटवानेका दोष सर्वथा मिट्या है क्योंकि उन्होंने शास्त्रार्थ प्रारम्भ होनेसे पूर्व एकवार नहीं वरन कईवार तालियां पीटने और जनकार बोलने की मखल मनाही करदी थी। तालियां वहाँ पर उपस्थित कुछ मूर्ख लोगोंने पीटी थीं और उस के अर्थ वह खूब धिक्कुरे भी गये थे। मालूम नहीं कि कुछ आर्यसमाजियोंके तालियां पीटनेमें अग्रेसर होनेसे उत्तका क्या अभिप्राय था। उन्होंने अपने स्वामीजीकी जीम समझ कर तालियां पीटी थीं या हार समझ कर।

चौथा दोष यदिनजदीसरीजी को बार बार कहने पर भी मुकाबिले के लिये तैयार न होने और दूरसे भभकियें बतकर सिद्ध बननेका है। मालूम

नहीं कि वह कब समाजका मुकाबिला करनेसे इट गये जिस से कि उस को ऐसा भ्रम हुआ । तारीख ४ को सिंदराजजी सभाके दीरे पर होनेसे नसीरा-वाद्में गर्ज रहे थे । नहीं जानते कि समाजको उन्हें उस दिन मन्दिरों कन्दिरों और मुक्ति शिषर पर खोजनेकी ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ीथी जिससे कि उसने ऐसा कष्ट किया । महात्मन् ! उसको जो मन्दिरों, कन्दिरों और मुक्ति शिषर पर सिवाय पोल ही पोलके और कुछ नजर नहीं आता उनका कारण उनके दुर्बलता भट्ठापन है । यदि यथार्थमें उसको वस्तुका स्वरूप देखना और जानना है तो उसे अपनी पहिलेकी रद्दी दुर्बलताको फेंककर सबसे अच्छी दुर्बलताकी परीक्षा कर खरीदना चाहिये तब उसको सब यथार्थ स्वरूप ज्ञात होने लगेगा और हो जायगा ॥

पाँचवां दोष ६ तारीखके विज्ञापनपर ५ तारीख छापनेका है । महाशय घर ! निस्सन्देह ५ तारीखको प्रेसोंमें छुट्टी होनेके कारण विज्ञापन रातोंरात ५ तारीख को छपा जाकर ६ तारीखके प्रातःकाल चार बजे प्रकाशित हुआ । ऐसी दशमें क्या समाज चाहती थी कि हम उस ५ तारीखके लिखे और छापे जाने वाले विज्ञापन पर झूठमूठ ६ तारीख छपा मारते । विज्ञापन तो उनके पास ६ तारीखको प्रातःकाल पाँच बजे ही पहुँच गया था, पर हमने उसकी उपसे रसीद न लिखायी इससे वह चाहे जेवजे अब उनका पहुँचना प्रकाशित करे ।

छठवां दोष श्रीजैनकुमार सभा के मन्त्री बाबू घीसूनाल जी अजमेरा के नाबालिगपनेका है । मित्रवर ! बाबू साहब नाबालिग नहीं वरन कानूनन भी बालिग हैं । अजमेरा जी गवर्नमेंट कालेज अजमेरमें शिक्षा पा रहे हैं और शिक्षा प्राप्त करनेकी कुमार ही अवस्था समझी जाती है अतः वह अपने ही समान अन्य शिक्षा प्राप्त करने वाले आदि जैन कुमारोंकी सभाके मन्त्री हैं । समाज इस अवस्थामें उनको छोकरा नहीं समझ सकती । फिर भी पूर्व प्रकाशितानुसार ही "आर्यसमाज को विश्वास रखना चाहिये कि लौंडापन या लड़कपन उसके ताल्लुक नहीं हुआ करता वरन अक्लके ताल्लुक हुआ करता है । इसका लौंडापन है यह कृत्योंसे पबलिकको स्वयं ही प्रगट है ॥ "

सातवां दोष घीसूनाल जी के अभिसानपनका है सो सालूम नहीं कि उन्होंने कौनसी अभिसान की बात लिखी या कही । यह तो बराबर संसार में उच्छ शिक्षा प्राप्तकर अनुभव और सभ्यता सीख रहे हैं ।

आठवां दोष हम लोगों के परिणाम और गुण में भेद न समझने का है। परन्तु विश्वास रहे कि हम लोग भली भाँति जानते हैं कि गुण के अवस्था से अवस्थान्तर होने को ही परिणामन ( परिणाम होना ) कहते हैं। परिणामन दो प्रकार का होता है एक स्वभाव रूप और दूसरा विभाव रूप। शुद्ध द्रव्यका परिणामन उभी रूपमें एकसा हुआ करता है और अशुद्ध द्रव्यका निमित्तानुसार। आर्य्य समाज का ईश्वर शुद्ध द्रव्य है अतः उसकी स्वाभाविक क्रिया में सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्व रूप विरोधी परिणामन कदापि नहीं हो सकता। यदि यह कहो कि जिस प्रकार एक मिल में छीम की शक्ति भिन्न भिन्न कार्य करती है उसी प्रकार ईश्वर रूपी छीम संसार रूप मिल में प्रकृति की भौतिक मशीनों से अनेक प्रकार के कार्य करती है। सो यह दृष्टान्त सर्वथा विषम है क्योंकि जिस प्रकार एक लोहे को सब ओरों से समान शक्ति रखने वाले चुम्बक पत्थर खींचे तो वह लोहा उससे मस नहीं हो सकता। उसी प्रकार जब आर्य्य समाज का शुद्ध अखण्ड, एक रस, सर्व व्यापी और स्वाभाविक क्रिया गुणवाला परमात्मा अपने प्रत्येक प्रदेशसे एकसी हारकत देता ( क्रिया उत्पन्न करता ) है तो कोई भी परमाणु उस से मस नहीं हो सकता और इस प्रकार सब गुण गोबर हो जाने से संयोग और वियोग परमाणुओं में न हो सकने से न तो कोई चीज़ बन ही सकती है और न बिगड़ ही। यदि दुर्जन तोष न्याय से थोड़ी देरके अर्थ परमात्मा की क्रिया से ही परमाणुओं में संयोग वियोग होना मानकर पदार्थों का बनना बिगड़ना माना जाय तो चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों के प्रलय काल में ( जो कि सृष्टिकाल के समान ही संख्या में है ) प्रकृति के परमाणु कैसे सूक्ष्म ( कारण ) अवस्थामें वेकार पड़े रहें। इत्यादि। अनेक दूषणों के आने से शुद्ध ब्रह्मकी स्वाभाविक क्रियामें दो विरोधी परिणामन ( गुणकी पर्याय ) कैसे रह सकती है।

इस संसारको ईश्वर कृत सिद्ध करने के अर्थ किसी समय में इसका अभाव ( कारण रूपमें होना ) सिद्ध करना होगा क्योंकि जब तक संसार का कार्य सिद्ध न हो जाय तब तक इसका कर्ता कोई ईश्वर कदापि माना नहीं जा सकता और कार्य का लक्षण "अभूत भावित्वं कार्यत्वम्, है।

नवां दोष हम लोगों के पास अच्छे लेखक न होनेके कारण लिखित शास्त्रार्थ से इन्कार करने का अपराध स्वयं स्वीकार करने का है पर मालूम नहीं

कि इस विषय में प्रकाशित यह निम्न शब्दों में से किन शब्दों से ऐसा अभि-  
प्राय निकाला गया । “श्री जैन तत्त्वप्रकाशिनी सभाने दोनों पक्षों की ओरसे  
कहे हुए मौखिक शब्दों की रिपोर्ट पर जोकि दोनों ओरके रिपोर्टरोंने लि-  
खी थी हस्ताक्षर करने से इन लिये इन्कार कर दिया था कि वहां के रि-  
पोर्टर लोग ऐसे संक्षिप्त लिपि प्रणाली में चतुर नहीं थे जोकि कहे हुए शब्दों  
को अक्षर प्रत्यक्ष लिख सकें और एक भी अक्षर या शब्द चूक जाने से भाष  
अन्यथा हो जाता है । यदि समाज के प्रस्तावानुसार ही दोनों ओर के तीन  
तीन रिपोर्टरों में से प्रत्येक के लेख जांच करके हस्ताक्षर किये जाते तो शा-  
स्त्रार्थका सारा समय इसी में नष्ट हो जाता” ।

दशवां दोष हम लोगों के रटे हुये “ईश्वर इस सृष्टिका कर्ता नहीं है, वि-  
षय में चालाकी करने का है । मालूम नहीं कि इस विषयमें हमने कौन सी  
चालाकी की और आर्यसमाज यों टालम टूट करता हुआ कैसे सब विषयों  
में हम से शास्त्रार्थ करने को उद्यत है ।

ग्यारहवां दोष हम लोगों का बाबू मिट्टनलाल जी बकील और एक दो  
दूबरे प्रतिष्ठित लोगों के विषयमें मगधहन्त आर्त लिखने और मिथ्या खबरें उठाने  
का है क्या समाज इन बातों से इन्कार कर सकता है कि मौखिक शास्त्रार्थके सम-  
य स्वामी जी से बाबू मिट्टनलाल जी ने यह नहीं कहा था कि “महाराज पं-  
डित जी के प्रश्न का उत्तर दीजिये,, और उन्होंने वादगजकेसरी जी के हि-  
स्से के पांच मिनिट धन्यवाद आदि देने के अर्थ मांग लिये थे ? नहीं जा-  
नते कि हम लोगों ने किन प्रतिष्ठित पुरुषों के विषयमें मिथ्या खबरें उठायी  
जिसपर उन्होंने हम लोगों को डाटा ।

मालूम नहीं कि हम लोग पण्डित दुर्गादत्त जी के विषयमें क्या खेंचतान  
कर रहे हैं । क्या यह उनके विषयमें पूर्व ही प्रकाशित निम्न बात मिथ्या  
है “पं० दुर्गादत्त जी को पूर्व जैन उपदेशक बनाना सारासर लोगों की आंखों  
में धूल फेंकना है क्योंकि वह पहले आर्यसमाजी थे और उन्होंने समाजमें ३  
वर्ष तक उपदेशकीका काम किया था । जब उनको समाज में शान्ति प्रा-  
प्त न हुई तब उन्होंने सिर्फ ३ महीने से जैन धर्म की शरण ग्रहण की थी जैसा  
कि जैननिम्नके ३ अप्रैल सन् १९१२ ई० के अंक १२ वें में पृष्ठ १२ पर प्रकाशि-  
त “मैंने जैनधर्म की शरण क्यों ली,, शीर्षक उनके लेख से प्रगट है । वह जैन  
धर्म के सिद्धान्तोंको अच्छी तरह नहीं जानते थे पर उनका विचार जैन वि-

द्वानोंसे जैन सिद्धान्तोंके अध्ययन करने का था कि इतने में ही ता० ३० जून के शास्त्रार्थमें भारी पछाड़ खानेसे अपने टूटे हुए मानकी सम्मत करने के अर्थ समाजने उनकी जिम तिस प्रकार पुनः आर्य समाजी बनाने का प्रयास किया है ।, शम्भुदत्तजी के पूर्व ही जैनमित्रके सहायक सम्पादक होने का समाज को स्वप्न हुआ होगा और उनकी छान गोली न मालूम किसपर चर रही है । नहीं जानते कि सद्धारनपुर के कौन से तीरन्दाज हैं और उनकी तीरन्दाजी किसपर हो रही है । यदि समाज में इस सिंघ के बछेकी वन्द करने की शक्ति है तो सामने मैदानमें आवे और वन्द करे । हम तो यही कहेंगे कि:—

रे गयन्द मद अन्ध ! छिनहुं समुचित तोहि नाहीं ।

वसिवो अव या विपिन घोर दुर्गम भुहिं माहीं ॥

गुरुशिळानि गज जानि नखनसों विद्रावित करि ।

गिरि कन्दर महं लखौ गर्जता रोपित केहरि ॥

समाजके कागजी अज्ञान गोलोंसे असली सिंघ व लोक शिखर और शिला उड़ा देनेका व्यर्थ प्रयत्न फूँकोंसे पहाड़ उड़ा देनेके समान अत्यन्त हास्यास्पद है।

बारहवां दोष इस लोगोंके टट्टीके आड़में हो जाने और शास्त्रार्थके अर्थ छोकरोंको आगे कर देनेका है । परन्तु यह कहिये कि श्री जैन कुमार सभा ने कब यह कहा और लिखा कि शास्त्रार्थ हम करेंगे । उसके मख विज्ञापनों से शास्त्रार्थ करने वालेका नाम श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा ही प्रगट होता है फिर नहीं जानते कि आर्यसमाज क्यों इस लोगोंके टट्टीके आड़में हो जाने और छोकरोंको शास्त्रार्थके अर्थ आगे कर देनेका दोषारोपण करता है । यदि यह कहो कि इस विषयके विज्ञापन श्री जैनकुमार सभाके नामसे प्रकाशित होते थे इनसे ऐसा अनुमान बांधा गया तो क्या किसी पुरुषके ऐसा कहनेसे कि अमुक पुरुष आपसे शास्त्रार्थ करनेको उद्यत हैं आर्यसमाज यह समझेगा कि कहने वाला पुरुष ही शास्त्रार्थको उद्यत है यदि ऐसी ही समझ है तब तो हो चुका ।

सज्जनो ! आपने देखा कि किस प्रकार आर्यसमाजने मिथ्या बातें प्रकाशित कर सर्व साधारण को धोखेमें डालना चाहा है पर इसमें आश्चर्य आप बिल्कुल न मानें क्योंकि जब आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्दजी

सरस्वतीका यह सन्तव्य है कि दूसरेका खण्डन करनेके अर्थ भिष्या बोलना उचित है तब उनके अनुपायी हमारे समाजी भाइयों ने वैसा किया तो इसमें अनोखापन ही क्या है !

## रविवार ७ जुलाई १९१२ ईस्वी ।

आर्यसमाजके “शास्त्रार्थों पर चर्चा तथा” विज्ञापनके अनुसार लिखित शास्त्रार्थके नियम तय करनेकी श्रीमान् स्वाध्यायवाग्विधि वादिवज्जकेमरी पंडित गोपालदास जी प्रेरणा कुंवर दिग्विजय सिंह जी, न्यायाचार्य पंडित साध्विकचन्द्रजी, बाबू घीमूलान जी अजमेरा मन्त्री श्री जैनकुमार सभा, पंडित फूलचन्द्र जी पांडुरा मन्त्री जैन सभा अजमेरा और चन्द्रमेनजी जैन वैद्य आदि सज्जन आर्यसमाज भवनमें निश्चित समयसे आध घण्टे पूर्व ( छेड़ बजे दिन की ) पहुंच गये । अट्ठाई बजेके लग भग नियमादि तय करनेकी बात चीत प्रारम्भ हुई । आर्यसमाजकी ओरसे वैरिटर बाबू गौरीशङ्कर जी और वकील बाबू निट्टनमाल जी और जैन समाजकी ओरसे कुंवर दिग्विजय सिंह जी बोलनेकी प्रतिनिधि नियत हुई ।

शास्त्रार्थका प्रथम नियम यह हुआ कि “यह शास्त्रार्थ आर्यसमाज अजमेरा और श्री जैन तत्त्व प्रकाशित सभा इटावह के मध्यमें होगा” ।

दूसरा नियम स्थान और प्रबन्धके विषयमें था । इस कारण कि आर्य समाजने अपने पूर्व प्रकाशित विज्ञापनोंमें श्री जैन कुमार सभाके नियत स्थान और प्रबन्धसे अग्रदुा प्रगट की थी इस कारण हम लोगोंने अबकी बार शास्त्रार्थका स्थान और प्रबन्ध आर्यसमाजका रखना ही प्रकाशित कर दिया था । अतः हम लोगों की ओरसे यह प्रस्ताव हुआ कि शास्त्रार्थका स्थान आर्यसमाज भवन और प्रबन्ध आर्यसमाजका ही रहै । इसपर आर्य समाजकी ओरसे यह कहा गया कि आर्य भवन कांटा और उसमें स्कूल आदि होनेसे थोड़ी पब्लिक आमकेगी अतः कोई विस्तृत स्थान नियत हो और प्रबन्ध आधा आधा दोनों पक्षोंका रहै । जैन समाजकी ओरसे प्रथममें स्वीकृति और दूसरे विषयमें अस्वीकृति इस कारण प्रकाशित की गई कि प्रबन्ध दो विरोधी पक्षोंके बीच होनेसे यह बहुत सम्भव है कि कोई पक्ष दूसरेकी दूषित करने या शास्त्रार्थको टालनेके अर्थ उल्टा प्रबन्ध करके गड़बड़ी डालै अतः प्रबन्ध-अकेले आर्यसमाजके ही जिम्मे रहै क्योंकि उसकी

जेनियोंके प्रबन्धसे सन्तोष नहीं। कुछ वाद विवाद होनेके पश्चात् दूसरा नियम इस प्रकार निश्चित हुआ कि "शास्त्रार्थ पठितक तौर पर मनीषियोंके भी-हरेमें होगा और उसका यथोचित प्रबन्ध आर्यसमाज करेगा" ॥ इस नियम के तय हो जानेपर वैरिष्टर साहबने यह कहा कि जब प्रबन्ध हम लोगोंके हाथ है तब हम लोग टिकट निकालेंगे और जिसको चाहेंगे उसको वह दे-कर भीतर आने देंगे। इसपर जैन समाजकी ओरसे विरोध किया गया और कहा गया कि जब शास्त्रार्थ पठितक होना निश्चित हो चुका है तब ऐसा नहीं हो सकता कि आप उसमें किसीको आनेसे रोकें और अपने मर्जी के आदमी बुलावें यदि ऐसा ही करना है तो यह शास्त्रार्थ प्राइवेट होगा न कि पब्लिक। वैरिष्टर साहबने कहा कि यदि हम ऐसा न करेंगे तो एक-ट्टी हुई पब्लिकके उपद्रवका जिम्मेवार कौन होगा। कुंवर साहबने कहा कि जब जैन कुमार सभाके लौड़ोंने इससे पूर्वके दो शास्त्रार्थोंमें पठितकका प्रब-न्ध बड़ी उत्तमता और शान्तिसे कर लिया तब आपसे योग्य वकील वैरिष्टर और सज्जन आर्य पुरुष वैसा क्यों न कर सकेंगे। वैरिष्टर साहबने कहा कि लौड़ोंने जो इन्तिजाम किया उसे हम तपलीम करते हैं और हम लौड़ोंसे भी गये बीते हैं लौड़ोंके बराबर हमसे इन्तिजाम नहीं हो सकता जिनको मुनासिब समझेंगे उनको ही बुलावेंगे सबकी जिम्मेवारी नहीं ले सकते। रहा पुलिसका इन्तिजाम सो हमको पसन्द नहीं हम लोगोंको खुद अपने पैरों खड़े होकर अपना इन्तिजाम करना सीखना चाहिये। इसपर बहुत वाद विवाद होकर टिकट द्वारा लोगों को भीतर घुसने देने का प्रस्ताव रद्द किया गया ॥

तीसरा नियम शास्त्रार्थ के विषय का था। आर्यसमाज ने "ईश्वर का सृष्टिकर्तृत्व" और "मोक्ष" यह दो विषय उपस्थित किये। कुंवर साहब ने कहा कि एक विषय के निर्णय हो जाने पर दूसरा लेना चाहिये नहीं तो ब-सहज होजाने से एक भी तय न हो सकेगा। कुछ देर तक विवाद होने के पश्चात् यह नियम इस प्रकार निश्चित हुआ कि "शास्त्रार्थ का विषय यह है कि ईश्वर सृष्टि का कर्ता है या नहीं जिनमें कि आर्यसमाज का पक्ष यह है कि इस सृष्टि का कर्ता ईश्वर है और जेनियों का पक्ष यह है कि ईश्वर सृष्टि का कर्ता नहीं है ॥

चौथा नियम शास्त्रार्थ के समय का था। आर्य समाज का कहना यह

था कि शास्त्रार्थ परसों से हो और जैन समाज का कहना यह था कि जब आर्यसमाज शास्त्रार्थ को सर्वदा तय्यार है तो एक दिन क्यों नष्ट किया जावे वैरिष्ठरसाहब ने कहा कि हमलोग इतना शीघ्र प्रबन्ध नहीं कर सकते क्यों-कि हमको पानी फर्श रोशनी आदि का प्रबन्ध करना होगा। इस पर कहा गया कि यह प्रबन्ध ऐसा प्रबन्ध नहीं जिसमें कि एक दिन व्यर्थ नष्ट किया जावे। वैरिष्ठरसाहब ने कहा कि एक दिन में यह प्रबन्ध नहीं हो सकता इसपर बाबू प्यारेलाल जी आदि प्रतिष्ठित जैनों ने पानी फर्श रोशनी आदि का प्रबन्ध अपने जिम्मे लेने कहा पर आर्यसमाज अपनी ही जिद्द पर कायम रहा और एक भी बात न सुनी। हम लोगों ने जिस प्रकार आर्य समाज की और सब बातें मान लीं और मानते जाते थे उसी प्रकार समय के विषय में उसकी परसों की बात मान लेने पर हमलोगों की विवशनीय रीति से इस बात का पता लग गया था कि आर्य समाज एक दिन की बीच में मो-हलत चाहकर मैजिस्ट्रेट को फिसाद होने से शान्ति भंग का अन्देशा दिखा उसके हुक्म से शास्त्रार्थ बन्द कराना चाहता है। पर हमलोगों को यह बात कदापि इष्ट न थी—हम लोग चाहते थे कि शास्त्रार्थ हो ही जाय इस कारण हम लोग 'शास्त्रार्थ कल से ही प्रारम्भ हो इस बात पर डटे रहे और आर्यसमाज की हर एक बात को जो कि उसका मेम्बर या पैरोकार शास्त्रार्थ परसों से प्रारम्भ होने के विषय में कहता था युक्ति और प्रमाणों से खण्डन करते रहे।

इस बाद विवाद के समय में अजमेर के आर्यसमाजियों ने अपनी अस-म्यता की पराकाष्ठा दिखला डाली। वह लोग चाहते थे कि हमलोग उनके संग होकर किसी प्रकार आर्यसमाज भवन से उठकर चले जायें जिससे कि उनको हमारे शास्त्रार्थ से हट जाने की बात प्रकाशित करने का मौका मिले। उन्होंने इसके अर्थ ऊपरके कुर्जोंसे निट्टी सिर पर डालना, फर्श ठठाना लोगोंसे बिड़ना और अपने प्रधान वैरिष्ठरसाहबके रोकने पर भी धोलते जाना आदि कार्य किये पर शीघ्र कि हम लोगोंके शान्तिता पूर्वक उनके सह लेनेसे वे सब व्यर्थ गये। वैरिष्ठरसाहबका व्यवहार भी अन्तमें आज्ञेप-क्षीय रहा और उन्होंने कई ऐसी बातें कहीं जो कि किसी सभ्य पुरुषको अपने घरपर बुलानेसे आये हुये सज्जनोंसे कदापि न कहना चाहिये थीं। जब इन उपायोंसे काम न चला तब यह कहा गया कि चलो अभी शास्त्रार्थ कर-



लोग इसपर हमारी ओरसे यह उत्तर मिला कि नियम तय कर लीजिये हम अभी शास्त्रार्थ करनेकी प्रवृत्ति हैं पर विश्वास रहे कि हम लोग नियम विरुद्ध कोई कार्य कदापि नहीं कर सकते । पूर्व निश्चितानुसार बाहर स्वामी दर्शनानन्द जीका व्याख्यान प्रारम्भ हुआ और हम लोगोंको बाहर चलकर व्याख्यान सुननेको कहा गया पर हम लोगोंने माफ कह दिया कि हम लोग नियम तय करने आये हैं न कि व्याख्यान सुनने । हम लोगोंको डरानेके लिये पुलिस बुलाई गयी और उसने आते ही हम लोगोंसे पूछा कि आप लोग कब तक यहाँ ठहरेंगे । जवाब दिया गया कि जब तक शास्त्रार्थके नियम न तय हो जाय या आर्यसमाज हम लोगोंको चले जानेकी आज्ञा न दे । जब इन किन्हीं उपायोंसे हम लोग हटते न दिखाई दिये तो बेरिष्टर साहबने अन्तमें आज्ञा दी कि "सभा वर्तमान की जाती है अब आप लोग निकल जाइये" । निदाम प्रधानकी आज्ञा शिरोधार्यकर हम लोग समाज मन्दिरसे अपने आर्यसमाजी भाइयोंसे प्रेम पूर्वक "जय जिनैन्द्र" "जय जिनैन्द्र" कहते हुये उठ आये और जयजयकार ध्वनिके मध्य अपने स्थानपर आ पहुँचे ॥

## चन्द्रवार ८ जुलाई १९१२ ईस्वी ।

आज आर्यसमाजकी ओरके निम्न दो ( उसकी कमजोरी और दोष छिपाने वाले ) विज्ञापन प्राप्त हुये ।

ओ३म् ।

### शास्त्रार्थसे कौन भगा ।

जैसा कि हमारा अनुमान या आखिर हमारे सगवर्गी भाइयोंने गुनगपाड़े और वृथा दठसे शास्त्रार्थको टाल ही दिया और इन ४ बातोंमें से एक भी बात सञ्जूर नहीं की ।

( १ ) यदि शास्त्रार्थके प्रबन्धका कायम रखने व हुल्लाह रोकनेके लिये टिकट द्वारा प्रबन्ध सञ्जूर हो तो समाज ता० ८ की ही शास्त्रार्थका प्रबन्ध करनेके लिये तय्यार है ॥

( २ ) यदि टिकट द्वारा नहीं चाहते और अंधाधुन्ध आदमियोंकी भीड़ करना सञ्जूर हो तो अपनी जिम्मेदारीपर प्रबन्ध करें आर्यसमाजके लोग जहाँ आप कहेंगे शास्त्रार्थका चले आवेंगे ॥

( ३ ) यदि समाजकी जिम्मेदारीपर ही ओर है जो ८ तारीखको सनहियोंके नोडरेमें आजूगी प्रबन्ध द्वारा समाज शास्त्रार्थ कर सकता है ॥

( ४ ) यदि "सर्वदा" शब्दपर ही आयह है तो समाज अभी करनेको तय्यार है, परन्तु हमारे सरावगी भाइयोंने एक न मानी और अब जिनेन्द्र यदि शब्दोंसे शीर गुल मचाते हुए समाज भवनसे चले गये ॥

इसका व्यौरेवार हाल कल आपकी सेवामें पहुंच जायगा, अफसोस है कि छः घण्टेकी मेहनत पर अपनी हठधर्मीसे इन्होंने पानी फेर दिया ।

जयदेव शर्मा, मंत्री आर्यसमाज, अजमेर ।

ता० ७-७-१९१२ समय १० बजे रात

—:०:—

ओ३म् ॥

**नकली सिंहका असली रूप प्रकट होगया ।**

सर्व साधारणको विदित ही है कि कई दिनोंसे सरावगी भाइयोंने "ईश्वर सृष्टि का बनाने वाला नहीं है" इसपर कोलाहल मचा रक्खा था कि जिसपर स्वामी दर्शनानन्दजी व पं० यज्ञदत्तजी शास्त्री दो बार उनकी ही सभामें जाकर उनके ही नियमोंकी पाबन्दी करते हुए उनकी सब दलीलों की काटकर पठिलकमें ईश्वरकी सृष्टिकर्ता सिद्ध कर आये, जिसके प्रभावसे दो जैनियोंने जैनधर्म त्याग दिया, इससे चिढ़कर हमारे सरावगी भाइयोंने कई कठोर विज्ञापन निकाले जिन सबका यथाचित उत्तर समय २ पर दिया गया और जब इन लोगोंने शास्त्रार्थसे इनकार कर दिया तो स्वामी दर्शनानन्दजी पंजाबकी चले गये इनके जाते ही मैदान खाली समझ इन्होंने शास्त्रार्थ का चैलेझु फिर दिया, जिसके उत्तरमें इनको नियमानुसार लिखित शास्त्रार्थ किमी मोअजिज ज़िम्मेवर अजमेर निवासी द्वारा कानेको लिखा गया और अन्तमें ७ तारीखकी दोपहरको आकर नियम तय कर लेनेको कहा गया, परन्तु इनको शास्त्रार्थ करना तो संजूर ही न था केवल बिलगडा और हुल्लड़ मचाना था इस लिये सैकड़ों दुकानदारोंकी साथ लेकर समाज भवनमें चले आये जैसे तैसे दो नियम तो थोड़ीनी हुज्जतके बाद तय होगये, परन्तु इतनेमें ही स्वामी दर्शनानन्दजी महाराज पञ्जाबसे आगये जब अब क्या था देखते ही हक्के बक्के रह गये और सोचने लगे कि अब शास्त्रार्थ बिना किये पीछा नहीं छूटेगा, अतएव प्रबन्धके नियमपर और सारा बोझ आर्यसमाज पर डालने लगे समाजने उसकी इस शर्तपर संजूर किया कि वह उचित प्रब-

न्य करके ९ तारीख को शास्त्रार्थ आरम्भ करदे, परन्तु इन्होंने शास्त्रार्थ टालनेके लिये यही जिद्द पकड़ली कि शास्त्रार्थ ८ तारीख को ही हो, ९ तारीख हम मंजूर नहीं करेंगे, समाजने साढ़े आठ बजे रात तक बैठे रहकर इनको बहुत कुछ समझाया कि यदि ८ ही तारीख को शास्त्रार्थ करना चाहते हो तो जो स्थान हमारे पास भीजू है उसमें हुल्लाह न होने देनेके कारण टिकट द्वारा प्रबन्ध हम कर सकते हैं, इन्होंने कहा कि इनको ऐसा प्रबन्ध कदापि मंजूर नहीं है जितने आदमी आयें आने दो, समाजने हममें लड़ाई दंगेका भय समझ कर उन्हींसे कहा कि यदि ऐसा मंजूर नहीं है और आपको जल्दी है तो आप प्रबन्ध कीजिये और हमें शास्त्रार्थके लिये जहां बुलाओगे वहां आ जावेंगे। परन्तु इसको भी उन्हींने मंजूर नहीं किया समाजने बीसों बार बड़ी नयतासे ९ तारीख को शास्त्रार्थ करनेके लिये कहा परन्तु उन्हींने एक भी नहीं मानी सो नहीं मानी और बहुत शोर गुल मचाते रहे जिससे सब लोगों को निश्चय होगया कि इनकी मनशा हुल्लाह मचा शास्त्रार्थको टालनेकी है ( जैसा कि उस समय उपस्थित भाइयोंने देखा भी होगा ) उनी समय "राय सेठ चादमनजी साहब जैनी आनरेरी मैजिस्ट्रेट" भी पधारे और उन्हींने बहुत गुन गपाड़ा देखकर यह सलाह दी कि शास्त्रार्थ "शहरसे दूर हो और और टिकट द्वारा ही, नहीं तो हल्ले गुल्लेमें शास्त्रार्थ कभी भी नहीं होसकेगा और आपसमें तनाजा होनेका अन्देश है, इसपर बाबू मिट्टनलालजी वकीलने खड़े होकर कहा कि हमें जो कुछ प्रबन्ध सेठ साहब करदें मंजूर है, परन्तु हमारे सरावगी भाई चिल्लाने लगे कि हम सेठ साहबको नहीं जानते जो कुछ हम कहते हैं वही होना चाहिये । इसपर सेठ साहब उठकर चले गये, फिर भी इसी बात ( नियमों ) पर वादानुवाद होता रहा और सरावगी भाई बहुत ही सभ्यताका परिचय देते रहे, जब शोर गुल बहुत ही बढ़गया और समाजके विज्ञापनमें लिखे "सर्वदा" शब्दपर बहुत जोर देने लगे तो समाजने बिछौने बगैरहका चौकमें प्रबन्ध कर उसी वक्त शास्त्रार्थ करनेको कहा, परन्तु इसपर भी राजी न हुए ( होते कहासे उन्हें तो सिर्फ हुल्लाह मचा कर अपना पिछा छुड़ाना था ) उनको बहुत समझाया गया परन्तु उन्हींने एक न मानी ।

जब चिल्लाने लगे कि जिसको सुनकर पुलिस आगई और पूछने लगी

कि यह जलसा कबतक रहेगा, हुल्लड़ मिटना चाहिये । तब प्रधान जी ने सरावगी भाइयों से फिर कहा कि अलग कमरे में चले चलिये या इन नीचे लिखी बातोंमेंसे एक बात संजूर करलीजिये ॥

( १ ) यदि शास्त्रार्थके प्रबन्ध को कायम रखने व हुल्लड़ रोकनेके लिये टिकट द्वारा प्रबन्ध संजूर हो तो समाज ता० ८ की ही शास्त्रार्थ का प्रबन्ध करनेके लिये तय्यार हैं ॥

( २ ) यदि टिकट द्वारा नहीं चाहते और अन्याधुन्य आदमियों की भीड़ करना संजूर हो तो अपनी जिम्मेवरीपर प्रबन्ध करें आर्य्यसमाजके लोग जहां आप कहेंगे शास्त्रार्थको चले आयेंगे ॥

( ३ ) यदि समाजकी जिम्मेवरीपर ही जोर है तो ९ तारीखको मसह-योंके मोहरेमें कानूनी प्रबन्ध द्वारा समाज शास्त्रार्थ कर सकता है ॥

( ४ ) यदि "सर्वदा" शब्दपर ही आग्रह है तो समाज अभी करनेको तय्यार है ।

परन्तु हमारे सरावगी भाइयोंने एक न मानी और जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र आदि शब्दोंसे शोर गुल मचाते हुए समाज भवनसे चले गये ।

अब सर्व साधारणको उपरोक्त बातोंसे भली प्रकार प्रकट होगया होगा कि हमारे सरावगी भाइयोंमें सभ्यता कहांतक है ॥

आर्य्यसमाजके सैकड़ों आदमी इनकी सभामें शास्त्रार्थमें शामिल होते रहे, परन्तु कभी ऐसा दुराग्रह नहीं किया, जो नियम उन्होंने रक्खा उसी में हां करदी । क्या हमारे सरावगी भाई इसमें अपने मतकी बड़ाई समझते हैं । सभ्यदारीके नज़दीक तो अपनी बड़ी हंसी कराई है । हम तो फिर भी कहते हैं कि सभ्यता पूर्वक जहां चाहो वहां शास्त्रार्थ करलो यों असभ्य समुदायको इकट्ठा कर हल्ला मचाना और अपनी झूठी शेखी बघारना दूसरी बात है ॥

जयदेव शर्मा मन्त्री आर्य्यसमाज, अजमेर

ता० ८-३-१२

—:०:—

सज्जनो ! आपने देखा कि आर्य्यसमाज ने किस प्रकार सर्वसाधारण को धोखेमें डालने के अर्थ उपर्युक्त विज्ञापनों में निरूपित बातें लिखी हैं ।

तारीख ३० जून और ६ जीलाई को जो दो मौलिक शास्त्रार्थ यथाक्रम स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती और पंडित यज्ञदत्त जी शास्त्री से श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाके साथ ईश्वर के सृष्टिकर्तृत्वके विषयमें बड़ी सफलता और जैनधर्म की प्रभावना से हुये थे कदाचित्त उसीसे सगाज ने यह पूर्व ही अनुमान बांध रक्खा होगा कि जैन लोग शास्त्रार्थ को टाल देंगे। श्रेय !

स्वामी दर्शनानन्द जी और पंडित यज्ञदत्त जी शास्त्री ने हम लोगोंकी सुझावोंका खगडन करते हुये ईश्वर को सृष्टिकर्ता कैना सिद्ध किया यह उस समय में उपस्थित मज्जन या उनके शास्त्रार्थ को पढ़ने और सुनने वाले सज्जनों को भनी भांति प्रकट है। यदि सिद्ध ही कर आते तो यों लिखित शास्त्रार्थ में सगाज की ओरसे अड़कूँ लगाये जाकर टालमटोल क्यों की जाती।

पंडित दुर्गादत्त जी ने “जैनधर्म परित्याग” विज्ञापन क्यों निकाला इसको समाज का दिल ही जानता है और स्वयं पंडित दुर्गादत्त जी के कहने से सर्व साधारण को भी अब अविदित नहीं है। विश्वास रहे कि सत्य बात अन्त में प्रकाशित हुये बिना नहीं रहती।

हम लोगों के विज्ञापनों का समाज ने कैना उत्तर दिया है वह दोनों ओरके विज्ञापनों की आसने आसने रखकर विचार पूर्वक पढ़ने वालोंसे छिपा हुआ नहीं है और न रहेगा।

जब समाज ने सर्व साधारणको यह बात प्रकाशित कर धोखा देना चाहा कि जैन लोग लिखित शास्त्रार्थ से इन्कार कर गये तब इनको सर्वसाधारण के हितार्थ पुनः चेनेझ देना पड़ा न कि इस कारण कि आपके स्वामी दर्शनानन्द जी अजमेर छाड़ गये थे। स्वामी जी की विद्या और बुद्धिका तो हम लोग गत कार्तिन शुक्रा द्वितीया संवत् १९६८ विक्रमी के दिवस से जब कि इटावाह आर्य्यसमाजके वार्षिकोत्सवपर शुक्रा मयाधान के दिवस सनका कुंवर दिग्विजयसिंहजीसे ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्वके विषयमें उत्तर प्रत्युत्तर हुआ था। मलीभांति जानते थे और गत ३० जूनको तो विलकुल ही जान गये थे और इसीसे तो स्वामीजीको अपनी प्रतिष्ठाका बड़ा खयाल था ॥

यदि हम लोगोंको शास्त्रार्थ करना संजूर न होता तो श्रीजैनकुमारसभा के वार्षिकोत्सवके पश्चात् इतने दिन खीकर समाजके पीछे यों उस की सभी बातें मानते हुए क्यों पड़े रहते ॥

आर्यसमाजके भवनमें हम लोग अपने साथ सर्व साधारण (जिनको आर्य समाज मान्यता दूजानदार समझता है) की भीड़ नहीं ले गये थे वरन् हम लोगोंके सीमावर्षे वह लोग हमारे बिना खुलाये स्वयं पहुंच गये थे। ज्ञान कि समाज इतने लोगोंके सामनेकी बातों को यों अन्यथा प्रकाशित करनेका साहस करता है तब न मानूं हम लोगों के ही अकेले होने पर वह क्या कर गुजरता। चाहा तो समाजने बहुत था कि हम लोग अकेलेमें ही नियम तय करें पर यह बहुत अच्छी बात हुई कि हम लोग उसकी येरिहरी चालोंमें नहीं आये ॥

ज्ञान कि समाजने हम लोगों के पहुंचने से बहुत पूर्व ही एक लम्बे चौड़े साइनबोर्डमें टंगता (लम्बा बांम) लगाकर मोटे मोटे हकूमोंमें यह लिख कर हम लोगोंके सामने रख छोड़ा था कि “आज सन्ध्याकी स्वामी दर्शनानन्द जीका व्याख्यान होगा” तो यह यह कैसे कह सकता है कि दो नियमों के तय हो जाने पर हम लोगोंका दर्शनानन्द स्वामीका पंजाबसे आना (उन के छतसे नीचे उतर कर दर्शन देनेसे) प्रगट हुआ जिससे कि हम लोग इक्के वक्के रहगये और शास्त्रार्थसे डरगये। यदि दुर्जनतोषन्यायसे समाजका कहना ही थोड़ी देरको मानलिया जाय तो क्या हम लोग समाजको पुनः चेलेंज देनेसे पूर्व यह नहीं जान सकते थे कि समाज अपने एकमात्र आधारभूत स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती महाराज की एकवार हम लोगों से पुनः शास्त्रार्थ करनेकी उपस्थित करेगा और स्वामीजीकी निज मान रत्नार्थ प्रत्यक्षमें “हम शास्त्रार्थ तो उद्यत हैं” ऐसा अगत्या दिखाना ही पड़ेगा ॥

शास्त्रार्थके प्रबन्धका सारा जोका अवकीवार आर्यसमाज पर ही रखने को हम पूर्व ही प्रकाशित कर चुके थे तब यह कैसे सम्भव है कि स्वामीजीकी देखकर आस्त्रार्थ टालनेके अर्थ हमने ऐसा किया। आर्यसमाजका लेख बदतो-व्याघात दोषसे दूषित है क्योंकि उसका लिखना है कि दो नियमोंके तय हो जाने पर स्वामीजी आये और उनकी देखकर हम लोग प्रबन्धका जोका आर्यसमाज के सिर पटकने लगे। परन्तु हमारे नियम के तय होने पर आर्यसमाज के जिम्मे प्रबन्धका जोका जा पड़ा था क्योंकि हमारा नियम यह था कि “आस्त्रार्थ पब्लिक तौर पर मसैपोंके नौदरे में होगा और उसका यथोचित प्रबन्ध आर्यसमाज करेगा” आर्यसमाजको कुछ तो पूर्वापर विचार कर लिखना चाहिये। क्या उसने यह समझ लिया है कि पब्लिक इतनी मूल है

कि जो कुछ हम लिखेंगे उस पर वह आंख मूंदे विश्वास करलेगी ॥

हम लोगों के तारीख ८ से ही शास्त्रार्थ प्रारम्भ करनेकी जिद करने का कारण यह था विश्वस्तनीय रीतिसे इस बात का पता हम लोगों को लग गया था कि आर्य्य समाज एक दिन की बीच में लो-हलत चाहकर मैजिस्ट्रेट को आपस में किंसाद हो जाने से शान्ति भङ्ग का अ-न्देश दिला उसके हुक्म से शास्त्रार्थ बन्द कराना चाहता है । पर हम लोगों को यह बात कदापि इष्ट न थी हम लोग चाहते थे कि शास्त्रार्थ हो ही जाय इस कारण आर्य्यसमाजी समस्त युक्तियों का जो कि उसने तारीख ९ से शा-स्त्रार्थ प्रारम्भ होने के विषय में दी थी खण्डन करते हुये हम लोग अपनी बात पर डटे रहे ।

आर्य्य समाजका टिकट द्वारा लोगों को भीतर आने देने का प्रवन्ध शा-स्त्रार्थ के पडित्त होने से अस्वीकार किया गया और यह बात आर्य्य समा-जकी भी वाद में स्वीकृत हुयी ।

अपने जिम्मे प्रवन्ध हम लोगों ने आर्य्य समाज के पूर्व ही अविश्वास और असन्तोष प्रगट करने से नहीं लिया ।

श्रीर गुल मचाने की बात बिल्कुल मिथ्या है । निस्सन्देह आर्य्य समा-जकी ओर से बात चीत करने को नियत प्रतिनिधि बैरिष्टर साहब के सि-वाय जब और कोई आर्य्य समाजी सभामें खड़े होकर स्पीच भाड़कर लोगों को धोखे में डालना चाहता था तब हमारी ओर से चन्द्रसेन जैन वैद्य और फूल चन्द्रजी पांडया सभामें खड़े होकर शान्ति से उन की मिथ्या बातों का प्रतिवाद कर देते थे । सर्व साधारण से यह छिपा नहीं कि अपने प्रेसीडेंटके बार बार रोकने पर भी हमारे समाजी भाई इस भड़भड़ मचाने के काम से बाज नहीं रहते थे ।

राय सेठ चान्दमल जी साहब जैनी रईस व आमेरी मैजिस्ट्रेट को आर्य्य समाजियों ने निज प्रयोजन मिटुचय Cat's Paw (बिल्लीका पन्जा ) बना-ना चाहा था पर जब सेठ जी साहब ने सब सामला समझ लिया तो अपने बार बार मिटुनलाल जी और बैरिष्टर साहब के दवाने से दिक्क होकर उठकर चले गये ।

चीक में बिछीना वगैरह स्वामी दर्शनानन्द जी के पूर्व निश्चित व्याख्या-

न होने के अर्थ समाजने बिखवाये थे न कि हम लोगों से शास्त्रार्थ करने को। निस्सन्देह आर्य्य समाज ने यह कहा था कि यदि आप अभी शास्त्रार्थ करना चाहते हैं तो बाहर चलिये पर हम लोगों ने यह कहा कि हम लोग अभी प्रस्तुत हैं पर पहिले नियम तय कर लीजिये क्योंकि हम अनियम काम नहीं कर सकते।

पुलिस अपने आप नहीं आयी वरन आर्य्यसमाज के बुलाने से आयी और उसने हम लोगों से पूछा कि आप लोग कब तक यहां ठहरेंगे। जवाब दिया गया कि जब तक शास्त्रार्थ के नियम न तय हो जाय या आर्य्य समाज हम लोगों को चले जानेकी आज्ञा न दे। हम लोग शान्त बैठे थे इसलिये पुलिस कुछ न कर सकी।

अलग कमरेमें अकेले नियम तय करनेके अर्थ चलनेकी कहना हम लोगों को अपने स्थानसे उठानेके अर्थ या जिसकी समझकर हम लोग वहीं डटे रहे।

आर्य्यसमाजकी कही हुई चारों बातें प्रथम टिकट द्वारा प्रबन्ध करना शास्त्रार्थके पठनक होने द्वितीय अपने जिम्मे प्रबन्ध लेना आर्य्यसमाजके पूर्व ही हम लोगोंके प्रबन्धसे अविश्वास और असन्तोष प्रगट करने तृतीय एक दिन व्यर्थ नष्ट होने और शास्त्रार्थ पुनः न हो सकनेके भय और चतुर्थ बिना नियम तय किये हुये अनियम कार्य करनेके कारण अनुचित होनेसे स्वीकृत न की गई। तीसरी बातमें आर्य्यसमाजने 'अपने प्रबन्ध द्वारा' के स्थानमें 'कानूनी प्रबन्ध द्वारा' ये शब्द लिख दिये हैं अर्थात् 'अपने' शब्द के स्थानमें कानूनी शब्द कर दिया है। हम लोगोंसे समाज मन्दिरमें कानूनी प्रबन्धका कोई जिकर नहीं हुआ और समझमें भी नहीं आता कि कानूनी प्रबन्धका क्या अर्थ समाज करता है। यदि इससे पुलिसका प्रबन्ध इष्ट है तब तो हमारा यह पहिले ही कहना था कि पुलिसका प्रबन्ध (जैसा कि हम लोगोंने किया था) रहै जिसपर आर्य्यसमाजको अपने घेरे रखे होने (अपना प्रबन्ध स्वयं करने) के कारण इन्कार थी। यदि इससे मैजिस्ट्रेटकी आज्ञा प्राप्त करना इष्ट है तो उसकी कोई आवश्यकता न थी क्योंकि प्रथम ही दो मौखिक शास्त्रार्थ (जिनमें कि लिखित शास्त्रार्थसे विशेष शान्ति भङ्गकी आशङ्का रहती है) बिना मैजिस्ट्रेटकी आज्ञा लिये ही चली सकलता और शान्तिसे हो चुके थे। यदि मैजिस्ट्रेटकी आज्ञा प्राप्त करनेकी आवश्यकता ही थी तो पहिले आर्य्यसमाजने क्यों न लिखा या कहा।



इस लोग समाज मन्दिरसे अपने आप उठकर नहीं चले आये वरन आर्यसमाजी प्रधान वैरिष्टर साहबके निकल जानेके जनरली हुक्मसे ।

पठित आर्यसमाजकी सभ्यता और उसकी शास्त्रार्थके अर्थ तैयारीकी इसी बातसे भली भाँति जानती है कि वह उनके समुदायको अभ्य और हट्टा गुल्ला मचाने वाला करार देकर उनकी तोहीन कर रहा है और किसी को शास्त्रार्थमें आने न देकर कुलिहयामें गुड़ फोड़ना चाहता है ।

जो हो । आज प्रातःकाल श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाके कार्यकर्तागण उनके उपर्युक्त दोनों विज्ञापनोंमें प्रकाशित तीसरे नियमपर किसी प्रकार शास्त्रार्थ बनानेकी सहमत होकर पुनः आर्यसमाज भवनमें शास्त्रार्थके शेष नियम तय करनेको गये जिसपर समाजके सन्धी जी ने सन्ध्याकी हाजिर होनेका हुक्म दिया पर सन्ध्याकी हम लोगोंके पहुँचनेपर इस विषयमें कुछ बात चीत करनेसे बड़ी रुखाई के साथ इन्कार कर दिया ।

आर्यसमाजके उपर्युक्त दोनों विज्ञापनोंके उत्तरमें सर्व साधारणके अम निश्चालार्थ निम्न विज्ञापन प्रकाशित हुआ ।

॥ वन्दे जितवरम् ॥

### आर्यसमाजकी झूठी सफाई ।

सर्व साधारण सज्जन महीदयोंकी सेवामें निवेदन है कि आर्यसमाजके ६ जुलाईके “शास्त्रार्थकी सर्वदा तय्यार” शीर्षक विज्ञापनके अनुसार हमारी श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा कल १॥ बजे दिनके आर्यसमाज भवनमें लिखित शास्त्रार्थके नियम तय करने के लिये गई थी और सर्व नियमोंका तय करना आर्यसमाजकी इच्छानुसार ही रखनेपर भी आध घंटेमें तय हो-जाने वाले सब नियम आर्यसमाजकी टालमटोलसे ६ घंटेमें भी तय न हुए । केवल तीन ही नियम तय हो पाये जो कि निम्न लिखित हैं:—

#### लिखित शास्त्रार्थके नियम ।

१-यह शास्त्रार्थ आर्यसमाज अजमेर और श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावाके मध्यमें होगा ।

२-शास्त्रार्थ पठितक तौरपर सभियोंके तौहरे में होगा और उसका यथोचित प्रबन्ध आर्यसमाज करेगा ॥

३-शास्त्रार्थका विषय यह है कि “ईश्वर सृष्टिका कर्ता है या नहीं”

जिनमें कि आर्यसमाजका पक्ष यह है कि "इस सृष्टिका कर्ता ईश्वर है" और जैनियोंका पक्ष यह है कि "ईश्वर सृष्टिका कर्ता नहीं है" ।

बीया नियम शास्त्रार्थके समयके विषयमें था जिनमें कि आर्यसमाजका कहना यह था कि शास्त्रार्थ परसोंसे शुरू हो और श्री जैन तत्त्वप्रकाशिनी सभाका कहना यह था कि शास्त्रार्थ कलसे ही शुरू हो । इस विषयपर कई घंटों तक बहस होती रही पर यह नियम तय न हुआ और प्रधान बाबू गौरीशङ्करजी वैरिस्टरके इस कथनानुसार कि "सभा बर्खास्त की जाती है आप लोग जाइये" इस लोग उठ कर चले आये परन्तु अब आर्यसमाजने "शास्त्रार्थसे कौन भगा" और "नकली सिंहाका असली रूप प्रकट होगया" शीर्षक विज्ञापनोंमें यह सिद्ध करनेकी चेष्टाकी है कि जैन लोग शास्त्रार्थसे पीछे हट गये ।

समाजका ऐसा लिखना सर्वथा गिष्टया और पडिलकको धोका देकर अपने ऊपर आये हुए शास्त्रार्थसे हटनेके दोषकी झूठी सफाई करना है ।

हमारी श्री जैन तत्त्वप्रकाशिनी सभा आर्यसमाजकी किसी भी टालम टोलपर ध्यान न देकर उसमें नियमानुसार लिखित शास्त्रार्थ करनेको सर्वथा और सर्वदा उद्यत है और जब कि आर्यसमाज भी अपनेको उसके लिये तय्यार प्रगट करता है तो हमारी श्री जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा उनके विज्ञापनोंमें प्रकाशित तीसरे नियमके अनुसार ही ९ जुलाईको पडिलक शास्त्रार्थ करनेकी तय्यार है ।

अतः समाजको उचित है कि वह शास्त्रार्थके शेष नियम आज ही तय करदे जिससे कि शास्त्रार्थ अति शीघ्र ही प्रारम्भ होजाय । ऐसा न होनेसे यह समझा जायगा कि आर्यसमाज शास्त्रार्थ करना नहीं चाहती ॥

घीसूलाल अजमेरा मन्त्री

श्री जैन कुमार सभा अजमेरा ता० ८ जुलाई सन् १९१२

—:०—

हमारे उपर्युक्त विज्ञापन का उत्तर आर्य समाज की ओर से आज रात को यह प्रकाशित हुआ ।

श्रीश्च ॥

अब पछताये होत का जब खुलगई सारी पोल

जिन लोगों ने कल समाज मंदिर में हमारे सरावगी भाइयों की कारतू-

तों को देखा या तथा हमारे और उनके विज्ञापनोंको भीरसे पढ़ा है उनको भली प्रकार प्रकट हो गया होगा कि सच्चा कौन और झूठा कौन। वः घंटेमें जो जो बहस हुई उस सबको हमारे सरावगी भाइयोंने अपने विज्ञापन में से उड़ा दी परन्तु फिर भी यह उन्हें स्वीकार ही करना पड़ा कि उन्होंने ९ तारीख के शास्त्रार्थ को मंजूर नहीं किया सचची बात वही है जो कि समाज के विज्ञापन में छाप दी गई है कि चारों बातों में से इन्होंने एक भी बात मंजूर नहीं की।

क्या खूब अब सरावगी भाइयोंने ८ तारीख की शामको ५ बजे यह प्रकाशित कर अपनी सफाई बतलाई है कि हम आर्य्य समाजियोंकी मर्जीके मु-आफिक ९ तारीखको ही शास्त्रार्थ करना मंजूर करते हैं। क्यों महाशय! क्या ९ तारीख को शास्त्रार्थ करने का आर्य्य समाजियोंका कोई मुहूर्त था? नहीं, ७ तारीखको ही यदि यह कह दिया जाता कि हम ९ तारीख ही मंजूर करते हैं तो क्या सरावगियों का कुछ खिगड़ जाता। असली बात यह है कि आर्य्य समाज १ दिन बीच में इसलिये लेता था कि मजिस्ट्रेटसे आज्ञा लेकर भीड़ भाड़ का ऊपम रोकने के लिये पुलिस का पूरा २ प्रबन्ध कर लेता, यह सरावगी भाई चाहते नहीं, वे तो यही चाहते हैं कि इन्तजाम के लिये समय न दिया जाय और शास्त्रार्थ के समय खूब भीड़ भाड़ कर ऊपम सचा कर शास्त्रार्थ से सहज ही में पीछा छुड़ावें।

अब जब के शास्त्रार्थ को टाल हुसुनह और असभ्योंकी नाई उदंगल करने से उनको सारा शहर धिक् धिक् कर रहा है तो शर्म उतारने के लिये अब फिर शास्त्रार्थ के लिये (उसी नाबालिग लड़के की आइ में) विज्ञापन देते हैं परन्तु सालूम रहे कि हमारे सरावगी भाइयोंकी करतूत इस हद तक बढ़ गई है कि कोई सभ्य समाज उनसे बिना मजिस्ट्रेट की आज्ञा और पुलिस के प्रबन्ध के अब बात भीत करना पसंद नहीं करेगा इसलिये यदि सरावगी भाइयों को अब भी शास्त्रार्थ करना मंजूर है तो अपने में से २ प्रतिष्ठित अजमेर निवासियों से बाबू मिट्टन लाल जी बकील तथा बा० गीरीशंकरजी बैरिस्टर के नाम (जिनको आर्य्यसमाज ने अपनी ओरसे इस कार्य के लिये नियत कर दिया है) पत्र भिजावें। यह चारों महाशय मिलकर मजिस्ट्रेट से आज्ञा लेकर सारा प्रबन्ध कर लें आर्य्यसमाज राजकीय निय-

मानुषार कार्य करेगा यदि ता० ९ को ही शास्त्रार्थ करना मंजूर होता तो कल क्या होगया था, यह सारी टालने की बात है ।

ता० ८—९—१९१२

जयदेव शर्मा मंत्री आर्य समाज अजमेर ।

—:०:—

## मङ्गलवार ८ जुलाई १९१२ ईस्वी ।

आर्यसमाजके कलके विज्ञापनानुसार हमारी ओरसे शास्त्रार्थके विषय में मैजिस्ट्रेटकी आज्ञा प्राप्त करनेके अर्थ श्रीयुन सेठ ताराचन्दजी, लाला प्यारेलालजी जोहरी, सेठ चौधमलजी वैद्य तथा पन्नालाल जी भैंसा रहमान अजमेर नियत हुये जिनमेंसे नीचेके दोनों सज्जन आज कचहरीमें दस्तख्त देनेके लिये दिनके तीन बजे पहुंच गयेथे परन्तु आर्यसमाजकी ओरसे नियुक्त प्रतिनिधि वाखू गौरीशङ्करजी वैरिष्ठरने उस समय इस विषयमें बातचीत करनेसे विलकुल इन्कार करदिया और वाखू मिट्ठनलाल जी वकील बहुत हूँदने पर भी कचहरीमें नहीं मिले । अतः हम लोग लौट आये और सर्व साधारणके ज्ञापनार्थ निम्न विज्ञापन प्रकाशित हुआ ॥

+ वन्दे जिनवरम् +

शास्त्रार्थसे ना हटै, करो न टालमटोल ।

छिपे रहोगे कै दिना, मढ़े कागजी खोल ॥

सर्व साधारण सज्जन महाशयोंकी सेवामें ( जो कि दोनों ओरकी कार्यवाहियों और विज्ञापनोंको ध्यानपूर्वक देख रहें हैं ) यह निवेदन करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि शास्त्रार्थको कौन तटपार है और कौन उसमें केवल कागजी घांड़े ही दौड़ाकर टालमटोल कर रहा है क्योंकि वे भलीभांति जानते हैं कि जब कि हम लोग आर्यसमाजकी सभी बातोंको मानते जाते हैं तब हम क्योंकर शास्त्रार्थसे हट रहे हैं ॥

कल हमारी अंजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाके कार्यकर्तागण पुनः प्रातःकाल और सायंकाल दोवार आर्यसमाज भवनमें शास्त्रार्थके शेष नियम तय करने के लिये गये पर शोक है कि आर्यसमाजके मन्त्रीजीने नियमादि तय करने या शास्त्रार्थके विषयमें किसी भी प्रकार की बात चीत करनेसे सर्वथा इन्कार करदिया ॥

अब जो आर्यसमाज अपने “ अब पकताये होत का जय खुसगई सारी पोल ” शीर्षक विज्ञापनमें जैनियोंपर असभ्यता और गुल गपाड़ा करनेका दोषारोपण कर पूर्व निश्चित नियमके विरुद्ध मजिस्ट्रेटकी आज्ञा प्राप्त करने का अड़ंगा लगाकर शास्त्रार्थों को टालना चाहता है सो ठीक नहीं। जैनियोंकी ओरसे अभीतक असभ्यताका कोई व्यवहार नहीं हुआ और इसकी सच्ची वे लोग भले प्रकारसे दे सकते हैं जो कि श्रीजैनकुमार मभाके प्रथम वार्षिकोत्सव पर स्वामी दर्शनानन्दजी और पं० यज्ञदत्तजी शास्त्रीके मौखिक शास्त्रार्थ के समय उपस्थित थे। परमों भी जैनलोग आर्यसमाजके अनेक असभ्य व्यवहारोंपर सर्वथा शान्त रहे और अन्तमें जयजिनेन्द्र जयजिनेन्द्र कहकर समाज भवनसे चलेआये। जयजिनेन्द्र जयजिनेन्द्र कहना असभ्यता नहीं वरन वह आर्यसमाजकी नमस्ते या सनातनधर्मियोंके जय रामजी और जय गोपालजी के समान परस्पर आदर सत्कारमें व्यवहार किया जाता है ॥

निरसन्देह असभ्यताका व्यवहार आर्यसमाजकी ओरसे ही हो रहा है जैसा कि सर्व साधारणको उनके अभ्य और अश्लील विज्ञापनोंसे भलीभांति प्रगट होगा। वे यह भी जानते होंगे कि आर्यसमाजियोंने हमारी ६ जुलाई की सभामें अपने नोटिस दांटे हुए कितनी गड़बड़ी डाली और परसों कभी फर्श उठाकर कभी मिट्टी डालकर और कभी किसीसे भिड़कर कैसा असभ्यता का व्यवहार किया और उसको हमारे जैन भाइयोंने कैसी शान्तितासे सहन किया ॥

हमारी श्रीजैनलक्ष्यप्रकाशिनी सभा शास्त्रार्थके लिये सर्वदा उद्यत रहती है जैसा कि उसके स्वामी श्रीदर्शनानन्दजी और पण्डित यज्ञदत्तजी शास्त्रीके मौखिक शास्त्रार्थके समय बिना किसी विशेष नियमके तय किये हुए उनसे शास्त्रार्थ करने और अपने लिखित शास्त्रार्थके सर्व नियम आर्यसमाजकीपर तय करनेके लिये छोड़ देनेसे स्वयं प्रगट है ॥

यद्यपि हम लोग पूर्व निश्चित नियमके विरुद्ध किसी दूनरे अड़ंगेकी मानने के लिये बाध्य न थे परन्तु इस भयसे कि कहीं ऐसा न हो कि आर्यसमाज इसी बहानेको लेकर शास्त्रार्थसे टल जाय हम लोगोंको आर्यसमाजके अस्तरानुसार ही मजिस्ट्रेट साइब महादुरकी आज्ञा लेकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार है ॥

हमारी सभाजने इस कार्यके लिये श्रीयुन सेठ ताराचन्दजी, लाला प्यारे-लालजी, जीहरी, सेठ चौधमलजी खैर तथा सेठ पन्नालालजी भैंसा रईसान अजमेरको नियत किया है जिनमेंसे नीचेके दोनों सज्जन महोदय आज क-अहरी में दरखवास्त देनेके लिये दिनके ३ बजे पहुंच गये थे परन्तु आर्य्य-सभाजकी ओरसे नियुक्त प्रतिनिधि श्रीयुन बाबू गौरीशङ्कर जी वैरिष्ठरने उस समय इस बिषयमें बात चीत करनेसे बिल्कुल इन्कार करदिया । अतः इस प्रगट करते हैं कि हमारे उपर्युक्त सज्जन यह कार्य करनेको उत्थन हैं । आर्य्य-सभाजकी ओरसे नियुक्त सज्जनोंको उचित है कि अब इस कामको शीघ्र ही तय करडालें क्योंकि अब टालमटोलसे काम नहीं चलेगा ।

विश्वास रहे कि जयन्तक शास्त्रार्थ न हो जाय या आर्य्यसभाज शास्त्रार्थसे इन्कार न करदे इस लोग उसको शास्त्रार्थसे छोड़ने वाले नहीं हैं ॥

घीमूलाल अजमेरा, मन्त्री श्री जैतकुमारसभा अजमेर,

तारीख ९ जुलाई सन् १९१२ ई० अजमेर,

आज आर्य्य सभाज के प्रतिनिधि बाबू गौरीशङ्करजी वैरिष्ठर और बाबू मिट्ठनलाल जी खकीलको शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में उचित कार्यवाही करनेके अर्थ निम्न पत्र भेजा गया ।

\* वन्दे जिनवरम् \*

मान्यवर महोदय जय श्री जिनेन्द्रजी

तारीख ८ जुलाईको प्रकाशित "अब पकताये होतका जय खुन गई सारी पोल" शीर्षक आर्य्यसभाजके विज्ञापन द्वारा यह ज्ञातकर अतीव प्रसन्नता हुई कि श्रीयुन बाबू गौरीशङ्करजी वैरिष्ठर ( या बाबू मिट्ठनलालजी खकील ) सहित आर्य्यसभाजकी ओरसे शास्त्रार्थके लिये मैजिस्ट्रेटसे आज्ञा लेनेको नियुक्त हुये हैं ।

अतः आपकी सेवामें निवेदन है कि हमारी सभाजकी ओरसे श्रीयुन सेठ ताराचन्द जी, लाला प्यारेलालजी जीहरी, सेठ चौधमलजी खैर, और सेठ पन्नालाल जी भैंसा रईसान अजमेर इसी कार्यके लिये नियुक्त हैं ।

सचिनय प्रार्थना है कि आप इस पत्रके पाते ही यह प्रकाशित कर दें कि उपर्युक्त सज्जन महोदय इस कार्यके बिषयमें आपसे कब मिलें, या आप उनसे कब मिलनेकी कृपा करेंगे ।

यदि आप मिलना चाहें तो आज शामको ८ बजे से ९ बजे तक सेठ ने-  
मीचंदजीके रंगमहलमें उपर्युक्त सज्जनोंसे मिलने का कष्ट स्वीकार करि-  
ये। यदि आप उनको बुलाना चाहें तो अपने मिलनेका समय लिखिये।

कृपया इस विषयमें आपको अतीव शीघ्रता करनी चाहिये जिससे कि  
इन लोगोंका समय व्यर्थ नष्ट न जावे।

भवदीय कृपाकांक्षी—घीसूनाल अजमेरा मन्त्री

श्री जैनकुमार सभा

ता० ८।१।१२ अजमेर।

हमारे विज्ञापनके उत्तरमें आर्य्यसमाजकी ओरसे आज रातको निम्न  
विज्ञापन प्राप्त हुआ ॥

ओ३म् ॥

बड़े बड़ाई ना करें, बड़े न बोलें बोल।

हीरा मुखसे ना कहै, लाख हमारा मोल ॥

पिछले दीतवारको आर्य्यसमाज भवनमें सरावगियोंके सिवाय बहुतसे  
दूसरे भीई भी मौजूद थे, वे इस बातकी साक्षी दे सकते हैं कि आर्य्यपुरुषोंने  
सरावगी भाइयोंको अपना सहमान समझ उनके हज़ारों गाली गकोजकी पर-  
वाह न कर शान्तिको कायम रक्खा और उनकी हर प्रकारसे खातिर करते  
रहे, उसके बदलेमें भूठे लांछन लगाना, बैठनेके लिये कर्श बिछानेकी धूलि  
उड़ाना और पंखे हिलानेकी हाथापाई समझना इन्हींका काम है ॥

जिस शोर और गुनका अर्थ इन लोगोंने दुआ सलाम राम राम व न-  
मस्ते आदि किया है उस पर पढ़े लिखे लोगोंकी हंसी आये बिना रह नहीं  
सकती, यदि हमारे सरावगी भाइयोंका उदंगल आर्य्यसमाज भवन तक ही  
रहता तो शायद उनकी यह बनावट चम भी जाती? परन्तु यह हा, हुका  
सिलसिला सारे शहरमें जारी रखता गया, जिससे बड़ा बड़का उनकी सभ्यता  
से बाकिफ् होगया और पुलिसकी सर्वसाधारणकी शान्तिके भङ्ग होनेका अं-  
देश पैदा हो गया। यही कारण था कि पुलिसने तहकीकात करना आव-  
श्यक समझा और इनकी भी मजिस्ट्रेटकी आज्ञा लेकर शाखाय करानेका नि-  
यम रखता ज़कूरी मालूम हुआ आर्य्य उपदेशकोंका इनकी सभामें इनकी न

जोकि मुआफिक शान्तिपूर्वक शास्त्रार्थ कर आना आर्यसमाजियोंकी चीरक और गम्भीरताको प्रकट करता है न कि सरावगी भाइयोंकी शान्तिको, जो अपनी सभाकी बदनामीका खयाल न करके तालियां पीटनेसे न चूके, तब आर्यसमाजमें आकर कब चुप रह सकते थे ॥

विज्ञापनोंमें कठोर शब्दोंका प्रयोग पढ़िने हमारे सरावगी भाइयोंने ही "मान की मरम्मत", 'आर्यसमाजकी ढालकी पोल" "बादकी खाज," इत्यादि अनेक कटु वाक्योंसे शुरू किया, अब समाज पर ही इलजान लगाना दूसरे की आंखमें तिनका देखना और अपनी आंखका शहतीर तक भी न देखने के समान है ॥

मेरे ( मन्त्री ) तथा बा० गीरीशंकरजी बैरिस्टरके बातचीत न करने की शिकायत सर्वथा अनुचित है, क्योंकि जब एक ओर तो बातचीतका इ-हाना किया जावे और दूसरी ओर उसके विरुद्ध नोटिस दिये जाय मर बांटेगावें तो फिर कौन समझदार आदमी ऐसी बातचीत पर विश्वास करेगा । यदि प्रतिष्ठित सरावगी भाई शास्त्रार्थ करानेको उद्यत हुए हैं तो वे प्रतिष्ठित मात्र ही कल ठीक ११ बजे ( दिनके ) श्रीमान् बाबू गीरीशंकरजी बैरिस्टर एटला के बंगले पर पधार जावें और श्रीमान् बा० मिट्ठमलाल जी व श्रीमान् बा० गीरीशंकरजीसे शास्त्रार्थ सम्बन्धी उचित कार्यवाही करलें ।

रहे निम्न आभिमानके यह वचन कि "हम लोग उसको शास्त्रार्थसे छोड़ने वाले नहीं हैं" बड़ी हंसी दिलाने वाले हैं ॥

महाशय ! यह लिखते वक्त शायद आपको ध्यान नहीं रहा कि आर्यसमाज तो सदैव आपकी सेवा करनेके लिये यहीं मौजूद है फिर इसके लिये ऐसा लिखना अपनी लड़कपनका परिचय देना है ॥

हमारे सरावगी भाइयोंको अपने नोटिसोंमें यह बतलाना था कि वे उन चारों बातोंसे डटे या नहीं, यदि वे ७ तारीखको ही ९ तारीखका शास्त्रार्थ मंजूर कर लेते तो उनका क्या बिगड़ जाता, मुख्य बातको छोड़ गर्भभरी भाषा उनकी ही कमजोरी दिखलाती है, । आर्यसमाज शास्त्रार्थसे पीछे हटना नहीं चाहता, परन्तु जो वह नहीं चाहता वह यह है कि उसे अधमधाड़ा पसन्द नहीं, शास्त्रार्थ शान्तिसे होता है जो बहुत भीड़ भाड़में कायम नहीं रह सकती । सब विचारशील पुरुष भी यही कहते हैं जैसा कि राय सेठ चांदमल



जी साहबके कथनसे स्पष्ट ही है ॥

सा० ९—१—१९१२

जयदेव शर्मा मन्त्री आर्यसमाज अजमेर

—:०—

इस कारण कि उपर्युक्त विज्ञापन में आर्यसमाजने हमारी ओरके प्रति निधियों को लिखित शास्त्रार्थ के विषय में उचित कार्यवाही (( मैजिस्ट्रेट से शास्त्रार्थके अर्थ आज्ञा प्राप्त ) करनेके अर्थ अपने दो प्रतिनिधियोंमें एक बाबू गौरीशङ्कर जी वैरिष्ठ एटलाके बङ्गले पर बुलाया था अतः हमारी ओर से इस विज्ञापनका कोई उत्तर प्रकाशित नहीं हुआ। पर इसमें कई भ्रामक बातें हैं जिनका उत्तर सर्वसाधारण के हितार्थ प्रकाशित किया जाता है।

अपने इस विज्ञापन में आर्यसमाजने जैनियों पर प्रथम ही यह मिथ्या दोष लगाया है कि उसने भवनमें आर्योंको हजारों गाली गलौज की और उनपर धून उड़ाने, फर्श उठाने और डायापांहीं करने का मिथ्या दोष लगाया। पर जो पठितक वहां पर उपस्थित थी वह भली भांति जानती है कि जैनियों ने उस रोज आर्यों के असम्भव व्यवहारों और वैरिष्ठ साहब के अनेक अभय कटु और सज्जनों के मुँहसे न निकलनेवाले बचनोंकी कैसी शान्ति और धीर्य्य से सहा। यद्यपि वह लोग उसका मुँह तोट उतार दे सकते थे पर इस भयसे कि आर्य समाज हमारे वैसा करने का बहाना लेकर कहीं शास्त्रार्थ से घटना जाय वह लोग बहुत ही शान्त रहे। निस्मन्देह कुंवर दिग्विजयसिंहजी चन्द्रसेन जैन वैद्य और फूलचन्द्र पांड्या अपने आर्यसमाजी भाइयोंकी समस्त भ्रामक और अमत्य बातोंका बड़ी शान्ति और सम्यक्तासे मभा में ही बैठे बैठे या खड़े होकर ( जिस प्रकार वह बातें कही जाती थीं ) प्रतिवाद किये बिना नहीं रहते थे और यदि उन लोगों के ऐसा करनेकी ही आर्य समाज गाली गलौज करना समझता हो तो बात ही दूसरी है ॥ जिस कमरे में हम लोग बैठे थे वहां पर फर्श पड़िले से ही बिछे हुये थे इस लिये यह लिखना समाजका नितान्त मिथ्या है कि फर्श हम लोगों के बैठने को विकरपे जाते थे। समाज को ऐसा लिखना योग्य था कि हम लोगों के नीचे बिछे हुये फर्श स्वामी दर्शनानन्दजीका टपाख्यान पूर्व निश्चिन्तानुसार होनेके अर्थ हम लोगों के नीचे से उठाकर चौकमें बिछाये जाते थे। आर्यसमाजने उस रोज जैनियोंका जैसा आतिथ्य संस्कार किया वह जैनियों और अन्य उपस्थित लोगोंको बहुत दिनों तक न भूजेगा। शेष।

महात्मन ! शोर गुलका अर्थ हुआ सलाम नहीं किया गया वरन आप के ८ जनाई को प्रकाशित 'जय जिनेन्द्र, 'जय जिनेन्द्र' शब्दों को कि ठीक ही है। देखिये आपके शब्द ये हैं "परन्तु हमारे सरावगी भाइयों ने एक न मानी और जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र आदि शब्दों से शोर गुल मचाते हुये समाज भवन से चले गये। रहा शोर गुल मचाने की बात सो जय कि प्रत्येक जैन भाई ने (आपके उनकी अपने भवन से खदेड़ देने पर भी) आपसे प्रेम पूर्वक जय जिनेन्द्र, "जय जिनेन्द्र, किया और बैसा करने से कुछ शोर गुल हो गया हो तो आश्चर्य नहीं। रही शहर में जय जय कार की ध्वनि सो वह हाहू का सिलसिला और असभ्यता नहीं वरन विजय प्राप्त होने पर हृदयों का नमूना है। पुलिस को शान्ति भङ्ग का अन्देश होना आर्य समाज की कृपा का ही फल था और इसी कारण वह तब की काल करने को मौके पर आर्य समाज भवन में गयी होगी यदि दुर्जनताप न्याय से थोड़ी देर के अर्थ समाज का यह लिखना मान लिया जाय कि जैनियों के शहर में हाहू करने के कारण शान्ति भङ्ग हो जाने के भय से उसको मैजिस्ट्रेट की आज्ञा लेकर शाखाय कराने का नियम रखना जरूरी मालूम हुआ तो इस से यह तो प्रत्यक्ष ही है कि जब तक जैनियों ने (आर्य समाज के सेखानुसार) शहर में हाहू नहीं की थी तब तक उस को ऐसी (मैजिस्ट्रेट से आज्ञा लेने की) आवश्यकता कदापि न थी यदि ऐसा ही था तो वह बीच में एक दिवसी मोहलत क्यों लेना चाहता था ? लाख छिपाने पर भी उसको अपने ८ तारीख के "अब पढ़नाये होत का जब खुल गई सारी घोष" विज्ञापन में इसका कारण यह लिखना ही पड़ा कि "असली बात यह है कि आर्य समाज एक दिन बीच में इसलिये लेता था कि मैजिस्ट्रेट से आज्ञा लेकर भीड़भाड़ का उधम रोकने के लिये पुलिस का पूरा पूरा प्रबन्ध कर लेता" असल बात यह है कि आर्य समाज एक दिन बीच में लेकर मैजिस्ट्रेट को शान्ति भङ्ग होने का भय दिखा उसकी आज्ञा से शाखाय बन्द करना चाहता था और इस लोग उसकी इस बात को जान गये थे इसी से इस उसकी एक दिन की मोहलत देना पसंद न करते थे। जो हो। सत्यवात छिपाये नहीं छिपती सर्व साधारण को उसके लेखों से ही यह भली भाँति ज्ञान हो गया कि वह क्यों इस लोगों पर अनभ्यता और शान्ति भङ्ग करने का सिद्धा दोष लगाकर शाखाय सेटलने के अर्थ मैजिस्ट्रेट से आज्ञा प्राप्त करने का अड़झा लगा रहा था ॥

निसन्देह ३० जून के शास्त्रार्थ की सभामें आर्य्यसमाजियोंकी ओर से ( सिवाय कुछ आर्य्यसमाजियों के ताली पीटने में अग्रसर होनेके कामको छोड़कर और कोई ) असम्भना का उपप्रहार नहीं हुआ पर ६ जुलाई के शास्त्रार्थकी सभाका दृश्य देखने ही योग्य था कि हमारे अनेक आर्य्यसमाजी भाई किस प्रकार क्रोधमें भरे हुये अपने नाटिस वांटकर लोगोंसे दंगा करते हुये सभाके कार्य्यमें गड़बड़ी डाल रहे थे और ९ जुलाईको सन्धाने आर्य्यसमाज भवनमें अपनी असम्भना और उद्वेगताकी पराकाष्ठा दिखना डाली जब कि दोनों मौखिक शास्त्रार्थों में हमने कुल नियम आर्य्यउपदेशकोंकी इच्छानुसार ही रखे थे तब उनके शान्ति भङ्ग करनेका कारण ही क्या हो सकता था ।

हमारी ३० जूनकी सभामें तालियां वहां पर उपस्थित कुछ मूर्ख लोगोंने ( जिनमें कि हमारे कई आर्य्यसमाजी भाई अग्रसर थे ) पीटी थीं और उसमें हमारे अनेक अनभिज्ञ जैन भाई भी सम्मिलित हो गये थे जिसके कि अर्थ हमको बड़ा दुःख है और उनकी ओरसे हम क्षमा प्रार्थी हैं । पर समाजने देखा ही होगा कि हम लोगोंने पूर्व ही तालियां पीटने और जय जयकार खोलनेसे सबको बिलकुल रोक दिया था और पीटने वालोंको खूब धिक्कार कर उनके इस कृत्यपर शोक प्रकट किया था ॥

जिन लोगोंने दोनों ओरके विज्ञापनोंकी सलीभांति ध्यान से पढ़ा है वह इस बातकी सच्ची दे सकते हैं कि इन लोगोंकी ओरसे प्रकाशित विज्ञापनों में कोई असम्भ और अश्लील शब्द नहीं । आर्य्य समाजने बहुत बूढ़ खोजकर जो तीन „मानकी सरम्भन“ । “आर्य्यसमाज की ढोल की पोका” और “वादकी खाज” शब्द प्रकाशित किये हैं वे अश्लील और असम्भ नहीं बरन यथार्थ वस्तु स्वरूप को प्रकाशित करने वाले साधारण शब्द हैं । अश्लीलता, असम्भता और व्यक्तिगत आक्षेपों का प्रवाह यदि देखना हो तो उनके „अध इठ धर्म्मा“ से काम नहीं चलेगा, शीर्षक विज्ञापनों से इधरके विज्ञापन ध्यान पूर्वक पढ़ें ।

जब कि ८ तारीखके प्रातःकाल आर्य्यसमाजके मन्त्रीकी सेवामें उपस्थित होने वाले श्री लेन तत्त्वप्रकाशिनी सभाके कार्य्यकर्ता गणोंसे सन्धाने सन्ध्याकी बात चीत करने की प्रतिज्ञा की थी और बाबू गोरीशङ्कर जी वैरिष्ठ आर्य्यसमाजकी ओरसे नियम करने के अर्थ प्रति निधि नियत हुये

ये ऐसी दशा में उन लोगों का रुखाई के साथ बात चील करने से इन्कार कर देना निस्सन्देह आलोपनीय है । मालूम नहीं कि कौन से बात चील के विरुद्ध नोटिस प्रकाशित हुये ।

नहीं जानते कि हमारे “हम लोग उसको शास्त्रार्थ से छोड़ने वाले नहीं हैं,, खचन कैसे मिथ्या अभिमान के होकर हंसी दिलाने वाले हैं और श्रीजैन कुमार सभा ने वैसा लिखकर कैसे अपने लड़कपन का परिचय दिया है ।

आर्यसमाजकी चारों बातें स्वीकार न करनेका कारण आर्य समाजकी भाइयोंके युक्ति और प्रमाणां से आर्य समाज भवन में कईवार बतलाया जा चुका था जैसा कि पूर्व ही प्रकाशित हुआ है । तारीख ७ की ही ९ तारीख को शास्त्रार्थ मंजूर न करने का कारण यह था कि हम लोगों को विश्वस्तनीय रीति से इस बातका पता लग गया था कि आर्यसमाज एक दिन बीचमें लेकर मैजिस्ट्रेट को शान्ति भङ्ग होने का भय दिखा उनकी आज्ञा से शास्त्रार्थ बन्द कराना चाहता था और हम लोगों को यह बात कदापि दृष्ट न थी—हम लोग चाहते थे कि शास्त्रार्थ हो ही जाय । इसी कारण उनकी और सब बातें मंजूर कर लेने पर भी हम लोग ८ तारीख को ही शास्त्रार्थ प्रारम्भ होने की बात पर डटे रहे । पर अब यह देखा कि आर्य समाज हम बहाने की ही लेकर शास्त्रार्थ से हटा जाता है और उनका दाव हमारे मते पटकता है तब हमको उनकी ९ तारीखकी बात भी स्वीकार करना पड़ी ॥

हम जानते हैं कि शास्त्रार्थ शान्ति से ही होता है और वह शान्ति बहुत भीड़ होने पर भी कायम रह सकती है जैसा कि तारीख ३० जून और ६ जुलाईके मौखिक शास्त्रार्थोंके समय श्रीजैनकुमार सभाने अपने उत्तम प्रवचन द्वारा सबको करके दिखा दिया । फिर पब्लिक शास्त्रार्थ नाम रख न मालूम आर्यसमाज क्यों चुपचाप कुत्सिहयामें ही गुड़ फोड़ना चाहकर पब्लिकको आनेसे रोकता था ॥

पाठको ! यदि आर्यसमाज निज धर्मरक्षार्थ इस प्रकार मिथ्या बातोंकी प्रकाशित कर सर्वसाधारणको धोखेमें डालता हो तो आपको आश्चर्य न करना चाहिये क्योंकि उसके न्यायदर्शन के चतुर्थ अध्यायका पद्यांश ( अन्तिम ) सूत्र यह है कि “तत्त्वाध्यवसायसंरक्षार्थं जल्पवित्तवहे बीजप्ररोह संरक्षार्थं कथटकशाखावरणावत्” अर्थात् जैसे बीजाङ्कुरकी रक्षाके लिये कथटक शाखाओंका आवरण किया जाता है वैसे ही तत्त्व निरूप्यकी रक्षाके लिये

जलप और बिलखना हैं । हम सूत्र पर उसके प्रसिद्ध विद्वान् मानवेंद्र भाष्यकार पंडित तुलसीराम जी स्वामी महाराज लिखते हैं कि जिज्ञासुकी मत्सरता और इठंसे कभी इनका आश्रय न लेना चाहिये, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर तत्त्वकी रक्षाके लिये ( जैसे खखकी रक्षाके लिये कांटोंकी बाड़ लगा देते हैं ) इनका प्रयोग करना चाहिये ॥

## बुधवार १० जुलाई १९१२ ईस्वी ।

आर्यसमाजके तारीख ८ की प्रकाशित विज्ञापनके अनुसार हमारी ओर के चारो नियुक्त प्रतिनिधि सेठ साराचन्दजी व लाला प्यारेलाल जी जीहरी रईसान नभीरावाद तथा सेठ चौधमनजी वैद व सेठ पन्नालालजी रईसान अजमेर आज दिनेके नाढ़े दम बजे ही आर्यसमाजके प्रतिनिधि बाबूगौरीशंकरजी वैरिष्ठ एटलाके वगले पर आर्यसमाजके दूसरे प्रतिनिधि बाबू मिट्ठानलाल जी वकील महित मैजिस्ट्रेटसे लिखित शास्त्रार्थके विषयमें आज्ञा लेनेकी दरखास्त देनेकी पहुंच गये । बातचीत शुद्ध होने पर न मालूम क्या आर्यसमाजके प्रतिनिधियोंने मैजिस्ट्रेटसे आज्ञा लेनेसे इन्कार कर दिया और यह कहा कि अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि अजमेरमें अब शास्त्रार्थ करना ही हम नहीं चाहते । हमारे प्रतिनिधियोंने अजमेरमें ही लिखित शास्त्रार्थ करनेके अर्थ बहुत कुछ कहा सुना पर आर्यसमाजके प्रतिनिधियोंने उससे मच न की । जब हमारे प्रतिनिधियोंने देखा कि इतनी मेहनत और इतने दिन इन्तिजारीमें खर्च करने पर भी हम लोगोंका अभिनिधित शास्त्रार्थ नहीं होता तो 'भागे भूतकी लंगोटी ही मही' इस न्यायके अनुसार उन को एक ऐसे लिखित शास्त्रार्थके अर्थ जो कि इटावाह और अजमेरमें बैठे बैठे हो सके वही कठिनतासे तैयार किया और उसके निम्न नियम तय हुये ॥

१ यह शास्त्रार्थ आर्यसमाज अजमेर और आजैतत्त्वप्रकाशनी, सभा इटावाहके मध्यमें होगा ॥

२ विषय "ईश्वर सृष्टिका कर्ता है कि नहीं" जिसमें आर्यसमाजका यह पक्ष है कि सृष्टिका कर्ता ईश्वर है और जैनसहाश्रयोंका पक्ष यह है कि ईश्वर सृष्टिका कर्ता नहीं ॥

३ शास्त्रार्थ नागरीभाषामें होगा ॥

४ हर एक पक्षकी ओरसे एक २ प्रअपक्ष लिख पर जज्जीके हस्ताक्षर होने

दूबरे पक्षके मन्त्रीके पास भेजा जावेगा और उत्तर भी मन्त्री ही के इस्तेमाली भेजे जावेंगे। आर्य्यसमाजकी ओरसे पं० जयदेवजी शर्मा मन्त्री होंगे और श्री जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावाकी ओरसे लाला चन्द्रधनजी वैद्य मन्त्री होंगे ॥

५ प्रश्नपत्रमें एक ही प्रश्न होगा ॥

६ प्रश्नोत्तर होके मन्त्रीके पास १० दिन तक पहुंच जाने चाहिये और वे रजिस्टरी द्वारा भेजे जावें ॥

७ प्रथम प्रश्न पत्र आपसमें ता० ११ जुलाई १९१२ की शामके ५ बजे तक एक दूसरेके पास पहुंच जाने चाहिये ॥

८ प्रश्नोत्तरोंकी कृपानेका प्रबन्ध हर एक मन्त्री अपने आप करें ॥

कहीं ऐसा न समझा जाय कि जैनियोंने ही अजमेरमें लिखित शास्त्रार्थ करनेसे इन्कार कर दिया इस कारण इस शास्त्रार्थकी सूचनाका विज्ञापन आर्य्यसमाजके मन्त्रीकी ओरसे निकलना निश्चित हुआ ।

## गुरुवार ११ जुलाई १९१२ ईस्वी ।

आज प्रातःकाल १० बजे कलके निश्चयके अनुसार आर्य्यसमाजकी ओर से निम्न विज्ञापन प्रकाशित हुआ ।

### विज्ञापन ।

सर्व साधारणकी विदित हो कि जैसा कि विज्ञापन ता० ९ जुलाई १९१२ को आर्य्यसमाज अजमेरकी तरफसे प्रकाशित हुआ था उसके अनुसार सेठ ताराचन्दजी व लाला प्यारेलालजी रहमान नसीराबाद तथा सेठ चौध-मल जी वैद्य व सेठ पञ्चालालजी भैंसा रहंसान अजमेर व आवू गौरीशङ्कर जी बैरिष्ठर एटला और पं० मिट्ठनलाल जी भार्गव वकील आज १० जुलाई मन् १९१२ ई० को दिनके ११ बजे आवू गौरीशङ्कर जी बैरिष्ठरके मकानपर एकत्रित हुए और सर्व सम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि शास्त्रार्थ लेखबद्ध केवल पत्र द्वारा निम्नलिखित नियमानुसार होः—

१—यह शास्त्रार्थ आर्य्यसमाज अजमेर और श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावाके मध्यमें होवे ।

२—विषय “ईश्वर सृष्टिका कर्ता है कि नहीं” जिसमें आर्य्यसमाजका यह पक्ष है कि सृष्टिका कर्ता ईश्वर है और जैन महाशयोंका पक्ष यह है कि ईश्वर सृष्टिकर्ता नहीं है ।

३-शास्त्रार्थ, नागरी भाषामें होगा ।

४-हर एक पक्षकी ओरसे एक २ प्रश्नपत्र जिसपर मन्त्रीके हस्ताक्षर होंगे, दूसरे पक्षके मन्त्रीके पास भेजा जावेगा और उत्तर भी मन्त्रीहीके हस्ताक्षरी भेजे जावेंगे । आर्य समाजकी ओरसे पं० जयदेव शर्मा मन्त्री होंगे और श्री जैनसत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावाकी ओरसे लाला चन्द्रसेन जी वैद्य मन्त्री होंगे ।

५-प्रश्नपत्रमें एक ही प्रश्न होगा,

६-प्रश्नोत्तर होके मन्त्रीके पास १० दिन तक पहुंच जाने चाहियें और वे रजिस्टरी द्वारा भेजे जावें ।

७-प्रथम प्रश्नपत्र आपनमें ता० ११ जुलाई १९१२ की शामके ५ बजे तक एक दूसरेके पास पहुंच जाने चाहिये ।

८-प्रश्नोत्तरोंकी पत्रोंमें कृपयानेका प्रबन्ध हर एक मन्त्री अपना अपने आप करें ।

यह भी निश्चय हुआ कि दोनों पक्षसे अब इस शास्त्रार्थके विषयमें कोई विज्ञापन न छापे जावें और ऊपर लिखित नियमोंपर शान्तिपूर्वक शास्त्रार्थ आरम्भ कर दिया जावे ।

१ दः प्यारेलाल

५ गौरीशंकर

२ दः ताराचन्द

६ Mitthan lall

३ दः चौधमल

४ दः पन्नालाल

**प्रकाशक जयदेव शर्मा मंत्री**

ता० १०—७—१९१२

—:०:—

इस विज्ञापन को पाते ही हम लोगों की ओर से नियमानुसार एक प्रश्न ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्वके विषयमें आर्य समाजको भेज दिया गया और दो बजे दिनके लग भग आर्य समाजका प्रश्न भी हम लोगोंको प्राप्त हो गया और इस प्रकार यह शास्त्रार्थ आरम्भ हो गया ।

( नोट ) यह शास्त्रार्थ अभी बराबर चल रहा है और समाचार पत्रोंमें कृपया जायगा और पुस्तकाकार भी प्रकाशित होगा ।

आज प्रातःकाल और मध्याह्नमें दो बार पंडित दुर्गादत्त जी शास्त्री

हम लोगोंके पास पुनः आये और आर्य्यसमाज तथा स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वतीके विलाप तथा हृदय द्वावक बातों और आग्रहोंका (जिनके कि कारण उनका चित्त उस दिवस उनके अत्यन्त प्रिय बन्धु आर्य्यसमाजके सुप्रसिद्ध विद्वान् पंडित गणपति जी शर्मा के अकाल मृत्यु का समाचार सुनने से परमशोकाकुल होनेसे पिघल गया था और बहुत दवाव पड़ने पर उन्हें "जैन धर्म परित्याग" शीर्षक विज्ञापन निकालना ही पड़ा था ) वर्णन करते हुये अपनी भूलपर बड़ा पश्चाताप प्रगट किया और कहा कि मुझे आर्य्य समाजपर बिल्कुल अज्ञान नहीं है और मैं एक मात्र जैनधर्मको ही आत्मा का कल्याण करने वाला समझ कर आपको पुनः ग्रहण करता हूं। ऐसा कहकर उन्होंने हम लोगों को वर्य्य ही बहुत सज्जदरी से ऊपर मन बदलाव करनेके अर्थ बहुत जमा प्रार्थना चाही और निम्न विज्ञापन अपने हाथसे लिखकर प्रकाशित करनेकी दिया ।

वन्देजिनवरम् ।

विज्ञापन ।

मैं अत्यन्त खेदके साथ प्रकाशित करता हूं कि स्वामी दर्शनानन्द जी और पंडित गोपालदामजीके मौखिक शास्त्रार्थके दूसरे दिन आर्य्यसमाजी भाइयोंने कई प्रकारकी लाचारियां डालकर मुझसे ( जैन धर्म परित्याग ) शीर्षक विज्ञापन निकलवा दिया । परन्तु सोचनेसे मालूम हुआ कि किसीके दवावमें पड़कर सत्यधर्मका परित्याग करनेसे आत्माका वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता । इस लिये मैं सर्वसाधारणसे निवेदन करता हूं कि मुझे अपने पूर्व प्रकाशित विज्ञापनका बड़ा पश्चाताप है और अब मैं अपने पूर्व गृहीत और भूलसेत्यक्त सत्य जैनधर्मको पुनः ग्रहण करता हूं ।

निवेदक दुर्गादत्त शर्मा अजमेर

११।७।१२

~~~~~

आज रात्रिको जैनसभा अजमेरकी ओरसे सभा का एक विशेष अभिप्रे-  
शन करना निश्चित हुआ तदनुसार निम्न विज्ञापन प्रकाशित किया गया ।

÷ वन्दे जिनवरम् ÷

आवश्यक सूचना ।

सर्व साधारण सज्जन महोदयोंकी विदित हो कि आज ता० ११ जीलाई



सन् १९१२ ई० का स्थान गोदीकी नशियोंमें समय रात्रिके ८ बजेसे सभा होगी।  
उपमें स्वाहाद्वारिधि वादिगजकेमरी पं० गोपालदासजी वरैया न्याया-  
चार्य पं० सन्ध्याजी कुं० दिग्विजयसिंहजी पं० पुस्तूलाजी आदिके  
जैनधर्मपर उत्तमोत्तम व्याख्यान और भजन होंगे। अतः आप सर्वसज्जन  
अवश्यमेव पधार कर धर्मनाम उठाइये। विज्ञेयत्वम्।

प्रार्थीः—फूलचन्द पाण्ड्या, मन्त्री जैनसभा अजमेर।

गोदीकी नशियामें ठीक समयपर सभाका प्रारम्भ हुआ। भजन होनेके  
पश्चात् श्रीमान् स्वाहाद्वारिधि वादिगजकेमरी पण्डित गोपालदासजी वरै-  
य्याने संगनाचरण करते हुये ईश्वरके स्वरूपके विषयमें एक खंटीसी सारग-  
र्भित वक्तृता देकर सभापतिका आसन ग्रहण किया। इटावह निवामी श्री-  
मान् पण्डित पुस्तूलाजीने जीवके सच्च सुखका निर्णय करते हुये उनके प्रा-  
प्तिका उपाय अभिधेय, मन्थन्य, शक्यानुष्ठान इष्ट प्रयोजन और पूर्वापर वि-  
रोध रहित लक्षण वाले शास्त्रने प्राप्त होना बतलाकर इन लक्षणोंकी अव्या-  
प्ति वेदादि शास्त्रोंमें बतलाते हुये जैनशास्त्रोंकी ही कल्याणकारी सिद्ध किया।  
न्यायाचार्य पण्डित माणिकचन्दजीने जैनधर्मके पेटमें ही अपेक्षाओंसे सब  
धर्मोंका आजाता सिद्ध किया। कुंवर दिग्विजयसिंहजीने सर्वजीवोंके हितार्थ  
प्रत्येक जनभाईको निज ज्ञान और चरित्रकी वृद्धि करके जैनधर्मका प्रकाश  
और उसकी सच्ची प्रभावना कर स्वपर कल्याण करनेका उपदेश दिया। फूल-  
चन्द पाण्ड्याने श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभाकी बड़ी प्रशंसा कर उसको अने-  
कशः धन्यवाद दिया और अन्तमें सुवार्तिकवादी आदिके कई भजन होकर  
जय जयकार ध्वनिसे बड़े आनन्द और उत्साहके साथ सभा समाप्त हुयी ॥

## शुक्रवार १२ जुलाई १९१२ ईस्वी।

बीहद दिवस के पश्चात् आज सन्ध्याकी पांच बजेकी एकम प्रेम ट्रेनसे  
श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा अजमेरसे बड़े धूमधाम और उत्साहके साथ  
विदा हुयी। स्टेशनपर जैन भाइयोंका प्रेम और मत्कार देखने ही योग्य था।

अजमेरमें बारह तेरह दिवसों तक जैन धर्मके विषयमें भजन, व्याख्या-  
न, श्रद्धा समाधान और शास्त्रार्थोंकी खूब धूम रही जिनके कारण सर्व सा-  
धारणका उनके विषयमें मिष्टया ज्ञानका बहुत कुछ नाश होकर यथार्थ स्व-  
रूपका बोध हुआ।

दो मौखिक और तीसरे लिखित शास्त्रार्थके कारण अजमेर, अजमेरा और उसकी श्री जैनकुमार सभा चिरकाल तक लोगोंको स्मर्यो रहेगी और उन्हें लोग आदरकी दृष्टिसे देखकर अनुकरण करने योग्य समझते रहेंगे ।

अन्तमें हमारी यह परम मङ्गल कामना है कि श्री जैनकुमार सभा अजमेरके उत्साही, साक्षर और नव युवक सभासद दिन दूने रात चौगुने विद्वान्, बुद्धिवान और चारित्रवान् होकर जैन धर्मकी सच्ची प्रभावना करनेमें कटिबद्ध रहें और उनके अनुकरण करनेकी सामर्थ्य सर्व जैनकुमारोंमें हो जिससे कि वह जैन धर्मका डझा सारे संसारमें बड़े जोर शोरसे बजाकर सब जीवोंको सच्चे कल्याणकी प्राप्ति करा सकनेमें सर्वथा समर्थ हों ।

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मन्त्री

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा—इटावा ।

—:०:—

परिशिष्ट नम्बर “क” ॥

## मौखिक शास्त्रार्थ

जो श्रीमान् स्याद्वाद वारिधि वादिगजकेसरी पण्डित गोपालदास जी वरैय्या द्वारा श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा और आर्यसमाजके सुप्रसिद्ध विद्वान् और प्रचारक संन्यासी स्वामी श्रीदर्शनानन्द जी मुरखती के मध्य “ईश्वर इस सृष्टिका कर्ता है या नहीं” इस विषय पर रविवार ३० जून १९१२ ईस्वी को मध्याह्न के २ से ५ बजे तक स्थान मोर्दों की नशियां अजमेर में कई हजार लोगोंके समक्ष सेठ ताराचन्द जी रईस नसीराबादके सभापतित्व में हुआ ॥

वादिगजकेसरीजी—प्यारे भाइयो ! बड़े हर्ष का समय है कि आज एक विषयका निर्णय होता है । विषय यह है कि ईश्वर इस सृष्टिका कर्ता है या नहीं । सब ही पदार्थोंका निर्णय उद्देश्य लक्षण और परीक्षासे होता है । अतः इस विषयमें प्रश्न यह है कि इस सृष्टिके बनानेमें ईश्वरका कर्तृत्व क्या ? जब कि कहा जाता है कि परमात्माने भिन्न भिन्न परमाणुओं की जो कि प्रलय-कालमें भिन्न भिन्न स्थानोंमें वेकार अवस्थामें पड़ेहुए थे मिजाकर सूर्य चन्द्रादि रूप बनाया तब यह निश्चय है कि परमात्माने उनकी क्रियामें परिणत कि-

या । जो दूसरे को क्रिया देता है उसमें स्वयं क्रिया होनी चाहिये क्योंकि क्रियाका लक्षण "देशात् देशान्तर प्राप्ति" अर्थात् एक देशसे दूसरे देश में प्राप्त होना है और यह परमात्मामें उसके एकरस सर्वव्यापी होनेसे असम्भव है । यदि थोड़ी देरको आपके ईश्वरमें क्रिया मान भी लीजाय तो यह बतलाइये कि क्रिया के स्वाभाविक, वैभाविक, आज्ञा, इच्छा, दया, न्याय और क्रीड़ा आदि अनेक भेदोंमें से वह कौनसा कर्ता है । यदि ईश्वरमें क्रिया स्वाभाविक मानें तो आपके मानेहुए वह सृष्टि और प्रलय दोनोंका कर्ता परस्पर दोनों के विरोधी गुण होनेसे हो नहीं सकता । यदि उसमें वैभाविक रीतिसे कर्तृत्व मानो तो उस में अशुद्धता पायी जायगी । यदि ऐसा मानो कि उसने आज्ञा दी और परमाणु सूर्य चन्द्रादि रूप बनगये तो ईश्वरके शब्द और परमाणुओं के अवयव शक्ति होनेका प्रसङ्ग आया जो कि ईश्वरके अशरीर और परमाणुओं के जड़ होनेसे असम्भव है । यदि यह मानो कि ईश्वरने सृष्टि बन जाने की इच्छा हुई और परमाणु उस रूप बनगये तो ईश्वरमें विभाव और परमाणुओं में ईश्वरकी इच्छा जान लेने ( चेतनत्व ) का प्रसङ्ग आनेसे हो नहीं सकता । यदि यह मानो कि ईश्वरमें दयासे क्रिया है तो उस क्रियाका फल भी ममस्त जीवोंको सुखदायी होना चाहिये । यदि यह कहो कि ईश्वरमें न्यायही क्रिया है तो रोकनेकी शक्ति होने पर भी उसने जीवोंको ऐसे कर्म क्यों करने दिये जिससे कि उसको न्याय करनेकी आवश्यकता उत्पन्न हुई । यदि ईश्वरमें क्रीड़ासे कर्तृत्व है तो उसमें अज्ञानता आदि दोषोंका प्रसङ्ग आवेगा । इत्यादि किसी भी क्रियाके भेदसे वह सृष्टि कर्ता नहीं हो सकता । जब कि परमात्मा अखण्ड एकरस और सर्वव्यापी माना जाता है तो उसमें एकसी क्रिया होने के कारण कोई परमाणु अपने स्थानसे हिल नहीं सकता । यदि यह कहो कि परमात्मामें एक एक बिखरे हुए परमाणुकी उठा उठाकर जोड़ा तो ईश्वरके इस्त पादादि अवयव होनेका प्रसङ्ग हुआ जो कि उसके निराकार होनेसे है नहीं । अतः बतलाइये कि सृष्टिके बनानेमें ईश्वरका कर्तृत्व कैसे और क्या है ।

स्वामीजी,—क्रियावान् ही क्रिया दे यह नियम नहीं । चुम्बक पत्थर स्वयं नहीं हिलता, परन्तु लोहेको हिला देता है । हमसे सिद्ध है कि क्रियामें क्रिया उत्पन्न नहीं होती, किन्तु शक्तिसे क्रिया उत्पन्न होती है । इच्छा अप्राप्त इष्टकी हुआ करती है, कोई पदार्थ परमेश्वरको अप्राप्त नहीं, हम कारण परमात्मामें इच्छा करना नहीं घटता । क्रिया दो प्रकारकी होती है, एक

प्राकृतिक और दूसरी नियमपूर्वक । इच्छापूर्वक क्रिया जीव की होती है और नियमपूर्वक परमात्माकी, ईश्वरमें क्रिया स्वाभाविक है “स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च” । सृष्टिमें हर एक क्रिया नियमपूर्वक हो रही है सूर्य चन्द्र आदि मध्यमें नियमपूर्वक क्रिया है । वृक्षादिके एक २ पक्षमें नियमपूर्वक क्रिया है । जो अपने नियामकका लक्ष्य कराती है । सृष्टि और जगत् दोनों शब्द भी अपने बनाने वालेका लक्ष्य कराते हैं सृष्टि वह जो बनाई गई हो और जगत् वह जो चले । न कोई पदार्थ अपने आप चल सकता है न चल सकता है । परमाणुओंमें गति है नहीं, इसलिये बनाने और चलाने वाला कोई अवश्य इंसान चाहिये । यदि परमाणुओंमें स्वाभाविक गति होती तो उनका संयोग नहीं हो सकता था, क्योंकि स्वाभाविक गतिका भेद सदा बना रहता । जो परमाणु जिससे जितनी दूर पर जा रहा था उतनी ही दूर पर चला जाता । परमाणुओंमें आकार भी नहीं, हर एक कार्यमें ३ चीजें होती हैं, एक आकृति, दूसरी व्यक्ति, तीसरी जाति । मिट्टीमें ईंटकी शक्ल नहीं न ईंटमें मकानकी, तब कहांसे आड़े । हर एक कहेंगे ईंटकी शक्ल कुम्हारके और मकानकी शक्ल इस्त्रीनिघरके ज्ञानसे, बिट्टु हुआ कि आकृति कर्ताके ज्ञानसे आती है । नेस्ति सेहस्ति नहीं होती, उपादानसे व्यक्ति आती है । जाति नित्य है जगत् आकार-वाला है, जन्य है, साकार जन्य होता है । यथा घट साकार है, जन्य है, परमाणु आकार वाले नहीं तब परमाणुओंमें आकृति कहांसे आयी । परमात्मने आज्ञा दी और परमाणुओंने सुना यह आर्य्यमसाजका दावा (मिट्टान्त) नहीं, परमात्मा एक एक पदार्थको लेकर जोड़ता है यह ठीक नहीं । यह दोष एकदेशी और परिच्छिन्न पदार्थमें होता है । परमात्मा सर्व व्यापक है जगत् उसके अन्दर है । अन्दरूनी पदार्थमें गति देनेके लिये हाथ पैर आदि इन्द्रियोंकी आवश्यकता नहीं । इसी लिये कहा गया है कि “अपाणिपादो ज्वनो ग्रहीता पश्यत्यक्षतः स शृणोत्यकर्णः” । शरीरके पावोंको भरनेके लिये जो खून आता है उसे कौनसा हाथ खींचकर लाता है ॥

बादिगजकेसरीजी—यह मानना ठीक नहीं कि चुम्बकमें क्रिया नहीं होती क्योंकि उनमें परिस्पन्दात्मक क्रिया और अपरिस्पन्दात्मक परिणाम दोनों मौजूद हैं जिस समय चुम्बक लोहेकी अपनी ओर आकर्षित करता है उस समय उसके परमाणुओंमें परिस्पन्दात्मक क्रिया और अपरिस्पन्दात्मक परिणाम था

अपरिस्पन्दात्मक परिणाम बराबर होता है \* । क्रियाका लक्षण देशात् देशान्तर प्राप्ति है जो कि आपके ईश्वरमें एक रस भव व्यापी होनेके कारण असम्भव है । यदि ईश्वरमें चुम्बकके आकर्षणकी भांति क्रिया स्वाभाविक है तो जिस प्रकार चुम्बक लोहेको अपनी ओर आकर्षित करता है उसी प्रकार परमाणुओंके भी सदेवसे होनेके कारण ईश्वर उसमें अपने स्वभावसे सदैव क्रिया देता रहता होगा और उनका फल सृष्टि सदैवसे होगी । जब ऐसा है तब प्रलय कैसे होती है क्योंकि वेदान्तके “नैकस्मिन्नसम्भवात्” सूत्रके अनुसार ईश्वरकी स्वाभाविक क्रियामें सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्वके दो विरोधी गुण नहीं रह सकते । सृष्टिके सब कार्य नियम पूर्वक नहीं होते क्योंकि “गंधः सुवर्णं फनमिक्षुदण्डं नाकारि पुष्पं खलु चन्दनेषु । विद्वान् धनाढ्यो न तु दीर्घजीवी धातुः पुरा कोपि न बुद्धिदोऽभूत् ॥” कहीं वर्षों कितने ही दिन होती है कहीं कितने ही दिन और जब उनकी आवश्यकता होती है तब वह कभी नहीं होती और कभी कभी बिना आवश्यकता ही इत्यादि अनेक अ-

\* साइन्सके सुप्रसिद्ध विद्वान् भूत पूर्व मिष्टर जे० कर्क मेक्सवेल एम० ए० एल एल० डी०, एफ० आर० एस एम०, एल० एण्ड ई० आनरेरी फेलो आइंस्टीनिटी कालेज और प्रोफेसर आव एक्मपेरीमेण्टल फिजिक्स इन दो यूनिवर्सिटी आव कैम्ब्रिज अपनी मैनुअल आव एलीमेण्टरी साइन्स सीरीज “मैटर एण्ड मोशन” नामक पुस्तकमें न्यूटनकी घड़ला आव मोशन ( क्रियाके तीसरे नियम ) की सिद्धिमें पृष्ठ ४८ लिखते हैं कि:—

The fact that a magnet draws iron towards it was noticed by the ancients, but no attention was paid to the force with which the iron attracts the magnet अर्थात् यह विषय कि चुम्बक लोहेको अपनी ओर खींचता है पूर्व पुरुषोंसे जाना गया था परन्तु उस शक्ति पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था जिसके द्वारा लोहा चुम्बकको अपनी ओर खींचता है । अतः साइन्स द्वारा यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि चुम्बकमें भी परिस्पन्दात्मक क्रिया और अपरिस्पन्दात्मक परिणाम या अपरिस्पन्दात्मक परिणाम बराबर होता रहता है इस कारण स्वामी जीका यह मानना कि “चुम्बक पटथर स्वयं नहीं हिलता, परन्तु लोहेको हिला देता है” ठीक नहीं वरन् वादिगजकेभरी जी का चुम्बकमें क्रिया मानना बिलकुल यथार्थ है क्योंकि यदि ऐसा न होता तो छोटा चुम्बक बड़े लोहेसे कैसे खिंचता । ( प्रकाशक )

नियम और व्यर्थ कार्य इन संसारमें हो रहे हैं। जड़ पदार्थोंमें भी स्वयंसे कार्य करनेकी शक्ति होनेसे निमित्तकी प्राप्तिपर नियम पूर्वक कार्य हो सकते हैं; यथा सूर्य चन्द्रादिक का भ्रमण और ग्रहण आदि। अनेक गुणोंके समुदायको द्रव्य कहते हैं और प्रत्येक गुण तथा प्रतिलक्षण अवस्था से अवस्थान्तर हुआ करता है। प्रत्येक पदार्थमें क्षण प्रतिलक्षण उनके पूर्वावस्थाकी प्रलय और उत्तरावस्थाकी सृष्टि मदैव हुआ करती है और इस प्रकार अपने प्रत्येक पदार्थके अवस्थासे अवस्थान्तर होनेसे जगत् भी सदैव बना (रूप बदला) करता है और अपने इस रूप बदलनेमें वही वही पदार्थ उपादान कारण और अन्य पदार्थ निमित्त कारण हैं। कोई ईश्वर कदापि नहीं। जगत्में कार्य दो प्रकारके हैं एक तो ऐसे कि जिसका कर्ता है, जैसे घटका कर्ता कुम्भकार। दूसरे ऐसे कि जिनका कर्ता कोई नहीं है, जैसे मेघ वृष्टि घासती उत्पत्ति इत्यादि। अब इन दो प्रकारके कार्योंमेंसे घटादिकका कर्ता देखकर जिनका कर्ता नहीं दीखता है, उनका कर्ता ईश्वरको कल्पना करते हो सो आपकी इस कल्पनामें हेतु क्या है? यदि कहोगे कि कार्यपणा ही हेतु है तो यह बताइये कि यदि कार्य होय पर उसका कर्ता नहीं होय तो उसमें क्या बाधा आवेगी? यदि उसमें कोई बाधा नहीं आवेगी तो आपका हेतु 'शंकित व्यभिचारी' टहरा। क्योंकि जिन हेतुके साध्यके अभावमें रहनेपर किसी प्रकारकी बाधा नहीं आवे उसको शंकित व्यभिचारी कहते हैं। जैसे किसीके मित्रके चार पुत्र थे और चारों ही श्याम थे कुछ कानके पश्चात् उसके मित्र की भार्या पुनः गर्भवती हुई, तब वह मनुष्य कहने लगा कि मित्रकी भार्याके गर्भवाला पुत्र श्यामवर्ण होगा, क्योंकि वरु मित्रका पुत्र है, जो २ मित्रके पुत्र हैं, वे २ सब श्यामवर्ण हैं, गर्भवती भी मित्रका पुत्र है, इस लिये श्यामवर्ण होगी। परन्तु मित्रपुत्र यदि गौरवर्ण भी हो जाय तो उसमें कोई बाधक नहीं है। इस ही प्रकार यदि कार्य, कर्ताके बिना भी हो जाय तो उसमें बाधक कौन? न्याय शास्त्रका यह वाक्य है कि "अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारणभावः" अर्थात् कार्यकारणभाव और अन्वयव्यतिरेकभाव इन दोनों में गम्य गमक याने व्याप्य व्यापक संबंध है। जैसे अग्नि और धूम इनमें व्याप्य व्यापक संबंध है; अग्नि व्यापक है और धूम व्याप्य है। जहां धूम होयगा वहां अग्नि नियम करके होगी परन्तु जहां अग्नि है वहां धूम होय भी और नहीं भी होय। जैसे तप्त लोहेके गोलेमें अग्नि तो है परन्तु धूम नहीं है। भावार्थ कहनेका यह

है कि जहाँ व्याप्य होता है वहाँ व्यापक अवश्य होता है; परन्तु जहाँ व्यापक होता है, वहाँ व्याप्य होता भी है और नहीं भी होता है। सो यहाँ पर कार्य कारण भाव व्याप्य है और अन्वयव्यतिरेक भाव व्यापक है। अतः जहाँ कार्यकारणभाव होगा वहाँ अन्वयव्यतिरेक भाव अवश्य होगा; परन्तु जहाँ अन्वयव्यतिरेकभाव है, वहाँ कार्यकारणभाव होय भी और नहीं भी होय। कार्यके सद्भाव में कारण के सद्भावको अन्वय कहते हैं । जैसे जहाँ २ धूम होता है, वहाँ २ अग्नि अवश्य होती है। और कारण के अभावमें कार्यके अभाव की व्यतिरेक कहते हैं, जैसे जहाँ २ अग्नि नहीं है वहाँ २ धूम भी नहीं है। सो जो ईश्वर और लोक में कार्यकारणसंख्य है तो उनमें अन्वयव्यतिरेक अवश्य होना चाहिये। परन्तु ईश्वर का लोक के साथ व्यतिरेक सिद्ध नहीं होता। व्यतिरेक दो प्रकार का है एक कालव्यतिरेक दूसरा क्षेत्रव्यतिरेक। ईश्वरमें दोनों प्रकार के व्यतिरेकोंमें से एक भी सिद्ध नहीं होता क्षेत्रव्यतिरेक जय सिद्ध हो सकता है जब यह वाक्य सिद्ध हो जाय कि जहाँ २ ईश्वर नहीं है वहाँ २ लोक भी नहीं हैं परन्तु यह वाक्य सिद्ध नहीं हो सकता है क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापी कहा जाता है अतः ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है कि जहाँ ईश्वर नहीं होय; इसलिये क्षेत्रव्यतिरेक सिद्ध नहीं हो सकता। इसी प्रकार कालव्यतिरेक भी ईश्वर में सिद्ध नहीं होता; क्योंकि कालव्यतिरेक जय सिद्ध हो जब यह वाक्य सिद्ध होजाय कि जय जय ईश्वर नहीं है तब २ लोक भी नहीं है परन्तु यह वाक्य सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर नित्य कहा जाता है अतः कोई काल ही ऐसा नहीं है कि जिस समय ईश्वर नहीं होय; इसलिये ईश्वर में कालव्यतिरेक भी सिद्ध नहीं होसक्ता। और जय व्यतिरेक सिद्ध नहीं हुआ तो कार्यकारणभाव ईश्वर और लोकमें सिद्ध नहीं हो सकता और जय कार्यकारणभाव ही नहीं तो ईश्वर हम लोकका कर्ता है ऐसा किस प्रकार सिद्ध होसक्ता है ?॥

स्वामीजी—परमात्मा का स्वभाव मैंने श्रुतिके आधार पर क्रिया बतलाया है न कि सृष्टि रचना \* ईश्वर की शक्तिसे दी हुई क्रिया नित्य है। संयोग

\* स्वामी जी जो यह कहते हैं कि "परमात्माका स्वभाव मैंने श्रुति के आधार पर क्रिया बतलाया है न कि सृष्टि रचना" सो ठीक नहीं क्यों कि आपने श्रुति का कोई प्रमाण नहीं दिया। आपने जो पूर्व ही "स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च" कहा था सो श्रुति का नहीं वरन वह श्वेता श्वेतर उपनिषद् अध्याय छः का मन्त्र आठवां है और उसका पूरापाठ

और वियोग दो विरुद्ध क्रियाएं नहीं बरन् क्रियाके फल हैं । क्रिया के दो फल होते हैं १-संयोग, २-वियोग । एक गेंद पूर्व की फेंकी गई, परन्तु दीवार से लगकर फिर लौट आई । इस ही प्रकार जीवोंके कर्मोंके व्यवधान से संयोग और वियोग अर्थात् सृष्टि और प्रलय होते हैं । संयोग और वियोग गुण हैं, परन्तु गुण ४ प्रकारके होते हैं—( १ ) स्वाभाविक, ( २ ) नैमित्तिक, ( ३ ) उत्पादक, ( ४ ) पाकज । कर्त्ता की क्रिया से उत्पन्न होने वाला गुण पाकज होता है + न

“न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समस्याभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य शक्ति विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च ॥ ” है ॥ आप जो यह कहते हैं कि परमात्माका स्वभाव क्रिया है न कि सृष्टि रचना सो भी निश्चया है क्योंकि आर्य समाज के प्रवर्तक आपके गुरु स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज अपने सत्पार्थ प्रकाश के अष्टम समुत्तास में सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलयका विवेचन करते हुए पृष्ठ २२४ पर लिखते हैं कि “जैसे नेत्रका स्वाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत्की उत्पत्ति करके सब जीवोंको असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है । ” अब कहिये इस विषयमें पाठक आपको प्रमाणिक माने या आपके श्रीगुरुजी महाराजको ? ( प्रकाशक )

+ स्वभावसे दो विरोधी गुण नहीं हो सकते इस दोषसे अपने ईश्वर को बचानेके लिये चार प्रकारके गुण गिनाकर जो स्वामीजी महाराज “कर्त्ताकी क्रियासे उत्पन्न होने वाला गुण पाकज होता है” ऐसा कहकर दवे शब्दोंमें इस नुसारके संयोग और वियोग ( सृष्टि और प्रलय ) को ईश्वर की स्वाभाविक क्रियाके पाकज गुण कहते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि आप के श्रीगुरुजी महाराज अपने वेदान्त ध्वान्त निवारणम् पुस्तकके पृष्ठ सोलह पर संयोग और वियोगको स्वाभाविक गुण सिद्ध करते हुए लिखते हैं कि “जैसे मिट्टीमें मिलनेका गुण हानिसे घटादि पदार्थ बनने हैं बालुका से नहीं, सो मिट्टीमें मिलने और अलग होनेका गुण ही है, सो गुण सहज स्वभावसे है वैसे ईश्वरका सामर्थ्य जिससे यह जगत् बना है उसमें संयोग और वियोगात्मक गुण सहज ( स्वाभाविक ) ही है,, । हम समझते हैं कि पाठकगण आपकी अपेक्षा आपके गुरुजीको ही अधिक प्रामाणिक समझेंगे ।

( प्रकाशक )



कोई वस्तु उत्पन्न होती है न नष्ट । कारण से कार्यरूपमें आनेका नाम उत्पत्ति और कार्यका कारणमें लय होजानेका नाम नाश है । घास जड़ी बूटी आदि स्वयं उत्पन्न नहीं होतीं, परन्तु जिस प्रकार घड़ीके फनरमें बाबी देने से बाकी पुरजे चल उठते हैं इसही प्रकार इस सृष्टि रूपी घड़ीके सूर्यरूपी फनरमें ईश्वरकी शक्तिप्रदत्त क्रियासे मेघ बनता है, वर्षा होती है, घास आदि उगती हैं । ईश्वर में दो गुण हैं । ईश्वर दयालु है और न्यायकारी भी है, अतः क्रियाके दो फल हैं । सृष्टि दो प्रकारकी है एक न्यायकी सृष्टि, दूसरी दयाकी सृष्टि । दयाकी सृष्टिमें सूर्य, अग्नि, वायु जल आदि हैं, जो ईश्वर जीवों पर दया करके उनके कल्याणके लिये देता है और आँख, कान, धन आदि न्यायकी सृष्टि है जो ईश्वर न्याय करके जिस जीवके जैसे कर्म हैं उस की उसही प्रकार घटा बढ़ाकर देता है । परमात्मामें बितरेक नहीं, परमात्माके लिये यह नहीं कहा जा सकता “कि अमुक देश में है अमुकमें नहीं, अमुक कालमें था और अमुकमें नहीं न यही कि अमुक पदार्थ के होने से परमात्मा होता है और उसके नष्ट होजाने पर नष्ट हो जाता है ।

वादि गण केपरी जी—यदि परमात्मा में क्रिया स्वाभाविक है तो उस क्रिया के सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्व दो विरोधी फल कदापि नहीं हो सकते । गेंदका दृष्टान्त विषम है क्योंकि गेंद का लौट आना फेंकने वाले की क्रिया का फल नहीं बरन दीवान में टक्कर लगने के हेतु से हुआ । जिस प्रकार दृष्टान्त में गेंद का एक ओर फेंका जाना और उसका पुनः लौट आना एक क्रिया के फल नहीं बरन दो निमित्त ( मनुष्य की क्रिया और दीवाल के टक्कर लगने से ) जन्य हैं उसी प्रकार परमात्मा की क्रिया का एकही फल ( या तो सृष्टि कर्तृत्व या प्रलय कर्तृत्व ) होसकता है । अतः उसकी क्रिया में दोनों विरोधी गुण कदापि नहीं । परमाणुओंमें गति नैमित्तिक है अर्थात् उन्हें जैसे निमित्त मिलते हैं वैसी गति होती है और निमित्तों की विभिन्नता से संयोग वियोग न हो सकने की दोषापत्ति व्यर्थ है । परमाणु वस्तु होने से साकार है यदि मिट्टी में ईंट की शक्ति न होती तो वह आती कहां से क्योंकि अभाव से भाव कदापि नहीं हो सकता जैसे कि बालुका में घट नहीं है तो वह उससे बन भी नहीं सकता । कार्य की कारणसे व्यपत्ति है जो कि दो प्रकार का होता है एक चेतन्य और दूसरा जड़ । किसी किसी चेतन्य कर्ता में कार्य के पूर्व ही उसकी आकृति ज्ञान सम्भव है परन्तु सबमें

नहीं। जड़ कारण में कार्य की आकृति का ज्ञान होना सर्वथा असम्भव है। परन्तु जड़ कारण भी संसार में अनेक प्रकार के कार्य किया करते हैं। यदि जगत् साकार होने से ही जन्य है ऐसा मानते हो तो आपको अपने ईश्वर जीव और प्रकृति को भी जन्य मानना चाहिये क्योंकि वे भी सब साकार हैं इस अर्थ कि उन्होंने आकाशका कुछ न कुछ क्षेत्र घेरा है यदि उन्हें निराकार मानो तो वे आकाश कुसुम समान अवस्तु होंगे। परमाणु आकृतिवाले हैं क्योंकि यदि उनमें आकृति न होती तो उनसे बनी वस्तुओंमें आकृति कहाँसे आ जाती। जिस प्रकार कोई मनुष्य घड़ी के फनरमें चाबी भर देता है और उस से सारी घड़ी के पेष पुर्न चला करते हैं उसी प्रकार ईश्वर ने सृष्टि रूपी घड़ी के सूर्य रूपी फनर में चाबी भर दी है और उसी से मेघ बनता, वर्षा होती है तथा घास आदि होती है इसमें कौनसा हेतु है यदि कार्यत्व ही हेतु कहा जाय तो वह पूर्व ही कथित मित्र के पाँचवे गर्भस्थ पुत्र के श्याम वर्ण होने के समान शङ्कित व्यभिचारी है। जब तक ईश्वर का सृष्टि कर्तृत्व स्वयं असिद्ध है तब तक उसमें दया और न्यायकी सृष्टि कहना बन्ध्याके पुत्र का विवाह कल्पना करने के समान निरर्थक है। जब कि कार्य कारण भाव बिना व्यतिरेक सिद्ध हुए होता ही नहीं आप परमात्मा में व्यतिरेक का अभाव सिद्ध करते हैं तब परमात्मा और सृष्टिमें कार्य कारण भाव कैसे माना जाय अतः सृष्टि अनादि है।

स्वामी जी—पंडित जी ने अभी कहा था कि क्रियावान ही गति देस-कता है, अब यह कहना कि गेंद के लौटने की गति दीवार से उत्पन्न हुई बदती व्याघात है। जब क्रिया रहित पदार्थ से गति नहीं आ सकती तो दीवार से गति क्योंकर आई ईश्वर नित्य है उसकी क्रिया भी नित्य है संयोग और वियोग दो क्रियाएं नहीं मैं पूर्व बतला चुका हूँ कि संयोग और वियोग एक ही कृपा के दो फल हैं। एक ही पावर इज्जत से निकली हुई क्रिया जुदी जुदी मशीनों में जाकर जुदे जुदे काम करती है। कहीं काटती है कहीं जोड़ती है इसी ही प्रकार दैविक क्रिया एक है परन्तु जीवोंके कर्मोंके व्यवधान से होने वाली सृष्टि और प्रलयके कारण विरुद्ध फल वाली जान पड़ती है। जिन परमाणुओंका संयोग होगा उनके लिये यह आवश्यक ही है कि उनका वियोग भी हो, इस लिये सृष्टि के बाद प्रलय

और प्रलयके बाद सृष्टि होती चली आयी है । इन नहीं कहते कि सृष्टि कभी उत्पन्न हुई । सृष्टि ऐसी ही चली आयी है और ऐसी ही चली जायगी जैनिधोंके इस कथनसे सृष्टिकी उत्पत्ति सिद्ध होती है । सृष्टि सावयव पदार्थोंका समुदाय है । सावयव पदार्थोंकी छः अवस्थाएं प्रत्यक्षमें देखी जाती हैं । जायते वर्तुते विपरिणम्यते इत्यादि । प्रत्येक सावयव पदार्थ प्रथम उत्पन्न होता है अर्थात् कारण से कार्य रूपमें आता है, फिर बढ़ता है और फिर उसकी अवस्थामें परिवर्तन होता है । अर्थात् परिणमन होना तीसरा विकार है । जब सृष्टि परिणमन शील है तो इसकी पहिली दो अवस्थाएं भी अनिवार्य हैं । यह जन्यत्वसे रहित नहीं हो सकतीं । क्या आदी कोई ऐसा उदाहरण दे सकता है कि कोई पदार्थ परिणमन शील हो परन्तु उसका जन्यत्व न हो ?

वादिगजकेसीजी—क्रियावान् ही गति दे सकता है यह बहुत ठीक है । हमने यह कभी नहीं कहा कि गेंदके लौटनेकी गति दीवाल से उत्पन्न हुई । हमारा कहना यह था कि गेंदका लौट आना फेंकने वालेकी क्रियाका फल नहीं वरन् दीवालमें टक्कर लगने ( गेंदकी गतिकी रोकने ) की क्रियासे हुआ । वेदान्त सूत्रालुगार ईश्वरकी स्वाभाविक क्रियामें सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्वके दो विरोधी गुण कदापि नहीं रह सकते ऐसा मैं कई बार कह चुका हूँ पर आप उसका समाधान नहीं करते । आपकी एीम शक्तिका दूष्टान्त विषम है क्योंकि जैसे एक लोहेकी सभ्य ओरोंसे समान शक्ति रखने वाले चुम्बक पट्टपर खींचे तो वह लोहा टससे मस नहीं हो सकता । उसी प्रकार जब आर्य्यममाजका शुद्ध अखण्ड एक रस, सर्व व्यापी और स्वाभाविक क्रिया गुण वाला परमात्मा अपने प्रत्येक प्रदेशसे एकसी हरकत देता ( क्रिया उत्पन्न करता ) है तो कोई भी परमाणु टससे मस नहीं हो सकता और इस प्रकार सब गुड़ मोवर हो जानेसे संयोग और वियोग परमाणुओंमें न हो सकनेसे न तो कोई चीज बन ही सकती है और न बिगड़ ही । यदि दुर्जन तोष न्यायसे थोड़ी देरके अर्थ परमात्माकी क्रियासे ही परमाणुओंमें संयोग वियोग होना मानकर पदार्थोंका बनना बिगड़ना माना जाय तो चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षोंके प्रलय कालमें ( जो कि सृष्टिकालके समान ही संख्यामें है ) प्रकृतिके परमाणु कैसे सूक्ष्म ( कारण ) अवस्थामें बेकार पड़े रहें । इत्यादि अनेक दूषणोंके आनेसे शुद्ध ब्रह्मकी स्वाभाविक क्रियामें दो विरोधी परिण-

मन (गुणकी पटपोंप) कैसे रह सकती हैं। इस संसारको ईश्वर कृत सिद्ध करनेके अर्थ किसी समयमें इसका अभाव (कारण रूपमें होना) सिद्ध करना होगा क्योंकि जब तक संसार कार्य्य मिट्टु न हो जाय तब तक इसका कर्ता कोई ईश्वर कदापि नामानहीं जा सकती और कार्य्यका लक्षण "अभूत भावित्वं कार्य्यत्वम्" है। सावयव शब्दसे दो अर्थ हैं एक तो अवयव सहित और दूसरा अवयव जन्य यदि आपको अवयव सहित उसका अर्थ इष्ट है तब तो आपका ईश्वर अवयव सहित (अनन्त प्रदेशी) होने पर भी जन्यत्वसे मुक्त है। यदि आपको अवयव जन्य उसका अर्थ इष्ट है तब इस जगत्को जन्यत्वसे युक्त मिट्टु करने के अर्थ उसका किसी समयमें भिन्न भिन्न अवयव (परमाणु) होना सिद्ध करिये जोव परिष्कृतशील होने पर भी जन्यत्व दोषसे मुक्त है। शोक कि हमारे आक्षेपोंका उत्तर न देने हुए आप विषयसे विषयान्तरमें जाते हैं ॥

स्वामी जी—मैं विषयान्तरमें नहीं जाता। आपने सृष्टिको उत्पन्न होने के विषयमें कहा था उसका मैंने दलीलसे उत्तर दिया है। दलील देना, दूष्टान्त देना, और मांगना विषयान्तर नहीं। सृष्टिवनी यह आर्यसमाजका सिद्धान्त नहीं। आर्यसमाज सृष्टिको प्रवादमें अनादि मानता है और अनादि पदार्थ बिना हेतुके नहीं होते। जैसे सूर्यके बिना रात दिन नहीं होते इस ही प्रकार सृष्टि और प्रलयका हेतु ईश्वर है। सृष्टि और प्रलय यह स्वभावमें विच्छेद नहीं, परन्तु यह क्रियाके दो फल हैं जो जीवोंके कर्मोंके व्यवधानसे होते हैं। सूर्यकी एक क्रिया गर्मी देना है, परन्तु जिसका मिजाज गर्म है उस को उससे दुःख होता है। जिसका ठण्डा है उसको सुख मालूम होता है ॥

वादिगजकेमरीजी—जब कि आर्यसमाज सृष्टिका बनना नहीं मानता तो वह अवश्य उसे सदैवसे होना मानता होगा और ऐसा माननेसे इस को कोई विवाद नहीं। 'अनादि पदार्थ बिना हेतुके नहीं होते, यह कथन आप का बड़ा ही हास्यास्पद है। बतलाइये कि आपके ईश्वर, जीव और प्रकृति (जो कि तीनों अनादि पदार्थ हैं) का हेतु क्या २ अनादि पदार्थ और हेतु 'मेरी मां और बाँक' कहनेके समान है। जबतक कि इस संसारका किसी समयमें अभाव, आपके ईश्वरकी सत्ता और उसमें सृष्टि कर्तृत्वकी शक्ति सिद्ध न हो तबतक इस संसारके सृष्टि और प्रलयका हेतु ईश्वर है ऐसा कहना बन्ध्याके पुत्रके पुत्रका बिराहोत्सव मनानेके समान अपोलकल्पनामात्र है।

सृष्टि और प्रलय यह परस्पर विरोधी होनेके कारण ईश्वरकी क्रियाके फल नहीं क्योंकि ईश्वर स्वभावतः एक ही प्रकारकी क्रियाका कर्ता हो सकता है । यदि ईश्वरकी क्रियामें सर्वजीव अपने कर्मोंके व्यवधानसे अन्यथा ( विकट ) परिचयन कर सकते हैं तो जीवोंके कर्मोंका व्यवधान ईश्वरकी क्रियासे प्रबल है ऐसा मानना पड़ेगा ॥

स्वामी जी—मनुष्य पदार्थोंकी गतिको बदलता है रोकता नहीं । सूर्य की किरणें प्रति दिवस निकलती हैं कोई उनको रोक नहीं सकता । पानीके तेज बहावको मनुष्य पत्थर आदि लगाकर बदल देता है । क्या कोई कह सकता है कि किसीने पानीके बहावको रोक दिया । बदलना भी तो क्रिया है । जीव ईश्वरकी प्रजा है न कि प्रतिपक्षी । पाप पुण्य करती हुई प्रजा राजाकी शत्रु नहीं होती । प्रलयमें भी एक क्षण क्रिया स्थिर नहीं रहती ।

वादि गज केसरी जी—जिस प्रकार पानीका स्वभाव ढालू जमीनको ओर बहनेका होता है और यदि उसके मार्गमें कोई प्रबल प्रतिबन्धक न आवे तो बराबर वह जिस ओर नीची जमीन पाता है उधर बहता ही चला जाता है । पानीका बहाव भी अपने प्रतिबन्धकको ( यदि वह उसके बहाव की तेजीसे निबल है ) कभी कभी नष्टकर बराबर ढालू जमीनकी ओर बहता रहता है । आपका पानीके बहावका दृष्टान्त आपके पक्षका पोषण नहीं धरन विघातक होकर हमारे पक्षको ही पुष्ट कर रहा है । क्योंकि निम्न प्रकार आपके दृष्टान्तमें पानीका स्वभाव बहनेका है और उसका फल ढालू जमीनकी ओर बहना है उभी प्रकार आपके दार्ष्टान्तमें ईश्वरका स्वभाव क्रिया और उसका फल सृष्टि कर्तृत्व है । जिस प्रकार दृष्टान्तमें कोई मनुष्य पत्थर आदि लगाकर या उस ओरकी ढालू जमीनमें ही कोई चटान, टीला, पर्वतादि प्रबल प्रतिबन्धक आकर पानीके उस बहावको दूमरी ओर बदल देते हैं उसी प्रकार दार्ष्टान्तमें जीवोंके कर्मोंके व्यवधान ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्वको दूसरी ओर प्रलय कर्तृत्व रूपमें बदल देते हैं । जिस प्रकार दृष्टान्तमें पानीके बहावकी तेजीसे प्रबल प्रतिबन्धक ही पानीकी गतिको बदल सकते हैं उसी प्रकार दार्ष्टान्तमें ईश्वरके सृष्टि कर्तृत्व रूप क्रियाके फलको प्रबल प्रतिबन्धक रूप जीवोंके कर्मोंके व्यवधान प्रलय कर्तृत्व रूप क्रियाके फलमें बदल देते हैं । अतः हमने जो पूर्व ही यह दोष दिया था कि जीवोंके कर्मोंका व्यवधान ईश्वर की क्रियासे प्रबल है वह ज्यों का त्यों कायम रहा और आपके दृष्टान्तसे भी

हमारे उसी दोषका समर्थन हुआ। ऐसा होनेमें आप जो ईश्वरके स्वाभाविक क्रियाके दो संयोग और वियोग फल बनजाते थे वे दोनों न रहे केवला एक ही रहा चाहे सृष्टि कर्तृत्व मानिये चाहे प्रलय कर्तृत्व \* : “बदननर भी

\* स्वामी दर्शनानन्द जी के गुप्त स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराजने ईश्वरकी विज्ञान बल और क्रियाका प्रयोजन ( फल ) जगत्की उत्पत्ति माना है और उसकी सिद्धिमें आप अपने सत्पार्थ प्रकाशके २२४ पृष्ठपर लिखते हैं कि “जो तुमसे कोई पूछे कि आत्मके होनेमें क्या प्रयोजन है ? तुम यही कहोगे देखना। तो जो ईश्वरमें जगत्की रचना करनेका विज्ञान बल और क्रिया है उसका क्या प्रयोजन बिना जगत्की उत्पत्ति करनेके ? दूसरा कुछ भी न कह सकोगे और परमात्माके न्याय धारण दया आदि गुण भी तभी सार्थक हो सकने हैं जब जगत्की बनावे” यद्यपि आप आगेकी लाइनमें “उसका अनन्त साजसज्ज जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय और व्यवस्था करनेमें ही सफल है” ऐसा लिखकर स्थिति प्रलय और व्यवस्थाको भी ईश्वरके विज्ञान, बल और क्रियाका फल मानते हैं परन्तु इनमें से स्वाभाविक आप केवल सृष्टि कर्तृत्वको ही मानते हैं क्योंकि उसके आगे ही आप कहते हैं कि “जो नेत्रका स्वाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वरका स्वाभाविक गुण जगत्की उत्पत्ति करके सब जीवोंको असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है”। जब सृष्टि कर्तृत्वस्वाभाविक रहा तब उसका उल्टा प्रलय कर्तृत्व वैभाविक स्वतः सिद्ध है। वैभाविक पर निमित्त अन्य होता है अतः प्रलयमें कारण या तो जीवों के कर्मोंका व्यवधान ( जैसा कि स्वामी दर्शनानन्द जी कहते हैं ) होगा या स्वामी दयानन्द जी सरस्वतीके मतानुसार सृष्टिका सदैव तक स्थिर न रह सकना। दोनों ही हेतु पर्याप्त नहीं क्योंकि जीवोंके कर्मोंका यह फल हो कि वो चार अरब वत्तीस करोड़ वर्ष तक ( जो कि सृष्टि कालके समान ही संख्यामें हैं ) सुषुप्ति अवस्थामें ( ईश्वरकी पकड़ी हवालातमें उसके न्याय की प्रतिष्ठा करते हुए ) निष्क्रिय रहै और ईश्वर उनके कर्मोंके अनुसार उनको भला बुरा फल देनेका अपना स्वाभाविक कार्य बन्द रखे यह सम्भव नहीं। द्वितीय यदि सृष्टि सदैव तक स्थिर नहीं रह सकती तो इस से ईश्वरकी क्रियाका कच्चापन सिद्ध होता है और यह स्वामीजी के मतानुसार ही नित्य पदार्थके गुण कर्म स्वभाव नित्य होनेके विरुद्ध है और

क्रिया है" इस बातको हम मानते हैं पर यह क्रिया किसकी है ईश्वरकी या जीवकी ईश्वरकी तो है नहीं क्योंकि वह एक रस होनेसे अपनी क्रिया बदलता नहीं। तब वह अवश्य जीवकी है और वही आपके कथनानुसार ईश्वरसे प्रबल होनेके कारण उसकी क्रियाको बदल देता है। जीव ईश्वरकी प्रज्ञा है यह तो आप तब कहिये जब कि उसका अस्तित्व और सृष्टि कर्तृत्व सिद्ध हो जाय। जब कि ईश्वर और उसका सृष्टि कर्तृत्वादि ही विवाद प्रस्त है तब आप ऐसा कैसे कह सकते हैं? यदि दुर्जन तोष न्यायसे आपकी प्रलय थोड़ी देरको मान भी ली जाय तो जब प्रलय हो चुकी (प्रत्येक परमाणु कारण अवस्थामें होकर भिन्न भिन्न हो गये) तो जब तक सृष्टिकालका समय न आवे तब तक ईश्वरकी स्वाभाविक क्रिया क्या कार्य किया करती है? यह बतलाइये।

स्वामीजी—सत्यके लिये दृष्टान्त होता है। जीवका स्वाभाविक ज्ञान नित्य है। सुषुप्तिमें ज्ञान कहां चला जाता है? न सुषुप्तिमें क्रिया ही नष्ट होती है। सुषुप्तिमें क्रिया अन्दरूनी रहती है, जाग्रतमें बाहरी। परमाणु प्रलयमें टूटते हैं। दीवार आदिकमें परमाणु प्रत्यक्षमें टूटते रहते हैं स्वभाव रूपान्तर होना है। रूपान्तर क्रिया बिना नहीं हो सकता। सब पदार्थोंमें क्रिया (तबदीली) होती रहती है। बनना बिगड़ना दोनों स्वभाव नहीं हैं। जीवात्मा दिनमें सज्जान रहता है रात्रिमें ज्ञान रहित, परन्तु यह स्व-

इससे ईश्वर अल्प शक्ति आदि सिद्ध होता है। यदि थोड़ी देरको ऐसा ही मानलो कि यह ईश्वरकी शक्तिसे बाहर है कि वह जगत्को सदैवके अर्थकायम रख सके तो क्या जगत्के नाश होनेके द्वितीय क्षणमें ही उसे फिर न रचना प्रारम्भ कर देने चाहिये? पर वह चार अरब वत्तीस करोड़ वर्ष तक क्यों चुपचाप बैठा रहता है? ऐसा करनेमें क्या उसकी क्रिया उस मूर्ख राजाके समान नहीं है जो कि अपने जेलके गिरजाने पर उसको उतने काल तक बनाता नहीं जितने काल तक कि जेल प्रथम स्थिर रहा था। यदि यह कहो कि जैसे रात्रि और दिवश समकालीन प्रायः होते हैं वैसे ही सृष्टि और प्रलय समकालीन हैं पर ऐसा मानना भी असङ्गत है क्योंकि रात्रि और दिवशका कारण सूर्यका किसी क्षेत्रमें उदयास्त है अतः जब ईश्वर सदैव सर्वत्र एक रस अखण्ड व्यापक है तब प्रलयादि कैसे! इत्यादि अनेक दूषणोंसे दूषित यह पक्ष सर्वथा अमान्य है ॥ (प्रकाशक)

भावमें भेद कहाता है। रोगनी कांचके रंगों के समान बदलती दिखलाई देती है वह रोगनीका विकार नहीं।

वादि गज केशरी जी—यद्यपि ज्ञान जीवका स्वाभाविक गुण है परन्तु संसारावस्थामें वह जीवकी अशुद्धताके कारण कर्म मलसे आच्छादित होकर विभाव रूप परिणमता रहता है। सुषुप्ति अवस्थामें भी ज्ञान जीवमें भौजद है पर निद्रा कर्मसे आवृत होनेके कारण वह जीवकी जागृत अवस्था के समान अपना कार्य सम्पादन नहीं कर सकता। आपका यह दृष्टान्त ईश्वरमें नहीं घटता क्योंकि अशुद्ध जीवमें तो पर निमित्त से अन्य भाति हो भी सकता है पर आपके शुद्ध एकरम अखण्ड ईश्वरकी क्रियामें विरोधी फल कदापि नहीं हो सकता। जब कि क्रिया आप अपने ईश्वरका स्वभाव मानते हैं और वह प्रलयमें भी होती है तथा उस क्रिया के संयोग और वियोग ये दो फल आप कहते हैं तो बतनाइये कि प्रलय कालमें आपके ईश्वरकी स्वाभाविक क्रियाका क्या फल होता है? संयोग और वियोग तो आप मान नहीं सकते क्योंकि जब प्रलय अवस्थामें प्रकृतिका प्रत्येक परमाणु भिन्न भिन्न कारण अवस्था में निष्क्रिय पड़ा है तब उसमें संयोग तो होता नहीं क्योंकि यदि संयोग मानों तो प्रकृति कारण अवस्थामें न होकर कार्य्य अवस्था में हो जायगी और वियोग भी नहीं होता क्योंकि जब प्रथम ही प्रलय होनेके समय प्रत्येक परमाणु कारण अवस्थामें होकर भिन्न भिन्न हो गया है तो अब वियोग काहेका होगा? जब ऐसा है तब क्या प्रलयावस्थामें आपके ईश्वरकी क्रिया निष्फल हो जाती है? हम मानते हैं कि इस संसारकी प्रत्येक वस्तु परिणामन शील है और वह रूपान्तर हुआ करती है तथा रूपान्तर बिना क्रिया और परिणाम या केवल परिणाम नहीं हो सकता और समस्त पदार्थोंमें रूपान्तर होने में क्रिया और परिणाम या केवल परिणाम बराबर होता रहता है। पर इस से यह कैसे सिद्ध होता है कि उस क्रिया का कर्ता ईश्वर है या उस में ईश्वर का निमित्त है? बतना बिगड़ना दोनों एकसे नहीं इसी अर्थ वह ईश्वर की एकही क्रिया के फल कदापि नहीं हो सकते, जीवात्मा दिन में सज्जान रहता है रात्रि में ज्ञान रहित, ऐसा कहना अत्यन्त हास्यास्पद है क्योंकि क्या रात्रि में जीवात्मा के ज्ञान का अभाव होजाता है? स्वभाव में भेद कभी नहीं होता और यदि होता है तो वह स्वभाव नहीं वरन विभाव है। आपके रोगनी व कांच के रंगों के दृष्टान्तसे यह सिद्ध होता है कि



मलय होती नहीं वरन् यों ही जीव के कर्मों के व्यवधान से मालूम होती है । हमारे आक्षेपोंका उत्तर तो आप देते ही नहीं ।

स्वामीजी—जीवमें कर्म आदिकी वजहसे अशुद्धि आजाती है । अन्यथा—

१—जीवमें अशुद्धि कैसे आई ?

२—क्रियामें फल कैसे आये ?

३—परिणाम अनादि कैसे ?

अग्निमें गर्मी व पानीमें सर्दी स्वाभाविक है । कार्य अनित्य होता है, क्रिया अनित्य नहीं । घड़ीका चलना कर्ता प्रदत्त स्वभाव है । परिणामन आप सबका बतलाते हैं, परन्तु परिणामन तीमरा विकार है । परिणामनशील पदार्थोंके जायते और बढ़ते दो कारण होते हैं । जब परिणामन शील मानेंगे तो जायते और बढ़ते भी मानना पड़ेगा । उत्पत्ति गून्धमें परिणामन नहीं । क्रिया की शक्ति नहीं बदलती, कार्य बदलता है । आप एक उदाहरण दो जिनमें परिणामन हुआ हो और उन पदार्थका उत्पन्न होना सिद्ध नहीं हो ।

वादि गजकेसरी जी—जीवमें अशुद्धताका कारण उसके चारित्र गुणमें कर्म मलके अनादि सम्बन्धमें रागद्वेष रूप विभाव है । जब कोई क्रिया की जाती है तो उसका कुछ न कुछ परिणाम अवश्य होता है और उनी परिणाम का नाम फल है । परिणामन जब अनादि है तब उसका परिणाम भी अनादि ही है । जिन प्रकार घड़ी किसी घड़ीमाजकी चनायी हुई चनती है उसी प्रकार यह सारा संसार ईश्वर प्रदत्त क्रियाके बलमें चल रहा है इनमें क्या हेतु है ? यदि इसमें घट पटादिका कर्ता कुनाल कुविन्दादि चैतन्य पुरुषोंकी देखकर जिनकी बनते नहीं देखा ऐसे मूर्ख चन्द्रादिका कर्ता कोई चैतन्य ईश्वर कल्पना किया जाय तो यह कल्पना पूर्व ही कथित चार श्यामवर्ण पुत्रों के पिताके पांचवें गर्भस्थ पुत्रकी भी श्यामवर्ण सिद्ध करनेके समान शङ्कित व्यभिचारी दोषसे दूषित है । समस्त परिणामन शील पदार्थोंमें जायते और बढ़ते होनेका नियम नहीं । आपके प्रकृति के परमाणु परिणामन शील होने पर भी जायते और बढ़ते दोषसे रहित हैं । यदि क्रिया एकसी ही रहै और कोई प्रबल प्रतिबन्धक न आवे तो उससे ( जैसा कि पूर्व ही सिद्ध किया जा चुका है ) कार्यका रूप बदल नहीं सकता । शोक कि आप हमारे आक्षेपों का समाधान और प्रश्नका उत्तर न देकर विषयसे विषयान्तर होते फिरते हैं ।

स्वामी जी—क्रियाका फल संयोग वियोग दोनों हैं । संयोग सृष्टि और

वियोग प्रलय । स्वाभाविक क्रिया नियम पूर्वक होती है और वैभाविक क्रिया इच्छा पूर्वक होती है । सूर्य आदि न दयाकी सृष्टि हैं वस्तु आदिक न्यायकी । दृष्टान्तका मांगना विषयान्तर नहीं ।

वादि गजकेसरी जी—क्रियाका फल संयोग और वियोग दोनों कदापि नहीं हो सकते । यदि दुर्जन लोप न्यायसे थोड़ी देरको आपके ईश्वरकी स्वाभाविक क्रियाके फल दोनों संयोग और वियोग माने जायें तो यह संयोग और वियोग परमाणुओंके वर्तमान सतयमें भी समस्त पदार्थोंमें हो रहे हैं तो इसको सृष्टि और प्रलय क्यों नहीं कहते ! इस बातका क्या प्रमाण है कि कोई समय ऐसा भी आता है कि जब समस्त पदार्थोंके परमाणुओंका वियोग ही वियोग होता है संयोग कदापि नहीं ? यदि थोड़ी देरको आपकी प्रलय भी मान ली जाय तो उस प्रलय कालमें जब कि ईश्वरकी स्वाभाविक क्रिया बराबर होती रहती है तो वह किन परमाणुओंका ( प्रलयकाल के चार अथवा वर्त्तमान करोड़ वर्षोंके समयमें ) संयोग और वियोग करती है क्योंकि यदि संयोग करना भी उस कालमें माना तो फिर परमाणु कारण अवस्थामें नहीं रह सकते और वियोग तो हो ही नहीं सकता क्योंकि जब परमाणु स्वयं कारण अवस्थामें भिन्न भिन्न हैं तो वियोग किनका और किनसे होगा ? सृष्टि कालके प्रारम्भ होनेपर भी आपके ईश्वरकी क्रियासे परमाणु परस्पर भिन्न नहीं सकते क्योंकि एक ही नाहेको जब सद्य समान शक्ति वाले शुम्भक पत्थर सब ओरसे आपसमें खींचे तो वह अपने स्थानसे हिल नहीं सकता इसी प्रकार जब कि आपके कल्पित प्रलय कालमें आपका अखण्ड एक रस सर्व व्यापी ईश्वर एक ही क्रिया दे रहा है तो कोई भी परमाणु अपने स्थानसे हिल नहीं सकता अतः उनमें संयोग न हो सकनेसे किसी वस्तु का घनना असम्भव ही है । यदि आपके ईश्वरकी स्वाभाविक क्रियासे ही परमाणुओंमें मिलन विखुरन माना जाय तो कोई भी वस्तु न तो घन सकती है और न विगड़ ही क्योंकि ईश्वरकी सद्य ओरसे एक ही क्रियाके कारण परमाणु अपने स्थानसे टससे मग नहीं हो सकते \* । थोड़ी देर को मान लीये

\* इसी दोष से अपने ईश्वरको बचाने के अर्थ स्वामी दर्शनानन्द जी के गुरु जी महाराजने अपने सत्यार्थप्रकाश के २२५ वें पृष्ठ पर लिखा है कि "जब वह ( परमात्मा ) प्रकृति से भी सूक्ष्म और उनमें व्यापक है तभी उनको पकड़कर जगदाकार करदेता है" । परन्तु विचारने का विषय है कि

पर भी जैसे लोहा चुम्बक को खींचता है, हटाता नहीं। यदि कोई अधिक शक्ति वाला हटा दे तो वह उसका हटाना कार्य कहा जा सकता है न कि खींचने वालेका अतः संयोग और वियोग ईश्वरकी क्रियाके दोनों फल नहीं केवल एक ही माना जा सकता है। हमारा प्रश्न आप पर ज्योंका त्यों अभी रुड़ा है।

स्वामीजी—वाह ! उदाहरण दिया आपने चुम्बकका। उदाहरण गतिका नहीं मांगा गया, उदाहरण हम बातका मांगा गया है कि कोई वस्तु ऐसी नहीं जो अन्य न हो और परिणामन शीन हो। चुम्बक इसका उदाहरण परमात्मा की स्वाभाविक एक रस अखण्ड क्रियामें यह कदापि नहीं हो सकता कि किन्हीं परमाणुओं को किन्हीं से निलावे और किन्हींको किन्हीं से क्योंकि ऐसा इच्छा पूर्वक पदार्थ बनानेमें ही होसकता है और ऐसा करने में भी उसको अपनी क्रिया में न्यूनाधिक्य करना होगा जिससे उसके अखण्ड एक रस शुद्ध आदि होने में बाधा पहुंचेगी। यदि यह कहो कि इसी दोष के निवारण करने के अर्थ तो स्वामी जी इसी पृष्ठपर इन लाइनोंसे पूर्व यह लिख गये हैं कि “जो परमेश्वरभौतिक इन्द्रिय गोलक हस्त पादादि अवयवोंसे रहित है परन्तु उसकी अनन्त शक्ति बल पराक्रम है उनसे सब काम करता है जो जीवां और प्रकृति से कभी न हो सकते”। पान्तु विचारणीय विषय है कि जब स्वामी जी इससे पूर्वके पृष्ठ २२४ पर सर्व शक्तिमान शब्दकी व्याख्यामें कहते हैं कि “क्या सर्व शक्तिमान वह कहाता है कि जो असम्भव बातको भी कर सके ! जो कोई असम्भव बात अर्थात् जैसा कारणके बिना कार्य को कर सकता है तो बिना कारण दूसरे ईश्वरकी उत्पत्तिकर और स्वयं सृष्ट्युको प्राप्त, जड़, दुःखी अन्यायकारी, अपवित्र, और कुकर्म आदि हो सकता है वा नहीं ! जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसा अग्नि उष्ण, जल शीतल, और पृथिव्यादि सब जड़ोंको विपरीत गुणवाले ईश्वर भी नहीं कर सकता और ईश्वरके नियम सत्य और पूरे हैं इसनिये परिवर्तन नहीं कर सकता” अतः स्वतः भिदु है कि ईश्वर अपनी स्वाभाविक अखण्ड एक रस क्रियाको न्यूनाधिक्य करके परमाणुओंमें परस्पर संयोग नहीं करा सकता। जो ही ईश्वर की क्रियामें सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्व कदापि बन नहीं सकते। ( प्रकाशक )

नहीं। परिणामन नित्य पदार्थोंमें होता ही नहीं पानीकी गतिको पतथर रोकता नहीं अतः पतथर बलवान् नहीं हो सकता। कोई पदार्थ अन्य न हो और परिणामन शील हो इसका एक उदाहरण दो।

वादि गजकेसरी जी—सुम्बकका उदाहरण इस अर्थ दिया गया है कि जिस पदार्थका जो स्वभाव है उससे बिरुद्ध क्रिया उसमें हो नहीं सकती। यदि हो तो उसका निमित्त वह पदार्थ नहीं कोई अन्य ही है ऐसा समझना चाहिये। पूर्व ही आपके प्रकृति परमाणुओंका उदाहरण देकर यह सिद्ध किया जा चुका है कि वे परिणामन शील होने पर अन्यत्वसे रहित हैं। यह सामना ठीक नहीं कि नित्य पदार्थोंमें परिणामन होता ही नहीं। परिणामन तो आपके ईश्वरमें भी होता है क्योंकि वह कभी सृष्टिको बनाता और कभी विगाड़ता है। इसारा आक्षेप अभी वही बना जाता है कि यदि ईश्वर सब ओरोंसे अपनी क्रिया प्रलयकालमें समानता से देता है तब तो कोई परमाणु मिल नहीं सकते। यदि ऐसा मानों कि ईश्वर एक ओरसे ही अपनी क्रिया देता है तो भी वह मिल न सकेंगे बरन एक ही दिशामें बराबर दौड़ते चले जावेंगे ॥

स्वामी जी-ईश्वर सर्वव्यापक है। सब पदार्थ उसके अन्दर हैं। अन्दरके पदार्थोंमें दिशाभेद नहीं। एक ओरसे हरकत नहीं दी जा सकती। रूपान्तर प्रतिपत्ति=परिणाम, अवयवान्तर प्रतिपत्ति=विकार। प्रकृति अवस्था है, द्रव्य नहीं \*। ईश्वरमें रूप नहीं अतः रूपान्तर नहीं।

\* स्वामी दर्शनानन्द जी प्रकृतिको द्रव्य न मानकर एक अवस्था मानते हैं। परन्तु विचारने का विषय है कि अवस्था किसी द्रव्यकी ही हुआ करती है अतः यह प्रकृति किस द्रव्यकी अवस्था है। जो यह कहो कि प्रकृति सत, रज, तम इन तीन द्रव्यों की अवस्था है और सत, रज, तम ये तीनों द्रव्य है संयोग, विभाग, लघुत्व, चलत्व गुरुत्व, दि धर्मवाले होनेसे सो ठीक नहीं क्योंकि वैशेषिकने द्रव्योंकी गुणनामें इनको स्थान नहीं दिया बरन इसके बिरुद्ध इनको गुण ही माना है और स्वयं स्वामीजी अपने सांख्य दर्शन भाष्यमें सांख्यके ६१ वें सूत्र “ सत्त्वराजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः इत्यादि” के भाष्य में “सत्त्वगुणप्रकाश करनेवाला रजोगुण न प्रकाश और न आवरण करने वाला तमोगुण आवरण करने वाला जब यह तीनों गुण समान रहते हैं उस दशा का नाम प्रकृति

वादि नञकैवरी जी—अब कि आपका ईश्वर सर्व व्यापक, एक रस और अखण्ड है और उसके प्रत्येक प्रदेशोंमें एकसी स्वाभाविक क्रिया होती है तब पूर्व कथनानुसार कोई परमाणु अपने स्थानसे हिल नहीं सकता । यदि एक ओरसे ही क्रिया होना मानों तो यह स्वभाव, एक रस और अखण्ड आदि ईश्वरके गुणोंसे विकट है और आपके पक्ष का समर्थन नहीं करता क्योंकि ऐसा होनेसे सब परमाणु एक दिशा विशेष में ही दौड़ते चने जावेंगे और उनका संयोग न हो सकेगा । यदि एक दिशासे दौड़ाना और दूसरी दिशा से परमाणु का रोकना मानों तो ईश्वर एक रस और अखण्ड ( अपने समस्त प्रदेशोंमें एक सी क्रिया न होनेके कारण ) नहीं रहता । जो आप यह कहते हैं कि अन्तरके पदार्थोंमें दिशा भेद नहीं सो अनुचित है क्योंकि जब आप ईश्वरको सर्व व्यापक और सब पदार्थ उनके अन्तः मानते हैं तो दिशा भेद किसी भी पदार्थमें न होना चाहिये फिर आपके वैशेषिकने दिशाको द्रव्य क्यों माना ? + अब एक ओरसे हाकत नहीं दी जा सकती और वह सब ओरसे एकमी दी जाती है तो कोई वस्तु बन नहीं सकती । जो आप ईश्वर में रूप न मानकर परिणाम नहीं मानते सो भी ठीक नहीं क्योंकि यदि ईश्वरका रूप ( आकार ) न माना जावे तो वह खर विषाणवत अवस्तु ही ठहरेगा ।

है “ऐसा लिखते हुए मत, रज, तमको गुण सिद्ध करते हैं और वैशेषिक अपने अध्याय १ आह्निक १ सूत्र १६ में गुण का लक्षण “द्रव्याभ्यगुणवान् संयोग विभागोऽवधारण मनपक्ष इति गुणलक्षणम्” को द्रव्यके आश्रय रहे अन्य गुणका धारण न करे संयोग और विभागमें कारण न हो और एक दूसरे की अपेक्षा न करे करते हैं । मालूम नहीं कि स्वामीजी के ये तीनों गुण किस द्रव्यके आश्रय हैं और प्रकृति द्रव्य गुण और पर्यायमें क्या है ? यदि द्रव्य तो उसको वैशेषिकने द्रव्यों की संख्यामें न रखकर गुण क्यों कहा, यदि गुण या पर्याय ( अवस्था ) तो किस द्रव्यकी ! इत्यादि निर्णय कुछ सी नहीं होता ।

( प्रकाशक )

+ एचिठ्यापस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि । वैशेषिक दर्शन अध्याय १ आह्निक १ सूत्र ५ । ( अर्थात् ) एषिणी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये सब द्रव्य है । ( प्रकाशक )

स्वामीजी—अन्दरकी क्रियाके लिये यह नियम नहीं है। जड़मके भरने के लिये किसी इन्द्रियकी आवश्यकता नहीं। पेटमें भण है परन्तु खदू नहीं मालूम होती। परमात्मा विभु है उसमें तरफ ( दिशा ) का भेद नहीं हो सकता। यह दीप परिच्छिन्नमें हो सकता है। ईश्वर आपने परिणामी खतलाया था, अब अखंड खतलाया। परिणामीकी शक्ति खदूनी खदू होगया, अखंड कहाँ रहा। अखंडकी यदि परिणामी कहाँ तो आप ईश्वरके स्वरूपको ही नहीं समझे। स्वरूपको समझे बिना उसके गुणका खयाल किन प्रकार हो सकता है। जब ईश्वरको अखंड खतलाते हो तो अन्य पदार्थके विषयमें नांगे हुए उदाहरणमें उसका उदाहरण विषय है।

बादिगजकेपरी जी—आपके केवल इतना कह देनेसे कि 'अन्दरकी क्रियाके लिये यह नियम नहीं है। जड़मके भरनेके लिये किसी इन्द्रियकी आवश्यकता नहीं। पेटमें भण है परन्तु खदू नहीं मालूम होती', हमारा यह पक्ष कि ईश्वरकी एक रस अखंड क्रियासे कोई परमाणु उससे भण नहीं हो सकता और एक तरफसे क्रिया देनेसे सब परमाणु एकही ओर दौड़ते चले जावेंगे और एक ओर इरकत देने और दूरी ओर रोकनेसे ईश्वरकी क्रिया एक रस न रहैगी कैसे खण्डित होता है सो आप ही जानते होंगे क्योंकि जब स्वभाव एकसा है क्रिया भी एकसा ही होनी चाहिये और अन्दर की क्रियामें भी विपरीतता नहीं हो सकती। परमात्माको विभु माननेपर भी भिन्न भिन्न परमाणुओंमें परस्पर दिशा भेद अवश्य मानना पड़ेगा, चाहे आप प्रलय कालमें दिशाओं ( उत्तर दक्षिण आदि ) की कल्पना न करें पर जब सब परमाणु भिन्न भिन्न होनेसे एक ही स्थानमें नहीं है खरन आपके सर्व व्यापी सारे परमाणुमें व्याप्त हैं तो आप उनमें परस्पर दिशा भेद न होनेकी बात कैसे कह सकते हैं ? अखंड और परिणामीमें विरोध नहीं क्योंकि अखंड उसे कहते हैं जिसका खण्ड न हो और रूपान्तरसे परिणाम होता है जिसे खण्ड होना नहीं कह सकते। जीव कर्मानुसार निज जन्म चारकमें कभी छोड़ा होता है, कभी मनुष्य और कभी चींटी आदि। परन्तु सब प्रकार रूपान्तर होनेपर भी कभी जीवके खण्ड नहीं होते। जब कि हमने आपके नामे हुए ईश्वरका ही दृष्टान्त दिया है जो कि परिणामी होनेपर भी जन्मजन्मसे रहित है तो फिर न जानें क्यों आप यह कहते हैं कि उदाहरण विषय है। महात्मन् ! पूर्व ही आपने यह कहा था कि कोई पदार्थ अन्य

न हो और परिणामन शील हो इसका एक उदाहरण दो और अब आपका यह कहना कि 'जब ईश्वरको अखण्ड बतलाते हो तो अन्य पदार्थके विषयमें मांगे हुए उदाहरणमें उसका उदाहरण विषय है' क्या अभिप्राय रखता है। कृपया समझल कर हमारे दिये हुए दोषोंका निवारण और प्रश्न का उत्तर दीजिये ॥

स्वामी जी—अनन्दरूनी क्रिया चक्रदार होती है उसमें दिशा भेद नहीं दृष्टान्तसे अपने कथनको सिद्ध कीजिये। घोड़ा हाथी चीटी आदिका उदाहरण विषय है। घोड़ा आदि शरीर बनता है न कि जीव। एक पुरुष जो महलमें बैठा हुआ है उसे यदि जेलखानेमें बिठला दिया जाय तो उसकी अवस्थामें भेद आ जायगा न कि उसके जीवमें। शरीर और जीव एक नहीं है। शरीर मकान है। मकान बदलता है। उसमें बैठनेवाला नहीं। एक पुरुष जो बड़े भारी कमरेमें बैठा हुआ है यदि उसको एक कोठरीमें बैठा दिया जाय तो जीवकी शकल बदल गयी यह नहीं कहा जा सकता। हाथी घोड़ा शरीरमें परिणामन है। किसी वस्तुकी शकल आकाशके निकल जानेसे बदलती है। गेंदको दबाया उसके भीतरसे आकाश निकल गया अर्थात् कुछ कम होनेसे खण्डन होता है। जीवमें से कुछ कम नहीं होता अतएव उसका खण्डन नहीं अतः जीव परिणामी नहीं। सूक्ष्ममें स्थूलके गुण नहीं आ सकते। लोहेमें अग्नि आती है। अग्निमें लोहा नहीं आता। आगमें पानीकी सर्दी नहीं आ सकती, परन्तु पानीमें आगकी गर्मी आती है। इस लिये सूक्ष्म पदार्थमें स्थूलके गुण नहीं आ सकते। जीव और परमात्मा सूक्ष्म है। चेतन सबसे सूक्ष्म है इस लिये उसमें रूप नहीं। जब रूप नहीं तो रूपान्तर कैसा?

वादिगजकेसरी जी—अनन्दरूनी क्रिया को चाहे आप चक्रदार मानिये या किसी दूसरी ही भांति की, पर जब कि प्रलयकाल में कारण अवस्था को प्राप्त भिन्न भिन्न परमाणु एक ही स्थान पर नहीं खरन आपके सर्वत्र व्यापक ईश्वर में फैले हुए हैं तो उनमें परस्पर आपकी दिशा भेद अवश्य मानना पड़ेगा। क्रिया को चक्रदार ही मान लीजिये पर जब कि आपके एक रस सर्व व्यापी ईश्वरके प्रत्येक प्रदेश से एक सी ही क्रिया हो रही है तब कहिये कि परमाणुओं की क्या दशा होगी क्या वे सब औरसे एकसी ही शक्ति रखने वाले चुम्बक पत्थरों से खींचे हुये लोहे के समान अपने स्थानसे झिलसकेंगे? जब नहीं तो आपकी सृष्टि कैसे बनेगी क्योंकि परमाणु परस्पर मिलही

नहीं सकते जीवका निज कर्मानुसार घोड़ा हाथी चीटी मनुष्य आदिके शरीरमें जन्म लेने से परिणामी होने का उदाहरण विषम नहीं क्योंकि जब जीव वस्तु है तो उसका कुछ न कुछ आकार अवश्य है और जब आकार है तो वह समस्त शरीर में एक सा आकारवाला नहीं रह सकता आपको उसे शरीराकार ही मानना पड़ेगा । यदि जीव का आकार न मानो तो वह आकाश कुसुम समान अवस्तु होगा । जीव शरीराकार ही है क्योंकि जहां जहां जीव है वहीं पर शरीरको छेदने भेदने से जीवको कट होता है जहां जहां जीव नहीं ऐसे जख केशादि स्थानों को छेदने भेदने से जीवको कुछ भी कट नहीं होता जब जीव शरीराकार सिद्ध हो चुका तो भिन्न भिन्न शरीर में जन्म ग्रहण करने और उनकी वृद्धि आदि होने पर उसके आकारका परिणामन अवश्य मानना होगा । इसके सिवाय जीवके क्रोधी, मानी, क्षमावान्, मूर्ख, विद्वान्, होनेपर भी उसका स्वरूप बदलना अवश्य मानना होगा और ऐसा होनेपर भी वह कभी खण्ड खण्ड नहीं होता । अतः शरीर आदिके परिणामनके साथ ही जीवका भी उससे ( दीपक के प्रकाशकी भांति ) प्रदेशों आदिका संकोच विस्तार होने तथा गुणों के अवस्था से अवस्थान्तर होने पर परिणामी होना सिद्ध है । किसी पदार्थमें से आकाशका निकल जाना कहना अत्यन्त हास्यास्पद है क्योंकि आकाश सर्व व्यापी और क्रिया गुण रहित है ऐसा आपके वैशेषिक का मत है अतः आकाश कहीं न निकलकर जहां का तहां स्थित रहता है । जिस वस्तु में जौनमा गुण नहीं वह उनमें दूमरी वस्तु के संसर्ग से कदापि नहीं आसकता । जब कि जीव और ईश्वर दोनों रूप ( आकार ) वान् है तब उनमें रूपान्तर ( परिणाम ) होना स्वतः सिद्ध है यहां पर ईश्वर शब्दसे आप अपने माने एक सृष्टिकर्ता परमात्माको समझियेगा । हमारे मतसे तो प्रत्येक कर्म मग मुक्त जीव ही ईश्वर होजाता है हमारा मन्त्र अभी आप पर ज्यों का त्यों खड़ा है ॥

स्वामीजी—रेलमें बैठे हुए हम रोज़ कहा करते हैं कि अजमेर आगया, लाहौर आगया, आगरा आगया, परन्तु क्या वास्तवमें ये नगर आते हैं ? नहीं, यह कथन उपचारक प्रयोग है । आकाशका निकल जाना भी उपचारक प्रयोग है । जब जीव ईश्वर होकर मिट्टी शिला पर सदा के लिये लटका रहा तो ईश्वर जीव क्योंकि होमक्ता है । जीव ईश्वर होजाता है यह कथन विषम है । ईश्वर कहते हैं ऐश्वर्यवाला, परन्तु जैनियोंका जीव तो बीतराग होता है



जिसके पास कुछ न हो उसे बीतराग कहते हैं । जिसके पास कुछ हो ही नहीं, उसे ईश्वर कैसे कह सकते हैं ? । फकीरको ईश्वर बतलाना बुद्धिमत्ता नहीं परमात्मा वाचक जितने शब्द हैं उनके अर्थात् बीतरागका सेल कभी नहीं होसकता विष्णु शब्दका अर्थ है कि जो सबमें व्यापक हो, एक देशी न हो परन्तु जैनियोंका जीव मुक्तावस्थामें शरीरसे निकलकर ऊर्ध्व गमन करता हुआ शिलासे जाकर लग जाता है जिससे उसका एक देशी होना स्पष्ट है । जब एकदेशी हुआ तो विष्णु कैसे ? इसही प्रकार महेश और ब्रह्मा आदिकके शब्दार्थ करने से बीतरागके लक्षण नहीं मिलते । यदि बीतराग जीव ब्रह्मा विष्णु महेश परमात्मा वाच्य ईश्वर बन जाता है तो शब्दार्थकर लक्षण बतलाओ । कहने मात्रसे काम नहीं चलता ।

वादि गज केमरी जी—यद्यपि आपका यह पूछना कि जीव ईश्वर कैसे हो जाता है ? उसका ईश्वरत्व किनपर है ? और उसके ब्रह्मा विष्णु महेशादि नाम कैसे सम्भव हो सकते हैं ? विषयान्तर है और हमारा प्रश्न आपपर वैसा ही सड़ा है परन्तु आपने जो पूछा है तो हम उसका भी उत्तर देते हैं । इसकी व्याख्याके अर्थ एक घण्टेकी ज़रूरत है परन्तु पाँच मिनटमें ही जो कुछ हो सकता है यथा माध्य कहते हैं । द्रव्यका लक्षण “गुण समुदायो द्रव्यम्, है और वह जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इस प्रकार छः हैं । धर्म, अधर्म आकाश और काल इन चार द्रव्योंमें स्वाभाविक ही परिणामन होता है और शेषके दो जीव और पुद्गलमें स्वाभाविक और वैभाविक दोनों ही । जीव और पुद्गलका परस्पर बन्ध होने से जीवमें अशुद्धता होती है । जीवका लक्षण “चेतना लक्ष्णो जीवः, चेतना और पुद्गलका “स्पर्शस गन्धवर्णवत्त्वं पुद्गलत्वम्, स्पर्श रस गन्ध और वर्ण है । पुद्गलके तेईस विभाग ( Classifications ) हैं जिनमें कि केवल आहार, भाषा, मन, तैजस और कार्माण इन पाँच वर्गणाओंका जीव से सम्बन्ध होता है शेष अठारह का नहीं । जिस प्रकार अग्निसे सन्तप्त गर्म लोहे का गोला जनको अपने में खींचकर वाष्परूप कर देता है उसी प्रकार अनादि कर्मके बन्धसे विकारी आत्मा अपने चारित्र गुणकी विभाव रूप परिणतिरागद्वेषसे मन, बचन, काय द्वारा तीनों लोकमें व्याप्त सूक्ष्म कार्माण वर्गणाओं को अपनी ओर आकषित कर धर्मरूप परिणामाता है और वह कर्म आत्माके गुणोंको आच्छादन और विभावरूप किया करते हैं । जिस प्रकार बीजमें वृक्ष और वृक्षसे बीज हुआ

करता है उसी प्रकार इन रागादि भाव कर्मोंसे द्रव्य कर्म और द्रव्य कर्मसे भाव कर्मोंकी सन्तान बराबर जारी रहा करती है। यदि आप बीजकी ( जो कि अनादिकालसे बीज वृक्षकी सन्तान प्रति सन्तान रूपसे बराबर चला आ रहा है ) भूल डालें तो वह नवीन वृक्षको कदापि उत्पन्न नहीं कर सकता। उसी प्रकार जब यह जीव अपने रागादिकोंको नष्ट कर देता है तो इसके नवीन कर्मोंका बन्ध नहीं होता और प्राचीन कर्म अपनी स्थिति पूर्ण कर या ध्यानाग्नि द्वारा उदीर्णोंको प्राप्त होकर आत्मासे सम्बन्ध खंड जाते हैं और सकल कर्मोंसे विप्रमुक्त होकर यह आत्मा मोक्षको प्राप्त कर ईश्वर हो जाता है। इस बातका उत्तर कि ईश्वर ऐश्वर्यवान् को कहते हैं बीतराग होकर परमात्मा का ऐश्वर्य क्या है यह है कि आत्मा अगन्त गुणोंका समुदाय है और वे गुण अनादि कालसे ... ..

( नोट ) वादि गजकेसरी जी इतना ही कह पाये थे कि श्रीमान् राय-बहादुर पंडित गोविन्द रामचन्द्र जी खांडेकर ( भूतपूर्व असिस्टेंट जजिगल कमिश्नर कक्षा प्रथम ) आदि प्रतिष्ठित पुरुषोंके अनुरोधसे सभापति जी ने वादि गजकेसरी जी को विषयान्तर पक्षका उत्तर देनेसे रोक दिया और स्वामी जी से भी प्रार्थना की कि वह विषयान्तर प्रश्न न करें। स्वामी जी वधिर होनेके कारण ऊंचा सुनते थे अतः आर्यमनाज की ओरके अग्रेसर वायू मिट्टनलाल जी ने स्वामी जी को कई बार विषयान्तर न जाने तथा वादि गजकेसरी जी के प्रश्नका उत्तर देनेकी प्रार्थना की। ( प्रकाशक ) \*

\* इस कारण कि सभापति जी के रोक देने से वादि गज केसरी जी स्वामी दर्शनानन्द जी के इस बार किये हुए समस्त प्रश्नोंका उत्तर न दे सके अतः श्रेष्ठ स्वामी जी के प्रश्नोंका उत्तर पाठकोंके अवलोकनार्थ यहां प्रकाशित किया जाता है। वादि गजकेसरी जी सत्तेपतः यह तो बतला ही चुके हैं कि जीव ईश्वर कैसे हो जाता है अतः अब यह सिद्ध किया जाता है कि जीव ही ईश्वर हो जाता है और उसमें हेतु यह है कि:—

ज्ञान गुण केवल जीवमें ही है। कोई जीव स्वल्प जानता है और कोई विशेष और जीवोंके जाननेकी कोई मर्यादा नहीं है क्योंकि जिस वस्तुका ज्ञान आज असम्भव समझा जाता है कल ही कोई जीव उसका ज्ञायक उत्पन्न हो जाता है इससे यह सिद्ध होता है, कि ऐसे भी जीव होंगे जो कि सर्व पदार्थोंको जानते होंगे क्योंकि यह सर्व पदार्थ जो ज्ञे-

स्वामी जी—जगत् उसको कहते हैं जो चले । सृष्टि उसे कहते हैं जो सृजनी गयी है । चलना और बनना क्रियासे होता है । क्रिया बिना कर्ताके होती नहीं इस लिये सृष्टिका कर्ता स्वयं सिद्ध है । कर्ता दो प्रकारके होते हैं

यस्वरूप हैं बिना किसीके ज्ञानमें आये रह नहीं सकते और वह केवल जीव ही हैं जो कि उनको जान सकते हैं । यदि जीवोंसे भिन्न कोई अन्य ऐसा अनादिसे ही व्यक्ति अपेक्षा सर्वज्ञ विशिष्टात्मा मानिये जो कि सब का ज्ञायक हो तो ऐसा विशिष्टात्मा किसी भी युक्ति युक्त प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता अतः यह जीव ही सर्वज्ञत्व गुण युक्त है ऐसा सिद्ध हुआ । यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि जितनी जितनी बीतरागता बढ़ती जाती है उतनी उतनी ज्ञानकी शक्ति भी, और इसी कारण प्रत्येक ही मत्तमें संसारके विरक्त पुरुष ही भविष्यवक्ता और विशेष ज्ञानी माने गये हैं । जब ज्ञानकी वृद्धि बीतरागताके साथ ही होती है तो यह स्वतः सिद्ध है कि जो सर्वथा बीतराग है वही सर्वथा पूर्ण ज्ञानी अर्थात् सर्वज्ञ है । इस कारण यह हेतु जैनियोंके परमात्माओंको सर्वथा सर्वज्ञ सिद्ध कर रहा है जो कि परमात्माका मुख्य गुण है ॥

स्वामी जी का यह कथन ठीक नहीं कि जिसके पास कुछ न हो उसको बीतराग कहते हैं क्योंकि यदि बीतरागका यही लक्षण माना जावे तो जिनके पास अपने पूर्व जन्माज्जित पापोंसे कुछ नहीं ऐसे भूखों मरनेवाले महा कङ्गले भी बीतराग सिद्ध होंगे । बीतरागका अर्थ है वैराग्य या राग द्वेषका अभाव और यह जीवको हितकर है तभी तो आपके गुरु जी महाराजने अपने सत्यार्थ प्रकाशके पांचवें समुद्रासमें सन्यासियोंका विशेष धर्म मनुस्मृतिके छठे अध्यायके आधार पर वर्णन करते हुए “इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेष क्षयेण च । अहिंसाया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते” ॥ इन्द्रियोंको अधर्माचरणसे रोक रागद्वेषको छोड़ना बतलाया है और सप्तम समुद्रासमें स्तुति और प्रार्थनाके प्रकरणमें उपासना योगका दूसरा अङ्ग वर्णन करते हुए धारण करनेका उपदेश दिया है । यदि बीतरागता कुछ पास न होनेसे ही हो सकती है तो मरभुक्के परम सन्यासी और ईश्वरोपासना करने वाले हैं ऐसा मानना होगा । अतः बीतरागका अर्थ जैसा कि स्वामी जी करते हैं फकीर फुकरे अर्थात् कुछ पास न रखने वाले महा कङ्गले नहीं वरन् किसी भी पदार्थमें रागद्वेष न रखने वाले ( महान् विरक्त)

एक स्वाभाविक और दूसरा नियम पूर्वक । हर एक वस्तु संयोग युक्त है इस लिये संयोगका देने वाला कर्त्ता होगा । हर एक फल फल पत्ते आदिक व- है । रही यह बात कि वीतराग होनेपर उस ईश्वरका ऐश्वर्य क्या ? सो यह पहिले ही बतलाया जा चुका है कि जीव द्रव्य अनन्त गुणोंका समु- दाय है और वे उसकी संसारावस्थामें अनादि कर्म सम्बन्धके कारण वि- कारी हैं अतः यह सिद्ध ही है वे जीवके गुण होनेपर भी जीवके आधि- पत्यसे रहित हैं अर्थात् शुद्ध रूप ( जीवके अनुसार ) न परिणम कर क- र्मानुसार परिणमित हैं । जिस समय कर्मका अभाव हो जाता है जीवके उन्हीं गुणोंका शुद्ध परिणमन होने लगता है अर्थात् वे जीवके आधिपत्यमें ( जैसा चाहिये वैसा ) उसके अनुसार परिणमने लगते हैं अतः वीतराग परमात्माका ऐश्वर्य उसके समस्त आत्मिक गुणोंपर है क्योंकि अन्य द्रव्य का परिणमन अन्य द्रव्यके आधीन कदापि नहीं । इस कारण जगत् व- न्द्य वीतराग परमात्माका ऐश्वर्य उनके आत्मिक गुण हैं ।

सकल और निकल दोनों प्रकारके परमात्मा सर्वज्ञ हैं अतः वह अ- पने ज्ञानकी अपेक्षा सर्वत्र व्यापक होनेसे विष्णु नामसे पुकारे जाते हैं क्योंकि उनका ज्ञान समस्त पदार्थोंको विषय भूत करता है अर्थात् समस्त पदार्थोंमें व्यापक है । मोक्ष मार्ग और समस्त वस्तुओंके यथार्थ स्वरूपका विधान ( प्रगट ) करनेसे परमात्माका नाम ब्रह्मा है । समस्त ऐश्वर्य वालों में श्रेष्ठ होनेसे उसी परमात्माका नाम महेश है । यदि ब्रह्मा विष्णु महेश शब्दका यह अर्थ न लेकर यथाक्रम संसारका बनाने वाला, संसारका पा- लन करनेवाला और संसारका नाश करनेवाला लो तो वह भी परमात्मा में भूत नैगम नय ( पेन्शन प्राप्त तहसीलदारको तहसीलदार कहनेकी रीति ) से घटता है क्योंकि परमात्माने अपनी पूर्व संसारावस्थामें अपना संसार ( चतुर्गति परिभ्रमण ) अनादिकालसे स्वयंरचा था अतः वह निज संसारोत्पत्तिसे ब्रह्मा और अपने उस अनादि संसारका निज रागद्वेष वि- भावोंसे बराबर ( मोक्ष प्राप्त कर लेने तक ) पालन करते रहनेके कारण वि- ष्णु और ( मोक्ष प्राप्त कर लेनेपर ) उसका नाशकर देनेसे महेश नाम वाले हैं । इत्यादि अनेक रीतियोंसे यह ही नहीं बरन् परमात्मा वाचक समस्त नाम सिद्ध किये जा सकते हैं । ( प्रकाशक )

स्तुमें जो बनावट है वह नियम पूर्वक कर्ताका लक्षण का रही है \* ग्रहण आदिक नियम पूर्वक होता है। क्रियाका कर्ता बिना चेतनके ही नहीं सकता इस लिये सिद्ध है कि सृष्टिका कर्ता चेतन ईश्वर है।

वादि गजकेसरी जी—इस प्रथम ही कह चुके हैं कि गुणोंके समुदाय को द्रव्य कहते हैं और प्रत्येक गुण तथा प्रतिक्षण अवस्थासे अवस्थान्तर हुआ करता है। षट् द्रव्य ( जीव पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ) का समुदाय ही जगत् है। जब कि प्रत्येक ही द्रव्य प्रतिक्षण अवस्थासे अवस्थान्तर होता है तो उसका समूह रूप जगत् भी सदैव चना ( रूप बदला ) करता है। जब कि जगत्की समस्त वस्तुओंमें प्रतिक्षण अवस्थाने अवस्थान्तर होनेमें पूर्व क्रम वर्ती पर्यायका नाश और उत्तर क्रमवर्ती पर्यायका उत्पाद होता है तो समस्त वस्तुओंके समूह रूप जगत्को उसके समस्त वस्तुओंमें नवीन पर्यायोंका प्रतिक्षण सृजन ( उत्पाद ) होनेकी अपेक्षासे इनकी सृष्टि भी कह सकते हैं। इस मानते हैं कि द्रव्योंके रूपान्तर होने और जगत्की नवीन पर्यायोंके उत्पादमें क्रिया और परिणाम या केवल परिणाम होता है। पर यह नवीन पर्यायोंके उत्पादकी क्रिया और परिणाम या केवल परिणाम शुद्ध जीव शुद्ध पुद्गल ( परमाणु ) धर्म अधर्म, आकाश और कालमें तो स्व स्वरूपानुसार स्वाभाविक काल द्रव्यके उदासीन कारणपनेसे होता है और बन्धावस्थाको प्राप्त अशुद्ध जीव और अशुद्ध पुद्गल ( स्कन्ध ) में वैभाविक रीतिसे जन्म वाश्य निमित्तानुसार और काल द्रव्यके उदासीन कारणपनेसे। अतः प्रत्येक शुद्ध द्रव्य स्वयं निज क्रिया और परिणाम या केवल परिणामका कर्ता है और

\* पाठकोंको स्मरण होगा कि प्रथम ही स्वामी जी उपनिषद् वाक्य “स्वाभाविकीज्ञानवल क्रिया च” का हवाला देकर ईश्वरको स्वाभाविक कर्ता सिद्ध करते थे परन्तु अब आप दो प्रकारके ( एक स्वाभाविक और दूसरा नियम पूर्वक ) कर्ता कहकर उसको नियमपूर्वक कर्ता सिद्ध करते हैं सो ठीक ही है कि समझ जानेपर बुद्धिमानोंको हठ करना कदापि योग्य नहीं।  
( प्रकाशक )

+ जीव और पुद्गल इन दो द्रव्योंमें तो क्रिया और परिणाम दोनों ही हैं और शेषकी चार धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्योंमें केवल परिणाम ही।  
( प्रकाशक )

अशुद्ध द्रव्योंमें जीवके जितने अंश कर्ममें आच्छादित हैं उतने अंशोंकी क्रिया और परिणाम या केवल परिणामका कर्ता कर्म और जितने अंश कर्मोंसे आच्छादित नहीं उतने अंशोंकी क्रिया और परिणामका कर्ता जीव है और पुद्गलके स्फुट्यमें वही पुद्गल परमाणु वैभाविकरीतिसे क्रिया और परिणाम करते हैं।

अतः किसी भी द्रव्यके क्रिया और परिणाम या केवल परिणाममें (चाहे वह क्रिया और परिणाम या केवल परिणाम स्वाभाविक हो या वैभाविक) आपके माने हुए सृष्टिकर्ता ईश्वरके निमित्त (सहायता) की कोई आवश्यकता नहीं है और न ऐसा निमित्त कारण ईश्वर कोई है ही । यदि थोड़ी देरको आपके ही कथनानुसार आपका ईश्वर सृष्टिकर्ता मानलिया जाय तो वह आपके बतलाए हुए दो प्रकारके (एक स्वाभाविक और दूसरे नियमपूर्वक) कर्ताओंमेंसे सृष्टिकर्तृत्वके विरोधी गुणोंके कारण न तो स्वाभाविक ही कर्ता सिद्ध होता है और जगतमें हजारों अनियम पूर्वक कार्य होनेसे न नियम पूर्वक कर्ता ही । संयोग दो प्रकारके होते हैं एक तो एकत्व बुद्धिजनक अन्वय-संयोग यथा वृक्षके एक पत्तेमें परमाणुओंका और दूसरा पृथक्त्व बुद्धिजनक अन्वय संयोग यथा दण्डी और दण्डका । पर इन दोनों प्रकारके संयोगोंमें आपके ईश्वरकी कोई भी आवश्यकता नहीं । हर एक फूल पत्ता किनी नियम पूर्वक कर्ताका बनाया हुआ है \* कार्य होने से घट पटादिशत, इसकी सिद्धिमें यदि कार्यत्व ही हेतु मानाजाय तो यह पूर्व कथित किसी मनुष्यके चार श्यामवर्ण पुत्रोंको देखकर उसके पांचवें गर्भस्थ पुत्रको भी श्यामवर्ण ना-

\* हर एक फूल पत्ता किसी नियम पूर्वक कर्ताका बनाया या पैदा किया हुआ है ऐसा नियम नहीं क्योंकि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज अपने सत्यार्थप्रकाशके अष्टम समुल्लासमें पृष्ठ २२१ पर यह लिखते हैं कि “कहीं कहीं जड़के निमित्तसे जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है जैसे परमेश्वरके रचित घीज पृथिवीमें गिरने और जल पानेसे वृक्षाकार हो जाते हैं और अग्नि आदि जड़के संयोगसे विगड़ भी जाते हैं” । रही परमेश्वर के रचित घीज और इसके आगेकी लाइन ‘परन्तु इनका नियमपूर्वक बनना वा बिगड़ना परमेश्वर और जीवके आधीन है’ की बात सो साध्य है क्योंकि जब ऐसे रचयिता परमात्माकी सत्ता ही लक्षण और प्रमाणोंसे असिद्ध है और बिना चेतन कर्ताके ही अनेक नियम पूर्वक कार्य होना प्रत्यक्ष है तो वैसे कैसे माना जा सकता है ? ( प्रकाशक )

ननेके समान शक्ति व्यभिचारी हेत्वाभास है क्रिया चेतन और अचेतन दोनों ही पदार्थोंमें होती है और अनेक कार्य इस जगत्में चेतन कर्ता के किये हुए होते हैं और अनेक अचेतनके भी। यथा जी चने चेतन कर्ताके होनेसे होते हैं और घास फूस बिना चेतन कर्ता ही। इनारा प्रश्न अभी आप पर वैसाही खड़ा है ॥

स्वामीजी--पण्डितजीने सृष्टिकर्ता मानलिया। घास फूस आदि सूर्यके आकर्षण तथा पानीके हेतुसे होते हैं। यह मैं पहिले ही कह चुका हूँ। बिना कर्ताकी सृष्टिका एक उदाहरण दीजिये। घड़ी बिना चलाये नहीं चलती। ईश्वरके सब काम नियमपूर्वक हैं। अन्दरकी गतिमें दिशाभेद नहीं होता, परन्तु वह क्रिया चक्रामें होती है। ग्रहण आदिक नियमपूर्वक कर्ताका लक्ष्य करा रहे हैं। इसका आपने उत्तर नहीं दिया ॥

वादिगजकेसरीजी--इसने आपका सृष्टिकर्ता ईश्वर कदापि नहीं माना। जब कि 'घास फूस आदि सूर्यके आकर्षण तथा पानीके हेतुसे होते हैं' यह आप भी मानते हैं तो इन घास फूस आदिके कर्ता और कारण वही सूर्यादि हैं न कि कोई ईश्वर। पूर्व ही कईवार कहा जा चुका है कि कार्यकी कारण के साथ व्याप्ति है न कि आपके चैतन्य कर्ताके साथ। चैतन्य कर्ताके बिना कार्यका उदाहरण यही वनस्पति आदिका उत्पन्न होना भी है। जिस प्रकार घड़ी किसी चेतन घड़ीसाजकी बनायी हुई चलती है उसी प्रकार यह संसार भी किसी ईश्वरका चलाया चलता है इसमें हेतु क्या है? यदि कार्यस्व ही तो वह पूर्व कथित इनारे मित्रके गर्भस्थ पञ्चम पुत्रके श्याम वर्ण होनेके उदाहरण समान शक्ति व्यभिचारी है। आपके ईश्वरके सब काम नियमपूर्वक होते हैं, आपकी इस कल्पनाका खण्डन पूर्व ही कई बार किया जा चुका है और अब फिर भी किया जाता है कि संसार के सब काम नियमपूर्वक नहीं क्योंकि कहीं वर्षों कितने ही दिन होती है और कहीं कितने ही दिन और कभी विशेष और कभी न्यून और कभी आवश्यकता पर विलकुल नहीं आदि। जब कि भिन्न भिन्न कारण अवस्था को प्राप्त परमाणु प्रलय कालमें एकही स्थानपर नहीं धरन् आपके ईश्वरमें ससत व्याप्त हैं तो उनमें परस्पर दिशा भेद अवश्य है चाहे आप उसमें क्रिया भले ही चक्रसे मानें। ग्रहण आदिके नियम पूर्वक होनेके कारण सूर्य आदिकी नियम पूर्वक गति आदि हैं न कि आपका माना ईश्वर। यदि ईश्वरको ही कारण मानिये तो अन्वय व्यतिरेक सम्बन्धके अभावमें उसकी व्याप्ति नहीं बनती और न उसमें सृष्टि और प्रलयके दो विरोधी गुण ही सम्भवित होते हैं ॥

स्वामी जी-एक पदार्थकी दो सुखतुल्य क्रिया हो सकती हैं। एक जीव जिसके स्वभावमें गर्मी अधिक है उसको सूर्यसे दुःख होता है और जिसके स्वभावमें सर्दी अधिक है उसको सुख होता है। इसमें सूर्यके दो कार्य नहीं, परन्तु जीवके कर्मोंके स्वभावसे सुख दुःख होता है। अन्दरकी क्रियाके लिये दिशाका भेद नहीं होता। जो जिसके सामने आया मिल गया। हाँडोंमें चावल पकते हैं, एक दूसरेसे मिल जाते हैं। यह नहीं होता कि चावल सब एकही दिशामें जाते हों। आगकी हरकतसे चावल मिले, अतएव आगका स्वभाव संयोग वियोग हुआ \*। आगकी हरकत स्वाभाविक है। ईश्वर बाहरसे हरकत नहीं देता। वह आगके समान अन्दरसे हरकत देता है, क्योंकि वह परमाणु परमाणुमें व्याप्त है। हरकत संयोग वियोगमें रहती है। हरकत जारी नहीं सदा बनी रहती है। हरकतके दो फल प्रत्यक्ष हैं सूर्यकी एक क्रियाके दो फल सुख और दुःख दोनों हैं।

\* एक वस्तुमें दो विरोधी स्वभाव नहीं हो सकते ऐसा स्वामीजीकी भी इष्ट है और इसका प्रतिपादन उन्होंने अपने वैदिक यन्त्रालयमें मुद्रित “संख्य दर्शन” के ८४ सूत्र “उभयथाऽप्यसत्करत्वम्” के भाषानुवाद में प्रश्नोत्तरों द्वारा किया है। आप स्वयं प्रश्न करते हैं कि “एक वस्तुमें दो विरुद्ध स्वभाव हो नहीं सकते। यदि रचना ईश्वरका स्वभाव मानोगे तो विनाश किसका स्वभाव मानोगे। अपने इसी प्रश्नका उत्तर आप स्वयं लिखते हैं कि “यह शङ्का परतन्त्र और अचेतनमें हो सकती है क्योंकि कर्ता स्वतन्त्र होता है और स्वतन्त्र उसे कहते हैं जिसमें करने न करने और उलटा करनेकी सामर्थ्य हो”। यद्यपि आपने यहां अप्रत्यक्ष रीतिसे सृष्टि कर्तृत्वं ईश्वरका स्वभाव मान लिया है और अप्रत्यक्ष ही क्यों वरन इन प्रश्नोंके ऊपर आप स्वयं अपने इन शब्दोंसे कि “ईश्वर इन दोनों ( मुक्त और बद्ध ) अवस्थाओंसे पृथक् है और जगत्का करना उसका स्वभाव है इस लिये इच्छाकी आवश्यकता नहीं” प्रत्यक्ष रीतिसे भी स्वीकार करते हैं कि सृष्टि कर्तृत्वं ईश्वरका स्वभाव है ! परन्तु यदि हम थोड़ी देरकी उनके “जगत्का करना उसका ( ईश्वरका ) स्वभाव है” इन शब्दोंपर ध्यान न दें और स्वयं ही उठाये हुए आपके प्रश्नके समाधानसे संतोष मान लें तो भी यह निश्चय है कि आगका स्वभाव संयोग वियोग नहीं हो सकता क्योंकि आपके लेखानुसार ही ये दोनों विरोधी गुण जड़ और परतन्त्र आगके स्वभावमें कदापि नहीं हो सकते। ( प्रकाशक )



वादि गजकेसरी जी-प्रथम ही आपने कहा था कि 'संयोग और वियोग दो विरुद्ध क्रियायें नहीं वरन क्रियाके फल हैं क्रियाके दो फल होते हैं संयोग और वियोग' और अब आप कहते हैं कि 'एक पदार्थकी दो मुख्यलिप्त क्रिया हो सकती हैं, और आगे चलकर आप कहते हैं कि 'हरकतके दो फल प्रत्यक्ष हैं' यह परस्पर स्ववचन बाधितपना क्यों ? यह हम मानते हैं कि एक अशुद्ध द्रव्यमें वास्तव प्रवल व्यवधान से भिन्न प्रकारकी क्रिया और परिणाम हो सकते हैं पर वैना होना आपके शुद्ध अखण्ड एक रस ईश्वरमें सर्वथा असम्भव है। आपका दृष्टान्त विषम है क्योंकि सूर्यका स्वभाव गर्मी देना है न कि किसीको सुखदुःख देना। सूर्यका दृष्टान्त बिल्कुल विरुद्ध है क्योंकि सूर्य गर्मी देनेमें उदासीन निमित्त कारण है और परमात्माको आप गर्ति देनेमें प्रेरक कारण मानते हैं। जब तक परमात्माकी सत्ता ही असिद्ध है तब तक आप उसको उदासीन निमित्त कारण नहीं मान सकते। अतः दृष्टान्त किसी अंशमें नहीं भिन्नता। क्रिया चाहे अन्दरसे दी गयी हो या बाहरसे पर उसमें आपको दिशा भेद अवश्य मानना पड़ेगा और आपके अन्दर और बाहर यह शब्द ही ऊपर नीचेके समान दिशा भेद प्रगट करते हैं। जब कि आपका परमेश्वर परमाणुओंमें भीतर और बाहर सर्वत्र व्यापक है तथा अखण्ड और एक रस है तो वह केवल भीतरसे ही हरकत नहीं दे सकता क्योंकि कहीं कैसी और कहीं कैसी उसकी अवस्था होनेसे वह अखण्ड और एक रस कदापि नहीं रह सकता। यदि थोड़ी देरको आपकी भीतासे ही हरकत मान ली जाय तो भी सबको एकसी हरकत मिलनेपर उनमें संयोग वियोग कदापि नहीं हो सकता क्योंकि यदि हो सकता होता तो प्रलयकालमें भी उन क्रियाके सद्भाव में वैना बराबर होता रहता। आगकी अन्दरूनी हरकतसे हांडीमें चावल पकनेका आपका दृष्टान्त बिल्कुल विपरीत है क्योंकि दृष्टान्तमें अग्निके खण्ड द्रव्य होने व सब आरसे हरकत न देनेके कारण उनके परमाणुओंमें निमित्तानुसार भिन्न भिन्न देशान्तर प्राप्तिसे चावलोंका भिन्न भिन्न दिशामें गमन होता है और दृष्टान्तमें ईश्वरके अखण्ड एक रस सर्व व्यापी होनेसे परमाणुओंका वैना होना असम्भव है। चावलों में संयोग और वियोग दोनों होने के कारण उनमें अग्नि की तात्तम्यता तथा जलादिके व्यवधान हैं। जब कि आपका ईश्वर एक रस और सर्वव्यापी होने से परमाणुओं के भीतर और बाहर सर्वत्र व्याप्त है तो फिर वह भीतरसे ही क्यों हरकत देता है? यह हम

मानते हैं कि हरकत संयोग और वियोग में होती है पर एक हरकत का एक ही फल हो सकता है । हरकत देनेवाले के अभाव में हरकत का भी अभाव होजाता है अतः यह कहना ठीक नहीं कि हरकत सदा खनी रहती है । आपके वेदान्तानुसार संयोग और वियोग दो विरुद्ध गुण (फल) होने के कारण एक क्रियाके फल नहीं हो सकते । जब कि किसी समयमें इस संसारका अभाव, आपके माने हुए ईश्वरकी सत्ता, उसके क्रियाकी आवश्यकता, अन्वय वपतिरेक सम्बन्ध न होनेसे उस क्रियामें परमाणुओंको हरकत देना आदि सिद्ध नहीं होते तो आपका ईश्वर कैसे सृष्टिकर्ता माना जा सकता है ? साइन्स भी ईश्वरको सृष्टिकर्ता नहीं मानता । वह पदार्थोंके स्वभावसे ही सृष्टि का सब काम चलना मानता है । हमारा प्रश्न आपपर ज्योंका त्यों खड़ा है ।

स्वामीजी-सुख दुःख अपने स्वभावानुसार पाये जाते हैं । साइन्स भी प्रत्येक वस्तुका हेतु खतलाता है । जिससे सृष्टिका हेतु परमात्मा सिद्ध होता है । अग्निका उदाहरण विषम नहीं । उदाहरण धर्ममें दिया जाता है । अग्नि परिमाणुओंमें व्पाप्त है वह चारों ओरसे हरकत देता है । ईश्वर भी सारे देशमें व्पाप्त है । देशमें गर्मी एकदेशी नहीं । ब्रह्मावृष्टमें परमात्मा भी एकदेशी नहीं, इसलिये अग्निका उदाहरण विषम नहीं । आप धान और चावलका दृष्टान्त जो कि भिन्न भिन्न समयमें पैदा होते हैं अनादिके साथ कैसे दे दिया करते हैं । चावलोंको हरकत जो मिलती है वह भी अन्दरकी हरकत है और सृष्टिकी हरकत भी परमात्माके अन्दरसे है ।

वादि गजकेसरी जी-सूर्यकी गर्मी देने रूप क्रियासे जीवोंको सुख दुःख प्राप्त होनेका खरबहज्ज बार पूर्व ही कर चुके हैं । हम मानते हैं कि साइन्स प्रत्येक वस्तुका हेतु अपनी पहुंचके अनुसार खतलाता है पर उससे सृष्टिका हेतु परमात्मा कैसे सिद्ध होता है सो आपही जानते होंगे । अग्निका उदाहरण विस्तृत विषम है क्योंकि अग्नि असंख्य परमाणु वाला खरब पदार्थ और ईश्वर शुद्ध एक रस अखरब द्रव्य है । प्रथम आपने कहा था कि 'ईश्वर बाहरसे हरकत नहीं देता । वह आगके समान अन्दरसे हरकत देता है' और अब आप कहते हैं कि 'अग्नि परमाणुओंमें व्पाप्त है वह चारों ओर हरकत देता है' इन दो परस्पर मेरी भां और वांछके समान विरुद्ध वाक्योंमें आपका कीन सा वाक्य प्रमाण माना जाय । धान और चावलका दृष्टान्त इन कर्ममल युक्त जीवकी नाना पर्यायोंमें उत्पन्न होनेके विषयमें देते हैं जो कि ठीक ही

है क्योंकि जब तक चावलके ऊपर धानका छिलका रहता है तभी तक चावल जरावर उत्पन्न होता रहता है और उसके दूर हो जानेपर कदापि नहीं उसी प्रकार जब तक जीवके ऊपर कर्मरूप छिलका लगा हुआ है तभी तक वह जन्म ग्रहण करता है और उसके समाप्तमें कदापि नहीं । अभी आपने कहा था कि अग्नि चारों ओरसे हरकत देता है और अब आप कहते हैं कि 'चा-  
वलोंको हरकत जो मिलती है वह भी अन्दरकी हरकत है' । इन दोनोंमें ठीक कौन ? महात्मन् ! जरा विचार कर हमारे प्रश्नोंका उत्तर दीजिये ।

स्वामीजी—इच्छा कर्मके निमित्तसे उत्पन्न होती है इन लिये ईश्वर स-  
त्कार जाती है । अग्निमें इच्छा विषय है । अग्नि एक है, दो नहीं । जहां वै-  
धर्म्य नहीं हो वहां वैषम्य नहीं । जीव और ईश्वर जातिसे विभु हैं । परमा-  
त्मा बहुत हैं, परन्तु अग्नि एक है । वैधर्म्यका विषय एक है अतः वैषम्य नहीं  
गति देनेकी ईश्वर और अग्नि दोनोंमें एकता है । गति या तो अग्निसे आ-  
येगी वा ईश्वरसे । इसही लिये अग्नि शब्द ब्रह्मके ज्ञानमें भी आता है ।  
अग्नि और ईश्वरके धर्म विषय हैं यह किसी शास्त्रसे सिद्ध करिये ।

स्वामी दर्शनानन्दजीके इतना कह चुकने पर पांच बजनेमें पांच मिनिट  
शेष रहे । शास्त्रार्थ पांच बजे तक होना निश्चिन हुआ था और यह शेष पांच  
मिनिट नियमानुसार वादि गजकेशरीजीके हिस्सेके थे परन्तु आर्य समाजकी  
ओरके अग्रसर बाबू मिठुनलालजी वकीलने यह पांच मिनिट सबको धन्य-  
वाद आदि देनेको अपने अर्थ माने । यद्यपि आपसे यह कहा गया कि वादि  
गज केशरीजीके कह चुकने पर आप पांच नहीं बरन दस मिनिट अपने अर्थ  
ले सकते हैं क्योंकि ये पांच मिनिट नियमानुसार वादि गजकेशरीजीके हिस्से  
के हैं परन्तु आपको इतना धैर्य्य न हुआ और आपने यही पांच मिनिट  
अपने अर्थ देनेको कईबार दृढ़ अनुरोध किया । आपके ऐसा करनेसे यह प्र-  
तीत होता था और है कि अन्तिम वक्तव्य स्वामीजीका ही रहे और पटिलक  
को यह बात प्रगट हो कि स्वामीजीका प्रश्न वादि गजकेशरीजी पर खड़ा रहा  
और वादि गजकेशरीजीने जो कुछ आपत्त किया था उसका उत्तर स्वामीजीने  
दे दिया क्योंकि यदि ऐसा उनका अभिप्राय न होता तो वादिगजकेशरीजीके  
हिस्सेके ही पांच मिनिट क्यों लेते उनके वादके मिनिटोंमें आपकी क्या हानि  
थी । यद्यपि इन लोग बाबू साहबकी इस चालको भली भांति जानते थे व-  
रन्तु यह जानकर कि पटिलक ( जैसा कि बाबू साहब समझते हैं ) इतनी

मूर्ख नहीं कि इस जरासी बातसे अपने उस प्रभावको जो कि यदि गजकेशरीजीके युक्तियोंसे उसपर पड़ा या बदल दे बाबू माइकके इन आग्रहको स्वीकार कर लिया और यदि गजकेशरीजी जो स्वामीजीकी युक्तियोंका खखन करनेके अर्थ खड़े हुए थे बैठ गये ।

यद्यपि यदि गजकेशरीजी (अपने हिस्सेके पांच मिनिट बाबू मिट्टनलाल जी वकीलके लेलेनेके कारण ) स्वामीजीके इन अन्तिम आक्षेपों और प्रश्नों का उत्तर न दे सके परन्तु सर्वसाधारणके हितार्थ उन आक्षेपोंका समाधान और प्रश्नोंका उत्तर अब प्रकाशित किया जाता है ।

स्वामीजी जो यह कहते हैं कि 'इच्छा कर्मके निमित्तसे उत्पन्न होती है इस लिये इधर उधर जाती है' सो बिल्कुल असम्बन्ध है । मालूम नहीं कि आपने इसे क्यों कहा और इच्छासे आपको किसकी इच्छा अभीष्ट है ? यदि जीवकी तो उसका यहां क्या सम्बन्ध है ? इत्यादि । अग्निमें इच्छा विषम बतलाना अत्यन्त हास्यास्पद है क्योंकि इच्छा चैतन्यमें होती है न कि जड़में । आपके न्याय दर्शनने अपने अध्याय १ आन्हिक १ सूत्र १० "इच्छा द्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्ध्यात्मनोलिङ्गमिति,, और वैशेषिक दर्शन अध्याय ३ आह्निक २ सूत्र ४ में "प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनोलिङ्गानि,, में इच्छाको आत्माका लिङ्ग ( जिसको कि आपके गुरुजी महाराज अपने सत्यार्थप्रकाशमें गुप्त कहते हैं ) माना है । वैशेषिक दर्शन अपने अध्याय २ आह्निक १ सूत्र ३ में अग्निका लिङ्ग "तेजो रूपस्पर्शवत्" रूप और स्पर्श कहता है न कि इच्छा । मालूम नहीं कि अग्नि में विषम इच्छा कहते हुए स्वामीजी किस अवस्थामें थे । स्वामी जी जो अग्नि और ईश्वरके धर्मोंको एक होने और गति देनेसे एकमा मानते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि अग्नि भिन्न भिन्न परमाणुवाला खण्ड द्रव्य और सबकी गति न देने वाला है और ईश्वर आपके सन्तव्यानुसार एक अखण्ड द्रव्य और सबकी गति देने वाला है अतः वैधर्म्य होनेसे वैधर्म्यता स्वतः सिद्ध है । अग्नि के परमाणु बहुत होने पर भी वह ईश्वरके समान एक ( अखण्ड ) द्रव्य है ऐसा कैसे माना जा सकता है । प्रथम आप कहते थे कि 'जहां वैधर्म्य नहीं वहां वैषम्य नहीं, और अब आप कहते हैं कि 'वैधर्म्यका विषय एक है अतः वैषम्य नहीं. इन दोनों बातों में कौनसी बात ठीक है । यदि वैधर्म्यका विषय किसी मुख्य धर्ममें ही हुआ तो फिर स्वामीजीके दूष्टान्तसे दार्ष्टान्त कैसे

मिलकर उनके पक्षकी स्पष्ट कर सकेगा । प्रथम तो यह नियम नहीं कि गति अग्निसे ही मिले क्योंकि जल, वायु, मनुष्य आदि अनेक गति देते हैं । यदि दुर्जन तोष न्यायसे अग्निसे ही गति मानी जाय तो फिर जब गति अग्नि ही देती है तो फिर आपके ब्रह्मकी क्या आवश्यकता है यदि अग्निमें गति ब्रह्मके द्वारा मानी तो इसमें हेतु क्या क्योंकि जब तक आपके सृष्टि कर्ता ब्रह्मकी सत्ता, समस्त वस्तुओंके कार्य करने में उनकी आवश्यकता, उनमें गति देनेकी शक्ति और अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध सिद्ध न हो तब तक वैसा कैसे माना जा सकता है । अग्नि और ईश्वरके धर्म विषम हैं क्योंकि अग्नि स्वयं द्रव्य अनेक परमाणुओं वाला, जड़, अशुद्ध और अनेक रस है और इससे विरुद्ध ईश्वर अखण्ड द्रव्य एक, चेतन, शुद्ध और एक रस है । इत्यादि ।

आबू सिट्टनलालजी वकीलने आय्य समाजकी ओर से श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा, सर्वसाधारण और गवर्नमेण्टको धन्यवाद दिया और जैन समाजकी ओरसे चन्द्रसेनजी जैन वैद्यने स्वामीजी, पटिजक और सभाट व समाजकी तथा राज्यके समस्त अधिकारियोंका आभार माना । सभापतिजीने अपनी उपसंहार वक्तृतामें सबकी धन्यवाद देते हुए शान्तिसे निरस्त होकर शास्त्रार्थका परिष्कार निकालनेकी प्रार्थनाकी और इतने जन समुदायमें शास्त्रार्थका कार्य निर्वर्तन समाप्त होने पर हर्ष प्रगट करते हुए सानन्द सभा विसर्जित की ।

**चन्द्रसेन जैन वैद्य, मन्त्री**

**श्री जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा—इटावा ।**



**परिशिष्ट नम्बर "ख" ।**

**मौखिक शास्त्रार्थ**

जो श्रीयुन न्यायाचार्य पंडित माखिकचन्द जी जैन द्वारा श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा और निकन्दरावाद गुरुकुलके अध्यापक पंडित यशदत्त जी शास्त्री आय्यमें शनिवार ६ जुलाई सन् १८९२ ईस्वीको रात्रिके १०॥ बजे से १२॥ बजे तक स्वाम गोर्दी की जग्गियां में हजारों लोगों के समक्ष श्रीमान् स्वाहास्वाहादि वादि वज्र केसरी पंडित गोपालदास जी वरैय्या जैनके सभापतिपद में हुआ ।

शास्त्रीजी—ईश्वरो जगत् कर्ता पितामन्तरेण यथा न पुत्रोत्पत्ति रनर्थैवेष्ट-  
रेण बिना कथं जगति कार्याणि उत्पद्यन्ते । क्षित्यादिकं कर्तृजन्यं कार्यत्वाद्  
घटवदित्यनुमानेनापि ईश्वरं साधयामः ।

( भावार्थ ) ईश्वर जगत् का कर्ता है । जैसे कि बिना पिताके पुत्र उत्प-  
न्न नहीं होता इसी तरह बिना ईश्वर के संसार में कोई भी कार्य उत्पन्न  
नहीं हो सका । पृथ्वी आदिक कर्ता की बनाई हुई हैं कार्य होने से घड़े के  
समान इस अनुमानसे भी ईश्वरकी सिद्धि होती है ॥

न्यायाचार्यजी—ईश्वर सृष्टे यदनुमानं प्रमाणत्वेनाभिप्रेतं तस्य चोत्प-  
त्तिर्व्याप्तिज्ञानाद्भेदो व्याप्तिज्ञानं च भवतां मिथ्याज्ञानं । मिथ्याज्ञानेन न  
सम्पगनुमानोत्पत्तिर्भविष्यति किंचास्मिन्ननुमाने सत्प्रतिपक्षोहेतुः क्षित्यङ्कुरा-  
दिकं कर्त्रजन्यं शरीराजन्यत्वादाकाशवत् अथच सृष्ट्यादी यूनां पुरुषाणां पितर  
मन्तराऽपि उत्पत्तिरतो यथा पितामन्तः न पुत्रोत्पत्तिरिति दृष्टान्ताभासोऽयम् ।

( भावार्थ ) ईश्वरकी सत्ता साधनेमें जो अनुमान प्रमाण आपने दिया उस  
अनुमान की उत्पत्ति व्याप्ति ज्ञानसे हो सकती है और व्याप्ति ज्ञान आपके  
यहां मिथ्या ज्ञानमें माना है “मिथ्या ज्ञानं त्रिविधं संशय विपर्यय तर्कभेदात्”  
मिथ्या व्याप्ति ज्ञानसे प्रमाण भूत अनुमान की उत्पत्ति नहीं हो सकती ।  
आपके दिये हुये अनुमानमें हेतु सत्प्रतिपक्ष भी है क्योंकि पृथ्वी आदिक  
किसी कर्ताके बनाये हुये नहीं हैं क्योंकि संसारमें बुद्धिमान् कर्ताके कार्य  
जितने देखे जाते हैं सो शरीर सहित कर्ताके बने हैं पृथ्वी आदिकका कोई  
शरीरधारी कर्ता देखना नहीं आता : ये कर्ताके बनाये हुये नहीं हैं । कार्य  
की कारण मात्रसे व्याप्ति है कर्तासे नहीं और आपने पिताके बिना पुत्रकी  
उत्पत्ति नहीं होती यह दृष्टान्त दिया सो भी ठीक नहीं है क्योंकि सृष्टिकी  
आदिमें नवीन युवा पुरुष उद्वज्जते कूदते आपने ही बिना पिताके पैदा  
हुये माने हैं ॥

शास्त्री जी—यद्भवद्विः प्रतिपादितं तत्सम्बन्धम् । सत्प्रतिपक्षो दोषो नास्ति  
ईश्वरः सर्वशक्तिमान् । बिना पदभ्यांगच्छन्नि अकर्णः शृणोति स्वीक्रियते चास्माभिः

( भावार्थ ) जो आपने कहा सो ठीक है । सत्प्रतिपक्ष दोष नहीं है क्योंकि  
ईश्वर सर्व शक्तिमान् है । बिना पैरों के चलता है बिना कानोंके सुनता है  
ऐसा हम मानते हैं ।

न्यायाचार्य जी—अस्मत्प्रदत्त दोषपरिहारश्च न विहितो भवद्भिः ।  
कारणकार्ययोर्व्याप्तिर्न तु कर्तृकार्ययोः किं च कृषाणकृत व्रीह्यादी सकर्तृक-  
त्वेऽपि वन्यवनस्पतिपासादौ कर्तृभावेन हेतुर्व्यभिचारी च हेतुतावच्छेदक-  
सम्बन्धेन हेतुता वच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता यत्र तत्रैव साध्यतावच्छेदक-  
सम्बन्धावच्छिन्न साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणता यदि भवेत्तस्यैव सम्ब-  
न्धेन हेतुता कार्यत्वहेतोश्चैवं सम्बन्धेन नैव नास्ति ।

( भावार्थ ) हमारे दिये दोषोंका परिहार आपने बिलकुल नहीं किया ।  
कारण और कार्य की व्याप्ति है । जहां जहां कार्यत्व है वहां वहां कारण ज-  
न्यत्व है ऐसा नियम तो है किन्तु जहां जहां कार्यत्व है वहां २ कर्तासे ज-  
न्यत्व है ऐसा नियम मानोगे तो जङ्गलमें घास जड़ी वृत्ती किस कर्ताकी व-  
नाई हैं ऐसा दिखलाइये । जहां हेतु रहै वहां साध्य रहै उसको सहेतु कहते  
हैं ऐसा सहेतु यह कार्यत्व नहीं है ।

शास्त्री जी—यत् भवद्भिः प्रतिपादितं स्वीक्रियते । ईश्वरप्रेरितोऽयं जनः  
सुख दुःखं भुनक्ति कार्यकांक्षे तु स्वतन्त्रः जीवात्मा किन्तु तत्फलभोगे पर-  
तन्त्रो यथा चौरः चौर्यं कृत्वा कारागृहे मज्जिष्ठेटप्रेरितो गच्छति ॥

( भावार्थ ) जो आपने कहा हम स्वीकार करते हैं । ईश्वरकी सिद्धिमें हम दूसरा  
प्रमाण देते हैं कि जीव कर्म करने में स्वतंत्र है लेकिन फल स्वयं नहीं भोगने  
चाहता जैसे कि चोर चोरी करनेमें स्वतन्त्र है लेकिन चोरीका फल जेलखाना  
मजिष्ठेट द्वारा भोगता है । इसी तरह सुख दुःख फल भुगाने वाला ईश्वर है ।

न्यायाचार्य जी—यदि जीवः कर्मकरणे स्वतंत्रः फलभुक्ता च परतन्त्रो भवे-  
दत्र त्रुमः कस्यचिच्छ्रेष्ठिनी धनापहरणरूपं फलं देयं स्यात्तत्रेश्वरः स्वयमा-  
गत्य तु तार्थमपहरेत् किन्तु चौरद्वारा फलमुपभोगयति तदा चौरः किमर्थं का-  
रावासगृहमुपभोगयेत् चौरस्य च कर्मकरणे स्वातन्त्र्यपरिहारश्च यदि चौरः स्व-  
तन्त्रतया श्रेष्ठिधनापहरणं कुर्याच्चेत् तदा ईश्वरेण किं फलं भोगयितं फलभुक्ता  
पारतन्त्र्यपरिहारश्च बुभुक्षायां पिपासायां भोजनं पानं च विषमस्तथेन मर-  
णादिफलं च कर्मकर्तुः फलभोगकर्तुश्च सामानाधिकरण्यं द्योतयन्ति ।

( भावार्थ ) यदि जीव कार्य करनेमें स्वतंत्र है और फल भोगनेमें परतंत्र  
है वहां हम यह कहते हैं कि किसी सेठके सब धनका चुराया जाना ऐसा  
फल भोगना है ईश्वर तो स्वयं धन चुराता नहीं किन्तु चोरके द्वारा धन  
चुरावावेगा तो चोरको जेलखाना नहीं होना चाहिये क्योंकि चोरने ईश्वरकी  
प्रेरणासे धन चुराया था अतः चोरकर्म करनेमें स्वतंत्र है यह बात भी वाधि-

त बुद्ध । यदि चोर स्वतंत्रतासे फन्को चुराता है तो ईश्वरने फलक्याभुगाया इधर तो ईश्वर चोरके द्वारा घन चुरवाये उधर पुलिसका खबर करे कि तुम चोरको गिरफ्तार करलो यह कहाँ तक न्याय हो सकता है । भूख लगने पर खाना रूप कार्य करनेसे सुख रूपी फल वही भोगता है जहर खाना कार्य भी जीव करता है और उसका फल मरख भी वही भोगता है । इस लिये भोग करनेमें परतंत्र है हम नियममें व्यवहार है ।

शास्त्रीजी—यद्भवद्भिः प्रतिपादितं तत्सम्बन्धं सर्वेषां पितारक्षकः यदि फल भोगे परतन्त्रो न स्यात् कः फलं भोजयेत् यदि कर्मद्वारा भोजयेत्तदा कर्मेतु गुण-स्तत्र कथं सुख दुःखदातृत्वं गुणे गुणानङ्गीकारात् ।

( भावार्थ ) जो आपने कहा सो हम मानते हैं । वह ईश्वर सबका पिता है रक्षक है । यदि जीव फल भोगमें परतंत्र नहीं मानो तो कौन फल भुगावेगा । कर्म तो गुण है और गुणमें सुख दुःख देना आदि गुण रह नहीं सके । भोजन करना यही जीवका कर्म है । फल देना ईश्वरकृत है ।

न्यायाचार्यजी—यदि ईश्वरः सर्वेषां पिता स्यात् रक्षकश्च तदा पदार्थं सृष्टौ तस्य निमित्तकारणता दृष्टान्येत रक्षपरक्षकभावो निमित्तनैमित्तिकभाव-निवर्तते यत्र रक्षपरक्षकभावो यथा रूप्यकाणां रक्षतोभृत्योनसमृत्योरूप्यकाणां निर्माता किन्तु गोप्तैव किञ्च कर्मणां च द्रव्यत्वाच्च गुणत्वेनोपकर्ष्यमानानां ता-निमित्त दोषानुषङ्गः न च सर्वथा कर्मणामेव सुखदुःखोत्पादकत्वमिति मन्या-महे एकान्तं । विषयाद्विषयान्तरगतिदोषानुषङ्गश्च न वतां निग्रहस्थानाप ।

( भावार्थ ) यदि ईश्वर सबका पिता अर्थात् ( पातीति पिता ) रक्षक है तो ईश्वर यावत् कार्यमें कारण हो नहीं सकता क्योंकि रक्षक उस चीजका हुआ करता है जो चीज पहलेसे मौजूद हो जैसे कि रुपयोंकी रक्षा रोकड़िया या किसी नोकरको दी जाती है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि रोकड़िया उन रुपयोंको बनाता है किन्तु रुपये पहले ही से बने हैं इसी तरह कार्य भी ईश्वरसे भिन्न अपने कारणोंसे आत्मलाभ कर चुके हैं तब ईश्वर क्या करता है । आपने कर्मको गुण समझ रक्खा है सो ठीक नहीं है । कर्म द्रव्य पदार्थ है और उसमें सुख दुःख दातृत्व शक्तियां मौजूद हैं । ऐसा एकान्त भी नहीं है कि कतां हतां भोक्ता कर्म ही है । आप ईश्वर कर्तृत्व विषयको छोड़कर विषयान्तरकी तरफ दीड़ते हैं । यह कर्तव्य आपका निग्रहस्थान करने वाला है ।

शास्त्रीजी—यद् भवद्भिः प्रतिपादितं तत्सम्बन्धं । परतर्कसंग्रहमधीते सो कर्म द्रव्यत्वेन नाङ्गीकरोति । पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्मनानां सि नवद्र-



व्याप्ति । विषयान्तरं न गच्छानि ईश्वर एव कर्ता सत्प्रतिपक्षहेत्वाभासस्य किं लक्षणं ।

( भावार्थ ) आपने कहा सो ठीक है । कर्मको द्रव्य जिसने तर्क संग्रह पढ़ा है सो भी नहीं कहैगा । द्रव्यमें पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन, यह नव द्रव्य मानी हैं । विषयसे विषयान्तरको मैं नहीं जाता हूँ ईश्वर कर्ता है सत्प्रतिपक्ष हेत्वाभास दिया सो हेत्वाभासका लक्षण क्या है ।

स्वायाचार्यजी—कर्मणो द्रव्यत्वं गुणपर्ययवत्त्वेन साधयामः अन्यथा जीवद्रव्यसम्बन्धे विभावपरिणामनक्रिया कथमुपपद्येन वन्धो द्रव्य द्रव्ययोर्भवति वन्धमन्तरा विभावपरिकृतिर्न स्यात् कदाचिन् नैयायिकमतगोष्ठिक्रियते कदाचित् सांख्यमतानुसारेण प्रकृति जीवेश्वरपदार्थत्रयं कल्प्यते हेत्वाभासलक्षणं च पृष्ठं तत्रेदं सूच्यते यादृशविशिष्टविषयनिश्चयविशिष्टयादृशविशिष्टविषयकत्वं अनुमिति प्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्ति तद्रूपाघटितः अनुमिति प्रतिबन्धकतायां यद्रूपावच्छिन्नविषयत्वं अवच्छेदकं तादृशं यत्स्वावच्छिन्नाविषयप्रतीति विषयतावच्छेदकं तद्रूपावच्छिन्नाविषयप्रतीति विषयतावच्छेदकपक्षत्वं तदवच्छिन्नोऽनाहारां प्रामादयज्ञानानास्कन्दित निश्चयवृत्तित्वविशिष्टयद्रूपावच्छिन्नविषयकत्वं अनुमिति प्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तितत्त्वं हेत्वाभासत्वं ईश्वरो यदि कर्ता स्यात् नित्यव्यापके क्रियाहानिः सिद्ध्यन्नवयवतिरेकगम्यो द्विकार्यकारणभावो न चेश्वरेण देशकालव्यतिरेकी घटते नित्यत्वाद् व्यापकत्वाच्च

( भावार्थ ) कर्म द्रव्य है यदि कर्मको गुण माना जाय तो विभाव परिणति का कारण नहीं होसक्ता क्योंकि द्रव्य का द्रव्य के साथ वन्ध होने पर वैभाविक परिणामन होता है यह बात अशुद्ध जीव द्रव्य में अनुभूत है । कभी आप नैयायिक मतके अनुसार नौ द्रव्यों को मानकर कर्म द्रव्य नहीं होसक्ता ऐसा कहते हैं । कभी जीव ईश्वर प्रकृति इन तरह तीन पदार्थ मानते हैं यदि ईश्वरको कर्ता माना जाय तो व्यापकमें क्रिया नहीं होसक्ती क्योंकि जो पदार्थ जितने अंश में ठना ठस भरा हुआ है उसमें देश से दूररे देशको प्राप्त होना रूप क्रिया हो नहीं सक्ती कितना ही हुशियार नटका बालकहो लेकिन अपने आप अपने कन्धे पर नहीं बैठ सक्ता अथवा कितनी ही पैनी तलवार क्यों नहीं हो आपही अपनेको नहीं काट सक्ती ईश्वर जब सब जगहमें ठनाठस भरा हुआ है उसमें परमाणुओंको प्रेरणा करना ऐसी क्रिया हो नहीं सक्ती । ईश्वरके साथ पृथिव्यादिकार्योंका अन्वयव्यतिरेक भी नहीं बनता क्योंकि जहां जहां पृथिव्यादिक हैं वहां वहां ईश्वर है इसमें कोई प्रमाण नहीं अतः अन्वय नहीं बनता जहां जहां ईश्वर नहीं है वहां २ पृथिव्यादि नहीं है ऐसा देश-

व्यतिरेक नहीं बनता क्योंकि ईश्वर व्यापक है उसका अभाव कहीं भी नहीं पाया जाता । और जब जब ईश्वर नहीं तब तब क्षिप्यादि नहीं ऐसा काल-व्यतिरेक भी नहीं बन सकता क्योंकि ईश्वर नित्य है उसका कभी किसी ( काल में भी ) अभाव नहीं मिलता अन्वयव्यतिरेक भावसे कार्य कारण भाव ठ्यास है अर्थात् अन्वयव्यतिरेकभाव व्यापक है और कार्यकारणभाव ठ्याप्य है तब व्यापक अन्वयव्यतिरेकभाव ही नहीं है तो कार्यकारणभाव जो कि ठ्यास है कैसे बन सकेगा ? ।

शास्त्री जी—यद् भवद्भिः प्रतिपादितं तत्परम्पक् । कर्म तु क्षणव्यवृत्तिं किन्तु संस्कारवशाद्धीवः फलं प्राप्नोति कर्म तु जडपदार्थः कथं चेतने फलं भोजयेत् । ईश्वरो दयालुः सचौरस्य कारागृहे प्रेषणमेव कार्यं करोति यथा दयालुनर्यायकारः तत्फलं भोजयति इन्द्रियार्थमजिकर्षीत्पक् शरीरम् ॥

( भाषार्थ ) आपने कर्मको कारण बताया कर्म तो तीनक्षण रहकर पुनः नष्ट होजाता है बाद में संस्कारके द्वारा स्वर्ग नर्कमें जीव जाता है कर्म जब जड पदार्थ है तो चेतन को फल कैसे देसकता है । ईश्वर दयालु है वह फल दिया करता है जैसे कि मजिष्ट्रेटकी यही दयालुता है कि चोरको सजाका हुक्म देवे ॥

न्यायाचार्य जी—कर्मजडपदार्थः कथं चेतने फलमुपभोजयेदिति तु विषयान्तरं वृथैव इतस्ततः कालो मीयते जडवस्तु मदिरादिनाऽपि आत्मनि विकारोत्पत्तिः प्रत्यक्षैव । ईश्वरसाधने प्रयुक्तो हेतुः कार्यत्वं सन्दिग्धव्यभिचारी स श्यामो मित्रातनयत्वादितरमित्रातनयवदित्यादिवत् न च दयालो रित्येव कर्मयत्पदोऽयं फलं दद्यात् किन्तुत्वं कर्त्तव्यता दयालुजनस्य । यत्कृपां कृत्वा तदपराधान् क्षाम्यति किं च दृष्टान्तमर्यादया स शरीरामर्षस्त्वैव ईश्वरस्य सिद्धिः स्यात् नहि सर्वज्ञाशरीरस्य तथा च भिद्वान्तव्याघातः किं च संस्कारद्वाराऽपि कर्मणः स्वर्गनरकादिफलदातृत्वे किमन्तर्गदुनेश्वरेण ॥

( भाषार्थ ) कर्म जड पदार्थ हो कर भी चेतन को विकृत कर सकता है । इसमें मदिरा सेवनसे आत्मामें मदीन्मत्तता हो जाना ही प्रमाण है । आप इस तरह विषयान्तर जाते हुए समययापन करते हैं । आपने जो ईश्वर-साधन में कार्यत्वं हेतु जो दिया वो सन्दिग्ध व्यवभिचारी है जैसे कि मित्रा नामकी स्त्रीके ४ पुत्र काले थे उन्हेंको देखकर मित्राके गर्भके लड़केको भी कालेवर्णका होना अनुमान द्वारा सिद्ध किया लेकिन इसमें सन्देह है क्योंकि ये नियम नहीं है जिसके ४ लड़के काले हैं उसके पांचवां लड़का भी काला हो इसलिये विषयसे ठ्यावृत्ति इस हेतुकी सन्दिग्ध है अतः सन्दिग्ध व्यवभिचारी

हेतु है। ईश्वरकी दयालुता यही है कि उसको कल देना जैसे कि मजिस्ट्रेटकी दयालुता यही है कि चोरको जेलखाने भेजे यह आपने कहा सो सर्वश वाधित है वो तो सभी दयालु हो सकते हैं एकने गाली दीनी दूसरेने गाली देने वाले को प जूते लगा देने ये भी दयालु हो जायगा। महाशय जी ऐसी दयालुता को कोई पानर लड़का भी दया नहीं कह सकता दया वही है कि उसके अपराधों को क्षमा करदे। आपके दिये दूष्टान्त (कुनान) से ईश्वर शरीर सहित तथा असर्वज्ञ ही सिद्ध होगा क्योंकि नदी पत्रनादिन कार्य भी बिना शरीर के बन नहीं सकते और जो अस्पृश बन होता है वही अपनी इच्छापूर्ति के लिये घट पटादि बनाया करता है तथा गर्मी और सर्दी के चारचार महीने सो ठीक निकलते हैं। लेकिन चतुर्मासमें अक्षर परमेश्वर गलती कर देता है कभी दो दो महीने बिना वर्षा के निकल जाते हैं अतोपि अस्पृशता आदे ऐसा मानने तो स्वनिदान से विरोध पड़ेगा। यदि दुर्भिक्ष स्वर्ग नर्क आदि जीवोंके धर्म अधर्मसे होते हैं ऐसा कहोगे तो वोचमें ईश्वरकी माननेकी क्या आवश्यकता है॥

शास्त्री जी—यद्भवद्भिः प्रतिपादितं तत्सम्प्यक। जगत् उत्पद्यते विनश्यति सन्नैमित्तिकः निमित्तमन्तरा नोत्पद्यते विनश्यति सन्नैमित्तिक ईश्वरः जीवकर्मकरश्चैव स्वतन्त्रः फलभोगे च परतन्त्रः।

( भावार्थ )—जगत् बराबर उत्पन्न होता है नष्ट होता है यह उत्पाद विनाश बिना किसी निमित्त के हो नहीं सकता वो निमित्त कौन है ? ईश्वर। जीव कर्म कानेमें स्वतन्त्र है और फल भोगनेमें परतन्त्र है ॥

न्यायाचार्य जी—अस्मत्प्रदत्त दोषपरिहारश्च न विधीयते। उत्पादविनाशी च यद्यपि नैमित्तिकी परं न स निमित्त ईश्वरः किन्तु अनन्तगुण समुदायात्मके द्रव्ये एको द्रव्यत्व नामको गुणो वर्तते तद्द्वारा एकानवस्थां त्यक्त्वा अवस्थान्तरं प्राप्नोति नित्यशस्तत्र च बहूनि अनिर्धारितानि निमित्तानि यथा मुद्रादिना घटस्याभिघाते घटो विनश्यति कपाल मुत्पद्यते। किञ्च संसारे यानि कुत्सितकार्याणि तेषां सर्वेषां विधाता ईश्वरः स्यात् तस्य सर्वत्र निमित्तकारणत्वात् यदि कार्यमात्रव्यापारे तस्य नैमित्तिको यत्नः। तदा क्षित्यादि कार्यकर्तृव्यतायां तस्य निमित्तं वाक्यं यदि स्वाभाविकस्तदा सृष्टिप्रलयदि विरुद्धकार्योत्पत्तिरेकेण स्वभावेन कथं घटेत् ॥

( भावार्थ ) महाप्राज्ञ जी महाराज हम दोष देते हैं उनको आप बिलकुल ही चढ़ादेते हैं अस्तु तुष्यन्तु न्यायेन हम आपका प्रत्युत्तर अवश्य ही देंगे। उत्पाद विनाश ईश्वरकृत हैं यह हो नहीं सकता दो विरुद्ध धर्म निरपेक्ष एक अस्तुमें रह नहीं सकते अनन्त गुणके समुदाय रूप द्रव्यमें द्रव्यत्व नाम

की एक शक्ति है वह एक अवस्थाको छोड़कर दूसरी अवस्थाको प्राप्त करती रहती है और भी अनेक निमित्त हैं जैसे कि मुग्धसे घटको तोड़ डाला तो घटका नाश और कपालके उत्पादमें मुग्ध निमित्त कारण पड़ा यदि ईश्वर कार्य मात्रमें निमित्त कारण माना जाय तो जितने संसारमें घुरे काम होते हैं सब ईश्वरकी तरफसे समझे जायेंगे । यदि घुरे भले कार्य करना या पर्वत समुद्रादि बनाना उसका निमित्तिक कर्म है तो जो निमित्त क्या है गंगा नदी हिमालय पर्वत जब बनाया या उसके पहले क्या जो निमित्त नहीं था । यदि कार्य कर्तव्यता विधि उसकी स्वाभाविक मानी जाय तो एक पदार्थमें दो स्वाभाविक विरुद्ध धर्म रह नहीं सकते अतः ईश्वर में सृष्टि रचना प्रलय विधान ये दो स्वाभाविक धर्म असम्भव हैं ।

शास्त्री जी—यत्प्रतिपादितं तत्सम्यक् । किन्तु जीवाः कर्मकरास्ते स्वतन्त्रा इति प्रतिपादितं ईश्वरः दयालुः सन् फलं ददाति यथा मज्झिमे-वसल्लो-कस्य न चौरः कारावासं गन्तुमिच्छति स ईश्वरः दयालुः सर्वशक्तिमान् व्यापकः सर्वेषांगुरुः सर्वज्ञः ।

( भावार्थ ) जी आपने कहा सो ठीक है । जीव ही कर्म कुकर्म करते हैं ईश्वर तो फल भुगतवाता है जैसे चोर चोरी तो स्वतन्त्र करता है जेल खाने में परतन्त्र होकर जाता है वह ईश्वर दयालु है फल देता है सर्व शक्तिमान् है सबका गुरु है सर्वज्ञ है ।

न्यायाचार्य जी—पुनरपि दोषान् निगमन्ति भवन्तो यद्येवं प्रणालिर्वरीवर्तते तदापि ईश्वरेणापराधं यज्जानाम् कुकर्मभ्यो न निषेधयति नच कश्चित्पिता जन्मान्धं स्वपुत्रं कूपोन्मुखं विनोक्त्य तत्राभिपातं स्वपुत्रस्येच्छति पश्चादप्युदाने समुत्सुकी भवेत् किन्तु पूर्वत एव निषेधेन पितृत्व धर्मं परिपालनाद्यादेशमेव यः कश्चिज्जनः कुकर्म कर्तुमुत्तमहेतु तदैव ईश्वरस्य निषेधेन भाव्यं यथा राजकीय कोटपालादयः चौर्यकर्म कर्तुमुत्सुकान् चौरान् प्रणमत एव प्रवन्धयन्ति यदि ते जानीयुश्चेत् । भवदभिमतश्च ईश्वरः सर्वज्ञो व्यापकश्च । किंच कुकर्म निवाराणे तस्य शक्तिरपि विद्यते सर्वशक्तिमत्त्वात् निवारणमपि सम्यक् कर्तव्यं तस्य दयालुत्वात् ।

( भावार्थ ) यदि आप यही कहते हैं कि जीव ही कर्म कुकर्मोंका कर्ता है और ईश्वर दयालु है अतः फल देता है हम नियम के अनुसार भी संसार में कोई कुकर्म नहीं होना चाहिये । दयालु पिताका यह कर्तव्य नहीं है कि अपने अन्धे लड़केको पहले तो कूपमें गिर जाने दे पुनः उसको निकाल कर

उस गस्तीका फल दे। ये संसारी जीव जब कुकर्ममें लगे हैं तो अन्धे ही हैं अतः कुकर्म करनेके पहले ही रोक देना चाहिये किसी जीवकी कुकर्म करनेकी इच्छा हो रही है उसको ईश्वर जानता भी है क्योंकि सर्वज्ञ है जहां कुकर्म कर रहा है वहां भी है क्योंकि वो सर्व व्यापक है। कहीं १० आदमी चोरी करनेका विचार करते हों तो कीतबाल आदि यदि जान जाय तो पहले से ही रोक देते हैं अशक्ति हो या नहीं मालूम हो यह दूसरी बात है लेकिन अशक्ति और अज्ञान ईश्वरमें हो ही नहीं सकते क्योंकि वो आपने सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् जाना है अतः वो रोक सकता है और रोकना उसको बाजिब भी है क्योंकि वो दयालु है। अतः ईश्वर को उक्त विशेषणोंसे विशिष्ट मानोगे तो संसार में कोई कुकर्म नहीं होना चाहिये।

शास्त्री जी—यत्प्रतिपादितं तत्परम्पक् । परन्तु अमृतकर्माणि ईश्वरेण कृतानि इति न । जीवः स्वकर्म प्रेरितः करोति ईश्वरः कर्ता स्वतन्त्रत्वात् विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता इति अतश्च अतः कर्तृत्वमीश्वरेऽनुमीयते ।

( भावार्थ ) जो कह रहे हैं ठीक है। ईश्वर अमृतकर्माँ तो नहीं करता। यह जीव कर्म की प्रेरणासे करता है। लेकिन ईश्वरमें स्वतन्त्रता है इस लिये स्वतन्त्रः कर्ता इस नियमके अनुसार ईश्वर ही कर्ता है आगम ( वेद ) में भी कर्ता लिखा है अब आप क्या कहते हैं।

न्यायाचर्यजी—यदि कर्मप्रेरितो जीवः कुकार्यं करोति पुनः स्वतन्त्रतया ईश्वरः कर्ता इति वदतोऽप्याघातः । आगमस्य अन्योन्याश्रयदोषदुष्टत्वाद् प्रामाण्यं । ईश्वरस्वरूपज्ञानं आगमप्रमाणाधीनं । आगमप्रामाण्यं चेष्टाराधीनमिति किञ्च अस्मत्प्रदत्तदोषार्थां चानिवारणा भवतां निग्रहस्थानाय किञ्च हेतोः सत्प्रतिपक्षत्वं व्याप्तिज्ञानस्यानुमिति करणस्य भवदभिनतमिष्टयाज्ञानस्य कथं ऋदनुमितिकारणं पितरमन्तरेण न पुत्रोत्पत्तिरिति दूष्टान्तस्य मृष्टयादौ समुत्पन्न युवपुरुषैर्दूष्टान्ताभासत्वं वन्यवनस्पतिप्रभृतिभित्त्यभिचारः कर्मकर्तृत्वतायां स्वतन्त्रतायां कर्मभूक्तौ परतन्त्रतायां प्रतिपाद्यमानायां श्रेष्ठिचौरदूष्टान्तेन नियमभङ्गश्चेति पञ्चदोषनिवारणीया अन्यथा प्रमाखतदाभानौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृता परिहृतदोषी वादिनः साधनतदाभानौ प्रतिवादिना दूषकभूषणे चेति नियमानुसारेण भवतां पराजयप्राप्तिः स्यात् ।

( भावार्थ ) कर्मकी प्रेरणासे ही यदि जीव कुकर्मों को करता है ऐसा आप फरमाते हैं और ईश्वर स्वतन्त्रतया कर्ता है यह तो वदती व्याघात दोष है अथवा मातामें अन्धका की तरह बाक्य है। वेदसे जो आप ईश्वर कर्तृत्व सिद्ध करना चाहते हैं इसमें अन्योन्याश्रय दोष है ईश्वर कर्तृत्वमें प्रमा-

खाना आगम ( वेद ) द्वारा होगी और वेदमें प्रमाणाता ईश्वरके वाक्य हैं इस से होगी अतः आगममें प्रमाणावय नहीं हो सक्ता ॥ अभी तक आपने हमारे दिये हुये दोषोंका परिहार नहीं किया हमने पाँच दोषोंका उद्घाटन किया है प्रथम कार्यत्व हेतुको सत्यतिपत्तिन किया था अर्थात् पृथिवी अङ्कुर मेरु आदिक किसी कर्ताके बनाये हुये नहीं है क्योंकि शरीरके द्वारा बने हुये ये प्रमायित नहीं होते जैसे कि आकाश । दूसरा कार्यत्वहेतुसे कर्ताको सिद्ध करनेका अनुमान जो किया सो हो नहीं सक्ता क्योंकि अनुमान व्याप्तिज्ञान से होता है व्याप्तिज्ञान तुम्हारे यहां मिथ्याज्ञानोंमें गर्भित है संशय, विपर्यय, तर्कयेतीन आपने मिथ्या ज्ञान माने हैं तर्क ज्ञान कहिये अथवा व्याप्ति ज्ञान ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं । मिथ्या ज्ञान रूप व्याप्तिज्ञानसे सम्पन्नमान स्वीकार्य हो नहीं सक्ता कारण मिथ्या है तो कार्य भी मिथ्या हुआ करता है ॥ तीसरा कर्तामाननेमें पिताके बिना पुत्रकी उत्पत्ति नहीं होती यह दृष्टान्त आपने दिया था सो भी ठीक नहीं है क्योंकि सृष्टिकी आदिमें उद्भवते कूदते सैकड़ों युवा पुरुष उत्पन्न हो जाते हैं स्वयं आप उनके माता पिता नहीं मानते अतः यह दृष्टान्ताभास है । चौथा कार्यत्व हेतु व्यभिचरित है जङ्गलमें पैदा हुई घास जड़ी खूटीका कोई कर्ता प्रमाणासे सिद्ध नहीं होता अतः मंदिग्धट्टयभिचारीभी है । पाँचवां कर्म करनेमें जीव स्वतन्त्र है और फल भोगनेमें परतन्त्र है हममें चोरका दृष्टान्त जो दिया था अर्थात् किसी सेठने ऐसा कर्म किया जिसका कि फल सेठका सब धन चुराया जाय ऐसा मिलना है अब ईश्वर तो स्वयं चुराने आता नहीं चोर उसका धन चुराता है । यदि ईश्वर चोरसे चुरवाता है तो चोरको जेलखाना क्यों होता है तथा ईश्वर कुकर्महारक भी ठहरा और यदि चोर स्वतन्त्र चोरी करता है तो ईश्वरमें फल दातृत्व क्या रहा । अतः आपके “कर्म करने में स्वतन्त्रजीव है फल भोगनेमें परतन्त्र है,, इस प्रतिज्ञा तथा नियमका व्याघात होगया ।

इन पाँच दोषोंका निवारण करके आगे चलिये अन्यथा न्याय सिद्धान्त के नियमानुसार आपका पराजय होजायगा ।

रात्रि विशेष हो जानेके कारण सर्व साधारणकी आज्ञानुसार जय जयकार ध्वनिके साथ सानन्द सभा समाप्त हुई ।

अन्तर्भेग जैन वेद्य, मन्त्री

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिकी सभा-इटावा



• वन्दे जिनवरम् •

# शास्त्रार्थ अजमेर



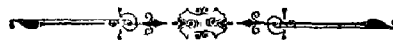
अर्थात्

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा और आर्यस-  
माज अजमेरका “ईश्वर इस सृष्टिका  
कर्त्ता है या नहीं” इस विषय  
पर लिखित शास्त्रार्थ ।

( “क” और “ख” विभाग )

जिसको

चन्द्रसेन जैन वैद्य मन्त्री श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी  
सभा इटावा ने सर्व साधारण के हितार्थ  
छपाकर प्रकाशित किया ।



श्री वीर निर्वाणाब्द २४३८ .

प्रथमावृत्ति  
१०००

}

{ कीमत २)  
सैकड़ा १०)

Printed by B. D. S. at the Brahma Press  
Etawah.



## उपसंहार ।

इन दोनों श्रोत्रार्थों को पढ़कर कहीं कोई ऐसा अनुमान न लगाते कि जैन लोग ईश्वरको नहीं मानते अतः ईश्वरका स्वरूप सर्व साधारणके ज्ञापनार्थ प्रकाशित किया जाता है ।

कर्म मल रहित शुद्ध जीवनमुक्त या मुक्तजीवको ही ईश्वर कहते हैं जिसमें कि क्षुधा, तृषा, भय, जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक, रति, अरति, विस्मय, खेद, स्वेद, मद, निद्रा, रागद्वेष और मोह ये अठारह दूषण नहीं है । यथोक्तं वा—

त्रैलोक्यं सकल त्रिकालविषयं माम्लोकमालोकितं ।

साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं मांगुलि ॥

रागद्वेषभयानघान्तकजराभोलटव्रजोभादयो ।

जालं यत्पदलघनाय स महादेवो मया वन्द्यते ॥

या जो अथ ऐसा विशिष्ट आत्मा होगया है कि जोः—

न द्वेषी है न रागी है मदानन्द बीतरागी है । वह सब विषयोंका त्यागी है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ १ ॥ न खूद घटघटमें जाता है मगर घटघट का जाता है । वह सब बातोंका जाता है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ १ ॥ न करना है न हरता है नहीं भीमार धरता है । मारता है न मरता है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ २ ॥ ज्ञानके नूरसे पुरनूर है जिनका नहीं मानी । सरासर नूर नूरानी जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ३ ॥ न क्रोधी है न कामी है न दुश्मन है न हामी है । वह सारे जगका स्वामी है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ४ ॥ वह जाते पाक है दुनियाँके कण्ठोंसे सुवार्ता है । आग्निमुलगैव है वे ऐश्वर्य ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ५ ॥ दयामय है शान्ति रस है परमवीर्य सुद्रा है । न जाधिर है न काधिर है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ६ ॥ निरंजन निर्विकारी है निजानन्द रस विहारी है । मदा कल्याणकारी है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ७ ॥ न जग जंजाल रखता है करम फलका न दाता है । वह सब बातोंका जाता है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ८ ॥ वह सच्चिदानन्द रूपी है ज्ञानमय शिव स्वरूपी है । आप कल्याणरूपी है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ९ ॥ जिस ईश्वरके रयाननेनी बने ईश्वर कहै न्यासन । वही ईश्वर हमारा है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ १० ॥

या संक्षेपमें यों कहिये कि वह सर्वज्ञस्वमति बीतराग अर्थात् जाता दृष्टा है ॥

अन्तमें जिसकी पूर्ण आज्ञा यथा दृढ़ विश्राम है कि सर्वसाधारण इस प्रकार ईश्वरके यथार्थ स्वरूपका अद्वानकर सदैव स्व पर कल्याण कर सकने में समर्थ होंगे ।

चन्द्रदेन जैन वैद्य, सम्प्रदायी श्री जैन तत्त्व प्रकाशिनी सभा, इटावा ।



\* वन्दे जिनवरम् \*

# शास्त्रार्थ अजमेर ।

सर्व सज्जनोंको ज्ञात हो कि ता० ११ जुलाई १९१२ ई० मे श्री जैनतत्व-प्रकाशिनी सभा और आर्यसमाज अजमेर मे "ईश्वर सृष्टिकर्ता है कि नहीं, इस विषय में एक लिखित शास्त्रार्थ चल रहा है जिसमें कि आर्यसमाज का यह पक्ष है कि सृष्टि का कर्ता ईश्वर है और जैनियों का पक्ष यह है कि ईश्वर सृष्टिकर्ता नहीं है ॥

यह शास्त्रार्थ सर्व साधारणके सत्यासत्य निर्णयार्थ क्रमशः प्रकाशित किया जाता है । इन शास्त्रार्थके ( क ) और ( ख ) ऐसे दो विभाग हैं । ( क ) विभाग में पूर्वपक्ष जैनियों का और उत्तर पक्ष आर्यसमाज का है । ( ख ) विभाग में पूर्वपक्ष आर्यों का और उत्तर पक्ष जैनियों का है ॥

मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य ।

## ( क ) विभाग ।

\* वन्दे जिनवरम् \*

( क ) पत्र नं० ?

श्री जैनतत्व प्रकाशिनी सभा--

वर्तमान स्थान अजमेर । ता० ११ । ७ । १९१२

प्रिय महाशय ! जय जिनेन्द्र ।

कृपा कर निम्न लिखित प्रश्न का उत्तर दे परम अनुगृहीत करिये ।

( प्रश्न ) सृष्टिकर्ता ईश्वरके सद्भावमें प्रमाण क्या है ?

भवदीय — मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य

ओ३म्

नं० ३१४

आर्यसमाज--अजमेर ।

ता० ११ । ७ । १९१२

श्री युग महाशय जी ! नमस्ते ।

जैनप्रश्न--सृष्टिकर्ता ईश्वरके सद्भावमें प्रमाण क्या है ? ॥

उपरोक्त प्रश्न का उत्तर:-

मानसिक प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ।

मानसिक प्रत्यक्ष इस प्रकार कि उसके आनन्द गुणका जो समाधि और सुषुप्ति में अनुभव होता है ॥

अनुमान--ईश्वर जगत्कर्ता है, प्रतिज्ञा ।

जगत् में विकार और सावयव जो पाकज गुण संयोगसे होते हैं जिस का होना कर्ताके आधीन है देखने से—

जैसे घड़ी आदि सावयव और विकारी पदार्थ कर्तासे होते हैं, जहां २ विकार और सावयवकत्व है वह कर्ताका बतलाने वाला है—अतएव जगत् में विकार और सावयवत्व पाये जानेसे इसका कर्ता अवश्य है ॥

शब्द--वेदसे लेकर जगत् के जितने दार्शनिक विद्वान् हैं वे जगत्कर्ता ईश्वर की सत्ताके लिये बहुत प्रमाण देते हैं ॥

[भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्मा,

\* वन्दे जिनवरम् \*

( क ) पत्र नं० २

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा -

वर्तमान स्थान अजमेर । ता० ११ । ७ । १८९२

प्रिय महाशय ! जय जिनेन्द्र ।

हमारे प्रश्नके उत्तरमें आपके ११ जुलाईके पत्र नं० ३१४ के उत्तरमें निवेदन है कि ईश्वरके सद्भावमें आपने जो प्रथम ही मानसप्रत्यक्ष प्रमाण दिया है सो ठीक नहीं है । क्योंकि मानसप्रत्यक्षके दो भेद हैं । एक स्वसंवेदन मानसप्रत्यक्ष, दूसरा इन्द्रियगृहीतार्थ मानसप्रत्यक्ष । स्वसंवेदन मानसप्रत्यक्षमें विषय स्वात्माही होता है और इन्द्रियगृहीतार्थ मानसप्रत्यक्षमें इन्द्रियव्यापारोपरत अवस्थामें स्पर्शनादि इन्द्रियगृहीत पदार्थोंका ही अनुमान होता है इस लिये दोनों ही प्रकारके मानसप्रत्यक्षका विषय ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि चाहे सुषुप्ति अवस्था हो वा समाधि अवस्था हो मन आदिक इन्द्रियोंकी अविवक्षमें प्रवृत्ति नहीं होती अन्यथा मनके द्वारा ही अतीन्द्रिय पदार्थोंका मानसप्रत्यक्ष होने से सर्व जीवोंके सर्वज्ञताका प्रसङ्ग आवेगा । यद्यपि परोक्षप्रमाणसे ज्ञातपदार्थोंके ज्ञानमें भी मन कारण पहुँचा है परन्तु मानसप्रत्यक्षमें मनका विषय स्वस्वमा वा इन्द्रियगृहीत पदार्थ ही होते हैं ।

ईश्वरके सद्भावमें आपने जो अनुमान प्रमाण दिया है सो भी ठीक नहीं

है क्योंकि ईश्वर जगत्कर्ता है यह आपकी प्रतिज्ञा है इसमें ईश्वर पक्ष है और जगत्कर्तृत्व साध्य है सो पहले ईश्वरकी सत्ता सिद्ध कर लीजिये पश्चात् उसमें सृष्टिकर्तृत्व सिद्ध करना । तथा ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्व सिद्ध करने में भी ईश्वर पक्ष है और जगत्कर्तृत्व साध्य है और विकारित्व तथा साधयवत्त्व हेतु हैं । हेतु की वृत्तिपक्षमें होनी चाहिये किन्तु आपके दिये हुये हेतुओंकी वृत्ति साध्यके एकदेशरूप जगत्में है । इसलिये अनुमिति मिथ्या है ।

ईश्वरके मद्भाषमें आपने तीसरा शब्द प्रमाण दिया है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि सांख्य, मीमांसक, बौद्ध और जैन चारों ही दार्शनिक ईश्वर को जगत्कर्ता नहीं मानते ।

हमारे प्रथम प्रश्नके उत्तरमें आपने जो मानसिकप्रत्यक्ष, अनुमान व शब्द प्रमाण दिये हैं । सो कृपा करके लिखिये कि आप प्रमाण सामान्य व प्रमाण विशेषके लक्षण कौनसे दर्शनके अनुसार मानते हो ? यदि किसी दर्शनके अनुसार नहीं मानते तो आप प्रमाणके सामान्य व विशेष लक्षण क्या मानते हैं सो लिखिये । क्योंकि प्रमाणके सामान्य व विशेष लक्षणके निर्णय हुये बिना हम आपके दिये हुये प्रमाणोंमें दोष निदर्शन कैसे कर सकेंगे । वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, मीमांसा और वेदान्त इन छः दर्शनों में से कितने दर्शनशास्त्रोंको आप प्रमाणभूत मानते हैं ?

भगदीय—मन्त्री चन्द्रमेन जैन वैद्य

—(०:)—

ओ३म्

(क) पत्र नं० २ ता० ११ । ७ । १९१२ ई० का

आपसमाज--अजमेर ।

उत्तर,

ता० १८ । ७ । १९१२,

श्रीमान् ! नमस्ते ।

आपने जो मानसिक प्रत्यक्षके दो भेद किये हैं हमका क्या प्रमाण है । आपने जो मानसिक प्रत्यक्षका विषय केवल आत्माको ही माना है, यह आपनाश्रय दोष युक्त है । क्योंकि आत्मा ही प्रमाना अर्थात् जानने वाला और आत्मा ही प्रमेय अर्थात् जाननेका विषय और जो इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जावे वही इन्द्रियोंका प्रत्यक्ष है । सुख दुःखकी उपलब्धिका साधन मन है, जैसा कि महात्मा गौतमने माना है और सुखस्वरूप ईश्वर है, यदि जीव सुखस्वरूप होना तो किसीकी सुखकी इच्छा न होती । इच्छा अप्राप्त इष्टकी

हुआ करती है सुख जीवका स्वाभाविक गुण होनेसे अप्राप्त नहीं, इस वास्ते सुख जीवका स्वाभाविक धर्म नहीं, जीव सुख भोगने वाला है और ईश्वर सुखस्वरूप है जिसके गुणोंका जिनसे प्रत्यक्ष ही उसीसे उस द्रव्यका प्रत्यक्ष माना जाता है। जब सुख की उपलब्धिका साधन न्यायमतानुसार मन है तो मानसिक प्रत्यक्ष ईश्वरका मानना ही पड़ेगा। इसी वास्ते उपनिषद्कारोंने कहा था कि "वह परमात्मा मन ही से जाना जाता है जिसका मन भल, विशेष आवरण दोषसे शून्य हो उसीको ईश्वरका मानन प्रत्यक्ष होता है सबको नहीं॥

इसमें क्या हेतु या प्रमाण है कि मनका विषय स्वात्मा ही होता है इस युक्ति शून्य दावेको सिद्ध करके दिखलाइये।

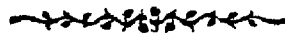
आपने जो ईश्वरके जगत्कर्ता होने पर विचार आरंभ किया है तो क्या ईश्वर की सत्ता माने बिना ही किया है। अबतक जैनियों का दावा था कि हम ईश्वर को तो मानते हैं किन्तु जगत्कर्ता नहीं मानते। हम लेखसे जाना गया कि आप ईश्वर की सत्ताको भी स्वीकार नहीं करते। इस विषयमें आप मेरे खनाये ईश्वर प्राप्ति, ईश्वर विचार आदि पुस्तकों को देख सकते हैं। जब कि हेतुका लक्षणही यह है जो उदाहरणके माध्यमसे साध्यका साधन हो यदि पक्षमें हेतु हो तो वह साध्यका कैसे साधन करेगा ! और पक्षमें साध्य के रहने से जो साध्यमें हेतु रहेगा वह पक्षमें भी रहेगा। अनुमिति सिद्धया है यह आपकी प्रविज्ञा है, इसको सिद्ध कीजिये।

ईश्वरके सद्भावमें तीसरा शब्द प्रमाण है जिनमें आपने सांख्य मीमांसा और बृहद् जैनको इनका कर्ता बतलाकर उस प्रमाणका निषेध किया है। चूंकि ईश्वर जगत्कर्ताके सांख्य और मीमांसा का विरोधी नहीं है प्रत्युत उनका विषय दूसरा है। आप ऐसा कोई सूत्र मीमांसा और सांख्यमें दिखनावें कि जहां ईश्वरके जगत्कर्ता होने का खंडन किया हो। रहे जैन कीहु यह दोनों दर्शन नहीं किन्तु मत हैं। मन्तिक फिलासफी आदि मय न्याय वेदान्त आदि शास्त्रोंके साथी हैं। हम प्रमाणके लक्षण पद शास्त्रोंके अनुकूल मानते हैं ब्रह्मासे लेकर जैमिनी पर्यन्त जितने ऋषि हुए हैं उन सबके वाक्य हमारे लिये प्रमाण हैं।

चूंकि आपके प्रथम प्रश्नमें ईश्वर जगत्कर्ताके सद्भावमें प्रमाण पूछा गया था और हम पक्षमें ईश्वरके सद्भावपर भी आपने प्रमाण मांगा है तो प्रति-

ज्ञान्तर नियह स्थान है । अपनी प्रतिष्ठाको ठीक कीजिये ।

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्मा ।



\* वन्दे जिनवरम् \*

( क ) पत्र नं० ३

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा—

इटावा । ता० ३१ । १ । १९१२

महाशयवर ।

जुहारकी पश्चात् निवेदन है कि “सर्वत्रसाधकाभावादेव वस्तुव्यवस्थितिः” अर्थात् सर्वत्र साधकके अभावसे वस्तुका निश्चय होता है । इस न्यायसे मान-प्रत्यक्षके समस्त भेदोंका इन दोनों ही भेदोंमें गर्भित होनेसे मानप्रत्यक्षके दो भेद होना युक्ति सगत है । और पहले पत्रमें हम लिख चुके हैं कि “अन्यथा मनके द्वारा ही अतीन्द्रिय पदार्थों का मानन प्रत्यक्ष होनेसे सर्व जीवोंके सर्वज्ञताका प्रसङ्ग आवेगा” इसका उत्तर आपने कुछ नहीं दिया ।

स्वमंत्रेण मानप्रत्यक्षमें जो आपने आत्माही प्रमाता और आत्मा ही प्रमेय होनेमें आत्माश्रय दोष दिखलाया सो भी ठीक नहीं है क्योंकि आप का सर्वज्ञ अपने आपको जानता है या नहीं ? अगर जानता है तो आप ही प्रमाता और आपही प्रमेय होनेसे, आत्माश्रय दोष होगा । अगर नहीं जानता है तो सर्वज्ञ नहीं रहा ।

और आपने लिखा कि “जो इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जावे सो इन्द्रिय प्रत्यक्ष है” सो भी ठीक नहीं क्योंकि अगर कोई पुरुष प्रथम क्षणमें चक्षुसे घटको जानकर आंखें बन्द करले और फिर उसी पुरुषके द्वितीय क्षणमें जो घटज्ञान होता है वह इन्द्रियप्रत्यक्ष है या मानसिकप्रत्यक्ष ? यदि उसको इन्द्रियप्रत्यक्ष कहेंगे तो उस समय इन्द्रियोंका व्यापारही नहीं है तो इन्द्रियप्रत्यक्ष कैसे कह सकते हो । फिर आपने लिखा कि “सुख ईश्वरका स्वरूप है जीवका नहीं” सो भी ठीक नहीं क्योंकि आपके न्याय दर्शनकार गौतम ऋषिने न्यायदर्शनमें पहले अध्याय प्रथमाह्निकके दशवें सूत्रमें सुखको आत्मा का स्वरूप बताया है “इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानाभ्यात्मनोलिङ्गम्” अगर सुख ईश्वरका गुण है तो “अन्यद्रव्यगुणा अन्यद्रव्ये न जायन्ते” इस न्यायसे ईश्वरका सुख गुण जीव द्रव्यमें नहीं आसकता । कदाचित् कहो कि ईश्वर के सुख गुणको जानने से आत्मा सुखी अर्थात् सुखवन् होता है । सो भी ठीक

नहीं है क्योंकि पृथ्वीके गन्ध गुणकी जाननेसे आत्मा गन्धवान् नहीं होता।

सुख आत्माहीका गुण है परन्तु कर्मोपाधिसे उस सुख गुणकी वैभाविक अवस्था होरही है। सुखकी इस वैभाविक अवस्थाको ही दुःख कहते हैं। सुख गुणकी स्वाभाविक अवस्था कर्मोपाधिके निमित्तसे अप्राप्त है। कर्मोपाधिके दूर होनेसे उसकी प्राप्ति होती है। इसलिये अप्राप्तरूप सुखकी स्वाभाविक अवस्थाकी प्राप्ति की इच्छा करता है।

फिर आपने लिखा कि “इसमें क्या हेतु वा प्रमाण है कि मनका विषय स्वात्माही होता है, इस युक्तिशून्य दावेको मिट्टकर दिखनादिये, मो आपका यह लिखना नितान्त असंगत है क्योंकि हमने यह लिखाया कि “स्वसंवेदन मानसप्रत्यक्षमें विषय स्वात्माही होता है” इसलिये आप मतानुज्ञा नामक नियमस्थान पात्र हैं।

पुनः आपने लिखा कि “आपने जो ईश्वरके जगत्कर्ता होनेपर विचार आरंभ किया है मो क्या ईश्वरकी मत्ता माने बिनाही किया है अवतक जैनियोंका दावा था कि इस ईश्वरकी तो मानते हैं किन्तु जगत्कर्ता नहीं मानते इस लेखसे जाना गया कि आप ईश्वरकी मत्ता स्वीकार नहीं करते” मो युक्ति संगत नहीं क्योंकि जैन लोग कर्ममनुक्त जीवोंको ही ईश्वर मानते हैं। आप जीवराशि भिन्न किसी भिन्न द्रव्यकी सृष्टिकर्ता ईश्वर मानते हैं। इसमें ईश्वरकी मत्ताको स्वीकार नहीं करते। ईश्वरके मद्भावमें अनुमानप्रमाण देने हुए आपने लिखाया कि “ईश्वर जगत्कर्ता है” यह प्रतिज्ञा है। और “विकारित्व” और “साधयवत्त्व” हेतु है। तथा इस पत्रमें आप लिखते हैं कि “पक्षमें हेतु हो तो वह साध्यको कैसे साधन करेगा” मो आपके इन वाक्योंको साँचकर हंसी आती है और आपकी न्यायशास्त्रज्ञतापर आश्चर्य होता है। कहिये महाराज! “पर्वतो वह्निमान् धूमश्चान्गद्वानमवत्” इस जगन्मानव अनुमितिमें पर्वतरूप पक्षमें धूमत्व हेतु रहकर वह्निमत्त्व साध्यको कैसे मिट्ट करता है;

आपकी प्रतिज्ञामें ईश्वर पक्ष है, जगत्कर्ता साध्य है। अब आप कहिये कि आपका विकारित्व और साधयवत्त्व हेतुकी वृत्ति पक्षमें है या नहीं? यदि है तो विकारित्व और साधयवत्त्व हेतुकी व्याप्ति सकर्तृताके साथ आप करते हैं। जैसे कि आपने अपने पहले पत्रमें लिखा है। इसलिये आप की इस अनुमितिसे ईश्वरका भी कोड़े कर्ता है। ऐसा मिट्ट होता है। यदि आ-



पका विकारित्व और सावयवत्व हेतु ईश्वररूप पक्षमें नहीं रहता तो हेतुमें पक्षधर्मताके अभावका प्रसङ्ग आया । अथवा असिद्ध हेत्वाभास है ।

फिर आप लिखते हैं कि “और पक्षमें साध्यके रहनेसे जो साध्यमें हेतु रहेगा वह पक्षमें भी रहेगा” आपका साध्य है जगत्कर्तृत्व, इस जगत्कर्तृत्व साध्यमें आपके हेतुकी वृत्ति है और आपका साध्य रहता है पक्षमें इसलिये साध्यके पक्षवृत्ति होनेसे पक्षवृत्ति मानी सो कृपानाथ ! साध्य असिद्ध होता है । इसलिये आपके हेतुको साध्यवृत्ति होनेसे असिद्धता आती है ।

अथवा जगत्कर्ता साध्यमें विकारित्व और सावयवत्व हेतुकी वृत्ति होनेसे आपका कर्ता सत्कर्तृक सिद्ध हुआ क्योंकि आपने विकारित्व और सावयवत्व की व्याप्ति सत्कर्तृताके साथ मानी है । इत्यादि अनेक दोषोंसे दूषित होनेसे आपकी अनुमिति नितान्त मिथ्या है ।

ईश्वरके प्रमाणमें तीसरे शब्द प्रमाणमें आपने लिखा कि “ईश्वर जगत्कर्ताके सारूप्य और मीमांसक विरोधी नहीं हैं” सो भी आपका कहना ठीक नहीं है क्योंकि सारूप्य दर्शनके प्रथमाध्यायके “ईश्वरसिद्धेः” इस ९२ वें सूत्र में कपिल ऋषिने ईश्वरकी सत्ता से इन्कार किया है । और जबकि ईश्वरकी सत्ताको स्वीकार नहीं किया तो उनके सृष्टिकर्तृत्व धर्मको स्वीकार करने की कथा ही कहा । तथा आप ईश्वरके सद्भावमें वेदका प्रमाण देते हैं परन्तु वेदके प्रामाण्यमें क्या प्रमाण है । यदि ईश्वराक्त होनेसे वेदकी प्रमाण कहते हो तो ईश्वरकी सिद्धि वेदाधीन और वेदकी सिद्धि ईश्वराधीन होनेसे अन्योन्याश्रय दोष आता है ।

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य,



ओ३म् ।

आर्य्यसमान अजमेर ।

( क ) पत्र नं० ३ का उत्तर

ता० ९ । ८ । १२

महाशयवर ! नमस्ते ।

१-“सर्वत्रवाधकाभावादेववस्तुव्यवस्थितिः ।” अर्थात् सर्वत्र वाध्यके अभावसे वस्तुका निश्चय होता है इसी न्यायसे मानसप्रत्यक्षके समस्त भेदोंको इन दोनों ही भेदोंमें गर्भित होनेसे मानसप्रत्यक्षके दो भेद होना युक्ति सङ्गत है और पहले पत्रमें हम लिख चुके हैं कि अन्यथा मनके द्वारा ही अतीन्द्रिय पदार्थों

का मानसप्रत्यक्ष होनेसे सर्व जीवोंके सर्वज्ञताका प्रसङ्ग आवेगा इसका उत्तर आपने कुछ नहीं दिया ?

( उत्तर ) जीवकी सर्व पदार्थोंके ज्ञानकी योग्यता जो मानसप्रत्यक्षसे होती है। वह मन, विक्षेप, आवरणदोषसे युक्त मन, मनके कारण सर्व जीवों को नहीं हो सकती इस लिये महर्षि गौतमने न्याय दर्शनमें सुख दुःखादि उपलब्धिसाधनं मनः इम सूत्रमें साफ बतला दिया है अतीन्द्रिय पदार्थोंका मानसप्रत्यक्ष होता है क्योंकि ईश्वरसुखस्वरूप है सुख मनका विषय है कि सुखके प्रत्यक्षसे सुखस्वरूपका प्रत्यक्ष होना निश्चिन है जैसे रूपप्रत्यक्षको रूपवान्का प्रत्यक्ष कहते हैं ।

२-स्वसंवेदनमानसप्रत्यक्षमें, जो आपने आत्माही प्रमाता और आत्मा ही प्रमेय होनेमें आत्माश्रय दोष दिखजाया सो भी ठीक नहीं है क्योंकि आपका सर्वज्ञ अपने आपको जानता है वा नहीं अगर जानता है तो आपही प्रमाता और आप ही प्रमेय होनेसे आत्माश्रय दोष होगा अगर नहीं जानता तो सर्वज्ञ नहीं रहा ।

( उत्तर ) स्वसंवेदनमानसप्रत्यक्षमें तो आत्माश्रयदोष है जिसका आपने परिहार नहीं किया सर्वज्ञके आत्मज्ञानमें जो आपने दोष दिया है वह आपके न्याय न जाननेका फल है प्रमाता प्रमाणासे जाननेवालेको कहते हैं सर्वज्ञ जो है वह अपने आपको ज्ञानस्वरूप होनेसे न कि किसी प्रमाणासे, और प्रमाणाके विषयको प्रमेय कहते हैं जब वहां प्रमाता और प्रमेय शब्दका प्रयोग ही नहीं आसकता तब प्रमाता और प्रमेय शब्दका प्रयोग ही नहीं वहां आत्माश्रय कहां आप ज्ञानस्वरूप ज्ञानाधिकरणमें भेद है उसको नहीं जानते यह भ्रान्ति है ।

३-और आपने लिखा कि, जो इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जावे सो इन्द्रिय प्रत्यक्ष है सो भी ठीक नहीं क्योंकि अगर कोई पुरुष प्रथम क्षणमें घटको जानकर आखें बन्द करले और फिर उसी पुरुषके द्वितीयक्षणमें जो घट ज्ञान होता है वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष है या मानसिक यदि उसको इन्द्रियप्रत्यक्ष कहो-ने तो उस समय इन्द्रियोंका व्यापार ही नहीं है तो इन्द्रियप्रत्यक्ष कैसे कह सके हो ?

( उत्तर ) आपने जो दूसरे क्षणमें इन्द्रियजन्यप्रत्यक्षकी मानसप्रत्यक्ष बत-लाया है उसको न्यायके जाननेवाले स्मृति कहते हैं मानसिक नहीं यदि आप

न्यायदर्शनके हमारे सूत्रको भी विचारसे देखते तो जीवका स्वरूप सुख नहीं मानते क्योंकि सुख दुःख इच्छा द्वेष ये चार औपाधिक और नैमित्तिक गुण हैं केषन लिङ्ग कहने में स्वरूप नहीं हुआ करता क्योंकि लिङ्ग दो प्रकार का होता है एक स्वरूप दूसरा तटस्थ यदि जीवका सुखस्वरूप लिङ्ग हो तो सुखकी किमीकी इच्छा ही नहीं होती इच्छा अप्राप्त इष्टकी होती है स्वरूप अप्राप्त और इष्ट दोनों नहीं होता परमात्मा जीवात्माके अन्दर है इसीलिये उसका गुण नैमित्तिक जीवमें आमत्ता है सूक्ष्मद्रव्यके गुण स्थूलमें आकर नैमित्तिक कहाते हैं पृथ्वीके गन्ध गुणको जानने से जीवात्मा गन्धवान् इस लिये नहीं कहाता कि पृथ्वी स्थूल होनेसे आत्मासे बाहर है ।

४- फिर आपने लिखा कि सुख ईश्वरका स्वरूप है जीवका नहीं भी ठीक नहीं क्योंकि आपके न्यायदर्शनकार गौतमऋषिने न्यायदर्शनमें पहले अध्याय प्रथमाह्निकके दशवें सूत्र में सुखको आत्माका स्वरूप बताया है ( इच्छाद्वेष प्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गम् ) अगर सुख ईश्वरका गुण है तो अन्य द्रव्य गुणा अन्ये न जायन्ते इस न्यायसे ईश्वरका सुख गुण जीवद्रव्यमें नहीं आमत्ता कदाचित् कहो कि ईश्वरके सुख गुणको जानने में आत्मा सुखी अर्थात् सुखवान् होता है सो भी ठीक नहीं क्योंकि पृथ्वीके गुणको जाननेसे आत्मा गन्धवान् नहीं होता ।

इसका उत्तर पूर्व प्रश्न के साथ दिया है ।

५- सुख आत्माही का गुण है परन्तु कर्मोपाधिसे इस सुख गुणकी वैभाविक अवस्था हो रही है सुखकी इस वैभाविक अवस्थाको ही दुःख कहते हैं सुखगुणकी स्वाभाविक अवस्था कर्मोपाधिके निमित्तसे अप्राप्त है कर्मोपाधिके दूर हानेसे उसकी प्राप्ति होती है इसलिये जीव अप्राप्तरूप सुखकी स्वाभाविक अवस्थाकी प्राप्ति की इच्छा करता है, पुनः आपने लिखा कि आपने जो ईश्वर के जगत् कर्ता होने पर विचार आरम्भ किया है सो क्या ईश्वरकी सत्ता माने बिना ही किया है अबतक जैनियोंका दावा था कि इस ईश्वरको तो मानते हैं किन्तु जगत्कर्ता नहीं मानते इस लेखसे जाना गया कि आप ईश्वरकी सत्ता स्वीकार नहीं करते सो युक्तिमङ्गल नहीं क्योंकि जैन लोग कर्ममल मुक्त जीवोंको ही ईश्वर मानते हैं आप जीवराशि भिन्न किमी भिन्न द्रव्यको सृष्टिकर्ता ईश्वर मानते हैं इस ऐसे ईश्वरकी सत्ताको स्वीकार नहीं करते ईश्वरके मद्भावमें अनुमान प्रमाण देतेहुए आपने लिखा था कि ईश्वर जगत्कर्ता है यह प्रतिज्ञा

है और विकारित्व और सावयवत्व हेतु हैं तथा इस पत्रमें आप लिखते हैं कि पक्षमें हेतु हो तो वह साध्यको कैसे साधन करेगा सो आपके इन वाक्यों को बांचकर हंसी आती है और आपकी शास्त्रज्ञता पर आश्चर्य होता है कहिये महाराज (पर्वतो वह्निमान् धूमवत्तान्महानभवत्) इस जगन्मान्य अनुमितिमें पर्वतरूप पक्षमें धूमवत्त्व हेतु रद्द कर वह्निवत्त्व साध्यको कैसे सिद्ध करता है ? आपकी प्रतिज्ञामें ईश्वर पक्ष है जगत्कर्त्ता साध्य है अब आप कहिये आपका विकारित्व और सावयवत्व हेतुकी वृत्ति पक्षमें है या नहीं यदि है तो विकारित्व और सावयवत्व हेतुकी व्याप्ति मर्तृताके साथ आप करते हैं जैसा कि आपने अपने पहिले प्रश्नमें लिखा है इस लिये आपकी इस अनुमितिसे ईश्वरका भी कोई कर्त्ता है ऐसा सिद्ध होता है यदि आपका विकारित्व और सावयवत्व हेतु ईश्वर रूप पक्षमें नहीं रहता तो हेतुमें पक्षधर्मता के अभावका पक्ष आया अथवा अमिद्ध इत्याभास है ।

फिर आप लिखते हैं कि और पक्षमें साध्यके रहने से जो साध्यमें हेतु रहेगा वह पक्षमें भी रहेगा आपका साध्य है जगत्कर्तृत्व इस जगत्कर्तृत्व साध्यमें आपके हेतुकी वृत्ति है और आपका साध्य रहता है पक्षमें इस लिये साध्यके पक्षवृत्ति होने से पक्षवृत्तिता मानी मो कृपानाथ साध्य असिद्ध होता है इस लिये आपके हेतुकी साध्यवृत्ति होने से असिद्धता आती है ।

अथवा जगत्कर्त्ता साध्यमें विकारित्व और सावयवत्व हेतुकी वृत्ति होने से आपका कर्त्ता सकर्तृक सिद्ध हुआ क्योंकि आपने विकारित्व और सावयवत्वकी व्याप्ति सकर्तृताके साथ मानी है इत्यादि अनेक दोषोंसे दूषित होने से आपकी अनुमिति नितान्त मिथ्या है ॥

ईश्वरके प्रमाणमें तीसरे शब्द प्रमाणोंमें आपने लिखा कि ईश्वर जगत्कर्त्ताके सांख्य और मीमांसक विरोधी नहीं हैं सो भी आपका कहना ठीक नहीं है क्योंकि सांख्यदर्शनके प्रथमाध्यायके ईश्वरामिद्धः, इम ए२ वें सूत्रमें कपिल ऋषिने ईश्वरकी सत्तासे इन्कार किया है और जब ईश्वरकी सत्ताको ही स्वीकार नहीं किया तो उसके सृष्टिकर्तृत्व धर्मकी स्वीकार करनेकी कथा ही कहाँ, तथा आप ईश्वरके मूलावमें वेदका प्रमाण देते हैं परन्तु वेदके प्रमाणमें क्या प्रमाण है यदि ईश्वरोक्त होनेसे वेदको प्रमाण कहते हो तो ईश्वरकी सिद्धि वेदाधीन और वेदकी सिद्धि ईश्वराधीन होनेसे अन्योन्याश्रय दोष आता है ।

६-फिर आपने लिखा कि हममें क्या हेतु या प्रमाण है कि मनका विषय स्वात्मा ही होता है इस युक्ति शून्य दावेको सिद्ध कर दिखाइये सो आप का यह लिखना निनान्त असङ्ग है क्योंकि हमने यह लिखा था कि स्वसंवेदन मानसप्रत्यक्षमें विषय स्वात्मा ही होता है इस लिये आप मतानुज्ञानिग्रहस्थानपात्र हैं ॥

५ व ६ प्रश्न का ( उत्तर ) सुखको आत्माका गुण मानकर गुणी और गुण में उपाधि आड़ी नहीं सकती ऐसा कोई उदाहरण दें जहां गुण गुणीमें उपाधि आड़े हो उपाधि दो द्रव्योंमें तीसरे द्रव्यकी आया करती है जैसे सूर्य और आंखके बीच वादलकी उपाधि आती है यह किस प्रमाणसे सिद्ध होता है कि आत्मा और सुखमें कर्मोपाधिसे सुखस्वरूप आत्मा नहीं प्रतीति होता धन्य हो महाराज स्वरूपमें उपाधि, उपाधि सदा द्रव्य होता है क्या आप कर्मको द्रव्यमानते हैं जो उसका उपाधि बनाने हैं सुखको आत्माका गुण मानने में इतने दोष हैं ।

( प्रथम ) गुण गुणीमें उपाधि आनेका उदाहरण दीजिये, (दूसरे) कर्मको द्रव्य माने बिना उपाधि सिद्ध कीजिये । (तीसरे) कर्मको द्रव्य मानकर उसके गुण बतलाइये ( चौथे ) उसमें कर्मके लक्षण घटाइये ( पांचवें ) द्रव्योंकी संख्या ठीक कीजिये ( छठे ) गुण गुणीमें उपाधिके रहने के वास्ते अवकाश सिद्ध कीजिये ( सातवें ) अनादिकी उपाधि सिद्ध कीजिये ( आठवें ) यह सिद्ध कीजिये कि स्वाभाविक गुण कभी अप्राप्त भी होता है स्वाभाविक और अप्राप्त इन शब्दों पर विचार कीजिये ।

( ६ वें प्रश्नका उत्तर ) मतानुज्ञा तो तब ही जब आत्माअथ दोष दूर होकर आत्माका स्वसंवेदन मानसप्रत्यक्ष सिद्ध होजावे ।

( ७ प्रश्न का उत्तर ) जब कर्ता सिद्ध होगा तो यह प्रकाशता ही होगी अभाव तो कर्ता होता ही नहीं ? यदि आप अधिकरण सिद्धान्तके लक्षणपर विचार करते तो ऐसा लिखकर अपनी हंसी कभी न कराते जगत्पक्ष है कार्य्य होता साध्य है उसमें सावयवत्व तथा विकारित्व हेतु है पर्वतो वहिमानमें अधिकरण सिद्धान्त नहीं यदि आप समझने में भूल करें तो यह खज कहला सकता है हममें दो साध्य हैं एक जगत् कार्य्यत्व दूसरा ईश्वरका कर्तृत्व यह हेतु जगत् रूप पक्षमें जिसकी सिद्धिके पश्चात् ईश्वर कर्ता स्वयं सिद्ध हो जायगा क्योंकि उससे भिन्न समस्त पदार्थ-कार्य्य-जड़ और असमर्थ हैं अपनी समझके

दोष सुझपर मत दें महाराज अधिकरण सिद्धान्त एक पक्ष नहीं होता दो होते हैं क्या इस छलसे विद्वत्ता टपकती है या अनभिज्ञता ॥

अब आपने लिखा है कि जैन कर्म मलसे मुक्त जीवके सिवाय दूसरा कोई ईश्वर नहीं मानते कर्ममल जीवको स्वाभाविक है यानैमित्तिक यदि स्वाभाविक है तो मल नहीं कह सकते न स्वाभाविक का नाश हुआ करता है यदि नैमित्तिक है तो उसका निमित्तत्व बतनाइये यदि किसी गुरुसे सांख्य शास्त्र पढ़ा जाय तो यही सूत्र ईश्वरका साधक है बाधक नहीं। सूत्र-८९ में प्रत्यक्षका लक्षण क्या जब उसमें योगियोंके प्रत्यक्ष आनेसे न्यायिकने अव्याप्ति दीप दिया उसपर सूत्र ९०-९१ में मानसिक प्रत्यक्ष जो योगियोंको होता है उनकी इस प्रत्यक्षसे पृथक् सिद्धि किया जब न्यायसे मानसिक प्रत्यक्षकी मत्ता स्वीकार हुआ तो इस सूत्रमें नैयायिकपर यह आक्षेप किया कि यदि तुम प्रत्यक्ष मानसिक न मानोगे तो तुम्हारे मतमें ईश्वर सिद्ध न होगा जब नैयायिकने कहा कि हम अनुमान से ईश्वर को सिद्ध करेंगे तो सूत्र ९३-९४ ९५ ९६ ९७ ९८-९९ में अनुमानमें दोष देकर सूत्र १०० में अनुमानका लक्षण किया जो लोग इस सूत्रके आधार पर कपिलको अनीश्वर वादी कहें वह लोग कपिलके शास्त्र से अनभिज्ञ और भोले हैं ॥

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्मा

—(१०:)—

वन्देजिनवरम् ।

( क ) पत्र नं० ४ श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा—

इटावा । ता० १९। ८। १२

श्रीमान् महाशय ।

बाद जयजिनेन्द्रके निवेदन है कि आपने लिखा कि “जीवको सर्व पदार्थके ज्ञानकी योग्यता जो मानव प्रत्यक्षमे होती है वह मल विक्षेप आवरण दोषमे युक्त मगके कारण सब जीवोंके नहीं हो सकती” सो आपका यह लिखना युक्तिसे असंगत है क्यों कि आपके इस लेखसे जीव दो विभागोंमें विभक्त हुए अर्थात् एक तो वे जो कि मल विक्षेप आवरण आदि दोषोंसे रहित हैं और सर्वज्ञ हैं । महाशय जी ! ( १ ) प्रथम तो यह बतनाइये कि ये मल विक्षेप आवरण आपके प्रमाण माने हुए वैशिष्टिक दर्शनके अनुसार सात पदार्थोंमें से किम पदार्थमें गर्भित हैं ( २ ) द्वितीय आर्यमसाजका सिद्धान्त है कि जीव अल्पज्ञसे सर्वज्ञ कभी नहीं होता है, इसका विघात हुआ ( ३ )

तृतीय मानस प्रत्यक्षसे सम्पूर्ण पदार्थ जानने वाले जीव वर्तमान हैं या नहीं ? (४) चतुर्थ यदि हैं तो कतलाइये कहां हैं उनके दर्शन कराइये (५) पांचवें यदि वर्तमान देश कालमें नहीं हैं तो कालान्तर व देशान्तरमें होने में कौन से प्रमाण हैं । इस प्रकार आपके मानस प्रत्यक्षसे सर्व अतीन्द्रिय पदार्थों को जानने वाले जीवोंको साध्यकोटिमें रहनेसे उनका मानस प्रत्यक्ष भी अभिदु रहा और अभिदु प्रमाण ईश्वरके सद्भावको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं हो सकना । पुनः आप लिखते हैं कि "ईश्वर सुख स्वरूप है सुख मनका विषय है सुखके प्रत्यक्षसे सुख स्वरूपका प्रत्यक्ष होना निश्चित है जैसे रूपके प्रत्यक्षको रूपवान्का प्रत्यक्ष कहते हैं" सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जब सुख ईश्वरका स्वरूप है तो जैसे पृथिवीके गन्ध गुणको जाननेवालेको पृथ्वी गन्धवती है, इत्याकारक ज्ञान होता है उस ही प्रकार ईश्वरके सुख गुणको जानकर उसके जानने वालेको ईश्वर सुखवान है ऐसा ज्ञान होना चाहिये परन्तु जीवोंके ऐसा ज्ञान होना है कि मैं सुखी हूं इससे या तो 'मैं सुखी हूं' इत्याकारक ज्ञानको निश्चया कहिये अथवा सुख ईश्वरका स्वरूप है इसको निश्चया कहिये तथा आपके कथनानुसार ईश्वरके सुख गुणका ज्ञान उन्हीं जीवोंके होता है जिनका कि मन मल, वित्तेष, आवरणादि दोष रहित हो परन्तु सब जीवोंको 'मैं सुखी हूं, ऐसा ज्ञान होता है इससे सिद्ध होता है कि सुख ईश्वरका स्वरूप नहीं किन्तु जीवात्मा का है तथाच गुणके प्रत्यक्षसे गुणवान्का प्रत्यक्ष होना भी न्याय संगत नहीं है क्योंकि आपके अभिमत आकाशके शब्द गुणका आवरण प्रत्यक्ष होने पर भी तद्द्वान् आकाशका प्रत्यक्ष नहीं होता क्योंकि आकाशको आपने वैशेषिक मतानुसार अतीन्द्रिय माना है । फिर आपने लिखा कि "स्वसंवेदन मानसप्रत्यक्षमें तो आत्माश्रय दोष है जिसका आपने परिहार नहीं किया सर्वज्ञके आत्मज्ञानमें जो आपने दोष दिया है वह आपके न्याय न जाननेका फल है प्रमाता प्रमाणसे जानने वाले को कहते हैं सर्वज्ञ जो है वह अपनेआपको ज्ञान स्वरूप होनेसे न कि किसी प्रमाणसे और प्रमाणके विषयको प्रमेय कहते हैं जब वहां प्रमाता और प्रमेय शब्दका प्रयोग ही नहीं आ सकता तब प्रमाता और प्रमेय शब्दका प्रयोग ही नहीं वहां आत्माश्रय कहां आप ज्ञान स्वरूप ज्ञानाधिकरणमें भेद है उसको नहीं जानते यह भ्रान्ति है" आपके इस लेखसे मालूम होता है कि आप न्यायशास्त्रके ज्ञानसे कोशों दूर हैं महर्षि माणिक्य नन्दी स्वामीने न्याय

सूत्रमें प्रमाण का स्वरूप “स्वापूर्वार्थं व्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्” किया है ईश्वरका ज्ञान भी ज्ञान है इस लिये वह भी प्रमाण है ईश्वरका ज्ञान प्रमाण है तो वह प्रमाता भी सिद्ध होता है और प्रमाण स्वरूप ईश्वर अपने आप रूप प्रमेयको जानता है इस लिये आत्माअप दोष आता है । पुनः आपने लिखा कि “आपने जो दूसरे जगमें इन्द्रिय जन्य प्रत्यक्षको मानस प्रत्यक्ष वतलाया है उसको न्यायके जानने वाले स्मृति कहते हैं, आपके इस लेखसे प्रतीत होता है कि आप अभी स्मृतिका लक्षण नहीं जानते हैं क्योंकि “तदित्याकारा प्रागनुभूत विषया स्मृतिः” यह स्मृतिका लक्षण है प्रथम जग में घटका चाक्षुष प्रत्यक्ष कर द्वितीय जगमें चक्षुको वंद करनेपर जो ज्ञान होता है उसमें प्रागनुभूति विषयत्व रहने पर भी तदित्याकारत्व न होनेसे स्मृतिमें अन्तर्भूत नहीं होता किन्तु मानस प्रत्यक्ष है । पुनः आपने लिखा कि “सुख दुःख, इच्छा, द्वेष ए चार औपाधिक और नैमित्तिक गुण हैं केवल लिङ्ग कहनेसे स्वरूप नहीं हुआ करता क्योंकि लिङ्ग दो तरहका होता है एक स्वरूप और दूसरा तटस्थ” सो आपका यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि वैशिष्टिक दर्शनमें जो २४ गुण गिनाये हैं उनमेंमें इनका पाठ है और इन चारोंको जीवके गुण माने हैं गुणोंके औपाधिक नैमित्तिक स्वरूप और तटस्थ इन भेदोंके माननेमें प्रमाण क्या ? इन भेदोंके लक्षण क्या हैं ? तथा इनकी भेद निष्पत्तिमें कारण क्या है ? मप्रमाण लिखिये । पुनः आपने लिखा कि “यदि जीवका सुख स्वरूप लिङ्ग हो तो सुखकी किसीकी इच्छा भी नहीं होती इच्छा अप्राप्त इष्टकी होती है स्वरूप इष्ट और अप्राप्त दोनों नहीं होता” आपके इस प्रश्नका उत्तर इस पढ़ने उत्तर पत्रमें लिख चुके हैं कि सुख आत्माका ही गुण है परन्तु कर्मोपाधिसे इस सुख गुण की वैभाविक अवस्था हो रही है सुखकी इस वैभाविक अवस्था ही को दुःख कहते हैं सुख गुणकी स्वाभाविक अवस्था कर्मोपाधिके निमित्तसे अप्राप्त है कर्मोपाधिके दूर होने से उसकी प्राप्ति होती है इस लिये अप्राप्त रूप सुखकी स्वाभाविक अवस्था की प्राप्तिही इच्छा करता है इससे इस उत्तरके प्रत्युत्तरमें आपने लिखा कि “सुखको आत्माका गुण मानकर गुणी और गुणमें उपाधि आही नहीं सकती ऐसा कोई उदाहरण दें जहां गुणी और गुणमें उपाधि आइं हो उपाधि दो द्रव्यमें तीसरे द्रव्यकी आया करती है जैसे सूर्य और आँखके बीच वादलकी उपाधि आती है यह किस प्रमाणसे सिद्ध होता है कि आत्मा और सुखमें



कर्मापाधिसे सुख स्वरूप आत्मा नहीं प्रतीत होता धन्य हो महाराज ! स्वरूपमें उपाधि, उपाधि सदा द्रव्य होता है क्या आप कर्मोंको दुःख मानते हैं जो उसको उपाधि बनाते हैं सुखको आत्माके गुण माननेमें इतने दोष हैं (१) गुण गुणीमें उपाधि आनेका उदाहरण दीजिये (२) कर्मद्रव्यको द्रव्य माने बिना उपाधि मिट्टु कीजिये (३) कर्मोंको द्रव्य मानकर उनके कर्म बनलाइये (४) उसमें कर्मके लक्षण घटाइये (५) पांचवें द्रव्योंकी संख्या मिट्टु कीजिये (६) गुण गुणीमें उपाधि रहनेके वास्ते अवकाश मिट्टु कीजिये (७) और अनादि को उपाधि मिट्टु कीजिये (८) यह मिट्टु कीजिये कि स्वाभाविक गुण कभी अप्राप्त भी होता है स्वाभाविक और अप्राप्त इन शब्दों पर विचार कीजिये,, आपका यह सब निखना अविचारित रम्य है इसदी और चूना दो पृथक् द्रव्य हैं इन दोनों द्रव्योंका परस्पर बन्ध होनेसे दोनोंका पीत और श्वेत गुण और स्वरूपसे उत्पन्न होकर विकृतरक्तावस्थाको प्राप्त होते हैं अर्थात् उनके गुणोंमें विकार होता है महात्मा जी ! प्रकृति शब्द जगत्में स्वभाववाचक प्रमिट्टु है उस प्रकृति शब्द का स्वभाववाचक अर्थ न लेकर उस प्रकृति शब्दसे आप पृथ्वी आदिक जड़ द्रव्योंको परिभाषित करते हैं उसी प्रकार कर्म शब्दभी कई जगह क्रियावाचक होने पर भी जैनसिद्धान्तमें जीवके विकृत रागादिभावोंका निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य का कार्माणस्कन्ध विशेष जो जीवके साथ बहु है उसही पुद्गल विशेष में कर्मशब्द परिभाषित किया गया है इसलिये पुद्गलद्रव्यका एक भेद विशेष होनेसे कर्मद्रव्य है पुद्गलद्रव्यमें जो स्पर्श, रस, गंध वगैरोंदिक गुण हैं वे ही उसके भेदविशेष कर्मद्रव्यमें भी हैं इसदी और चूनेके उपायुक्त दृष्टान्तकी तरह जीव और कर्म इन दो द्रव्योंका बंध होता है और इस बंधके होनेसे जीवके जो चरित्रादिक गुण हैं उनकी विकृत अवस्था होती है और विकृत अवस्था को ही रागद्वेषादिक कहते हैं इन रागद्वेषादिको भावकर्म और इस भावकर्म गृहीत पुद्गलस्कन्ध को ही द्रव्यकर्म कहते हैं द्रव्य कर्मके उदयने भावकर्म होता है और भावकर्मके निमित्तमे अन्यद्रव्यकर्म का बंध होता है इस प्रकार अनादिकालसे संतान ( प्रवाह ) से बीज वृत्तकी तरह जीव कर्मका अनादि सम्बन्ध हैं द्रव्यकर्म का बंध व्यक्तिकी अपेक्षा सादि है और जातिकी अपेक्षा अनादि है जैसे कि आप सृष्टिकी व्यक्तिकी अपेक्षा सादि और प्रवाह की अपेक्षा अनादि मानते हैं आपके आठों असत्य आक्षेपोंका उत्तर इस प्रकार है ।

( १ ) गुण गुणीमें उपाधि के दृष्टान्तमें जगर हल्दी चूनेका दृष्टान्त दिया जा चुका है अर्थात् हल्दी गुणी के पीत गुणमें चूना उपाधिसे विकार होता है जीव गुणीके चारित्रादिक गुणोंमें कर्मोपाधिसे रागद्वेषादि विकार होते हैं

( २ ) कर्मको द्रव्य मानते हैं हमको कर्म को द्रव्य माने बिना उपाधि सिद्ध करने की आवश्यकता क्या ।

( ३ ) कर्म पुद्गलद्रव्यके भेद हैं इस लिये जो जो २ पुद्गलद्रव्यके गुण हैं वे ही कर्मके गुण समझिये ।

( ४ ) कर्म शब्द जैनसिद्धान्तमें पारिभाषिक है उसमें यौगिक कर्म शब्द का अर्थ क्रिया घटित नहीं होता है ॥

( ५ ) द्रव्योंकी संख्या ६ कह है कर्मको द्रव्य माननेमें द्रव्योंकी संख्या बढ़ती नहीं क्योंकि कर्म पुद्गल द्रव्यमें अन्तर्भूत है ॥

( ६ ) गुण गुणीमें उपाधि रहनेके लिये अवकाशकी जरूरत नहीं हल्दी और चूनेके दृष्टान्त को जरा अच्छी तरह मस्तिष्कमें भर लीजिये और अक्र पर जोर देकर विचारिये कि इसमें अवकाशकी क्या जरूरत है ? ॥

( ७ ) कर्मोपाधि व्यक्तिकी अपेक्षा सादि और प्रवादकी अपेक्षा अनादि है ।

( ८ ) गुणकी दो पर्याय होती हैं एक स्वाभाविक और दूसरी वैभाविक बिना निमित्तके जो गुणकी अवस्था हो उसे स्वाभाविक कहते हैं और जो निमित्तांसे अवस्था हो उसे वैभाविक अवस्था कहते हैं गुणकी वैभाविक अवस्थामें स्वाभाविकावस्था अप्राप्त है जैसे सरीगावस्थामें नीरोगावस्था अप्राप्त है ।

पुनः आपने लिखा कि "परमात्मा जीवात्माके अन्दर है इसलिये उसका नैमित्तिक गुण जीवात्मामें आ सकता है सूक्ष्म द्रव्यके गुण स्थूलमें आकर नैमित्तिक कहलाते हैं पृथ्वीके गन्ध गुणको जाननेसे जीवात्मा गन्धवान् इस लिये नहीं कहाता कि पृथ्वी स्थूल होनेसे आत्मासे बाहिर है " सो आपका लिखा ठीक नहीं है क्योंकि ( १ ) आपके लेखमें मान्य हुआ कि जीवात्मा स्थूल है और ईश्वर सूक्ष्म है ( २ ) जीवमें स्थूलताका कारण क्या ? ( ३ ) ईश्वरमें सूक्ष्मताका कारण क्या ? ( ४ ) तथा स्थूल और सूक्ष्मका लक्षण लिखिये ( ५ ) अथवा पृथ्वीके अन्दर भी परमात्मा है सर्वव्यापी होनेसे इसलिये पृथ्वीमें भी परमात्मा के सुख और ज्ञानादि गुण जाना चाहिये ( ६ ) जब कि गुण और गुणीका समवायसम्बन्ध है तब एक द्रव्यका गुण दूसरे द्रव्यमें जानेसे समवायसम्बन्धमें बाधा आई ( ७ ) तथा द्रव्य में से जो गुण निकल

जाय तब निर्गुण द्रव्यका लक्षण क्या रहता है ? (८) अथवा जब शरीर और जीव का संयोग है तो जीवके ज्ञानादि गुण स्थूलशरीरमें क्यों नहीं जाते हैं और सूत शरीरमें क्यों नहीं रहते (९) तथा सूक्ष्म द्रव्यके गुण स्थूलमें तो आजाते हैं परन्तु स्थूलके गुण सूक्ष्ममें नहीं आते इसमें निपानक क्या है ? (१०) और जब ईश्वरका सुख गुण बराबर जीवोंमें बला जायगा तो क्रमसे ईश्वर हीनसुखी होता जायगा ( ११ ) आपने सुख, दुःख, इच्छा, और द्वेष ये चार गुण औपाधिक और नैमित्तिक बताया उनमें से सुख गुण तो ईश्वरका आकर जीवगुणमें नैमित्तिक होता है और शेष दुःख, इच्छा, और द्वेष ये तीन गुण किस द्रव्यके आकर जीव द्रव्यमें नैमित्तिक होते हैं ।

पुनः आपने लिखा कि "जगत् पक्ष है कार्यहोना साध्य है उसमें साव-यवत्व और विकारित्व हेतु है" सी आपका लिखना मिथ्या है यह शास्त्रार्थ मोक्षबद्ध है मौखिक नहीं है यदि मौखिक होता तो शायद आपको बदने का मौका मिल जाता आपका पत्र हमारे पास मौजूद है जिसमें आपने सा-फ लिखा है कि "ईश्वर जगत् कर्ता है प्रतिज्ञा ईश्वर जगत्कर्ता है" इस वा-क्यमें ईश्वर ही पक्ष होसकता है जगत् कदापि नहीं क्योंकि जगत्कर्ता, इस तत्पुरुष समाप्त पद में जगत् शब्द का पूर्व निपान है और तत्पुरुष समा-प्त में उत्तर पदार्थ प्रधान होता है और जगत्कर्ता साध्य पद है इसलिए सा-ध्यपदमें उपसर्गनीभूत जगच्छब्द कदापि पक्ष नहीं हो सकना मालूम होता है कि आप क्रियाकारकादि सम्बन्ध में भी कम ज्ञान रखते हैं ।

पुनः आपने लिखा कि "आपके कर्ममल स्वाभाविक हैं या नैमित्तिक य-दि स्वाभाविक हैं तो मल नहीं कह सकते स्वाभाविक का नाश नहीं होस-कता है यदि नैमित्तिक है तो उसका निमित्तत्व बतलाइये,, उत्तर में निश्चे-दन है कि कर्ममल भिन्न पुद्गलद्रव्य हैं इसलिए यह न तो जीव का स्वाभा-विक धर्म है और न नैमित्तिक भी है एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका स्वाभाविक व नैमित्तिक धर्म नहीं होसकता किन्तु कोई धर्म स्वाभाविक व नैमित्तिक हु-आ करता है कर्ममलके निमित्त से जीव ( संसारी ) के रागादि होते हैं अतः जीव संसारी कहलाते हैं और जब कर्मरूपी मल निमित्त दूर होजाते हैं तब जीव ही मुक्ति तथा ईश्वर होजाते हैं ॥

पुनः आपने लिखा कि "अगर किसी गुरुसे सांख्य शास्त्र पढ़े जाय तो यही सूत्र ईश्वरका साधक है बाधक नहीं" इत्यादि आपके इस लेख को बांध कर आपकी बुद्धिमत्ता पर आश्रय होता है महात्मा जी ! अरा सांख्य-

शास्त्रकी आंख खोल कर देखिये ८९ वां सूत्र में प्रत्यक्ष का लक्षण किया है कि जो पदार्थोंसे सम्बद्ध होकर तदा कारोत्प्लेखि ज्ञान होय उसे प्रत्यक्ष कहते हैं इस लक्षण में शंकाकार ने योगिप्रत्यक्षमें अव्याप्ति दोष दिया है उसके ९० और ९१ वें सूत्रमें निराकरण किया अर्थात् नवमे ९० के सूत्रमें यह उत्तर दिया है कि इगारा लक्ष्य ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष है और ९१ वें के सूत्रमें यह उत्तर दिया है कि योगजघर्मके अतिशय से योगियोंके चित्त का अतीतादि पदार्थोंसे भी सम्बन्ध होता है अतः उसमें भी लक्षण चला गया पुनरपि शङ्काकार ने ईश्वर प्रत्यक्षमें अव्याप्ति दोष दिया तब ९२ वें के सूत्र में "ईश्वराभिद्धः" इस हेतुपरक सूत्र से यह दिखनाया कि ईश्वर प्रत्यक्ष में अव्याप्ति नहीं है क्योंकि ईश्वर की सिद्धि न होने से तथा आगे सूत्र "मुक्तबहुयोरन्यतराभावाज्जन्तमिद्धिः", अर्थात् मुक्त और ब्रह्ममें किमीमें भी अन्तर्भाव न होने से ईश्वरकी सिद्धि नहीं है स्पष्टतया ईश्वर का निषेध किया है आपने जो लिखा कि जय नैय्यायिक ने गानमिक्त प्रत्यक्षका इनकार किया तो इस सूत्रमें नैयायिक पर यह आरोप किया यदि तुम गानमिक्त प्रत्यक्ष न मानोगे तो तुम्हारे मनमें 'ईश्वर सिद्ध न होगा', इस शंकाके समाधानमें "ईश्वराभिद्धः", यह सूत्र निरूपण किया गया भी आपका ऐसा लिखना नितान्त अश्रम पूर्ण है क्योंकि नैयायिक की तरफ से मानस प्रत्यक्ष की इनकारी की शंका उठाना ही अश्रम मूलक है तथा सूत्रों का सम्बन्ध असंगठित होजाता है। कृपा कर किमी अच्छे गुनके पात्र सांख्यदर्शन पढ़िये तब आपकी मालूम पड़ेगा। अगर सांख्य की ईश्वरवादी आप मानते हैं तो सांख्यदर्शन के किमी सूत्रमें खतलाइये।

और शब्द प्रमाणमें हमने वेद की सिद्धि ईश्वराधीन और ईश्वरकी सिद्धि वेदाधीन होने से अन्योन्याश्रय दोष दिया था उस का आपने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

भवदीय - - मन्त्री चन्द्रमेन जैन वैद्य,



आश्चर्य

( क ) पत्र नं० ४ का उत्तर।

आर्यसमाज अजमेर।

ता० २९। ८। १२

श्रीमान् महाशय जी ! नमस्ते।

जीवोंके दो भेद तो आप भी मानते हैं एक भय दूसरा अभय, मन

विलेप आवरण दोषसे युक्त मन वैशेषिक पदार्थके विशेषके अन्दर आते हैं । दूसरे आर्यसमाज जो जीवकी सर्वज्ञ नहीं मानता उसका ये मतलब है कि सर्वज्ञ शब्दके दो अर्थ हैं एक सब पदार्थोंको एक कालमें जानने वाला वोतो जीव कभी नहीं होता । दूसरा सब पदार्थोंके जाननेमें समर्थ वो मन विलेप आवरण दोषसे रहित मनवाला जीव होता है । जब पदार्थ ही दो हुए तो विघात कहाँ ? ऐसे योगी अब भी बर्तमान हैं कि जो मानसिक प्रत्यक्ष की योग्यता रखते हैं, यदि आप देखना चाहें तो लंगोटा कमकर घर छोड़िये और पहाड़ों की सैर कीजिये आपको उनका प्रत्यक्ष हो जायगा, यदि घर बैठे ही लन्दनकी सैर करना चाहें तो कैसे हो सकता है । मानसिक प्रत्यक्ष को न रखने वालोंकी ही तो ज्ञान नहीं होता, यदि आप विचार करें तो किसी द्रव्यका प्रत्यक्ष नहीं हुआ करता, प्रत्यक्ष हमेशा गुणोंका होता है और उन गुणोंके प्रत्यक्षकी ही उपचारसे द्रव्यका प्रत्यक्ष कहते हैं यही तो अविद्या है कि जीव ईश्वरसे प्राप्त सुखको पाकर अपनेको सुखी मानता है । जीव ये नहीं कहता कि मैं सुख स्वरूप हूँ, जैसे अध्याससे शरीरके धर्मको अपना स्वरूप काला, गोरा बनाना है, ऐसे ही मैं सुखी हूँ बतलाता है । ईश्वर में सुख स्वभाविक है और जीव में नैमित्तिक, यदि जीवको सुख स्वरूप मानें तो इनमें दोष आयेंगे । १ सुखकी इच्छा नहीं हो सकती । २ सुख नित्य होना चाहिये । ३ सुख सुषुप्ति अवस्थामें मालूम होता है जागृतिमें नहीं, इसमें हेतु होना चाहिये । आपने जो लिखा कि आकाश अतिन्द्रिय है इन्द्रिय जिस पदार्थको ग्रहण करती है । शरीर इन्द्रिय भेदसे करती है आकाशके कार्य शरीर नहीं हैं हम वास्ते वो अतिन्द्रिय है ।

महर्षि मानकचंद स्वामी का न्याय सूत्र कहाँ है जरा उसको पेश कीजिये और जगत् मान सिद्ध कीजिये, और उसके महर्षि होनेका प्रमाण दीजिये ? और जो ये लक्षण है ज्ञान प्रमाण होता है या प्रमिति ? जरा इनको विचारिये, प्रमितिके लक्षणको प्रमाणका लक्षण कहना न्यायसे अनभिज्ञताका ओषक है । आपने जो ये लिखा कि ईश्वरका ज्ञान प्रमाण है, तो वो प्रमाता भी सिद्ध होता है । कृपानिधि ! प्रमाण जो होता है प्रमाताका गुण नहीं होता, ईश्वरका ज्ञान गुण है प्रमाका कर्ण प्रमाताके स्वरूपसे भिन्न होता है । जैसे इन्द्रिय मन आदिक जीवसे भिन्न हैं । प्रमाण स्वरूप ईश्वर

मानकर प्रमाता किसको मानेंगे ? प्रमाता और प्रमात्र जब भिन्न होते हैं एक होते ही नहीं तो आत्मात्रय दोष कहाँ है ? स्मृतिका ये लक्षण किस आचार्यने किया है, जब तक पता न मिले तो उस पर विचार क्या हो ? जब ज्ञान होगा तो इत्याकारक ही होगा, जिसको स्मृति कहेंगे । मानस प्रत्यक्ष अतिन्द्रिय पदार्थोंका होता है जिनका इन्द्रियोंसे सन्निकर्ष ज्ञान हो यदि आप न्याय दर्शनका दूसरा सूत्र भी पढ़ लेते तो इच्छा द्वेष और सुख दुःखकी जीवका स्वाभाविक गुण न मानते । और यदि आप इतना भी विचार करते कि दो व्याधादिक गुण किसी एक पदार्थके स्वाभाविक गुण नहीं हो सकते, इच्छा द्वेष दो व्याधादिक हैं, इनके ओपादिक होनेमें न्यायदर्शनका दूसरा सूत्र प्रमाण है । जहाँ मिथ्या ज्ञानकी सन्तान राग और द्वेष को बतलाया है । स्वाभाविकका यह लक्षण है कि “यस्योत्पत्ती कारण विलम्बात् विलम्बो न जायते तत्तत्स्वभावकः” यदि कर्म द्रव्य है तो उसके आने के लिये अवकाश चाहिये । जीव और सुखके दम्भानमें अवकाश कहाँ है ? यहाँ उपाधि आयेगी, गुण गुणीका समवाय सम्बन्ध होता है । जिनमें कभी वियोग होही नहीं सकता । हल्दी और चूनेका दृष्टान्त आपके मतलबको सिद्ध नहीं करता, क्योंकि वहाँ बाध्य बाधक भाव है, चूनेके रंगको देखनेमें हल्दी बाधक है, और हल्दीके रंगको देखनेमें चूना बाधक है जिससे अविद्वानोंको अविद्यासे विकार प्रतीत होता है, क्या गुण कोई सावयव और जन्य वस्तु है ? जिसमें विकारका आना असंभव हो । जब आप कर्म को उपाधि मानते हैं तो उपाधिका अनादि सम्बन्ध कैसा ?

( १ ) आपने जो गुण गुणीमें उपाधिका दृष्टान्त हल्दी और चूनेका दिया है ये भ्रान्ति है, क्या हल्दीमें पीत गुण नहीं रहा ? यदि हल्दीमें पीत गुण नहीं रहा तो गुण गुणीमें समवाय सम्बन्ध कैसे ? यहाँ तो बाध्य बाधक भाव दृष्टाकी दृष्टिको भ्रममें डालता है लेकिन गुण गुणीमें उपाधि है ।

( २ ) जब कि उपाधि बिना द्रव्यके होही नहीं सकती तो आपके दृष्टान्तमें ही चूना द्रव्य ही है किा आपको कर्मको द्रव्य सिद्ध करनेमें आवश्यकता क्यों नहीं ? यदि कर्म पुद्गल द्रव्यके भेद हैं तो जड़ होंगे । पुद्गल में चार हैं, पृथिवी, अप्, तेज, वायू क्या कर्ममें इन सबके गुण हैं । यदि कर्म शब्द जैनियोंकी अपनी परिभाषा है, तो पढ़ने किसी जैन शास्त्रका लेख दिखल इये ? यदि हल्दी और चूने ने पीतको दृष्टाकी दृष्टिको दूषित किया है तो दृष्टान्त सर्वथा असंगत है । दृष्टान्तका लक्षण करके उसमें घटाइये ?

क्या कर्म कोई वस्तु नहीं ? जो अपेक्षासे सादि और अनादि है । इनसे प्रतीत होता है कि आप कर्मको कार्य्य मानते हुए भी अनादि कहते हैं, सो अविद्या है । जीव प्रकृतिसे सूक्ष्म और परमात्मासे स्थूल है, परमात्माकी सूक्ष्मताका कारण उसकी सर्व व्यापकता है स्थूलता लक्षण ये है जिसमें दूसरे का गुण आसके और सूक्ष्मता ये है कि जिसमें दूसरे गुण न आसके जैसे जल स्रवण कहला सकता है, किन्तु अग्नि शीत नहीं, कहना सकती, सुख और ज्ञान गुणोंका बोध जड़ पृथ्वीकी कैसे हो सकता है, जो कि चैतन्यका का कार्य्य है । स्थूल द्रव्यमें सूक्ष्म द्रव्य दाखिल होता है उसके साथ ही उनके गुण जाते हैं । सूक्ष्म में स्थूल द्रव्य दाखिल नहीं हो सकते, इस लिये इसके गुण नहीं जा सकते । ईश्वर गुण गुणोंसे कभी पृथक् होता ही नहीं, यदि ऐसा होता तो जलके गुण शीत भी अग्निमें आजाता, ईश्वर जीवोंके अन्दर सौजूद है वहीसे जीव सुख अनुभव करता है । इच्छा और द्वेष मनका धर्म है, तो जीवको प्रतीत होते हैं और दुःख पुद्गलका स्वभाव है जो उनके संगसे मनमें आता है और जीव अध्याससे अपनेको प्रतीत करता है । ईश्वर जगत्कर्ता लिखनेका मतलब जगत्की ईश्वरका कार्य्य कहना ही है, जैसे शब्दोंमें कहते हैं कि इटावा आगया तो वहां आना किया, इटावामें नहीं होती गाड़ीमें होती है ॥

आप जरा शास्त्रार्थ करनेसे पहले लक्षण व्यंजना अवधाशक्ति बगैरह अर्थ करनेके नियमोंको विचारिये । जब कि कर्म फल पुद्गल द्रव्य है तो उसका अनादिकाल सम्बन्धों कैसे ? दो द्रव्योंमें समवाय सम्बन्ध तो होही नहीं सकता । संयोग ही मानना पड़ेगा, कर्ममल जीवसे सूक्ष्म है या स्थूल । यदि मानसिक प्रत्यक्षके न मानने वाले पर ये सूत्र आक्षेप न होता । और महर्षि ईश्वरामिदुः केवल प्रतिष्ठा करते तो आगे उसके हेतु आदि देते परन्तु महर्षिने नैयायिकोंके अनुमान प्रमाणमें दोष दिये हैं । अर्थात् यदि ईश्वर मुक्त है तो भी जगत्कर्ता सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि मुक्तमें इच्छा नहीं होती यदि बद्ध है तो भी जगत्कर्ता नहीं हो सकता क्योंकि उसमें ज्ञान नहीं होता माख्यदर्शनका ये सूत्र जरा विचार से पढ़िये । ‘समाधिसुषुप्तिमोक्षेष ब्रह्मरूपता’ अर्थात् समाधि सुषुप्ति और मुक्तिमें वत्चित् जीवात्माको ईश्वर के आनन्द गुणके नैमित्तिक प्राप्त होनेसे ब्रह्मरूपता प्राप्त होती है । यदि म-

हर्षि कपिल ब्रह्मको न मानते तो ब्रह्मरूपता कैसे होती ? । इत्यलम् ॥

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्मा

—:०:—

सन्देश जितवरम् ।

( क ) पत्र नं० ५

श्री जैनमन्त्र प्रकाशित सभा

इटावा । ता० १४ । ८ । १२

श्रीयुग जयदेव शर्मा मन्त्री आर्यसमाज आगमों ( जुद्धारके अन्तः ) निवेदन है कि आपने लिखा कि “मल विक्षेप आचरण दोषसे युक्तमल वैशेषिक पदार्थ के विशेषके अन्तर आते हैं” सो आपका लिखना ठीक नहीं मल और मल विक्षेप आचरणका संयोग सम्बन्ध है, या समवाय सम्बन्ध संयोग सम्बन्ध तो हो नहीं सकता क्योंकि संयोग सम्बन्ध दो द्रव्योंमें होता है और आप मल विक्षेप आदिको द्रव्य नहीं मानते और समवाय सम्बन्ध भी नहीं हो सकता क्योंकि समवाय नित्य सम्बन्ध है जिन पदार्थका सम्वाय सम्बन्ध है उनका कभी वियोग नहीं होता और आप मल विक्षेप आदिका मतमें वियोग मानते हैं आपने मल विक्षेप आचरण आदिको वैशेषिकके विशेष पदार्थमें गणित किया सो इसमें वैशेषिक सूत्रका प्रमाण दीजिये । पुनः आपने लिखा कि “आर्यसमाज जो जीवको सर्वज्ञ नहीं मानता उसका यह मतलब है कि सर्वज्ञ शब्दके दो अर्थ हैं । एक तो सब पदार्थोंकी एक काममें जानने वाला वह तो जीव कभी नहीं होता दूसरा सब पदार्थोंके जाननेमें समर्थ वह मल विक्षेप आचरण दोषसे रहित मनवाला जीव होता है” सो ठीक नहीं है प्रथम तो आप यह बतलाइये कि सर्वज्ञ शब्दके दो अर्थ किम शास्त्रके आधारमें हैं सर्वज्ञ शब्दका जो दूसरा अर्थ आपने जो सर्व पदार्थोंको जाननेमें समर्थतेमा लिखा सो जो जीव सर्व पदार्थोंके जाननेमें समर्थ है वह उन पदार्थोंको जानता है या नहीं । यदि जानता है तो ईश्वरकी सर्वज्ञताके सदृश हमकी भी सर्वज्ञता हुई । और यदि नहीं जानता तो ईश्वरके सुख गुणका भी नहीं जानने में उसका मानवप्रत्यक्ष ईश्वरके सद्भावमें युक्त नहीं हो सकता । और आपने लिखा कि “मानवप्रत्यक्षको न रखने वालोंकी ही तो ज्ञान नहीं होता यदि आप विचार करें इत्यादि” सो यह आपका सब लिखना युक्ति शून्य है कृपाकरके आप बतलाइये कि गुणोंमें अनिश्चित द्रव्य क्या वस्तु है और गुणोंसे निक्षेप द्रव्यका लक्षण क्या है । लक्षणके बिना किसी पदार्थकी निधि नहीं होती । जब द्रव्य और गुणका समवाय सम्बन्ध मानते हैं तो ईश्वरका सुख गुण



जीवमें कैसे आया क्योंकि जिनका समवाय सम्बन्ध है उनका वियोग नहीं होसکتा। महर्षि माखिश्य नन्दीका न्याय सूत्र जिनका कि नाम परीक्षामुख है जैन ग्रन्थ रत्नाकर कायोलप पोष्ट गिरगात्र खम्बईके पतेसे मिलता है मा संगी लीजिये,। जगन्मान्य शब्द में यदि आप किसी एक समाजके माननेमें ही जगन्मान्य होजाता है ऐसा मानते हो तो मखिक्वतन्दीन्यायसूत्र भी जैन समाजके मान्य होनेसे जगन्मान्य हो सकता है और यदि संपूर्ण समाजोंमें मान्यको ही जगन्मान्य कहते हो तो षट्दर्शन भी, जैन, बौद्ध, चार्वाक यवन आदिमें मान्य न होनेके कारण जगन्मान्य नहीं ठहर सके। इसी तरह किसी एकमत विशेषके माननेमेंही महर्षिना होसक्ती है। तो माखिक्वतन्दी भी जैन मतके मान्य होनेमें महर्षि बिट्टु हुये। और यदि सम्पूर्णमत मान्य होने से ही महर्षिताकी पदवी मिलता है तो कपिलादिक भी सुगतमत आदिमें मान्य न होनेसे महर्षि नहीं कहला सके। आप बार बार लिखते हैं कि "न्यायसे अनभिज्ञताका बोधक है," सो आपने क्या अपने कतिपय ऋषियोंके मन्तव्यको ही न्यायमान रक्खा है? यह आपकी सर्वथा भ्रान्ति है। यदि आपने अष्ट महस्त्री, प्रसेवकमल सार्तगढ़, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, आदि न्याय ग्रन्थोंका अग्र-शोकम किया होता तो आपको ऐसे भ्रमपूर्ण शब्दोंके लिखनेका मौका नहीं पड़ता। फिर आपने लिखा कि "ज्ञान प्रमाण होता है या प्रमिति," उत्तरमें निवेदन है कि, करण साधन व्युत्पत्तिसे निवृत्त ज्ञान शब्दका वाच्य प्रमाण है और भाव साधन व्युत्पत्तिसे लभ्य ज्ञान शब्दका वाच्य प्रमिति है अज्ञानकी निवृत्तिभी प्रमिति कहनेमें अज्ञानकी निवृत्तिमें कारण भूत पदार्थ जो होगा वह अज्ञानका विरोधी ही होगा अज्ञानका विरोधी ज्ञान है इन्द्रिय, सन्निकर्ष, आदि जड़ पदार्थ नहीं है जो कि अज्ञानके अविरोधी करण नहीं हो सके जिन प्रकार अन्धकारके विनाशमें करण प्रकाशही हो सकता है घट पटादिक जो संयकारके अविरोधी करण नहीं हो सके इस लिये प्रमितिका करण (प्रमाण) ज्ञान होसक्ता है। और आपने लिखा कि "प्रमाण जोहोता है वह प्रमाणाका गुण नहीं होता," यह सर्वथा बदतोषाघात है। क्योंकि नैयायिकने भी सादृश्य ज्ञानको उपमानप्रमाण, द्वापति ज्ञानको अनुमान प्रमाण पद ज्ञानको शाब्द प्रमाण माना है और ये करणस्वरूप ज्ञान सब प्रमाणाके गुण हैं। पुनः आपने लिखाकि "प्रमाणा करण प्रमाणाप्रमाणाके स्वरूप में भिन्न होता है जैसे इन्द्रियमन आदिक जीवसे भिन्न हैं प्रमाणास्वरूप मा-

नकर प्रमाता किसीको मानोगे प्रमाता और प्रमाण जब भिन्न होते हैं एक होते ही नहीं तो आत्माश्रय दोष कहाँ हैं, ? उत्तरमें निवेदन है कि ईश्वर का ज्ञान प्रमितिका कारण होने से प्रमाण भी है और ईश्वर अपनेको जानता है इसलिये प्रमेय भी है और अपने आप जाननेमें आत्माश्रय दोष देते हैं ता ईश्वर अपने को आप ही जानता है तो आत्माश्रय दोष क्यों नहीं तदवस्था रहेगा ? और स्मृतिका "तदित्याकारा प्रागनुभूत वस्तु विषयास्मृतिः" यह लक्षण महर्षि भाषिण्यनन्दी आचार्यने न्यायसूत्रमें किया है इत्याकारकज्ञानको स्मृति नहीं कहते आप गौर करके उत्तरोंको आँखिये तदित्याकारास्मृति हुआ करती है यदि यह लक्षण आपको स्पष्ट नहीं है तो इसमें अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असम्भव, दोषोंको दिखलाइये बिना दोष दिखलाइये लक्षण असिद्ध नहीं हुआ करता । पुनः आपने लिखा कि "मानसप्रत्यक्ष अतीन्द्रिय पदार्थोंका होता है जिनका इन्द्रियों से सन्निकर्ष न हो यदि आप न्यायदर्शनका दूसरा सूत्र पढ़ लेते तो इच्छा, द्वेष और सुख दुःखको जीव का स्वाभाविक गुण नहीं मानते,, भी यह आपका लिखना प्रकरण विरुद्ध है क्योंकि हमारा सत्राल इस प्रकार था कि वैशेषिक दर्शन में जो २४ गुणमाने हैं उनमें सुख दुःख आदिक का पाठ है और वे आत्माके अतलाये भी हैं सो आपका जीवका स्वाभाविक सुख गुण नहीं है यह वक्तव्य इससे विरुद्ध पड़ता है इनका उत्तर आपने टालकरके न्यायके दूसरे सूत्र पढ़नेका आदेश किया सो कृपानाथ ! न्यायका दूसरा सूत्र यह "दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः" है इसका अर्थ भी इस प्रकार है कि तत्त्वज्ञानसे मिथ्या ज्ञानका नाश फिर मिथ्याज्ञानके नाशसे दोषका नाश दोषके नाशसे प्रवृत्तिकानाश प्रवृत्तिके अपायसे जन्मकानाश और जन्म के नाशसे दुःखका नाश होकर आदमें निःश्रयस होता है इन सूत्रमें सुख गुण को जीवका स्वाभाविक गुणहोनेका निषेध लखनात्र भी नहीं निकलता । आगे आपने लिखा कि "स्वाभाविक का यह लक्षण है कि "यस्योत्पत्तौ कारणविलम्बाद्विलम्बो न जायते तत्स्वाभाविकम्" यह आपका लिखना सत्रया विरुद्ध है क्योंकि यस्योत्पत्तौ इस पदसे स्वाभाविककी उत्पत्ति होना तो सिद्ध है उत्पत्ति बिना कारणके हो नहीं सकती यदि स्वाभाविककी उत्पत्तिमें कारणके विलम्बसे कार्यता विलम्ब न मानोगे तो कारण व्यापारके पूर्व ही कार्य की उत्पत्ति क्यों नहीं हुई ? दूसरे स्वाभाविक गुणकी उत्पत्ति हुआ ही नहीं करती क्योंकि स्वाभाविक गुण और जन्ममें विरुद्ध शब्द हैं ।

पुनः आपने लिखा कि "कर्म द्रव्य है तो उसके आनेके लिये अवकाश चाहिये जीव और सुखके दम्पानमें अवकाश कहाँ है यहाँ संपाधि आवेगी गुण गुणीका समवाय सम्बन्ध होता है जिनमें कभी वियोग हो ही नहीं सकता हल्दी और चूनेका दृष्टान्त आपके मतलबको सिद्ध नहीं कर सकता क्योंकि वहाँ बाध्य बाधक भाव है चूनेके रंगको देखनेमें हल्दी बाधक है और हल्दीके रंगको देखनेमें चूना बाधक है " महाशय यह सर्व आपका लिखना पिष्टपेषण है इस इनका उत्तर पढ़ने लिख चुके हैं और फिर आपको समझानेको लिखते हैं जब कि एक कमरेमें स्थूल दश दीपकोंका प्रकाश परस्पर में अवकाशकी अपेक्षा नहीं रखता तो सूदन द्रव्य आत्मा और कर्म द्रव्यके एक संत्रासगाहमें अवकाशकी क्या आवश्यकता है ?। कर्मके सम्बन्धमें गुणीके गुणका विकृत परिणाम होता है वियोग होना हम स्वीकार नहीं करते। इसका खुलासा दृष्टान्त हल्दी और चूनेका दे चुके हैं उसमें आपने बाध्य बाधक भाव दिखलाया तो आपकी नितान्त अनभिज्ञता सूचित करता है बाधक वह होता है जो कि बाध्यके गुणका तिरोभाव करके अपने गुणको प्रादुर्भूत रखता है यदि हल्दीका रंग बाधक होता और चूनेका रंग बाध्य होता तो इस अवसरमें हल्दीका पीला रंग दृष्टिगत होता तथा चूनेका रंग बाधक होता और हल्दीका रंग बाध्य होता तो ऐसी अवस्थामें चूनेका श्वेत रंग प्रतीत होना चाहिये था सो ऐसा न हो करके तीसरा ही रक्त वर्ण दृष्टिगोचर होता है एक ही कालमें एक ही पदार्थमें एक ही की अपेक्षासे बाध्यत्व और बाधकत्व ये दो विरुद्ध धर्म नहीं रह सकते अर्थात् आप उसी वक्त हल्दीको चूनेके रंगका बाधक कहते हैं और बाध्य भी कहते हैं यह विरुद्ध है और जहाँ बाध्य बाधक भाव होता है वहाँ किमी तीसरे भावात्मक पदार्थकी उत्पत्ति नहीं होती जब कि हमको चूनेके दृष्टान्तमें रक्तता (लालिमा) की प्रत्यक्ष प्रतीति होती है तो यहाँ बाध्य बाधक भाव कहना बाध्य बाधक भावके लक्षण तथा प्रयोग करनेकी अज्ञता सूचित करता है यदि आवाल वृद्ध विदित जगन्मान्य एतादृश प्रत्यक्ष भी अविद्या हेतुक मानेंगे तो सम्पूर्ण प्रत्यक्षोंका अपलाप हो जायगा आप ऐसा कोई विद्वान् बतलाइये जिसको कि हल्दी और चूनेके मिलने पर रक्तिकाका प्रत्यक्ष न होकर पीतिका और शुक्लता का प्रत्यक्ष होय ॥

पुनः आपने लिखा कि "क्या हल्दीमें पीत गुण नहीं रहता। यदि हल्दी

में पीत गुण नहीं रहा तो गुण गुणीमें समवाय सम्बन्ध कैसा" सो महाराज जी ! जरा विचारिये कि हरा आम जब पीतताको प्राप्त होता है तब आप का हरितका समवाय कहाँ चला गया क्या वहाँ भी आप बाध्य बाधक मानते हैं ? यदि बाध्य बाधक भाव मानते हैं तो बाध्य कीन और बाधक कीन दो पदार्थ बतलाइये ? महाराज ? पीतमेत हरित आदि गुण नहीं हैं किन्तु रूप नामक गुणकी अवस्था विशेष हैं समवाय सम्बन्ध गुण और गुणीका है न कि गुणी और अवस्थाओंका ।

पुनः आपने लिखा कि "जबकि उपाधि बिना द्रव्यके ही ही नहीं सक-  
ती तो आपके दृष्टान्तमें ही घूना द्रव्य ही है फिर आपको कर्मको द्रव्य सिद्ध करनेमें आवश्यकता क्यों नहीं" सो महानिधि ? जरा प्रश्न और उत्तरके सम्बन्ध को विचारिये आपने पहले पूछा था कि कर्म द्रव्यको उपाधि माने बिना उपाधि सिद्ध कीजिये उसके उत्तरमें हमने यह कहा था कि कर्मको द्रव्य मानते हैं इनको कर्मको द्रव्य माने बिना उपाधि सिद्ध करनेकी आवश्यकता क्या ? फिर आपने अथवा अथवा ही कर्मको द्रव्य सिद्ध करनेमें आवश्यकता क्यों नहीं इत्यादि लिख मारा सो कृपाकर पूर्वापर सम्बन्ध मिलाकर फिर आक्षेप किया कीजिये । पुनः आपने लिखा कि "कर्म पुद्गल द्रव्यके भेद हैं तो जड़ होंगे पुद्गलमें चार हैं पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, क्या कर्ममें इन सबके गुण हैं" सो महाराज ? पृथ्वी जल तेज आदि भी पुद्गल द्रव्यकी विशेष अवस्थाएँ हैं और जो जलके कार्य हैं वे अग्निके नहीं और जो अग्निके हैं वे जलके नहीं पुद्गल द्रव्यके गुण यद्यपि एकसे है तथापि उन गुणोंकी अवस्था भेदसे पुद्गल द्रव्यके पर्याय अग्नि जल आदिके कार्योंमें अन्तर पड़ जाता है इस ही प्रकार पुद्गल द्रव्यकी कर्म रूप भी पर्याय होती है उसमें गुणोंके परिणामन ( अवस्था ) विशेषसे जीवके ज्ञानादि गुणोंको विकृत करनेकी शक्ति है कोई समयमें कर्मके परमाणु पृथिव्यादि रूप हो जाते हैं और पृथिव्यादिक कर्म रूप हो जाते हैं इन लिये पुद्गल द्रव्यकी सम्पूर्ण पर्यायोंमें गुण एकसे हैं इस विषयको आप "नेमिचन्द्र सैदान्तिक चक्रवर्ती विरचित गोमट मारके कर्म काण्ड प्रकरणमें" देख लीजिये । दृष्टान्तका लक्षण पूछा सो उत्तरमें वक्तव्य है "वादि प्रतिवादिनोर्बुद्धि साम्य प्रदर्शन प्रदेशो दृष्टान्तः" यह दृष्टान्तका लक्षण है इसी घूमेके दृष्टान्त में सुलभ रीतिसे घटित होता है ॥

पुनः आपने लिखा कि "क्या कर्म कोई वस्तु नहीं ? इत्यादि" इसका

उत्तर इस कई बार लिख चुके हैं और पुनः लिखते हैं जिस प्रकार आपकी मानी हुई सृष्टि व्यक्तिकी अपेक्षा सादि और प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है क्या एतावता आपकी सृष्टि अवस्तु हो गई ? उनी तरह कर्म भी व्यक्तिकी अपेक्षा सादि और प्रवाहकी अपेक्षा अनादि हैं ॥

पुनः आपने लिखा कि "जीव प्रकृतिसे सूक्ष्म और परमात्मासे स्थूल है" सो यह आपका लिखना युक्ति संगत नहीं है । क्यों कि वैशेषिक दर्शनके सातवें अध्याय प्रथमान्हिकके चार्लेखें "विभवात्महानाकाशस्तथा चात्मा" सूत्रमें आत्माको भी विभु ( सर्व व्यापक ) माना है इस वास्ते व्यापकत्व हेतुसे परमात्माकी तरह जीवात्मा में भी सूक्ष्मता मिट्ट होती है जिस तरह परमात्मा सूक्ष्म है उसके गुण जीवात्मा में आते हैं उसी तरह जीवात्माके गुण भी परमात्मा में चले जायेंगे तथाच गुणोंका परस्पर साङ्ग्य हो जायगा ।

आगे आपने स्थूल और सूक्ष्मके लक्षण लिखे थे किस शास्त्रके आधारसे हैं तथा ये अतिव्याप्ति और असम्भव दोष यस्त भी हैं । महाशयजी प्रायः द्रव्योंके लक्षण गुण मूलन किये जाते हैं जैसे कि "उष्ण स्पर्शवत्तेजः," यह तेजो द्रव्यका लक्षण किया है । यदि आपके मन्तव्यानुसार सूक्ष्म तेजके उष्ण स्पर्शादि गुण स्थूल जगत् में भी चले जायेंगे तो उक्त लक्षण अतिव्याप्त होगया तथा एक द्रव्यके समवेत गुण दूसरे द्रव्यमें जाही नहीं सकते तो यह आपका लिखना कि सूक्ष्मके गुण स्थूलमें चले जाते हैं भी सर्वथा असम्भव है । तथा गुणोंके परस्पर द्रव्यमें आने जानेसे बड़ा भारी द्रव्योंमें सांकर्य दोष होगा ।

पुनः आपने लिखा कि "सुख और ज्ञान गुणोंका बोध जड़ पृथ्वीको कैसे हो सकता है जो कि चेतन्यका कार्य है," सो यह आपका लिखना युक्त्यपूर्ण है जैसे कि सुख रहित जीवमें ईश्वरका सुख गुण आकर उसको सुखी कर देता है ठीक इसी तरह ईश्वरका सुख और ज्ञान गुण पृथ्वीको भी ज्ञानवान् और सुखी कर सकते हैं जब पृथ्वीमें ज्ञान गुण आजायगा तो पृथ्वी भी चेतन होकर जीवकी तरह सुखका अनुभव क्यों नहीं करने लगती । आगे आपने लिखा कि "इच्छा और द्वेष मनका धर्म है तो जीवको प्रतीत होते हैं और दुःख पुद्गलका स्वभाव है जो उसके संगसे मनमें आता है और जीव अभ्याससे अपनेको प्रतीत करता है" सो आपका यह कथन अविचारित रम्य है । इच्छा और द्वेष ये चेतनके धर्म प्रत्यक्ष सिद्ध हैं यदि जड़ मनके धर्म होते तो आत्माके सुख होने पर या मृतक शरीरमें भी प्रत्यक्षित होते इसी तरह

दुःख भी पुद्गलका स्वभाव नहीं हो सकता किसी घट पटादि जड़ पदार्थों में दुःख प्रतीत नहीं होता वैशेषिक मतानुसार इच्छाद्वेष और दुःख ये आत्मा के गुण माने हैं और आप वैशेषिक शास्त्रों को प्रमाण मानते हुये भी इच्छा-द्वेष की पुद्गलका मतका गुण कहते हैं तथा आपने पहले यह प्रतिज्ञा की है कि जीवात्मा प्रकृतिसे स्थूल सूक्ष्म और ईश्वरसे स्थूल है स्थूलके गुण सूक्ष्म में नहीं जाते जब कि दुःख इच्छा द्वेष ये प्रकृति धर्म हैं तो सूक्ष्म जीवात्मा में आ भी कैसे सकते हैं अभ्यासमें जीव पुत्र कलत्र धन धान्य आदिको भी अपने मानता है यह भ्रमज्ञान है भ्रमज्ञानकर प्रतीत पदार्थ मत्त्य नहीं हो सकते इस लिये ईश्वरके सुखादिकगुणोंका जीवमें आना नितान्त असम्भव है क्योंकि ईश्वरमें और सुखादिक गुणोंमें समवाय सम्बन्ध है समवाय सम्बन्ध वाले पदार्थ समवायीसे भिन्न नहीं होते । पुनः आपने लिखा कि "ईश्वर जगत्कर्ता लिखनेका मतलब जगत् की ईश्वरका कार्य करना ही है इत्यादि" उत्तरमें निवेदन है कि महःशय जी ? आप बड़े ही कठिन इठ धर्मी हैं आप अपनी गलतीको छोड़ स्वीकार नहीं करते आप किस लक्षण वृत्ति, व्यवृत्ति, या अभिधा शक्तिके द्वारा "ईश्वर जगत्कर्ता" इसका अर्थ जगत् ईश्वरका कार्य है यह करते हैं । अस्तु हम आपके कहे अनुसार आपकी इसी प्रतिज्ञाको स्वीकार करते हैं कि जगत् ईश्वरका कार्य है ( १ ) जगत् शब्दका अर्थ आप के भिद्धान्तानुसार ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीनोंका समुदायात्मक है और आपके कथनानुसार ये तीनों नित्य पदार्थ हैं जब कि इनमें प्रकृत अनुमान से ईश्वर कार्यत्व सिद्ध करोगे तो हेतु विरुद्ध हेतुवाभास है ( २ ) तथा जगत्के अन्तर्भूत घटपटादिक पदार्थ भी हैं उनका कर्ता कुलाल तन्त्रादिक ही प्रत्यक्ष सिद्ध हैं इस लिये आपका हेतु व्यभिचारी भी है ( ३ ) ईश्वरमें सृष्टि कर्तृत्व धर्म निमित्तिक या स्वाभाविक है यदि निमित्तिक है तो निमित्त बतलाइये यदि स्वाभाविक है तो स्वभाव अनादि होता है तो आपकी सृष्टि भी अनादि हुई तथाच प्रलय होही नहीं सकती क्योंकि प्रलयकालमें भी तो उसका स्वाभाविक धर्म सृष्टिकर्तृत्व मौजूद है सृष्टि रचनाही रहेगा ॥

( ४ ) यदि ईश्वरमें सृष्टिकर्तृत्व धर्म स्वाभाविक मानोगे तो प्रलय कर्तृत्व नहीं बन सका क्योंकि सृष्टिकर्तृत्व और प्रलयकर्तृत्व ये दोनों विरुद्ध धर्म हैं ।

( ५ ) ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्व का लक्षण क्या परमाणुओंमें गत्युत्पादकत्व है । जैसा कि दशगुणानन्दजी ने गौणिक शास्त्रार्थमें कहा था तो जिस वक्ता (सृष्टि-

कालके प्रारंभ ) में ईश्वरने परमाणुओं में गति उत्पन्न की थी उसके पहले ( मलयकालमें ) भी ईश्वरमें गत्युत्पादकत्व धर्म था उस समय परमाणुओंमें गति उत्पन्न क्यों नहीं हुई ।

( ६ ) तथा ईश्वरने परमाणुओंमें गति उत्पन्न की और उससे सूर्य चन्द्र-मादिक उत्पन्न हुये जिस समय वे परमाणु सूर्य चन्द्र आदि रूप हुये तब ईश्वरसे उत्पन्न गतिरूप परिणत परमाणुओंकी गतिका अवरोध हुआ वह की-जसा पदार्थ है जिसने ईश्वरकी शक्तिका विघात करके ईश्वर कर्तृत्व परमाणुओंकी गतिको रोक दिया ।

( ७ ) ईश्वर शुद्ध अखण्ड द्रव्य है और उत्पादक उसका स्वाभाविक धर्म है इसलिये समस्त परमाणु जवसे ईश्वर और परमाणु मौजूद हैं अर्थात् अनादि कालसे एक ही दिशा को निरन्तर दोड़ते रहने चाहिये और ऐसी अवस्थामें उन परमाणुओंमें हमेशा समान अन्तर बना रहेगा और सृष्टिरूप कार्यकी कदापि उत्पत्ति नहीं हो सकेगी एक अखण्ड शुद्ध द्रव्यका स्वाभाविक धर्म भिन्न २ परमाणुओंको भिन्न २ विरुद्ध दिशाओंमें गमन नहीं करा सकता क्योंकि एक स्वाभाविक धर्मसे एक कालमें विरुद्ध दो कार्य होगा असम्भव है यदि विरुद्ध भिन्न २ दिशाओंमें ईश्वर अपने स्वाभाविक धर्मसे चलाता है तो बतलाइये कि इसमें नियामक कौन है जो किसी परमाणुको उत्तर दिशा में गमन करावे और किसीको दक्षिणमें गमन करावे यदि कहो कि ईश्वर की इच्छासे ऐसा हुआ तो आपके मिद्धान्तानुसार ईश्वरमें इच्छा मानें नहीं गई है ।

“पुनः आपने लिखा कि “अथकि कर्ममल पुद्गलद्रव्य है तो उसका अनादि कालसे सम्बन्ध कैसे इत्यादि” महाशय जी ! इसका उत्तर हम कई दफे लिख चुके हैं उसके ऊपर तो आप ऊहापोह करते नहीं हैं पुनः उसीको पिष्ट पेषण करते हुये पूछते चले जाते हो अस्तु हम पुनः उसका उत्तर लिखते हैं इस कर्म मल और जीवका जनकोपलवत् संयोग सम्बन्ध मानते हैं और यह आपकी सृष्टिकी तरह उपपत्त्यपेक्षया सादि और संतत्यपेक्षया अनादि है । जीव भी सूक्ष्म है और कर्म भी सूक्ष्म है सूक्ष्म सूक्ष्मका परस्परमें सम्बन्ध होता है । आगे आपने लिखा कि महर्षि “ईश्वरानिदुः” केवल प्रतिज्ञा करते तो आगे हेतु देते इत्यादि, सो आपको सांख्य दर्शनकी भर्षकीअनभिज्ञताका खोपक है सांख्यकारके प्रत्यक्षके लक्षणमें नैयायिकने अव्याप्ति दोष दिया था उसका निवारण करते हुये हेतुपरक यह सूत्र “ईश्वरानिदुः” लिखा है इसलिये इसमें पंचमी विभक्ति है पुनः नैया-

यिकने "ईश्वराभिदुः" इस हेतुसे साध्य समहेतवाभासका उद्भावन किया और ईश्वरके सिद्ध करनेमें अनुमानादिक प्रमाणादिये जिनका कि खंडन सांख्यकारने उत्तर सूत्रों ( मुक्तशब्दुपेक्षयतराभावाकृततत्तिदुः ) आदिमें किया है तथा ईश्वरकी असिद्धिको प्रतिष्ठा रूप लिखकर हेतु निदर्शन परकभी पांचवें अध्यायका दशवां "प्रमाणाभावाकृततत्तिदुः", यह सूत्र कहा है । और आपने समाधिषुप्तिमोक्षेषुब्रह्मरूपता, इस सूत्रसे ईश्वरकी सिद्धिकी सी, महात्मन् यहां ब्रह्मशब्दका अर्थशुद्ध जीव है अन्यथा पूर्व सूत्रोंसे महान् विरोध उपस्थित होगा

... हमारे पूर्व पत्रके कुछ प्रश्नों का उत्तर आपने अभी तक नहीं दिया  
 सो कृपया दीजिये वे प्रश्न ये हैं:—

( १ ) वैशेषिकने जो चौबीस गुण माने हैं उनमें इच्छा द्वेष तथा सुख और दुःख ये दोनों युग्म परस्पर विरुद्ध हैं और इन चारों ही को जीव का गुण माना है इसलिये बतलाइये कि एक जीवके इच्छा द्वेष और सुख दुःख ये परस्पर विरुद्ध गुण कैसे सिद्ध होते हैं ।

( २ ) गुणोंके औपाधिक, नैमित्तिक स्वरूप, और सटस्थ इन चारों भेदों के माननेमें प्रमाण क्या ? और इन चारोंके लक्षण क्या ! और इन चारों की निष्पत्तिका नियम क्या !

( ३ ) गुण और गुणोंका समवाय सम्बन्ध है तो एक द्रव्यका गुण दूसरे द्रव्यमें किस प्रकार आसक्ता है ।

( ४ ) सूक्ष्म द्रव्य के गुण जब स्थूल द्रव्यमें आते हैं तो ईश्वरके सुख और ज्ञानगुण पृथ्वीमें क्यों नहीं आजाते ।

( ५ ) गुणसे निरपेक्ष द्रव्यका लक्षण क्या है ?

( ६ ) आपने ईश्वर साधक शब्द प्रमाणमें वेद का प्रमाण दिया वहां ईश्वर की सिद्धि वेदाधीन और वेदकी सिद्धि ईश्वराधीन यह अन्योन्याश्रय है इसका कारण क्या ?

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य,

—\*—

ओ३म्

( क ) नं० ५ का उत्तर

आर्यसमाज अजमेर ।

ता० २५ । ९ । १२

श्रीमान् महाशय जी, नमस्ते !



आवरण दोष हमेशा द्रव्यका होता है, जो उसको सामान्यसे भिन्न करने के विशेष बनाया करता है। दोनों अर्थ शब्दोंके आधारसे हैं। जब सर्वज्ञ शब्दका योगिक अर्थ लेते हैं तो सर्व पदार्थोंको एक कालमें जानने वाला सर्वज्ञ कहाता है। और उपचारसे जो सर्व पदार्थोंके जाननेमें मनर्ष हा उसको भी कहते हैं। एक कालमें सर्व पदार्थोंको जानने वाला सर्व व्यापक ही हो सकता है। किसी एक देशी पदार्थमें अनन्त गुण हो ही नहीं सकते। औपचारिक सर्वज्ञ जिस पदार्थसे सम्बन्ध करता है उसको जानता है एक कालमें नहीं। जीव ईश्वरके सुख गुणको अन्तर्भूत होनेसे सुषुप्ति, समाधि और मुक्ति में प्रतीत करनेसे उसका ज्ञाता कहलाता है। गुणोंसे अतिरिक्त द्रव्य क्या वस्तु है। सो महाशय जी ! गुण चार प्रकारके हैं। स्वाभाविक, नैमित्तिक, औपाधिक, और पाकज स्वाभाविक गुण तो स्वरूप कहलाते हैं, औपाधिक नैमित्तिक और पाकज गुणोंके नाश होने पर भी द्रव्य बना रहता है। द्रव्य गुणों की समष्टिका नाम है और गुण व्यष्टिका। द्रव्यमें गुण रहते हैं। गुणमें न द्रव्य रहते और न गुण। इनकी पूरी व्याख्या वैशेषिक दर्शनमें देख सकते हैं। द्रव्यका लक्षण ही यह है "क्रिया गुणवत् समवायि कारणं द्रव्य लक्षणम्" गौतमका न्याय दर्शन "सिक्ख फिलास्फी आफ इण्डिया" के अन्दर होने से पादरी स्काट जैसे अन्य धर्मावलम्बी विद्वान भी मानते हैं। ऋषि शब्द वेद मन्त्रोंके अर्थोंके दृष्टाके लिये प्रयोग होता है। आपके 'सांख्यकनन्दी' ने किन वेद मन्त्रोंको देखा ? जैन समाजका सांख्यकनन्दी सूत्र किस मतावलम्बीने स्वीकार किया ?

महर्षि शब्द वेद मन्त्रार्थ दृष्टाओंके लिये तो नियत है ही किसी मतके मान्यको महर्षि नहीं कह सकते। ऐसे तो सबको अधिकार है कि जैसे पञ्जाब देशमें नाईको राजा ऐसे ही अपने मान्य पुरुषोंका नाम महर्षि रखें। ऋषियोंका न्याय कल्पित नहीं लाक्षणिक हैं। आप जरा न्यायका लक्षण कीजिये। और फिर अपने तर्कमें घटाइये।

आपने जो लिखा "साधन व्युत्पत्तिसे निष्पन्न ज्ञान शब्दका वाच्य प्रमाण है और भाव साधन व्युत्पत्तिसे लब्ध ज्ञान शब्दका वाच्य प्रामिति है इस नियमका नियामक क्या है ? अज्ञानकी निवृत्तिमें कारण भूत पदार्थ जो होगा, वह अज्ञानका विरोधी होगा। क्या जिस शब्दसे किसी वस्तुके निवृत्ति होनेका बोध होता है, वह शब्द निवृत्त्याका विरोधी है।

इन्द्रिय अर्थों का मन्त्रिकर्ष जह नहीं तो चेतन है ? प्रथम तो आपके शास्त्रोंने एक ही चेतनको माना था, अब दूसरा चेतन भी आगया । उपासि ज्ञानको अनुमान माना है या उपासिको अनुमानका साधन माना है । पंचावयवमें से उपनयन उपासि एक अवयव है, न कि अनुमान । प्रमाणाके गुणको प्रमाण कहना बहुत बड़ी भूल है । क्या पद ज्ञान शब्द प्रमाण कहलाता है, या आसंपदेश । प्रमाणा और प्रमाणके एक होनेसे आत्माअथ दोष नहीं दिया गया, किन्तु प्रमाणा और प्रमेयके होनेसे । जीवात्मा प्रमाणा गानसिक प्रत्यक्ष प्रमाण, जीवात्मा प्रमेय-यहां प्रमाणा और प्रमेय दोनों एक हैं । ईश्वरके ज्ञान स्वरूप होनेसे वह ज्ञान कभी होता नहीं जो आत्माअथ दोषमें आजावे, किन्तु स्वतः मिट्टु है । जो अपनेको प्रमाणसे जानता है, वह प्रमाणा कहलाता है ।

जब ईश्वर अपने स्वरूपको किसी प्रमाणसे जानता ही नहीं तो न वह प्रमेय है और न प्रमाणा फिर आत्माअथ दोष कहां है ? यदि अपनेको किसी प्रमाणसे जानता तो आत्माअथ दोष होता ।

जो लक्षण आपने स्मृतिका किया है वह प्रत्यभिज्ञामें अतिरघात है । वैशेषिक दर्शनने जो चौबिस गुण माने हैं उनमें सुख दुःखको जीवात्माका स्वाभाविक गुण नहीं माना । क्योंकि विरुद्ध द्वय धर्म किसी वस्तुके स्वाभाविक गुण नहीं होते । जिस प्रकार इच्छा और द्वेष, सुख और दुःख, उपासितिक है वो एक वस्तुके स्वाभाविक गुण नहीं हो सकते हैं । जिस क्षणमें सुख होगा उस क्षणमें दुःखी नहीं कहला सकता, यदि जीवका स्वाभाविक गुण सुख होता तो किसी समय अप्राप्त नहीं होता । जैसे अग्निमें उत्पन्ना कभी भी अप्राप्त नहीं । इन दूसरे सूत्रमें साफ अतलाया है, दुःख और दोष मिष्टया ज्ञानकी सन्तान हैं, जीवको स्वाभाविक सुखी मानकर न तो सुखकी इच्छा हो सकती है, न दुःख आ सकता है । स्वाभाविककी उत्पत्ति होना नहीं, परन्तु यहां उत्पत्तिका अर्थ व्यक्तता है । क्योंकि यदि उत्पत्ति मानते तो कारण के विलम्बसे विलम्ब अवश्य होता । जैसे नित्य पदार्थोंको अपने आप स्वभा कहते हैं । यदि आप पीले और कालेको जो जालीके कपड़े हों तो साफ हरा प्रतीत होगा, तो वहां पर वाच्य वाचक भाव होता है । दीपक सावयव पदार्थ हैं, जितना अवकाश एक दीपकके प्रकाशमें प्रकाशके परमाणुओंके मध्य में रहता है, उसमें दूसरे दीपकके प्रकाशके परमाणु आते हैं । कर्म पुद्गल द्रव्य

है, जो कभी भी अवकाश के बिना नहीं रह सकता। यदि किसी प्रमाण से ये सिद्ध कर दें कि पुद्गल जगह नहीं घेता, तो भी जिस जगह आत्मा है, जो शरीर के बराबर स्थूल है। कर्म उससे छोटा होने से उसके आधार तो आजाय परन्तु गुण गुणों में जहां अवकाश का नाम भी नहीं वहां कैसे स्थित हो। कर्म और आत्मा दोनों के एक क्षेत्र अखण्ड होने में भी गुण गुणों के दरम्यानमें आना किस तरह संभव है। गुणका विकार किस तरह हो सकता है जब कि गुण में अवयव ही नहीं।

हल्दी और चूने का जो दृष्टान्त आप दे चुके हैं, उसमें गुण गुणों के दरम्यान में उपाधि आने का प्रमाण कहा है। दृष्टान्त के विषय होने से मिष्टान्त गिरजाता है। जब पीले रंग को देखने में श्वेत बाधक हुआ, और श्वेत को देखने में पीला तो दोनों से भिन्न रंग का प्रतीत होना आवश्यक है।

जैसे दो बराबर शक्ति वाले मत्तन जब युद्ध करते हैं, या दो अभावोंसे भाव होजाता है, ऐसे ही मत्तनों के युद्ध से शक्ति का अभाव हो जाता है। हल्दी का रंग चूने के रंग के प्रतीत होने में बाधक है, और हल्दी के रंग को प्रतीत करने में चूनेका रंग बाधक है। इन वास्ते दोनोंसे भिन्न और दोनों से मिलता हुआ रक्त वर्ण प्रतीत होता है। क्या बाध्य बाधक भाव विरोधी हैं। जैसे बहते हुए पानी के आगे बन्ध बांधने से पानी रुकजाता है, परन्तु पानी और बन्ध दोनों विरोधी नहीं, आपातक नाशक हुआ करता है बाध्य नहीं। हल्दी में पीलापन गुण है और चूने में श्वेतपन परन्तु एक माय देखनेमें दोनों से भिन्न प्रतीत होता है। इरे आममें काला और पीला दोनों के मिलाप से पैदा होने वाला हरा रंग दीखता है, परन्तु जब अग्नि के सम्बन्ध से काला रंग दूर हो जाता है तो केवल पीला रंग प्रतीत होने लगता है। गुण किसी अवस्था में हो तो भी गुणी है, ये पुद्गल द्रव्य की अवस्था में पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, हैं या भिन्न २? क्या कभी अग्नि का परमाणु जलका परमाणु हो जाता है? या पृथ्वी का परमाणु अग्नि का परमाणु बन जाता है? यदि ऐसा है तो परमाणुसे सिद्ध कीजिये। यदि ऐसा नहीं तो चारों अलग २ हैं, उनको एक दूसरेकी अवस्था कहना भ्रान्ति है।

अब पुद्गलकी कर्म रूप पर्याय होती है इस प्रतिज्ञामें हेतु उदाहरण नहीं दिया, इसको किस प्रमाण से सिद्ध करते हैं? कर्ममें गुणोंकी अवस्था विशेषसे जीवके ज्ञानादि गुणोंको विकृत करनेकी शक्ति है, ये भी साध्य है।

कोई समय में कर्म के परमाणु पृथिव्यादिक रूप हो जाते हैं, और पृथिव्यादिक कर्म रूप हो जाते हैं, ये तो मरा साध्य है। आपने जिस पुस्तक का नाम लिया है वो उभय पक्ष मान्य है इसमें क्या प्रमाण? यदि मान्य नहीं तो चौथा साध्य है।

वादी प्रतिवादी की बुद्धि के साम्य प्रदर्शन प्रदेशका जो आपने दृष्टान्त कहा ये ठीक नहीं। क्योंकि वादी प्रतिवादी की बुद्धि यदि एक हो जाय तो विवाद ही कहाँ रहे। महर्षि गौतमने "लौकिक परित्तकानां यस्मिन् बुद्धि साम्यं स दृष्टान्तः,, ये लक्षण जो किया है वो तो समीचीन है, परन्तु आपका किया हुआ लक्षण दूषित है।

कर्म बंधनका हेतु है वो व्यक्तिकी अपेक्षा से है, या प्रवाहकी अपेक्षा से? परमात्माके गुण आनन्दादि परमात्माके जीवमें होने से नैमित्तिक प्रतीत होते हैं, परन्तु प्रकृतिके गुण मन तक रहते हैं। इसलिये सुषुप्ति अवस्थामें जब जीवका मनसे सम्बन्ध नहीं होता तो प्रतीत नहीं होते। यदि प्रकृति से जीव सूक्ष्म न होता तो सुषुप्ति अवस्थामें भी मनके बिना जीवमें दुःख चला जाता। जीवात्मा विभू है, यह इस सूत्रका भाव नहीं। वैशेषिककार जीवात्मा परमात्मा दोनोंकी आत्मा शब्दसे लेते हैं। परमात्मा स्वरूपसे विभू है, और जीवात्मा जातिसे, इस वास्ते जीवात्मा परमात्मासे स्थूल और प्रकृति उससे स्थूल है। लक्षणोंमें किसी शास्त्रका आधार सांगना ब्याप विरुद्ध है। अतिट्यासि और असंभव दोषसे ये ग्रस्त हैं, ये आपकी प्रतिज्ञा है। इस प्रतिज्ञा के लिये किसमें अतिट्यासि है, और किस प्रकार असंभव है, ये आपने दिखलाया नहीं। जिससे खाली मूखी प्रतिज्ञा करके अपने निर्घलपक्षको सिद्ध करना चाहते हैं। स्थूल सूक्ष्मका द्रव्य है। द्रव्य तो स्थूल सूक्ष्म नहीं बल्कि ( क्रिया गुणवत् समवायि कारणमिति द्रव्य लक्षणम् ) किनी द्रव्यों का क्रिया से, किनीका गुणोंसे, किनीको समवायि कारण होनेसे स्थूल द्रव्य में सूक्ष्म द्रव्य चला जाता है। और उसके गुणों की प्रतीति है। जैसे पानी को गर्म कहते हैं, यदि पानीमें अग्नि दाखिल न हो तो पानी गर्म कैसे कहलाय? यदि पानीमें आग दाखिल न होकर पानीको गर्म करती है तो असंभव कैसे? सुख रहित जीवमें ईश्वरके दाखिल होनेसे अन्तर्मुख जीव को सुखका ज्ञान होता है। पृथिवीमें ज्ञान और सुखको ग्रहण करने की योग्यता

ही नहीं, जिसके आंख ही उसको तो सूर्य दिखना सकता है, क्या सूर्यके प्रकाशसे अन्धेको आप दिखला सकते हैं ? जिसमें योग्यता है उसमें वास्तुगुण आया करते हैं, जिसमें योग्यता नहीं उसमें नहीं ।

जीव अस्पृष्टतासे मनमें आत्माध्यास रखता हुआ मनके धर्मको अपना मान लेता है । जैसे किसोका मकान जलजाय तो वो मकानको अपना मानता हुआ कहता है, मेरा सत्यानाश होगया । यथार्थमें मकानके जलने से उसका कुछ नहीं खिगड़ा, इसीलिये महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शनमें कहा था "वृत्ति सारूप्यं इन्द्रज, समाधि अवस्थाको छोड़कर जिस प्रकारकी मनकी वृत्ति होती है, ऐमा ही जीवात्मा अपने आपको मानता है, यदि मन चंचल है तो जीवात्मा चंचल है, यदि मन स्थिर है तो जीवात्मा स्थिर है, यदि मन सुखी है तो जीवात्मा सुखी है, यदि मन दुखी है तो जीवात्मा दुखी है । वैशेषिक शास्त्रमें जो जीवात्मा के गुण बतलाये हैं, वो शरीर सहित आत्मा के हैं खानी आत्माके नहीं । वैशेषिक ने कहा लिखा है कि ये जीवके स्वाभाविक गुण हैं । यदि जीव के स्वाभाविक गुण होते तो सुषुप्ति अवस्था में दुःख और निमेष उन्मेष अवश्य होते । परन्तु देह और मनमें अध्यास होनेसे न कि अभ्यास होनेसे, जीव अपनेको दुःखी मानता है । मानना और होना दो भिन्न २ बातें हैं । प्रत्येक मूर्ख गर्भ में फंसकर अपनेको विद्वान् मानता है परन्तु होता नहीं । और शब्द अध्यास है अभ्यास नहीं । जब ईश्वर जीवमें सूक्ष्म होनेसे प्रविष्ट है तो उसके गुण साध ही होंगे, नितान्त असम्भव कैसे ? जीव जब अन्तर्मुख होना तो अन्दर रहने वाले ईश्वरके गुण सुखको प्रतीत करेगा । जब बाह्य मुख होगा तो इन्द्रिय मनसे पैदा होने वाले दुःखको प्रतीत करेगा । जगत्, ईश्वर, जीव और प्रकृति के समुदायका नाम नहीं किन्तु प्रकृतिकी विकृत अवस्थाका नाम है । ईश्वरमें स्वाभाविक क्रिया है जो उसकी न्याय और दयाके अनुरोध से संयोग वियोगरूप या सृष्टि प्रलयरूप प्रतीत होती है । न्यायसे स्थल सूक्ष्म शरीर इन्द्रिये जाग्रत स्वप्नावस्था और सृष्टि होती है, और दयासे सूर्य चन्द्रादि लोक सुषुप्ति अवस्था और प्रलय होती है । ईश्वरमें कर्तृत्व स्वाभाविक है, जो न्याय और दयाके अनुरोधसे प्रलय करना और सृष्टि करना कहलाता है । ईश्वर संयोगोन्मुख शक्तिसे क्रिया देकर परमाणुमें संयोग और वियोगोन्मुख

शक्तिसे वियोग होता है। ईश्वर की शक्तिका विघातक कोई दूसरा द्रव्य नहीं बल्कि ईश्वरकी शक्तिसे उसके गुणोंके अनुसार संयोग और वियोग होते हैं। परमाणु एक क्षण भी गति शून्य नहीं रहते। ईश्वरका लक्षण सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और संसार है, केवल उत्पन्न करना नहीं। यदि बाहर से गति दे तो परमाणु एक तर्क जा सकते हैं और उनमें अन्तर बना रहता है। परन्तु मय परमाणु ईश्वर के सर्वव्यापक होनेसे परमाणु उसके अन्दर हैं। इसलिये चारों तरफसे क्रिया मिलती है। क्या सोने और पत्थरका संयोगमम्बन्ध अनादि है? अनादि तो केवल मयवायमम्बन्ध होता है, जहां २ संयोग मम्बन्ध है सय मादि है, जीव भी मूढन और कर्म भी मूढन ये कहना ठीक नहीं। क्योंकि जीव, चेतन, और कर्मजड पुद्गलका विकार है। सांख्यदर्शन की पढ़नेसे तो सांख्यकार ईश्वरको मानने वाले ही मान्ते हैं। जैसे लिखा है "विद्यायाः अनित्यत्वे ब्रह्मवादप्रसङ्गः" पांचवें अध्यायका दशवं मूत्र प्रमाणाभावसे मूत्र नाशरणसे कार्यसिद्धिका निषेध करता है, न कि ईश्वरका।

आपके पुराने प्रश्नों के मत्र उत्तर दिये जा चुके हैं, वैशेषिककारने कहा लिखा है कि जीवके गुण स्वाभाविक हैं गुणोंके भेद वैशेषिकदर्शन प्रसंगपाद भाष्यमें देखिये, जिन स्थल द्रव्यमें मूढन द्रव्य जायगा साथ ही उसका गुण भी जायगा ॥

पृथिवीके अन्दर ईश्वरके होनेसे उसका गुण ज्ञान और सुख है परन्तु पृथिवीमें जड़ होनेसे इनको जाननेकी शक्ति नहीं। जैसे नेत्र वाला मृग को देखता है, अन्धा नहीं। वेद ईश्वरका मिलु करने वाला ऐसा ही है जैसे पुत्र को देखनेसे उसके पिताका अनुमान होता है। कार्यको देखनेसे कारणका, इनमें अन्योन्याश्रय दोष नहीं। ईश्वर वेदका जनक है वो वेद ईश्वर साधक है अन्योन्य आश्रय दोष कहां है? यदि दोनों में जन्य जनक भाव या साधक साधक भाव होता तो अन्योन्याश्रय दोष आता जब भाव दोनों पृथक २ हैं तो अन्योन्याश्रय दोष कहां?

भवदीय-मन्त्री रामचन्द्र

—\*—

श्री जैनसत्त्व प्रकाशिनी मठ

( क ) पत्र नं० ६

इटावा । ता० १० । १० । १२

महाशय जी जुडान के अनन्तर निवेदन है कि अन्नकी चार तो आपने माहम की सीमा की उल्लंघन कर दिया है "पूछे खेतकी खताते खलियान

की" इस उक्ति को धरितार्थ किया है। इस यहां साथ २ पाठकों से भी निवेदन करते हैं कि आज हमारे ( क ) विभाग नम्बर ५ को और आर्य समाज की तरफ से दिये हुए उनके उत्तर को साथ २ रखकर वाचें जिसमें आपकी मालूम हो जायगा कि समाजी महाशय अब किसी वेतुकी हांकने लगे हैं उनकी इस टालवाजी को रोकनेके लिये अब हम अपने प्रश्नोंको नम्बरवार लिखते हैं और समाजी महाशय से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे प्रश्नों का उत्तर भी नम्बरवार दें कि जिसमें पब्लिक धोके में न पड़े नम्बरवार प्रश्नावलीका पत्र इस पत्रके साथ लट्ठा है ॥

पुनः आपने लिखा कि सर्वज्ञ शब्द के दोनों अर्थ शास्त्र के आधार से हैं परन्तु यह नहीं लिखा कि कौनसे शास्त्रके आधारसे है इस लिये प्रश्न नम्बर ३४-फिर भी खड़ा है।

आपका यह लिखना कि "औपचारिक सर्वज्ञ जिस पदार्थमें सम्बन्ध करता है उसीकी जानता एक कालमें नहीं" नितान्त असम्भव है क्योंकि मन विक्षेपादिमें सहित मन है जिनका वे भी जिस पदार्थमें सम्बन्ध होता उसी की जानते हैं इस लिये सम्पूर्ण जीव औपचारिक सर्वज्ञ ठहरेंगे।

आपने द्रव्यका लक्षण "क्रिया गुण-तत्त्व समन्वय कारण द्रव्य लक्षणम्" यह द्रव्यका लक्षण किया है सो इस लक्षण की आकाश और ईश्वरमें अव्याप्ति है क्योंकि उक्त दोनों पदार्थ क्रिया रहित हैं और द्रव्य के लक्षण में गुण पद पड़ा है और गुणके लक्षणमें द्रव्य पद पड़ा हुआ है तो द्रव्यका ज्ञान बिना गुणके नहीं हो सकता इस लिये परम्परा अन्योन्याश्रय दोष आयागा ॥

पुनः आपने लिखा कि ऋषि शब्द वा वेद मन्त्रोंके दृष्टाके अर्थमें प्रयोग होता है सो यह लिखना आपका नितान्त असङ्गत है ऋषि शब्द "ऋषैर्गता" धातुसे बना है सो इसके अनुसार ऋषि शब्दका अर्थ ज्ञाता होता है इस लिये जैन सिद्धान्तके ज्ञाताको भी ऋषि कहते हैं माणिक्य नन्दि महर्षिने अनेक जैन सिद्धान्तके रहस्योंको जाना है इस लिये वे महर्षि ही हैं माणिक्यनन्दि सूत्रको वैष्णव मतके प्रधान आचार्य पात्रकेशरी ने भी माना है। महर्षि शब्द जैन सिद्धान्त के ज्ञाता के लिये तो नियत है ही परन्तु किसी अन्यमतके मान्यको महर्षि नहीं कह सकते।

पुनः आपने लिखा कि कारण साधन ज्ञान शब्द प्रमाण और भाव सा-

घन ज्ञान शब्द प्रमिति इस नियमका नियामक क्या है ? सो महाशय जी ! लक्ष्य और लक्ष्य में सामान्याधिकरण हुआ करता है । प्रमाण प्रमिति के कारण को कहते हैं ।

इस लिये प्रमाण शब्द कारण साधन रूप है इसी हेतुसे प्रमाणका लक्ष्य जो ज्ञान है वह भी कारण साधन रूप होगा । प्रमिति शब्द भाव साधन रूप है और अज्ञानकी निवृत्तिकी प्रमिति कहते हैं और अज्ञानकी निवृत्ति ज्ञानात्मक है इस लिये प्रमितिका लक्ष्य रूप ज्ञान भावसाधन रूप ही पड़ेगा ।

पुनः आपने लिखा कि अज्ञानकी निवृत्तिमें कारण भून जो पदार्थ होगा वह अज्ञान विरोधी होगा सो क्या जिस शब्दसे किसी वस्तुके मिथ्या होने का बोध होता है ॥ वह शब्द मिथ्याका विरोधी है ? सो महाशय जी ! अज्ञानकी निवृत्ति करने वाला तो अज्ञानका विरोधी ही होगा इसमें शक नहीं परन्तु जिस शब्दसे किसी वस्तुके मिथ्या होनेका बोध होता है वह शब्द मिथ्याका विरोधी कैसे हो सकता है वह तो मत्तका विरोधी होगा ।

पुनः आपने लिखा कि इन्द्रिय अर्थका सन्निकर्ष जड़ नहीं तो चेतन है ? प्रथम तो आपके शास्त्रोंने एक ही चेतन माना या अब क्या दूसरा भी चेतन होगया ? सो महाशय जी मालूम होता है कि आप हमारे पत्रोंकी ध्यान से वांचते भी नहीं क्रिया कारक सम्बन्ध भी नहीं मिलाते क्या दिग्दर्शन मात्रसे ही उत्तर लिख मारते हो । हमने लिखा था कि-अज्ञानका विरोधी ज्ञान ही है इन्द्रिय सन्निकर्ष आदिक जड़ पदार्थ नहीं हैं ॥

सो महाशय जी ! इसका यह अर्थ है कि इन्द्रिय सन्निकर्ष आदिक जड़ पदार्थ अज्ञानके विरोधी नहीं हैं किन्तु ज्ञान ही अज्ञानका विरोधी है । पुनः आपने लिखा कि व्याप्ति ज्ञानको अनुमान माना है या व्याप्तिको अनुमान का साधन माना है सो महाशय आपके लिखनेसे मालूम पड़ता है कि आप ने अभी कारिकावली भी नहीं देखी है क्योंकि अनुमान खण्ड की ६६ वीं कारिका में लिखा है “करणव्याप्तिधीर्भवेत्”

पुनः आपने लिखा कि “यह ज्ञान शब्दप्रमाण कहलाता है या आपोप देश” सो महाशय जी जरा कारिकावली को देखिये कि शब्दखण्ड की ८१ वीं कारिका में क्या लक्ष्य किया है “पदज्ञानेतु कारकम्” पुनः आपने लिखा कि



प्रमाता और प्रमाय के एक होने में आत्माअपदोष नहीं दिया गया किन्तु प्रमाता और प्रमेय के एक होने में" सो महाशय जी हमारे पत्रों को कृपाकर ध्यान पूर्वक पढ़िये हमने प्रमाता प्रमाय प्रमेय तीनोंको एक होने से आत्मा अपदोष दिया है अर्थात् ईश्वर ज्ञाता है इसलिए प्रमाता है और ईश्वर अपने ज्ञानरूप प्रमाय से अपने स्वरूपप्रमेय को जानता है इसलिये वही प्रमाता और प्रमेय भी हुआ अतः आत्माअपदोष हुआ ।

पुनः आपने लिखा कि “स्मृति का लक्षण प्रतिभिज्ञाने अतिश्यास है”  
 सो भी आपका भ्रम है क्योंकि “प्रागनुभूत वस्तुमिषया तत्तत्तलेखिज्ञाने स्मृतिः” यह तो स्मृति का लक्षण है “अनुभव स्मृति हेतुकं सद्बलनात्मकं ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानम्” यह प्रत्यभिज्ञान का लक्षण है इस लिये स्मृति और प्रत्यभिज्ञानमें कार्य कारणका भेद है अतः स्मृतिके लक्षणमें अतिश्यास दोष नहीं है ।

पुनः आपने लिखा कि "वैशेषिक दर्शनने जो चीजोंस गुण माने हैं उनमें सुख दुःख को जीवात्माका स्वाभाविक गुण नहीं माना क्योंकि विरुद्ध धर्मद्वय किसी वस्तु के स्वाभाविक नहीं हो सकते इत्यादि,, उत्तर में निवेदन है कि महाशय जी ? जब कि गुण और द्रव्य का समवाय सम्बन्ध माना है और समवाय सम्बन्धको नित्यसम्बन्ध कहते हो तो वड़े आश्चर्यकी बात है कि गुण अनित्य कैसे हुए ? यातो सुखदुःख इच्छा द्वेष को गुणोंके प.ठमें से पृथक् निकाल दीजिये या गुण गुणोंका नित्य सम्बन्ध नहीं मानिये प्रत्यक्ष विरोध दोष आता है उसे आप कुछ भी खयाल नहीं करते। अफशोस ? अफशोस ?? अफशोस ???

दूसरे सूत्र का जो आप अर्थ करते हैं कि दुःख और द्वेष ज्ञान की सन्तान है सो महाशय जी सन्तान अर्थ यह किस पदका है ? दूसरे सूत्र का अर्थ हम पहले पत्रमें लिख ही चुके हैं ॥

हम पहिले कई बार लिख चुके हैं कि सुख जीवका स्वाभाविक गुण है कर्मके निमित्तसे उष सुख गुणकी विकृत पट्यर्थाय हो रही है उष वैभाविक पर्यायको ही दुःख कहते हैं इस वैभाविक पट्यर्थायकी अवस्थामें सुख गुणकी स्वाभाविक पट्यर्थाय अनुपलब्ध है इस लिये अनुलब्ध दृष्टकी दृष्टा होती है।

आपका यह लिखना कि जितना अवकाश एक दीपकके प्रकाशके पर-  
माणुओंके मध्यमें रहता है उसमें दूसरे दीपकके प्रकाशके परमाणु आते हैं।

सो आपकी यह समझ बिलकुल भूल भरी है क्योंकि एक कमरे में १०० दीपकोंका प्रकाश समा सकता है उस कमरेमें जब तक सिर्फ एक दीपकका प्रकाश आया है तो उस कमरेके जनांगमें तो प्रकाश और निन्यानवे भागोंमें प्रकाशाभाव अर्थात् अन्धकार होना चाहिये तो जिस इन्द्रियमें प्रकाशके सद्भाव को ग्रहण करता है उसी इन्द्रियमें निन्यानवे भाग प्रकाशाभाव रूप अन्धकारको भी ग्रहण करेगा यह प्रत्यक्ष वाधित है क्योंकि एक कमरेमें जिस प्रकाशको यह जीव ग्रहण करता है उसके निन्यानवे गुणें प्रकाशाभावको ग्रहण न करे यह नितान्त असंभव है । इसही प्रकार एक ही क्षेत्रमें बिलकुल अवकाश न होने पर भी आत्मा और कर्म यह दोनों द्रव्य युगपत् बन्धको प्राप्त होते हैं ॥

विकार शब्दका अर्थ अवस्थामें अवस्थान्तर होता है एक ही वर्ण गुण हरित अवस्थासे पीत अवस्था रूप होता है इस लिए गुण में विकार होता है और इस विकारको ही पदार्थ कहते हैं ॥

जब हम अपने सिद्धान्त का निरूपण करते हैं तब जो विकार शब्दका लक्षण हमारे सिद्धान्त में माना है उसमें दोष दिखाना चाहिये परन्तु अपने सिद्धान्त निरूपित लक्षणको मानकर हमारे सिद्धान्त निरूपित लक्षणमें दोष देना छल है, हल्दी और चूनेके दृष्टान्तमें आपको कई बार लिख चुके हैं और फिर भी लिखा जाता है कि यह दृष्टान्त विषम नहीं है दाष्टान्तके सर्व धर्म दृष्टान्तमें नहीं मिलते अन्यथा वह भी दाष्टान्त ही हो जाय फिर दोनोंमें भेद ही न रहेगा । जिस प्रकार हल्दी और चूना दो द्रव्य हैं उसी प्रकार जीव और कर्म भी दो द्रव्य हैं जिस प्रकार हल्दी और चूनेके गुणोंकी संक्रान्ति होती है उसी प्रकार आत्मा और कर्मके भी गुणोंकी संक्रान्ति होती है हल्दी चूनेके दृष्टान्तमें आपका यह लिखना कि हल्दीका पीला और चूनेका सफेद रंग परस्पर दोनों ही बाधक हैं सो यह आपका भ्रम है क्योंकि पीला रंग स्वेतका बाधक और स्वेत रंग पीलेका बाधक होनेसे परस्पर अन्योन्याश्रय दोष आता है तथा एक ही पीला गुण एक ही सफेद गुणका बाध्य और बाधक होने से विरोध दोष आता है । आपका यह लिखना कि “जैसे खड़े हुए पानीके आगे बंध बाधनेसे पानी रुक जाता है परन्तु पानी और बंध विरोधी नहीं है” यह आपकी अनभिज्ञता का सूचक है बंध पानीका विरोधी नहीं किन्तु पानीकी गतिका विरोधी है इस लिए बंध और गति परस्पर विरोधी हैं ॥

आपका यह लिखना कि “हरे आभमें काला और पीला दोनोंके मि-  
लापसे पैदा होने वाला हरा रंग दीखता है” आपके इस वाक्यको वांचकर  
आपकी बुद्धिमत्ता पर हंसी आती है हे महाशय जी हरे आभमें काला और  
पीला किस समय था कि जिसके सेनमे यह हरा रंग पैदा हुआ पीला रंग  
तो उसकी लक्ष्य पक्ष अवस्था होगी तब आवेगा महात्मा जी बरां गुण है और  
उसकी काली पीली हरी आदि स्वतन्त्र अवस्थाएँ हैं किमीके सेनमे कोई  
उत्पन्न नहीं होतीं ॥

पुनः आप लिखते हैं “कि पुद्गल द्रव्यकी अवस्थाएँ पृथ्वी अपूर्ण वायु  
हैं या भिन्न भिन्न क्या कभी अग्निका परिमाण जनका परमाणु हो जाता है  
और पृथ्वीका परमाणु अग्निका परमाणु बन जाता है यदि ऐसा है तो पर-  
माणु कीजिये और यदि ऐसा नहीं तो चारों अलग २ हैं उसकी एक  
पदार्थ होती है” सो महाशय जी ? भ्रान्ति इसकी नहीं किन्तु आपकी है  
क्योंकि दिवाभित्ति में गन्धकका पृथ्वी पदार्थमे अग्निके रूप हो जाती है  
सो जहाँ जहाँ बिन्दु भुक्ता रूप पृथ्वी हो जाता है यदि कहीं कि गन्धकमें अग्निके  
परमाणु पहले से ही मौजूद थे सो भी कहना अयुक्त है क्योंकि अग्निका लक्ष-  
ण है “उष्णस्पर्शवत्वं” सो यदि उष्णस्पर्श गन्धकमें होता तो हाथ लगाने पर  
हाथ जलजाता ।

पुनः आपने लिखा कि “पुद्गल द्रव्यकी कर्म रूप पर्याय होती है इस  
प्रतिज्ञामें हेतु उदाहरण नहीं दिया सो इसको किस प्रमाण से सिद्ध करने  
हैं, महाशय जी ! यह अनुमान प्रमाणसे सिद्ध होता है कर्म पुद्गल पर्याय  
हैं क्योंकि मूर्त है जो २ मूर्त होता है सो २ पुद्गल पर्याय होता है जैसे घटपटादिक ॥

पुनः आपने लिखा कि “कर्ममें जीवके गुणोंके घातने की शक्ति है सो  
यह किस प्रमाणसे सिद्ध होता है, सो महाशय जी यह भी अनुमान प्रमाण  
से सिद्ध होता है जीवके गुणोंमें विकार कर्म कृत है क्योंकि क्रीडादिकी अ-  
न्यथानुपपत्ति होती है जिसकी जिसके बिना अनुपपत्ति होती है वह तत्कृत  
होता है जैसे जलमें उष्णता अग्निकृत है ॥

पुनः आपने लिखा कि “कर्म पृथिव्यादि रूप हो जाते हैं और पृथि-  
व्यादि कर्म रूप हो जाते हैं सो इसमें प्रमाण क्या ?” सो इसमें भी अनुमान  
प्रमाण है कर्म और पृथिवी दोनों एक दूसरे रूप परिणामन करते हैं क्योंकि

एक द्रव्यकी पर्याय हैं जो २ एक द्रव्यकी पर्याय होती है वे परस्पर एक दूसरे रूप परिणामन करते हैं जैसे मेघसे जल और जलसे मेघ ।

पुनः आपने लिखा कि "आपने जिस पुस्तकका नाम लिया है वह उभयपक्ष मान्य है इसमें क्या प्रमाण है ?" उत्तरमें निवेदन है कि आपने ईश्वरके सद्भावमें वेदका प्रमाण दिया तथा मानस प्रत्यक्ष आदिकमें गौतम सांख्य दर्शन आदिका प्रमाण देते आए हैं सो महाशय जी ? ये ग्रन्थ भी उभयपक्ष मान्य नहीं है इस लिये आगेसे ग्रन्थोंका प्रमाण न आप दीजिये और न हम देंगे केवल युक्तिवादसे शास्त्रार्थकी चलने दीजिये ॥

पुनः आपने लिखा कि "वादी प्रतिवादीकी बुद्धिके साम्य प्रदर्शन प्रदेशकी जो आपने दृष्टान्त कहा सो ठीक नहीं क्योंकि वादी प्रतिवादी की बुद्धि यदि एक ही जाय तो विवाद ही क्यों करें महर्षि गौतमने लौकिक परीक्षाणां यस्मिन् बुद्धि साम्यं यह लक्षण जो किया है वह तो समीचीन है परन्तु आपका किया हुआ दूषित है "सो महाशय जी ! हमारे लक्षणमें अतद्याप्ति अतिद्याप्ति तथा असंभव इन तीनों दोषों में किसीके दिखाये बिना दूषित कहना प्रयास मात्र है क्योंकि दृष्टान्तमें वादी और प्रतिवादीकी विवाद नहीं हुआ करना दृष्टान्त उभयपक्ष मान्य हुआ कहना है यदि उभयपक्ष मान्य नहीं तो वह भी साध्य कोटिमें आजायगा । आपके गौतम कृत उपर्युक्त लक्षणका भी यही अर्थ है । मालूम होता है कि आपने अभी तक गौतम सूत्रका भी अर्थ नहीं समझा है ।

पुनः आपने लिखा कि "कर्म बन्धनका हेतु है वह व्यक्तिकी अपेक्षासे है अथवा प्रवाहकी अपेक्षा से है," सो महाशयजी उत्तरमें निवेदन है कि कर्म बन्धन का हेतु रागादिक व्यक्तिकी अपेक्षा मादि और प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है ॥

पुनः आपने लिखा कि "जीवात्मा विभु है यह सूत्रका भाव नहीं वेगेषिककार जीवात्मा परमात्मा दोनोंको आत्मा शब्दमें लेते हैं परमात्मा स्वरूप से विभु है और जीवात्मा जातिसे । इस वास्ते जीवात्मा परमात्मासे स्थूल और प्रकृति उसमें स्थूल है ॥ सो महाशयजी ! पूर्व पत्रमें जो हमने सूत्र लिखा था उसने मानान्वय आत्मा विभु सिद्ध होता है और सामान्य आत्मा अपने जीवात्मा और परमात्मा दोनों में व्याप्त है इसलिये जीवात्मा भी विभु है और यदि जीवात्मा विभु नहीं है तो उसका अपवाद सूत्र बतलाइये जिससे कि अधिभृत्य सिद्ध होय ।

आपके स्थूल और सूक्ष्मके लक्षणोंमें इस पढ़ने अतिव्याप्ति और असंभव दोष दिखा चुके हैं सो उन्हें निकालकर और आंखें खोलकर पढ़िये और उनका उत्तर दीजिये ।

पुनः आपने लिखा कि "स्थूल द्रव्य में सूक्ष्म द्रव्य चला जाता है और उसके गुणोंकी प्रतीति होती है जैसे पानीको गर्म कहते हैं,, सो महा-शय श्री ! गर्म अग्निका गुण है जनमें अग्निके परमाणु जानेसे जनमें उष्ण गुणकी प्रतीति होती है परन्तु उष्ण जनमें नहीं चला गया । लौकिकमें जो जनको गर्म कहते हैं वह कहना ऐसा ही है जैसा घी का घड़ा वास्तवमें घड़ा मिट्टीका होता है न कि घी का घड़ा पर वास्तविक पदार्थका निर्णय करना है न कि लौकिकीय अणु वण्ड वाक्योंका । इसलिये स्थूल और सूक्ष्मके लक्षणोंमें अतिव्याप्ति और असंभव दोष आते हैं क्योंकि गुण गुणीका समवाय सम्बन्ध है यदि एकका गुण दूसरे में चला गया तो समवाय सम्बन्ध अर्थात् नित्य सम्बन्ध कहाँ रहा इसलिये असंभवता है ॥

आपका यह लिखना कि "पृथिवीमें ज्ञान और सुखको ग्रहण करने की योग्यता ही नहीं,, यह आपकी प्रतिज्ञा है इसको हेतु उदाहरणसे सिद्ध कीजिये

आपका यह लिखना कि "पृथिवी जड़ अर्थात् ज्ञान रहित होने के कारण ज्ञानको ग्रहण नहीं कर सकती,, तो सुख रहित होने के कारण सुख को ग्रहण कैसे करेगा । ग्रहण वही करता है जिममें पढ़ने से सत्ता नहीं है यदि पढ़ने से ही सत्ता होवे तो ग्रहण करण करनेकी जरूरत ही क्या है ?

पुनः आपने लिखा कि "जिम प्रकार मनकी वृत्ति होती है उसीप्रकार जीवात्मा अपने को मानता है यदि मन चञ्चल है तो जीवात्मा चञ्चल यदि मन सुखी तो जीवात्मा सुखी और यदि मन दुःखी तो जीवात्मा भी दुःखी" सो महाराज ! आपके लिखने से निहृ हुआ कि सुख दुःख मनके गुण हैं परन्तु वैशेषिक आत्माके गुण कहता है यदि सुख और दुःख मनके गुण होते तो मृतक शरीरके मन मौजूद है वहां सुख दुःख क्यों नहीं होते ।

फिर आपने लिखा कि " वैशेषिक शास्त्रमें जो जीवात्मके गुण कतवाये हैं वे शरीर सहित आत्मके हैं खाली आत्माके नहीं,, सो यह अर्थ वैशेषिक दर्शनके कौनसे सूत्रका है सो सूत्र लिखिये तथा गुण द्रव्यते हुआ करते हैं । गुणोंकी समष्टि तो ही आपने द्रव्य कहा है जिम समष्टिमें इच्छा द्वेष और

सुखदुःख है उस समष्टि का नाम कीनसा द्रव्य है वैशेषिक दर्शन में तो खाली आत्मा को द्रव्य गिनाया है यह शरीर मद्धित आत्मा दशवां द्रव्य कहाने आया इच्छा द्वेषादिक जीवके यदि स्वाभाविक गुण नहीं है तो किसके स्वाभाविक गुण हैं जो कि जीवमें आकर नैमित्तिक होते हैं ॥

पुनः आपने लिखा कि " ईश्वरमें स्वाभाविक क्रिया है जो उसकी न्याय और दया के अनुरोधसे संयोग वियोग रूप या सृष्टि प्रलय रूप प्रतीत होती है न्याय से मूल मूल शरीर इन्द्रियें जागृत स्वप्नावस्था और सृष्टि होती है और दया से सूर्य चन्द्रादि लोक सुषुप्ति अवस्था और प्रलय होती है " उत्तर में निवेदन है कि देगाद्वेशान्तर प्राप्ति हेतुः क्रिया यह क्रिया का लक्षण है सो ईश्वर सर्वव्यापक है इसलिये उसके देगाद्वेशान्तर प्राप्ति नहीं हो सकती अतः उसके क्रिया नहीं हो सकती । न्याय और दया से दो गुण ईश्वर के आपने धतनाये और उनके लक्षण इस प्रकार किये कि न्याय से सृष्टि होती है और दयासे प्रलय होती है अर्थात् सृष्टि कर्तृत्व को न्याय और प्रलय कर्तृत्व को दया कहते हैं सो सृष्टि कर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्व ये दोनों विरोधी गुण हैं सो यह ईश्वरमें नहीं रह सकते हैं ।

पुनः आपने लिखा कि "संयोगोन्मुख शक्ति से संयोग और वियोगोन्मुख शक्ति से वियोग होता है " अर्थात् आपके लिखने का यह मत माना है कि ईश्वर में संयोगोन्मुख और वियोगोन्मुख ये दो विरुद्ध शक्ति हैं जो एक ईश्वर में ही विरुद्ध शक्ति नहीं रह सकती क्योंकि असंभव है ।

पुनः आपने लिखा कि "परमाणु एक जग भी गति शून्य नहीं रहते " सो प्रत्यक्ष विरुद्ध है क्योंकि पर्वतादिक प्रत्यक्ष अचल दीखते हैं ।

पुनः आपने लिखा कि "ईश्वर का लक्षण सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और नष्टार है केवल अभाव करना नहीं है, " सो यह लिखना भी आपका निनान्त असम्बद्ध है क्योंकि एक ही शुद्ध द्रव्य इश्वर में ये तीनों विरोधी धर्म स्वाभाविक धर्म नहीं हो सकते ।

पुनः आपने लिखा कि " यदि बाहर से गति दे तो परमाणु एक तरफ जा सकते हैं " और उसमें अन्तः अन्त रहता है परन्तु सब परमाणु ईश्वर के सर्वव्यापक होनेसे उनमें अन्तर है इसलिये चारों तरफसे क्रिया मिलती है " उत्तर में निवेदन है कि देगा परमाणुओं की गति देकर सृष्टि रचना है उस

में परिमित काल लगता है या अपरिमित काल । यदि परिमित काल लगना है तो जितने काल में यह सृष्टि खनी उससे पहले भी गत्युत्पादकत्व स्वभाव ईश्वर में मौजूद था तो इस सृष्टि बनने के पहले ही सृष्टि क्यों नहीं बन गई । यदि अपरिमित काल है तो अब तक भी सृष्टि नहीं बननी चाहिये थी । तथा ईश्वर में जो गत्युत्पादकत्व स्वाभाविक धर्म है वह एक ही दिशा प्रति गत्युत्पादकत्व हो सकता है विरुद्ध दिशाओं प्रति गत्युत्पादकत्व नहीं हो सकता क्योंकि एक शुद्ध द्रव्य में दो विरुद्ध स्वभाव नहीं हो सकते ।

पुनः आपने लिखा कि “क्या सोने और पत्थर का सम्बन्ध अनादि है” अवश्य अनादि है जैसे ईश्वर और आकाश दोनों द्रव्यों का संयोग सम्बन्ध अनादि है उभी प्रकार सोने और पत्थर का भी अनादि सम्बन्ध है । आकाश और ईश्वर के अनादि सम्बन्ध होने से आपका यह वाक्य कि “जहाँ २ संयोग सम्बन्ध होता है वहाँ सादि होता है,, बाधित होता है ।

पुनः आपका यह लिखना कि “जोष भी मूढन और कर्म भी मूढन यह गड़ना ठीक नहीं क्योंकि जीव चेतन और कर्म जड़ पुद्गल द्रव्य का विकार है” तो आपका यह लिखना भी ठीक नहीं है क्योंकि ईश्वर चेतन और आकाश जड़ ये दोनों ही मूळ हैं चेतना और जड़ता मूळना के साधक नहीं हैं ॥

पुनः आपका यह लिखना कि “माख्य दर्शकों पढ़ने से तो सांख्यकार ईश्वर के दो मानने वाले मालूम होते हैं जैसे लिखा है कि विद्याया अनित्यत्वे प्रत्यासद् प्रमदः “नो महाशयजी यह लिखना भी आपका भूम मूलक है क्योंकि इस सूत्र से किसी भी प्रकार ईश्वर सिद्ध नहीं होता ॥ “प्रमाणाभावान्न तत्पिदुः” इस सूत्र का अर्थ जो आपने किया कि प्रमाणाभावसे संगताचरणसे कार्य की सिद्धि का यह सूत्र निषेधक है न कि ईश्वर की सिद्धि का सो महाराज जरा भाव्यकारी का अर्थ देखिये तत् शब्दमे ईश्वर का ही ग्रहण किया है अन्यथा यदि तत् शब्दमे कार्य का ग्रहण करोगे तो सूत्रों का सम्बन्ध ही असम्बद्ध हो जायगा ॥

पुनः आपने लिखा कि “वेद ईश्वर का सिद्ध करने वाला ऐसा ही है जैसे कि पुत्र को देखने से पिता का अनुमान होता है कार्य को देखने से कारण का इनमें अन्योन्याश्रय दोष नहीं ईश्वर वेद का जनक है वह वेद ईश्वर का साधक है इत्यादि,,

तो महाशयजी यह आपका सब लिखना अविवरित रूप है क्योंकि वेद की पुस्तकसे यदि उसके कर्ताका अनुमान किया जायगा तो लेखनी सिद्धि होगी यदि वक्ताका अनुमान किया जायगा तो किसी मनुष्य विशेषकी सिद्धि होगी वेदको देखनेसे ईश्वरकी सिद्धि किसी प्रकार नहीं होती यदि कहोगे कि वेद में ऐसा वाक्य लिखा है "ईश्वर है" इस लिये वेदसे ईश्वरकी सिद्धि होती है तो यह कहना भी अयुक्त है क्योंकि यह वाक्य तब सिद्ध होय जब इसके वक्ताकी प्रमाणाता हो जाय परन्तु आप ईश्वरको ही वेदका वक्ता मानते हैं तो वेदके सद्भाव में ईश्वरके सद्भाव की आवश्यकता और ईश्वरके सद्भाव में वेदके सद्भाव की आवश्यकता अर्थात् यूँ कहिये कि वेदका प्रामाण्य ईश्वराधीन और ईश्वरका प्रामाण्य वेदाधीन होनेसे प्रत्यक्ष अन्योन्याश्रय दोष है आपके अतिसाहचर्य पर आश्चर्य होता है कि आप ऐसे २ बड़े दावाओं को युक्तिशून्य वाक्योंसे उड़ाना चाहकर फूसे पड़ाड़ उड़ानेकी उक्तिका चरितार्थ करते हो।

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य,

( क ) विभाग नम्बर ६

## प्रश्नावली ।

- (१) मल विज्ञेय आचरण जो कि आपके कथनानुसार विशेष पदार्थमें गर्भित हैं उन का मनके साथ संयोग सम्बन्ध है या समवाय सम्बन्ध ? यदि संयोग सम्बन्ध है तो असङ्गत है क्योंकि संयोग सम्बन्ध दो द्रव्योंमें होता है और मल विज्ञेय द्रव्य नहीं किन्तु विज्ञेय है। यदि समवाय सम्बन्ध है तो भी असङ्गत है क्योंकि समवाय सम्बन्ध नित्य होता है और आप मल विज्ञेय आदिका मन द्रव्यसे धियोग मानते हैं।
- (२) मल विज्ञेय आदिको जो आपने विशेष पदार्थमें अन्तर्भूत किया वह वैशेषिक दर्शनके कौनसे सूत्रके अनुसार किया है ॥
- (३) सर्वज्ञ शब्दके दो अर्थ अर्थात् संपूर्ण पदार्थोंको जानने वाला और संपूर्ण पदार्थोंको जाननेमें समर्थ किस शास्त्रके आधारसे हैं, सूत्र पंडित लिखो
- (४) संपूर्ण पदार्थोंको जाननेमें समर्थ संपूर्ण पदार्थोंको जानता है या नहीं यदि जानता है तो ईश्वरवत् सर्वज्ञ ठहरा और ऐसा होनेसे आर्यमनाजके सिद्धान्तका विघात होता है। और यदि नहीं जानता तो उसका ज्ञान ईश्वरके भद्रावमें प्रमाण किस तरह हो सकता है। यदि कहो कि यह



केवल ईश्वर के सुख गुण ही जानता है इन अतीन्द्रिय पदार्थों को नहीं जानता सो भी ठीक नहीं क्योंकि अतीन्द्रिय पदार्थों को जानने के प्रति-बन्धक मल विलेप आवरण दूर हो गये तो अतीन्द्रिय पदार्थों का ज्ञान क्यों नहीं होता ।

- (५) आपका कहना है कि जिन जीवों का मन मन विलेप आवरण से रहित है उनही को ईश्वर के सुख गुण का अनुभव होता है, परन्तु जिनका मन मल विलेप आवरण से युक्त है उनको भी सुख का अनुभव होता है सो मल विलेप रूप प्रतिबन्धक कारण के मद्भावे ईश्वर सुख का अनुभव केने हुआ । और सर्व जीवों को, मैं सुखी हूँ मैं दुखी हूँ ऐसा अनुभव होना है।
- (६) आपके कथनानुसार सुख दुख इच्छा द्वेष ये नैमित्तिक गुण हैं और नैमित्तिक गुण उनको कहते हैं कि जो किसी के स्वभाविक गुण दूसरे में आते जैसे ईश्वर का सुख गुण जीव में आकर नैमित्तिक कहलाता है तो खतनाइये कि दुःख इच्छा द्वेष ये किसके स्वभाविक गुण हैं जो जीव में आकर नैमित्तिक कहलाते हैं ॥
- (७) जब सूक्ष्म द्रव्य के गुण स्थूल द्रव्य में आते हुए आप मानते हैं तो सूक्ष्म ईश्वर के सुख ज्ञान गुण पृथिवी में क्यों नहीं आते ! हम पर आपका यह लिखना है कि "पृथिवी में जानने की योग्यता नहीं है" ठीक नहीं है क्योंकि महाशय जी ! जानने की योग्यता ही को तो ज्ञान गुण कहते हैं जब पृथिवी में ज्ञान गुण आजायगा तो जानने की योग्यता भी आजायगी
- (८) गुण और गुणों में जब सगवाय सम्बन्ध है और समवाय नित्य सम्बन्ध है तो एक द्रव्य का गुण दूसरे द्रव्य में किस तरह जा सकता है । तथा सुख दुःख इच्छा द्वेष का भी नित्य सम्बन्ध होने से ये गुण हमेशा ही रहने चाहिये परन्तु ये कभी होते और कभी नहीं सो क्यों ।
- (९) नैमित्तिक, औपाधिक, तटस्थ, इन गुणों में क्या भेद है सो इनका भिन्न लक्षण लिखो ॥
- (१०) आपका कहना है कि, जीव जब बाह्यमुख होगा तब तो इन्द्रिय मन से पैदा होने वाले दुःख को प्रतीत करेगा । पैदा होने वाला कार्य होता है इस लिये दुःख कार्य हुआ कार्य के लिये कारण की आवश्यकता होती है इन्द्रिय मन दुःख के उत्पादन कारण हैं या निमित्त कारण यदि नि-

मित्त कारण हैं तो उपादान कौन ! यदि उपादान कारण हैं तो चेतन दुःख गुणका उपादान कारण जड़ इन्द्रिय मन किम तरङ्ग हुआ जो गुण उपादान कारणमें नहीं होते वे उनके कार्यमें भी नहीं आसकते इस लिये दुःख गुण मृतक शरीरके जड़ स्वरूप इन्द्रिय और मनमें भी दिखनाइये ।  
 (११) वैशेषिक मतानुसार इच्छाद्वेष और दुःख ये आत्माके गुण माने हैं और आप वैशेषिक शास्त्रको प्रमाण मानते हुए भी इच्छादिकको पुद्गलका या मनका गुण कहते हैं तथा आपने पाले यह प्रतिज्ञा की है कि जीवात्मा प्रकृतिसे सूक्ष्म और ईश्वरसे स्थूल है स्थूलके गुण सूक्ष्म में नहीं आते जब कि दुःख इच्छा द्वेषये प्रकृतिके धर्म हैं तो सूक्ष्म जीवात्मामें आ भी कैसे सकते हैं ।

भवदीय—मन्त्री चन्द्रनेन जीव वैद्य,

## निवेदन ।

यह शास्त्रार्थ अभी बराबर चल रहा है । आजतक दश शतवर्ष तकके पर्व छपाकर प्रकाशित किये जाते हैं । आशा है कि सर्वसज्जन इसे ध्यानपूर्वक पढ़नेकी कृपा करेंगे । विज्ञेष्वालम् ।

प्रकाशक,



# शास्त्रार्थ अजमेर ।

( ख ) विभाग ।

ओ३म् ।

सं० ३१४

आर्यसमाज—अजमेर ।

प्रश्नपत्र सं० १

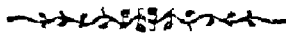
ता० ११ । ७ । १९१२,

श्रीयुग महाशय मन्त्री जी श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावा । नमस्ते ।

कृपाकर निम्न लिखित प्रश्नका उत्तर भेजकर अनुगृहीत करें ।

प्रश्न—जब कि जगत् विकार वाला और सावयव है और कोई विकार वाला सावयव पदार्थ बिना कर्ता के नहीं हो सकता तो ईश्वर जगत्कर्ता क्यों नहीं ?

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्मा,



\* वन्दे जितवरम् \*

( ख ) पत्र सं० १

श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा—

वर्तमान स्थान अजमेर । ता० ११ । ७ । १९१२,

प्रिय महाशय ! जय जिनेन्द्र ।

आपके पत्र सं० ३१४ ता० ११ जुलाईके प्रश्नपत्र सं० १ के उत्तरमें निवेदन है कि आपके प्रश्नका यह अभिप्राय है कि यह जगत् ईश्वरकृत है क्योंकि यह विकारी और सावयव है अर्थात् जगत्के ईश्वरकर्तृकत्वमाध्यमें विकारित्व और सावयवत्व ये दो हेतु हैं । सो विकार शब्दके दो अर्थ हैं । एक तो परिस्पन्दात्मक क्रिया दूसरा अरिस्पन्दात्मक परिणाम ।

जीवमें परिस्पन्दात्मक क्रिया और अपरिस्पन्दात्मक परिणाम दोनों पाये जाते हैं । शरीरसे शरीरान्तर धारण करनेमें परिस्पन्दात्मक क्रिया भी पाई जाती है और क्रोध, मान, माया, लोभ, क्षमादि अपरिस्पन्दात्मक परिणाम भी पाये जाते हैं किन्तु जीव किसी कर्ता का क्रिया हुआ नहीं है इसलिये विकारित्व हेतु व्यभिचारी है ॥

सावयवत्वके भी दो अर्थ होते हैं । एक तो अवयवोंसे सहित हो । और दूसरा अवयवोंसे जन्य हो । अवयव सहित वह कहलाता है जो अनेक प्र-

देशी हो अर्थात् एक परमाणु जितने आकाशके प्रदेशको घेरता है उससे अधिक प्रदेशके घेरने वालेको अवयव सङ्गित कहते हैं और पहिले तो उसके अवयव भिन्न भिन्न हों और पीछे अवयव इकट्ठे होकर जो बग़ाड़ी उसे अवयव जन्य कहते हैं ॥ यदि मावयव शब्दसे आपका अवयवजन्य अर्थ इष्ट है तो संसारमें दो प्रकारके पदार्थ हैं । एक तो पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रादिक अनादि निधन पदार्थ और दूसरे घट पटादिक सादि पदार्थ । सूर्य चन्द्रादिक अनादि निधन पदार्थोंमें अवयवजन्यपत्त्र हेतु नहीं है इसलिये यह हेतुअभिदुहेतुवाचक है क्योंकि इनके अवयव कभी भी भिन्न २ नहीं थे । और दूसरे जो अवयवजन्य पदार्थ हैं वे भी दो प्रकार हैं । एक कर्तृजन्य और दूसरे अकर्तृजन्य । घट-पटादिक कर्तृजन्य हैं और घास वृष्टि जड़ी बूटी आदिक अकर्तृजन्य हैं । घट पटादिक कर्तृजन्य पदार्थोंके कर्ता कुशाग्र तन्तुवाय आदिक प्रसिद्ध हैं और शेष पदार्थ अकर्तृजन्य ही हैं इसलिये ईश्वर सृष्टिकर्ता नहीं है ।

भवदीय-मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य,



ओ३म्

( ख ) पत्र संख्या १

आयंभमाण-अगमेर ।

सा० ११ । ७ । १८१२ का उत्तर

सा० १८ । ७ । १८१२

श्रीमन्नमने ।

आपने जो विकार शब्दके दो अर्थ किये हैं वो तिम डयाकरण और को-पसे किये हैं । विकार कहते हैं जिसमें रूपों का परिवर्तन हो । जो लः विकार जगत्में प्रत्यक्ष देखे जाते हैं । उत्पन्न होना, बढ़ना, एक सीमानक बढ़कर रुक जाना, अवस्था बदलना, घटना और नाश होना । क्या जीवका एक शरीरसे निकल कर दूसरे में जाना विकार है ! क्या कोई कीठरीसे निकलकर बाटिकामें जावे तो उसे आप विकार कहेंगे । दूसरे जो आपने क्रोधादि को जीवका परिणाम बतलाया यह अनभिज्ञताका प्रमाण है । क्योंकि ये सबके धर्म हैं जीवके नहीं । आप कोई ऐसी वस्तु बतलावें जिसमें प्रथम विकार उत्पत्ती न हो और तृतीय विकार परिणाम ( अवस्था बदलना ) पाया जावे । विकार हेतु साध्य नहीं प्रत्युत शुद्ध है । आपने दोनों उदाहरणोंसे अपनी अनभिज्ञता का प्रमाण दिया है । हेतुमें व्यभिचार नहीं ।

सावयवके अर्थ हैं जहां अवयवोंमें संयोग हो, जिसमें संयोग न हो वह सावयव नहीं कहला सकता यहां मिथ्यार्थ आकाशादि पदार्थ जो अखंड है वह सावयव नहीं क्योंकि अवयव खण्डको कहते हैं, अखंडके अवयव नहीं होते । अतएव वह अवयव सहित नहीं कहलाता यह लक्षण सावयवके जो अखंड में अतिव्याप्ति है ठीक नहीं ईश्वर और आकाश सावयव नहीं ।

पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रादि अनादि निधन हैं इस प्रतिज्ञा को न्यायसे सिद्ध कीजिये जब तक सिद्ध न करें और इसमें हेतु आदि न दें तब तक यह कथन व्यर्थ ही है और इनका अवयवोंसे पैदा होना तो इनके विकारों से प्रत्यक्ष है इनके अवयव कभी नहीं थे इस प्रतिज्ञा को आप किस प्रमाण से सिद्ध करते हैं ।

आप जो अवयव जन्य पदार्थोंके दो प्रकार मानते हैं उनमें एक प्रकार के पदार्थ तो आप कर्तासे पैदा होना मानते हैं और दूसरे प्रकार के पदार्थ अकर्ता से जन्य हैं इसको न्याय से सिद्ध करें क्योंकि यह माध्य है जो पदार्थ नियम पूर्वक क्रियामे पैदा होता है उसको आप अकर्तृजन्य कहते हैं । इस दावेका प्रमाण और उदाहरण दीजिये । यदि यह पदार्थ बिना कर्ताके होते तो इनमें नियम न होना जहां नियम है वह बिना कर्ता के नहीं होसकता प्रत्येक पदार्थ का न्याय नियमानुसार विविध प्रकारका होना उसको कर्तासे उत्पन्न होना सिद्ध करता है । प्रमाणों गति शून्य हैं या गति नान्य ? यदि गति शून्य है या एकही गति है तो संयोग नहीं हो सकता और पृथ्वी चन्द्रादिमें संयोग वियोग और विकार देखते हैं जिसमें उनका ईश्वर जन्य होना सिद्ध है ।

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्मा ।

—○\*○—  
\* वन्दे जिनवाम् \*

( ख ) पत्र नं० २

श्रीजगतत्त्वप्रकाशिनी सभा—

इटावा । ता० ३१ । १ । १९१२,

महाशयवर !

जुद्धारके अनन्तर निवेदन है कि आपने लिखा कि “आपने विकार शब्द के दो अर्थ किस व्याकरण और कोषसे किये हैं” सो महाशय ! विकार का लक्षण इसको वही दृष्ट है जो आपने लिखा है । अर्थात् “रूपपरिवर्तन”

वह रूपका परिवर्तन दो प्रकारका है एक परिस्पन्दात्मक क्रियारूप और दूसरा अपरिस्पन्दात्मक परिणामरूप । फिर आपने लिखा कि 'क्रोधादिकको जीवका परिणाम बतलाया है यह अनभिज्ञताका प्रमाण है क्योंकि ये मन के धर्म हैं जीवके नहीं' सो आपका ऐसा लिखना न्यायके विरुद्ध है क्योंकि मन जड़ है और क्रोधादि चेतनके धर्म हैं जड़ स्वरूप मनके नहीं हैं ॥

जगत्में जितने पदार्थ हैं वे अनादि कालीन हैं कोई भी कभी उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु सब परिणामी हैं । फिर आपने लिखा कि "अगर कोई कोठेसे निकल कर बाटिकामें जावे तो उसे आप विकार कहेंगे" सो महाराज ! मृतपिण्डसे घट बननेका आप विकार कहेंगे तो कोठेसे बाटिका जानेमें स्थान से स्थानान्तर होना है उसी प्रकार सृष्टिकासे घट बननेमें भी परमाणुओंका स्थानमे स्थानान्तर होना है ।

पुनः आपने लिखा कि "विकार हेतु साध्य नहीं प्रत्युत शुद्ध है" सो आपका यह असम्बद्ध वाक्य अर्थ शून्य है इसलिये विकारित्व हेतुमें हमने जो व्यभिचार दोष दिया था उसका परिहार नहीं होता ।

सावयवत्व हेतुके हमने जो दो अर्थ किये थे उनमेंसे आपने "अवयवोंसे जन्य" यह अर्थ स्वीकार किया है । इस अर्थमें हमने असिद्ध हेतवाभास दोष दिया था उसका आपने परिहार नहीं किया ॥

हेतु उभय पक्ष मान्य होता है और जो उभयपक्ष मान्य नहीं होता वह हेतु असिद्ध है । असिद्ध हेतुको सिद्ध करना हेतु देने वालेके जिम्मे है न कि प्रतिवादीके । जगत्को सकर्तृक सिद्ध करनेके लिये आपने सावयवत्व हेतु दिया है इसलिये यह आपका फर्ज है कि आप सावयवत्व हेतुको सिद्ध करें अर्थात् सूर्य चन्द्रमादिक किसी समय में भिन्न परमाणु स्वरूप थे यह जबतक आप नहीं सिद्ध करदेंगे तबतक हमारे दिये हुये असिद्ध हेतवाभासका परिहार नहीं होता ॥

फिर आपने लिखा कि "इनका अवयवोंसे पैदा होना तो इनके विकार से प्रत्यक्ष है" सो महाराज ! प्रत्यक्षके विषयमें अनुमानकी आवश्यकता नहीं होती । कदाचित् आपका यह आशय हो कि अवयव जन्यत्व विकारित्व हेतु से अनुमेय है सो विकारित्व हेतु अभी व्यभिचार दोष ग्रस्त है जबतक उसका व्यभिचार दोष दूर न होजाय तबतक दुष्टहेतु साध्य सिद्ध नहीं कर सकता है ।

पुनः आपने लिखा कि " आप जो अवयवजन्य पदार्थोंके दो प्रकार मानते हैं उनमें से एक प्रकारके आप कर्ता से पैदा होना मानते हैं और दूसरे प्रकार के पदार्थ अकर्तासे जन्य हैं इसको न्यायसे ले करें क्योंकि यह साध्य है । जो पदार्थ नियम पूर्वक क्रियासे पैदा होता है उसको आप अकर्तृजन्य कहते हैं इस दावेका प्रमाण और उदाहरण दीजिये । यदि यह पदार्थ कर्ताके बिना होता तो इनमें नियम न होता जहां नियम है वह बिना कर्ताके नहीं हो सकता प्रत्येक पदार्थका न्यायानुसार विविध प्रकारका होना उसका कर्तासे उत्पन्न होना सिद्ध करता है,, सो घट पटादिक पदार्थ कुलादिप्रकृत हैं यह प्रत्यक्ष सिद्ध है तथा घास जड़ी वूटी आदिक अकर्तृजन्य हैं यह भी प्रत्यक्ष सिद्ध है क्योंकि जिस पदार्थके सद्भाव का ग्रहण जिम इन्द्रियसे होता है उसका अभाव भी उनी इन्द्रियसे गृहीत होता है । घास जड़ी वूटी आदिकका अगर कोई कर्ता होता तो वैसाही होता जैसा कि बने आदिकके खेतका कर्ता किसान, कर्ता का प्रत्यक्ष चक्षु इन्द्रिय द्वारा होता है और घासादिकके कर्ताके अभावका भी प्रत्यक्ष चक्षु इन्द्रिय द्वारा होता है । और आप जो नियम पूर्वक कार्यके वास्तव लिखते हैं । सो समस्त पदार्थोंमें जितने धर्म हैं वे समस्त धर्म अपने कार्यको नियम पूर्वक करते हैं जैसे अग्नि का उष्णत्व धर्म जलाता है और पाचकत्व धर्म पकाता है । यदि ऐसा न माना जाय तो इन सब पदार्थोंका होना ही व्यर्थ हो जायगा और यदि आप नियम पूर्वक कार्य करनेके वास्ते कर्ताकी जरूरत समझते हैं तो ईश्वर नियम पूर्वक सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलय करना है उसके वास्ते भी दूसरे ईश्वरकी आवश्यकता पड़ेगी और इस प्रकार अनवस्था हो जायगी ॥

और आपने लिखा कि "परमाणु गति शून्य हैं या गतिमान् । यदि गति शून्य हैं या एकसो गति वाले हैं तो संयोग नहीं हो सकता और पृथ्वी चन्द्रादिमें संयोग वियोग और विकार देखते हैं जिससे उनका ईश्वर जन्य होना सिद्ध है,, परमाणुओंमें गति नैमित्तिक है अर्थात् उन्हें जैसे निमित्त मिलते हैं वैसी गति हाती है और पृथ्वी चन्द्रादिकमें संयोग अर्थात् उत्पत्ति और वियोग अर्थात् प्रलय ये दोनों असिद्ध हैं और विकारित्व हेतु व्यभिचारी है इस लिये इन तीन हेतुओंसे पृथ्वी आदिक ईश्वर जन्य सिद्ध नहीं हो सकते ॥

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य

ओ३म्

( ख ) पत्र संख्या २

आर्यसमाज-आगमर ।

ता० ३१ । ७ । १९१२ का उत्तर

ता० ८ । ८ । १९१२

महाशयवर ! नमस्ते ।

महाराज जी ! यह विकारका लक्षण है या परिणामका ! जब आप विकार और परिणामका भी भेद नहीं करते तो ईश्वरका ज्ञान कैसे हो ? विकारमें अवयवान्तर प्रतिपत्ति होती है । कृपानिधे ! प्रत्येक परिणाम जड़ में हुआ करता है चैतन्यमें निरवयव होनेसे परिणाम होता ही नहीं । यदि क्रोधादिक जीवके धर्म हैं तो स्वाभाविक धर्म हैं या नैमित्तिक ? यदि स्वाभाविक धर्म हैं तो प्रत्येक जीव का प्रतिक्षण क्रोधादिक होने चाहिये, जिस से मुक्त जीव और वीतरागमें क्रोधादिक होंगे, यदि नैमित्तिक धर्म हैं तो उस निमित्तको बतलाइये ।

आप लिखते हैं कि "जगत्के जिनने पदार्थ हैं सब अनादिकालीन हैं," क्या आपके शरीरकी आकृति भी अनादिकालीन है ? क्या अनादि और निश्चयव पदार्थमें भी परिणाम होता है, सृष्टिपण्डने चड़ा बननेको विकार नहीं कहते क्योंकि उसमें विकारके लक्षण नहीं पाये जाते, विकार ईश्वरकी सृष्टि में होते हैं । जीवकी सृष्टिमें नहीं । विकारका लक्षण तो यह है "अवयवान्तर प्रतिपत्ति," आप स्थानान्तरमें जानेका विकारमें यह किम शास्त्रसे सिद्ध है, यदि आप इस प्रतिज्ञाको कि यह वाक्य अर्थ शून्य है किसी प्रमाणसे सिद्ध करते तो पता लगता क्योंकि जगत्के कार्य होनेमें विकार सिद्ध हेतु है जो प्रत्येक कार्य पदार्थ विद्यमान है ।

उभय पक्ष सान्ध्य होना हेतुका लक्षण किम शास्त्रमें किया है, जो उदाहरणकी साधर्म्यता साध्यका साधन हो वह हेतु होता है । प्रत्येक साध्यव पदार्थ जो कि अवयवोंमें संयोग है वह पाकज गुणको कौनसे कर्ताके बिना हो ही नहीं सकता । जहां संयोग है वहां कर्तृजन्य है चाहे कर्ता इच्छासे हो चाहे नियमसे, अनिदु हेत्वाभास किम शास्त्रमें लिखा है, जब सूर्यकी किरणें व चांदकी रोशनी संसारमें पीली हुई प्रतीत होती हैं सूर्यसे किरणोंका निकलनादि बता रहे हैं ॥

कोई पदार्थ बिना अनुमानके प्रत्यक्ष हो ही नहीं सकता क्योंकि एक



देशका प्रत्यक्ष शेषका अनुमान होता है, विकारित्व हेतुका व्यभिचार किम नित्य पदार्थमें है कोई नित्य पदार्थ विकारवान् नहीं विकारका लक्षण करके किसी नित्य पदार्थमें दिखनाइये ।

यदि घासादि पदार्थ अकर्तृजन्य हैं यह कैसे प्रत्यक्ष सिद्ध है, क्या केवल कर्ताके प्रत्यक्ष न होनेसे कोई कार्य अकर्तृजन्य सिद्ध हो सकता है यदि वे-  
श्याके मलान हो और पिता बहुतसे लोगोंके आने जानेसे प्रत्यक्ष न हो तो यह बालक बिना पिताका ही कहनावेगा ? जैसे घड़ीमें जो नियम पूर्वक चक्र है उसके नियमसे यह ज्ञात हो जाता है कि अमुक समय पर घड़ी की सुइयां भिलेंगी, ऐसे ही सूर्य ग्रहण व चन्द्र ग्रहणकी पहिलेसे वननानेसे यह सिद्ध है कि यह चक्र घड़ीकी भांति नियममें बंधा हुआ है । यद्यपि घड़ीका कर्ता प्रत्यक्ष नहीं परन्तु है अदृश्य, क्या किसान धनेके कर्ता है या खेतका चनेका किसानको ज्ञान ही नहीं कि किन परमाणुओंके संयोगसे बना है, खेत भूमिका अंग है किसानके भूमिका संस्कार कर्ता जीवात्मा है या शरीर यदि शरीरको कर्ता माना जाय तो मृतक शरीर में भी कर्तापन होना चाहिये, यदि जीवको कर्ता मानें तो उसका प्रत्यक्ष होता नहीं, जब कर्ताके भावका प्रत्यक्ष नहीं होता तो क्या किसी जीवने जीवको शरीरसे निकलते हुए आंखसे प्रत्यक्ष किया है ? प्रत्यक्षवादीका भिदुान्त तो इन्द्रियोंकी ही प्रत्यक्षमें उड़जाता है, इस नियम कर्ताके चेतन होनेसे किसी शयका कर्ता बाह्य इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष नहीं होता । मद्राश्व जो ! आपने नियम पूर्वक कार्यका अर्थ नहीं समझा, स्वाभाविक कार्य श्री ! है नियम पूर्वक कार्यचक्र होता है, स्वाभाविकमें नहीं । अग्नि जनानी है उसमें चक्र कहां है यह केवल भ्रान्ति है कि पदार्थ अपने कार्य नियमसे करते हैं । घड़ी नियम पूर्वक चलती है किसी स्कूलके विद्यार्थीमें प्रश्न करो कि किस समय सुइयां भिलेंगी और किसी ज्योतिषीसे प्रश्न करो कि कब सूर्यग्रहण व चन्द्रग्रहण होगा उत्तर घड़ी पत्र सहित मिल जायगा । क्या आप बतला सकते हैं कि इस मकानको आग कितनी देमें जलावेगी, यदि परमाणुओंमें गति नैमित्तिक है तो उस निमित्तका नाम बतलाइये जो परमाणुकी गतिका हेतु है । यदि दया करके नैमित्तिकका लक्षण कर दें तो और भी अच्छा हो । क्या पृथिवी चन्द्रादिमें संयोग वियोग असिद्ध हैं ? संयोगका नियामक बृद्धि और वियोगका क्षय,

प्रत्येक वस्तुमें कृद्विज्ञाप देखते हुए भी उनकी अन्तिमदशा प्रलय और पूर्व दशा उत्पत्तिसे इन्कार करना सर्वथा न्यायके विरुद्ध है। प्रत्येक वस्तुकी दो भीमा होती हैं एक आदि दूसरा अन्त, जब एक सीमावाली वस्तु प्रत्यक्ष न हो तब तक आपका कथन न्यायके विरुद्ध ही होगा।

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्मा

\* वरदेजिनवरम् \*

( ख ) पत्र नं० ३

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा

इटावा ता० १८।८।१९१२

महाशयवर ! जयजिनेन्द्र ।

प्रथम ही आपने यह अनुमिति दी थी कि जगत् ईश्वरकृत है क्योंकि वह विकार वाला और सावयव है। विकारका लक्षण आपने पहिले रूपान्तर प्रतिपत्ति किया है उसमें हमने दोष दिया था कि रूपान्तर प्रतिपत्ति जीवके भी होती है क्योंकि कभी क्रोधी होता है कभी क्षमावान् इत्यादि। उसके उत्तर में आपने लिखा था कि क्रोधादिक मनके विकार हैं जीवके नहीं उसके ऊपर हमने कहा था कि क्रोधादिक चेतनके विकार हैं जड़ मनके नहीं इसका उत्तर आपने कुछ भी नहीं दिया। आपने पूछा कि क्रोधादिक जीव के स्वाभाविक धर्म हैं या नैमित्तिक! सो महाशय जी। हम कई दफे लिख चुके और फिर भी लिखते हैं कि क्रोधादिक नैमित्तिक धर्म हैं और उनमें निमित्त कर्मफलरूप पुद्गल द्रव्य है। अब आप विकारका लक्षण करते हैं "अवयवान्तर प्रतिपत्ति, सो सूर्य चन्द्रादिकमें अवयवान्तरकी प्रतिपत्ति होती ही नहीं इसलिये हेतु असिद्ध है। गीतम सूत्रोंमें असिद्ध हेत्वाभासको माध्यम हेत्वाभास ऐसा लिखा है। अन्यथा शब्दान्तितयः चाक्षुषत्वात्। इस अनुमितिसे कौनसा हेत्वाभास मानोगे। सावयवत्व हेतुका अर्थ आपने अवयवोंका संयोग स्वीकार किया है। और संयोग अप्राप्ति पूर्वक होता है इसलिये सूर्य चन्द्रादिक के अवयवोंका संयोग किसी कालमें हुआ था जबतक आप मिट न कर देंगे तबतक आपका हेतु माध्यम हेत्वाभास है। इस प्रकार आपके सावयवत्व और विकारित्व हेतुमें जो हमने माध्यम हेत्वाभास दोष दिया है कृपाकर उस दोषका परिहार कीजिये। आपने लिखा कि "आप लिखते हैं कि जगत्में जितने पदार्थ हैं सब अनादि कालीन हैं क्या। आपके शरीर

की आकृति भी अनादिकालीन है, उसका समाधान यह है कि मनुष्याकृति व्यक्ति की अपेक्षा नादि है और प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है ऐसा कोई समय नहीं था कि जिस समयमें मनुष्य नहीं हों। फिर आपने लिखा कि "अनादि और निरवयव पदार्थमें भी परिणाम होता है, उत्तममें निवेदन है। कि अवश्य होता है क्योंकि "अवयवान्तर प्रतिपत्तिः परिणामः, यह परिणामका लक्षण है। अनादि और निरवयव जीव पदार्थमें क्रोध जना आदि परिणाम प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। फिर आपने लिखा कि "मृतपिण्डके घड़ा बननेको विकार नहीं कहते क्योंकि उसमें विकार के लक्षण नहीं पाये जाते, विकार ईश्वरकी सृष्टिमें होते हैं जीवकी सृष्टिमें नहीं, विकार का लक्षण तो यह है "अवयवान्तर प्रतिपत्तिः, आप स्थानान्तरमें जाने को विकार कहते हैं यह किस शास्त्र से सिद्ध है" इस के उत्तर में निवेदन है कि विकार परिणाम, पर्याय, अवस्था यह सर्व शब्द एकार्थ वाचक हैं। संसारमें जितने पदार्थ हैं सब स्वभावसे परिणामनशील हैं। मृतपिण्डका घड़ा बनने पर भी उसमें अवस्थासे अवस्थान्तर होती है इस वारते इसको भी विकार कह सकते हैं। स्थानसे स्थानान्तर में जानेको विकार कहते हैं क्योंकि एक स्थानमें जिन आकाशके प्रदेशों से संग्रह है स्थानान्तर में उन प्रदेशोंसे भिन्न प्रदेशोंसे सम्बन्ध होनेसे अवस्था से अवस्थान्तर हुआ है। इस वारते यहां भी विकार है। आप विकार का लक्षण अवयवान्तर प्रतिपत्ति कहते हैं और फिर कहते हैं कि जीवकी सृष्टिमें विकार नहीं होता। एक कारीगर ने एक बड़े मदान के ऊपर अट्टा बनाया यहां अवयवान्तर प्राप्ति तो है इनलिये विकार सिद्ध हुआ परन्तु है यह जीवकी सृष्टि, अतः आपके लिखनेमें विरोध आया। ऊपर लिखे अनुसार आपका विकार हेतु सिद्ध नहीं किन्तु अनिर्दिष्ट अर्थात् साध्यसम हेतुभास है क्योंकि पञ्चभूत सूर्य चन्द्र आदिमें अवयवान्तर प्रतिपत्तिरूप विकार सिद्ध नहीं है। पुनः आपने लिखा कि "उभयपक्षमान्य हेतु का होना किस शास्त्रमें लिखा है" तो आपका यह लिखना विमकुल न्याय विकृत है क्योंकि कोई पदार्थ उभयपक्ष मान्य न होनेसे साध्यकोटीमें जाता है यदि हेतु भी उभयपक्ष मान्य न होगा तो साध्यसम होकर अनिर्दिष्ट हेतुभास हो जायगा। अपने ही घरका साध्य और अपने ही घरका हेतु होनेसे चाहे जिस हेतुसे मनमाने साध्यको सिद्ध करलो। इसमें महान् अनिप्रसंग

आवेगा । पुनः आपने लिखा कि “प्रत्येक सावयव पदार्थ जो कि अवयवोंमें संयोग है वह पाकज गुणको कोनसे कर्ताकी बिना हो ही नहीं सकता, जहां संयोग है वहां कर्तृजन्य है चाहे कर्ताके इच्छामें हो चाहे नियमसे । ” उत्तर-इस कईवार लिखचुके हैं कि सावयवत्व का अर्थ जो आप अवयव संयोग करते हैं सो पृथ्वी सूर्य चन्द्रादिकके अवयव भिन्न २ थे और पीछे मिलाकर उनका संयोग हुआ इस बातको जबतक किसी प्रमाणने सिद्ध नहीं करदेंगे तबतक आपका हेतु साध्यमम होनेसे असिद्ध हेतुवाभास है । इसके सिवाय सावयवत्व हेतु अनैकान्तिक हेतुवाभास भी है क्योंकि घामादिकमें अवयव संयोग होने पर भी ईश्वर जन्यत्व नहीं है । यह इस पहिले भी लिखचुके हैं । इसके उत्तर में आपने लिखा कि “यदि घामादि पदार्थ अकर्तृजन्य यह कैसे प्रत्यक्ष है क्या ? केवल इत्यादि” प्रत्युत्तरमें निवेदन है कि वेश्याके सन्तानोत्पत्ति आदि जो दृष्टान्त आपने लिखे हैं वे सब विषम दृष्टान्त हैं क्योंकि अगर वेश्याको पास बैठा लिया जाय और उसका किसी पुरुषसे संयोग न देखा जाय तो उसके कदापि सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती परन्तु जिस जमीन में घाम पैदा होती है वहां पर आप मेघ बरसने के प्रारम्भमें पहला ल गाकर बैठ जाइये और जबतक घाम जन न आवे तबतक आप बैठ रहिये कोई भी कर्ता आपके तजरमें नहीं आयगा ।

घने आदिककी उत्पत्तिमें न केवल शरीर ही कारण है । और न केवल जीव कारण है किन्तु जीव विशिष्ट शरीर कारण है । शरीर प्रत्यक्ष है । जीव विशिष्टता प्राणादिमत्त्वात् हेतुमे सिद्ध है ॥

कदाचित् आप कहें कि घामादिक भी जगत्कृपी पक्षमें गर्भित होनेसे व्यभिचार दोष नहीं है । तो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐमा माननेसे अनैकान्तिक हेतुवाभासके उच्छेदका प्रसङ्ग आवेगा । धूमवान् वन्हे: इस अनुमिति में अङ्गार या अयोगोलकमें व्यभिचार दिया जाता है उस अयोगोलकादि को पक्षमें गर्भित करनेमें तो खन्दि हेतु भी मद्धेतु हो जाना चाहिये । हमारे अवयव संयोगकी कर्तृजन्यके माध्य व्याप्तिमें कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि पथनादिक निमित्त में भी अवयवोंमें संयोग होजाना है । जैसे कि सारखाड़ में रेतके बड़े २ टीले । किन्तु अवयव संयोगकी क्रियाके साथ व्याप्ति है कर्तृजन्यके साथ नहीं । आपने जो घड़ीका दृष्टान्त दिया भी महाराज जी । इस पहिले ही लिखचुके हैं कि संसारमें दो प्रकारके कार्य हैं । आपके दिये

हुये विकारित्व और भावपवत्त्व अकृतज्ञन्य भी कार्योमें व्याप्ति होनेमें अनेकान्तिक है। घड़ीका दृष्टान्त कृतज्ञन्य कार्योमें है। हमारा ऐसा नियम नहीं है कि सब ही कार्य अकृतज्ञन्य हैं। घड़ी आदिक कृतज्ञन्य है और घासादिक अकृतज्ञन्य है। पुनः आपने लिखा कि " यदि परमाणुमें गति नैमित्तिक है तो उस निमित्तका नाम चलताइये।

उत्तर—परमाणुओंकी गतिमें सूक्ष्मवायु आदिक है और सूक्ष्मवायु आदिक की गतिमें भी कारण तद्विशिष्ट जीवके संसृष्ट विहायगति नाम कर्मका उदय आदि कारण है। निमित्ताद् भवं नैमित्तिकम्। यह अन्वय लक्षण है ॥

पुनः आपने सूर्य चन्द्रादिकमें संयोग और त्रियोग वृद्धि तथा क्षयद्वारा मिट्टा किये सो सूर्य चन्द्रादिकमें वृद्धि और क्षय किमी प्रमाणसे मिट्टा कीजिये। वृद्धिक्षय उनमें नहीं दीखते इसलिये संयोग त्रियोग भी असिद्ध है। ईश्वर जन्यत्व तो सर्वथा असिद्ध है।

पुनः आपने लिखा कि "प्रत्येक वस्तुकी दो सीमा होती हैं। एक आदि दूसरा अन्त, जबतक एक सीमा वाली वस्तु प्रत्यक्ष न हो तबतक आपका कथन न्यायके विरुद्ध होगा।" सो महाशय जी ! आपका यह कहना अविचारितरूप है। प्रागभाव अनादि सान्त और ध्वंन सादि अनन्त माना है। जैसे बीजके भुन जानेपर बीजवृक्षकी सम्बन्ध अनादि सान्त माना है। वा कोई मुर्गी अगर बिना अण्डे दिये मरजाय तो उसकी भूतसन्तानका अनादि सान्त सम्बन्ध होगा। इस प्रकार आपके दोनों हेतु अनेक दोषोंसे दुष्ट हैं। विचार कर कोई ऐसा निर्दोष हेतु दीजिये जो आपकी साध्य सिद्धि करनेमें समर्थ हो।

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जीत वैद्य,

श्री३म्

( ख ) पत्र नं० ३ का उत्तर ।

ता० २८ । ८ । १२

आर्यमसाज अजमेर

श्रीमान् महाशय ! नमस्ते ।

रूपान्तर प्रतिपत्ति ये लक्षण परिणाम का है, अवयवान्तर प्रतिपत्ति ये लक्षण विकारका है, क्रोधादि धर्म जीवके किस निमित्तसे हैं ? कर्म मल क्रोधादिकका किस प्रकारका कार्य है, पुद्गलद्रव्य भी मलकी भांति जड़ ही है, जो जीवके अन्दर जा नहीं सकता और न निमित्तके लक्षणमें आसकता है,

सूर्यकी किरणोंका आना और जाना मत्पन्न है, उसमें अवयवोंका संयोगसिद्ध है क्योंकि वृद्धि और क्षय प्रत्येक कार्यमें मत्पन्न हैं । इस वास्ते यदि सूर्यमें किरणोंका संयोग वियोग न होता तो किरणोंका आना जाना संसारमें असम्भव था, और जिससे प्रकाश भी नहीं फैल सकता, सूर्यकी किरणोंका संसारमें प्रकाश फैलाना इस बात से सिद्ध करता है कि सूर्यमें अवयवोंका वियोग होता है । और जहां संयोग नहीं वहां वियोग ही नहीं सकता, । इसलिये सूर्य चन्द्रादिमें मायमयत्व और विकारित्व हेतु शाब्द संहेतवाना नहीं किन्तु सिद्ध है । जब मनुष्यकी आकृति व्यक्तिके अपेक्षा मादि है तो उसका कार्य होना सिद्ध है । और आकृति का कर्मा जो मनुष्यमें पाई जाती है सिधाय चेतन सर्वज्ञके दूरा नहीं हो सकता, ऐसा कोई समय नथा जिसमें मनुष्य न हो, इस हेतु शून्य प्रतिज्ञा करना न्यायसे विरुद्ध है, जो क्रांथादि जीवमें होता अभिप्राय है । दूरा जीवके अपूर्ति होने से उसकी रूपान्तर प्रतिपत्ति कहना मुक्ति शून्य है, रूप अग्निका गुण है । जिसमें अग्नि न हो उसमें रूप नहीं हो सकता । । जिसमें रूप ही नहीं उसमें रूपान्तर प्रतिपत्ति कैसे ? अवस्थान्तर प्रतिपत्ति परिणामका लक्षण किस आचार्य ने किया है ? ये लक्षण तो कार्यका है, आपका विकार परिणाम पटर्पाय अवस्था को एकार्थ वाचि शब्द कहना लक्षणोंकी अनभिज्ञताका बोधक है । संसारमें जितने पदार्थ हैं सब स्वभावसे परिणामनशील हैं, ये प्रतिज्ञा है इसका हेतु और उदाहरण आपने कोई नहीं दिया । इस वास्ते ये असिद्ध है, जब विकारका लक्षण अवयवान्तर प्रतिपत्ति है तो घटमें कैसे घट सकता है ? आकाशके प्रदेश हैं और उनमें संयोग है तो वो कार्य होगा, नित्य नहीं रहेगा, यदि संयोग शून्य हैं तो एक प्रदेशमें दूसरे प्रदेशका भद्रक कीन है, जिसमें वृद्धिक्षय स्वभावसे न हो उसकी बिकारवान् कहना लक्षणोंमें अनभिज्ञता है । जीवी सृष्टिमें बड़े विकार नहीं पाये जाते हैं । क्योंकि जीव परमाणु लेकर कार्य करने में असमर्थ है, जब तृण चन्द्रादि किरणोंका आना जाना समस्त पदार्थ विद्याके विद्यान् स्वीकार करते हैं तो आपका उसकी सिद्ध न मानना केवल हठ है । जिस में हेतु का लक्षण पाया जाना वो हेतु है उसमें पक्षमान होना हेतुका किस न्याय सूत्रमें है ? हेतुसे साध्य सिद्ध होता है, यदि हेतु स्वयं साध्य है तो साध्य सहित्ताभास है, हेतु नहीं तो यह हेतुके लक्षणमें नहीं आसकता ।

महर्षि नीलमने न्यायदर्शनमें हेतुका ये लक्षण किया है ( उदाहरण साधर्म्यात्साध्यसाधनहेतुः ) न्यायदर्शन सूत्र ३४ अ० १ आ० १

यदि कोई हेतु शास्त्रके ज्ञानसे शून्य किसी ऐसे हेतुको जिनमें हेतुका लक्षण घटता हो, इतसे न जाने तो उसके न माननेसे हेतु असिद्ध नहीं होगा हां उसमें हेतुके लक्षण न पाये जाने से असिद्ध हो सकता है। शब्द प्रमाण से और उसके अवयवोंके निकलने और दाखिल होने, रूप विकारसे पहले विकार अर्थात् सूर्य चन्द्रादि उत्पत्ति का अनुमान होता है जब शब्द अनुमान दोनों प्रमाणोंसे और प्रत्यक्षमें किरणोंके आने और जाने में सूर्य चन्द्रादिमें संयोग वियोग सिद्ध है तो आपका बिना किसी हेतुके उनके असिद्ध बनाना योग्य नहीं, घास आदि सावयव कार्य भी हेतु जन्म हैं जिन नियमसे उनमें सूर्य चन्द्रादिको नियम पूर्वक चलाया है उभी नियमका यह फल है। जैसे घड़ी साज घड़ीका चलाना चाबी देनेवालेकी क्रियासे है। ऐसे ही घड़ीके घंटोंका बजना भी उभी नियमसे घड़ीसाजका ही काम है। आपने जो घासके कर्ता प्रत्यक्ष न होने से उसका निषेध किया है ये ठीक नहीं। क्योंकि आठ दशांश ऐसी हैं जिनमें वर्तमान चीज भी प्रत्यक्ष नहीं होती। अति समीप होने से जैसे आंखमें सुरमा, होता है नज़र नहीं आता। अति दूर होने से, जैसे लन्दन यहांसे नज़र नहीं आता, अति मूढ़न होने से, जैसे परमाणु नज़र नहीं आता। अति स्थूल होने से, जैसे हिमालय पहाड़ होते हुए भी सारा प्रत्यक्ष नहीं होता। इन्द्रियमें दोष होने से, जैसे अन्धेको सूर्य नज़र नहीं आता। व्यवधान होने से, जैसे दिवार की ओट की चीज नज़र नहीं आती। इन्द्र और मनका सम्बन्ध न होने से, जैसे कहते हैं देखा? उत्तरमें कहा जाना है कि मेरा रुपांश नहीं या आठवें अभिभव होने से, जैसे दिनमें जुगनू नज़र नहीं आते। संयोगके पाकज गुण होनेसे बिना कर्ताके संयोगका होना ही असंभव है। मारवाड़में जहां बालूके टीखे बनते हैं क्या वहां बालूमें संयोग होता है? पता लगता है कि आपने संयोगके लक्षणका विचार ही नहीं किया। जैसे घड़ीमें नियम पूर्वक चक्र उसके ज्ञानवान् कर्ता जन्म होने का बोधक है, ऐसे ही सूर्य चन्द्रादिक के नियम पूर्वक चक्र उनके कर्ता सर्वज्ञका बोधक है। क्या घास और सूर्य चन्द्रादि चक्रको क्या आप एकमा मानते हैं? अकर्तृजन्यकार्य कोई होता ही नहीं आप किम प्रमाणसे कहते हैं? कार्य शब्दका अर्थ तो वि-

चारिये ? घास आदिक अपर्तुगन्ध हैं ये आपकी प्रतिज्ञा है । इनको पहले पंचावयवसे सिद्ध करिये ? परमाणुओं की गतिमें सूक्ष्म वायु आदि निमित्त हैं तो क्या आप वायुके परमाणु नहीं मानते ? यदि वायुके परमाणु हैं तो जीव के कर्मका उनके साथ क्या सम्बन्ध है, जिनसे वो उनके निमित्त होते हैं । ज़रा विचारिये तो सही, जीवके कर्म पुद्गलके सम्बन्धधीन हैं, और वायु आदिक की गति जीवके कर्मधीन है । इनमें अयोन्वाच्य दोष है, ज़रा इस दोषको दूर करके आपने जो नैमित्तिकता व्युत्पत्तिकी है, यदि आप उपाधिक नैमित्तिक और पाकज गुणोंका विवेक रखते तो ये नहीं लिखते । सूर्य चन्द्रादिमें किरणोंके निकलने से ज्ञाप्य है, क्या अभाव भी कोई पदार्थ होता है ? आपके छै द्रव्योंमें अभाव किसके अन्तर्गमन है ? महाशय ! जो प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव दो नहीं हैं । नेपथ्यिक कार्य्यकी अपेक्षासे एक ही अभाव को तिरोभूत और आविर्भूत होने से उपचारसे कहते हैं । यदि आप विशेष विचार करें तो चीजकी उत्पत्तिके पूर्वकी अभाव या, उसकी कार्य्यने आकर ढांप लिया । अब जब कार्य्य नाश होगया तो वो पहला अभाव फिर प्रकट हो गया । इसलिये कोई भाव पदार्थ एक किनारे वाला दिखाइये ?

जब तक आप संसारमें एक सीमा वाली किसी वस्तु का दृष्टान्त न दें तब तक आपका पक्ष गिरा हुआ ही रहेगा । ज़रा प्रागभाव और ध्वंसाभावकी दृष्टान्तके लक्षणमें लाकर तो दिखाइये ? ।

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्मा

—०—

॥ अन्दे जिनवाम् ॥

( ख ) नं० ४

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा ।

महाशयवर !

ता० १४ । ८ । १२

जुहार के अनन्तर निवेदन है कि:—

आपने लिखा कि “रूपान्तर प्रतिपत्ति यह लक्षण परिणामका है अवयवान्तर प्रतिपत्ति यह लक्षण विकारका है,, सो कृपानाथ ! आपने अपने १८ जुलाई के पत्रमें रूपपरिवर्तनको विकार लिखा है और परिणामका लक्षण अवस्था वदलना लिखा है और अब आप कुछ और ही लिखते हैं अब करनाइये कि



आपके कौनसे वाक्य सच्चे माने जाय । पुनः आपने लिखा कि “क्रोधादिधर्म जीवके किम निमित्तमे हैं ? कर्म मन क्रोधादिकका किम प्रकार का कार्य है पुद्गल द्रव्य भी मन की भांति जड़ ही है जो जीवके अन्दर जा नहीं सकता और न निमित्तके लक्षणमें आमकता है, इस प्रश्नका उत्तर हम कई बार लिख चुके हैं खेद है कि आपकी समझमें नहीं आता अथ पनः लिखते हैं जीवका एक चारित्र्य मन्त्रण गुण है वह चारित्र्य गुण कर्ममनके निमित्तमे विकृत भावको प्राप्त होता है चारित्र्यगुणको विकृत भावको क्रोधादिक कहते हैं चेतन जीव और जड़ कर्मका एक क्षेत्रावगाह रूप इसदी और चूनेकी तरह बन्धसंबंध है जिस प्रकार इसदी और चूनेकी विकृति परिणति राग होती है उसी प्रकार जीव और कर्म की विकृत परिणतिको क्रोधादिक कहते हैं पुनः आपने लिखा कि “सूर्य की किरणोंका आना और जाना प्रत्यक्ष है इत्यादि,, सो महाशय जो सूर्यकी किरण न कहीं आती और न कहीं जाती हैं किन्तु हमेशा सूर्यके साथ रहती हैं यदि सूर्यकी किरणें यहां रह जातीं तो सूर्यके चले जाने पर भी यहां रातको उद्योत रहता परन्तु रातको उद्योत नहीं रहता इससे सिद्ध होता है कि किरणें सूर्यके साथ ही चली जाती हैं इसलिये सूर्यमें अत्रयघोंका घट्टिलप कुछ भी न रहने से उसमें विकारित्व और साव-यवत्वं हेतु भी नहीं हैं इस लिये विकारित्व और सावयवत्वं हेतु साध्यस-नहेत्याभास है

पुनः आपने लिखा कि “जब मनुष्यकी आकृति व्यक्तिकी अपेक्षा सादि है तो उसका कार्य होना सिद्ध है,, भा यह हमको इष्ट है मनुष्यकी आकृति को कार्य मानते हैं तथा आपने लिखा कि “आकृतिका कर्ता जो मनुष्यमें पायी जाती है सिवाय चेतन सर्वज्ञके दूसरा नहीं हो सकता,, सो आपका यह हेतु शून्य लिखना न्यायके विरुद्ध हैं जैसा जिनका उपादान कारण होता है वैसे ही उसका कार्यभी होता है जिस प्रकार चनेके बीजसे चने का पौदा होता है उसी प्रकार मनुष्यके बीजसे मनुष्याकार शरीर होता है आपकी यह प्रतिज्ञा हेतु शून्य हैं कोई हेतु दीजिये तो मालूम पड़े । पुनः आपने लिखा कि “ऐसा कोई समय न था कि कोई मनुष्य न हो इस हेतु शून्य प्रतिज्ञा का करना न्यायसे विरुद्ध है,, सो आपका ऐसा लिखना भी ठीक नहीं है क्योंकि यह बात न्यायसे सिद्ध है कि बिना पुरुष स्त्रीके संयोगके मनुष्यकी

उत्पत्ति नहीं हो सकती यदि पहले किसी समयमें मनुष्यका अभाव होता तो पीछे मनुष्यकी उत्पत्ति बिना मा बापके कैसे हुई बिना मा बापके मनुष्यकी उत्पत्ति होनेसे कार्य कारण भावका भंग होता है ॥

पुनः आपने लिखा कि "जीवके अमूर्ति होने से उसके रूपान्तर प्रतिपत्ति कहना युक्ति शून्य है," सो भी आपका कहना ठीक नहीं है क्योंकि संसारी जीवका अनादि कालसे मूर्त पुद्गल कर्मोंसे बन्ध हो रहा है और बंधमें बन्धवन्धन पदार्थोंका कथञ्चित् एतत्त्व होता है इसलिये संसारी जीव मूर्त है। पुनः आपने लिखा कि 'रूप अग्निका गुण है जिसमें अग्नि न हो उसमें रूप नहीं हो सकता और जिसमें रूप नहीं उसमें रूपान्तर प्राप्ति कैसे?' सो महाशय जी ! आमका फल हरा होता है और हरेसे फिर पाला हो जाता है इसलिये आममें रूपान्तर प्रतिपत्ति तो है किन्तु अग्नि नहीं है क्योंकि वहाँ अग्निका लक्षण उष्णस्पर्श नहीं है कहिये महाराज ! अभीसे ऐसी बातें की जाँकने लगे। पुनः आपने लिखा कि "अवस्थान्तर प्रतिपत्ति परिणामका लक्षण किं आचार्यने किया है" सो महाशयजी ! आपके १८ जुलाईके पत्रमें जं. प्रथम पैरेग्राफ है उसमें आपने लिखा है कि "आप कोई ऐसी वस्तु बतलावें जिसमें प्रथम विकार उत्पत्ति न हो और तृतीय विकार परिणाम ( अवस्था बदलना ) पाया जावे" कहिये महाराज ! जब परिणामके आगे त्रेकिटमें अवस्था बदलना लिखा है तो क्या अवस्थाका बदलना परिणामका लक्षण नहीं हुआ ? खेद है कि आप अपने पूर्वलिखित लेखों में भी स्मरण नहीं रखते ॥

पुनः आपने लिखा कि "आपका विकार परिणाम पक्षीय अवस्थाको एकार्थवाची शब्द कहना लक्षणोंकी अनभिज्ञताका बोधक है" सो आपकी समझकी भूल है क्योंकि आप विकार परिणाम आदिके जितने लक्षण करते हैं सबमें अवस्थासे अवस्थान्तर होना पाया जाता है।

और आपने पदार्थोंके परिणामन मिट्टे करनेमें हेतु और उदाहरण पूछा सो सुनिये "पञ्चद्रव्याणि परिणामनशीलानि द्रव्यत्वात् आसृपटलवत्" विकारका लक्षण अवस्थान्तरप्रतिपत्ति इसमें नहीं मानते किन्तु अवस्थान्तर प्रतिपत्ति विकारका लक्षण है वह सृत्तिकासे घट बनने पर सुस्पष्ट घटित होता है।

आगे आपने लिखा कि आकाशके प्रदेश हैं और उनमें संयोग है तो वह कार्य होगा निश्चय नहीं रहेगा इत्यादि" सो महाराज ! सब द्रव्यके और आ-

काशके प्रदेशोंके संयोगकी अनित्यता होगा एतावता आकाशको अनित्य कहना अभ्युक्त है आपके यहां जीव और प्रकृतिका संयोग अनित्य माना गया है क्योंकि जीवकी मृत्ति हो जाने पर वह नष्ट भी हो जाता है एतावन्मात्र क्या जीव और प्रकृति अनित्य हो जायेंगे ? पुनः आपने लिखा कि “जिसमें वृद्धिस्तय स्वभावसे न हो उसको विकारवान् कहना लक्षणोंसे अनभिज्ञता है” सो यह आपका विपरीत न्याय है वृद्धि और क्षय ये दो विरुद्ध धर्म किसी के स्वाभाविक हो ही नहीं सकते क्योंकि वृद्धिको स्वाभाविक मानोगे तो वह पदार्थ बढ़ता ही चला जायगा और क्षयको स्वभाव मानोगे तो वह पदार्थ विलकुल क्षीण होता हुआ नष्ट हो जायगा वृद्धि और क्षय ये किसी पदार्थके स्वाभाविक धर्म ही नहीं हैं यदि वृद्धिको स्वाभाविक धर्म मानोगे तो सत्के उत्पादका प्रसंग आवेगा और यदि क्षयको किसीका स्वाभाविक धर्म मानोगे तो सत्के विनाशका प्रसंग आवेगा वृद्धि और क्षय किसी पदार्थके होते ही नहीं हैं किन्तु दूसरे पदार्थके संयोगको वृद्धि और संयुक्तके वियोगको क्षय कहते हैं । संयोग और वियोग कोई स्वाभाविक धर्म नहीं हैं किन्तु नैमित्तिक पर्याय हैं ॥

पुनः आपने लिखा कि ‘जीवी सृष्टिमें विकार नहीं पाये जाते हैं क्योंकि जीव परमाणुसे लेकर कार्य करनेमें असमर्थ है’ यह आपकी प्रतिज्ञा हेतु उदाहरणके बिना अप्रमाणीभूत है जब कि हमने पहले आपके माने हुये विकारके अवयवान्तर प्रतिपत्ति लक्षणमें दोष दिया था कि एक कारीगर ने महलके ऊपर अट्टा बनाया यहाँ अवयवान्तर प्राप्ति तो है और कारीगरने बनाया है हम लिये जीवकी सृष्टि भी है फिर भी आप जीवकी सृष्टिमें विकार नहीं मानते यह क्या राजाज्ञा है ?

पुनः आपने लिखा कि “जिसमें हेतुका लक्षण पाया जाय वह हेतु है इत्यादि” सो हेतुकी श्रित्वेचना तो जब तक हेतुकी सत्ता निरुद्ध नहीं है तब तक होनी ही क्रम विरुद्ध है प्रथम जहाँ जिस हेतुसे साध्यकी सत्ता अनुमित करनी है वहाँ हेतुकी वृत्ति निरुद्ध कर लीजिये सूर्यादिकमें अवयवान्तर प्रतिपत्तिरूप हेतु नहीं है इसीसे साध्यसम हेत्वभास है सूर्यकी किरणोंका आना जाना सर्वथा स्वाप्रिक प्रत्ययवत् है किरणें सूर्यका स्वरूप ही हैं सूर्यके आने जानेमें किरणें उसके साथ ही हैं ।

आगे आपने बहुत अच्छे अच्छे असम्बद्ध प्रमाण किया सो मालूम पड़ता है कि हमारे दिये हुये दोषोंका तो आपने स्पर्श भी नहीं किया है हमने लिखा था कि अवयव संयोग की व्याप्ति क्रिया के साथ है क्रिया चेतन और अचेतन दोनोंसे हुआ करती है क्या जलं वहति सेचोवर्षति इत्यादि व्याकर ऋनिष्पक क्रियाओंके कारक जलादिक नहीं है इन लिये आपका अवयव संयोग रूप हेतु जलादिकोंमें भी व्याप्त होनेसे व्यभिचारी है । घासादिक में ईश्वरके प्रत्यक्ष न होनेमें आपने “अतिदूरात्मानोपवादिन्द्रियघातान्मनो नवस्थानात् सौहृद्याद् व्यवधानादभिभवात्मन्मनाभिहाराच्च” इन कारिकाका अर्थ लिखा सो इनमें से किस हेतुसे आप ईश्वरका प्रत्यक्ष नहीं मानते प्रथम आप ईश्वरको तो सिद्ध करलीजिये बाद में सूक्ष्मता आदि हेतुसे उसका अप्रत्यक्ष बतलाना । अभीतक तो हेतुमें साध्यमम व्यभिचार का वारण कीजिये अस्तु आपने ईश्वर और जगत्का कार्यकारण भाव माना सो-“अन्वयव्यतिरेक गम्योहि कार्यकारण भावः” ऐसा न्यायका सिद्धान्त है जहां कार्य कारण भाव होता है वहां अन्वय व्यतिरेक भाव अवश्य होता है क्योंकि कार्य कारण भाव व्याप्य है और अन्वय व्यतिरेक व्यापक है यदि बिना अन्वय व्यतिरेक के भी कार्यकारण भाव मानलेंगे तो आकाश को भी कारणता की आपत्ति होगी इस लिये ईश्वर और जगत्में अन्वयव्यतिरेक अवश्य मानना पड़ेगा ईश्वरमें व्यतिरेक सर्वथा नहीं घटता क्योंकि व्यतिरेक क्षेत्र व्यतिरेक और कालव्यतिरेक दो भेदोंमें विभक्त है जब कि आप ईश्वरको व्यापक मानेंगे तो “यत्र यत्र ईश्वरो नास्ति तत्र तत्र जगज्जास्ति” ऐसा क्षेत्र व्यतिरेक नहीं बनेगा तथा ईश्वरको आप नित्य मानते हैं अतः “यदा यदा ईश्वरो नास्ति तदा तदा जगज्जास्ति” यह काल व्यतिरेक भी नहीं बनेगा और जगद्व्यतिरेक नहीं बनेगा तो अन्वयका भी संदेह है क्योंकि जैसे आप अन्वयसे ईश्वरको सिद्ध करेंगे तैसे ही आकाशको जगत्कर्तृत्व क्यों नहीं हो सकता जबकि आकाश जीवात्मा और ईश्वर ये तीनों ही वैशेषिक मतानुसार व्यापक हैं तो ईश्वरके ही जुझे जगत् कर्तृत्व आया इसमें नियामक क्या है यदि आकाश जीवात्माकी अपेक्षा सूक्ष्म है तो अमूर्त्तिक आकाश ईश्वरादिकमें स्थूलता और सूक्ष्मताका निषा-भक क्या क्रिया चेतनजन्य ही होती है इस हेतु शून्य प्रतिष्ठाको सिद्ध कीजिये नदी बहती है जोर्य नकान गिर गया क्या यहां भी आपकी दिव्य

द्रष्टि में चेतन कर्ता नजर आता है ? यदि सकानका गिरना आदि भी ईश्वरका स्वाभाविक धर्म है तो इतर सकानों को क्यों नहीं गिरा देता ?

आगे आपने लिखा कि "संयोगके पाकज गुण होनेसे बिना कर्ताके संयोगका होना ही असम्भव है," सो महाशय जी ? यदि संयोग पाकज होता मानोगे तो पटमें तंतु संयोग कौन सी अग्निके संयोगसे हुआ है क्योंकि पाक शब्दका अर्थ अग्नि संयोग है यह सिधाय पत्र घटादिकके अन्यत्र पुस्तक पट आदि द्रव्यों में विलकुल असम्भव है दूसरी बात यह है कि संयोग को पाकज कहने से कर्तृजन्यत्व का उससे क्या संबन्ध है एक नदीका जल दूसरी नदीमें संयुक्त होनेसे कौनसे कर्तासे जन्यमाना जायगा पाकजगुण अग्निसंयोगसे पैदा होगा या कर्तासे इस वदतोव्याघातका आप समाधान करिये।

पुनः आपने लिखा कि "मारवाड़में जहां वालूके टीले बनते हैं क्या वहां वालूमें संयोग होता है ? मालूम पड़ता है कि आपने संयोगके लक्षण का विचार ही नहीं किया सो महाशय ? आप संयोगका लक्षण करके अप्राप्ति आदिक दोष देते तो आपका लिखना ठीक भी समझा जाता अथ न जाने हम नहीं लक्षण जानते या आप ही विलकुल लक्षण नहीं समझते क्या आपने मारवाड़के टीलोंमें परस्पर परमाणुओंका समवाय सम्बन्ध समझ रखा है वहां "अप्राप्ति पूर्विकाप्राप्तिः संयोगः" यह संयोगको लक्षण सुस्पष्ट रीतिसे घटित होता है ? इस लिये हमने पहले जो दोष दिया था कि अवयव संयोग बिना चेतन कर्ताके वायु आदिसे टीलोंमें हो जाता है उस पर लक्ष्य देकर वारण कीजिये।

आगे आपने पूछा कि "अकर्तृजन्य कोई कार्य होता ही नहीं आप किम प्रमाणसे कहते हैं" उत्तर में वक्तव्य है कि अकर्तृजन्य कार्य होना प्रत्यक्ष ही से सिद्ध है जो कि नदी बहना वायु चलना मेघ बरसना घास आदि हम पहले कह चुके हैं जब किये प्रत्यक्ष सिद्ध ही हैं तो पंचावयव वाक्यसे सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि प्रत्यक्ष विषयमें अनुमान प्रवृत्ति व्यर्थ कही है।

आगे आपने लिखा कि "परमाणुओंकी गतिमें सूक्ष्म वायु आदि निमित्त हैं तो क्या आप वायुके परमाणु नहीं मानते इत्यादि"

उत्तर में निवेदन है कि संसारी जीवोंके पांच भेद है एकेंद्रिय द्वीन्द्रिय

श्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय एकेन्द्रियके पाँच भेद हैं पृथ्वी अप् तेज, वायु, धनस्पति, इनमें से एकेन्द्रियका वायुकायिक भेदका शरीर वायु स्वरूप है उस जीवके जो विहायोगति नामा कर्म सम्बन्ध है उससे गति होती है ।

पुनः आपने लिखा कि “जीवके कर्म पुद्गल के सम्बन्धधीन हैं और वायु आदिक ही गति जीवके कर्माधीन हैं इनमें अन्योन्याश्रय दोष है” यह आपका लिखना सर्वथा असंगत है अन्योन्याश्रय दोष वहाँ हुआ करता है जहाँ दो पदार्थोंमें एक दूसरे के आधीन हुआ करता है जैसे एक गुजराती ताला जो कि बिना ताली के लग जाता है उसकी ताली कोठेमें भीतर रह गई और ताला बाहरसे खन्द कर दिया गया यहाँ तालेका खुलना तालीके निकलनेके आधीन और तालीका निकलना तालेके खुलनेके आधीन इस तरह अन्योन्याश्रय दोष होता है आपने अन्योन्याश्रय दोष लिखा उसे धिचकर हंसी आती है और साथ ही ऐसी छोटी २ बातें समझानेके लिये बाधित भी होना पड़ता है ॥

पुनः आपने लिखा कि “क्या अभाव भी कोई पदार्थ होता है आपके द्रव्योंमें अभाव किसके अन्तर्गत है महाशय जी ? प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव दो नहीं हैं नैयायिक कार्य की अपेक्षासे एकही अभावके तिरोभूत और आविर्भूत होनेसे उपचारसे कहते हैं यदि आप विशेष विचार करें तो चीज की उत्पत्तिके पूर्व जो अभाव था उसकी कार्यने आकर ढाँप लिया अब जब कार्यनाश हो गया तो वो पड़ना अभाव फिर प्रकट हो गया इस लिये कोई भाव पदार्थ एक किनारे खाला दिखाइये ?” सो महाराज ? आपका यह पूर्वापर विरुद्ध लिखना कब तक चलेगा प्रथम तो आप कहते हैं कि अभाव कोई पदार्थ नहीं है पुनः लिखते हैं कि अभावका आविर्भाव होता है क्या अवस्तुका भी कोई आविर्भावक और तिरोभावक हुआ करता है हम द्रव्य का लक्षण अनंत गुण समुदाय मानते हैं गुण समुदायमें अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है गुण दो तरहके हैं एक अनुजीवी दूसरे प्रतिजीवी भावात्मक गुणों को अनुजीवी, गुण कहते हैं और अभावात्मक गुणोंको प्रतिजीवी इस लिये हम अभावको द्रव्यका धर्म स्वीकार करते हैं यदि प्रागभाव द्रव्यका धर्म न होता तो घटकी उत्पत्तिके पहले भी घट क्यों नहीं पैदा हुआ ? इस लिये प्रागभाव न माननेसे कार्यको अनादित्वका प्रसंग आवेगा और यदि प्रध्वंसाभाव नहीं मानागे तो घटके फूटने पर भी घटकी सत्ता रहनी चाहिये त-

याच घटकी अनंतत्वका प्रसंग आवेगा यदि अन्योन्याभाव न माना जाय तो घटादिक अपनेको दूसरेसे भिन्न नहीं कर सकेंगे तथाच सर्व पदार्थोंका परस्पर महासांकर्य दोष उपस्थित हो जायगा और यदि अत्यन्ताभाव न मानोगे तो जड़के भी चैतन्यका संगर्ग या आकाशके फूनका भी प्रसंग आवेगा इस लिये अभावको पदार्थ मानना आवश्यक है आगे आपने "एक किनारे वाला भाव पदार्थ पूछा" सो समझिये सुवर्ण और पाषाणका संयोग अनादि है तपाने पर उस संयोगका नाश हो जाता है और संयोग भाव पदार्थ है ।

भगवद्गीता—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य



( स ) नं० ४ का उत्तर

॥ ओ३म् ॥

आर्यसमाज अजमेर

ता० २५ । ९ । १२

श्रीमान् महाशय जी, नमस्ते !

जीवका गुण चारित्र्य है या कर्म ? यदि चारित्र्य गुण होता तो नित्यजीव के साथ रहना परन्तु सुषुप्ति अवस्था में चारित्र्य प्रतीत नहीं होता, इसलिये वो कर्म है गुण नहीं । जीव और जड़ कर्मका इत्दी और चूनेकी तरह बन्ध संबंध है, ये दृष्टान्त विषम है, गुण गुणोंमें आवरण आने का दृष्टान्त देना चाहिये । इत्दी, चूना दोनों द्रव्य हैं, आनन्द गुण और जीवके दरम्यानमें अवकाश कहाँ ? जिसमें जीव कर्मकी स्थिति हो सके । चेतन नित्यमें विकृति होती है । इस प्रतिज्ञाको पंचावयवमें सिद्ध करिये ।

यदि सूर्यकी किरणें संसारमें न आतीं जातीं तो चतुका सूर्यका सम्बन्ध कैसे होता ? और संसारमें अग्नि कहाँसे आती ? रेतको उन्हीं सूर्यकी किरणोंकी बनी हुई अग्नि संसारमें प्रकाश करती है, आप किसी हेतुसे सूर्योदिकोंका निरवयव और विकार शून्य होता सिद्ध कीजिये । जैसा जिसका उपादान कारण होता है, कार्यमें ऐसे ही गुणआते हैं । परन्तु आकृति आती है, इसके लिये नियामक क्या है, मही घटका उपादान कारण है, घटका आकार महीके सदृश नहीं । कुम्हारके ज्ञानके मुताबिक एक ही उपादान कारण महीसे भिन्न २ आकृतिमें घड़ा, लोटा, सखी आदि बनते हैं । चूनेका दृष्टान्त जो है सो चेतनमें सर्वथा नहीं घट सकता जिस प्रकार पहला सांचा हाथसे बनाते हैं और फिर सांचेसे सांचा बनाते हैं । ( २ ) शिरमें पहली जू मौलसे पहती है फिर जूसे जू पेदा होती है, ये ही

दशा सृष्टिी है, जरा वैशेषिक दर्शनको पढ़िये, सन्ति अयोनिजा विना मा बापके कर्मपानोंके सनुष्य उत्पन्न होते हैं, आपने जो ये लिखा कि संसारी जीवका अनादि कालसे बन्ध हो रहा है, और बन्ध बन्धकमें पदार्थोंका क- यश्चित् एकत्व होता है। इसलिये संसारी जीव मूर्त है यदि आप मूर्तका ल- क्षण समझ लेते तो ऐसा न्याय विरोध नहीं लिखते। ( मूर्च्छतावयवत्वं मू- र्तत्वं परस्पर अनुप्रविष्टावयवत्वं मूर्तत्वं ) चेतन जीवमें कैसे घट सकता है, यदि कैदी और कैदखाना दोनों ही का धर्म एक होजाय तो संसारकी सारी व्यवस्था नष्ट हो जाय। इस वास्ते निरवयव अमूर्त जीवमें रूपान्तर प्रति- पत्ति सम्भव ही नहीं। महर्षि कपिलने सांख्यदर्शनमें ( उपदिभिद्यते न त- द्वात् ) बड़े स्पष्ट शब्दोंमें हम भ्रान्तिका खण्डन किया है, निरवयव चेतन प- दार्थ किसी कालमें मूर्त नहीं हो सकता। आगके फलमें जो रूप है वो अग्नि का है क्या आममें गर्मी नहीं या रूप नहीं ? जब आप पुद्गलके चार धर्म पृथ्वीका गन्ध, जलका रस, अग्निका रूप या वर्ण साफ है तो आपका ये आमवाला दृष्टान्त अनभिज्ञता का है। परिणामका अर्थ विकारोंमें अवयवों के दाखिल होने और निकलनेसे पारिभाषिक है। जहां अवयव न बदलें और केवल शकलमात्र बदले, अवयव वो ही रहें वहां योगिक है। आप तीसरे विकारके लक्षण वाला परिणाम मानते हैं, जिसमें वृद्धि क्षय पाये जाते हैं, फिर अवयवान्तर प्रतिपत्ति कैसे नहीं ? अवस्थासे अवस्थान्तर होना विकार और परिणाम दोनोंमें होनेसे विकार और परिणाम एक नहीं हो सकते। क्योंकि दो पदार्थोंमें एक धर्मके मिलजानेसे, वैधर्मके होनेसे एकत्व नहीं होता।

विकार शब्द संस्कृतका है, आपके न माननेसे उसका अर्थ दूसरा नहीं हो सकता, और परिणाम शब्द भी संस्कृतका है, इसलिये या तो वे ही प- रिभाषायें जिसके लिये ये शब्द बनाये गये हैं, वे ही परिभाषायें स्वीकार करनी होंगीं। यदि जैनभाषाका शब्द होता तो आप मनमाना अर्थ कर स- कते थे, किस शास्त्रमें जाँव और प्रकृतिका संयोग अनित्य माना है ? जरा प्रमाण सहित लिखिये, प्रकृति कारण शरीर है जिससे मुक्तिमें भी जीवका सम्बन्ध रहता है। पुद्गलमें दो पदार्थ अग्नि और जल ऐसे हैं जिनसे सं- योग द्वारा वृद्धि और वियोग द्वारा क्षय स्वभावसे होता है। इसलिये ये न्याय विरुद्ध नहीं, कार्यमात्रमें के विकार स्वाभाविक हैं जो सब अवस्थाओंमें अ-



नुद्भूत होते हैं । और अपने समय पर उद्भूत होते हैं, ये दोनों धर्म अपेक्षासे विरोधी नहीं हैं, जायते के बाद वृद्धि । और विप्रणम्यते के बाद क्षय, कार्यमात्रका स्वभाव है । कार्यमात्रमें संयोग और वियोग नियमसे चल रहे हैं । महलके ऊपर अट्टा बनाया वो महलमे बाहिर है, उस महलमें अवयव नहीं घसे इसलिये जीवकी सृष्टिमें विकारका दृष्टान्त दीजिये, यह दृष्टान्त आपके पक्षको सिद्ध नहीं करता । सूर्यादिकमें अवयवान्तर प्रतिपत्ति नहीं इस प्रतिज्ञाको पञ्चावयवसे सिद्ध करिये । केवल प्रतिज्ञामात्रसे हेतु-हेतुवाभास नहीं हो सकता । क्रिया दोनोंमें होती है, इसका किमी सच्छास्त्रसे इवान्ता दीजिये ? अवयवान्तर प्रतिपत्ति उभी आकृतिमें, यदि पायी जावे तो विकार होता है, महल पर अट्टा बनानेसे आकृति भिन्न हो गई । जहाँ आकृति भिन्न हो वहाँ विकार कैसा ? सूर्यादिकमें अवयवान्तर प्रतिपत्ति नहीं-इस आपकी प्रतिज्ञाका साधक क्या है ?

सूर्यकी किरणें सूर्यरूप हैं-यह मानकर देशव्यवधानमें क्या हेतु है, क्योंकि किरणें आंखकी वृत्तिको सूर्यके साथ सन्निकर्ष कराने वाली हैं, यदि किरणें ही सूर्य हैं तो पृथ्वी और सूर्यमें अन्तर कैसे कहलावेगा । जितने कार्य हैं सब में अवयव संयोग हेतु व्याप्त है, व्यभिचार वहाँ होता है, यदि किसी विजातिमें वह धर्म पाया जावे, सूर्य चन्द्रादिक भी कार्य हैं, और जलादिक भी कार्य हैं ईश्वर घास आदि से अतिमनीष है इसलिये उसका प्रत्यक्ष नहीं ।

क्या ईश्वर शब्द असिद्ध है या ईश्वर शब्दका अर्थ ? यदि ईश्वर शब्द असिद्ध है तो लिखते कैसे हैं, यदि ईश्वर शब्द निरर्थक है तो हम शब्दसे आप किसका प्रतिषेध करते हैं, यदि शब्द सार्थक है तो ईश्वर शब्दका अर्थ सिद्ध ही है ।

हेतुमें 'साध्यलय, व्यभिचार, वसलाना भ्रान्ति है क्योंकि न साध्यलयका लक्षण घटता है और न व्यभिचारका । ईश्वरके जगत्का कर्ता और प्रलयका हेतु होने में उसकी संयोगोन्मुख और वियोगोन्मुख शक्तिके साथ जब २ ईश्वरकी शक्ति है, अन्वयव्यतिरेक है । जब २ ईश्वरकी शक्ति संयोगोन्मुख होती है जगत् बनता है । और जब २ वियोगोन्मुख होती है प्रलय होता है, तो ईश्वरकी शक्तिके संयोग और वियोग उन्मुख होनेसे कालव्यतिरेक बना हुआ है । जब कालव्यतिरेक है तो शक्ति, शक्तिमानुके अभेद होनेसे ईश्वरकी सं-

योगोन्मुख शक्तिका ही ईश्वरकर्ता कहते हैं। जब २ ईश्वरकी शक्ति संयोगोन्मुख नहीं तब २ जगत् नहीं, जब २ संयोगोन्मुख है तब २ जगत् है, जब २ वियोगोन्मुख नहीं तब २ प्रलय नहीं, जब २ वियोगोन्मुख है तब २ प्रलय है।

जीवात्मा वैशेषिक-मतमें जानिसे विभु और स्वरूपसे परिच्छिन्न है, यदि जीवात्मा विभु होता तो "आत्मसंयोगात् हरते कर्म" इस प्रकारके सूत्र जो आत्मा को परिच्छिन्न बनानाते, हैं न होते। आकाश जड़ है, जड़में संयोग, वियोग करने की विरुद्ध शक्तियां हो नहीं सकती। ईश्वरमें सूक्ष्मताका हेतु प्रत्येक वस्तुमें उसके गुणोंका लाना है। प्रकृतिमें क्रिया और जीवमें आनन्द कहाँमें आते है ?

मकानका गिरना जीवके कर्मानुसार ईश्वरके नियमसे (जो स्वाभाविक है) है। इतर मकानोंका न गिरना इस हेतुसे है कि उनके मालिकोंका भोग वैसा नहीं। आपने पाकजगुणकी परिभाषाकी ठीक नहीं समझा,। अग्निके संयोगसे पाकज गुण नहीं कहलाते वं पाकज द्रव्य होते हैं। जो कर्ताकी क्रिया से उत्पन्न हों वह पाकज कहलाते हैं। जो अग्नि संयोगसे पैदा होगा वह पाकज द्रव्य होगा। संयोगका लक्षण है जहां आकाशका ठपवधान हो, जिन दो परमाणुओंमें आकाश होगा वहां संयोग नहीं कहलावेगा, और जहां बीस में आकाश न होगा वहां संयोग कहलावेगा। "अप्राप्ति पूर्विका प्राप्तिः संयोगः-यह लक्षण ईश्वरके माथ और आकाशके माथ अव्याप्त है। बालूकेटीले में यदि संयोग होता तो वियोग कैसे होता ? एक ही वायु जो जड़ है उस में संयोग, वियोग स्वाभाव नहीं हो सकते, क्योंकि चेतनमें शक्तिके उद्भूत और अनुद्भूतकी सामर्थ्य तो प्रत्यक्ष है। आप जब चाहें बोलें जब चाहें न बोलें। अचेतन वायुमें उद्भूत और अनुद्भूत होनेके शक्ति प्रमाणसे सिद्ध कीजिये। नदीका बहना क्या अकर्तृजन्य है ? यदि अकर्तृजन्य बहती तो ऊपरको चली जाती। वहां पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति जो नियन्ताके नियमसे काम कर रही है "कर्ता", है, अकर्तृजन्य नहीं। और वायुके चलनेमें यदि कर्ताका नियम नहीं होता तो न तो ठहरती और न पूर्व, पश्चिम आदि वायु में परिवर्तन होता। मेघका बरसना पृथिवी सूर्यके नियमोंके साथ है, जहां वृत्त ज्यादा हैं वहां वृष्टि ज्यादा है और जहां नहीं वहां वृष्टि न्यून है। हिमालयकी तराई और राजपूताना अरब आदि देशों को देखिये। आप नियमपूर्वक सृष्टिको "कर्तृजन्य", कहते हैं। यदि किसी लड़के का पिता मर

जावे और प्रत्यक्ष न हो, या मातासे संयोग करके बाहर चला जावे तो क्या उस बालकको आप पिता शून्य और अकृतजन्म कहेंगे । ये जो आपने एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय भेद लिखे हैं इसको किस प्रमाणसे सिद्ध करते हैं । और वायु काय, जीव, वायु रूप होते हैं, क्या उनमें वायव्य परमाणुओंके अतिरिक्त अन्य परमाणु नहीं होते ? यदि नहीं मानते तो प्रमाणसे सिद्ध कीजिये अभाव कोई पदार्थ नहीं, भावके न होने को ही अभाव कहते हैं । यह पूर्वोपर विरुद्ध नहीं । आप वस्तु मूर्तिमान्को मानते हैं । अभावकी मूर्ति किस प्रमाणसे सिद्ध है । घटके पूर्व घटमें तीन चीज रहने वाली जाति, आकृति व्यक्ति किसका अभाव था । जाति, आकृति कर्ताके ज्ञानमें थी और व्यक्ति उपादान कारणमें । आप किस अभावकी द्रव्यका धर्म मानते हैं । अत्यन्ताभावको ? क्या अत्यन्ताभाव भी द्रव्यका धर्म मानते हैं । जिस द्रव्यका धर्म अत्यन्ताभाव होगा तो धर्मके अत्यन्ताभावसे धर्म भी अत्यन्ताभाव हो जायेगा घटके पूर्व घटकी तीनों वस्तुयें, जाति, आकृति, व्यक्ति मौजूद थी क्या घट को आप सृष्टिका की पटर्पाव मानते हैं या घटके अभावसे भाव होना ।

यदि प्रागभाव न माननेसे प्रत्येक कार्यको अनादित्य का प्रसङ्ग होता है तो जगत् रूप कार्यका आप प्रागभाव मानते हैं ? जगत् का प्रत्येक अवयव घट, पट, वृत्त, मनुष्यादिक। प्रागभाव सिद्ध है तो उसके समुदायरूप जगत्का प्रागभाव आपकी मानना ही होगा ।

सीने और पाषाणका संयोग अनादि है यह दृष्टान्त दृष्टान्तके लक्षणों में नहीं आता । क्योंकि “लौकिक परीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे युद्धिसाम्यं सदृष्टान्तः”, जिस अर्थमें लौकिक और परीक्षकोंकी ( दोनोंकी ) बुद्धि साम्य हो वह दृष्टान्त कहलाता है । किसी परीक्षकसे तो कहला दीजिये, कि सीने और पत्थरका सम्बन्ध अनादि है ।

ऐसे ही धान और चावल का सम्बन्ध अनादि है । इस प्रकार के असङ्गन दृष्टान्त किसी पक्षसे सिद्ध नहीं कर सकते । परन्तु उन मत वालोंकी अनभिज्ञता को सिद्ध करते हैं ।

भवदीय--मन्त्री रामचन्द्र

धर्मेजितवरसु ।

( ख ) पत्र नं० ५

श्री जैत नन्दवशाश्रितो गुप्ता — इत्यादि ।

सहस्रशय । जय जिनेन्द्र ।

तार १० । १० । १० । १२

आपने लिखा कि "जीवका गुण चारित्र है या धर्म यदि चारित्र गुण होता तो निन्द्य ही जीवके साथ रहता परन्तु गुण गुणों में चारित्र प्रदीप्त नहीं होता वन निन्द्य वह धर्म है गुण नहीं" सो महाशय जी चारित्र कर्म नहीं किन्तु गुण ही है आपने चारित्रका कलत्र नहीं समझा है इन वाक्यों में लिखने हैं चारित्रका लक्षण वन प्रकार है कि ( संसार कारणा निवृत्तिं प्रत्यावृत्तस्य ज्ञानवतः वाच्यस्यन्तर क्रियापिज्ञेयोपरमः मन्मत् चारित्रम् ) सो यह चारित्र सुषुप्ति आदिक अवस्था में भी प्राप्य जाता है ।

पुनः आपने लिखा कि "जीव और जड़ कर्म हल्दी और चूनेकी तरह बन्ध सम्बन्ध है यह दृष्टान्त विषय गुण गुणों में आचरण आनेका दृष्टान्त देना चाहिये हल्दी चूना दोनों द्रव्य हैं आनन्द गुण और जीवके दर्शानमें अवकाश कहा है जिनमें जीव कर्मकी स्थिति हो सके" सो महाशय जी हल्दी उत्तर अनेक बार लिख चुके थे परन्तु खेद है कि आपकी समझ में नहीं आता आपके अनुरोधसे पुनः उत्तर लिख जाता है कि गुणोंके अवकाश समुदायकी द्रव्य कहते हैं द्रव्य और गुणोंमें कोई अवकाश नहीं है और न हमको अवकाशकी जरूरत है जड़कर्म और आत्मा दोनों ये द्रव्य हैं इन दोनों द्रव्योंके एक क्षेत्रावगाह होने परबन्धकी यथायोग्य भास्योके सद्भावमें जीव और कर्मका बन्ध होता है परगुणाकार परिणामकी क्रियाको बन्ध कहते हैं इस बन्धमें गुण संक्रान्ति होती है जैसे कि हल्दी और चूना दो मिश्र द्रव्य हैं इन दोनोंका एक क्षेत्रावगाह होनेपर बन्धके यथायोग्य भास्योके सद्भावमें परगुणाकार पारिणामिक क्रिया रूप बन्ध होता है इस बन्धमें हल्दी और चूने के पीत और श्वेत गुण संक्रान्त होकर रक्त भावको प्राप्त होते हैं इस प्रकार जीवका चारित्र गुण और पुद्गलका गुण संक्रान्त होकर क्रोधादि पर्याय रूप परिणामन करते हैं दृष्टान्त और दाष्टान्तका जो सदृश धर्म विवक्षित है वह आपकी सुगतया प्रत्यक्ष दिष्टा फिर भी इस दृष्टान्तकी विषय कहना भ्रम है पुनः आपने लिखा कि "चतन नित्यमें विकृति होती है इस प्रतिष्ठाकी पं-

“आवयवसे सिद्ध कीजिये” सो महाशय जी पंचावयव की प्रवृत्ति अनुमानके विषयमें प्रवृत्त होती है यह तो प्रत्यक्ष का विषय है। महारत्ना जी द्रव्यमें एक अस्तित्व गुण है उसका सदाकाल सद्भाव रहता कभी भी अभाव नहीं होता है इस लिये नित्य है और इसी लिये प्रत्येक द्रव्यमें भिन्न २ अस्तित्व रहनेसे प्रत्येक द्रव्य नित्य हैं द्रव्यमें द्रव्यत्व संज्ञक एक दूसरा गुण है कि जिसके निमित्तमे ( अस्तित्व गुणके निमित्तमे नित्य होने पर भी ) प्रतिक्षण एक अवस्थाको छोड़ कर द्वितीय अवस्थाको प्राप्त होता है इस लिये द्रव्य-नित्य है जिसे कि एक ही मानेके कटक कुण्डन आदि अनेक भूषण बनाये जाने पर सोनेकी अपेक्षा नित्यता और कटक कुण्डनादि अवस्थाकी अपेक्षा अनित्यता है इसी प्रकार जीव द्रव्यका कभी भी अभाव न होनेके कारण जीव द्रव्य नित्य है किन्तु उसके ज्ञानादिक गुण प्रतिक्षण एक २ अवस्थाको छोड़ कर अन्य २ अवस्था को प्राप्त होनेमें अनित्य हैं इस अवस्थासे अवस्थान्तर होनेकी ही विकृति कहते हैं अवयवान्तर प्रतिपत्ति विकार यह लक्षण इस की दृष्ट नहीं है यह आपका भ्रम है और अपने इस लक्षणसे इनारे सिद्धान्त में बाधा देना सर्वथा अवलोक्य है।

पुनः आपने लिखा कि “यदि सूर्यकी किरणें संसारमें न आतीं जातीं तो चन्द्रका सूर्यका संवन्ध कैसे होता और समागमें अग्नि कहाँसे आती रात को चन्दी सूर्यकी किरणोंमें बनी हुई अग्नि संसारमें प्रकाश करती है” उत्तर में निवेदन है कि जब सूर्यकी किरणें यहां पर रातकी रहजाती हैं तो उन किरणोंके निमित्तमे जगत् अग्नि प्रकाश या वेग रातकी क्यों नहीं रहता यदि सूर्यकी किरणोंके निमित्तमे अग्नि बनती तो दिन रात बराबर अग्नि जलाही बनती और संसारके सभी पदार्थ भस्म हो जाते अब सूर्यकी किरणों से ही अग्नि है तो सूर्यकी किरणें दिनों जिनमे लोको में व्याप्त रहती हैं व-तमें ही जलने लगें अग्नि क्यों नहीं जला करती किसी खास जगह पर ही जलानेसे क्यों बनती है अथवा किसी तटस्थानेमें जहा कि दिनमें भी सूर्य की किरणें नहीं पहुंचती हैं रात्रिको जलानेसे अग्नि क्यों बनती है यदि सूर्यकी किरणें यहां पहुंच जाती है तो दिन में क्यों नहीं होता कृपा-नाथ ऐसी ऊटपटांग युक्तियोंसे कहाँ तक टालिस टूट कर रहेगे ॥

पुनः आपने लिखा है कि “आप किसी हेतुसे सूर्यादिकी निरवयव और

विकार शून्य सिद्ध कीजिये., महाशय जी ! सूर्यादिकको पक्ष करके उनमें ईश्वर कर्तृत्व सिद्ध करनेके लिये साध्यवत्त्व और विकारित्व ये दो हेतु आपने दिये उन दोनों हेतुओंमें हमने जब साध्यसम हेत्वाभास दीया दिया तो आपका कर्तव्य है कि उस साध्यसम हेत्वाभास दोषको निवारण करनेके लिये सूर्यादिकमें साध्यवत्त्व और विकारित्व किसी प्रकारसे सिद्ध करने परन्तु आश्चर्य है कि आप सूर्य आदिकमें साध्यवत्त्व और विकारित्वके अभावकी सिद्धि में हमसे प्रमाण मांगते हैं आपको ऐसा लिखना आपकी न्यायानभिज्ञताको सूचित करता है क्या महाराज ! फूँकसे ही पहाड़ उड़ाना चाहते हो ॥

पुनः आपने लिखा कि “जैसा जिसका उपादान कारण होता है कार्यमें वैसे ही गुण आते हैं परन्तु आकृति आती है इसके लिये नियामक क्या है मिट्टी घटका उपादान कारण है घटका आकार मिट्टीके सदृश नहीं कुम्हार के ज्ञानके मुताबिक एक ही उपादान कारण मिट्टीमें भिन्न २ आकृतिमें चड़ा लोटा तख्ती आदि बनते हैं” उत्तरमें निवेदन है कि द्रव्यमें आकृति भी एक गुण है इस लिये उपादान कारणका गुण आकृति भी कार्यमें अवश्य आवेगी कार्यके वास्ते निमित्त कारणकी भी आवश्यकता होती है परन्तु यह नियम नहीं कि वह निमित्त कारण सदा चेतन ही होवे जड़ भी निमित्त कारण होते हैं जैसे मेघकी अनेक आकृतियां बिना ही किसी चेतन निमित्तके वायु आदिसे बन जाती हैं ।

पुनः आपका लिखना है कि “चनेका दृष्टान्त चेतनमें सर्वथा नहीं घट सकता । यह आपका हेतु प्रतिज्ञा शून्य है इसको हेतु उदाहरण आदिसे सिद्ध कीजिये” महाशय जी जन्म तीन प्रकारके होते हैं अर्थात् ( गर्भ उपपाद सम्पूर्जन ) जगद्युज अण्डज पोतज इन तीन प्रकारके जीवोंका गर्भ जन्म होता है देव और नारकियोंके उपपाद जन्म होता है जो गर्भज हैं वे बिना माता पिताके नहीं होते शंपके बिना माता पिताके हँ। होते हैं हमारे सिद्धान्तों का सिद्ध करनेके लिये हम उन्हीं लक्षणोंकी काममें लाते हैं जो हमारे सिद्धान्तकारोंने रिये हैं तुम्हारे सिद्धान्तकारोंके लक्षणसे हमारे सिद्धान्तोंका जो संकर करते हो सो विलुप्त अयुक्त है मूर्तका लक्षण हमारे सिद्धान्तकारोंने प्रत्यक्ष प्रकार किया है कि स्पर्श, रस, गन्ध, ध्वनि जिसमें पाये जाय उसे मूर्त कहते हैं इस निम्ने पुनः द्रव्य मूर्त है पुनः द्रव्यका और आत्माका अनादि

कालसे बन्ध चला आ रहा है जहाँ बन्ध होता है वहाँ जिन पदार्थों का बन्ध होता है दोनों पदार्थोंके गुण संक्रान्त होकर एक रूप हो जाते हैं जैसे कि हल्दी और चूनेकी पीतता और श्वेतता रक्त रूप हो जाती है उसी प्रकार जीव और पुद्गलके बन्ध होनेपर उन दोनोंके गुण संक्रान्त होकर एक रूप हो जाते हैं इस लिये जीवको भी कथञ्चित् मूर्त कहते हैं । मांख्य दर्शन और वैशेषिक दर्शनमें उभय पक्ष मान्य नहीं हैं इस लिये इनको इस प्रमाण में ग्रहण नहीं कर सकते ।

आमके फलमें जो आप अग्निका रूप बताते हैं यह आपका भ्रम है क्योंकि उष्ण स्पर्शवत्त्व जो अग्निका लक्षण है वह वहाँ पर व्याप्त नहीं है ।

विकार शब्द और परिणाम शब्द यद्यपि संस्कृत भाषाके हैं परंतु संस्कृत भाषाके होनेसे उन पर आपके आचार्यों का सीसूझीहक नहीं हो सकता जिन प्रकार हमारे आचार्योंके पारिभाषिक शब्दोंको आप नहीं मानते उसी प्रकार आपके आचार्योंके पारिभाषिक शब्दोंको हम भी नहीं मान सकते । मुक्त अवस्थामें जीवके जड़के साथ विलकुल सम्बन्ध नहीं रहता अन्यथा मुक्तपना ही क्या हुआ अवस्थामें अवस्थान्तर प्राप्ति को कार्य कहते हैं अट्टेको महलका अवयव नहीं कहना आपकी अनभिज्ञताका सूचक है । आपने विकार लक्षण अवयवान्तर प्रतिपत्ति रूप किया था सो महल पर अट्टा बनाने से अवयवान्तर प्रतिपत्ति हो गई फिर विकार क्यों नहीं रहा । आकृत बड़ी रही तो अवयवान्तर प्रतिपत्ति हो नहीं सकती यह आपका लिखना सर्वथा अयुक्त है सूर्यादिकमें सावयवत्व और विकारित्व है यह आपकी प्रतिज्ञा है इसको हेतु और उदाहरणसे सिद्ध कीजिये केवल प्रतिज्ञासे काम नहीं चलेगा । सूर्यकी किरणें हमेशा सूर्यके साथ रहती हैं जब सूर्य जाता है तब उस के साथ चली जाती है इस लिये किरणोंका सूर्यसे निकलना और रात्रिको यहाँ रह जाना असंभव है इस लिये सूर्यमें विकार और सावयवत्व सिद्ध नहीं होता सूर्य चन्द्रादिक कार्य हैं यह आपकी प्रतिज्ञा है इसको हेतु और उदाहरणादिसे सिद्ध कीजिये केवल प्रतिज्ञासे साध्य सिद्ध नहीं होती ।

ईश्वर अभी साध्य कोटिमें पड़ा हुआ है इस लिये घासका उसे कर्ता कहना युक्ति शून्य है अन्यथा सब व्यभिचारी हेतुवाभासके मूलोच्छेदका प्रसङ्ग आवेगा ।

ईश्वर शब्द असिद्ध नहीं है किन्तु ईश्वर शब्दका वाच्य जो आपने जीव राशिसे भिन्न जगत्कर्ता सर्वव्यापी माना है वह असिद्ध है क्योंकि किसी प्र-

साधन से सिद्ध नहीं होता । जगत्की ईश्वरकृत सिद्धि में जो आपने साधकत्व और विकारत्व हेतु दिये हैं वे दोनों हेतु साध्यमन और व्यभिचारी हेतुवाभास हैं । साध्यमन तो इसलिये है कि उनका साधक कोई प्रमाण नहीं है यदि प्रमाण हो तो दीजिये । और व्यभिचारी इसलिये है कि अवयव संयोग आपका हेतु है वह जड़ रूप पवन आदिक से भी हो सकते हैं जैसा कि मारवाड़ में टोले बनजाते हैं ।

ईश्वर में संयोगोन्मुख और वियोगोन्मुख ये दो विरुद्ध स्वभाव नहीं हो सकते इसलिये विरोध आता है इसलिये वानिरेक नहीं बनता ।

आपने अनेक प्रश्न कईवार लिखे हैं उनका उत्तर पूर्व अच्छी तरह लिख चुके हैं इसलिये पिटपेषण करना अनुचित है ।

मनानका गिराना ईश्वरता स्वभाविक गुण है तो मान सदा गिरने ही चाहिये ।

संयोग का लक्षण आपने आकाश का व्यवस्थित होना लिखा सो जीव और आकाश ये दोनों द्रव्य व्यवस्थापी हैं दोनों में संयोग सम्बन्ध है परन्तु दोनों में आकाश का व्यवस्थित नहीं है । जहां बीचमें आकाश द्रव्य व्यवस्थित नहीं होगा वहां संयोग कदावावेगा यह आप का लिखना भ्रम है ।

कारिकावली की एक ही पन्द्रहवीं कारिकामें कहा है कि ( अप्राप्तयोस्तु या प्राप्तिः सैव संयोग इति ) वातके टोले में संयोग तो पवन से होता है और वियोग फावले वाला काटकर कर देता है । नदीका बहना अकर्तृ जन्य ही है गितने गुरु पदार्थ हैं वे सब अधः पतनशील होते हैं इसलिये जल नीचेकी तरफ को ही जाता है ऊपरकी तरफ को नहीं जाता । पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है ही नहीं यदि आकर्षण शक्तिका खंडन देखना है तो श्री जैतन्तव्य प्रकाशितो मभाकी तरफसे प्रकाशित भूगोल सीमांसा नामक पुस्तक देखिये ।

वायुके भिन्न २ गतिमें चलनेका कारण वायुस्थ जलोंके विहायोगति नामा भिन्न २ कर्म हैं ।

मेघकी वृष्टि आदि कभी अनेक जड़ पदार्थोंके निमित्तसे होती है उसके लिये किसी ईश्वर कर्ताकी आवश्यकता नहीं है किसी लड़के का पिता मर जाय तो इस उसकी अकर्तृ जन्य नहीं कहने किन्तु पितृ जन्य कहने हैं क्योंकि शुक्र शोणितके बिना मनुष्योत्पत्ति नहीं होती यह न्याय सिद्ध है मनुष्य



शरीरको उपादान कारण शुक्र गोणित है उपादान कारणके बिना कार्य नहीं होता लेकिन आप तो कहना चाहें कि सृष्टि आदिमें मनुष्य पैदा होते हैं उनका उपादान कारण क्या है ईश्वरको यदि उपादान कारण माना जावे तो उपादानके गुण कार्यमें हुआ करते हैं तो मनुष्यका जड़ शरीर भी सर्वज्ञ हो जायगा यदि ईश्वरको निमित्त कारण माना जावे तो उपादान कारण क्या है यदि शुक्र गोणितके बिना अन्य परमाणुओंकी ही कारण कहा जावे तो अब बिना शुक्र गोणितके क्यों नहीं मनुष्य पैदा हो जाते ? एकैन्द्रियादिक जीव प्रत्यक्ष प्रमाणसे मिट्टी हैं वायु कायिक जीव जीव स्वरूप हैं और उनका शरीर वायु स्वरूप है उनके शरीरमें वायु परमाणुओंके नि-  
 माय अन्य किसीके परमाणु नहीं हैं उनके लिये अन्य प्रमाणा की आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण मिट्टी है जेमे मनुष्यको मनुष्य मिट्टी करनेमें प्रत्यक्ष प्रमाण है उनके लिये प्रमाणान्तरा दूढ़ना केवल भ्रान्ति है ।

कहिये महाशय ? अभाव यदि कोई पदार्थ नहीं है तो आपके वैशेषिक दर्शनमें जो मान पदार्थ माने हैं उनमें पड़ना द्रव्य द्वारा गुण तोमा कर्म कीया सामान्य पाचवां विशेष छटा समझीये अब कहिये मानवां पदार्थ का नाम क्या है घटको हम पुद्गल द्रव्यका पर्याय मानते हैं जब तक पुद्गल द्रव्य घट रूप नहीं परिणामा था तब तक हम पुद्गल द्रव्यको उन पर्यायों में घट पर्यायका अभाव मानते हैं इसीको घट प्रागभाव कहते हैं । समस्त द्रव्योंकी कालक्रमसे पर्यायोंका प्रवाह चला आ रहा है इस लिये समस्त ही पर्यायोंका उससे पूर्व क्षणवर्ती पर्यायमें प्रागभाव और उत्तर क्षण वर्ती पर्यायोंमें प्रध्वन्माभाव रहता है समस्त द्रव्योंके समुदायात्मक जगत्की भावी पर्यायोंका वर्तमान पर्यायमें इसेशा प्रागभाव रहता है और वर्तमान पर्यायमें भूत पर्यायका प्रध्वन्माभाव रहता है और जगत्के सजातीय पदार्थोंमें अन्योन्याभाव और भिन्न २ द्रव्योंमें अत्यन्ताभाव रहता है इस प्रकार जगत्में सदाकाल चारों ही अभाव बने रहते हैं ।

खान में से जो सुवर्ण पाषाण निकलता है उसमें सोना और पाषाणका मेल अनादि कालसे है यदि नहीं है तो बताइये कि किसने कब सेन किया और उसमें प्रमाण दीजिये । इस ( ख ) विभागमें भी हमारे बहुतसे प्रश्न ऐसे रह गये हैं जिनका आपने विलकुल उत्तर नहीं दिया है सो कृपा कर उन का उत्तर दीजिये ।

भवदीय—सन्नी चन्द्रसेन जैन वैद्य,

## आवश्यक सूचना ।

( क ) और ( ख ) दोनों विभागके शास्त्रार्थ के पर्चे हमारे यहांसे आर्यसमाज अजमेर को गत ता० १० अक्टूबर सन् १८९२ई० को रजिस्टर्ड पोष्ट द्वारा भेज दिये गये थे जो कि आर्यसमाज अजमेरमें ता० १२ अक्टूबरको पहुंच गये जैसा कि रजिस्टरीके एक नालिजमेन्ट ( स्वीकारपत्र ) से निश्चय है । नियमानुसार उनका उत्तर दश दिन तक आजाना चाहिये था परन्तु अत्यन्त शोक-विषय है कि आज चालीस दिन बीत जाने पर भी उनका उत्तर आर्यसमाजकी ओरसे नहीं प्राप्त हुआ जिससे कि यह प्रकट होता है कि आर्यसमाज को अब यह शास्त्रार्थ चलाना स्वीकार नहीं है अतः यह शास्त्रार्थ बन्द समझा जाकर पाठकोंसे सविनय प्रार्थना की जाती है कि वह इसको निष्पक्ष दृष्टि से ध्यान पूर्वक पढ़कर परिणाम निकाल कल्याण मार्गके अन्वेषी हों ।

प्रार्थी:—

बटावा ।  
ता० २५ । ११ । १२ }

{ चन्द्रसेन जैन वैद्य, मंत्री  
श्री जैनतन्त्र प्रकाशिनी सभा ।





## श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाकी विकाऊ पुस्तकें ।

### ॥ आर्यों का तत्त्वज्ञान ॥

इसमें ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्व और वेद प्रकाशकत्व पर विचार तथा आकाश और उसके शब्द गुण होने पर विचार ऐसे दो लेख हैं। कीमत ॥ आध आना । सै० २)

### ॥ ईश्वरका कर्तृत्व ॥

इस में ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्व का खण्डन है । की० एक पाई । सै० ॥

### ॥ कुरीति निवारण ॥

इस में बालविवाह, वृद्धविवाह, कन्याविक्रय, वेश्यानृत्य, अतिशबाजी, फुलचारी और अश्लील गानकी खराबियां दिखाई हैं। की० ॥ एकपैसा । सै० १)

### ॥ भजनमण्डली प्रथमभाग ॥

जैनतत्त्वस्वरूपप्रदर्शन और कुरीतिनिषेधक नवीन सांस्तिकभजन हैं। की० ॥ सै० २)

### ॥ जैनियों के नास्तिकत्व पर विचार ॥

यथा नाम तथा गुणः । की० ॥ एक पैसा सै० १)

### ॥ धर्माभूत रसायन ॥

संसार दुःखसे संतप्त पुरुषोंको सुखशान्तिदाता महीपथि । की०-१) एक आ० सै० ५)

### ॥ आर्यमत लीला ॥

इस में आर्य वेदों और मिथुान्तोंकी पोल है । की० ॥ छः आना । सै० २४)

### ॥ भजनमण्डली द्वितीय भाग ॥

उपर्युक्त प्रकारके उत्तमोत्तम भजन हैं । की० ॥ आध आना । सै० २)

### ॥ भजन स्त्रीशिक्षा ॥

इसमें स्त्रीशिक्षाके उत्तमोत्तम भजन हैं । की० ॥ एक पैसा । सै० १)

### ॥ सृष्टिकर्तृत्व मीमांसा ॥

इसमें सृष्टिकर्तृत्व पर उत्तम विवेचन है । की० -) एक आना । सै० ५)

### ॥ भूगोल मीमांसा ॥

कीमत ॥ आध आना । सै० २)

### ॥ आर्योंकी प्रलय ॥

इसमें आर्यों के प्रलय मिथुान्त की पोल है । की० -) एक आना । सै० ५)

॥ कंवर दिग्विजय सिंहका सचित्र जीवन चरित्र और व्याख्यान ॥  
कीमत की पुस्तक ॥ आध आना । सै० ३)

पता:-मन्त्री चन्द्रसेन जैन वेद-इंस्टीट्यूट ।

\* बन्देजिनधरम् \*

# ॥ धर्म्मसूत्ररसायन ॥

वर्थात्

\* संसार दुःख से सन्तप्त पुरुषोंके अर्थ रसायन \*

ट्रेक्ट नं० ७

\* श्रीकृष्ण दिग्विजयसिंह जी, बीधूपुरा (इटावा) निवासी लिखित \*

और

श्रीजैनतथ्य प्रकाशिनी मभा इटावा की आञ्जानुसार सन्त्री  
चन्द्रमेन जैनवैद्य द्वारा प्रकाशित ॥

प्रथमावृत्ति  
१०,०००

श्रीवीर निर्वाण सम्बत् २४३७

{ बिना मूल्य  
धितति

| विषय सूची                         | पृष्ठ | विषय सूची                                | पृष्ठ |
|-----------------------------------|-------|------------------------------------------|-------|
| १ ज्ञानता का माहात्म्य            | २     | १८१ पापमरव होता ही सुखका कारण है         | ८     |
| २ जैन तत्त्व विषयन किमान्विता     | २     | १८२ समारग सत्यका अभाव और                 |       |
| ३ किम्बदन्तियों, पञ्चनिहनेका कारण | ३     | जीवता आदि निधनय                          | ३     |
| ४ जेनी नागिन नरा है               | ३     | १८३ आत्मा के लान राद                     | १०    |
| ५ जेना दंडोंका शाखा नहीं है       | ३     | १८४ इश्वर के कर्तृत्व                    | ११    |
| ६ जैन तामसार्ग राद है             | ४     | १८५ जीवों का कर्मफल कैसे प्राप्त होता है | १२    |
| ७ जैनियोंकी मूर्ति अणाल नरा है    | ४     | १८६ उत्तर का स्वयं                       | १२    |
| ८ जैनमत वैशेषिक ही मत नही है      | ४     | २० जाव ता इश्वर हो जाता है               | १३    |
| ९ जैनमत क्या है ?                 | ५     | २०१ जेना पञ्चपाता नरा है                 | १४    |
| १० जैनमत कबसे है ?                | ५     | २०२ ईश्वर का उपासना क्यों की जाती है     | १४    |
| ११ जैनमतका विशेष प्रकार क्यों     |       | २०३ हितापदेशका शाप के लक्षण              | १४    |
| नही है या होना                    | ६     | २०४ जवसाप का धर्म                        | १५    |
| १२ अन्य मतार्थनिर्यो कृतजैनधर्मका |       | २०५ पुरुष के रान का हेतु                 | १६    |
| संज्ञा                            | ६     | २०६ निषेध होने की आवश्यकता               | १६    |
| १३ श्यावनाद और उमका उपदेशिता      | ११    | २०७ आम्बाराण और अम्बाराण                 | १६    |

\* घन्देजिनवरम् \*

# धम्ममिहत्त रसायन ॥

मङ्गलाचरण ॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकं ।

प्रधानंसर्वधर्माणां, जैनजयतुशासनम् ॥

प्रियघर मज्जनो ! आपसे विद्वान्, तत्त्वान्वेषी और पक्षपात रहित पुरुषोंकी अज्ञानताके सर्वार्थ कदाचित् हमको यह निवेदन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है कि माहात्म्य । अज्ञानताके कारण वस्तुका अर्थस्वरूप प्रतिभाषित नही होता घरन कभी कभी उससे सर्वथा भिन्न उसके विषयमें मिथ्याज्ञान होजाता है कि जिसके कारण हम उससे यथाचित लाभ नहीं उठासकते । आपमेंसे प्रत्येक ( जिन्होंने कि इङ्ग्लैण्ड का इतिहास पढ़न किया होगा ) शीतलाके टीके ( Vaccination ) के इतिहाससे परिचित होगा कि उन दिनों अपनी अज्ञानताके कारण इङ्ग्लैण्ड वासियोंने किस प्रकार उस परम उपकारक प्रयोगका विरोध किया था और उसके वायिस्कर्त्ता डाक्टर जेनरको किन किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था और उसके विषयमें सर्वसाधारणके मध्य कैसी कैसी मिथ्या किम्बदन्तियां थी एक नहीं घरन शतशः ऐसे ऐतिहासिक और हमारे नित्यप्रतिक अनुभवके उदाहरण दिये जासकते हैं कि जिनमें अज्ञानताके कारण परम उपयोगी पदार्थोंके विषयमें मनुष्योंकी कैसी मिथ्या धारणा रही व रहा करती है और उससे दीर्घकाल पर्यंत यथार्थ लाभ नहीं लिबा जासका और न अबही लिया जाता है । नीतिकारके कहा है कि—

नवेसियोयस्यगुणप्रकर्षं, सतंसदानिन्दतिनात्रचितम् ।

यथाकिरातीकरिकुम्भलब्धां मुक्तांपरित्यज्यविभर्तिगुंजाम् ॥

अर्थात् जो जिसके गुणकी प्रकर्षताको नहीं जानता वह उसकी निन्दा सदा किया करता है । जिस प्रकार भीलनी हाथीके मस्तरके मोतीको छोड़ घुंघुसीको पहिनती है ॥

( चाणिक्यनीति दर्पण )

ठीक यही दशा हमारे इस जैन धर्मके विषयमें हुई और अपनी जैनधर्मके विषय जैनधर्मके विषयमें में अज्ञानताके कारण सर्वसाधारणने दीर्घकालसे इससे यथार्थ लाभ किम्बदन्तियां नहीं उठाया और न अब उठा रहे हैं घरन उसमें इसके विषयमें नितान्त ही मिथ्या अनेक किम्बदन्तियां भी प्रचलित होरही हैं । कोई जैनियोंको नास्तिक कोई बौद्ध धर्मकी मानता, कोई ब्राम्हर्मी और कोई नश्वर अदलील मूर्ति पूजक के रूपमें धर्मका भग तथा इसी प्रकारके अनेक कुत्सित दोषोंसे आरोपित किया करते हैं । परन्तु मित्रो ! विश्वास रखो कि इस प्रचलित किम्बदन्तियोंमें सचमात्र भी सत्यता नहीं है ।

कोई भी कार्य बिना कारण के नहीं होता इस अर्थ हम आपसे यह निवेदन किम्बदन्तियों के प्रचलित होना चाहते हैं कि इन किम्बदन्तियों के प्रचलित होनेका कारण होनाका कारण । क्या है । आपने अनुभव किया होगा कि अन्धकार में रस्सी सर्प प्रतीत होती है । क्यों ? इस कारण कि रस्सी और सर्प में किंचित् आकारकी सदृशता है परन्तु यह अज्ञानका माहात्म्य है कि रज्जु और सर्प की इस सदृशतासे रस्सी को साँप मन्वा देव । इसी प्रकार इन किम्बदन्तियों और जन धर्म में भी कुछ समानता है और यही कारण है कि उसके विषय में अज्ञानता से उपर्युक्त किम्बदन्तियाँ प्रचलित होगईं ॥

क्षमा करिये ! जैनियों का मन्तव्य है और उसपर उनको पूर्ण विश्वास भी है कि जैनी नास्तिक ऐसा कोई ईश्वर नहीं जिसने यह संसार रचा हो जो उसका पालन और नडा है । संसार कर जीवों का उनके शुभाशुभ कर्मों का फल देता हो क्योंकि किसी भी समीचीन युक्ति और न्याय के प्रमाणसे ऐसा ईश्वर कदापि नहीं भिन्न होता । सम्भव है कि इसीसे अनुमान लगा लिया गया हो कि जैनी अर्नाश्वर धारी आदि होनेके कारण नास्तिक है । परन्तु यह अनुमान सर्वथा मिथ्या है क्योंकि जैनी ही ईश्वर का मानने वाले हैं और उस ईश्वर का स्वरूप क्या है तथा उनकी आराधना करनेसे हमको क्या लाभ हो सकते हैं इसका विवेचन यथा स्थान किया जायेगा । जैनी सर्वतः नास्तिक है इस विषय पर हमने एक छोटा लेख "जैनियों के नास्तिकत्व पर विचार", नासक श्री जनतन्त्र प्रकाशनासभा इटावाह द्वारा प्रकाशित देकट में किया है और आप से सविनय प्रार्थना है कि आप उस लेख को निष्पक्ष पढ़कर जैनियों को नास्तिकत्व के कलङ्क से मुक्त करें ।

जैनियों को बौद्धों की आस्था कहना वैसा ही है जैसा कि पुरुष को स्त्री कह देना जैनी बौद्धोंकी आस्था क्योंकि जैन और बौद्धों में आकाश पाताल का अन्तर है । जैनी नडा है । स्याद्धादी और बौद्ध क्षणिकवादी हैं । जैन और बौद्धों का उद्देश्य और खण्डन प्रथक् प्रथक् वेदान्तादि धर्म ग्रन्थों तथा जैन और बौद्ध शास्त्रों में यथाक्रम है । जैन धर्म बौद्ध धर्म से अति प्राचीन और स्वतन्त्र धर्म है यही भूत व वर्तमान के प्रसिद्ध यूरोपीय मैक्समूलर ( Maxmuller ) ओल्डनबर्ग ( Oldenberg ) कप्तान सी० एक्फोर्डलुआई एम० ए० ( Captain O. Eckford Lund M. A ) कोलब्रोक ( Colbroke ) आर्ग० बर्न ( R. Burn ) सर विलियम विलसन एण्टर के० सी० एस० आई० सी० जी० ई० एल० एल० डी० केमब्रिज एम० ए० आक्स फोर्ड ( Sir William Wilson Hunter K.C. S. L.C.G.E.L.L. D. Cambridge M. A. Oxford ) मिस्टर टी० डबल्यू० राई डे बिड Mr. T. W. Rys Davids ) मिस्टर आबे जे० ए० डुवाई ( Mr. Abbe J. A. Dubois ) आदि तथा भारतीय रा० रा० बासुदेव गोविन्द आप्टे बी० ए० इन्दोर लोक मान्य पंडित बाल गंगाधर जी तिलक बा० ए० एल० एल० बी० पुना, पंडित राम मिश्र जी शास्त्री काशी आदि विद्वानों का मत भी है । जैन धर्म को बौद्ध धर्म की आस्था माननेका हेतु कदाचित् यह रहा होगा कि जिस प्रकार जैनी ईश्वरको सृष्टि कर्तादि नहीं मानते उसी प्रकार बौद्धों का भी ऐसा ही विज्ञान है और बौद्ध धर्म के विषय में सर्व साधारण की जैन धर्मने विशेष जानकारी नहीं है ।

वाममार्गी लोग अपनी कामवृत्ति प्रज्वलित करने या किसी अन्य नृशंस हेतु जैनी वाममार्गी से जिस प्रकार नम्र मूर्तियों को पूजते हैं ठीक उससे विरुद्ध संसारसे सर्व-नश्वर हैं। या वीतराग रंजमात्र भी परिग्रह यहाँ तक कि लज्जा निर्वाणार्थ एक लंगोटी भी न रखने वाले यथाज्ञात मुद्राधारी भगवान् सर्वज्ञ देव हितोपदेशक आत्म की प्रतिमा अपने यथार्थ कल्याणार्थ जैनी लोग संसार से वैराग्य प्राप्त होने के अर्थ पूजते हैं। यद्यपि दोनों उद्देश्यों में रंज मात्र भी परस्पर सहानुभूति नहीं है परन्तु किया क्या जाय स्वरूप में तो कुछ एकता है ही और उससे अज्ञानताके कारण जो न अनुमान कर लिया जाय वह न्यून ही है।

हम अपनी स्त्री को अङ्ग में भेटते हैं और अपनी बहिन और माता को भी परन्तु जैनियों की मूर्ति दोनों के भेटने के समय हमारे भाव प्रथक प्रथक होते हैं। माता और अश्लील नहीं है बहिन को भेटने समय हमारे वह काम भाव कदापि नहीं होता जैसा कि स्त्री को भेटने समय होता है। इसी प्रकार वैराग्यताके साथ नम्रता अश्लील और भाव विगाड़ने वाली कदापि नहीं हो सकती जैसा कि वह सांसारिक सराग दशा में हुआ करती है। यदि वैराग्य में नम्रता अश्लील और चित्त विगाड़ने वाली होती तो क्यों श्री महाराज भर्तृहरि जी अपनी वैराग्य शतक में:-

**एकाकीनिस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः**

**कदाशम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनेक्षमः ॥**

दिगम्बरादि होनेकी वाञ्छा करते और क्यों आज कलके डिग्रीधारी विद्वान् मिस्टर के० नारायण स्वामी अथर्व बी० ए० एल० एल० बी० ज्वाइण्ट जनरल सेक्रेटरी थियसोफिकल सोसाइटी मद्रास ( Digambar is the Highest Stage Of the Saint ) दिगम्बरता साधुओं की सर्वोच्चकक्षा है कहते। इस से क्या यह सिद्ध नहीं होता कि जो नम्रता सांसारिक सराग अवस्था में अश्लील और चित्त वृत्ति का विगाड़ने वाली होती है वह वैराग्य दशामें आत्माको पर्यस्त शरीरादि से ध्यान मुडवाकर आत्मस्थ कर देने वाली हो जाती है क्योंकि कारण विशेष से कार्य विशेष की उत्पत्ति न्याय संगत ही है। ऐसी दशा में क्या जैनियों का निग्रन्थ अवस्था के अपने वीतरागी दृष्ट देवों की दिगम्बर मूर्ति का पूजन आक्षेपणीय हो सकता है? कदापि नहीं कदापि नहीं! वरन् सर्वथा कल्याणकारी और योग्य ही है।

यद्यपि जैन धर्म प्राणी मात्रका धर्म है और उसको धारण करनेका किसीको जैनगन वैश्यका निग्रन्थ नहीं तथापि विशेषतः वह क्षत्रियों का धर्म है। जिस प्रकार ही मत नहीं है। क्षत्रिय वर्ग अपने स्नेहन और बल वीर्य की विशेषता से अपने सांसारिक शत्रुओं को परास्त करने में विशेष उद्योग शाली और प्रबल हुआ करते हैं उसी प्रकार तब अपने कर्म शत्रुओं का सर्वथा उन्मूलन करके निज आत्मा को शुद्ध करने में भी विशेष समर्थ होते हैं। यदि आप जैन शास्त्रों का स्वाध्याय करें तो आप जो इसमें लक्षणा प्रतीयेंगे जायेंगे। ग्रन्थालयों के ग्रन्थों में जो विशेषतः इतिहास के प्रकरण हैं आप को आर्याभट्टादि के जैनी होने के निष्पक्ष इतिहास मिलेंगे और अब भी भूगर्भ से जहाँ तहाँ निकली हुई क्षत्रिय राजाओं द्वारा प्रति-



छित जैन प्रतिमाओं की न्यूनता नहीं है और अभी वह निकलती ही जाती हैं। प्रति कल्पमें दोबार जो (६३) निरेसठ शलाका पुनः अर्थात् चौबीस तीर्थंकर बारह चक्रवर्ती नवनारायण, नव प्रतिनारायण और बलभद्र होते हैं यह क्षत्रिय ही होते हैं। जैन मत का वैश्यों का ही मत मानने में कदाचित् यह कारण लगा होगा कि वर्तमान वैश्यों की ही इस धर्म में अधिकता पाई जाती है। यद्यपि यह सत्य है तथापि अब भी इस में ब्राह्मण क्षत्रियादि का अभाव नहीं है।

इसी प्रकार आप कुछ भी बुद्धि से काम लेने पर जैन मत के विषय में अन्य किम्बदन्तियों का भी समाधान कर सकते हैं और विचार सकते हैं कि अज्ञानता क्या क्या अनर्थ करके मनुष्यों को किस प्रकार टग लिया करती है।

जैन मत के विषय में प्रचलित किम्बदन्तियों का इस प्रकार समुचित समाधान हो जाने पर यह सहज ही प्रश्न उठते हैं कि जैन मत क्या है और कब से है ? इस कारण हम इन प्रश्नों का भी संक्षिप्त उत्तर देते हैं।

जैन मत वह मत है कि जो जीवों के अनादि मिथ्यात्व या लुप्तता और अपने जैनमत स्वरूप का सच्चा ज्ञान कराकर अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त धर्म और क्या है? अनन्त सुख को प्राप्त कराकर मन्दैव के अर्थ परमात्मत्त्व पद ( मोक्ष ) में प्रतिष्ठित करा देता है और केवल यही वह मत है कि जिसमें ही उपर्युक्त पद प्राप्त हो सकता है।

प्रत्येक ही मत अपनेको अनादि और श्रेष्ठ कहा करते हैं परन्तु अनादि और श्रेष्ठ जैनमत वही है कि जिससे प्राचीन और उत्कृष्ट दूसरा धर्म न हो। आप पर यह अन्तर्ध्वंस है? प्रगट न होगा कि यथार्थ ( असल ) पदार्थ की ही प्रतिवृत्ति ( नकल ) की जाती है इस कारण यथार्थ पदार्थ प्रथम और प्रतिवृत्ति उसके पश्चात् की होती है और प्रतिवृत्ति में वह निर्दोषता और सर्वज्ञ सुन्दरता कदापि नहीं हो सकती जो कि यथार्थ पदार्थ में होती है। ऐसा स्वीकृत हो जाने पर यह निर्णय करने में कोई कठिनाता न रह जावेगी कि कौनसा धर्म अनादि और कौनसा सादि है। प्रत्यः सर्व ही धर्म "अहिंसा परमा धर्मः", की डोडी पीटते हैं परन्तु गडबडी इस बात में है कि अहिंसा यथार्थ में वस्तु क्या है अन्य मतों के प्ररूपे अहिंसा के लक्षण में अव्याप्ति अति व्याप्ति और असम्भव दोष लगते हैं इन कारण वे यथार्थ नहीं परन्तु जैन मत का ही किया हुआ "प्रमत्त योगान् प्राणव्यपरोषणं हिंसा, यह हिंसा का लक्षण निर्वाच्य सिद्ध होता है और इससे सर्वथा वचना यह अहिंसा हुई और विशेष इसमें साक्षात्कार और उत्कृष्ट सरल लक्षण किया ही नहीं जा सकता। इसी प्रकार यदि आप और भी सिद्धान्त का दावा को मिलाइयेगा तो आप से यह गुप्त न रह सकेगा कि जैन मत ही यथार्थ पदार्थ है और दूसरे धर्म उसके एक देश प्रतिवृत्ति मात्र और जैन धर्म ही अनन्त धर्मात्मक वस्तु के सर्व भेद कहता है और दूसरे मत केवल एक ही मात्र। अतः स्वतः सिद्ध होगया कि जैन मत ही अनादि उत्कृष्ट और यथार्थ धर्म है और दूसरे धर्म उसके केवल एक देश प्रतिवृत्ति। इस का भय है कि आप इस को अनुचित समझें परन्तु विश्वास रखिये कि यह एक नहीं चरण और भी बीसियों युक्तियों से सिद्ध किया जा सकता है और जब आप स्वयम् निर्णय करने पर कटिबद्ध होंगे तो यह आप से कदापि अग्रगट नहीं रह सकेगा। हमारी इच्छा तो यही है कि आप स्वयम् इस विषय की सत्यता जान लीजिये अभी तो जैन मत आप को हटा वनलाया गया है इसी लिये आप उससे भय भाव से रहकर अपना यथार्थ कल्याण नहीं करते ॥

जब जैन मत ऐसा यथार्थ सर्वोत्कृष्ट, अक्षय अनन्त सुख देने वाला, वस्तु स्व-जैनमतका विशेष प्रचार रूप प्ररूपक और अनादि है तो क्यों नहीं प्रत्येक मनुष्य उसको क्यों नहीं है या होना धारण कर सुख की प्राप्ति कर लेता? यदि सर्वसाधारण अपनी अज्ञता से उसको न जानकर धारण न कर सकें तो न सही पर क्यों नहीं सर्व बड़े बड़े विद्वान् जो कि निष्पक्ष होकर सत्य के ग्रहण करनेमें सर्वदा सचेष्ट रहते हैं उसका धारण करलेते? ऐसा प्रश्न उपाखित होनेपर उत्तर यह है कि (१) प्रत्येक कार्य के लिये दो कारणों की आवश्यकता हुआ करती है एक उपादान और दूसरा निमित्त बिना इन दोनों कारणों के कोई भी कार्य नहीं होसकता। अतः जैनी होनेरूप कार्य के लिये भी इन्हीं दो कारणों की आवश्यकता है जिनमें कि उपादान कारण तो आत्मा और निमित्त उपदेशादि की प्राप्ति है।

संसारि जीवों के अनादि काल से ही विशेषतः एक ऐसी मिथ्या वासना लगी है कि जो जीवोंको अपने यथार्थ स्वरूप, सुख और उसके प्राप्त करनेके उपायका श्रद्धान नहीं हानेदेती। यदि बलवान् निमित्त मिले तो वह भव्य जीवों की इस मिथ्या वासना को प्रथक कर सकता है। अत्यन्त खेद का विषय है कि निमित्त का प्राप्त होना का क तालीय न्यायवत् अतिव दुस्तर है यदि किन्ही के अन्तरङ्ग में पुण्य कर्मका निमित्त भी हो परन्तु बाह्य उपदेशादि की प्राप्ति न हो तो वह भी सच्चे धर्म की प्राप्ति करानेमें कदापि समर्थ नहीं हो सकता। जब उपादान और निमित्त दोनों ही प्रबल हों तब ही सर्वोत्कृष्ट जैन धर्म की प्राप्ति हो सकती है। बाह्य निमित्त न प्राप्त होनेमें एक तो वर्तमान पंचम काल और बहुत कुछ हमारे जैन भाइयोंका प्रमाद मुखता और वेहद बड़ा हुआ शास्त्र आदि का विनय भी कारण भूत है। यदि हमारे जैनी भाई जरा भी उद्योग करें तो बहुत से सज्जन पुरुषों का जैन धर्म धारणकर अपना सच्चा कल्याण करनेका निमित्त प्राप्त होसकता है। (२) जीवों को विषय भोग ही विशेषतः रुचिकर होता है और जैन धर्ममें इसका अभाव है अतः लोगोंकी रुचि जैन धर्मकी ओर नहीं होती। (३) जैनियोंका क्रिया काण्ड और आचरण इतना कठिन है कि स्वच्छन्दतासे भवतेन वाले जीव उससे घबडाकर इसको धारण नहीं करते। (४) जैन धर्म संसारका पोषक नहीं वरन क्षयकारक है और हमारे सभ्यगण (Gentlemen) जिन्होंने कि संसारकी उन्नति करनेको ही अपना परम पुरुषार्थ समझ रक्खा है और अपनी इस धुनिमें जो मोक्षादिको भी कुछ नहीं समझते इस ओर नहीं झुकते। (५) जैन शास्त्रोंका तत्व कथन इतना सूक्ष्म और कठिन है कि बिना भलीभांति किसी जैनी गुरु द्वारा नय प्रमाणादि जाने समझ में नहीं आता और इसके विषयमें इतनी मिथ्या किश्वदन्तियां प्रचलित हो रही हैं कि लोग इसको तुच्छ समझकर इस ओर ध्यान नहीं देते और यदि देते भी हैं तो आयु कायादिके निरर्थक विवादों में फंसकर तत्व चर्चाके समझने में सर्वथा असमर्थ रहकर जैन धर्मका स्वरूप ही नहीं जान पाते इत्यादि अनेक कारण हैं जो कि जैन धर्मके प्रचारमें बाधक हो रहे हैं।

जैन मत का बिना यथार्थ स्वरूप समझे अन्य मताबलम्बी बड़े बड़े धुरन्धर श्रम्य मताबलम्बियों वृत्त आचार्य और विद्वान् नामधारी सज्जनों ने जो जैन मतका खण्डन जैनधर्मका न्यूनन। किया है उनको देखकर बिना हंसी आये रह नहीं सकती और

मुंह से बलान यही निकलजाता है कि यद्यपि यह खण्डन खण्डन नहीं है परन्तु नवीन मत चलते या अपने पक्षका खण्डन करते अन्य सर्व मत और पक्षोंके खण्डन करने की रीति है इस कारण जिस तिस प्रकार यह प्रथा पूरी की गयी है ।

मित्रो ! इसको हमारी मन गदन्त कल्पना हीन समझिये वरन स्वयम् जांचकर इसकी सत्यता का अनुभव कर लीजिये ॥

वस्तुयें अनन्त धर्मात्मक हैं और वाणी या लेखनीय यह शक्ति कदापि नहीं कि वह स्याद्वाद और उसकी प्रत्येक धर्मको युगपत् प्रकाशित कर सके इस कारण सदैव एक काल उपयोगिता ।

मैं एक धर्म को मुख्य और अन्य सर्व धर्मों को गौणकर वस्तु के गुण का प्रकाशन किया जाता है और इसी कारण जैन धर्म में कथंचित या स्यात् पदका उपयोग किया गया है क्योंकि जिस समय किसी वस्तु के किसी गुणका कथन किया जाता है तो उस कथित गुण के अनिरिक्त और भी गुण उस वस्तुमें हैं । इस कथंचित पद के प्रयोग वा स्याद्वाद के कारण मायः जैनियों को यह दूषण दिया जाता है कि उनको किसी भी तत्व पर पूर्ण विश्वास नहीं है या उनका ज्ञान अपूर्ण है और इसी कारण उन्होंने यह वाग्जाल प्रथा अपने प्रयोजन सिद्धार्थ आबिष्कृत की है सज्जनो ! आप भली भाँति विचार सकते हैं कि उपरोक्त पद इस कारण व्यवहृत किये जाते हैं कि जिससे वस्तुका एक गुण कथनसे उस वस्तुमें उसके अन्य समस्त गुणों का अभाव न समझ लिया जाय । दृष्टान्तार्थ आप एक मनुष्य में ही देखिये कि उसमें कितने प्रकार के सम्बन्ध हैं । वह पिता है पुत्र है, मामा है, भान्जा है, साला है, बहनोई है, शत्रु है, मित्र है, गुरु है, शिष्य है और इसी प्रकार और भी बहुत कुछ है, यदि यह कहा जाय कि वह पिता है तो उसमें और सब सम्बन्धों का अभावसा प्रतीत होता है और इसी हेतु जैनी इस प्रकार कथन करते हैं कि किसी प्रकार वह पिता है अर्थात् अपने पुत्रका ही वह पिता है और सर्वका नहीं और पिता होते सन्ते भी वही मनुष्य अपने पिता का पुत्र भी है और इसी रीतिसे सर्व सम्बन्ध आप उसी मनुष्यमें घटा लीजिये जो कि सर्व अपनी अपनी अपेक्षा उसीमें बनजावेंगे । इसी प्रकार और सर्व वस्तुयें भी अनन्तधर्मात्मक सिद्ध होसکتी हैं और उनके एक गुणका प्रकाशन होनेपर उनके अन्य गुणोंका अभाव उनमें सिद्ध न होजाय इसी कारण स्यात् या कथंचित् पदका व्यवहार किया जाता है और आप विचार करसक्ते हैं कि यह कितना उपयोगी है । अनेक सज्जन यह भी जैनियोंका दोष देते हैं कि वह एक ही पदार्थमें दो विरोधी गुण भी मानते हैं और इसी लिये व्यास जीको जैनियोंका खण्डन करनेके लिये “नैकस्मिन्नसम्भवात्, सूत्र गढ़ना पडा । मित्रो ! किया क्या जाय वस्तुओंमें अनन्त गुण कुछ जैनियोंने उत्पन्न नहीं किये वरन् वह अनादि निधन हैं । जैनी केवल उन गुणोंको कथन करते हैं कुछ उस वस्तुमें गुण उत्पन्न नही करते । जैसे जिस वस्तुमें गुण है वैसे ही वह कथन करते हैं न्यूनाधिक नहीं । यदि किसी वस्तुमें अपेक्षासे विरोधी गुण भी हैं तो जैनी उन गुणोंको भी अवश्य प्रकाशित करेंगे । आप स्वतः देख लीजिये कि यद्यपि बड़ा और छोटा परस्पर दो विरोधी गुण हैं परन्तु वह प्रत्येक पदार्थ में ही पाये जाते हैं—वह पदार्थ बड़ा भी है और छोटा भी अर्थात् अपनेछोटेसे बड़ा और अपने बड़ेसे छोटा ॥

इसी भांति आप प्रत्येक विरोधी गुणको भी अपेक्षासे घटा लीजिये । विरोधी गुणका दूषण उस समय आता जब कि जैनी एक ही पदार्थ या गुण से उसको बड़ा छोटा दोनों कहते वह तो प्रथक प्रथक पदार्थ और अपेक्षाओं से उसे कह रहे हैं इस कारण यह दूषण नहीं वरन भूषण है । स्थाली पुलाक न्यायसे आप भलीभांति समझ सकते हैं कि स्याद्वादसे ही वस्तुका यथार्थ स्वरूप निरूपित किया जासक्ता है अन्य प्रकार कदापि नहीं और जैनी ही उसको मानने से वस्तुका यथार्थ स्वरूप कह सकते हैं अन्य केवल उसका एक देशमात्र यथा दृष्टान्त है कि छः जन्मसे ही अन्धे पुरुष हाथीके स्वरूपका निर्णय करनेका उद्यमी हुं । देवयोग से कोई हाथी वहांपर प्राप्त हुआ और उन अन्धोंमेंसे एकने हाथी की सूंड पकड़ी, दूसरेने कान, तीसरेने पूंछ, चौथेने टांग, पांचवेंने पेट और छठवेंने दांत पकड़ा । वहांसे लौटने पर वह आपसमें झगड़ने लगे क्योंकि सूंडवाला हाथीको मूमन्वाकार, कानवाला सर्पाकार, पूंछवाला रज्ज्वाकार, टांगवाला स्थम्भाकार, पेटवाला विटोराकार, और दांतवाला दण्डाकार कहता था । एक दृष्टिवाला बुद्धिमान् पुरुष वहां आनिकला और विवादका कारण जानकर उनसे कहने लगा कि मित्रो ! व्यर्थ मत लड़ो क्योंकि तुम सब किसी प्रकार सच्चे हो परन्तु तुममें दोष यह है कि हाथीके केवल एक एक अङ्गोंको ही देखकर तुम उसको हाथी कह रहे हो परन्तु वास्तवमें तुम सबके कहे हुये अङ्गोंका समुदाय ही हाथी है, यदि तुम इस प्रकार कहो कि हस्ती किसी प्रकार ऐसा भी है तो तुम्हारा कथन युक्त हो सकता है परन्तु तुम तो यह मान रहे हो कि हाथी इस प्रकार ही है और इसी कारण इसका यथार्थ स्वरूप नहीं जान पाते । ठीक यही दशा जैन धर्म और दूसरे धर्मों की है । जैन धर्म स्याद्वादसे वस्तुका यथार्थ स्वरूप निर्णय करलेता है और अन्य धर्म अपने एकान्त वादसे उसका एक देश मात्र जान पाते हैं ॥

मित्रो ! इस प्रकार स्याद्वादका संक्षिप्त स्वरूप आपको दिखलाया गया और आपने देखा होगा कि लोगों ने इसको कैसा उल्टा समझा और इसी प्रकार जैन धर्मके यथार्थ स्वरूप को भी । अतः हम वाध्य हुये हैं कि आपको जैन धर्मका संक्षिप्त परन्तु यथार्थ स्वरूप दिखलावें ॥

इस संसारमें दो प्रकारके पदार्थ देखे जाते हैं एक चैतन्य और दूसरे जड़ आत्मरथ होना ही मुखका कारण है । जिनमें कि चैतन्य गुण सम्पन्न जीव और जड़ पद्मगल, धर्म, अधर्म, काल और आकाश हैं । इन छः पदार्थोंमें पांच तो अमूर्तीक और मूर्तीक केवल एक पुद्गल ही है क्योंकि उमीमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण है । यह छहो द्रव्य अपने अपने स्वरूप और परणतिसे स्वतन्त्र भिन्न भिन्न

और अनादि निधन हैं। यद्यपि जीव मात्र जाति अपेक्षा एक हैं तथापि व्यक्ति अपेक्षा पृथक् हैं सर्व जीव सुख हं चाहते हैं और उसीके अर्थ उनके सारे प्रयत्न हुआ करते हैं। सांसारिक जीवोंको विशेषतः न तो यथार्थ सुखके स्वरूपका ही ज्ञान है और न उसके प्राप्त करनेका उपाय ही और यदि उपरोक्त दोनों विषय ज्ञात भी हैं तो उस सुखके प्राप्त करनेका उचित उपाय वह नहीं करते या उनसे नहीं बनता इस कारण उनको सुख नहीं प्राप्त होता। सुख यद्यपि जीवका निज स्वभाव ही है और उसकी प्राप्ति आत्मस्थ होनेपर ही होसकती है तथापि जीव अपने अज्ञान वशात् जो कि अनादि कालसे उसमें तीव्र मोहकी प्रचलता होनेसे अपना स्वरूप और शक्ति भूल जानेके कारण पर वस्तु पुद्गल की एक पर्याय ज्ञानावरणादि कर्मोंके जिसका कि आश्रय जीव में उसके विभाव राग द्वेषादि परणति से होकर एक क्षेत्रावगाही सम्बन्ध होनेके कारण उत्पन्न हुआ है। सातावेदनी नामक कर्मके उदयसे प्राप्त स्त्री, पुत्र राज्य ऐश्वर्यादि जो कि यथार्थमें न तो सुखके देनेवाले हैं और न दुःखके देनेवाले हैं परन्तु कर्मोदयसे वैसे भासित होते हैं—क्षण भंगुर सर्वदा एक रस न रहने वाले पदार्थोंमें जानता और उसकी प्राप्ति के अर्थ उचित अनुचित उपाय किया करता है और इसी कारण उसको प्राप्त नहीं करसक्ता और प्राप्त भी कहाँसे करे जबकि सुख तो उनमें नाम मात्र को भी नहीं है क्योंकि यदि होता तो जिन जिनको उपर्युक्त सामिग्री प्राप्त है वे वे सर्व सुखी हुये होते वरन प्रत्यक्ष देखा जाता है कि वे सुखी नहीं हैं। यदि आपको इसका विश्वास न हो तो आप उपर्युक्त सामिग्री वालोंकी यथार्थ दशा देखकर इसकी सत्यताका अनुभव करलीजिये। रहा इस प्रश्नका समाधान कि यदि साता वेदनीकर्म द्वारा प्राप्त सामिग्रीमें सुख न होता तो क्यों जीव उसमें सुख मानता सो इसका उत्तर यह है कि यथार्थ में इन पदार्थोंमें सुख नहीं है परन्तु जैसे लूपा और ग्रीष्मसे अत्यन्त संतप्त मृग भ्रमसे प्रचण्ड सूर्यके आतापके कारण चमकती बालू आदि शुष्क पदार्थोंमें भी जलकी भावना कर भटका भटका फिरता है तैसे ही यह जीव निज विभाव रूप विषय सुखकी आकुलतासे इन सांसारिक पदार्थोंमें सुखकी प्राप्ति मानकर हापटा मारता है परन्तु सुखको कदापि नहीं प्राप्त होसक्ता ॥

हम समझते हैं कि चार्वाकादिक नास्तिकोंके अतिरिक्त जो कि जीव, ई-संसारमें सुखका अभाव और श्वर, परलोक, पाप पुण्यादि अदृष्ट पदार्थोंका अस्तित्व जीवका अनादि निवन्तव । नहीं मानते और कोई भी मत ऐसा नहीं है कि जिसने इन सांसारिक विषयोंमें सुख माना हो और जिन जिन मतोंमें ईश्वरसे चक्रवर्त्यादि सांसारिक विभूतियोंकी मांगना सिखलाया गया है वह मत भी अन्तमें इन

क्षणभंगुर प्राकृतिक पदार्थोंसे चित्त हटाकर सुखकी प्राप्ति के लिये ईश्वरका ध्यान करने ( आत्मस्थ होने ) का उपदेश करते हैं । रहे चार्वाकादिक जो कि जीव का पंच तत्वों के ही मेलसे उत्पन्न हुआ मानते हैं और स्वर्गादिकका अस्तित्व भी स्वीकार नहीं करते जैसा कि उनका वचन है कि:—

नस्वर्गो नः प्रवर्गो वा, नैवात्मा पारलौकिकः । नैववर्णाश्रमादीनां, क्रियाश्च फलदायिकाः

और इसी लिये:—

यावज्जीवं तसुखं जीवत् । ऋणं कृत्वा घृतं पिवत् । भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः

Eat Drink and Be Merry अर्थात् खाओ, पिओ और खुश रहो इत्यादि स्वच्छन्द प्रवर्तनेका उपदेश देते हैं उनका भी पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाशके परस्पर मेलसे भिन्न जीव कोई प्रथक ही वस्तु मानना पड़ेगी क्योंकि:—

पाँचो जड़ ये आप हैं, जड़से जड़ही होय । गुड़ आदिकसे मद भयो, चेतन नाहीं सोय ॥ भुजल पावक पवन नभ, जहाँ रसोई जान । क्यों नहिं चेतन ऊपजे, यह मिथ्या अद्वान

और जब जीव स्वतन्त्र तत्त्व सिद्ध होगया तो उसको अनादि और नाश रहित मानना पड़ेगा इस अर्थ कि:—

बालक मुखमें घन की लेय । दाबै आँखे दूध पियेय ॥

जो अनादिको जीव न होय । सीख बिना क्यों जानै सोय ॥

मरके भूत होंगे जे जीव । पिछली बातें कहैं सदीव ॥

सिर चढ़ि बालैं निज घर आय । तारैं जीव अमर ठहराय ॥

और जब जीव अनादि और अमर सिद्ध होगया तो उसको किसी न किसी योनिमें रहना ही पड़ेगा और उसकी प्राप्ति के कारण कर्म अर्थात् पाप पुण्यादि ही होंगे और जब पाप पुण्यादि माने तो स्वर्ग, नर्क और मोक्षसे इन्कार नहीं किया जा सकता । इस प्रकार सर्व ही अदृष्ट स्वीकार होजाने पर सांसारिक विषय भोगके पदार्थ कदापि सुखद नहीं होसके ॥

जीव तो सुखकी प्राप्ति आत्मस्थ होनेपर ही हासिल करे परन्तु जैसे रक्तका अभिलाषी स्वान बहुत कालसे निकृष्ट स्थानोंपर पड़ी हुई रक्तमांस रहित आत्माके श्लेष्मक अस्थिमें रक्तादिकी भावना कर उस अस्थि को निज सुख द्वारा चावता है और उसका कोना चुभ जाने से जो उसके मुखसे रुधिर बहता है उस रुधिरको वह उस अस्थि द्वारा प्राप्त मान उस अस्थि विषे विशेष प्रीतिमान होता है उसी प्रकार जो जीव अपनेमें सुख रहते सन्ते भी परपदार्थ सांसारिक विषयोंमें सुख मानता है और उन पदार्थों विषे प्रीति करता है और जो पदार्थ उसके बाधक समझता है उन प्रति द्वेष करता है उसको बहिरात्मा कहते हैं । जिन जिन जीवों को यह पूर्ण विश्वास होगया है कि इन ब्राह्म

सांसारिक पदार्थोंमें सुख नहीं है वरन् सुख आत्मामें ही है और उसकी प्राप्ति आत्मस्थ होनेपर ही होसकती है और ऐसा जान और मानकर जो सुखकी प्राप्ति के अर्थ आत्मस्थ होंगे हैं या आत्मस्थ होनेका यत्न कर रहे हैं वे जीव अन्तर्मात्मा कहाने हैं। आत्मस्थ होकरके ही जिन जीवोंने अपने सुखादिकों न प्रगट होने देने वाले कारणों का अभाव कर पूर्ण सुखादिकी प्राप्ति करली है उनकी परमात्मा संज्ञा है। आपने देखा होगा कि एक ही आत्माकी उसके गुणानुसार यह तीन संज्ञा हैं और यह जीव ही परमात्मा होजाता है ॥

अब कि यह जीव ही अपने स्वाभाविक गुण अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त ईश्वरका वीर्य और अनन्त सुखके चतुष्टयका प्राप्तकर परमात्मा होजाता है तो कर्तृत्व मेंपाधि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिक नय जो कि पर्यायको गौणकर शुद्ध द्रव्य को ही ग्रहण करती है या द्रव्यनिक्षेप यथा राजपुत्रको राजा कहना द्वारा यह जीव वर्तमानमें भी परमात्मा या ईश्वर है क्योंकि यदि न होता तो असत्की उत्पत्ति यथा आकाशसे पुष्प न होनेसे यह कदापि ईश्वर न होसकता। इस जीव (ईश्वर) ने अपने अनादि रागद्वेषादि विभावोंके कारणसे अपना संसार (कर्मानुसार चतुर्गति परि भ्रमण) सदैवसे स्वयम् ही उत्पन्न कररक्खा है और वह ही इसका पालन करता है और वह ही मोक्ष प्राप्त होनेपर इसका विनाश करदेता है इस दृष्टिसे कहा जाता है कि ईश्वर संसारका उत्पन्न, पालन और संहार करता है। सम्भाव है कि जैसे हाथीका एक ही अङ्ग देखने वाला उस अङ्गको ही हाथीका सम्पूर्ण स्वरूप कहना था इसी प्रकार यथार्थ वस्तु स्वरूपको न जानने वाले लोगोंने उपर्युक्त कर्तृत्व देखकर यह अनुमान लगा लिया हो कि ईश्वर ही सर्व संसारका उत्पन्न, पालन और संहार कर्ता है। एकान्त बादस ऐसा कदापि सिद्ध नहीं होसकता क्योंकि प्रथम तो जीवसे भेष कोई विशिष्ट आत्मा ऐसा ईश्वर ही किसी व्यायके प्रमाण ब समीचीन युक्तिसे प्रमाणित नहीं होता और द्वितीय जब साइन्सका सिद्धान्त है कि Nothing is destroyed and nothing is produced न तो कोई वस्तु नाश होती है और न कोई उत्पन्न ही होती है तब सर्व संसारका कर्ता कोई ईश्वर उस समय माना जावे जब कि कोई ऐसा भी काल सिद्ध होजाय कि जब इस संसारका अभाव रहा हो। प्रायः कर्तावादी इसके उत्तरमें यह कहते हैं कि कोई भी वस्तु बिना कर्ताके नहीं बनसकती इससे इन सर्वका निर्माता कोई कर्ता ईश्वर अवश्य है और प्रत्येक ही वस्तु पर्यायान्तर हुआ करती है इससे यह सिद्ध होता है कि किसी समयमें यह संसार प्रलयकी भी दशामें रहा होगा। प्रत्युत्तरमें निवेदन है कि जब प्रत्येक ही वस्तुको अपने कर्ताकी आवश्यकता है तो आपका केवल ईश्वर या ईश्वर जीव और प्रकृति यह तीन पदार्थ ऐसे हैं कि जिनको सृजानेकी कोई आवश्यकता नहीं है तथा जब प्रत्येक ही वस्तु पर्यायान्तर हुआ करती है अर्थात् अपने एक स्वरूपको त्यागकर अन्य स्वरूप ग्रहण करलेती है और इसी प्रकार करती रहती है तो फिर वह प्रलय कालमें जो कि रट्टि काल के समान ही है कारण रूपमें होकर अपनी बेकार सुषुप्ति अवस्थामें पड़ी रहती है इन कथनोंसे बढ़कर और कौन से कथन असंगत होसकते हैं इत्यादि अनेक दूषण प्राप्त होते हैं कि जिससे जगत कर्तादि ईश्वर है ऐसा कदापि नहीं सिद्ध होता।

हमारे अनेक भिन्न धर्मावलम्बी भ्राताओंका ऐसा विश्वास है कि जीव कर्म कर्मोंको फल देनेमें तो स्वतन्त्र है परन्तु फल भोगनेमें परतन्त्र है और इस कारण कैसे प्राप्त होता है कि कर्मोंको यह ज्ञान नहीं कि हमको कैसा फल देना है और जीव

पाप कर्मको करके उसका दण्ड भोगना नहीं चाहता परन्तु उसको भोगना ही पड़ता है इस कारण सिद्ध हुआ कि कोई कर्म फलदाता ईश्वर अवश्य है। उपर्युक्त कथन प्रमाण बाधित और युक्ति शून्य है क्योंकि यदि किसी ईश्वरको कर्मफलदाता मानिये तो जीव कर्म करनेमें भी कदापि स्वतन्त्र नहीं होसका। दृष्टान्तार्थ किसी जीवने कोई ऐसा कर्म किया है कि जिसका फल यह होना है कि उसका धन नष्ट होजाय या कोई अन्य दुःख उसको प्राप्त हो, ऐसा होनेमें कोई ईश्वर साक्षात् आकर तो कर्म फल देता ही नहीं वरन किसी अन्यके द्वारा ही दिनाता है। मान लीजिये कि ईश्वरने किसी चोरको भोजकर उसका धन खुरवा लिया या अन्य किसी के द्वारा कुछ कष्ट दिलवाया जिससे कि उस जीवको उसके कर्मका फल प्राप्त हुआ। यद्यपि चोर या अन्य कोई कर्म फल दाता ईश्वरका आदेश पालनेसे सर्वथा निर्दोष है परन्तु उसको भी दण्ड मिलता ही है। संसारमें राजाके सबकको राजा-मानुसार अपराधीको दण्ड देनेसे किसी प्रकारका कोई दण्ड नहीं मिलता परन्तु ईश्वरका कार्य करने वालेको मिलता है इससे सिद्ध हुआ कि कोई न्यायकर्ता ईश्वर नहीं। जो जो जीवोंको कर्मफल मिलते हैं वे वे किरायेके निमित्त द्वारा ही प्राप्त होते हैं और वे वे निमित्त या तो किसी न किसी जीवके कार्य हैं या पुद्गल (प्रकृति) की कोई क्रिया ही। यदि कर्मफल प्राप्त होनेमें जीवोंकी या प्रकृतिकी वे वे क्रियाएँ ईश्वराधीन मानिये तो न जीव कर्म करनेमें ही स्वतन्त्र होसकता है और न पुद्गल ही अपनी क्रियामें इस कारण कोई कर्मफल दाता ईश्वर नहीं। अब रहा इस प्रश्नका समाधान कि कर्मजड हैं और उनको इसका ज्ञान नहीं कि हमको क्याक्या फल देना है तो वह किस प्रकार फल देने हैं सो इसका उत्तर यह है कि जड पदार्थोंमें भी स्वयंस्व कार्य करनेकी शक्ति है। उदाहरणार्थ मय जिसमें कि जीवको उन्मत्त करनेकी शक्ति और जीवमें उन्मत्त होजाना जिस समय जीव और मयका संयोग होजाता है उस समय मयका उन्मत्तता कर्मवाला गुण जीवमें आजाता है और जैसा जैसा बाह्य निमित्त उसको प्राप्त होता जाता है तदनुकूल उत्पत्ति उस उस प्रकार होती जाती है। उसी प्रकार परवस्तु पुद्गलके अनादि संयोगके कारण अपने रागद्वेषादि विभावको प्राप्त हुआ जीव जलमय में पूर्ण कामीण वर्मणाओंके पुद्गलको अपनी ओर खींचकर निजका प्रशोधादि कपायालुसार उनको ज्ञानावस्थादि रूप उसी प्रकार परिणामात्मक जीविक अर्थिक संयोगमें उष्णत्वको प्राप्त हुआ लाहेका गोला जलको अपनी ओर खींचकर बाष्प रूपमें देता है। जीवके और कामीण वर्मणाओंके एक क्षेत्रावस्थाही सम्बन्ध होनेका वन्ध कहते हैं। ये वन्ध अवस्थाका प्राप्त पुद्गल कथा-यानुसार जीव या मन्द रज ( फल ) देनेको समर्थ होने हैं और जैसा जैसा बाह्य निमित्त प्राप्त होताजाता है तदनुकूल जाय वैसा वैसा परिणामकर अपने भावकर्म द्वारा नवीन नवीन अन्य कर्मों का वन्ध करता जाता है जोकि उसके पूर्व किये हुये कर्मोंके फल स्वरूप भी है। यदि बाह्य निमित्त प्राप्त न हो या यदि बाह्य निमित्त भी प्राप्त हो परन्तु कर्मरज देनेको स्वताम न हो तो कदापि कर्म उदयको प्राप्त नहीं होसकता जिस कि मोक्ष या कि पुर्व कर्मका फल स्वरूप है अपना रस देनेको उत्पन्न हो परन्तु उसको कोई ऐसा निमित्त न प्राप्त हो जिससे कि वह अपना फल देसके तो वह कदापि उदयको नहीं प्राप्त होनका और उसा प्रकार यदि किसीको क्रोधिन होनके बाह्य निमित्त भी मिले परन्तु उस समय क्रोध सत्ताम न हो तो भी वह उदयमें नहीं आसकता। कर्मफल प्राप्त होनेमें स्वतः निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध बन रहे हैं जिनसे कि किसी ईश्वरको कोई आवश्यकता नहीं है।



अब कि ईश्वर अन्य मतोंके समान सृष्टिकर्तादि नहा है तो वह कैसा है ? ऐसे ईश्वरका प्रश्नके उत्तरमें निवेदन है कि वह कर्म मल रहित शुद्ध जीव है जो कि अब स्वरूप अपने यथार्थ स्वभाष होनेके कारण सर्वज्ञ होगया है और जिसमें कि क्षुधा, तृषा, भय, जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक, रति, अरति, विस्मय, जेद, स्नेह, म, निद्रा, रागद्वेष और मोह ये अठारह दुषण नहीं रहे यथोक्तं च:—

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोक्यमात्राधिकृतं ।

साक्षाद्देयं यथा स्वयं करतले रेखात्रयं सांगुलि ॥

रागद्वेषभयामयान्तकजरालोलत्वलोभादयो ।

नालं यत्पदलघनाय स महादेवो मया वन्द्यते ॥

बा जो अब ऐसा विशिष्ट आत्मा होगया है कि जो:—

न द्वेषी है न रागी है सदानन्द वीतरागी है । वह सब विषयोंका त्यागी है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ १ ॥ न सुद घटघटमें जाता है मगर घटघटका ज्ञाता है । वह सब बातोंका ज्ञाता है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ १ ॥ न करता है न हरता है नहीं औतार धरता है । मारता है न मरता है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ २ ॥ ज्ञानके नूरसे पुरनूर है जिसका नहीं सानी । सरासर नूर नूराणी जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ३ ॥ न क्रोधी है न कामी है न दुष्मन है न हामी है । वह सारे जगका स्वामी है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ४ ॥ वह जोन पाक है दुनियाके झगड़ोंसे मुबरी है । आलिमुल गैव है वे एव ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ५ ॥ दयामय है शान्ति रस है परम वैराग्य मुद्रा है । न जाविर है न काहिर है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ६ ॥ निरंजन निर्विकारी है निजानन्द रस विहारी है । सदा कल्याणकारी है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ७ ॥ न जग जंजाल रचता है करम फलका न दाता है । वह सब बातोंका ज्ञाता है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ८ ॥ वह सच्चिदानन्द रूपी है ज्ञानमय शिव स्वरूपी है । आप कल्याण रूपी है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ ९ ॥ जिस ईश्वरके ध्यान सेती बने ईश्वर कहै न्यामत । वही ईश्वर हमारा है जो ईश्वर है सो ऐसा है ॥ १० ॥

या संक्षेपमें यों कहिये कि वह सर्वज्ञत्वे सति वीतराग अर्थात् ज्ञाता दृष्टा है ॥ ज्ञान गुण केवल जीवमें ही है । कोई जीव स्वरूप जानता है और कोई विशेष जीव ही ईश्वर और जीवोंके जाननेकी कोई मर्यादा नहीं है क्योंकि जिस वस्तुका ज्ञान होजाता है आज असम्भव समझा जाता है कल ही कोई जीव उसका ज्ञायक उत्पन्न हो जाता है इससे यह सिद्ध होता है, कि ऐसे भी जीव होंगे जो कि सर्व पदार्थोंको जानते होंगे क्योंकि यह सर्व पदार्थ जो ज्ञेयस्वरूप हैं बिना किसीके ज्ञानमें आये रह नहीं सकते और वह केवल जीव ही हैं जो कि उनको जान सकते हैं । यदि जीवों से भिन्न कोई अन्य ऐसा अनादिसे ही व्यक्ति अपेक्षा सर्वज्ञ विशिष्टात्मा मानि ये जो कि सबका ज्ञायक हो तो ऐसा विशिष्टात्मा किसी भी युक्ति युक्त प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता अतः यह जीव ही सर्वज्ञत्व गुण युक्त है ऐसा सिद्ध हुआ

यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि जितनी जितनी बीतरागता बढ़ती जाती है उतनी उतनी ज्ञानकी शक्ति भी और इसी कारण प्रत्येक ही मनमें संसारसे विरक्त पुरुष ही भावेभ्यक्ता और विशेष ज्ञानी माने गये हैं। जब ज्ञानकी वृद्धि बीतरागताके साथ ही होती है तो यह स्वतः सिद्ध है कि जो सर्वथा बीतराग है वही सर्वथा पूर्ण ज्ञानी अर्थात् सर्वज्ञ है। इस कारण यह हेतु जैनियोंके परमात्माओंको सर्वथा सर्वज्ञ सिद्ध कर रहा है।

जैनी यथार्थ वस्तु स्वरूपके प्ररूपक हैं और उनका किसीके प्रति द्वेष नहीं है जैना पक्षपाती इसी कारण उन्होंने स्पष्ट कह दिया है कि जो द्वेषोंका ज्ञाता है और नहीं हैं ॥ जग जलधि लहरें पार। पूर्वापर अविरोधी अनुपम विशद बचन जिस के सुखकार ॥ उस गुणसागर साधुपूज्य निर्दोष देवके पूजो पांव। बुद्ध विष्णु शिव ब्रह्मा जिनवर उसका चाहें जो हो नांव ॥ परन्तु ऐसा होनेपर भी उनके सब ध्यान बार्हल पंसेरी ही नहीं है वरन वह गुणोंको यथावत जानकर अपना कल्याण करने को उचित उपदेश ग्रहण करने वाले हैं जैसा कि कहा गया है कि:—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु ।

युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

इसकी सत्यताका अनुभव तो आपका तब होगा जब कि आप जैनग्रंथोंका स्वाध्याय प्रारंभ करेंगे उस समय आप देख सकेंगे कि कैसा निर्पक्ष और यथार्थ कथन जैन शास्त्रोंमें किया गया है। यह वह धर्म नहीं है जोकि यह सिखलावे कि तुम हमारी कही बातोंको बिना कान हिलाये मानलो वरन यह वह धर्म है जो सिखलाता है कि तुम परीक्षा प्रधानी बना ॥

यद्यपि जीव जाति अपेक्षा समान हैं और परमात्मा बीतरागी होनेके कारण ईश्वरकी उपासना किसीको सुख दुःख नहीं देता तथापि जैनी निज कल्याणार्थ उसकी क्यों कीजानी है उपासना करते हैं क्योंकि उनमें और परमात्मामें अभी केवल जाति अपेक्षा ही समानता है कुछ व्यक्ति अपेक्षा नहीं या यों समझें कि जैसे एक बीज में स्थित वृक्ष व पल्लवित वृक्षमें हुआ करती है इस कारण उनको जब तक कि वह आत्मस्थ न होजावे अपना स्वरूप चित्तवचन करने व कर्मोंके सर्वथा दूर करनेमें आदर्श स्वरूप व शुभ ध्यानके अर्थ चित्त एकाग्र करनेका ध्यान रूप होने व उपकार मानने तथा संसारसे वैराग्य प्राप्त होनेको ईश्वरकी आवश्यकता है। जैसे कि चिरकालसे अफोम खानेका अभ्यासी परन्तु उससे अर्थात् दुःखी और उसके सर्वतः त्यागने के अभिलाषी पुरुषको किसी एक ऐमे पुरुषकी आवश्यकता होती है जो कि पहिले उसीके समान रहा हो परन्तु अब वह अपने प्रयत्नोंसे उसको त्यागकर सुखी हो गया हो जिसको कि पाकर वह उससे उन उपायोंको जानकर ग्रहण करके सुखकी प्राप्ति करले जैसे हम संसारी जीवोंको जोकि कर्म संसारीत्वसे दुःखसे आकुलित हैं और सुखकी प्राप्ति करना चाहता हैं किसी ऐमे जीवको अत्यन्त आवश्यकता है जोकि उसको सुख प्राप्ति करनेका मार्ग बतला दे या जिससे कि उसका सुखकी प्राप्ति होजाय। इसकारण कि जैनियोंको मोक्षका मार्ग तथा संसारसे वैराग्यतादि प्राप्ति होनेमें ईश्वर कारण भूत है अतः वह उसकी उपासना करते हैं जो कि सर्व प्रकार उचित ही है ॥

सर्वसाधारण संसारी जीव अपनी अनादि कर्म संयोगज अज्ञानतासे यथार्थ व-हितोपदेशक भास स्तु स्वरूपको नहीं जान पाते और जब तक यथा तथा ज्ञान न हो तब के लक्षण ॥ तब सर्व दुःखोंका मूल कर्म बन्धन कदापि उच्छिन्न नहीं होसकता

और न मुझ ही प्राप्ति होसका है इस कारण वस्तु स्वभाव धर्मकी प्राप्ति होनेको एक भाव उपदेशककी आवश्यकता है जोकि सर्वज्ञ चोतराणी और हिनोपदेशक हो क्योंकि यदि इनमेंसे एक भी गुण न होगा तो कदापि यथार्थ उपदेशकी योग्यता न होसकेगी । वह तीनों गुण हमारे अहन्त सकल (साकार) परमात्मामें ही पाये जाते हैं अन्य भास नाम धारियोंमें कदापि नहीं क्योंकि प्रायः अन्य सर्व मताबलान्तरोंने अपने भावोंको व्यक्ति अपेक्षा भी सर्वतः अनादि सिद्ध, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त और अशरीर मान रक्खा है और ऐश्योंमें उपदेशकी योग्यता कदापि नहीं हो सकती क्योंकि—  
नास्पृष्टः कर्मभिः शब्दभिश्च दृश्यास्तिकश्चन । तस्यानुपायसिद्धस्य सर्वधानुपपत्तिः ॥  
प्रणीतिर्भोक्षमार्गस्य न विनाऽनादिसिद्धिः । सर्वज्ञादितितत्सिद्धिर्न परीक्षासहासिद्धिः ॥  
प्रणेतोभोक्षमार्गस्य नाशरीरीऽन्यमुक्तवत् । सशरीरस्तुनाकर्मा सम्भवत्यज्ञजन्तुवत् न चेच्छाशक्तिरीशस्य कर्माभावेऽपियुज्यते । तदिच्छावानभिव्यक्ता क्रियाहेतुः कुतोऽज्ञवत्

अर्थात् किसी भी सर्वज्ञको कर्मनाशके कारण तपादि विना किये ही स्वयं सिद्ध होनेसे सदा कर्म रहित नहीं मानसक्ते क्योंकि उसमें स्वयं सिद्धता ही युक्ति संगत नहीं है यदि अनादि सिद्ध सर्वज्ञके विना भोक्षमार्गकी प्राप्ति नहीं होसती ऐसा मानकर ईश्वरमें स्वयं सिद्धता मानते हो तो भी यह बात अविचारित रम्य ही है क्योंकि अनादि सिद्ध सर्वज्ञको शरीर रहित माननेसे अन्य शरीर रहित मुक्तात्माओंकी तरह भोक्षमार्गोपदेशकत्व नहीं बनसक्ता और शरीर सहित माननेसे सशरीरी अन्य मूढ़ पुरुषों की तरह सदा कर्म रहितताकी सिद्धि नहीं होती और यदि ईश्वरको कर्म रहित होनेसे भी उसकी इच्छा शक्तिको ही समस्त क्रियायोंमें हेतु मानोगे तोभी वह इच्छा किसी भी अभिव्यजकके नहीं होनेसे इच्छाको व्यक्त करने वाले कारणके अभावमें अन्य पुरुषोंकी इच्छा की तरह किसी भी क्रियामें कारण नहीं होसक्ती ॥

जैन धर्म ही जीव मात्रका धर्म है क्योंकि यह वह धर्म है—

( १ ) जो कि वस्तु स्वरूप धर्मका पक्षपात रहित नय प्रमाणादिसे सिद्ध कर निरूपण करता है जिसको कि वादी प्रतिवादी खण्डन करनेमें कदापि समर्थ नहीं हैं ( २ ) जिसमें अनभि अविधेयासम्बन्ध और अशक्यानुष्ठान नहीं हैं ( ३ ) जो अनादिसे प्रचलित होकर जीवोंका सदैव यथार्थ कल्याण किया करता है ( ४ ) जो स्वपर हिंसाका सर्वथा अभाव कर—  
स्वप्पामिसव्वजीवाणां सव्वेजीवास्वमंतुमे । मित्तीमेसव्वभूदेषु वरंमञ्ज्जणेणवि ॥

में सब जीवोंको क्षमा करता हूं सब जीव मुझको क्षमा करें मेरा सब जीवों के प्रति मैत्री भाव है किसीके भी प्रति शत्रुता नहीं ऐसा प्ररूपण कराकर प्राणी मात्रका अक्षय अनन्त सच्चा कल्याण करनेका उपदेश देता है और ( ५ ) जिसकी छाप जीव मात्रपर अंकित होरही है जैसा कि बबलाया गया है कि—

हरि हर ब्रह्माकी मुद्रासे मुद्रित जग दिखाता न कहीं । सुरपतिके वज्रा युधसे और शशि राविकी किरणोंसे नहीं ॥ षट्मुख बुद्ध अनल फणपतिसे यक्ष से भी नहीं चिन्हित है । किन्तु देखलो जगन चराचर जिन मुद्रासे अंकित है ॥

विधिके दण्ड कमण्डलु आदिक चिन्ह कहां हैं बतलाओ । कहां कपाल लंगोटी खट्वा मुकुट रुद्रके दिखलाओ ॥ हरिके चक्र गदादि बुद्धके लाल वसन भी कहां कहां । किन्तु देखलो जिन मुद्रा मय नग्न रूप यह जगत अहो ॥

मित्रो ! यह दैक्क है कोई ग्रन्थ नहीं इस कारण क्षमा करियेगा इसमें ब-  
टैकट रचनेका हुत संक्षेपसे ही कुछ लिखा गया है और ऐसा करते भी यह इ-  
हो । तना होगया जिससे कि अब अनिच्छा होनेपर भी समाप्त ही क-

रना पड़ता है । तथापि आप इससे जैनधर्मके विषयमें कुछ भी नहीं जान स-  
क्त तो भी यह आपको उसके विषयमें कुछ जाननेकी अवश्य प्रेरणा करेगा  
और यही हमारे इस दैक्क रचनेका हेतु भी है । आपका ध्यान ( यदि आप  
जैनधर्मसे सर्वतः अपरिचित हैं ) कुछ भी इस ओर आकर्षित हुआ तो ले-  
खक और प्रकाशक अपना परिश्रम सफल समझेंगे और यह उनका अहोभा-  
ग्य होगा यदि आपके इस काममें ( जिसमें कि सहायता करना वह अपना  
सर्वोपरि कर्तव्य समझते हैं ) वह आपको कुछ सहायता दे सकें । यदि आपको  
जैनधर्मके विषयमें कुछ शङ्का है या उसके जाननेमें आपको किसी प्रकारकी  
सहायताकी आवश्यकता है तो कृपया इस विषयमें मंत्री श्री जैनतत्त्वमकाशिनी  
सभा इटावहसे निष्कपट पत्र व्यवहार करिये ॥

जबतक कोई निष्पक्ष न हो वह यथार्थ वस्तु स्वरूपका निर्णय कदापि  
निष्पक्ष होनेकी नहीं क्षमता क्योंकि जिन समय मनुष्य यह विचारता है कि यह  
आवश्यकता ॥ मेरा है यह विराता या मेरे मतवाले ऐसा मानते हैं और दूसरे  
मतवाले ऐसा तो उसके चित्तमें यह विचार बिना उठे नहीं रहता कि जो मैं  
या मेरे मतवाले मानते हैं वही ठीक है दूसरोंका कदापि नहीं और यह वि-  
चार उसके यथार्थ निर्णय करनेमें बाधक होता है निर्णय करनेके समय यह वि-  
स्मरण कर देना चाहिये कि मेरा या मेरे मतवालोंका यह मत है और दूसरों का  
ऐसा वरन निष्पक्ष न्यायकर्त्ता होकर यह विचारना योग्य है कि एक पक्ष ऐसा  
मानता है और दूसरा ऐसा इसमें मुझको कौनसा पक्ष ग्रहणीय है क्योंकि अपने  
कल्याणार्थ सत्य और निर्दोष पक्षका ही ग्रहण करूंगा । यदि आप सत्य और  
सारग्राही हैं तो कृपया ऐसा ही करके निज कल्याण कर लीजिये ॥

अन्तमें हम एकवार पुनः आपको विश्वास दिलाते हैं कि आप अपना  
आस्थासन और सच्चा कल्याण जैन धर्मसे ही कर सकते हैं और यह आपकी सब  
आशीर्वाद ॥ से बड़ी भूल होगी यदि आप उससे अपना कल्याण न कर सकें ।  
यह मनुष्य पर्याय और आपको प्राप्त सर्व सुखद सामिग्री बड़ी कठिनतासेका-  
कलीय न्यायवत् प्राप्त होती है इस कारण इसको व्यर्थ यों ही न खोकर अपने  
यथार्थ सुखकी प्राप्ति अवश्य करलीजिये यही हमारी हार्दिक शुभकामना  
और आशीर्वाद है ॥ इति शुभम् ॥

## ओम् श्री जिनाय नमः

फीरोजा बाद में जैनी और आर्य समाजियों का शास्त्रार्थ.

### भूमिका

—१८७३—

विदित है कि इस फीरोजा बाद शहर में प्रति वर्ष चैत्र मास में जैनियों का एक बड़ा मेला होता है जो आठ दिन तक रहता है अबकी साल उम का समय प्र० चैत्र सुदि तृतीया ३ वृहस्पति वार १५ मार्च सन् १८८८ से था इससे कुछ दिन पहिले भास्करानन्द आर्यसमाजो उक्त सहरमें आये और उनोंने सेठ फूलचन्दजी जैन धर्मको प्रति कहा कि हम तुम्हारे जैनों पंडितोंसे शास्त्रार्थ करना चाहतेहैं कोई समय नियत कीजिये इसो कारण हम आयेहैं उनको यह अभिजाथा देखकर सेठ फूलचन्दजी ने कहा कि आपको इसो समय शास्त्रार्थ करना है तो यहां से निकट ही जिले आगरा जारखी थाम में पंडित भर गदनाल को पुत्र पण्डित पन्नालाल मौजूद हैं आप कही तो उन बुलालेभास्क रानन्दजी ने स्वीकार करिके एक पंचउक्त सेठकेपत्र को साथ पण्डित पन्नालाल के पास जारखी थाम में भेजा और लिखा कि हम आप से शास्त्रार्थ करने का ठहर है आप कल तक अवश्य आईये क्योंकि शास्त्रार्थ का समय फाल्गुन सुदी ७ रविवार नियत है इसको जुगाव में पण्डित पन्नालाल आये परन्तु भास्करानन्दजी उस समय शास्त्रार्थ करनेको समर्थ नहीं हुये और कहा कि मैं वृत्तान्त को इस समय तार में खबर आई है इससे इस समय शास्त्रार्थ नहीं कर सकते यह बहाना करके इसे सन् रेल को चले गये और मेला में शास्त्रार्थ करनेका कह गये, फिर आर्य समाज फीरोजाबादके सभापति चौबेकमला पति जी और सेठ फूलचन्द जैनी खुरजा निवासी (जिनका पंच और बहुत व्यापार फीरोजा बाद में है) में यह टहर गई कि इस मेला में हमारा तुझारा शास्त्रार्थ होना चाहिये सेठ फूलचन्द ने भी स्वीकार किया इतने पर ही दया नन्दिनी ने जहाँ तहाँ समाचार पत्रों में छपवा दिया कि उक्त तिथि पर जैनों के संग हमारा शास्त्रार्थ होगा अतएव बहुत जगह से दयानन्द मता

बलंवी पंडितों को भी बुलवा लिया निदान प्र० चे० सुंदी २ को ही बहुत से पंडित आर्यसमाजी उपस्थित हो गये परन्तु भास्करानन्दजी उक्त अपनी प्रतिज्ञा करने पर भी न आये फिर आर्य समाजियों ने तार में खबर दी उसके बदले में भी तार ही आये, न जाने आप क्यों न आये, निदान छतीया के दिन प्रातःकाल बहुत से आर्य समाजी उक्त सेठ की पेच में आये और दोनों पक्षों में से दो २ प्रबंधकर्त्ता और शास्त्रार्थ का स्थान जैन पाठशाला फीरोजाबाद नियत कर गये फिर प्रथम पक्ष जैनियों की ओर से आठ बजे दिन के इस विषय का गया था कि आज १० दस बजे से ३ बजे तक शास्त्रार्थ होना चाहिये परन्तु शास्त्रार्थ संस्कृत में ही हो क्योंकि हमारे आप के शास्त्र संस्कृत भाषा में ही है और जिसके बिना विद्वत्ता का ज्ञान भी नहीं हो सकता निदान वह दिन पक्षों के इतस्ततः भेजने में ही बीत गया क्योंकि आर्यों की ओर से पक्षों के उत्तर नियत समय अवलंबन करके बिलंब से आये और कुछ निर्णय भी न हुआ।

चतुर्थी के दिन सेठ फूलचन्द्र और आर्य समाजी पं० भीमसेनादि में कुछ नियम नियत होकर लिखे गए और वे आर्य समाजियों के ही पास रहे इस कारण कि शास्त्रार्थ के समय उभय पक्ष के पंडितों के हस्ताक्षर करा लिये जायेंगे और अब जैनो पंडित मीजूट भी नहीं है और १२ बजे से ४ बजे तक शास्त्रार्थ का समय नियत हुआ नियत समय पर उभय पक्ष के पंडित लोग और सैंकड़ों द्रष्टा जैनियों की पाठशाला में उपस्थित हो (पहुँच) गये जो नियम नियत हुए थे उनमें से आर्य समाजियों ने न्यूनाधिक कर के अपनी इच्छा के अनुसार नियम बना लिये और सभा में हस्ताक्षर के लिये नियम पत्रको रख दिया पं० छेदालाल ने वह नियम पत्र सेठ फूलचन्द्रजी की सुनाया सेठ फूलचन्द्र ने कहा कि ये नियम हमारे इनके बीच में नहीं ठहरे इसमें न्यूनाधिक है नहीं है पं० भीमसेनजी धर्म से कहें कि येही नियम ठहरे थे पंडित भीमसेन आर्य समाजी ने स्वीकार किया कि आपका कहना सत्य है यह तो नहीं ठहरे थे निदान वह नियम पत्र नहीं रहा और न किसी को हस्ताक्षर हुए फिर शास्त्रार्थ के लिये परस्पर बादानुवाद होता रहा और कोई नियम का यथार्थ निर्णय परस्पर की संमत्यनुसार न हो सका।

फिर सिवइन्स कूटर साहब पुलिस फीरोजाबाद ने प्रबंधकर्त्ताओं की सम्मति

और सैकड़ों दृष्टान्तों के उल्लाह से एक रपोट लंदन में लिखी उसका आशय यह था कि जैनियों की ओर से प्रबंध कर्त्ता पारेलाल और मंजूलाल नियत हैं और आर्य समाजियों की ओर से चौबे कमलापति और गंगाधर शर्मा नियत हैं और सभापति (सिरपंच) दोनों की ओर से चौबे ज्वालाप्रसाद जो (चौबे कमलापति के ज्येष्ठ भ्राता) नियत हैं और जैनियों को ओर से पं० छेदालाल और पं० पन्नालाल और आर्य समाजियों की ओर से पं० भीमसेन और पं० देवदत्त संभाषण करें और जय पराजय के ज्ञानार्थ दोनों तरफ की संमति से एक विद्वान् मध्यस्थ नियत है, इस रपोट पर उभय पक्ष के प्रबंध कर्त्ताओं के हस्ताक्षर करा लिये उसके अनंतर उक्त पं० छेदालाल ने कहा कि आधुनिक आर्य समाजी और जैनियों से इतर जिस विद्वान् की आप कहें वही मध्यस्थ हम स्वीकार करें क्योंकि आधुनिक आर्य और जैनियों से इतर ही कोई विद्वान् भिन्न मतावलंबी मध्यस्थ नियत हो सकता है और उसीमें दोनों पक्षों के मनुष्यों का हृदय विस्वास इन लिये हो सकता है कि वह पक्ष पात रहित हो कर न्याय करेगा

इस पर पंडित भीमसेन आर्य समाजी ने कहा कि जगतमें कोई विद्वान् सत्य असत्य निर्णय में समर्थ नहीं है जिसका हम स्वीकार करें और सब हमारे विरोधी हैं सिवइं स्क्वैटर साहब पुलिस फीरोजा बाद ने यहां तक कहा कि जर्मन आदि विलायत के किमो प्रसिद्ध विद्वान् को ही मध्यस्थ नियत करो उस के पास लेख भेज दिये जायेंगे यह बात भी आर्य समाजिया ने स्वीकार न की फिर यह भी कहा कि पक्ष पात रहित मध्यस्थ विद्वान् को बिना शास्त्रार्थ की जय पराजय प्रतीत होनी दुर्घट है इसपर पं० भीमसेन ने कहा कि लेख से निश्चय हो जायगा पंडित छेदालाल ने इस के उत्तर में कहा कि लेख तो हमारे आप के ग्रंथ ही मौजूद हैं हम आप क्या अधिक लेख लिख सकते हैं और उन ग्रंथों को दोनों पक्षों के मनुष्य सदैव देखते रहते हैं और अपनी २ रुचि के अनुसार अपने पक्ष को हृदय कर लेते हैं कोई अपनी पराजय नहीं समझता और जब एक पक्ष पात रहित दोनों मतों से भिन्न मतावलंबी विद्वान् मध्यस्थ स्वीकार कर लिया जावेगा तो फिर लेख द्वारा भी उसकी संमत्यनुसार एक पक्ष की जय और दूसरे की पराजय जगत में बिदित हो जायगी

इसके पश्चात् सिवइं स्क्वैटर साहब के सम्बन्धी जो उस समय सभा

में उप स्थित थे और मालूम होता था कि उनोंने कुछ दिन काशी आदि में भी निवास किया है) ने काशी के स्वामी विश्वानन्द सरस्वती जी विद्वानों का नाम लिया और कहा कि इनो में से किसी विद्वान् को मध्यस्थ दोनों पक्ष के पंडितों को कर लेना चाहिये पंडित छेदालाल जैनधर्मीने कहा कि हमको स्वीकार है परन्तु पंडित भीमसेन आदि आर्यसमाजियों ने कहा कि इनकोभी हम स्वीकार नहीं कर सकते ये भी सब हमारे विरोधी हैं तदनन्तर जैनियों ने दूर दूर देशों के दृष्टाओं की अभिलाषा और अपने उत्साह से मध्यस्थ के विनाभा शस्त्रार्थ करना स्वीकार किया फिर भी आर्य समाजियों की अपनी इच्छानुसार नियम नियत होने को हठ बनी ही रही इस आदानुवाद करते करते दो २ बज गये और सभा और प्रबन्ध कर्त्ताओं की हार्ड में व्यर्थ समय जाता प्रतीत होने लगा तब प्रबन्ध कर्त्ताओं के कथनानुसार शास्त्रार्थ होने का निर्णय हुआ और यह ठहरी कि किसी को सहायता के बिना सभा में ही एक लेख प० छेदालाल पन्नालाल जैन मतावलम्बी संस्कृत में लिखकर पं० भीमसेन देवदत्त आर्यसमाजियों को देदे और एक लेख उक्त भाषा में पंडित भीमसेन देवदत्त आर्यसमाजी उक्त पंडित जैनों को देदे और परस्पर लेख का उत्तर परस्पर लिखें और अपने-लिखे लेख पर अपने-हस्ताक्षर कर दें और उस लेखका भाषानुवाद सभा में सुना दें जिससे सभा के दृष्टा लोगों को भी आनन्द आवे और इसके पश्चात् उभय पक्षवाले शास्त्रार्थ के इत्तान्तको मुद्रित कराकर जगत् में विदित करें जिससे विद्वान् लोग पक्ष का प्राबल्य दौर्वल्य स्वयं निश्चय कर लें और लेख तथा मुख द्वारा सभाने कथन के वास्ते दोनों पक्ष के पंडितों के लिये समान समय नियत हो और उसका निर्धारण के वास्ते एक छोटी सिवइंस्पेक्ट्र के हस्त में और एक सोमान् चीब ज्वालाप्रसाद जो सभापति के हस्त में रहे और सभापति की आज्ञानुसार उभय पक्ष के पंडित नियत समय पर लेख और व्याख्यान का प्रारंभ और समाप्ति करें और कोई सभा में सभासद उक्त पंडितों के सिवाय संभाषण न करें और करेगा तो प्रबन्ध कर्त्ता उसका प्रबन्ध आप तथा सिरकारी पुलिस को मारफत राज प्रबन्ध द्वारा करेंगे निदान लेख द्वारा शास्त्रार्थ होने का प्रारंभ हुआ और निम्न लिखित लेख लिखे गये, जो धर्म पूर्वक ज्यों के त्यों इस पुस्तक में मुद्रित किये जाते हैं ॥ इति



## प्रथम दिन प्र० चैत्र शु० ४-१६ फ० का विचार

श्री

१ प्रथम पत्र जैनियों का

( प्रथम प्रश्न ) भोविद्वज्जनवय्याः जगत्सिद्धार्थीनां प्रमेयत्वं सर्वसाधारणं प्रमेयमिदं प्रमाणाधीनत्वं न प्रथमप्रमाणनिर्णयोपेक्षितं अतः तत्स्वरूपं किं कति चतुर्दश कश्चित् विषयः किंवदन्तः तत्राभाप्यंस्वतः परताद्येत्यस्माकमग्रः ।

ज० कंदालाल जैन धर्मिणः

ज० पन्नालाल जैन धर्मिणः

भाषानुवाद

भोविद्वानों में श्रीष्टी जगत् में वर्तमान पदार्थों को मय प्रमेय मानते हैं और उस प्रमेय की मिद्धि प्रमाण के आधीन होने से पहिले प्रमाण का निर्णय अपेक्षित है इससे उस प्रमाण का स्वरूप क्या है और उसके कितने भेद हैं और उसका विषय क्या है और उसका फल क्या है और उस प्रमाण की प्रमाणाता स्वतः (किसी की अपेक्षा के बिनाही) होती है अथवा परतः (किसे दृष्ट करके अपेक्षा में) होती है यह हमारा प्रश्न है ।

## प्रथम पत्र आर्यों का

श्रीः

सुखमार्गान्धं षण्णार्था सर्वस्य प्राणभृतः प्रवृत्तिस्तथाभिर्जनसम्प्रदाया त्वायं सम्भवति जिनशब्दस्यकः पदार्थाजैनशब्दस्यचानयोश्चकः सख्यस्योजिनशब्दार्थार्थः कश्चिदभिमतोस्तिमनित्यआर्हास्विदनित्यः जिनजैनपदार्थोत्पत्त्यलक्षणस्वरूपं पंचवक्ता अभिमितितत्पूजनसफलं विपरीतं वायदिसफलं तर्हि किम्फलकम् ।

ज० भीमसेन शर्माणः ज० देवदत्तश्च

भाषानुवाद

सुखके मार्ग उदने के लिये सब प्राणियों को प्रवृत्ति होती है उस सुखको प्राप्ति जैन सम्प्रदाय से कैसे होती है जिन और जैन शब्द का अर्थ क्या है और इनका सम्बन्ध क्या है जिन शब्द का अर्थ जो तुम मानते हो वह नित्य है अथवा अनित्य जिन और जैन पदार्थों का लक्षण और स्वरूप कौन उसका पूजन सफल है या निष्फल और सफल है तो उसका फल क्या है ।

## दूसरा पत्र जैनियों का प्रथम पत्र आर्यसमाजियों के उत्तर में

मानाधीना मेय मिडिरितिन्यायेन युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात् प्रथमं प्रमाणनिर्णयः आवश्यकः तन्निर्णयाभावे मेयानां निष्पत्तिरित्युच्यते अत एव समा-  
क्त पूर्वपक्षस्य आदौ परामर्शः युक्तः ।

### भाषानुवाद

प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन होती है इस न्याय में आप के कहे हुए जो पदार्थ हैं वे भी प्रमेय रूप हैं (अर्थात् सुख प्राप्ति के मार्ग ढूँढ़ने के लिये सब प्राणियों की प्रवृत्ति आपने कही और उस सबकी प्राप्ति जैन सभ्यताय से कैसे होती है तथा जिन और जैन शब्द का अर्थ क्या है और जिन शब्द का अर्थ जो तुम मानते हो वह नित्य है अथवा अनित्य जिन और जैन पदार्थों का लक्षण और स्वरूप कहां)। इस प्रकार प्रमेय रूप जिन शब्द के अर्थ आदिका ज्ञान भी शब्दादि प्रमाणों के आधीन है उसको बिना इन पदार्थों की सिद्धि तथा ज्ञान कराना असंभव है इसी में इस हमारे लेखानुसार सबसे प्रथम प्रमाण का निर्णय आवश्यक है क्योंकि प्रमाण निर्णय के बिना प्रमेय का निर्णय होना कठिन है चाहें कि हम आप एक मतावलम्बी नहीं हैं जो हमारे विश्वास पर हमारे माने हुए पदार्थों को आप भी खीकार करने फिर भी आप प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा उनकी सिद्धि चाहेंगे इसी कारण हमने पूर्वोक्त प्रश्न किया है कि जिसको निश्चय होने में आप के पृथक् पृथक् पदार्थों का हम स्वरूप आदि कहेंगे तो उसको मत्वा मत्व का निर्णय भी सुगम रीति में हो जायगा क्योंकि हम आप क्या सब मतावलम्बी मत्यामन्य निर्णय के लिये प्रमाण ही को असाधारण कारण मानते हैं परन्तु मता के भेद में स्वरूप आदि में परस्पर विवाद है इससे हमारे पूर्वपक्ष का ही प्रथम विचार करना योग्य है ।

### आर्यसमाजियों का दूसरा पत्र जैनियों के प्रथम पत्रोत्तर में

अपदं न प्रयुञ्जीत इति शब्दशास्त्रनियमात् अपदत्वं च विभक्ति रहितत्वं सुभि-  
नंतपदमिति शासनात् प्रथमं प्रश्न इति लेखोपभाषणम् यदि जगद्भवति पदार्थ-  
नां सर्वसाधारणप्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारण भावेन प्रमेयत्वात् प्रमा-

विषयकः प्रश्नः प्रसंगान्तर्गतत्वात् साध्यसमर्पित्वाभावात् प्रत्यक्षप्रमाणविषयकः प्रश्नस्य जगद्वृत्तिपदार्थान्तर्गतत्वाज्ज्ञेयत्वमिदिरिति ज्ञातत्वादङ्गीकृतमेव प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात् अतश्चतद्विषयकः प्रश्नः सर्वसाधारणप्रमेयत्वे निरूप्यमाणत्वे तत्रोदाहरणार्थात् तद्व्यवहारोदाहरणार्थात् प्रमाणफलव्यवहारपरमाश्रयमिति तत्रासाध्यत्वमिति परतश्च ।

सी. न. सेन गृह्यशास्त्रः ४०. देवदत्तस्य

म.प्रानुवः८

अथ ग्राह्य का यह निरूपण है कि जिसमें विभक्ति न हो उसे अपदका प्रयोग न कर पद वह होता है जिसके अंत में सुप् आरतिङ् हो इसमें प्रथम प्रश्न यह लिखना अशुद्ध है अर्थात् एक विपरीताच की अशुद्धि है, जगत् में वर्तमान पदार्थ साधारण रीति से प्रमेय हैं तो प्रमाण को भी सर्व साधारण ज्ञान से प्रमेयत्व है इसमें प्रमाण विषयक प्रश्न प्रमेयात्तर मत होने से साध्यम सत्त्वाभास है और इस प्रमाण विषयक प्रश्नको जगत् में वर्तमान पदार्थों के अन्तर्गत होने से ज्ञेयत्व की सिद्धि हुई यह बात ज्ञात होने से अंगीकार हुई प्रमाण प्रत्येक व्यवहार करने में इसमें भी प्रमाण विषयक प्रश्न सर्व साधारण प्रमेयत्व सिद्धि से व्यर्थ है उस प्रमाण के भेद ग्राह्यों में दो २ तीन ३ चार अथवा आठ ८ होते हैं और प्रमाण का फल व्यवहार और परमार्थ की सिद्धि होती है उस प्रमाण की प्रमाणता स्वतः और परत होती है।

पत्र तीसरा जैनियों का आध्य समाजियों के दूसरे  
पत्रोत्तर में

जगद्वृत्तिपटार्थानां सर्वसाधारणप्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारण  
भावेन प्रमाणात् प्रमाण विद्यमानः प्रश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात् साध्यममर्त्यत्वा  
भावरिति नव द्विरपराण्यत्वे नोक्तं विप्रकृतं भूतः प्रमाणस्य तु विद्ययिरूपत्वात्  
प्रत्यक्षां विषयरूपत्वाच्च प्रमाणरूपत्वेन प्रमाणस्यानप्रतीत्य-३ अन्यथानक्षण  
स्याप्रिनक्षार्कात्वेन दृषणमण धानप्रहारपातात् किंच प्रमाणपुत्रेक व्यवसाय  
करणत्वात्तद्विषयकः प्रश्नः सर्वसाधारणप्रमेयत्वं सिद्धं व्यर्थेण तदवयवत्वेन सुतः सति  
अस्मत्स्वीकृतं मतं प्रमाणं तर्हि भवतीत्यंशीकुर्वन्तुमीदृशममवाताविचारः स्यापि  
विचारः प्रमाणाधीनः अतः प्रमाणविषयकः प्रश्नः साधितान्नोपपद्यमानः स्याद्वैतः

यात्वागोऽष्टौवा। इदमपरविशेषेण लेखनं कस्मिन्शास्त्रे इमं भेदः। केन प्रकारेण च कथितः प्रमाणविषयो नोक्तः किं तर्हि अस्ति वा न वेति स्पष्टतया गद नोयम् प्रमाणफलं च व्यवहार परमार्थयोः सिद्धिः इत्यनेनापि प्राप्तः प्रमाणनिर्णयः तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च इत्यनेनानैकांतिको हित्वा भासः निर्पेक्षतयोक्तत्वात् ।

भाषानुवाद

}

ह० छेडालाल जैनधर्मिणः

ह० पन्नालाल जैनधर्मिणः

आपने यह कहा कि जगत् में वर्त्तमान पदार्थों को साधारण गति से प्रमेयत्व है तो प्रमाण भी सब में आगया इससे प्रमेय हुआ तो प्रमाण विषयक प्रश्न प्रमेयान्तर्गत होनेसे साध्यमसहेत्वा भास हुआ यह आपका लिखना बिना विचार है क्योंकि प्रमाण विषयक रूप है और प्रमेय विषयक रूप है प्रमाणरूपसे प्रमाण को प्रमेयत्व नहीं अन्यथा लक्षण को भी लक्ष्य होने से अनेक दूषण आजायेंगे और यह भी आपका कहना अयुक्त है कि प्रमाणपूर्वक व्यवहार के करने से प्रमाण विषयक प्रश्न सर्व साधारण प्रमेय होने से व्यर्थ है क्योंकि जो हमारे स्वीकृत मत को प्रमाण मानते हैं तो अंगीकार करो जो नहीं मानते हैं तो विचार करने का अवसर आया वह विचार भी प्रमाण के आधीन है इससे प्रमाण विषयक हमारा प्रश्न सार्थक है और उसके भेद शास्त्र २ के अनुसार दो२ तीन ३ चार ४ वा आठ है यह लेख भी बिशेष रहित संदेह रूप है क्योंकि यह नहीं लिखा कि किन शास्त्रों में यह भेद है और किस प्रकार से कहें है और प्रमाण का विषय नहीं कहा वह है या नहीं स्पष्ट कहा और प्रमाण का फल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि कहा सो इस आपकी कथन से भी प्रमाण का निर्णय प्राप्त हुआ और उसका प्रामाण्य स्वतः परत होता है इस आपको उक्ति की निरपेक्ष होनेसे अनैकांतिक अर्थात् व्यभिचारी है त्वाभास की नाई स्वतः परतः की साधकता नहीं हो सकती

परामर्श

विपक्षियों में और हम में यह बात आर्थ समाजी गंगाधर शर्मा प्रबन्धकर्त्ता के द्वारा दहरी थी कि कहीं व्याकरण की अशुद्धि लेख में शोचिता के सब मं हो जाय तो उसपर आक्षेप न किया जायगा क्योंकि शास्त्रार्थ में विचारके विषय पर दृष्टि रहती है परन्तु विपक्षियों ने पहिले ही एक विसर्ग मात्र को अशुद्धि पर आक्षेप किया इससे हमने गंगाधर शर्माजी सभा में बुलाकर कहा कि

अब हम भी इनके लेख की अशुद्धियां प्रकट करते हैं गंगाधर <sup>१</sup> कहते हैं कि आगे की यह इस तरह का लेख लिखें तो हमसे आप कह देंगे कि हम इन की गणना इस कहनेपर हमने जो इस पत्रके उत्तरमें व्याकरणके अनुसार लेख में शब्द अशुद्धियां लिखीं वह दूर कर दी परन्तु विपक्षियोंने अभिमान से फिर भी हमारे लेख में शब्द अशुद्धियां प्रकट की इसमें अब हमको भी उनकी अशुद्धियों की गणना करनी पड़ी जो पद और अर्थ से प्रकट हैं जिन पंक्तियों से हमारे विमर्ग मात्र की अशुद्धि लिखी है उन्हीं में व्याकरण के सुप्ति डाल पड़े, इस सूत्र को जगै सुप्ति गंतपद यह लिखा है अर्थात् ङ कार की जगै ग कार लिख गये और व्याकरण की रीति से प्रयुज्जीत इति इस स्थान में प्रयुज्जीत लिखना चाहिये था अब हम उन्हीं विमर्ग की अशुद्धि की भी इसी दूसरे पत्र की चौथी पंक्ति में दिखाते हैं जो हमारे पास उनके हस्ताक्षर सहित मौजूद है सो यह है कि प्रमाण विषयकः प्रश्न प्रमेयान्तर्गतत्वात् यहाँ आपने भी प्रश्न के आगे विमर्ग नहीं लिखी और विमर्ग अवश्य चाहिये था क्योंकि हमारे प्रथम पत्र में भी आपने यही अशुद्धि प्रकट की है ।

और इसी पत्र की सातवीं पंक्ति में विषयकः के स्थान में विषयकः लिखा है अब ऐसी २ शब्द शास्त्रानुसार अशुद्धियों की छोड़ कर अर्थ अशुद्धियों की दिखाते हैं वही हैं प्रमाण विषयक प्रश्न को जगत् वृत्ति पदार्थान्तर्गत होने से ज्ञेयत्वकी सिद्धि को ज्ञात होने से अंगीकार किया क्योंकि प्रमाण पूर्वक व्यवहार करनेसे — अब इसमें ज्ञातत्वात् प्रमाण पूर्वक व्यवहार करना यह दोनों हेतु अंगीकारके हैं तो समुच्चयक चपद दूसरे हेतु में चाहता था और अंगीकार भी किसका किसने यह स्पष्ट प्रतीत नहीं होता और ज्ञेयत्व सिद्धि भी विपक्षियों के लेख में प्रश्न की प्रतीत होती है प्रमाणकी नहीं और प्रमाण विषयक प्रश्न को साध्य समझेत्वा भास बताना तो पूर्णन्याय शास्त्र के बोधको जनाता है क्योंकि हमने प्रश्न को किसी साध्यका हेतु नहीं लिखा था जिसका तुम साध्य समझेत्वा भास बताने का निदान दूसरे के सूची समान छिट्टों का देखना और अपने बड़े २ भी छिट्टों को छिपाना पंडितों की रीति से विरुद्ध है ज्ञात हुआ कि यह इन दयानन्द मतावलम्बी पंडितों ही की सामर्थ्य है जिनमें लेख है शब्द और अर्थ शास्त्र की शुद्धता प्रतीत होगा ।

## तृतीय पत्र आर्यसमाजियों का जैनियों के दूसरे

### पत्र का उत्तर

ओ३म्

सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वा यदि प्रमाण पूर्वकत्वं तर्हि भवत्यश्रयापि सर्वव्यवहारान्तर्गतत्वात् श्रया भावेनानर्थकः प्रश्नः यदि चाप्रमाण पूर्वकत्वं तर्हि भवत्यश्रयायोग्यत्वम् यद्यस्मदुक्तपदार्थानाम्मे यत्वं भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाद्भवन्मतमूलमेव साध्यं न तु सिद्धमित्येता भवदनुमती सर्वस्य साध्यत्वात् प्रमाणा भावेन प्रमेयाभावः ।

ह० भीमसेनशर्माणः ह० देवदत्तस्य

भाषानुवाद

सर्व व्यवहार प्रमाण पूर्वक होते हैं या अप्रमाण पूर्वक जो प्रमाण पूर्वक होते हैं तो आप के प्रश्न को भी सर्वव्यवहारों में अन्तर्गत होनेमें शंभय के अभाव कर प्रश्न अनर्थक है और जो अप्रमाण पूर्वक कहोगे तो तुझारा प्रश्न अयोग्य है और जो हमारे कह पदार्थों को तुम में मानते हो तो जिनपद और उसका अर्थ साध्य होगा इससे तुझारे मत का मूल साध्य है सिद्ध नहीं इससे तुझारी बुद्धि में सर्व साध्य हैं प्रमाण के अभाव से प्रमेय का अभाव है ।

द्वितीय दिन प्र० चैत्र शु० ५--१७मा० का विचार  
जैनियों का चौथा पत्र आर्य समाजियों के तीसरे पत्र  
के उत्तर में

ओमद्भिः यदुक्तं सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्युक्तं नान्यनियमः सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वा कस्मात् व्यवहाराणां बलक्षण्यात् प्रश्नस्यानर्थक्यं तु वक्तुमशक्यं येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यात् नान्माकं प्रमाणस्वरूपादौ मंशयः यूयं जानीथ न वेति पृच्छते अस्मत्प्रश्नविषयस्य सर्वेशस्त्वमतत्वं न नान्योग्यत्वं अस्मत्प्रश्नविषये भवज्जिज्ञासि तपदार्थानां यथामेयत्वं तथा मर्षेषां पदार्थमात्राणां मेयत्वमस्माभिरंगीक्रियते परन्तु यस्मै यंतस्माध्यमिति न व्यभिचरे रभावात् इत्यनेन यद्यस्मदुक्तपदार्थानाम्मे यत्वं भवति स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाद्भवन्मतमूलमेव साध्यं न तु सिद्धमि

त्यक्तं तदपि निर्मूलं अपि च मेयं च किं समाणाधो न मिनि प्रश्नावकाशः अंतर्ता गत्वा भव  
 ह्यपि प्रमाणभावेन प्रमेयाभावः इति लिखक द्विः प्रमाणत्वं गीकृतं परन्तु पृष्ठ सत्रिंशे प्र  
 प्रमाण स्वरूपादिकं मूवक्तुं मसमर्थः इत्यस्माभिरवगतम् ।

ह० छेडालाल जैन धर्मिणः

ह० पद्मालाल जैन धर्मिणः

### भाषानुवाद

आपुनजा कहा कि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक है या अप्रमाण पूर्वक यह  
 आपुका कहना आयोग्य है क्योंकि यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार  
 प्रमाण पूर्वक हो हीते है या अप्रमाण पूर्वक क्योंकि व्यवहार बिलक्षण है  
 अर्थात् कोई प्रमाण पूर्वक कोई अप्रमाण पूर्वक होते हैं और हमारे प्रश्न की  
 ता अनर्थ क आपुनहीं कहसक्ते क्योंकि जिस व्यवहार को प्रमाण पूर्वकता है  
 वह प्रमाण क्या, इसमें हमारा प्रश्न सार्थक है और हमको ता प्रमाण के  
 स्वरूपादिमें प्रमेय नहीं हैं पृक्ते इस लिये है कि आपभी उसको जानते हैं या  
 नहीं हमारे प्रश्नका विषय सम्पूर्ण शास्त्रों को सम्मत है इसमें आयोग्य नहीं है  
 हमारे मतके विषय में जिन पदार्थों को जानने की आपुको इच्छा है वे  
 जैसे प्रमेय है उमो रोति से हम सम्पूर्ण पदार्थों को प्रमेय मानते हैं परन्तु  
 जा मेय है वह साध्य अवश्य होता है यह नहीं कहसक्ते क्योंकि व्याप्ति का  
 अभाव है इसी लेख से आपुने कहा कि जो हमारे कहे हुए पदार्थों को  
 तुम प्रमेय मानते हो तो जिन पद और उसका अर्थ भी साध्य हुआ इसमें  
 तुम्हारे मत का मूल साध्य है सिद्ध नहीं यह आपुका कहना भी निर्मूल है  
 और मेय किस प्रमाण के आधीन है इससे हमारे प्रश्न का अवकाश है और  
 अंत में आपुने भी प्रमाण के बिना प्रमेय का अभाव होता है यह लिखकर  
 उस प्रमेय को सिद्धि का कारण तो प्रमाण क माना परन्तु हमारे पूछे हुए  
 प्रमाण के पृथक् स्वरूप आदिकी आप कहने को समर्थ नहीं यह हमने  
 जान लिया ॥

### परामर्श

शब्द अशुद्धि को छोड़ कर इनके तृतीय पत्र में अर्थ अशुद्धि युक्ति लेख में  
 अमंगलता दिखाते हैं जिससे इनकी पूरी विद्वत्ता विद्वानों की प्रतिप्रकट होजाय  
 इनके लेखमें यह प्रतीत होता है कि मेयमात्र साध्य है जिसमें जिन और

उमके अर्थ को साध्य लिखा फिर हमारी अनुप्रति में सब कोसाध्य लिखकर प्रमाण के अभाव से प्रमेय का अभाव लिखा इस लेख का अभिप्राय अमशत है क्योंकि जब सब साध्य हैं तो प्रमाण के अभाव से प्रमेय का अभाव है अथवा इत का यह अभिप्राय है कि सबको साध्य होने से प्रमाण बिना प्रमेय नहीं होता अर्थात् प्रमाण बिना साध्य रूप प्रमेयको सिद्धि नहीं होतीमोप्रमेय त्वरूप साध्य की सिद्धि में बाध्यत्वादि हेतु को क्या प्रमाणतः नहीं होता इस स प्रतीत है कि सब को साध्य मानने पर भी अनुमानादि प्रमाण की अपेक्षा है पूर्वाक्त लेख इनकेस प्रतीत होगया कि न्याय शास्त्र की गधभी इनमें नहीं ।

## आर्यसमाजियों का चौथा पत्र जैनियों के तौसरे

### पत्र के उत्तर में

ओ३म्

तृतीयमङ्गल्याकेपलेनवाण्डयःप्रतीयन्त ताश्चगण्डगास्त्वधोधाभावेनजाताइ  
तिनिश्चितमेवइदञ्चतृतीयपत्रपूर्वमेवदत्तोत्तरम् पुनश्चतदुपरिलेखपिष्टपेषमवप्र  
तिभाति तथापोदं ब्रूमःयद्विषयिरूपस्य प्रमाणस्यस्वरूपपादवाच्चल्य तर्हिजि  
नजैनादिपदार्थानांविषयिरूपत्वंविषयरूपत्वंवाकिनवद्विरङ्गो क्रियतेयद्विषय  
यरूपत्वसूरोक्रियतेतद्वयुग्मदुक्तपदार्थानांप्रमेयरूपत्वात्इति पूर्वलेखेनविरुध्यते  
यदिच विषयरूपत्वंतर्हिजिनजैनादिपदार्थानांसाध्यत्वादभवन्मतमूलंयुक्ताभिरे  
वाप्रभाणीभूतंस्त्रोक्तमितिनिग्रहस्थानप्राप्तिःअस्मन्मतेतुप्रमाणस्यप्रामाण्यंस्वतः  
परतश्चेतिमत्वानकश्चिद्दोषइतिइटानोच्चप्रमाणविषयकोविचारस्वमाप्तइतिभवप्र  
अस्यावकाशभावःअस्माभिश्चादौयःप्रश्नःसुखमार्गान्वेषणार्था इत्यादिकृतोस्ति  
स्योत्तरंभवद्भिःकिमपि नोदत्त तस्योपरिविचारस्सर्वस्मात्पूर्वकर्तुंयुक्तस्तस्यप्रयोज  
नरूपेण निप्रिप्ती भूतत्वात् जैनमत मूलंसप्रमाणक मप्रमाणवेत्योदि विचारं  
प्रवृत्ते जैनमत समीक्षणं प्रमाणे नवमविष्यतीति प्रमेयरूपाज्जैनसमूहप्रदायात्यूर्ब  
प्रमाणंसेतस्य ये वेतितवे दंविचार्यतेयद्विजिनपदार्थःकश्चिन्ननातन- सर्वज्ञीनि  
त्यगुडबुद्धमृत्तत्त्वभावोनिर्त्यर्थ्यमस्यन्नस्तर्हितस्यैव सनातनसर्वनियन्त्रीश्वरस्यमि  
श्राश्वनोश्वरबादानिरस्तःयदिचकश्चितकालविशेषोत्पन्नोजिनपदार्थाभिधेयस्तर्हि  
तान्यानिस्त्रावास्सर्वज्ञत्वादिगुणामश्वेनतदुपासनमर्थं यस्करमित्यादियोदोषाः ।

ह०भो०शर्मणः

ह०देवदत्तस्थ



## भाषानुवाद

तीसरे पत्र में नव अगुडि मालूम होती है वे शब्द शास्त्र के ज्ञान बिनाहुई यह निश्चय है इस तीसरे पत्र का उत्तर हम पहलेही दे चुके फिर उस पर लिखाना पीसे का पीसना है ताभी यह कहते हैं कि जो विषयि रूप प्रमाण अपने स्वरूप से चलाय मान नहीं तो जिन जेनादि पदार्थों को आप विषय रूप मानते हो या विषयिरूप जो विषयि रूप भानोग मो नही क्योंकि तुझा ने कहे हुए पदार्थों को प्रमेय रूप होनेसे इस पूर्व लेखसे विरोध है जो विषय रूप मानते हो तो जिन जेनादि पदार्थों को माध्य होने से अपने मत का मूल आपुने ही अप्रमाण स्वीकार किया इससे नियह स्थान की प्राप्ति हागी हमारे मत में तो प्रमाण का प्रामाण्य स्वतः परतः होने से कोई दोष नहीं अत्र प्रमाण विषयक विचार समाप्त हुआ इसमें तुझारे प्रश्न का अवकाश नहीं और हमने जो पहिले सुख मार्ग के टूटने के लिये इत्यादि प्रश्न किया था उस का उत्तर तुमने कुछ नहीं दिया उसको ऊपर सबसे पहिले विचार करना चाहिये क्या कि वह प्रयोजन रूप होनेसे निमित्त है अब यह विचार प्रवृत्त हुआ कि जैन मत प्रमाण सहित है या अप्रमाण सहित है तो जैन मतका देखना प्रमाण सही होगा इससे प्रमेय रूप जैन सम्पादायसे पहिले प्रमाण सिद्ध हो-ही जायगी उसमें यहो विचारते हैं कि जिन पदका अर्थ कोई मनातन सर्वज्ञ नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव नित्यैश्वर्य सम्पन्न है तो वही मनातन सबका नियन्ता ईश्वर सिद्ध होजायगा इससे आनीश्वरवादका खंडन होजायगा और जो किसी काल में पैदा हुआ जिन पद का अर्थ है तो उसे आधुनिक को अनित्य होनेसे उसको उपामना अकल्पाण कारी हागी इत्यादि दोष आवेंगे, यह भाषानुवाद तो हमने उनके संस्कृत लेखानुसार किया है ।

परन्तु मुख द्वारा उन्होंने इस का वर्णन बहुत अस्तव्यस्त किया और किमी प्रयोजन से समय बिताना चाहा जिस से यह भी स्वर न रही कि हमने लिखा क्या है और कहते क्या हैं पंडित देवदत्त जो की यह दशा देखकर पंडित छेदालाल जैन धर्मावलम्बी ने सभासदां की साक्षिता से निवेदन किया कि हमारे इनके यह परस्पर ठहरी थी कि संस्कृत के लेखा नुसार भाषानुवाद कर के सभा में प्रवण करादिया करेंगे अब पंडित देवदत्त

जी का भाषानुवाद संस्कृत लेख से विरुद्ध और वृथा लाप सहित है इसको अवण कर पूर्वोक्त अनुवाद के समर्थन निमित्त पंडित भीमसेन जी ने कहा कि हमारे पंडित देवदत्तजी का भाषानुवाद संस्कृत लेख का अक्षरार्थ तो नहीं परन्तु आशय उसीका है कहीं-विशेष बर्णन इस लिये कर दिया है कि सभासद बिनाविस्तार से कहे समझ नहीं सकते परन्तु अर्थ भेद पूर्वक लेख से विरुद्ध व्याख्यान भाषा में नहीं दिया-उसके उत्तर में पंडित केदालाल ने कहा कि यह कथन आपका पक्ष पात रूपी दुराग्रह से अपने दोष छिपाने के अर्थ मिथ्या है नहीं तो हम आपसे जो पूछते हैं कि पंडित देवदत्त जीने जो यह कहा है कि यह लोग बराबर प्रमाण को पूछते हैं सो प्रमाण प्रसिद्ध ही है सब लोग जानते हैं कि इन्द्रिय प्रमाण है और उसको जान कर सब व्यवहार करते हैं और प्रमाण को प्रमाणता पूछना मूर्खता का काम है जिस रीति से प्रमाण से और पदार्थ जाने जाते हैं उसी रीति से वह अपना निश्चायक है और जो प्रमाणको प्रमाणता और दूसरे से हाता उसकी भी और दूसरे से हानो चाहिये इस रीति से बराबर अनवस्था चलीजायगी तो किसी का ठीक न रहेगा सो यह अनुवाद कोनसे अक्षरों का विशेष अर्थ वा आशय है आपने अपने संस्कृत पत्र में—(प्रमाणस्य प्रामाण्यं स्वतः परतश्च) सभा में बिदित किया था तथा हमारे पहिले पत्र के उत्तर में द्वितीय पत्र आप का है उस में भी यही लेख है अब आप ही कहिये कि इन लेखों से यह विरुद्ध है या नहीं महाराज इसमें कुछ आपका ही विशेष अपराध नहीं है यह लीज तो आपकी गुरु आश्रय पूर्वक है क्योंकि तुम्हारे समाज के मूल कर्ता स्वामी दयानन्द जी ने भी बहुत से लेख प्रथम मुद्रित सत्यार्थ प्रकाश से विरुद्ध द्वितीय वार मुद्रित सत्यार्थ प्रकाश में (अर्थात् पहिले में यज्ञ में पशु मारण दूध घृत वत् मांस को भी विधि लिखी और फिर जैनियों के अहिंसा पर निर्दोष शास्त्रों को देख कर इससे विरुद्ध निषेध लिखा) लिखे हैं और दोनों ग्रन्थों की प्रमाणता के निमित्त दूसरे की भूमिका में लिख दिया कि प्रथम सत्यार्थ प्रकाश से इसमें कही २ शब्द वाक्य रचना का भेद तो हुआ है सो करना उचित था अर्थ का भेद नहीं किया है प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है सो यह आप साहवी को अच्छा शब्द भेद पूर्वक विशेष कथन करना आता है महाराज अब हम (पक्षपात रूप दुराग्रह परिपाटी) को छोड़ कर

सत्य का ग्रहण कीजिये और वृथा समय व्यतीत न कीजिये देखी कल दिन के दो २ बजे तक तो व्यर्थ समय गया था परन्तु फिर थोड़े ही से समय में परस्पर तीन २ पत्रों का लेख और उसका सभा में भाषानुवाद हो गया आध्न्य अब तक हमने जो आप के तीसरे पत्र का उत्तर में अपना चौथा पत्र दिया उसका भी उत्तर आपने नहीं लिखा हमारे तीसरे पत्रोत्तर के भाषानुवाद में इतना समय व्यतीत कर दिया इसमें क्या कारण इसके श्रवणानन्तर भी आर्य समाजी पंडितों ने मुख से व्याख्यान करने ही का हठ रक्खा और जो समय आज शास्त्रार्थ का १२ बजे दिन से तीन बजे तक नियत हुआ था उसकी समाप्तिकी बाट देखते रहे वह समाप्त हुआ प्रबंध कर्त्ताओं ने सभाका विसर्जन करा दिया फिर तो आर्य समाजी पंडित बन्धनग्रह से कूटे मनुष्य के समान आनन्द मनाते हुए और हमारे ४ चौथे पत्रका उत्तर वहां लिखनेमें असमर्थ होकर सभाके चलटिये आज इनकी औरसे बिलम्बका कारण यह प्रतीत हुआ कि इनकी स्वामी भास्करानन्द के आने की आशा तो कूट गई थी परन्तु पंडित ठाकुरप्रसाद (जो आगरा कालिज स्कूल के हेड पंडित हैं) जीकी आज तीन बजे दिन की रेल में आने की पूरी आशा थी सो विचारों की प्रारब्ध से उक्त समय पर उक्त पंडितजी भी आगए फिर तो आर्य समाजियों की अत्यन्त हर्ष हुआ और यह विचार किया कि आज के इस पत्र का उत्तर तो हम इन की सम्प्रति से लिखदेंगे और आगे की फिर कलदिन में इन जैनी पंडितों के साथ हम पण्डित ठाकुर प्रसाद जी से शास्त्रार्थ करावेंगे ।

## तृतीय दिन प्र० चैत्र शु० ६--१८ मा० का विचार

आज के शास्त्रार्थ निमित्त दिन के एक १ बजे से चार ४ बजे तक समय नियत हुआ और आर्य समाजी पंडित ठाकुर प्रसाद जी सहित आनंद मनाते समय से पूर्व ही सभा में उपस्थित होगए उक्त नियत समय तक प्रबंध कर्त्ता और सभासद भी बहुतसे एकत्र होगए शास्त्रार्थ होनेका अवसर पाया कि आर्य समाजियों ने पहले ही से यह कीलाहल कर दिया कि हमारी ओर से दो दिन से पंडित भीमसेन जी और देवदत्त जी शास्त्रार्थ निमित्त नियत हुए थे आज देवदत्त जी की जगह पंडित ठाकुरप्रसाद जी नियत होंगे यह अवण करके चौबे ज्वालाप्रसाद जी सभापतिने पंडित केदालाल जैनधर्मी से

कहा कि इस में आपकी क्या सम्मति है उक्त पंडित ने कहा कि हम पंडित ठाकुर प्रसादजी से शास्त्रार्थ करने का बहुत राजी हैं परन्तु ठाकुर प्रसादजी आर्य समाजी नहीं हैं इससे वह लिख दें कि हम भी आर्य समाजी दयानन्द मतानुयायि आजसे हुए क्योंकि हमारा शास्त्रार्थ पूर्वोक्त समाजियों से ही है और पंडित भीमसेन जी और देवदत्त जी अपनी शास्त्रार्थ करने में असमर्थता विदित कर पराजय लिख दें उक्त सभापति जी ने यह बात उचित समझ कर अपने लघुभ्राता चौबे कमलापति आर्य समाजी से कही कि तुझ्वागे और जैनियों के बीच में यह नियम हांगया था कि पंडित भीमसेन जी और देवदत्त जी तो आर्य समाजियों की ओर से शास्त्रार्थ करने निमित्त नियत हुए और पंडित छेदालाल पन्नालाल जैनियों की ओर से इन उक्त पंडित चारों के सिवाय और किसी का अधिकार शास्त्रार्थ करने का नहीं दिया गया था इसको अवगण कर सब आर्य समाजी एकत्र होकर कोलाहल मचाकर कहने लगे कि कौनसा नियम पच है जिसमें यह नियम लिखा कर हमारे हस्ताक्षर करालिये है ना दिखाई दे यह इनका मिथ्या उपद्रव देखकर भिव डम्पे कटर साहब फीरोजा बाद ने अपनी रपोट जिस पर उभय पक्ष के प्रबन्ध कर्ताओं के हस्ताक्षर थे पढ़कर सभा में सुनाई तबतो लज्जित हांगए और कहने लगे कि अब यह नियम नवीन नियत होजाय तो इस में इन जैनों पंडितों की क्या भय है ॥

इसके उत्तर में पंडित छेदालाल ने कहा कि हम की कुछ भय नहीं है पण्डित ठाकुरप्रसादजी पर क्या है जिसको आप अपने मतमें आदितोय पण्डित समझते हो उसे सन्मुख शास्त्रार्थ निमित्त करदीजिये परन्तु पण्डित भीमसेनजी और देवदत्तजी पूर्वोक्त लेख हमारे कथनानुसार लिख दें तो हम शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं इसको कथन अवगण कर उक्त सभापति न्याय भार्गी ने यहो न्याय किया कि आर्य समाजी अपनी ओर से शास्त्रार्थ निमित्त और नवीन पण्डित नियत करें तो पहिले नियत हुए पण्डितों से पूर्वोक्त लेख जैनियों के पण्डितों के कथनानुसार लिख दे यह कथन सभापतिजी का अवगण कर उक्त चौबे कमलापति आर्य समाजी ने कहा कि हमारी जयपराजय तो पण्डित ठाकुरप्रसादजी की जय पराजय से है तब तो उक्त सभापति जी ने कहा कि अब ठाकुरप्रसादजी का शास्त्रार्थ में वीर ने का अधिकार

दिना दीनी पत्र को प्रसन्नाताके नहीं हो सकता यदि तुमको अपनी जयका इनके ऊपर हो विश्वास है तो अपने पूर्वोक्त पण्डितों से पूर्वोक्त लेख लिखा देना पड़ेगा जबशास्त्रार्थ का प्रारंभ पण्डित ठाकुरप्रसादजीसे जैनियोंके पण्डित करेंगे यह श्रवणकर चौबे कमखा पतिजी ने अपने पण्डितों की ओर देखा तो पं० लोमसुभित झाकर कहने लगे कि ऐसा लेख हम कदाचित् न लिखेंगे आप अब हमको ही शास्त्रार्थ करने दोजिये इस वादानुवाद करनेमें एक घंटाब्यतीत होगया जब दो घंटा हो समय बाकी रहा तो प्रबन्धकर्त्ताओं ने यह प्रबन्ध किया कि आज ३० मिनट प्रथम जैनियों के पूर्वोक्त नियत पण्डित इनके पत्र का भाषा नुवाद सहित उत्तर दें इसकी पीछे ३० मिनट आर्य समाजियों के पूर्वोक्त नियत पण्डितोंको इनके पत्रोत्तरके लिये दियेजाय इसी भांत फिर जैनी पण्डित इनके उत्तर देने में ३० मिनट ले और इसी भांत आर्य समाजी, इस रीति में आज दो २ पत्रोत्तर तो परस्पर होजायंगे इसके पश्चात् रुभा पति को अज्ञानुमार प्रथम जैनियों को आर से पण्डित पन्नालालजी आर्य समाजियों का चौथे पत्र के उत्तर में पत्र पांच में का व्याख्यान संस्कृत और भाषानुवाद श्रवण कराने को सभा में खड़े हुए ।

## पत्र पांचवां जैनियों का आर्यसमाजियों के चौथे ४

### पत्र के उत्तर में

यच्चपूर्वपत्रेभवद्भिरुद्धैर्लिखित प्रश्नानामुत्तरान्तुजातं भूयःयिष्टपेपणवद्, सइति तन्नमस्यक् प्रमाणस्वरूपनिश्चित सङ्ख्ययोरभिमतप्रमाणलक्षणानाञ्च कश्चिदपिपत्रे लेखनाभावा ब्रह्मिलामन्तरिण वस्तुपरिमाणमुपलभ्यतेतत्प्रामाण्यं स्वतःपरतश्चेत्यशिरस्कवचनब्रुवाण्युत्थाभिःकोडीकृतः प्रमाणविषयकोविचारश्चरमवर्णध्वंसगतइति तदपिचित्रं खपुण्यरितिवत् प्रतीयमानत्वात् नहि किञ्चित्पदार्थापेक्षयास्वतःपरत इत्यङ्गितंयुष्माभिरतौयुक्तिविरहादतिमाहसमात्रमेतत्कथनमितिपश्यामः किंपुनर्वहुविडम्बनेन ( यच्चयदिविषयिरूपस्यप्रमाणस्यस्वरूपादचाञ्चाल्यन्तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयरूपत्वविषयरूपत्वाकिंभवद्भिरङ्गोक्तियते यदिविषयरूपत्वमुरोक्तियते तन्न युक्तदत्त पदार्थानां प्रमेयरूपत्वात् इतिपूर्वलेखेनविरुद्ध्यते यदिच विषयरूपत्वमर्हिजिनजैनादिप

कदाचित् इसके बदले में आप कहें कि आपही को क्या आश्चर्य है जो अंग्रेजों जिन देवता के लक्षण स्वरूपादि के विचार में प्रवृत्त नहीं होते इससे आप भी इसमें असमर्थ मान्य हो जाते हो सो महाराज हमारे असमर्थता से आश्चर्य नही है हम न्याय पूर्णक कहते हैं कि इन पदार्थों के सत्यासत्यता निर्णय फिर भी आप प्रमाण द्वारा विचार करेंगे क्योंकि आप ने इस अपने चौथे ४ पत्र में लिखा है कि जिन अतको परोक्षा प्रमाण ही से करेगा तो उस समय हमारे आप के प्रमाण स्वरूपादि में विवाद होने से फिर भी उसका निर्णय करना पड़ेगा इसमें प्रथम ही उसका निर्णय करनीजिये क्योंकि उसका निर्णय सबसे प्रथम प्रयोजन भूत है और आप फिर भी कहें कि जिन देवताही का लक्षण स्वरूपादि कहे तो हम को इस में भी शक नही होता परन्तु महाराज कोई सरल चित्त जिज्ञासु संदेह निवारणार्थ हमसे प्रश्न करता है तो हम उसी समय उसके संदेह निवारणार्थ जो हमारे आर्थ ग्रन्थों में निम्न लिखित आदिजिन देवका स्वरूप कहा है कहते हैं ।

सर्वज्ञो जितारागादि दोषस्तै लोकोपजितः यथास्थितायशादोचदेवोऽर्हन्परमेश्वरः १ रागादिदोषां काजीतवानातै लोकोपजितः पूजनीय यथावत्पदार्थोका वक्ता और सर्वज्ञ जो अर्हन् देव है वह ही परमेश्वर है अर्थात् जो रागादिदोषों से रहित और सर्वज्ञ और यथावत् पदार्थोका कहने वाला (आम) उसको हम अपना इष्ट अर्हन् देव मानते हैं तथा उसको शब्द भेद से जिन कहते हैं जयतिराग हं षादिकर्माणि इति जिन अर्थात् जो रागादि दोषों को तने और सर्वज्ञादिगुणयुक्त होने से सब से उत्तम है वह जिन है ॥

इसको अवगणकर आर्यनमाजी हमारे पत्र के उत्तर देने से अपनी असमर्थता छिपाने के लिये बितंडा वादपूर्वक प्रमाणविषय को छोड़ इस श्लोक के विषय में विवाद करने की उद्यम हुये और इस श्लोक पर यह आक्षेप किया कि देखो इन जैनी पंडितों की माया कि अपने जिन देवता को सभा में सभासदां के अक्षि नही इह कारण सर्वज्ञ कहते हैं और हमारे स्वामी जी ने इन ही के शास्त्रों के श्लोक सत्यार्थ प्रकाश में लिखे हैं जिससे प्रकट होजायगी कि ये लोग किसीको सर्वज्ञ नही मानते हैं ॥

अर्चत् देव का स्वरूप चन्द्र सूरी ने आप्त निश्चयालंकार ग्रंथ में यहाँ कहा है कि

सत्यार्थप्रकाश ४१३ पत्र ६ पंक्तिसे

सर्वज्ञो जीतगादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः  
यथास्थितार्थवादी च देवो ह्यन्यरमेश्वरः ॥ १ ॥

वेमही तातातिनी ने भी लिखा है कि

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः ।  
दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिङ्गं वा योऽनुमापयेत् ॥ २ ॥  
न चागमविधिः कश्चिन्नित्यसर्वज्ञबोधकः ।  
न च तत्रार्थवादानां तात्पर्यमपि कल्प्यते ॥ ३ ॥  
न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदस्ति त्वं विधीयते ।  
न चानुवादितुं शक्यः पूर्वमन्यैरबोधितः ॥ ४ ॥  
अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञादिमान् ।  
कृत्रिमेण त्वसत्येन सकथं प्रतिपाद्यते ॥ ५ ॥  
अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रतीयते ।  
प्रकल्पेत कथं सिद्धिरन्योऽन्याश्रययोस्तयोः ॥ ६ ॥  
सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्ति ता ।  
कथं तदुभयं सिध्येत् सिद्धमूलान्तरादृते ॥ ७ ॥

जो रागादि दोषों से रहित जे लोका में पूजनीय यथा वत् पदार्थों का  
ब्रह्मा सर्वज्ञ अर्हन्देव है वही परमेश्वर है ॥ १ ॥

जिसलिये हम इस समय परमेश्वर को नहीं देखते इस लिये कोई सर्वज्ञ  
अनादि परमेश्वर प्रत्यक्ष नहीं जब ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं तो अनुमान  
भी नहीं छट सकती क्योंकि एक देश प्रत्यक्ष के बिना अनुमान नहीं  
हो सकती ॥ २ ॥

जब पुत्रराज अनुमान नहीं तो आगम अर्थात् नित्य अनादि सर्वज्ञ परमात्मा का बोधक शब्द प्रमाण भी नहीं होसकता जब तीनों प्रमाण नहीं तो अर्थवाद अर्थात् स्तुति निन्दापर कृति अर्थात् परायेचरित्र का वर्णन और पुरा कल्प अर्थात् इतिहास का तात्पर्य भी नहीं घट सकता - ॥ ३ ॥

और अन्याय प्रधान अर्थात् बहु व्रीहि समास के तुल्य परोक्ष परमात्मा की सिद्धि का विधान भी नहीं होसकता पुनः ईश्वर के उपदेष्टाओं से सुने बिना अनुवाद भी कैसे होसकता है ॥ ४ ॥

बीच में सर्वज्ञ हुआ अनादि शास्त्र का अर्थ नहीं होसकता क्योंकि किये हुए असत्य वचन से उसका प्रतिपादन किस प्रकार से होसके ॥ ५ ॥

और जो परमेश्वर ही के वचन से परमेश्वर सिद्ध होता है तो अनादि ईश्वर से अनादि शास्त्र की सिद्धि अनादि शास्त्र से अनादि ईश्वर की सिद्धि अन्योन्याश्रयदोष आता है ॥ ६ ॥

क्योंकि सर्वज्ञ के कथन से वह वेदवाक्य सत्य और उसी वेद वचन से ईश्वर की सिद्धि करते हैं यह कैसे सिद्ध होसकता है उस शास्त्र और परमेश्वर की सिद्धि के लिये तीसरा कोई प्रमाण चाहिये जो ऐसा मानोगे तो अनवस्था दोष आवेगा ॥ ७ ॥

यह भाषा में अर्थ तो सत्यार्थ प्रकाश के अनुसार लिखा है परन्तु उनोंने और भी कुछ वृथा लाप करके उक्त समय नियत को पूरा किया तदनंतर पं० छेदालाल ने कहा कि यह श्लोक लिख कर आप हम को हस्ताक्षर सहित देदे क्योंकि आपने हमारे मत पर मिथ्या आरोप किया है इससे हमारे मतकी निन्दा भी हुई यह सुनकर पण्डित भीमसेनादि बोले कि हम हस्ताक्षर सहित इन श्लोकोंको नहीं देंगे क्योंकि हम स्वामीजीके लेखानुसार कहते हैं तुम को जो कहना हो सो हम लेख पर कहिये यह कहकर इसके बदलेमें जो हमारे चौथे पत्र का उत्तर अपना पांचवा पत्र पण्डित ठाकुरप्रसादजी की सम्मति से लिखाया था सो हस्ताक्षर करके देदिया और कहा कि हमारे उक्त कथन को जो मिथ्या कहतेहोता युक्तिपूर्वक दिखाईये वृथालापसे कुछप्रयोजन नहीं इस प्रकार आर्य समाजियों ने अपने स्वामीजीकी बिहता के अभिमान से जिन मत पर सर्वज्ञ न मानने का मिथ्या दोष प्रकट किया तब पं० छेदालाल ने कहा कि आप असमर्थता में प्रवीण विषय को ऊँड़ कर ६ १ ७



के मिथ्या कथन के अभिमान से इस विषय पर शास्त्रार्थ करना चाहते हैं तो अब हम सब से प्रथम आपके स्वामीजी ही की इस लेख लिखने में यत्ना नता प्रकट करते हैं तो यह है कि इस लेख की स्वामीजी ने सर्व दर्शन संग्रह ग्रन्थ से उद्धृत किया है परन्तु सर्व दर्शन संग्रह के पूर्वापर ग्रन्थ के तात्पर्य को इतना भी न समझे जितना थोड़े से शास्त्र के जानने वाले समझते हैं देखो उक्त ग्रन्थ में आर्हत दर्शन प्रकरण में अर्हत का स्वरूप आत्मनिश्चया लङ्कार ग्रन्थ के विषय चन्द्र सूरि मुनि के कथनानुसार पूर्वाक्त (सर्वश्रीजित रागादि०) श्लोक लिखा है जिससे हम जिन मत में सर्वज्ञका मानना प्रकट कर चुके हैं फिर सर्वज्ञ के खण्डनके लिये किसी वादी ने मीमांसक मतानुयायी भट्टसम्प्रदायवाले का आशय लेकर यह शंका की कि सर्वज्ञ कोई नहीं क्योंकि सर्वज्ञ के आह्वक प्रत्यक्षादि उसमें नहीं घट सकते फिर उक्त शंका की पुष्टता तौतातिके कथनानुसार प्रत्यक्षादि पांच प्रमाणों के अभाव में सर्वज्ञकी अमिद्धि स्वरूप प्रकाश में (वेत्तेही तौतातिकेने कहा है) इस पूर्वाक्त लेख से प्रकट हो फिर जैनियों के मतानुसार सर्वज्ञका समाधान और पूर्वाक्त तौतातिके कथन के खण्डनार्थ (अवप्रति विधीयते) इत्यादि ग्रन्थ से अनुमान द्वारा सर्वज्ञ की सिद्धि लिखी है जिसको हम स्वामीजी की विद्वत्ता प्रकट करने के लिये उक्त ग्रन्थ के आर्हत दर्शन सम्बन्धी उसी भाग को सम्पूर्ण अभासदों के सम्मुख पटककर सुनाते हैं जिस से जैनियों के मत में सर्वज्ञ की सिद्धि प्रकट है ॥

### सर्व दर्शन संग्रह ३३ पत्र १२ पंक्ति से

अर्हत्स्वरूपश्च चन्द्रसूरिभिरात्मनिश्चयालङ्कारे निरटङ्ककि ॥ सर्वश्रीजित रागादि दोषस्तैर्लोक्यपूजितः ॥ यथास्थितार्थवादीचर्द्वोऽर्हन्परमेश्वरइति, ननु न कश्चित्पुरुषविशेषः सर्वज्ञपदवेदनोयः प्रमाणपक्षमिष्यास्ते सदभाव आहकस्य प्रमाणपक्षकस्य तत्रानुपलम्भात् तथाचोक्तमौतातिकैः, सर्वज्ञो ह्यतेतावन्ने दानीमस्मदादिभिः ॥ इष्टोनचैकदेशोऽस्ति ॥ लिङ्गमवायोऽनुमापयेत् न चागमविधिः कश्चित् नित्यसर्वज्ञबोधकः न चतत्त्वार्थवादानां तात्पर्यमपिकल्पयते न चान्यायप्रधानैस्तैस्तदस्त्वविधीयते ॥ न चानुवादितुं शक्यः पूर्वमन्यैरबोधितः अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान् कश्चि

सिगत्वमत्येन । सकथप्रतिशब्देन अयतद्वचनेनैव । सर्वज्ञोऽन्यैः प्रतीयते ॥  
 प्रकथ्यत कथं सिद्धिः । रन्यान्याययदोस्तयोः ॥ सर्वज्ञोक्ततयावाक्यं सत्यं तेन त  
 दस्तिताकथ तदुभयमिथ्यं त । निहमूजान्त इहे ॥ अमर्बज्ञ प्रणीतान्, वचना  
 न्यूनवर्जितान् ॥ सर्वज्ञमवगच्छन्तस्तदाकृतोक्तं न जानते सर्वज्ञमहं  
 किञ्चिदपि पश्ये मसम्प्रति । उपमानेन सर्वज्ञं । जानीयामततोवयम् ॥ उपदेशा  
 पिवद्वस्वधर्माधर्मादिगोचरः । अन्यथानीपपद्यते सार्वज्ञं यदि नाभदिवत्वादि  
**अत्र प्रतिविधीयते** यदभ्यधायिमज्ञावशात्कस्यप्रमाण पञ्चकस्यनवानुपलब्धा

दितितदयुक्तं तत्समज्ञावादेकस्यानुमानादेः समज्ञावात्तथास्तिकश्चिदात्मा मकलपदा  
 र्थमात्मात्कारी तदग्रहणस्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्ध प्रत्ययत्वात् यतयदग्रहण  
 स्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्धप्रत्ययतत्तत्साक्षात्कारि यथाअपगततिमिरादि  
 प्रतिबन्धलोचन विज्ञानरूपसाक्षत्कारितदग्रहण स्वभावत्वे सति प्रक्षीणप्रतिबन्ध  
 प्रत्ययश्चक्षिदात्मा तस्मात्सकलपदार्थमात्मात्कारीति ॥

इस प्रकार और भी समाधान करके अन्त को इसी अर्थ के ३७ पत्र १५  
 पंक्ति में तस्मान् सार्वज्ञं युक्तं इत्यादि वाक्य लिखे हैं इसका यथार्थ तात्पर्य  
 जो है उसकी मारांश को हम प्रथम ही कह चुके विस्तार के भय से नमस्त  
 की भाषानुवाद करने में उषेला की गई अब देखिये स्वामीजी ने तो हमारे  
 मत पर कृपा आक्षेप के लिये प्रथम (सर्वज्ञावीतरागादि ०) इस ओक से  
 सर्वज्ञ सिद्धि की लिख कर और (ननुनर्कश्चिन्) इत्यादि शक्याय को छोड़  
 कर शंकाके पोषक तौरातितके कथन को हमारा समझकर सर्वज्ञ का न मा  
 नना हमारे मत में प्रकट किया और इसी समुल्लास के ४१४ पत्र २८ पंक्ति में  
 लिख दिया कि (जैनोंके प्रत्यक्षादि प्रमाणी में ईश्वर का खंडन करना आदि  
 व्यवहार अनुचित हैं) दाह २ महाराज स्वामीजी इतनीभी न सूझी किनीता  
 तिति कैशंकापर वाक्यों ने सर्वज्ञ का खंडन, और उसका समाधान कर सर्वज्ञ  
 के मंडन करनेवाले जैनों पर आक्षेप, निश्चय है कि इस असंभव लेखसे स्वामी  
 जी की अज्ञता और विद्वत्ता अवश्य प्रकट होजायगी यद्यपि स्वामीजीने ऐमर  
 अनुचित लेख सत्यार्थ प्रकाश आदिमें बहुत लिखे हैं जिनको सत्यार्थ प्रकाश  
 की समालोचना की मुद्रित करने के समय विदित करें गे विस्तार के भय  
 से उनको समयांतर पर छाड़ कर उसी एक लेख को यहां पर कहते हैं  
 जिससे उनकी आपत्ता आप सय साहबों पर प्रकट हो ।

देखो पूर्वोक्त समुल्लास के ४२८ पत्र ३ पंक्ति में सर्वथाऽनवद्य योगानां त्यागश्चा रिचमुच्यते कीर्तितंतदहिंसादि व्रतभेदेन पंचधा १ अहिंसा स्मृता स्तं यत्र ब्रह्मचर्या परिग्रहाः—इस श्लोकको लिखकर यह अर्थ लिखा है कि सब प्रकारसे निन्दनीय अन्यमत संबन्धका त्यागचारित्र कहाता है और अहिंसादि भेद में पांच प्रकार का व्रत है एक अहिंसा १, दूसरी प्रियवाणी २, तीसरा चोरी न करना ३, चौथा ब्रह्मचर्य ४, पांचवां सबवस्तुओं का त्याग ५, पश्चात्ताप है कि सब प्रकार से निन्दनीय अन्यमत यह किम पदका अर्थ है पांच प्रकार का व्रत यह कहा से लिखा है क्योंकि श्लोक में कीर्तित का कर्म व्रत नहीं है। मत्ता और पहिले पद में सर्वथाऽनवद्ययोगानां के स्थान में सर्वथाऽनवद्ययोगानां यह लिखा और यह भोज विचार कि अनुष्टुप्छंद में ८ अक्षरों का पाद नहीं होता और हो तो अनवद्यका अर्थ अनिन्दनीय होगा निन्दनीय नहीं क्योंकि आपने भी सत्यार्थ प्रकाश में २६ पत्र १८ पंक्ति में अनवद्य का अर्थ अनिन्दनीय लिखा है निदान यह स्वामीजी का अमृत में विषमिलाना अज्ञानता से हुआ वस्तुतः श्लोक का तात्पर्य यह है कि पापके सर्वधों का सर्वथा जो त्याग वह चारित्र कहाता है और वह चारित्र अहिंसा आदि व्रतों के भेद से पांच प्रकार का कहा है—यह श्लोक भी सर्व दर्शन संग्रह आर्हत दर्शन के ३८ पत्र १३ पंक्ति में इन प्रकार कहा है—सर्वथाऽनवद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमुच्यते कीर्तितंतदहिंसादिव्रतभेदेन पंचधा उक्त ग्रंथ का यह श्लोक पढ़कर पं० छेदालाल ने पं० ठाकुर प्रसादजी से कहा कि आप भी विद्वान् हैं इसको देखिये कि स्वामीजी ने इस स्थल में और पूर्वोक्त सत्यार्थ प्रकाश के ४१३ पृष्ठ ६ पंक्ति में (सब ज्ञावीतरागादि) यह श्लोक लिखकर वैसे ही तौतातितो ने कहा है—यह लेख अज्ञानता से लिखा है या नहीं क्योंकि पूर्वोक्त चन्द्र मूरी के लिखित श्लोक के अनुसार तौतातितो ने कहा है या पूर्वोक्त चन्द्र मूरी के लेख पर जो ननु इस ग्रन्थ से शंका की उस शंका के अनुसार तौतातितो ने कहा है आप बिचारिये कि जिनका इतना भी ज्ञान नथा कि शंका कोटोको सिद्धांत कोटी समझकर जैनियों पर वृथा आक्षेप योग्य है वा अयोग्य और यह भी न विचारा कि हम तौतातितो के कथन को चन्द्रमूरी के कथन के अनुसार तो लिखते हैं पर वह लेख चन्द्रमूरी के अनुसार है या विरुद्ध, सिद्धांत बात तो यह है कि चन्द्रमूरी का कथन सर्वज्ञ का प्रतिपादन करता है—और तौतातितो का कथन

सर्वज्ञ का खण्डन करता है इन दोनोंको एक समझना अज्ञानता है या नहीं और दोनों कथनोंको एक सतावजबीके समझ कर वैसेहोतातातितो ने कहा है यह लिख देना शिष्या और अज्ञानतासे अमृतमें विष मिलाया है कि नहीं इसबात को सुनकर पं० ठाकुरप्रसादजी ने पं० छेदालाल से उक्त पुस्तक को देखने के लिये मांगा और पुस्तक देखकर चकित हो गए, फिर पण्डित पन्ना लाल ने आर्यों के पांचवे पत्र का विचार किया ।

## आर्यों का पांचवां पत्र जैनियोंके चौथे पत्र का उत्तर

ओ३म्

जैनानां पूर्व पत्रे व्याकरणानुसारता दिगशुद्धयः

ओमङ्गिः सर्वं व्यवहाराणाम् प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तमिति प्रतिज्ञातम् एतद्वाक्यान्तर्गतमयुक्तमितिभिषाधयिपितम् व्यवहाराणां वैलक्षण्यं दितिहेतुना अत्रायंप्रश्नः व्यवहारवैलक्षण्यरूपहेतुः प्रमाण पूर्वकत्वमप्रमाण पूर्वकत्वं वेत्ययुक्त मितिवाक्यवटितायुक्तत्वरूपसाध्यस्यच कव्याप्तिरस्ति, किं पुरुषायुक्तत्वरूप साध्याभावविशिष्ट बिलक्षणव्यवहारे न प्रवर्तते इत्यतस्तत्सर्वेषां म्पुरुषाणां निष्ठङ्का सर्वत्रप्रवृत्तिः तत्रायुक्तत्वरूपसाध्याभावेन व्यवहार वैलक्षण्य रूपहेतुसमत्वे नायुक्तायं हेतुः निर्वच्छिन्नमूलधूमसत्त्वबन्धरवश्यंभावनियमात्, किञ्च व्याकरण शास्त्रोक्तदिशानेकशुद्धिप्रस्तत्वे न पृष्ठापरविराधमज्ञावेन चान्यन्तोपेक्षोभवतांलेखः अशुद्धीनामनेकत्वात्ताद्यसमयान्तरप्रदर्शयिष्यामः विरामाध्याधेयान्तराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यादितिवाक्ये तत्प्रमाणं किमिति वाक्येन प्रश्नः कृतः, लिख्यते चाप्येनास्मान्मन्त्रमात्रस्वरूपादौ सशय इति रात्रिन्दिवयोरिवात्यन्तविराधाक्रान्तत्वात् अप्रियसर्वे व्यवहाराः प्रमाणनिर्णयमकृतवैव प्रवर्तन्ते नायं नियमः प्रमाणानिच प्रमाणत्वेन शालग्रानवतां प्रमाणत्वे नाज्ञातानि शास्त्राज्ञानवतांच प्रमाणत्वे नाज्ञाता अपि व्यवहारप्रतिबन्धकानभवन्तीति मन्मतम् प्रमाणनिर्णयमनधिगम्यापि प्रवर्तन्ते च विद्वंसः प्राकृताद्यजनाहहादिषु क्रयविक्रयव्यवहारै, भवद्विरपि कतिप्रमाणानि ज्ञातचितेपां लक्षणानीति निर्णयमकृतवैव पत्रलेखनं कृतततश्च सिद्धमन्तय्यहादिनाः सभायां मतप्रावच्यदौर्बल्याभ्यां जयपराजयौ निश्चीयेता अथतत्रैव चेदाग्रहः सभायां सागत्यतद् विषयकाः प्रश्नाः क्रियन्तामित्यलंभुक् ॥

ह० भीमसेनशर्माः

ह० देवदत्त शर्माः

## भाषानुवाद

आपन यह प्रतिज्ञा की कि यह बात अयुक्त है कि सब व्यवहार प्रमाण पूर्वक या अप्रमाण पूर्वक होते हैं इसमें अयुक्त साध्य है और व्यवहारों में वैलक्षण्य हेतु है इसमें यह प्रश्न है कि व्यवहार वैलक्षण्य हेतुको और अयुक्त त्वरूप साध्य की कहां व्याप्ति है क्या मनुष्य अयुक्तत्वरूप साध्य से विलक्षण व्यवहारों में नहीं प्रवृत्त होता सब मनुष्यों की सब जगैनिःशंक प्रवृत्ति देखते हैं वहां अयुक्त त्वरूप साध्य नहीं और व्यवहार वैलक्षण्य रूप हेतु है इससे हेतु अयुक्त है, जहां पर्वत के मूल से आकाश तक धूम ही वहां बन्ध के अवश्य होने का नियम है और व्याकरण की रीति से अनेक शुद्धि और पृथी पर विरोध होने से आपका लेख अत्यन्त उपेक्षा करने योग्य है वे अशुद्धि कालोत्तर में दिखावेंगे और विरोध यह है कि जिससे व्यवहारों को प्रमाण पूर्वकत्व है वह प्रमाण क्या इससे प्रश्न सार्थक है इस वाक्य में वह प्रमाण क्या इस वाक्य से प्रश्न किया और आगे जाकर लिखा कि हम को प्रमाण स्वरूपा दिक में मंशय नहीं सो यह रात्र दिन में के समान अत्यन्त विरुद्ध है और यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाण निर्णय के बिना किये ही प्रवृत्त हैं और शास्त्र के ज्ञान वालों को प्रमाण रूप से नहीं जाने हुए और शास्त्र के अज्ञानियों को प्रमाण रूप से नहीं जाने हुए भी प्रमाण व्यवहार के प्रतिबन्धक नहीं होते यह सम्मत है और प्रमाण निर्णय के बिना किये भी विद्वान् और हट्ट आदि के लज्जे देने में प्राकृत जन प्रवृत्त होते हैं तुमने भी कितने प्रमाण और उन को क्या लक्षण यह निर्णय किये बिना ही पत्र लिखा तिससे यह बात भिन्न हुई कि वाटियों के मत की प्रबलता और दुर्बलता से ही जयपराजय का निश्चय होता है जो उसी (प्रमाण निर्णय) में आप्रवृत्त है तो सभा में आनकर उस विषयक प्रश्नकरा विद्वानों में इतना बहुत है

## जैनियों का छटापत्र आर्यों के पांचवें पत्र का उत्तर

अस्माकंपत्रे व्याकरणानुसारतो दिक् १० अशुद्धयुद्धाविताः - भवत्यत्रत्य (मंहितैकपदेनित्येत्यादि) व्याकरणरीत्यादशाधिका शुद्धिभरतत्वे पिसंहिताज्ज्ञोःपरित्यज्य ताण्णामुद्देशोलिख्यन्ते या व्याकरणज्ञानलेख्यत्वं वाभावस्वाध्यायन्ति ताश्चविद्वद्दृष्टिगोचरीकरणीयलिख्यन्ते २पक्षीअयुक्तत्वमितिलेख्यं अयुक्तमिति लेखः भवतानैयायिकत्वं जल्पति, सप्तमपङ्क्तौ (निर्विच्छिन्न मूलधूमसत्त्वबन्धे रक्षणे

भावनियमात् - इतिगद्यो निर्वच्छिन्ने त्वस्यस्थाने निर्वच्छिन्ने तिसत्वे लेख्ये स  
त्वेतिने वशाज्ज्ञानत एव - अष्टमपङ्क्ती - व्याकरणशास्त्रोक्तदिशानेकशुद्धि  
स्तत्वं नेतिवाक्ये - दिशानेकाशुद्धिस्तत्वे तिलेख्ये दिशाने कशुद्धिस्तत्वं नेति  
लेखोपितथैव . त्रयोदशपङ्क्ती विरोधप्रदर्शनेरात्रिन्दिवयोरिति लेख  
स्तुमहदज्ञानत एव किमचतुरविजतुरेत्यादि सूत्रनाधीतयेनतदपि न  
ज्ञातम् रात्रिन्दिवेति समस्तरात्रिदिनरूपाधारबोधकम्यदमिति, पंचदशषो  
डशपङ्क्ती उभयत्रज्ञातानोति लेख . प्रतिबन्धकानभवन्तीति लेखश्चपाण्डित्यसूचक  
एव प्रमाणानिचव्यवहारप्रतिबन्धकान भवन्तीति बालेनापि वक्तुमशक्यत्वात्  
विशेष्यविशेषणयोः समानलिंग विभक्तित्व नियमात् द्वितीयपृष्ठप्रथमपङ्क्ती  
निश्चयेत इति लेख्ये निश्चयेतो इति लेखोपि व्याकरणानभिज्ञत्वबोधकपठेत्य  
लम्बदृशज्ञानप्रदर्शनेन , इदानीन्तदुत्तरं लिख्यते ।

नास्माकमयुक्तत्व सिषाधयिषितव्यवहाराणां बलक्षयं हेतुं किन्तु सर्वव्यवहा  
राणाम्प्रमाणाप्रमाणपूर्वकत्वनियमा भावः नियमाभावेचव्यवहारबैलक्षण्यहेतुः  
नियमाभावाद्युक्तत्वव्याप्तएव व्यवहाराणां प्रमाणाप्रमाणोभयपूर्वकत्वस्य जगति  
प्रसिद्धत्वात् कचित्कूटकार्पापणादिनापि व्यवहारदर्शनात् , केनोक्तमयुक्तत्वरूप  
साध्याभावविशिष्टबिलक्षणव्यवहारे पुरुषो न प्रवर्तते परन्तु यथायुक्तं प्रवर्तते तथा  
युक्ते पि कश्चित्प्रवर्तते याथार्थ्यन्तु प्रमाणपूर्वक व्यवहारस्यैवेत्यन्यदेतत् अशुद्धय  
स्तु भवन्ते स्वापेक्ष्यान्युनापेति प्रदर्शितमेव विरोधप्रदर्शनेतुस्तु कीय लङ् इत्येव  
कमेव यतस्तत्प्रमाणङ्किमितास्मदीयप्रश्ने न, नास्माकम्प्रमाणरूपादौ नश्य, इत्य  
स्मल्लेखोन विरुध्यते अस्माक संशया भावेपियं ज्ञानोद्यनवेति प्रश्नस्य मर्थक्यात्  
भवत्कथननत्वज्ञानैवपृच्छे तन ज्ञातायतो जिज्ञासुरेवा ज्ञातापृच्छति परपराजयेच्छ,  
स्तु ज्ञातेवपृच्छति यदि सर्वव्यवहाराः प्रमाणनिर्णयमकृत्वं वप्रवर्तन्ते नार्थनियम  
इतिलेखेनापि प्रमाणनिर्णयकृत्वं व्यवहारप्रवृत्तिबोधनेन प्रमाण निर्णयोभव  
तामपरानुमतएव अये चाज्ञातानामिव प्रमाणानां शास्त्रज्ञानवतां शास्त्रज्ञानव  
तांच व्यवहारप्रतिबन्धकाभावबोधन लघुतममेव ये प्रमाणनिर्णयमकृत्वाहहा  
दिप्रुप्रवर्तन्ते तेराजदंडं किं नलभंते अतु सभन्त एवेत्य तदपि कथनन्तु च्छमेव यदि  
प्रमाणस्वरूपलक्षणसंख्यादिक मङ्कनङ्कत्वास्मल्लं खोभवेत्तदाशास्त्रार्थस्य कि  
म्ययोजनमस्तीति बट, वादिनामैतत्प्रावत्यदौ वल्पाभ्याञ्जयपराजयनिश्चयवर्णनम  
पिमहल्लघुसूचकखण्डनप्रमाणलक्षणादिपङ्क्तिलापन-अनुमानादिष्वपि जयपरा

जय दर्शनात् किंचमतप्रावर्त्यदौर्वर्त्ये अपि प्रवलदुर्बलप्रमाणस्यैवाधीने इति सर्व  
शास्त्रकृतम्, पर्यवसाने तत्र वाग्रहस्यैव भायामागत्य तद्विषयकाः प्रश्नाः क्रियन्ता  
मिष्यति साह सम्—यतोस्यैवास्मत्कृतप्रश्नस्य युक्तमतानुयायिमात्रं पराजयं कर्तुं  
त्वात्—अलम विचारिषु ॥

ह० छेदालाल जैन धर्मिणः

ह० पन्नालाल जैन धर्मिणः

### भाषानुवाद

हमारे पत्र में आपने व्याकरणके अनुसार दश अशुद्धि बताई — और आप  
का भी यह पत्र यद्यपि (संहितेकपदेनित्यादित्यादि) व्याकरण रीतिसे दश से भी  
अधिक अशुद्धियों से युक्त है तो भी हम उन अशुद्धियों को छोड़कर उन्हीं  
अशुद्धियों को लिखते हैं जिनसे व्याकरण ज्ञान के लेखका सर्वथा  
अभाव प्रतीत हो, वे अशुद्धि इन विद्वानों के दिखाने लिये लिखी हैं, रपंक्तिमें  
अयुक्तत्व साध्यको जगै अयुक्त साध्य लिखना यह कहता है कि आप बड़े नैया  
यिक हैं सातवीं पंक्तिमें जो (निर्वच्छिन्नमूलधूमसत्वबन्धे रवश्यं भावनियमात्) यह  
वाक्य है उसमें निर्वच्छिन्न के स्थानमें निर्वच्छिन्न और सत्वे के स्थानमें सत्व लिखा है  
वह अज्ञानता से हुआ है — आठवीं पंक्ति के (व्याकरणशास्त्रोक्तदिशानेकशुद्धि  
यस्तत्वे न) इस वाक्य में अनेकशुद्धियस्तत्वे न लिखना था अनेक शुद्धियस्तत्वे न  
लिखना भी अज्ञान से ही है — तेरहवीं पंक्ति में जो विराध दिखाने में  
(राविन्दिवयोरिव) यह लेख है वह तो अत्यन्त अज्ञानता से है क्या  
अवनुर यह सूत्र भी नहीं पड़ा जिससे आपने यह नहीं जाना कि राविन्दिव  
यह समस्त पद और आधार का वाचक है रात दिन का नहीं और द्वित्रच  
न नहीं हो सकता, पन्द्रह और सोलह पंक्तिमें दोनों जगह अज्ञातानि लिख  
ना और प्रमाणानि प्रति बंधका न भवति यह लिखना इस लिये मूर्खता का  
सूचक है कि बालक भी ऐसा नहीं कह सकता क्योंकि विशेषण और विशेष  
में एक विभक्ति और एक ही लिंग होता है — दूसरी पृष्ठ की प्रथम पंक्ति में  
निश्चयेते के स्थानमें निश्चयेतो लिखना भी व्याकरण की अज्ञता का बोधक  
है — इससे बहुधा अज्ञान दिखाना इतना ही बहुत है ।

### अब उनके पत्र का उत्तर लिखते हैं

अयुक्तत्व रूप साध्य में व्यवहार बेलक्ष्ण हेतु हमारा नहीं है किन्तु सब

व्यवहारों को प्रमाण पूर्वकत्व नियम का अभाव हेतु है और उक्त नियमाऽभाव में व्यवहार वैलक्षण्य हेतु है नियमाभाव अयुक्तत्वका व्यापक है ही अर्थात् जब उक्त नियम नहीं तो सब व्यवहारों को प्रमाण पूर्वकत्व भी नहीं क्योंकि कि जगत् में प्रमाण अप्रमाण उभय पूर्वक व्यवहार प्रसिद्ध हैं क्योंकि खोटे सोने से भी कहीं व्यवहार देखते हैं - और यह बात हमने कहाँ कहाँ है कि अयुक्त साध्य शून्य (युक्त) व्यवहार में पुरुष प्रवृत्त नहीं होता परन्तु यह अवश्य है कि जैसे युक्त में प्रवृत्त होता है तैसे अयुक्त में भी प्रवृत्त होता है और यह बात ठोक है कि वही व्यवहार यथार्थ होता है जो प्रमाण पूर्वक हो और रही अशुद्धि वे तो आप के लेख से कम है यह दिखाय आये - और विरोधका दिखाना भी आपकी अज्ञानताका सूचक ही है क्योंकि वह प्रमाण क्या इस हमारे प्रश्न के संग - प्रमाण रूप आदि में हमको संशय नहीं यह हमारा लेख विरोधी नहीं क्योंकि हमको संशय न होने पर भी आप जानते हैं कि नहीं इसमें ही हमारा प्रश्न सार्थक है आपके कहने से तो यह आता है कि जो नजाने वही प्रश्न करे जानने वाला कभी न करे और अज्ञानी वही पृच्छता है जाजिज्ञासु होता है और जो दूसरे की पराजय चाहता है वह तो प्रश्न के तात्पर्य को भली प्रकार जानकर ही पृच्छता है - जब आपने यह नियम नहीं रक्खा कि सब व्यवहार प्रमाण निर्णय विना किये प्रवृत्त होते हैं तो यह सिद्ध हो गया कि प्रमाण निर्णय करके ही होते हैं तो आपको भी प्रमाण का निर्णय अपेक्षित हो है - आगे चलकर जो यह लिखा है कि शास्त्र के ज्ञान और शास्त्र के अज्ञानियों को अज्ञात (नहीं जाने) प्रमाण व्यवहार के प्रतिबन्धक नहीं होते यह महान् लघु है क्योंकि जो मनुष्य प्रमाण निर्णय विना किये वह आदि में प्रवृत्त होते हैं क्या वे राज दंड को नहीं पाते - इससे यह सब आपका कथन तुच्छ है - यदि हमारा लेख प्रमाण के स्वरूप लक्षण संख्या आदि से युक्त होता तो यह कहिये कि फिर शास्त्रार्थ का क्या प्रयोजन था - फिर मत की प्रबलता और दुर्बलता से ही बादी प्रतिवादी के जय पराजय के निश्चय का वर्णन भी अतीव लघु है क्या कुछ खूब न प्रमाण लक्षण पंक्ति लापन अनुमान आदिकों से जय पराजय नहीं होते अपितु होते हैं और मत की प्रबलता और दुर्बलता भी प्रबल और दुर्बल प्रमाणों के आधीन हैं क्योंकि जिसके मत में प्रमाण स्वरूप आदिका



कथन प्रबल पक्षात् सत्य है उसके मतमें प्रमाणनिर्णीत पदार्थों को प्रबल अर्थात् सत्य होनेसे उसका मतभी प्रबल है और जिसके मतमें प्रमाण स्वरूप आदि का कथन दुर्बल है उसका मतभी दुर्बल है यह शास्त्रकारों का मत है अन्त में जाकर जो यह लिखा है कि प्रमाणही में आपका आग्रह है तो सभा में आनकर प्रमाण विषयक प्रश्न करो यह भी अतर्क साहस है क्योंकि यह एकही हमारा ऐसा प्रश्न है जो संपूर्ण आपको मतानुयायी आधुनिक आर्यों को पराजय कर सकता है विचार शून्यों में इतना भी लिखना बहुत है ॥

#### परामर्श

जब हम आपके तीसरे पत्र के उत्तर अपने चौथे पत्र में ही यह लिख चुके हैं कि आप प्रमाण के स्वरूपादि कहने में असमर्थ हैं फिर भी उसके स्वरूपादि को न कह कर हमारे चौथे पत्र के उत्तर (जो पं० ठाकुरप्रसादजी को सहायता से लिखा) इस पत्र के अन्त में यह लिखा कि सभामें आकर प्रमाण विषयक प्रश्न करो यदि आपको उत्तर देने की सामर्थ्य होती तो अवश्य उत्तर देते इससे प्रतीत है कि आप उत्तर नहीं दे सकते और अपनी असमर्थता को छिपाना चाहते हैं परन्तु तत्त्व दर्शियों के आगे असमर्थता छिपनी कठिन है देखो पहिले पत्र में आपने लिखा कि तुझारे प्रश्नों का उत्तर दे चुके अब प्रमाण विषयक विचार समाप्त हुआ इससे आप के प्रश्नका अब काश नहीं और अब लिखते ही कि प्रमाण ही में आग्रह है तो प्रमाण विषयक प्रश्न करो इससे आपका ही यह लेख आपको पूर्व लेख का खंडन करी और आपकी असमर्थता का बोधक है ॥

हम विद्वानों से सुनते थे कि आप के समाज में बहुधा ऐसे २ ही सभा सद होते हैं जो बड़े २ प्रतिष्ठित गठरी के पूरे-संस्कृत विद्या रूप नेच शून्य, राज्याधिकारी इंगलिश उर्दू विद्याके ज्ञाता हैं इनमें शास्त्र का, गन्धकड़ा और जो पंडित संस्कृतके जानने वाले हैं वे अष्टाध्यायीके अइ उण् ऋ लृक् आदि मूर्त्तियोंकीही प्रायः जानते हैं उनमें अर्थ शास्त्रका गंध कहांसे हो यह बात आज हमारे प्रत्यक्ष होगाई और सुनो कि बीजके अनुसार वृक्ष होता है सो जब आप के समाजके मूल स्वामीजीने लक्षणका स्वरूप सत्यार्थ प्रकाशके द्वितीयसंस्करण ५७ पत्र २६ पंक्ति में लिखा है कि लक्ष्यतयेनतल्लक्षणम् जिससे लक्ष्य जाना जाय, जैसे आंख से रूप जाना जाता है उसकी लक्षण कहते हैं विचारिये कि कोषक

व्याकरण के जानने वाले स्वामी जी ने व्युत्पत्तितो ठीक लिखी परन्तु रूपका लक्षण चक्षु को लिख कर अपने में न्याय शास्त्र की शून्यता प्रकट करदो क्यों कि न्याय शास्त्र के अनुसार असाधारण धर्म ही लक्षण होता है उसका फल यह है कि लक्षण रूप हेतु से लक्ष्य में इतर भेद प्रतीत होजाता है इससे उक्त व्युत्पत्ति भी संगत होसकती है इस बात को न विचार कर जब स्वामीजी ने ही नेत्र को रूपका असाधारण धर्म समझ कर रूप का लक्षण नेत्र को लिखा तो आप लोगों के अर्थ शास्त्रा की गंध शून्य प्रमाण विषयक प्रश्न व्यर्थ है इत्यादि लेखों से हमको कुछ संताप न करना चाहिये अत एव लेखनी को ब्रिथाम देकर उपराम करना हो ठोक है ।

इन कथनों को श्रवण कर आर्यासमाजी पंडित क्रुद्ध होकर अपने कथनोंको समर्थन तो न करमके सो कहां से करें इनकी असमर्थता तो पहिले से ही शास्त्रार्थ विषय में थी परन्तु आज शास्त्रार्थके प्रारंभ समय से तो ज्ञात होही गई क्योंकि यह असमर्थ न होते तो सम्पूर्ण सभासदों के सम्मुख सभा में कायरता के बचन क्यों प्रकट करती कि आज शास्त्रार्थ निमित्त हमारे ओर से पंडित ठाकुरप्रसाद जी पंडित देव दत्त जी की जगै नियत होयंगे भला कोई समर्थ भिवाय असमर्थ के दूसरे का सहाय नैना स्वीकार करसकता है कटाचननहीं इसीसे सभ केवुद्दिमान् तो पक्षकी दुर्बलता प्रबलता जानही गण तथा इस लेख द्वारा अन्यत्र भी जानलैंगे परन्तु वे इसके छिपाने के वास्ते शास्त्रार्थका विषय छोड़ कर यद्वा तद्वा मुख द्वारा वृथा लाप करने लगे कि देखो जैनी पंडितों की अज्ञानता कि हमारे स्वामी जी की अज्ञानी बताते हैं छोटा मुख और बड़ी बात यह लोग बड़े मन्तिन और मूर्ख होते हैं यहां तक कि स्वामादि की कहाकथा दंत धावन तक भी नहीं करते और पृछने पर कहते हैं कि दंतान के तोड़ने में स्थावर जीवों को हिंसा है और अपनी देव मूर्ति को रख पर चढ़ा कर टोडाते फिरते हैं इस में क्याहिंसा नहीं इनके व्यवहार अज्ञान से होते है इनके आचार्य्य भी बड़े माया बी थे जिनीने इनको अपनी ऐसी माया में मोहित करदिये कि ये लोग अपने मतकी प्रशंसा और दूसरे की निंदाकेसिवाय कुछ नहीं जान सके इत्यादि अनेक निंदित वचन शास्त्रार्थ के समय बीतने पर भी कहतेही रहे इनकी यह दशा देख कर चौंके ज्वाला प्रसाद सभापति जी ने कहा कि अय शास्त्रार्थ का समय नहीं रहा

आप बन्द होजाईये इस कहने परभी आर्य समाजी पंडित अपनी दुरायतता से उदित होकर मुख द्वारा कोलाहल करतेही रहे यह उनका तथा उपद्रव देख कर उक्त सभापति जो सभा से उठे, उनके उठतेही सम्पूर्ण सभासद उठ दिये फिर भी चौबे कमलापति आर्य समाजी ने अपने पंडितों की डाख होती समझ कर कहा कि इस शास्त्रार्थ का समय तो होचुका परन्तु थोड़ा सा समय पंडित ठाकुर प्रसाद जी के व्याख्यानार्थ नियत होना चाहिये इस के उत्तर में उक्त सभापति जीने कहा कि उक्त पं० जी में आपको श्रद्धा है तो अपने समाज में सुनिये यहां पर तो सभा के नियमानुसार इन को व्याख्यान देने का अधिकार नहीं होसकता यह कह कर सभाका विसर्जन करादिया और किसी की एक भी अनुचित बात न मानी ।

### चतुर्थ दिन प्र० चै० शु० ७---१६ मा०

प्रातः कालमें ही आर्य समाजी गली २ बाजार २ में बितंडा बाट करने लगे और लोगों की दृष्टि में उपद्रव होता मालूम पड़ा इस कारण एक पत्र प्रवन्ध कर्त्ताओं को और से श्रीमान् चौबे ज्वाला प्रसादजी के हस्ताक्षर का आया जिसको लिखते हैं ॥

### पत्र

जो कि आर्य और जैन भाईयों में तीन दिन से शास्त्रार्थ होरहा था और इसमें वार्त्त इन्तिजाम के हम पांच आदिमी मुकारिर हुये थे हम लोगों की राइ में कल तक सभा का प्रवन्ध अच्छी तौर से हुआ मगर अब हम को सभा का इन्तिजाम टोक होना नहीं मालूम पड़ता है इससे हमारी राइ है कि शास्त्रार्थ बन्द किया जाय तारीख १६ मार्च सन् १८८८ ईसवी मुताबिक अंती चैत्र पहली शुदी ७ सखन् १८४५ सांख्यार ।

उ० ज्वालाप्रसाद सिरपंच

इस पत्र के आने में शास्त्रार्थ बन्द होगया फिर श्रीमान् चौबे राधासमी हरजा आदि और किसी प्रतिष्ठित पुरुष शहर निवासी ने भी उपद्रव के प्रवन्ध में शास्त्रार्थ होना उचित न समझा और इसीने किसी ने प्रवन्ध करवा और स्वीकार न किया, फिर शास्त्रार्थ न हुआ ।

## विज्ञापन

सम्पूर्ण सज्जनों से प्रार्थना है कि यह शास्त्रार्थ इस लिपि यथावत् मुद्रित कर के आपको सेवा में भेजा जाता है कि आप विचार पूर्वक सत्य असत्य के ग्रहण और त्याग पूर्वक निणय करें, और दोनों जता में भिन्न मतावलम्बी विद्वज्जनों से यह भी निवेदन है कि इसके सत्याऽसत्य में अपनी सम्मति में अनुगृहीत करें जिससे हम उक्त विद्वज्जनों का धन्यवाद पूर्वक परमोपकार मानें, आशा है कि उक्त विद्वज्जन हमारी पूर्वोक्त प्रार्थना को स्वीकार पूर्वक इस शास्त्रार्थ के विषय का निष्पक्षपात दृष्टि से अपलोचन करके इसकी यथावत् समालोचना के प्रदान में अनुगृहीत करेंगे और हम उनको समालोचना का का मुद्रित करके प्रकाश करेंगे, किमाधिकम्बिद्वद्वर्थ शिरोमणिषु ॥

आपको कृपा पात्र

जलमतानुयायि य० लटालाल पन्नालाल

अलीगढ़

## प्रबन्ध कर्ताओं का धन्यवाद

धन्य है ऐसे न्याय मार्गी सभा पति जी जिन्होंने दोनों पक्ष वाली को सम दृष्टि में देखा और व्यास मार्ग पर आरुढ़ होकर सभा का प्रबन्ध नीति पूर्वक किया और अपने भतीहर आदि समाजी चौध कमलापतिजी का भी कुछ सक्तपात न किया। हम परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि श्रीमान् चौध ज्वाला प्रसादजी के समान न्याय कर्ता सभ को मिले ॥

इस समय हमका आशान दुन्दुभ गंगाधरभिन्ने साधव सिद्धान्तम्पकटर पुलिस फीरजाबाद का परमोपकार मानकर धन्यवाद देना आवश्यक है जिन्होंने बड़े परिश्रम का सहकर ऐसा उत्तम रीति में सभा का प्रबन्ध किया कि निदल प्रबन्ध में इधर उधर किसी को न चलने दिया - यदि ऐसे न्याय शील राज्याधिकारी और सभा पति तथा श्रीचौध कमलापतिजी, और श्री गंगाधर इच्छीजी तथा लाला भंजूलालजी, व पारंगलालजी, में प्रबन्ध कर्ता न होते तो ऐसा ठीक २ प्रबन्ध कदाचित् न होता ।

श्रीमद्गवर्जिनेश्वरानुग्रहात्म्यगुरुभ्यः

इति

ॐ

परमात्मजयति

# मिशकात

अर्थात् मुसलमानों की प्रमाणिक पुस्तक का संचित

अनुवाद

जगन्नाथ दास सेकण्ड पण्डित हार्ड स्कूल मुरादाबाद

संकलित

अधिकोक्ति सहित

हिन्दू मात्र के देखने योग्य

---



आर्य्यदर्पण ग्रन्थालय ग्राहजहापुर में  
मुंशी बख्तावर सिंह के प्रबन्ध से मुद्रित हुआ

---

प्रथम बार १००० ]

[ मूल्य D



ॐ परमात्मा जयति

## मिशकात

कवच पहिला

— 000 —

१—मुहम्मद साहिब का कथन है कि जिस समय खुदा ने आदम को उत्पन्न किया और संपूर्ण जीवों को उसकी पीठ से उत्पन्न करके उसके संमुख किया, आदम ने प्रश्न किया कि ऐ खुदा ये कौन हैं ? खुदा ने कहा कि तेरी संतान है, फिर आदम ने उनमें से एक पुरुष को देखकर प्रश्न किया कि यह कौन है, खुदा ने कहा कि यह दाऊद है, आदम ने निर्वदन किया कि ऐ खुदा तूने इसकी आयु कितनी नियत की है, कहा कि साठ वर्ष की, आदम ने कहा कि इसकी आयु अधिक कर, चालीस वर्ष में ने अपनी आयु में से दिये, जब आदम की आयु पूर्ण हुई अर्थात् उसकी आयु में केवल चालीस वर्ष जो खुदा के समीप दाऊद को दे चुका था शेष रहे तो उसके पास मृत्यु आई, आदम ने कहा कि मेरी आयु के चालीस वर्ष शेष हैं, मृत्यु ने कहा कि चालीस वर्ष तूने दाऊद को दे दिये हैं, आदम ने इनकार किया इति—मुसलमानों के मतानुसार खुदा ने सृष्टि की आदि में आदम को अपने हाथों से बनाया और संपूर्ण फ़रिश्तों से उसकी सिजदः कराया सब प्रकार की वड़ाई दी, जबकि उसी ने खुदा के संमुख अपनी आयु में से चालीस वर्ष दाऊद की देकर पश्चात् अपने नियम का निषेध किया अर्थात् सर्वथा झूठ बोला तो औरों से सत्य भाषण की क्या आशा है ?

- २—मुहम्मद साहिब ने कहा कि मेरी सब उम्मत स्वर्ग में जाय-गी परन्तु जिमने स्वीकार न किया वह नहीं, कहा गया कि किसने स्वीकार न किया, मुहम्मद साहिब ने उत्तर दिया कि जिसने मेरी आज्ञा मानी वह स्वर्ग में गया और जिसने मेरी आज्ञा न मानी उसने स्वीकार न किया इति—यह कथन प्रत्यक्ष मुहम्मद साहिब के अहंकार का द्योतक है, ईश्वर का नाम भी न लिया आप ही स्वर्ग के स्वामी बन गये ।
- ३—जिसने आज्ञा मानी मुहम्मद की निश्चय आज्ञा मानी ख़ुदा की, और जिसने आज्ञा न मानी मुहम्मद की निश्चय आज्ञा न मानी ख़ुदा की इति—मुसलमान कहते हैं कि ख़ुदा का कोई शरीक नहीं परन्तु इस लेख से तो मुहम्मद साहिब ख़ुदा के पूरे शरीक प्रकट होते हैं, धन्य !
- ४—एक पुरुष ने कहा कि मैं स्त्रियों से अलग रहूँगा अर्थात् कभी विवाह न करूँगा, मुहम्मद साहिब ने उससे कहा कि मैं स्त्रियों से विवाह करता हूँ जो पुरुष मेरे आचरण के विरुद्ध करे वह मेरा नहीं इति—मुहम्मद साहिब ने ब्रह्मचर्य का सर्वथा निषेध किया और अपने अनुयायियों की बलात्कार विषयासक्ति में प्रवृत्त होने की आज्ञा दी ।
- ५—मुहम्मद साहिब ने कहा कि जिस समय मुसलमान वज्र करने का संकल्प करता है और अपना मुख धोता है तो उसके मुख से प्रत्येक पाप निकलता है अर्थात् जो पाप आँखों से हुए हैं पानी के साथ झड़ जाते हैं और जब अपने हाथ धोता है उसके हाथों से प्रत्येक पाप निकलता है अर्थात् जो पाप हाथों से हुए हैं झड़ जाते हैं और जब अपने पाँव धोता है उसके पाँव से प्रत्येक पाप निकलता है अर्थात् पाँव से चलकर जो पाप किये थे वे पानी के साथ निकल जाते हैं इति ।



६—मुहम्मद साहिब ने कहा कि पायखाने जाकर तीन पत्थरों से शुद्धि करले तो पानी की आवश्यकता नहीं इति ।

७—मुहम्मद साहिब की चारपाई के नीचे एक लकड़ी का प्याला रक्खा रहता था रात को उसमें पेशाब किया करते थे ।

८—आइशः का कथन है कि जब मुहम्मद साहिब दतीन करते तो मुभकी देते में उसकी धोती और आप दतीन करना प्रारंभ करती, फिर धाती और मुहम्मद साहिब को देती इति ।

९—खुदा ने रात दिन में पचास बार नमाज पढ़ने की आज्ञा दी थी परन्तु मुहम्मद साहिब ने बारंवार खुदा से उसमें न्यूनता चाही और पांच बार नमाज पढ़ने की आज्ञा नियत कराई इति—इसकी पूर्ण व्याख्या मुहम्मद जीवन चरित्र में लिखी गई है, खुदा स्वयं अपनी बुद्धि से इतना विचार न कर सका कि मुसलमानों को पचास बार नमाज का पढ़ना अति कठिन होगा, धन्य !

१०—मुहम्मद साहिब की स्त्रियों ने किसी पात्र में जल लेकर उसमें से चुल्लू भर कर स्नान किया, फिर मुहम्मद साहिब ने उमी बबे हुए पानी से वजू करना चाहा, किसी स्त्री ने कहा कि ऐ खुदा के रसूल निश्चय में अपवित्र थी और मैं इस से नहाई हूँ यह उसका वचाहुआ है, मुहम्मद साहिब ने कहा कि अपवित्र के नहाने और उसके हाथ पढ़ने से पानी अपवित्र नहीं होता इति ।

११—एक स्त्री आइशः के पास (हरीसः) अर्थात् खाने की एक वस्तु ले गई, आइशः नमाज पढ़ती थी संकेत करके उस वस्तु को रखवा लिया, फिर विल्ली ने आकर उस वस्तु में से खाया, जब आइशः नमाज पढ़ चुकी जिस जगह से विल्ली ने खाया था उसी जगह से उस वस्तु को आइशः ने खाया, फिर कहा

निश्चय खुदा के रसूल ने कहा है कि बिल्ली अपवित्र नहीं और निश्चय मैं ने देखा है कि रसूल बिल्ली के जूटे पानी से वजू करते थे इति ।

१२—लोगों ने मुहम्मद साहिब से प्रश्न किया कि क्या गधों के जूटे पानी से हम लोग वजू करें, कहा कि हां और सब दरंदों के जूटे पानी से भी इति ।

१३—मुहम्मद साहिब ने एक छोटे लड़के को अपनी गोद में बिठाया उसने उनके कपड़े पर पेशाब कर दिया, उन्होंने ने उस कपड़े को न धोया केवल उस जगह पानी छिड़क दिया ।

१४—अली का बेटा हुसैन मुहम्मद साहिब की गोद में बैठा था, उसने उनके कपड़े पर पेशाब कर दिया, एक स्त्री ने उस वस्त्र को धोने के लिये मांगा तो मुहम्मद साहिब ने कहा कि लड़को पेशाब करे तो वस्त्र को धोना चाहिये और लड़के के पेशाब करने से छींटा दिया जाता है इति ।

१५—आइशः कहती है कि मैं जब रजस्वला होती और पानी पीती फिर मुहम्मद साहिब को पानी देती तो वे पात्र पर उसी जगह मुख रख कर पानी पीते कि जिस जगह से मैं ने मुख रख कर पानी पिया था, इसी प्रकार रजस्वला होने के समय जब कि हड्डी चूसती फिर मुहम्मद साहिब को देती तो वे उसी जगह अपना मुख रखते कि जिस जगह मैं ने रक्खा था इति ।

१६—वही आइशः कहती है कि जब मैं रजस्वला होती मुहम्मद साहिब मेरी गोद में लेटकर कुरान पढ़ते इति ।

१७—किसी ने मुहम्मद साहिब से प्रश्न किया कि रजस्वला स्त्री से क्या कर्म करना बिहित है कहा कि नाभि के ऊपर से लाभ उठाना बिहित है और नीचे से निषिद्ध इति ।

१८—अबदुल्लह वेठा जैदका कहता है कि जब मुहम्मद साहिव ने लोगों को नमाज़ में एकत्र करने के लिये शंख बजाने का विचार किया मैं ने स्वप्न में एक पुरुष की हाथ में शंख लिये देख कर उससे कहा कि तू शंख को बेचता है, उसने कहा कि तू इसको क्या करेगा, मैं ने कहा कि हम उसे बजाकर नमाज़ के लिये लोगों को बुकड़ा करेंगे, उसने कहा कि मैं तुम्हें इस से भी उत्तम बात बतलाता हूँ, तब मैं ने उससे कहा कि बतलाइये तदनंतर उसने अबदुल्लह को अज़ान सिखलाई जो आज-कल मसजिदों में नमाज़ से प्रथम उच्चस्वर से पढ़ते हैं, प्रातःकाल अबदुल्लह मुहम्मद साहिव के पास आया और उनको स्वप्न का संपूर्ण वृत्तान्त सुनाया उन्होंने कहा कि यह स्वप्न सत्य है तू ने जो कुछ स्वप्न में देखा है वह बलाल की बतला और उसके साथ अज़ान दे क्योंकि उसका शब्द तुम्हसे अधिक है, फिर अबदुल्लह ने बलाल की वह अज़ान बतलाई और उसने अज़ान दी अद्यपर्यन्त मुसलमानों में वही प्रचलित है इति—अब मुसलमानों से प्रश्न है कि जिस पुरुष को अबदुल्लह ने हाथ में शंख लिये स्वप्न में देखा था वह फ़रिश्तह था वा शैतान, यदि पूर्व पक्ष स्वीकार है तो प्रकट है कि फ़रिश्तों को शंख अति प्रिय है जो नित्य अपने हाथ में रखते हैं, तो फिर मुसलमानों का शंख से द्वेष करना अति मूर्खता है, और दूसरा पक्ष स्वीकार करो तो सिद्ध होगया कि अज़ान का प्रचार करानेवाला शैतान है, फिर मुसबाहुलहिदाय व मुफ़ताहुल किफ़ाय में लिखा है कि एक दिन अली ने शंख का शब्द सुनकर मुसलमानों से कहा कि तुम जानतेहो कि यह क्या कहता है, उन्होंने कहा कि हम

नहीं जानते, अलीने कहा कि शंख यह कहता है कि मैं खुदा की पवित्रता से याद करता हूँ जैसा कि चाहिये इत्यादि—जबकि अली के कथनानुसार शंख खुदा की पवित्रता से याद करता है तो मुसलमानों का शंख के शब्द से घृणा करना खुदा के स्मरण से घृणा करना है।

- १६—मुहम्मद साहब ने कहा कि जो कोई इस दुर्गंध वाले वृक्ष में से खावे अर्थात् लश्न वा प्याज खावे वह मसजिद के समीप न आवे क्योंकि जिस वस्तु से मनुष्य दुःखित होते हैं उस से फरिश्ते भी दुःखित होते हैं इति—तात्पर्य यह है कि जैसे दुर्गंध वाली वस्तु से मनुष्यों को दुःख होता है वैसे ही फरिश्तों को भी दुःख होता है अतएव लश्न वा प्याज खाकर मसजिदों में न आया करो क्योंकि वह फरिश्तों के रहनेकी जगह है वह दुःखित होंगे, हे मुसलमानों जब कि तुम्हारे पैगम्बर का यह कथन है कि जिस वस्तु से मनुष्य दुःखित होते हैं उस से फरिश्ते भी दुःखित होते हैं तो तुमको यह कार्य कदापि न करना चाहिये कि जिससे मनुष्य दुःखित हों, संपूर्ण मुसलमान जानते हैं कि गौहनन और बाजारों में मांस विक्रय होने से संपूर्ण हिंदू अति दुःखित होते हैं यदि तुम अपने पैगम्बर की आज्ञा भूल जाओ और फरिश्तों को दुःख देना पाप कर्म मानते हो तो प्रत्यक्ष गौहनन और मांस विक्रय करके वया अपने पैगम्बर की आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले न बने, यदि कहा कि इन बातों से हम लोग दुःखित नहीं होते तो हदीस में यह लेख नहीं कि जिस वस्तु से मुसलमान दुःखित होते हैं किन्तु यह है कि जिस वस्तु से आदिमी दुःखित होते हैं और आदिमी शब्द मनुष्य शब्द का पर्यायी है, इस से यही सिद्ध हुआ कि

जिम वस्तु से मनुष्य दुःखित होते हैं उस से फ़रिश्ते भी दुःखित होते हैं, इस के अतिरिक्त पक्षपात को छोड़कर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करो तो यह दोनों बातें केवल हिंदुओं ही को नहीं किन्तु मनुष्य मात्र के लिये दुःख देने वाली हैं क्योंकि गोहनन हाने से दुग्ध घृतादि की न्यूनता मनुष्य मात्र के लिये दुःखदाई है, गोहनन ही के कारण बैलों की न्यूनता से खेतों की बड़ी हानि है, बहुत परिश्रम से थोड़ा अन्न उत्पन्न होता है इसी कारण बहुमूल्य विक्रता है, अन्न की न्यूनता मनुष्य मात्र को दुःखदाई है, बाजारों में भांस विक्रय हाने से वायु बिगड़ कर विसृचिका आदि नाना प्रकार के रोगों को उत्पन्न करके मनुष्य मात्र के लिये दुःखों का कारण होता है, निदान यह दोनों बातें मनुष्य मात्र के लिये बड़े दुःखों का कारण हैं अतएव मज्जन मुसलमानों को और हमारी न्यायशील गवर्नमेण्ट को इनका सम्यक् प्रवन्ध करना चाहिये।

२०—मुहम्मद साहिब का कथन है कि मैं ने स्वप्न में खुदा को देखा अच्छी सूरत वाला और खुदा ने अपना हाथ मेरे कंधों के बीच में रक्खा इत्यादि, फिर मुहम्मद साहिब ने कहा है कि मुझको नीन्द आ गई और मैं ने खुदा को अच्छी सूरत में देखा कि उसने अपना हाथ मेरे कंधों के बीच में रक्खा और मेरी छाती पर खुदा की उंगलियों की सरदी पहुंची इत्यादि—यहां से सम्यक् प्रकट है कि मुसलमानों का खुदा शरीर धारी हाथ पांव वाला है वह व्यापक नहीं होसकता किन्तु परिच्छिन्न है और जितने शरीर हैं वह उत्पत्ति और नाश वाले हैं।

२१—अबूहरीरह कहता है कि मुहम्मद साहिब सिलदे में कहते थे कि हे परमेश्वर क्षमा कर मेरे सब पाप छीटे और

बड़े और पहिले और पिछले और प्रकट और कुपे इति—  
मुसलमान कहते हैं कि मुहम्मद साहिब से कोई पाप  
कर्म नहीं हुआ और मुहम्मद साहिब अपने छोटे और  
बड़े पहिले और पिछले प्रकट और कुपे पापों की क्षमा  
मांगते हैं।

२२—मुहम्मद साहिब नमाज़ पढ़ने के समय कहा करते थे कि  
सब वचनों में उत्तम वचन खुदा का है और सब मार्गों में  
उत्तम मार्ग मुहम्मद का है इति—निःसंदेह ईश्वर का वचन  
सब वचनों में उत्तम है परन्तु यह निर्णय होना चाहिये कि  
वह ईश्वर का वचन कौनसा है, हमारे विचार में वेद के  
अतिरिक्त और कोई ग्रंथ ईश्वर का वचन नहीं हो सकता और  
मुहम्मद साहिब का यह कथन कि सब मार्गों में उत्तम  
मार्ग मुहम्मद का है अपने मुख से अपनी बड़ाई करना  
है, यूनान प्रत्येक मनुष्य कह सकता है कि सब मार्गों में  
उत्तम मेरा मार्ग है परन्तु इसके लिये प्रमाण की आवश्यकता  
है, मुसलमानों के मतानुसार आदम से लेकर मुहम्मद  
साहिब तक खुदा की ओर से १२४००० पैगंबर हुए हैं, मुहम्मद  
साहिब ने सब मार्गों में उत्तम मार्ग अपना कहा तो और  
सब पैगम्बरों के मार्ग को बुरा ही समझा, अस्तु अब मुहम्मद  
साहिब का उत्तम मार्ग देखिये वह यह है कि मार्गों में पथि-  
कों के धनादि पदार्थ लूटे, जिहाद के नाम से सहस्रों मनुष्यों  
का वध किया और उनके धनादि पदार्थ और स्त्रियों को लूटा,  
स्त्रियों से विषयासक्ति में प्रवृत्त रहे, पशु पक्षियों को मार  
कर खाने की आज्ञा दी इत्यादि, हे मित्रो उत्तम मार्ग वही  
है कि जिससे प्राणी मात्र को अपराध की बिना दुःख देने  
की आज्ञा न हो, सत्य भाषण, इन्द्रियों का जीतना, दीनों पर

दया इत्यादि धर्मों की आज्ञा हो सो यह वेदादि सत्य शास्त्रों ही का मार्ग है अन्य का नहीं ।

२३—आइश्वर्य कहती है कि मुहम्मद साहिब नमाज पढ़ते और दरवाजा बंद होता मैं आती और दरवाजा खुलवाती तो मुहम्मद साहिब मेरे लिये चलकर दरवाजा खोल देते फिर नमाज की जगह जाती, इति ।

२४—मुहम्मद साहिब ने कहा कि सूर्योदय और सूर्यास्त समय में नमाज न पढ़ो क्योंकि सूर्य शैतान के दोनों सींगों के बीच में निकलता है इति ।

२५—मुहम्मद साहिब ने कहा कि सूर्य निकलता है और उसके साथ शैतान का सींग होता है उससे जुदा हो जाता है फिर दो पहर के समय शैतान सूर्य के समीप होता है फिर जब सूर्य ढलता है उससे जुदा होता है फिर जब कि सूर्य कुपन के निकट होता है शैतान उसके पास होता है और जब सूर्य कुपचुक्ता है तब शैतान उस से जुदा होता है, और मुहम्मद साहिब ने सूर्य के निकलने और डूबने के समय और ठीक दो पहर के नमाज पढ़ने का निषेध किया ।

२६—मुहम्मद साहिब ने कहा कि नमाज में अपनी पंक्तियाँ मिली हुई रखो अर्थात् आपस में खूब मिलकर खड़े रहो और दूसरी पंक्ति बहुत निकट होनी चाहिये अर्थात् पंक्तियों के बीच में इतना अन्तर न रहे कि एक पंक्ति बीच में और खड़ी हो सके और बराबर रखो गरदन की अर्थात् कोई तुम से ऊँची जगह पर खड़ा न रहे किन्तु बराबर जगह पर खड़े रहो कि गरदन बराबर रहे, कसम खुदा की निश्चय मैं देखता हूँ कि शैतान पंक्ति के अन्तराल में घुस जाता है मानो वह काला बच्चा है बकरी का इति—कोई मनुष्य

लंबा और कोई ठिगना होता है अतएव बराबर जगह पर खड़ा होने से सबकी गरदनें बराबर नहीं रहसकती और पूर्वोक्त तीनों हद्दीस सर्वथा असमंजस हैं जिससे मुहम्मद साहिब की वृद्धि का सम्यक् परिचय होता है।

२७—मुहम्मद साहिब ने कहा कि निश्चय ख़ुदा और फ़रिश्ते कृपा करते हैं पहिली पंक्ति पर और लोगों ने निवेदन किया कि ऐ ख़ुदा के रसूल दूसरी पर भी अर्थात् कहो कि पहिली और दूसरी पर कृपा करते हैं कहा कि निश्चय ख़ुदा और फ़रिश्ते कृपा करते हैं पहिली पंक्तिपर अर्थात् दूसरी बार भी दूसरी पंक्ति का वर्णन न किया फिर लोगों ने कहा कि दूसरी पर भी कहो कहा निश्चय ख़ुदा और फ़रिश्ते कृपा करते हैं पहिली पंक्ति पर लोगों ने फिर निवेदन किया कि ऐ ख़ुदा के रसूल दूसरी पर भी कहा कहा और दूसरी पर भी, और कहा मुहम्मद साहिब ने कि बराबर करो अपनी पंक्तियों को और बराबरी करो अपने कंधों के बीच में और बंद करो पंक्ति के अन्तराल को इस लिये कि निश्चय शैतान प्रवेश करता है तुम्हारे बीच में भेड़ के छोटे बच्चे की सदृश इति—मुसलमानों का यह कथन कि मुहम्मद साहिब जो कुछ कहते थे ख़ुदा की आज्ञा ही से कहते थे सर्वथा मिथ्या है वस्तुतः जो कुछ उनके मन में आता था कहते थे और उनके मित्र अपनी दृष्टानुसार उसमें न्यून अधिक्य कराते थे जैसा कि उक्त हद्दीस से प्रकट है कि मुहम्मद साहिब ने बारंबार यही कहा कि पहिली पंक्ति पर ख़ुदा और फ़रिश्ते कृपा करते हैं अन्त में यारों की दृष्टानुसार यह कहना पड़ा कि दूसरी पर भी।

२८—मुहम्मद साहिब जिस समय रात्री की नमाज़ पढ़ने के लिये खड़े होते तो कहते कि ऐ ख़ुदा क्षमा कर मेरे वह



पाप कि आगे किये मैं ने और वह पाप कि पीछे करूंगा मैं और वह पाप कि छुपकर किये मैं ने और वह पाप कि प्रकट किये मैं ने और वह पाप कि तू अधिक जानता है उन को मुझसे इति ।

२६—किसी ने मुहम्मद साहिब के सामने एक पुरुष का वृत्तान्त कहा कि वह प्रातःकाल तक सोता है और नमाज के लिये नहीं उठता मुहम्मद साहिब ने कहा कि उसके कान में शैतान पेशाव करता है इति ।

३०—मुहम्मद साहिब ने कहा कि जब पिछली तिहार्द रात शेष रहती है उस समय नित्य खूदा नीचे उतरता है फिर अपने दोनों हाथ खोलता है और कहता है कि कौन है जो कृण दे ऐसे को कि न फ़कीर है और न अन्याय करने वाला है, प्रातःकाल तक यही कहता है इति—यहां भी खूदा का शरीर धारी होना स्पष्ट है ।

३१—मुहम्मद साहिब पांचों समय की नमाज पढ़ने के उपरान्त अपने शत्रुओं को बददआ देते अर्थात् कोसते और उनके अनुयायी कहते कि स्वीकार हो इति ।

३२—मुहम्मद साहिब का कथन है कि पृथ्वी पैगम्बरों के शरीर का नष्ट नहीं करती इति—सर्वथा मिथ्या है नहीं तो मुहम्मद साहिब ही की कब्र को खोद कर सत्य भूठ की परीक्षा करनी चाहिये ।

३३—मुहम्मद साहिब का कथन है कि जिस पशु के आगे या पीछे की ओर से कान कटे हों वा कान चिरे हुए हों लंबे वा फटे हों गाल उसकी कुरवानी करना बिहित नहीं इति ।

मिश्रकात कवच दूधरा

- ३४—आइशः कहती है कि मैं ने किसी रोगी को ऐसा अति दुःखित नहीं देखा जैसा कि मुहम्मद साहिब को उनके रागी होने में दुःखित देखा इति—मुहम्मद साहिब तो ख़ुदा के प्रियतम मित्र थे फिर उनको ख़ुदा ने ऐसा दुःख क्यों दिया ?
- ३५—मुहम्मद साहिब कहते थे कि ख़ुदा कहता है कि जिसको मैं अन्धा करता हूँ उसको बदले में स्वर्ग वास दूंगा इति—मुसलमानों को चाहिये कि अन्धा होने को बुरा न जानें किन्तु बहुत अच्छा जानें कि स्वर्ग में जाने का कारण है ।
- ३६—मुहम्मद साहिब ने कहा कि धर्मात्मा लोग मरणान्तर हरे पक्षियों के शरीर में स्वर्ग के वृक्षों के फल खायेंगे इति—इस से पुनर्जन्म सिद्ध होगया ।
- ३७—मुहम्मद साहिब ने कहा कि सींगों वाले दुग्ध की कुरबानी उत्तम है इति—जबकि मुहम्मद साहिब के बचनानुसार दुग्ध की कुरबानी उत्तम है तो ईद के दिन गोवध करना केवल हिन्दुओं को दुःख देने के लिये है !
- ३८—मुहम्मद साहिब का कथन है कि जिस समय मुरदे को लोग अपने कंधों पर उठाते हैं जो पुण्यात्मा होता है वह कहता है कि मुझको शीघ्र लेचलो, और पापी कहता है कि कहाँ लिये जाते हो मुझको, मनुष्य के मित्राय उसको आवाज़ को सब चीज़ सुनती है यदि मनुष्य सुने तो मरजावे वा बेहोश होजावे इति—मुहम्मद साहिब का यह कथन सर्वथा मिथ्या है, कहना स्मृत शरीर से असंभव है और जबकि उसके कथन को मनुष्य नहीं सुनते तो कहना ही निरर्थक है, और मित्राय मनुष्य के स्मृतक की आवाज़ को सब चीज़ सुनती है यह भी अशुद्ध है क्योंकि जड़ पदार्थ कुछ नहीं सुनसकते ।

३६—मुहम्मद साहिब जब किसी मुरदे के साथ जाते जबतक वह कब्र में न रक्खा जाता तबतक न बैठते, एक दिन उनसे एक यहूदी विद्वान् ने कहा कि ए मुहम्मद हम इसी प्रकार करते हैं अर्थात् जबतक मुरदा कब्र में रक्खा जाता है तबतक खड़े रहते हैं, इसके उपरान्त मुहम्मद साहिब ने बैठना स्वीकार किया अर्थात् फिर पूर्व रीत्यनुसार मुरदे के गड़गड़ तक खड़े न रहे और अपने लोगों से कहा कि यहूदियों के विरुद्ध करो इति — यहां से स्पष्ट सिद्ध है कि मुहम्मद साहिब के काम खुदाकी आज्ञा से न थे किंतु जो काम करते थे अपने विचारानुसार और दूसरों के विरुद्ध ही करते थे ।

४०—मुहम्मद साहिब ने कहा कि छोटे लड़के मुसलमानों के स्वर्ग में दरया केसे पत्तो होंगे वह अपने बाप के कपड़े का कोना पकड़ेंगे और स्वर्ग में लेजायेंगे इति—मुसलमानों को अपने छोटे लड़कों के मरने पर शोक न करना चाहिये किंतु अति प्रसन्न होना चाहिये क्योंकि स्वर्ग मिलने का कारण है परंतु यहां यह आक्षेप होता है कि यदि बाप कुकर्मों और नरक के योग्य है और उसका छोटा लड़का जो मर गया है उसे स्वर्ग में लेजाय तो खुदाकी न्यायव्यवस्था नष्ट हुई और जो वह अपने कर्मनुसार नरक में गया तो मुहम्मद साहिब का कथन मिथ्या हुआ अस्तु !

४१—मुहम्मद साहिब ने कहा कि जो कोई धर्मकी कमाई में से खजूरकी बारबर भी दान करे निश्चय खुदा उसकी अपने दाहिने हाथ से स्वीकार करता है इति—यहां से खुदाका दाहिना हाथ स्पष्ट प्रकट है फिर उसके शरीर धारी होने में क्या संदेह है, और कोई शरीर उत्पत्ति और नाश रहित नहीं होसकता अतएव खुदा का जन्म मरण भी अवश्य होगा

४२—मुहम्मद साहिब ने कहा कि एक स्त्री दुराचरण वाली क्षमा की गई, कुए के समीप प्यास से अति व्याकुल एक कुत्ता खड़ा था उस स्त्री ने अपने बस्त्रों के द्वारा कुए में से जल निकाल कर उस कुत्ते को पिलाया वह स्त्री इस पुण्यकर्म के कारण क्षमा की गई, लोगों ने पूछा कि क्या पशु पक्षियों पर दया करने से हम को पुण्य होता है, मुहम्मद साहिब ने कहा कि प्रत्येक प्राणि पर कृपा दृष्टि करने से पुण्य होता है इति—हे मुसलमानों अपने पैगम्बर के इस वचन पर सम्यक् ध्यान रक्खा और प्राणि मात्र को कदापि न सताओ किंतु उनपर सर्वदा दया करो।

४३—आइशः कहती है कि मुहम्मद साहिब रोज़े से हाते मेरा मुख चुंबन करते और मेरी जिव्हा को रस पान करते इति—धन्य !

४४—मुहम्मद साहिब ने कहा कि कुछ फ़रिश्ते मुसलमानों में खुदा का जिक्र करने वालों को ढूँढ़ते फिरते हैं जहाँ कहीं खुदा का जिक्र करने वालों को पाते हैं तो आपस में एक दूसरे को पुकारता है और सब खुदा का जिक्र करने वालों के पास एकत्र होजाते हैं, फिर खुदा उन फ़रिश्तों से उन लोगों का हाल पूछता है कि मेरे दास लोग क्या करते हैं, फ़रिश्ते कहते हैं कि तेरा भजन करते हैं और तेरी बड़ाई और प्रशंसा करते हैं, फिर खुदा कहता है कि क्या उन्होंने ने मुझको देखा है, फ़रिश्ते कहते हैं कि उन्होंने ने तुझको नहीं देखा, फिर खुदा कहता है कि जो वे मुझको देखते तो उनका क्या हाल होता, तब फ़रिश्ते कहते हैं कि जो वे तुझको देखते तो तेरी बहुत बन्दगी करते और तेरा भजन बहुत करते फिर खुदा कहता है कि वे मुझसे क्या

मांगते हैं फ़रिश्ते कहते हैं कि तुमसे वहिश्त मांगते हैं खुदा कहता है कि क्या उन्होंने ने वहिश्त को देखा है फ़रिश्ते कहते हैं कि ए खुदा उन्होंने ने वहिश्त नहीं देखा खुदा कहता है कि जो वे वहिश्त को देखते तो उनका क्या हाल होता फ़रिश्ते कहते हैं कि जो वे वहिश्त को देखते तो उसमें अत्यंत प्रीति करते और उसकी बहुत चाह करते फिर खुदा कहता है कि किस चीज़ से बचना चाहते हैं फ़रिश्ते कहते हैं कि दोज़ख़ से बचना चाहते हैं खुदा कहता है कि क्या उन्होंने ने दोज़ख़ को देखा है फ़रिश्ते कहते हैं कि ए खुदा उन्होंने ने दोज़ख़ को नहीं देखा फिर खुदा कहता है कि जो वे दोज़ख़ को देखते तो उनका क्या हाल होता फ़रिश्ते कहते हैं कि जो वे उसको देखते तो उससे बहुत भागने वाले होते अर्थात् जिन कर्मों से दोज़ख़ में जाना पड़ता है उनसे बहुत भागत और डरते फिर खुदा फ़रिश्तों से कहता है कि मैं तुमको साची करता हूँ कि मैंने उनको बख़्शा इत्यादि—इस कथन से खुदा का आज्ञान स्पष्ट सिद्ध है।

४५—मुहम्मद साहिब ने कहा कि जो कोई कहता है कि खुदा पवित्र और बड़ा है उसके लिये वहिश्त में खजूर का वृक्ष लगाया जाता है इति—अरब के लोग अति निर्धन थे खजूर का वृक्ष ही उनका बड़ा धन था अतएव मुहम्मद साहिब ने उन लोगों को वहिश्त में भी खजूर के वृक्ष ही का लाभ दिखाया, प्रकट हो गया कि मुसलमानों के वहिश्त में खजूर के वृक्ष से उत्तम कोई पदार्थ नहीं, धन्य ! हमारे देश का निर्धन भी खजूर के वृक्ष के लाभ में न आयगा।

४६—मुहम्मद साहिब ने कहा कि एक मनुष्य ने एक कम से मनुष्यों को जान से मार डाला फिर एक भक्त के पास गया और उस से पूछा कि मेरी तावह स्वीकार होगी वा नहीं उसने कहा कि नहीं तब उसको भी मार डाला और लोगों से पूछना प्रारंभ किया किसी ने कहा कि अमुक वस्ती में एक विद्वान् रहता है तू उसके पास जा वह तुम्हको तेरी तावह स्वीकार होनेकी आज्ञा देगा फिर उसका मृत्यु-काल आया अर्थात् जब उस वस्ती को और को चला और अनुमान आधि मार्ग को पहुंचा तब उसको मृत्यु का लक्षण प्रकट हुआ तब उसकी जान निकालने के लिये स्वर्ग तथा नरक के लेजाने वाले फ़रिश्ते आपस में झगड़े अर्थात् स्वर्ग में लेजाने वाले फ़रिश्ते कहते थे कि इसको हम लेजायेंगे क्योंकि यह तावह करने की इच्छा से उस वस्ती को चला था और नरक में लेजाने वाले फ़रिश्ते कहते थे कि हम लेजायेंगे क्योंकि इसमें सौ मनुष्यों को मार डाला है और तावह नहीं की, फिर खुदा ने उस वस्ती को आज्ञा दी ( कि जिसमें तावह करने के लिये जाता था ) कि तू इस मुरदे के समीप होजा और जिस वस्ती से ईश्वर भक्त को मारकर चला था उसे आज्ञा दी कि तू इस मुरदे से दूर होजा फिर खुदा ने उन फ़रिश्तों से कहा कि तुम मुरदे से दोनों वस्तियों की दूरी को नापा अर्थात् जिस वस्ती से निकट होगा उसी के फ़रिश्तों को सौंपा जायगा, निदान जिस वस्ती की तरफ़ को तावह करने के निमित्त चला था वह एक वालिश्त कम निकली अतएव खुदा ने उसके सब पाप क्षमा करदिये इति—यहां से जाना जाता है कि फ़रिश्तों को अवतक यह ज्ञान न था कि ऐसा मनुष्य स्वर्ग के योग्य है वा नरक के और खुदा ने जो एक वस्ती के

है वा नरक के, और खुदा ने जो एक वस्ती का निकट होने तथा दूसरी को दूर होजाने की आज्ञा दी यह उसने वृथा ही कल कपट किया यदि वैसेही फ़रिश्तों से कहदेता कि इसे स्वर्ग में लेजाओ तो क्या हानि थी क्या फ़रिश्ते उसकी आज्ञा को न मानते ?

४७—मुहम्मद साहिब ने कहा कि जो कोई दिनभर में सत्तर बार अर्थात् बारंवार वही पाप कर्म करे और क्षमा चाहता रहे उसने कोई पाप कर्म नहीं किया इति—ऐसी आज्ञा का देना लोगों को पाप कर्म करने में उत्साह दिलाना है ।

४८—मुहम्मद साहिब कहते हैं कि शैतान ने खुदा से कहा कि ए खुदा तेरी क़सम मैं तेरे बंदों को सर्वदा कुमार्ग में प्रवृत्त करता रहूंगा जबतक कि उनके जीव उनके शरीरों में होंगे, खुदा ने कहा कि अपनी क़सम मैं उनको सर्वदा क्षमा करता रहूंगा जबतक कि क्षमा चाहेंगे इति—यहां से जाना जाता है कि शैतान पर खुदा का भी कुछ बश नहीं चलता और शैतान उसके बंदों को बलात्कार कुमार्ग में प्रवृत्त करता है परन्तु खुदा उनको कुमार्ग से नहीं रोकसकता हां यदि उसके बंदे चाहते रहेंगे तो वह क्षमा सर्वदा करता रहेगा, निदान शैतान बड़ा वीर है जिसने खुदा के सम्मुख उसके अति विरुद्ध वचन कहा और वह उसको कुछ न कर सका, धन्य !

४९—मुहम्मद साहिब ने कहा कि न कोई अपने कर्म से स्वर्ग में जायगा और न किसी का कर्म उसको नरक से बचायगा, न मैं अपने कर्म से स्वर्ग में जाऊंगा, स्वर्ग में जाना केवल खुदा की कृपा पर है इति—इस आज्ञा से प्रत्येक मनुष्य उत्तम कर्म करने में निरुत्साह होसकता है, ऐसा प्रकट होता है कि

- मुहम्मद साहिब के कर्म उत्तम न थे और प्रायः और लोगों के कर्म उत्तम होंगे इसलिये मुहम्मद साहिब ने ऐसा कह दिया
- ५०—एक पुरुष ने मुहम्मद साहिब के पास आकर कहा कि मैं ने वृक्षों पर से पक्षियों के बच्चे पकड़े और उनको अपनी कमली में रख लिया फिर बच्चों को मां आकर मेरे शिर पर फिरने लगी तब मैं ने कमली को खोल दिया कि मां वृक्षों को देखे फिर मां वृक्षों पर आपड़ी फिर मैं न मां और वृक्षों को अपनी चादर में लपेट लिया ये सब मेरे पास हैं, तब मुहम्मद साहिब ने कहा कि उनको रख दे तब उसने उनको रख दिया और खाल दिया और वृक्षों को मां वृक्षों को चिपटगड़े मुहम्मद साहिब ने कहा कि मां अपने वृक्षों पर जिस प्रकार प्रेम और दया करती है यह आश्चर्य की बात नहीं लजा इनको जहां से पकड़ा है वहीं रख दे यद्यपि मां उनकी उनकी साथ है फिर वह ले गया इति—मुहम्मद साहिब की यह आज्ञा अति प्रशंसनीय और दयामय है यदि यह बात सत्य है तो केवल उदरपोषण के निमित्त अनेक पशु पक्षियों को हनन करना सर्वथा अन्याय और मुहम्मद साहिब के अभिमत से विरुद्ध है, ख्यात् अन्न के अभाव में मुहम्मद साहिब ने मांस भक्षण को आज्ञा दी हो परंतु नाना प्रकार के उत्तम पदार्थ विद्यमान होने पर मांस भक्षण की आज्ञा देना और मांस भक्षण करना बड़े अधर्म की बात है, जिन पशुओं से सहस्रों मनुष्यों को नाना प्रकार का लाभ पहुंचता है उनको नष्ट करना मानो जगत् को नष्ट करना है, हे मुसलमानों अपने पैगम्बर के पूर्व लिखित वाक्य पर पक्षपात छोड़ कर सम्यक् ध्यान करो और किसी पशु पक्षी का हनन न करो।
- ५१—मुहम्मद साहिब के जामातु अली का कथन है कि फातमः अर्थात् मुहम्मद साहिब की बेटी चक्री पीसने के कारण



अति दुःखित हुई थी और उसने सुना था कि मुहम्मद साहिब के पास बरदे अर्थात् दास आये हैं इस कारण वह मुहम्मद साहिब के पास अपना कष्ट निवेदन करके दास मांगने की इच्छा से गई परन्तु वे न मिले तब उसने आइगः से संपूर्ण वृत्तान्त कहा कि मुहम्मद साहिब से कह देना कि दास मांगने के लिये आई थी, फिर जब मुहम्मद साहिब आये आइगः ने उनको फ़ातमः का कथन सुनाया, अली कहता है कि जिस समय हम अपने बिक्रीनों पर लेटरहे थे तब मुहम्मद साहिब हमारे पास आये हमने उठना चाहा उन्होंने ने कहा कि ऐसे ही लेटे रहो, फिर मुहम्मद साहिब मेरे और फ़ातमः के बीच में बैठ गये मुहम्मद साहिब के पांव की ठंडक मेरे पेट पर पड़ चुकी फिर कहा कि तुमने जो दास मांगा मैं उससे उत्तम बात तुमको बतलाता हूँ वह यह है फिर तीन मंत्र बतलाये कि इनका सोने के समय पढ़ा करो तुम्हारे लिये यह सेवक से उत्तम है इति—यहां से प्रकट है कि अली अति निर्धन था जो उसकी स्त्री के हाथों में चक्की पीसने से अति खेद हुआ और वह उसका कुछ प्रबंध न कर सका और बड़े आश्चर्य की बात है कि मुहम्मद साहिब की बेटों और जमाई के बीच में बैठते हुए कुछ भी लज्जा न आई और उन्होंने ने अपनी बेटों के निवेदन करने पर भी उसका दुःख दूर करने को दास तो न दिया किन्तु बातों ही में टाला !

५२—मुहम्मद साहिब सोते समय प्रार्थना करते थे कि ए ख़ुदा मेरे पाप जमाकर और मेरे शैतान को दूर कर और मेरी गिरवी को कुड़ा इति—मुहम्मद साहिब अपने पाप कर्मों को जानते थे तभी तो बारंवार पाप जमा चाहते थे और उनको शैतान का भी भय रहता था गिरवी कुड़ाने के लिये जो

प्रार्थना की वह उनके मरण पर्यन्त स्वीकार न हुई फिर उनकी और प्रार्थना स्वीकार होनेका क्या निश्चय है ?

५३—मुहम्मद साहिब ने कहा कि जिस समय तुम लोग मुरगी का शब्द सुनो तो खुदा से उसकी कृपादृष्टि चाहो क्योंकि मुरगी निश्चय फरिश्ते को देखते हैं और जब तुम गधे का शब्द सुनो तब शैतान से बचने की प्रार्थना करो खुदा से, क्योंकि निश्चय वह देखता है शैतान को, अभिप्राय यह है कि मुरगा फरिश्ते को देखकर शब्द करता है और गधा शैतान को देखकर द्रुति—हे मुसलमानों तुम्हारे पैगम्बर के कथनानुसार मुरगा अति श्रेष्ठ पक्षी है कि उसको फरिश्तह देखता है उसको मारकर भक्षण करना बड़े अधर्म की बात है किन्तु तुमको उसकी सम्यक् रक्षा करनी चाहिये और गधा भी तुमसे उत्तम और तुम्हारा हितकारी है कि वह शैतान को देखता है और तुम नहीं देखते जहां कहीं शैतान होता है वह तुमको शीघ्र बतला देता है ।

५४—मुहम्मद साहिब यह प्रार्थना किया करते थे कि ए खुदा क्षमा कर अपराध मेरे दृष्ट्वा पूर्वक करना मेरा और हंसी से करना मेरा और अज्ञान से करना मेरा और जानकर करना मेरा और ये सब हैं मुझमें ए खुदा क्षमाकर मेरे वह पाप कि पहिले किये मैंने और वह पाप कि आगे को होंगे मुझसे और वह पाप कि क्षुप कर किये हैं मैंने और वह पाप कि प्रकट किये मैंने और वह पाप कि तू बहुत जानता है उनको मुझ से इत्यादि—ऐसे स्पष्ट कथन पर भी जो कोई मुहम्मद साहिब को निष्पाप कहे उसके मिथ्यावादी होने में क्या संदेह है !

५५—जबकि मुहम्मद साहिब मक्के में आये तो हजरतलखसवद अर्थात्, काबे नामी मंदिर में जो एक पाषाण रक्खा है उस

के पास गये और उसकी बोसा दिया अर्थात् चूमा फिर अपने दाहिने हाथ की तरफ बाहु हिला कर शीघ्रतासे चले तीन बार और अपनी चाल चले चारवार इति—कहिये यह बुतपरस्ती नहीं तो और क्या है ?

५६—मुहम्मद साहिब ने कहा कि कि हजरत अमरुद वहिश्त से उतरा है और वह दूध से अधिक श्वेत था मनुष्यों के पापों ने उसे काला कर दिया इति ।

५७—मुहम्मद साहिब ने हजरत अमरुद के विषय में कहा कि कमर खुदाकी खुदा उमको क़यामत के दिन उठावेगा उसके दो आंखें होंगी उनसे देखेगा और जिह्वा होगी उस से बोलेगा जिसने उसे बोसा दिया होगा उसकी गवाही देगा इति—यदि उमके इस समय आंख होती और ज्ञानवान् होता तो स्यात् कुछ क़यामत के दिन कह सकता जब कि अब उमके आंख हैं न ज्ञान किंतु एक पत्थर है तो यद्यपि क़यामत के दिन खुदा उसको आंख और जिह्वा दे परंतु वह यह नहीं कहसकता कि अमुक पुरुष ने मुझको चूमा है यदि कहा कि खुदा को सब सामर्थ्य हैं असंभव को संभव करदे तो मूर्तिपूजकों पर आक्षेप करना बुरा है वे भी यही कहसक्ते हैं कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान है ।

५८—जबकि मुहम्मद साहिब मक्के में जय का प्राप्त हुए तो मक्के के विषय में कहा कि क्या अच्छा शहर है त और तु मुझे बहुत प्रिय है यदि मुझको यहां से क़ुरैश लोग न निकालते तो मैं तेरे सिवाय और कहीं न रहता इति—खुदा मुहम्मद साहिब का बड़ा मित्र और उनकी इच्छा को पूर्ण करने वाला था परन्तु शोक की बात है कि मुहम्मद साहिब का चित्त मक्के के अतिरिक्त और कहीं रहने से प्रसन्न न था

और कुबैश ने बलात्कार उनकी वहां से निकाल दिया खुदा ते फ़र भी सहायता न की यहां से प्रकट है कि मुहम्मद साहिब ने अपने विषय में खुदा की ओर से जो कुछ प्रतिष्ठा देना वर्णन किया है सब मिथ्या है वा खुदा निर्बल ।

- ५८—मुहम्मद साहिब ने कहा कि जिस किसी ने संकल्प पूर्वक मेरा दर्शन किया मैं क़यामत के दिन उसकी रक्षा करूंगा और जिस किसी ने मेरे मरने के उपरांत मेरी कब्र का दर्शन किया वह उसकी सदृश है कि जिसने मेरे जीवन काल में मेरा दर्शन किया इति—यहां मुहम्मद साहिब ने अपनी कब्र के दर्शन का महात्म भी सुना दिया धन्य वुतपरस्तों से अधिक कब्र परस्तों की आज्ञा दी !

मिशकात रुवअ तौसरा

- ६०—आज तुम दाहिने को और देने वाले को और निखनेवाले को और पचाहीं को मुहम्मद साहिब ने धिक्कार कहा और सगल दो सखान पाप दतलावा इति ।

- ६१—आइत का कथन है कि मुहम्मद साहिब का मरण उमरमा में हुआ कि उनका बक्तर एक यहुदी के पास तीस चौसरी जी के दहले गिरवी था इति—अह ५२ में वर्णन हुआ कि मुहम्मद साहिब साते समय खुदा से प्रार्थना किया करते थे कि ए खुदा मेरी गिरवी को छुड़ा परन्तु उनकी वह प्रार्थना स्वीकार न हुई तो क्या आशा है कि उन्होंने ने औरों के लिये अपने जीवन काल में जो कुछ प्रार्थना की वा क़यामत के दिन जो कुछ प्रार्थना करने को कहा वे स्वीकार हों, हा खुदा अपने परम मित्र को तीस चौसरी जी के क़ण से भी न छुड़ा सका !

- ६२—मुहम्मद साहिब का कथन है कि खुदा संपूर्ण पाप क्षमा करता है परन्तु क़ण क्षमा नहीं करता, शहीद अर्थात् जो

कोई खुदा के मार्ग में मारा जाय उसके समस्त पाप क्षमा होते हैं परन्तु कृण क्षमा नहीं होता इति ।

६३—म,हम्मद साहिब ने कहा कि कृणों स्वर्ग में नहीं जाता और धर्मात्माओं के समूह में नहीं पहुँचता जबतक कि उसका कृण न दिया जाय इति—इस प्रकार की बहुत हकीमत हैं मुसलमानों को अपने पैगम्बर के इन वचनों पर सख्ख ध्यान रखना चाहिये ।

६४—म,हम्मद साहिब ने कहा कि जितने पैगम्बर हुए हैं सबने बकरी चराई हैं पृच्छा कि आपने भी चराई है कहा कि हाँ मैं मक्के वालों की बकरियाँ कुछ धन लेकर चराता था इति

६५—एक समय म,हम्मद साहिब अपनी बंटी फातमः के घर आये उसके पास ऐसा छोटा कपड़ा था कि जब उससे शिर ढकती तो पाँवतक न पहुँचता और जब उससे पाशों को ढकती तो शिर खुला रहता इति ।

६६—आइशः कहती है कि जब म,हम्मद साहिब से मेरी निकाह हुआ तब मैं सात वर्ष की थी और जब उनके घर में गई तब नौ वर्ष की थी खिलौने खेलने के मेरे साथ थे और जब म,हम्मद साहिब मरे तब मैं अठारह वर्ष की थी इति ।

६७—अली कहता है कि म,हम्मद साहिब ने खैबर की लड़ाई में स्त्रियों से (म,तअ.) करने और गधों का मांस खाने का निषेध किया इति—(म,तअ.) उसको कहते हैं कि कोई पुरुष किसी स्त्रीसे नियम करे कि मैं इतने धन के बदले इतने दिनों तक तुझे अपनी स्त्री तुल्य मान कर तुझसे आनंद लाभ करूँगा मुसलमानों में प्रथम इसका प्रचार था फिर निषेध हुआ मक्के के फतह होने पर फिर इसकी आज्ञा हुई तदुपरान्त फिर निषेध किया गया, बुद्धिमान् लोग

विचार करें कि क्या परमेश्वर की आज्ञा ऐसी होती है कि एक बात कभी विहित हो और कभी निषिद्ध, ऐसे विचार अज्ञानी पुरुषों ही के होते हैं कि प्रथम एक कार्य की आज्ञा दी फिर जब कि उसमें कुछ दोष जाना तब उसका निषेध कर दिया, यहां से निश्चित है कि मुसलमानों का मत केवल मुहम्मद साहिब ही की वृत्ति से प्रचरित हुआ है जिस समय जैसी समझ हुई वैसी ही आज्ञा दी और खुदा के नाम से प्रसिद्ध की अनुयायियों ने अपने अज्ञान वा लोभ भयके कारण बिना विचार स्वीकार कर ली गंधों को मांस भी मुसलमानों में अब तक विहित रहा जब मुहम्मद साहिब की उस में घृणा वा कोई अपगुण प्रतीत हुआ तो निषेध कर दिया धन्य!

६८—इब्रेमसजद कहता है कि हम मुहम्मद साहिब के साथ शत्रुओं से लड़ते थे और हमारी स्त्रियां हमारे साथ न थीं और हम काम से पीड़ित उनकी दृष्टि रखते थे तब मुहम्मद साहिब ने हमको (मुतअ.) करनेकी आज्ञा दी तब हम लोगों में से एक पुरुष ने एक स्त्री के साथ नियमित काल पर्यन्त कपड़े के बदले (मुतअ.) किया फिर अबदुल्लह बिन मसजद ने यह आयत पढ़ी कि ए लोगो यदि ईमान लाये हो तो पावन चीजों को निषिद्ध न जानो जो कि खुदा ने तुम्हारे लिये विहित की हैं इति—इस हदीस से सम्यक् प्रकट है कि जब मुहम्मद साहिब ने अपने अनुयायियों को काम से पीड़ित देखा तो इस अनुचित कर्म की उनकी प्रसन्नता के लिये विहित कह दिया और उसको खुदा की आज्ञा ठहराई मुतअ. और वेश्या गमन में कुछ अन्तर नहीं खुदा की आज्ञा ऐसी कदापि नहीं हो सकती कि आज विहित हो और कल को निषिद्ध ठहरे।

६८—जबकि मुहम्मद साहिब ने अपनी सूदह नाक़ी स्त्रीको तलाक़ देनी चाही तो उसने कहा कि मुझको अपने निकाह में रहने दो और मैंने अपना दिन आइशः को दे दिया इति—जानना चाहिये कि मुहम्मद साहिब की नौ स्त्रियां थीं एक २ दिन सबके लिये नियत था और मुहम्मद साहिब सब स्त्रियों को अपेक्षा आइशः से अत्यंत प्रीति रखते थे, सूदह हडावस्था को प्राप्त हुई थी इस कारण मुहम्मद साहिब ने उसकी बारी का दिन नियत रखना बुरा जाना और उस को तलाक़ देनी चाही, तब उस बेचारी ने विवश होकर यह निवेदन किया कि मेरा त्याग न करो मैंने अपनी बारी का दिन आइशः को दे दिया, इस प्रकार स्त्रियों में अनुराग होना और एक स्त्री के वृद्धा होजाने पर उसके त्याग की इच्छा करना फिर उसकी बारी का दिन प्रिय पत्नी को मिल जाने पर प्रसन्न होना शिष्टों का काम कदापि नहीं किंतु यह काम विषयासक्त पुरुषों ही का है, धन्य !

७०—आइशः कहती है कि हवशी लोग मसजिद में बरक़्तियों से खेलते थे और मुहम्मद साहिब मेरे मकान के दरवाजे पर खड़े हुए अपनी चादर से मेरा परदा कर रहे थे कि मैं उनके कंधों और कानों के बीच से उन लोगों का खेल देखूं जब तक मैं आप अपनी इच्छा से न हटी तब तक हज़रत मेरी प्रसन्नता के लिये वैसेही खड़े रहे, ध्यान करो कि थोड़ी अवस्था वाली लड़कियों खेल तमाशा देखने को कैसा प्रिय जानती हैं मैं इतनी देर खड़ी रही और हज़रत भी मेरे लिये खड़े रहे तात्पर्य यह कि मुहम्मद साहिब देर तक तमाशा दिखलाते रहे इति—इस प्रकार स्त्रियों के वशीभूत होना सज्जनों का काम नहीं ।

७१—मुहम्मद साहिब ने कहा कि जिस समय कोई पुरुष अपनी स्त्री को अपनी शय्या पर बुलावे और वह न आवे और पति क्रोध में रात्रि व्यतीत करे तो फ़ारिशी प्रातःकाल तक उस स्त्री को धिक्कार करते हैं, फिर मुहम्मद साहिब ने कहा कि खुदा की कसम जब कोई पुरुष अपनी स्त्री को अपनी शय्या पर बुलावे और वह न आवे तो खुदा उस स्त्री पर क्रोध करता है जब तक कि उसका पति उससे प्रसन्न न हो इति—ऐसी आज्ञा खुदा की कदापि नहीं हो सकती किंतु विषयामक्त पुरुषों की होती है, यहां से जाना जाता है कि मुहम्मद साहिब और उनके अनुयायी अति विषयामक्त थे, पूर्वोक्त वचनों से स्त्रियों की भय दिखाया है कि कोई स्त्री पति के कामासक्त होने पर कभी उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन न करे ।

७२—एक दिन मुहम्मद साहिब के पास अबूवक्र और उमर गये हज़रत के आसपास उनकी स्त्रियाँ बैठी थीं और वह शोकित चुप थे, उमर ने अपने मन में विचार किया कि मैं कोई बात ऐसी कहूँ कि जिससे मुहम्मद साहिब प्रसन्न हों और उनका शोक दूर होजाय, निदान उमर ने कहा कि ए खुदा की रसूल यदि मेरी स्त्री मुझसे रोटी पानी का खर्च अधिक मांगे तो मैं उसको गरदन कूटूँ मुहम्मद साहिब हंसे और कहा कि ये स्त्रियाँ मेरे आसपास बैठी हैं और मुझसे खर्च अधिक मांगती हैं, तब अबूवक्र खड़े हुए और अपनी बेटी आइश की गरदन कूटने लगे, इसी प्रकार उमर खड़े हुए और अपनी बेटी हिफ़ज़ की गरदन कूटने लगे और अबूवक्र तथा उमर दोनों ने कहा कि मुहम्मद साहिब से वह वस्तु क्यों मांगती हो जो कि उनके पास नहीं, तब स्त्रियों ने कहा कि



खुदा की कसम हम मुहम्मद साहिब से वह वस्तु जो कि उनके पास नहो कभी कुछ न मांगेंगी इत्यादि ।

७३—आदृशः का कथन है कि मैं एक समय मुहम्मद साहिब के साथ दौड़ी और उनसे आगे निकलगई फिर जबकि मैं मोटी होगई तो उनके साथ दौड़ी और वह मुझसे आगे बढ़गये तब मुहम्मद साहिब ने मुझसे कहा कि यह बढ़जाना उस बढ़जाने के बदले है अर्थात् पहिले तू दौड़ने में मुझसे आगे निकलगई थी अब मैं तुझसे आगे निकल गया इति—धन्य शिष्टों का यह कर्म !

७४—मुहम्मद साहिब ने आज्ञा दी कि अपनी स्त्रियों को न मारा करो फिर उमर में उनके पास आकर निवेदन किया कि आपने स्त्रियों को मारने का निषेध किया इस कारण स्त्रियों पतियां पर प्रवल हागईं तब मुहम्मद साहिब ने फिर स्त्रियों का मारने को आज्ञा दी फिर बहुतसी स्त्रियों ने मुहम्मद साहिब की स्त्रियों के पास आकर अपने पतियों पर मारने का दोषारापण किया तब मुहम्मद साहिब ने कहा कि मेरी स्त्रियों के पास बहुतसी स्त्रियें एकत्र जुईं और वे अपने पतियों का दोष वर्णन करती हैं, जो लोग अपनी स्त्रियों को मारते हैं वे उत्तम नहीं इति—प्रथम स्त्रियों को मारने का निषेध किया फिर आज्ञा दी पुनः निषेध किया, यह मुहम्मद साहिब ही की अज्ञता का कारण है वा खुदा की वुझि का दोष है ? मुसलमानों का कथन है कि मुहम्मद साहिब जो कुछ करते थे खुदा ही की आज्ञा से करते थे यदि ऐसा है तो उनका कुछ दोष नहीं परंतु खुदा की आज्ञा ऐसी नहीं होती कि कभी कुछ और कभी कुछ !

७५—एक दिन मुहम्मद साहिब ने आदशः के घर में उसकी खेलने की गुड़ियों को देख कर कहा कि ए आदशः यह क्या है, उसने कहा कि ये मेरी गुड़ियां हैं उनमें एक घोड़ा था कि जिसके कपड़े वा कागज के दो पर थे, मुहम्मद साहिब ने उसकी देखकर कहा कि यह क्या है आदशः ने कहा कि यह घोड़ा है मुहम्मद साहिब ने आश्चर्य से कहा कि घोड़ा है उसके दो पर हैं, आदशः ने उत्तर दिया कि क्या आपने नहीं सुना कि सुलेमान के घोड़ों के पर थे यह सुनकर मुहम्मद साहिब अत्यंत हंसे इति—मुहम्मद साहिब का कालर्क्ष्य प्रायः ऐसी ही बातों में होता था कि जिनसे सज्जन लोग घृणा करते हैं यहां आदशः की बुद्धि मुहम्मद साहिब से उत्तम रही ।

७६—मुहम्मद साहिब के पास आकर एक स्त्री ने कहा कि मैं अमुक पुरुष की विवाहिता थी उसने मुझको तीन तलाक दीं फिर मैंने अमुक पुरुष से विवाह किया वह नपुंसक है, मुहम्मद साहिब ने कहा कि क्या तू अब फिर पहिले ही पति के पास जाना चाहती है, उसने कहा कि हां मुहम्मद साहिब ने कहा कि जबतक वह तेरे साथ संग न करले तबतक पहिले पति से पुनर्विवाह उचित नहीं इति ।

७७—मुहम्मद साहिब ने एक ऊंट को देखा कि भूख प्यास और बहुत सवारी में रहने के कारण उसकी पीठ पेट से लगगई थी तब उन्होंने कहा कि इन जिह्मान रखने वाले चौपायों के विषय में परमेश्वर से डरो, उनपर उस दशा में सवार हो जबकि वे बलवान् और सवारी के योग्य हों और जबकि वे अच्छे हों और थके नहीं तब उनकी छोड़

दो इति—हे मुसलमानों जबकि थकेहुए पशुओं पर सवारी करना भी अनुचित है तो उनका वध करना कैसे अनुचित नहीं यदि तुमको कुछ भी बुद्धि है तो परमेश्वर से डरो और किसी पशु पक्षी का वध न करो ।

७८—एक पुरुष कहता है कि मैं अपने पिता के साथ मुहम्मद साहिब के पास गया और मेरे पिता ने उनकी पीठ पर नबी होने को मुहर को देखकर कहा कि मुझे आश्चर्य तो मैं इसकी चिकित्सा करूँ निश्चय मैं वैद्य हूँ मुहम्मद साहिब ने कहा कि तू मित्र है और खुदा वैद्य है इति—मुसलमान कहते हैं कि मुहम्मद साहिब की पीठ पर नबी होने को मुहर थी परंतु इस हद्दीस से पूर्ण निर्णय होगया कि वह कोई रोग विशेष था तभी तो वैद्य ने उसकी चिकित्सा करनेको कहा और मुहम्मद साहिब उस रोग को असाध्य जानते थे अतएव यह कहा कि वैद्य खुदा है, यदि रोग न होता और वह नबी होनेकी मुहर ही होती तो वैद्य कैसे कहता कि मैं इसकी चिकित्सा करूँ और मुहम्मद साहिब क्यों न कहते कि यह कोई रोग नहीं किंतु मेरे नबी होने की मुहर है ।

७९—खुदा ने आदम को अपनी सूरत पर उत्पन्न किया इति—यहांसे भी खुदा का शरीरधारो होना स्पष्ट सिद्ध है ।

८०—एक पुरुष कहता है कि हम सफ़र में मुहम्मद साहिब के साथ थे हमने लाल नामी चिड़िया को उसके दो बच्चों सहित देखा और हमने उसके बच्चे पकड़ लिये फिर उक्त चिड़िया आई और अपने पर विकाने लगी और पृथ्वी से लगने लगी यह बात देखकर मुहम्मद साहिब ने कहा कि बच्चोंको पकड़कर किसने इसको शोक में डाला है इसको

बलों को इसकी पास छोड़ो इत्यादि—हे मुसलमानों यदि तुम्हारे पेशेवर किसानों में यह दयामय वचन कहा है और प्राणी को धोड़ा दाख देना भी बुरा जाना तो तुमको पशु पक्षियों का वध करना सर्वथा अनुचित है।

८१—एक यहूदी की स्त्री मुहम्मद साहिब को बुरा कहती थी और उनके दोष वर्णन करती थी, एक पुरुष ने उसको मार-डाला मुहम्मद साहिब ने उस पुरुष का दोष क्षमा किया इति—यहांसे मुहम्मद साहिब का द्वेष और न्याय प्रकट है

८२—मुहम्मद साहिब ने कहा कि जो कोई मेरी आज्ञा माने। नष्ट उसने खुदा की आज्ञा मानो और जिसने मेरी आज्ञा न मानी उसने खुदा की आज्ञा न मानी इति—मुसलमान कहते हैं कि खुदा का कोई शरीक नहीं परंतु मुहम्मद साहिब तो खुदा के पूरे शरीक हैं वही खुदा उसके आधीन हो प्रकट होता है कि जो कोई उसकी आज्ञा न मानेगा तो खुदा भी उसको अपना विरोधी मानेगा धन्य !

८३—जबकि मुहम्मद साहिब को यह खबर पहुंची कि फारसियों ने कसरा की बेटों को अपना बादशाह बनाया है तो कहा कि जिस प्रजापति स्वयं का अपना बादशाह बनाया वह कदापि सुख न पावेगी इति—मुहम्मद साहिब का यह विचार सर्वथा मिथ्या और प्रत्यक्ष के विरुद्ध है, देखिये श्रीराज राजेश्वरी कैसरहिंद की प्रजा कैसे सुखों को भोग रही है मुसलमान बादशाहों के अन्याय से प्रजा ने जैसा २ दुःख भोगा है वह इतिहास से सम्यक् प्रकट है परमात्मा सर्वदा हमको श्रीराज राजेश्वरी कैसरहिंद ही की प्रजा बनाये रखे।

८४—मुहम्मद साहिब ने कहा कि जो कोई प्रतिज्ञा भंग करता

है कयामत के दिन उसकी गुदाके समीप चिन्ह होगा अर्थात् उसको अप्रतिष्ठा और निन्दाके लिये इति—मुहम्मद साहिब ने हुदैयियः की संधि में कुरैशी से यह प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई कुरैश का आदमी मुसलमान हो जावे और हमसे आमिल होम उसे फेर देंगे, जब मुहम्मद साहिब कुरैश को संधिपत्र देकर मदीने में चलेआये एक पुरुष अबूनसौर नामी मक्का से भागकर उनके पास आया और मुसलमान हो गया, कुरैश ने दो आदमी उसके फेर लानेकी भेजे, मुहम्मद साहिब ने देना न चाहा कुरैशी बोले कि तुम पहिले लिख चुके हो कि कुरैश का जो आदमी हमारे पास आवगा हम उसे फेर देंगे अब क्यों नहीं फेरते, तब उन्होंने अबूनसौर को उन दोनों के साथ करदिया मार्ग में उसने एक कुरैशी को जान से मार डाला और दूसरेको भगाकर फिर आप मदीने में चलाआया, मुहम्मद साहिब ने यह वृत्तान्त सुनकर उसे समझा दिया कि तुम्हारे पास से चलाजा और मक्के से जो लोग हमारे पास आना चाहते हैं परंतु संधिपत्र नियमित प्रतिज्ञा के कारण नहीं आसकते उनके भी अपनेपास बुलाले सब मिलकर मार्ग को लूटे उसने मुहम्मद साहिब की सम्मति पाकर ७० मनुष्य अपने साथ करलिये और मक्के के आसपास लूटने लगे कुरैशियों ने इनको लूट खुभाट से अति दुःख पाकर मुहम्मद साहिब से कहला भेजा कि हमने अपने मनुष्य फेरनेका नियम छोड़ा तुम अपने इन लूटेरोंको मदीने में बुलालो कि जिससे हमारे लोग मार्ग में निर्भय रहें, तब मुहम्मद साहिब ने उन सबको अपनी पास बुलानिया—इस वृत्तान्त से मुहम्मद साहिब का प्रतिज्ञा भंग करना स्पष्ट प्रकट है।

एक दिन आदमः और हिफज़ः ने कहा कि मुहम्मद साहिब ने कीकड़ की छाल का रस पिया है उनके मुखसे दुर्गन्ध आती है, मुहम्मद साहिब ने कहा कि मैंने तो शहद पिया है अब कसम खाता हूँ कि आगे को कभी शहद भी न पिऊंगा इसी प्रकार एक रात मुहम्मद साहिब हिफज़ः स्त्री के घर में थे और उस रात उसी स्त्री की वारीयों वह किसी कार्य के लिये बाहर गई मुहम्मद साहिब ने मारयः नाम्नी दासी से संग किया जब हिफज़ः आई तो दरवाज़ा बंद पाया वह दरवाज़े पर खड़ी रहो जब मुहम्मद साहिब ने दरवाज़ा खोला हिफज़ः ने कहा कि तुमने मेरे घरमें और मेरी शय्या पर दासी के साथ संग क्यों किया मुहम्मद साहिब ने कहा कि आज से कसम खाता हूँ कि इस दासी के साथ फिर कभी संग न करूंगा इत्यादि—फिर मुहम्मद साहिब ने अपनी कसम तोड़ी और प्रतिज्ञा भंग की देखिये क्यामत के दिन उक्त हदोस के लेखानुसार उनकी क्या दशा हो, अस्तु !

८५—दो पुरुष मुहम्मद साहिब के पास भगड़ते आये उनसे उन्होंने कहा कि जिस विषय में मेरे पास कोई खुदा की आज्ञा नहीं आई मैं उस विषय में अपनी बुद्धि के अनुसार आज्ञा देता हूँ इति—अब मुसलमानों का वह कथन कि मुहम्मद साहिब जी काम करते थे खुदा की आज्ञाही से करते थे मुहम्मद साहिब ही के वचनसे मिथ्या होगया, वास्तव में मुहम्मद साहिब सर्वदा अपनी इच्छानुसार आज्ञा देते थे और उसको खुदा की आज्ञा बतलाकर अज्ञों को अपने वशीभूत करते थे ।

८६—जो लोग खुदा के मार्ग में मारे गये वे मरे नहीं किंतु जीते हैं उनके जीवात्मा हर रंगवाले पक्षियों के पेट में हैं स्वर्ग में सेवा खाते हैं परमेश्वर उनकी ओर भांकता है और कहता है कि तुम किस वस्तु को चाहते हो, वे कहते हैं कि हम और किस वस्तु को चाहें जब कि स्वर्ग में सेवा खाते हैं इत्यादि—इस हर्दीस से मुहम्मद साहिब ने मुसलमानों को लड़ने मरने में उत्साह दिलाया है कि स्वर्ग के लाभ से प्रत्येक लड़ने को उद्यत रहे कोई मरने का भय न करे, और इस हर्दीस से पुनर्जन्म भी स्पष्ट सिद्ध है कि जो लोग खुदा के मार्ग में मारे गये उनके जीवात्मा हरे पक्षियों के शरीर धारण करके स्वर्ग में सेवा खाते हैं, और यहां से खुदा का शरीर धारी होना भी सम्यक् प्रकट है कि वह उनको ओर भांकता है, इत्यादि।

८७—मुहम्मद साहिब को स्त्रियों के अतिरिक्त कोई वस्तु प्रियतम नहीं उनके उपरान्त घोड़े इति—स्त्रियों में अति अनुराग होना शिष्टता के विरुद्ध है और मुहम्मद साहिब इस विषय में अद्वितीय थे, धन्य !

८८—मुहम्मद साहिब ने कहा कि जानवरों की पीठों को चौकी न बनाओ अर्थात् उनपर सवार हुए बातें करने के लिये न खड़े रहा किन्तु बातचीत करना ही तो उनसे उतर कर करो और फिर सवार हो क्योंकि खुदा ने जानवरों को केवल इसलिये उत्पन्न किया है कि तुम अपने शरीर के परिश्रम से जहां नहीं पहुंच सकते वे तुमको वहां पहुंचावे उनकी दुःख देना उचित नहीं इत्यादि—हे मुसलमानों पक्षपात छोड़कर न्यायपूर्वक विचार करो जब कि तुम्हारे पैगम्बर ने जानवरों पर चढ़े हुए खड़े होकर बातें करने का भी निषेध किया है और यह कहा है कि खुदा ने जानवरों

को केवल इसलिये उत्पन्न किया है कि जहां तुम अपने परिश्रम से नहीं पहुंच सकते वे तुमको वहां पहुंचावें उनकी दुःख देना उचित नहीं तो ऊंट घोड़े बैल आदि जिनको खुदा ने केवल सवारी के लिये उत्पन्न किया है और मुहम्मद साहिब ने उनको इतना दुःख देना भी अनुचित कहा है कि उनपर सवार हुए बातें करने को न खड़े रहो तो यह कब उचित होसकता है कि तुम केवल जिह्वा के लिये उनकी जान से मार डालो और उनके द्वारा जगत् का जो कुछ उपकार होता उसे सर्वथा नष्ट कर दो ।

८६—मुहम्मद साहिब ने कहा कि लड़ाई फ़रेब है अर्थात् लड़ाई में कल कपट करना उत्तम होता है इति— शिष्ट लोग कदापि कल कपट की अच्छा न कहेंगे परन्तु मुहम्मद साहिब तो कल कपट ही से पैग़म्बर बने कल कपट ही से ऐश्वर्य को प्राप्त हुए फिर कल कपट की क्यों न उत्तम कहें !

८७—बदर की लड़ाई में मुहम्मद साहिब ने कुरैश के चौबीस प्रतिष्ठित मुरदे एक गंदे कुए में डलवा दिये थे जब कि वहां से चले उस कुए के निकट खड़े हुए और उन मृतक पुरुषों का नाम लेले कर पुकारने लगे कि हे अमुक अमुक के बेटे और हे अमुक अमुक के बेटे तुमने खुदा और उसके रसूल की आज्ञा न मानी हमने तुम पर विजय पाई और तुमको दुःख प्राप्ति हुई उमरने कहा कि ए खुदा के रसूल मुरदों से क्या बात करते हो मुहम्मद साहिब ने उत्तर दिया कि खुदा की कसम तुम उनसे अधिक नहीं सुनते परन्तु वे उत्तर नहीं देते इति— कौन बुद्धिमान स्वीकार करसकता है कि मुरदे सुनते हैं वास्तव बात यह है कि कुरैशों ने मुहम्मद साहिब को पहिले अत्यंत दुःख दिया था जब कि



दैवात् वे मारे गये तो मुहम्मद साहिब ने उन मरेहुओं से भी द्वेष न छोड़ा कि उनके गंदे कुए में डलवाया और मृतकों को क्रूर बचन कहे, उमर ही ने मुहम्मद साहिब के इस कर्म को उचित न जाना तभी तो यह कहा कि मुरदों से क्या बात करते हो, निदान मुहम्मद साहिब का यह कथन कि खुदा की कसम तुम उनसे अधिक नहीं सुनते सर्वथा मिथ्या है क्योंकि मुरदों का सुनना असम्भव है ।

६१—मुहम्मद साहिब ने कहा कि खुदाने मुभकी पैगंबरी पर वड़ाई दी वा कहा कि मेरे अनुयायियों को और पैगंबरी के अनुयायियों पर वड़ाई दी इति—इस कथन का क्या प्रमाण है यं तो अपने मुख से प्रत्येक मनुष्य अपने को सर्वोत्तम कहसकता है ?

६२—मुहम्मद साहिब ने कहा कि गिरगट की मारडाली वह इब्राहीम पर आग फूंकता था इति—मुसलमानों की किताबों में लिखा है कि इब्राहीम के जलाने के निमित्त एक चारदीवारी चार कीस पृथ्वी में वनाई गई थी और वे दीवारें सौ गज ऊंची थीं महीने भर तक उसमें लकड़ियां डाली गई थीं जब उन दीवारों के ऊपर तक लकड़ियां भर गईं तो उनपर बहुत सा तेल डाला गया फिर उसमें आग लगाई जब कि उसमें आग भड़की तो ऐसी प्रज्वलित हुई कि कोई पुरुष उसके समीप न जासकता था फिर यह संदेह हुआ कि इब्राहीम को उसमें किस प्रकार डालें तब इब्राहीम को गोफन में रखकर दूर से आग में फेंक दिया, अब बुद्धिमान लोग बिचार करें कि जिस प्रज्वलित अग्नि के समीप कोई पुरुष न जासकता था और जो सौ गज ऊंची दीवार से ऊपर प्रज्वलित थी उसके समीप गिरगट कैसे

गया और वह इब्राहीम पर आग को किस प्रकार फंका था, ऐसे स्थान पर गिरगट का आग फंका सर्वथा असम्भव है, यदि इस असम्भव को भी स्वीकार किया जाय तो जिस गिरगट ने उस समय इब्राहीम पर आग को फंका वही अपराधी हुआ उसके सजातीय संपूर्ण गिरगट कदापि अपराधी नहीं हो सकते उनकी मार डालना मुसलमानों का अत्यंत अन्याय है, यदि एक मुसलमान अपराध करे तो क्या कोई न्याई पुरुष सम्पूर्ण मुसलमानों के वध करने की आज्ञा देगा कदापि नहीं ।

८३ - मुहम्मद साहिव ने कहा कि जिस समय तुम में से कोई भोजन करे तो कहे कि हे खुदा हमारे लिये इस भोजन में वरकत दे और हमको इस से उत्तम खिला और जब कोई दूध पिये तो कहे कि हे खुदा हमारे लिये इस दूध में वरकत दे और हमको इससे अधिक पहुंचा यह न कहे कि इससे उत्तम पहुंचा इस कारण कि दूध से उत्तम कोई वस्तु नहीं दूध के अतिरिक्त कोई वस्तु ऐसी नहीं जो उस के बढ़ने खाने और पीने से तृप्त करे दूध भूख और प्यास दोनों को दूर कर देता है इति—हे मुसलमानों जब नि मुहम्मद साहिव ने दूध को सर्वोत्तम पदार्थ माना है और उसको इस प्रकार प्रशंसा की है और तुमको दूध पीने के समय खुदा से यह प्रार्थना करने की आज्ञा दी है कि हे खुदा हमको इस से अधिक पहुंचा तो तुम दूध देने वाले पशुओं का हनन करके दूध की न्यूनता क्यों करते हो, यदि खुदा से यह प्रार्थना है कि हमको दूध अधिक दे तो दूध देनेवाले पशुओं की सम्पक् रक्षा करो ।

६४ - आइशः कहती है कि मैं रजस्वला होती और मुहम्मद साहिब के शिर में कंधी करती इति ।

६५ - मुहम्मद साहिब ने कहा कि मुशरिकों के विरुद्ध करो कि वे मूछें बढ़ाते हैं और डाढ़ियों का कम करते हैं तुम उन के विरुद्ध करो कि डाढ़ियां बढ़ाओ और मूछों का कम करो और एक जगह है कि बहुत कम करो लवें और छोड़ दो डाढ़ियां इति—यद्यपि मुशरिक शब्द खुदा के साथ किसी को शरीक करने वाले का वाचक है परन्तु मुसलमान लोग अपने अतिरिक्त अन्य मतावलंबियों को मुशरिक कहते हैं वास्तव में मुसलमान ही मुशरिक हैं कि खुदा के साथ मुहम्मद साहिब को शरीक करते हैं ।

६६ - मुहम्मद साहिब ने कहा कि निश्चय यहूद और नसारा खिजाय नहीं करते तुम उनके विरुद्ध करो अर्थात् तुम खिजाय किया करो इति - यहां से प्रकट है कि मुहम्मद साहिब को दूसरों के विरुद्धाचरण करने ही का ध्यान रहता था, धर्माधर्म का कुछ भी विचार न था ।

६७ - मुहम्मद साहिब ने कहा कि नज़र अर्थात् टाक का फल ठीक है इति ।

मिशकात शरीफ़ दीया

६८ - आइशः कहती है कि मुहम्मद साहिब ने आज्ञा दी कि टाक के लिये मंत्र पढ़वावे मुहम्मद साहिब ने एक लड़की के मुख पर ज़रूरी देख कर कहा कि मंत्र पढ़वाओ निश्चय इस को नज़र लगी है इति ।

६९ - मुहम्मद साहिब ने कहा कि जो कोई सचहवों और उदो-सवों और इक्कीसवों का भरी हुई सींगी तिवंचवां उसको सब बीमारी दूर होजाती है इति—मुहम्मद साहिब के इस कथन के मिथ्या होने में किसी को भी संदेह न होगा ।

- १००—मुहम्मद साहिव की एक बीबी के पास चांदी की नलकी में मुहम्मद साहिव के बाल रक्खे थे जिस किसी को नजर लगजाती वा और कोई रोग होता तो वह एक प्याले में पानी लाता वह उस चांदी की नलकी को पानी में हिला-देती और रोगी उस पानी को पीता इति—जबकि मुसलमानों ने मुहम्मद साहिव के बाल के धुले पानी पीने से रोग निवृत्ति का विश्वास किया तो उनमें अनन्यापासना कहाँ रही ?
- १०१—मुहम्मद साहिव ने कहा कि जो कोई हर महीने में प्रातः काल तीन दिन शहद चाटे उस पर कोई विपत्ति नहीं आती इति—मुहम्मद साहिव प्रायः शहद पीते थे उन पर जन्म भर नाना प्रकार की विपत्तियाँ आती रहीं यहाँ तक कि एक स्त्री ने उनको खाने में विष खिलाया उसी के कारण महा विपत्ति भाग कर मरे ।
- १०२—मुहम्मद साहिव ने कहा कि तुम यहूदियों और नुसरा-नियों को प्रथम सलाम न करो और जब तुम उनसे मार्ग में मिलो तो उनको आने जाने का मार्ग तंग करदो इति—धन्य क्या उत्तम उपदेश है इससे अधिक द्वेष और क्या होगा ?
- १०३—मुहम्मद साहिव ने कहा कि जब कोई जमाई ले तो अपना हाथ मुंहपर रखले जो कोई मुंह खुला रखता है उसके मुंह में शैतान घुसजाता है इति ।
- १०४—मुहम्मद साहिव ने एक लड़ाई में एक पुरुष को आज्ञा दी कि तू हमारे शत्रुओं को निंदा कर वे लोग भी मेरी निन्दा करते हैं और मुझको बुरा कहते हैं तू मेरी ओर से उनको उत्तर दे इति—यह काम शिष्टों का तो कदापि नहीं होसकता किन्तु तुच्छ पुरुषों का है ।

१०५—मुहम्मद साहिव ने कहा कि रहम करो उनपर जो कि जमीन में हैं तो रहमत करे तुमपर जो कि आसमान में है इति—हे मुसलमानों जो खुदा की रहमत चाहो तो अपने पैगम्बर के कथनानुसार प्राणिमात्र पर रहम करो उक्त हदीस में मनुष्य तथाच पशु पक्षियों पर करुणा करने का विधान स्पष्ट है इसके विरुद्ध उनको दुःख देना मुसलमानों का सर्वथा अज्ञान है, उक्त हदीस से यह भी प्रकट होगया कि खुदा आसमान में रहता है फिर उसके शरीर धारी होने में क्या संदेह है !

१०६—मुहम्मद साहिव ने कहा कि जगत् खुदा का कुनवा है जगत् में उत्तम वह पुरुष है कि खुदा के कुनवे पर अहसान करे इति—इस हदीस में तो जगत् पर अहसान करने की आज्ञा है यदि अहसान भी न करो तो उनको दुःख तो न दो, पशु पक्षियों का वध करना उक्त दोनों हदीसों के विरुद्ध है ।

१०७—मुहम्मद साहिव का कथन है कि एक स्त्री ने एक विल्ली को बांध रक्खा था न उसको कुछ खिलाती थी और न छोड़ती थी वह विल्ली मारे भूख के मरगई मैं ने उस स्त्री को इस पाप कर्म के बदले नरक की आग में दंड पाते देखा इति—जब कि एक विल्ली के भूखा रहने और भूख के कारण उसका मरण होने से उस स्त्री को नरक की आग में दंड मिला तो जो लोग सैंकड़ों पशु पक्षियों का वध करते हैं देखिये उनको कैसा दंड मिले ।

१०८—मुहम्मद साहिव का कथन है कि मैं और कयामत तर्जनी और मध्यमा इन दोनों उङ्गलियों की सदृश भेजे गये हैं अर्थात् मध्यमा उङ्गली तर्जनी उङ्गली से जितनी बड़ी हुई है ऐसे

जो कयामत से प्रथम मेरी उत्पत्ति है कि मैं कयामत से आग आया हूँ और कयामत पीछे चली जाती है इति—  
मुहम्मद साहिब को मरे १३०० वर्ष अतीत होगये परन्तु  
जो कि उनकी उत्पत्ति और कयामत के आने में बहुत ही  
घोड़ा अन्तर था वह अद्यपर्यन्त न आई।

१०८—मुहम्मद साहिब ने कहा कि इस दुनिया के नाश होने  
के कयामत के आने का इतना एक कपड़े की मटण  
है कि प्रारंभ से अन्त पर्यन्त फाड़ागया और अन्त में धागे  
के साथ लटका रहा समीप है कि वह धागा तोड़ा जावे  
अर्थात् जगत् का अन्त और नाश हो इति—यहां भी हमारा  
वही कथन है कि मुहम्मद साहिब को मरे १३०० वर्ष होगये  
परन्तु वह एक धागा जो समीप टूटने वाला था अद्यपर्यन्त  
न टूटा।

११०—मुहम्मद साहिब ने कहा कि कयामत के दिन ख़ुदा  
जमीन को पंजे में लेंगे और आसमान को अपने दाहिने  
हाथ में लपेटेंगे इति।

१११—कयामत के दिन जमीन एक पाटी होगी ख़ुदा उस-  
को अपने हाथ में उलट फलट करेगा इति।

११२—दोज़ख़ में जितने मनुष्यादि डाले जायेंगे वह उनसे  
न भरेगी जब कि ख़ुदा उसमें अपना क़दम अर्थात् चरण  
रखेगा तब भरजायगी इति—उक्ति तीनों हदीसों से मुस-  
लमानों के ख़ुदा को शरीर धारी होना स्पष्ट सिद्ध है।

११३—मुहम्मद साहिब ने कहा कि इब्राहीम ने तीन बार झूठ  
बोला है एक उन्होंने ने कहा कि निश्चय मैं बीमार हूँ इसका  
इत्तान्त यह है कि एक समय उनकी जातिवालों ने उनको  
अपनी ईद को मार के लिये बुलाया और उन्हो ने चाहा

कि मैं इनके साथ न जाऊँ तो पीछे इनकी मूर्तियों को तोड़ूँ तब यह बहाना किया कि मैं बीमार हूँ जिस से कि वे छोड़ जावें और दूसरा मिथ्या भाषण उनका यह है कि किया यह बड़े उनके ने इसकी कथा यह है कि जब इब्राहीम ने उनके पीछे उनकी मूर्तियों को तोड़ डाला और उन्होंने ने पूछा कि यह काम तू ने किया है तो इब्राहीम ने कहा कि यह जो सब में बड़ी मूर्ति है इसने यह काम किया है, तीसरा अन्त कथन इब्राहीम का यह है कि इब्राहीम सारा नाम्नी अपनी स्त्री सहित शाम देश की ओर जाते थे देवात् एक अन्याई बादशाह के नगर में ठहरे लोगों ने उसको खबर पहुँचाई कि इस नगर में एक पुरुष है और उस के साथ एक स्त्री अति सुंदर है उसने इब्राहीम को अपने पास बुलाया और पूछा कि इस स्त्री से तेरा क्या सम्बन्ध है इब्राहीम ने कहा कि यह मेरी बहिन है इत्यादि — प्रकट हो कि वह बादशाह मजूस मत का था और उसके मत में बहिन भाई की पत्नी होती थी भाई के होते बहिन को और कोई ग्रहण न करता था अत एव इब्राहीम ने अपनी स्त्री को बहिन कहा कि वह बादशाह अपने मतानुसार मेरी स्त्री को ग्रहण न करे, पैगम्बर होकर एक अन्याई बादशाह के भय से इब्राहीम ने जोरू को बहिन कहा कोई अधम पुरुष भी ऐसा न कहेंगा धन्य !

११४—सुहम्बद साहिब का कथन है कि मौत का फ़रिश्तह मूसा पैगम्बर के पास आया और कहा कि अपने खुदा की आज्ञा स्वीकार करो अर्थात् तुम्हारा मृत्युकाल आया चला मूसा ने फ़रिश्तह की आंख पर ऐसा थप्पड़ मारा कि उसकी आंख फूट गई फिर फ़रिश्तह खुदा के पास गया और

कहा कि तुने मुझको ऐसी वंदे के पास भेजा कि जो मरना चाहता और निश्चय उसने मेरी आंख फोड़ डाली वगैरह—यह हद्दीस सत्य है तो मुसा ने शैतान से भी अधिक बुरा काम किया कि खुदा की आज्ञा न मानी और उसके भेजे हुए फारसह की आंख फोड़ डाली इतने पर भी मुसलमान पैगम्बरों को निष्पाप कहते हैं धन्य !

११५—आइया का कथन है कि मुहम्मद साहिव अपनी जूती आप गांठलते थे और अपना कपड़ा सीलते थे अपने कपड़े में जुएं देखते थे और अपनी बकरी को दुहते थे इति ।

११६—अली का कथन है कि मुहम्मद साहिव को एक यहूदी का ऋण देना था उसने अपने धन का तकाजा किया मुहम्मद साहिव ने कहा कि मेरे पास कोई वस्तु नहीं कि जो तेरे ऋण के बदले तुझको दूं यहूदी ने कहा कि जबतक तुम मेरा ऋण न दोग मैं तुमको न काड़ूंगा मुहम्मद साहिव ने कहा कि यदि तू मुझको अपना ऋण लिये बिना नहीं छोड़ता तो मैं तेरे पास बैठा जाता हूं तेरे पास से न जाऊंगा निदान रात भर उसके पास बैठे रहें इत्यादि ।

११७—उहद की लड़ाई में मुहम्मद साहिव का एक दांत टूटा और उसके होठ तथा सिर पर चोट लगी मुहम्मद साहिव अपना रुधिर पीछते थे और पाते थे कि वे लोग क्योंकर छुटकारा पावेंगे जिन्होंने कि अपने नबी का गिर जख्मी किया और उसका दांत तोड़ा इति—यहां खुदा ने मुहम्मद साहिव को कुछ भी सहायता न की ।

११८—एक दहद को स्त्री ने बकरी के मांस में विष मिलाया और मुहम्मद साहिव के पास लाई उन्हीं ने अपने मित्रों



सहित उसमें से खायी फिर कहा कि हाथ रोकी और न खाओ फिर उस स्त्री को बुलाया और उससे कहा कि तू ने इस बकरी के मांस में विष मिलाया है स्त्री ने कहा कि मिलाया है और मैंने यह विचार किया कि यदि मुहम्मद नबी है तो विष युक्त मांस उसको हानि न करेगा और जो वह पैगम्बर नहीं है तो हम उस से कूट कर सुख पावेंगे फिर जिन लोगों ने मुहम्मद साहिब के साथ वह मांस खाया था उनमें से काँड़े मर गया और मुहम्मद साहिब ने वह विष युक्त मांस खाने के कारण अपने शरीर में पड़ने लग-वाये और उस स्त्री को मरवा डाला निदान कुछ कालान्तर इसी विष के कारण मरे इति ।

११८ — आइजः कहती है कि मुहम्मद साहिब जिस बीमारी में मरे कहते थे कि मैं सर्वदा उस विष युक्त मांस के कारण दुःख पाता था और अब उस विष के कारण मेरा मरण हुआ चाहता है इति — यदि मुहम्मद साहिब खुदा के मित्र और पैगम्बर होते तो विष के कारण ऐसा दुःख क्यों पाते ?

१२० मुहम्मद साहिब ने कहा कि एक पुरुष एक गाय को हाँकता था देवात् वह थक गया और गाय पर गवार हुआ तब गाय बोली कि हम सवारी के लिये उत्पन्न नहीं की गईं मित्रा यह इसकी नहीं कि हम उत्पन्न की गई हैं खेती के लिये इत्यादि — मुसलमानों को अपने पैगम्बर के इस वचन पर सम्यक् ध्यान करना चाहिये जबकि उन्होंने गाय के ऊपर सवार होने का भी निषेध किया और गाय को केवल खेती ही के निमित्त उत्पन्न हुआ माना तो उसको मारकर भक्षण करना सर्वथा अन्याय है, इससे पूर्व मुहम्मद साहिब का

यह वचन भी लिखा गया है कि दूध से उत्तम कोई वस्तु नहीं जब कि मुहम्मद साहिव को दूध ऐसा प्रिय था कि उसको उन्होंने ने सर्वोत्तम पदार्थ कहा और वास्तव में ऐसा ही है तो गाय आदि जो कि दूध की उत्पत्ति का कारण हैं उनका नाश करना बड़ा अनर्थ है !

१२१—मुहम्मद साहिव ने कहा कि निःसंदेह हसन और हुसेन दोनों मेरे फूल हैं जगत् में इति ।

१२२—अमामः बिन जैद कहता है कि मैं रात को मुहम्मद साहिव के पास आया वे घरमें से निकले तो वह एक वस्तु से लिपटे हुए थे मैं नहीं जानता था कि वह क्या वस्तु है मैंने पूछा कि यह क्या वस्तु है तो मुहम्मद साहिव ने उसको खोला उनके दोनों कूलों पर हसन और हुसेन थे अर्थात् दोनों लड़कों को दोनों ओर गोद में लेकर चादर से लिपेट लिया था फिर मुहम्मद साहिव ने कहा कि यह दोनों मेरे बेटे हैं और मेरी बेटी के बेटे हैं हे ख़ुदा निःसंदेह मैं इन दोनों को दोस्त रखता हूँ, तू भी इन दोनों को दोस्त रख और उस पुरुष को दोस्त रख जो कि इन दोनों को दोस्त रखे इति ।

१२३—मुहम्मद साहिव से पूछा गया कि तुमको प्रियतम कौन पुरुष है कहा कि हमन और हुसेन और मुहम्मद साहिव फ़ातमः से कहते कि बुला कर दोनों बेटों को फिर मुहम्मद साहिव हसन और हुसेन को सुंघते और गले से लगाते इति ।

१२४—मुहम्मद साहिव उपदेश करते थे तब हसन और हुसेन आये दोनों चलते थे और गिर २ पड़ते थे मुहम्मद साहिव

ने चौकी से उतर कर उन दोनों को उठालिया और अपने आगे बिठाया फिर कहा कि खुदा ने सत्य कहा है कि तुम्हारे धन और संतान परीक्षा के हेतु हैं मैंने इन दोनों लड़कों की ओर देखा कि चलते थे और गिर पड़ते थे मैं संतोष न कर सका यहाँ तक कि उपदेश कर रहा था उसे छोड़कर मैं ने इन दोनों को उठाया इति ।

१२५—मुहम्मद साहिब हसन को अपने कंधे पर चढ़ा रहे थे किसी ने कहा कि हे लड़के तू अच्छी सवारी पर सवार हुआ मुहम्मद साहिब ने कहा कि और अच्छा सवार है इति—इन हृदीयों से प्रकट है कि मुहम्मद साहिब हसन और हुसैन की प्रीति में अति लिप्त थे और सर्वदा उनके लिये खुदा से प्रार्थना करते थे कि हे खुदा ये दोनों मेरे प्रियतम हैं तू भी इन को अपना प्रिय रख परन्तु उन दोनों पर जैसी विपत्ति पड़ी और जिस प्रकार उनका मरण हुआ वह सबपर प्रकट है अर्थात् हसन को मुआवियाने विष दिलवाया और हुसैन का गिर लड़ाई में काटा गया खुदा ने उनकी कुछ भी सहायता न की और मुहम्मद साहिब की प्रार्थना ने कुछ भी फल न दिखाया जबकि मुहम्मद साहिब की प्रार्थना हसन और हुसैन ही के विषय में ( जो कि उनको जगत् में सबसे प्रियतम थे ) स्वीकार न हुई तो औरों के विषय में क्या होगी मुसलमानों का मुहम्मद साहिब पर यह विश्वास रखना कि वह क़यामत के दिन हमारे पाप क्षमा करावेंगे सर्वथा व्यर्थ है ।

१२६—उबैदुल्लह नामी एक पुरुष उस लश्कर का सरदार था जो कि यज़ीद की ओर से हुऐन के मार डालने को नियत

हुआ था जब कि हुसेन का शिर लाकर उसके सामने रक्खा गया वह अपनी कड़ो उसकी नाक पर मारता था और बुरा कहता था इति—देखो मुहम्मद साहिव जिसको अपना बेटा कहते थे और जोकि उनका धेवता था जिसे वे अपना फूल जानते थे और जिसको सब से प्रियतम मानते थे जिसके लिये सर्वदा खुदा से प्रार्थना करते थे उसकी यह दशा हुई तो जो लोग मुहम्मद साहिव के वसोले से स्वर्ग रूपी सुख भाग की आशा किये बैठे हैं उनका क्या फल प्राप्त होगा ?

॥ इति ॥

## यज्ञोपवीत

— ००० —

विदित हो कि कुछ दिनों से हमारे देश वासी क्षत्रिय वैश्यों ने अज्ञान या मूर्खों के वहकाने से यज्ञोपवीत संस्कार का त्याग कर दिया है परन्तु धर्मशास्त्र में ऐसा लिखा है कि वर्ण त्रय में से जिनका यज्ञोपवीत संस्कार वा गायत्री उपदेश नहीं हुआ वे सम्यक् वैदिक धर्म के अनधिकारी हैं — तथाह मनुः अध्याय २ श्लोक ३८, ३९, ४० —

आषाडमासाद्वाङ्मनस्य सावित्री नातिवर्त्तते ।

आहाविंशात् क्षत्रवंधा राचतुर्विंशतेर्विशः ॥ १ ॥

अत ऊर्ध्वत्रयोर्ध्वते यथा काल मसंस्कृताः ।

सावित्री पतितात्रात्या भवत्यार्ध्व विगर्हिताः ॥ २ ॥

नैतेरपृतेर्विधि वदापद्यपिहि कर्हिचित् ।

द्राक्ष्यान्धीनांश्च संवधान्नाचरेद्वाङ्मनः सह ॥ ३ ॥

अर्थात् सोलह वर्ष तक ब्राह्मण का और बारह वर्ष तक क्षत्रिय का और चौबीस वर्ष तक वैश्य का गायत्री उपदेश के बिना न रहना चाहिये (१), इस से उपरान्त इन तीनों का अपने २ काल में जो संस्कार न हों तो उनके वैदिक लोग सावित्री पतित और जात्य और महा निन्दित जानते हैं (२), जबतक वे विधि पूर्वक पवित्र न हों उनके साथ आपत् काल में भी अध्ययन अध्यायनादिक और कन्या दानादिक न करे (३), इत्यादि वचनों से जानागया कि जिन पुरुषों का यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता वे शूद्रों से अधम और सर्व धर्म वहिष्कृत हैं, बड़े आश्चर्य की बात है कि जब शास्त्र में यज्ञोपवीत और गायत्री मंत्र रहित को ऐसी निन्दा लिखी है तो क्षत्रिय वैश्य अपने सनातन धर्म से क्यों विमुख हो रहे हैं ? इस कारण हम क्षत्रिय तथा वैश्यों से विनय करते

हैं कि जिन २ पुरुषों का यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ वे प्रथम प्रायश्चित्त निमित्त दो चार सहस्र अघमर्षण मंत्र का जप करावे फिर यथाशक्ति गायत्री मंत्र से होम कराके अब अपना २ यज्ञोपवीत करालें और आगे को अपने पुत्र पौत्रादिकों का यज्ञोपवीत विवाह से पहिले करादिया करें यज्ञोपवीत के बिना विवाह न करें क्योंकि यज्ञोपवीत होने से द्विजाति संज्ञा होती है यथा—जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते—इसलिये जो कोई किसी को वेदाक्त यज्ञोपवीतादि संसंस्कार से रोकते हैं वे परम नास्तिक हैं ।

यह भी प्रकट हो कि वर्णत्रय की गायत्री एक ही है, यथा मनुः—  
एतद्यच्चा विसंयुक्तः काले च क्तियाया स्वपा ब्रह्म क्षत्रिय विड्येयानि  
गर्हणां यातिसाधुषु ॥

अर्थात् इस ऋचा से रहित और काल में अपनी क्रिया से रहित ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य सज्जनों में निन्दा के योग्य होता है ।

वर्णत्रय की एक गायत्री होने के धर्मशास्त्र में बहुत वचन हैं बिस्तार भय से नहीं लिखे ।

## ओषधि

— 000 —

साँप के काटे को इमली या उस के पत्ते पानी में मलकर पिलाते जवान को आद पाव बालक को कटांक भर, अथवा तंबाकू का गुल जो हुक्के में पीकर रहजाता है घोट कान कर पिलावे, या चिलम में जो मैल लगा रहता है दो माशा पानी में घोलकर पिलावे वा कन्ना घास के १० पत्ते मिर्च सहित घोट कर पिलावे, वा फिटकरी लाल ४ माशे पानी में घोट पिलावे और जहां काटा हो वहां लगावे, ये संखिये के विष को भी दूर करती है।

बिच्छू के काटे को हींग पानी में घिसकर गर्म करके लगावे, साँभर पानी में घोटकर जिस तरफ काटा हो उसके दूसरी तरफ के कान में डाले और घाव पर मले, बिसख परे की जड़ पानी में घिस ठंडी ही लगावे, अर्क दुग्ध का लेप करके उसी का पत्ता रखकर खूब सेके, तबकी हरताल मिर्च स्याह पानी में घोट कर गर्म करके लेप करे।

अफीम खाये को जितनी अफीम खाई हो उस से दूना खरा हींग पानी में घोट कर दो तीन बार पिलावे, वा कूकर भांगरे का अर्क पिलावे, वा नाली के पत्तों का रस वा पत्ते घोटकर पिलावे, यह भांग के नशे को भी शीघ्र उतारता है, एक चमचा नमक इतनी ही पिसी हुई राई एक प्याला ठंडा या गर्म पानी में मिलाय पीले वमन होगी विष या बदहजमी करने वाली वस्तु तुरन्त निकल जायगी फिर खूब तेज़ काफ़ी पीवे।

जब बालक पैदा हो उसका नाल काटते ही नाफ़ के अन्दर दो चावल भर खरा मुश्क रखकर बन्द करदे तो बालक को पसली कभी न होगी।

## विक्रीय पुस्तक

|                                                                                               |     |     |     |
|-----------------------------------------------------------------------------------------------|-----|-----|-----|
| दयानन्द पराजय                                                                                 | ... | ... | ९)  |
| मङ्गलदेव पराजय                                                                                | ... | ... | ९)  |
| सुक्ति प्रकाश                                                                                 | ... | ... | ९)  |
| वेद हार प्रकाश                                                                                | ... | ... | ९)  |
| अनन्तत्व प्रकाश                                                                               | ... | ... | ९)  |
| आर्यत्व प्रकाश, प्रथम भाग, नागरी उरदू                                                         | ... | ... | १)  |
| तथा दूसरा भाग उरदू                                                                            | ... | ... | १०) |
| दयानन्द की विद्या                                                                             | ... | ... | ८)  |
| दयानन्द मत परीक्षा                                                                            | ... | ... | १८) |
| मुहम्मद जीवन चरित्र                                                                           | ... | ... | १०) |
| शगूफ़ये दयानन्द                                                                               | ... | ... | ८)  |
| कोषविंदु २००० संस्कृत शब्द भाषार्थ सहित                                                       |     |     | १)  |
| व्याख्यानावलि, प्रथम भाग                                                                      | ... | ... | ८)  |
| दयानन्द लीला                                                                                  | ... | ... | ८)  |
| और मुसलमानों के खंडन में श्रीमान् मुंशी इन्द्रमणी जी की बनाई किताबें भी मेरे ही पास मिलेंगी । |     |     |     |

जगन्नाथ, दास,

मुन्शी इन्द्रमणी जी का स्थान  
मुरादाबाद



ओम्  
परमात्माजयति

न्यायकीर्ति पक्षपात और दृढ दुराग्रह छोड़कर । सत्यको जय है सदा अतृप्त की बरसवत हार ॥

**सत्यासत्यनिर्णय**  
**जगन्नाथदास सङ्कलित**  
लक्ष्मीनारायण यन्त्रालय मुरादाबाद में  
छपाकर प्रकाशित किया।

विक्रयार्थपुस्तकें ।

धर्मसन्ताप-दयानन्दहृदय-दयानन्दमतमूची-दयानन्दमतदर्पण-  
दयानन्दकी बुद्धि प्रत्येक १) सेंकड़ा दयानन्द के मूलसिद्धान्तकी  
हानि-देवसिद्धि २) सेंकड़ा दयानन्दचरित्र ३) सेंकड़ा दयानन्द  
जीवनचरित्र समीक्षा ॥) प्रति, मुक्तिप्रकाश=) दयानन्द के यजुर्वेद  
भाष्य की समीक्षा =) मंगल देव पराजय=) वज्रपहार=) श्वगूफये  
दयानन्द =) कृपाराम की कजरफ्तारी=) दयानन्दकी चंदरंगत १॥)  
सेंकड़ा कसीदये दयानन्द दयानन्दीमतका स्वातमा-गुलज़ारेहिदायत  
प्रत्येक ॥॥) सेंकड़ा मिशकात का संक्षेप नागरी मुसलमानों का  
खंडन =) सर्व विषचिकित्सा=) कोषविंदु =) खूबिये इसलाम =)  
उक्त पुस्तकों को जो महाशय चाहें आप छपाकर प्रचार करें ।

पुस्तक मिलने का पता—

**जगन्नाथदास दीनदारपुरा-मुरादाबाद.**



परमात्माजयति ।

## सत्यासत्यनिर्णय ।

### भुजंग प्रयात छंद ।

निराकार निर्वयव है निर्विकारी । परब्रह्म रक्षाकरो तुम हमारी ॥  
तुम्हें सच्चिदानंद अखिलेश स्वामी । नमामी नमामी नमामी नमामी ॥  
कहूं हा में कलिकाल की क्या कहानी । हुई धर्मकी सर्वथा जिससे हानी ॥  
खलोंने असत्कर्म ऐसे चलाये । सकल धर्म वैदिक जगत् से उठाये ॥  
हुए वेद प्रतिकूल बहुमार्ग जारी । वदे धर्मद्वेषी महापाप कारी ॥  
वनेहाय द्विज वेद मतके विरोधी । हुए हीन विद्या रही कुछ न सोधी ॥  
वदे वेद अतिरिक्त मतजो अपारा । उन्होंने किचालोप सद्धर्मसागर ॥  
जगत् में कठिन जाल ऐसा बिछाया । जोफंदे में आया निकलने न पाया ॥  
नयाबुद्ध और जैनने मत चलाया । नहीं सृष्टि कर्त्ता कोई यह बताया ॥  
कवीर और दादूकी ले राहकोई । कहै कोई नानक कहाधर्म सोई ॥  
कोई द्वार मुक्तिका ईसाको गाँव । मुहम्मदपै कोई भरोसा बतावै ॥  
कोई नाम देवीपै वक्रे कटावै । महापाप के कर्मको पुण्यगावै ॥  
हुए वाममार्गी महानीचकर्मी । न होगा अधिक उनसे कोई अधर्मी ॥  
नहीं धर्म उनका कथन योग्य कोई । कहाँ वाममें सत्यकी गंधहोई ॥  
हुए भूतप्रेतों के विश्वास कैमे । डरें रज्जुको जानकर सर्प जैसे ॥  
लगे स्याने दीवानों को घरबुलाने । लगे शीस निजहर किसी को झुकाने ॥  
हुए हाय द्विज शैख सद्गुरु के यात्री । लुपा धर्मका भानु छाई कुरात्री ॥  
लंग पूजने पीरगूगा अनारी । हुई धर्मकी नष्ट मर्याद सारी ॥  
दयानंदजीने सभी धर्म खोया । वदाया असत् और सत्को डुबोया ॥  
प्रकट धर्म रक्षाका बीड़ा उठाया । लुपे खड्गसे उसका शिरही उड़ाया ॥  
किये शास्त्र विपरीत जो कर्मजारी । सुनो सज्जनो सत् असत् लोचिचारी ॥  
किया वेदका जिसने प्रत्यक्ष खंडन । करैगा वह क्या धर्मका और मंडन ॥

सत्यार्थ प्रकाश सन् १८८४ पृष्ठांक छंदपर देखो ।

प्रकट वेदको उसने झूटावताया । अधर्म और अग्राह्य उसको प्रत्यक्षगाया ३८९॥

न जो वेद ऐत्तरेय शतपथको माने। वह संपूर्ण ऋषियोंको झूठाही जाने॥ १८७॥  
 जोशाखाओंको वेद व्याख्या बतावे। वह शाखाओं से भिन्नेवेद और लावे १८७  
 दयानंदजीने जिन्हें वेद जाना । उन्हें शिष्ट पुरुषोंने शाखाही माना ॥  
 सभीने उन्हें वेद निर्भ्रम कहा है । मुनिव्यास का येही निश्चयरहा है ॥  
 हैं ग्यारहसौ इकतीस शाखा सनातन । सभी वेद हैं येही कहते हैं मुनिजन ॥  
 दयानंदियो सत् असत् को विचारो । करो न्यायलेख अपने गुरुके निहारो ॥  
 प्रथम दोष तुम अपने मतके निकालो । पुनः और के दोषपर दृष्टि डालो १९६ ॥  
 विजातीय ईश्वर का जो वह न जाने । बताओ तो फिर द्वैतमत कैसे माने ॥२४॥  
 अनंतत्वजीवों काभी जो मिटावे । हमें वेदमें उनकी गणना दिखावे ॥ २५ ॥  
 जो सवग्रंथ भाषाके मिथ्या बताओ । तो सत्यार्थ कोभी नदीमें बहाओ॥७१॥  
 असत् से मिलेसत्को विषवत् जोजानो । तो सत्यार्थ आदिसभी त्याज्यमानो७२  
 असत् उनका हमने दिखाया जगत् को । करैगा कोई कैसे सत्मत असत् को ॥  
 जो पुत्र और के औरको वह दिलावे । जगत् को हलावे कोई सुख न पावे॥८९॥  
 कहें सब मनुष्यों से जोग्राह्य नारी । विहित होगई उनको भंगन चमारी ॥९७॥  
 नियोग एकस्त्रीको दशसँ बताया।येव्यभिचारकाकर्म उसने चलाया ११७।११८  
 पतिकार्यवश जिसका परदेश जाये । नियोग और से वह कर सुतजनाये ११९  
 लिखागर्भ हो जिसको पटिले पतिसे । नियोग और से वहभीचाहतां करले १२०  
 कहां गर्भिणी दूसरा गर्भधारै । कोई बुद्धिमान इसको मनसँ विचारै ॥  
 लिखा श्लोक आधा मनुका बताया । कहीं भी मनुमें पता उसका पाया १३५  
 धनादि का जबलोभ मनमें समाया । तो चेलोंको यह मंत्र झूठा सुनाया ॥  
 कि संन्यासियों को सुवार्णादि धनदें । नहीं दोष इसमें ये सम्यक् समझलें १३५  
 करो पीठ के हाड़में मनकहीं स्थिर । झुकाओ गुरुजी की आज्ञामें निज शिर १८८  
 बुरा मूर्तिपूजन को उसने बताया । भलापीठ के हाड़ में मनलगाया ॥  
 जो परमात्मा को त्रिकालज्ञ जाने । दयानंद देखो उसै मूर्ख माने ॥ १९४ ॥  
 लिखा आपने हारकर फिर वही है । प्रकट मूर्खता अपनी ही सिद्धकी है ॥  
 किसी का नहीं वेद में नाम आया । न इतिहास हैं वांये उसने छपाया १०५॥  
 बहुत नाम ऋषियों के वेदों में आये । जो संक्षेप सँ हमने मुद्रित कराये ॥  
 लिखे हमने इतिहास भी संहिता सँ । ऋषियास्क की जिसमें साक्षी प्रकट है ॥  
 ऋषि वामदेव आप उसने लिखा है । कथन उसका उसके ही मुखसँ मृषा है ॥

वह इतिहास भी वेद में मानता है । विरोध अपने में दोष कवजानता है ॥२३६॥  
 लिखा नाम जिस ग्रंथमें जिसका पावे । दयानंद उसै उससे पिछलावतावे ॥२०९॥  
 जो दोष उसने यां ब्राह्मण पर लगाया । वही संहिताओं में प्रत्यक्ष आया ॥  
 प्रकट वेद पृथ्वीको निश्चल बतावे । दयानंद गीत इसके विपरीत गावे ॥२२८॥  
 लिखा उसने मुक्तिसे बंधन में आना । लिखा मुक्तिको फाँसी और जेलखाना ॥२४०॥२४१॥  
 ये वेदादि सत्शास्त्र विपरीत बाणी । भला कब सुनै बुद्धियुत कोई प्राणी ॥  
 अनावृत्ति शब्दात् ऋषिका वचन होकर है जो विरुद्ध इस के मिथ्या कथन है ॥  
 गणित वर्ष सौ के दिनों की जोकी है । परीक्षा वहां अज्ञताही की दी है ॥२४१॥  
 जो छत्तीस पर चार बिंदु लगावे । तो गणना दयानंद की जान जावे ॥  
 लिखी अक्षरों में भी गणना जब ऐसी । कहै भूल छोपे की फिर कोई कैसी ॥  
 जहां भोग वहां रोग यह भी मृषा है । बताओ तुम्हीं राम मुक्ति में क्या है ॥२४५॥  
 नहीं कोई व्याघ्रादि का मांस खाये । दयानन्द उसका भी भक्षण कराये ॥२६६॥  
 लिखी शंकराचार्य की मृत्यु विषसे । बताये तो कोई प्रमाण इसमें क्या है ॥२८७॥  
 जो शिव विष्णु ब्रह्मा की निंदा बनाई । उस भगवती भागवत की बनाई ॥२९९॥  
 हमें भगवती भागवत में दिखाओ । नहीं तो गुरुजीको झूठा बताओ ॥  
 छुटे पाप भोगे बिना जो न कोई । तो मुक्ति किसीकी कदापि न होई ॥३२२॥  
 कथा नाम से भागवत के जो गावे । कोई भागवतमें तो हमको दिखावे ॥  
 लिखी उसने जैसी वहां है न वैसी । गई बुद्धि कैसी अशुद्धि की ऐसी ॥  
 कथा भक्त प्रह्लादकी जैसी - गाई । कहां भागवतमें लिखी वैसी पाई ॥ ३३३॥  
 हिरण्याक्षकी भी कथा जो सुनाओ । जो सचेहो तो भागवतमें दिखाओ ॥३३३॥  
 जो इतिहास अकूरजी का बनाया । नहीं भागवतमें कहीं भी वह आया ॥३३४॥  
 लिखा श्लोक आधा जो उनकी कथामें । हमें भागवत में उसी को दिखावे ॥  
 लिखा जैसा विस्तृत वपु पूतनाका । हमें भागवत में दिखाओ तो वैसा ॥३३४॥  
 नथे वोपदेव और जयदेव भाई । अविद्याने अपनीये महिमा दिखाई ॥३३५॥  
 नेहमादि में भागवत की कथा है । दयानंद जीका कथन सब मृषा है ॥३३५॥  
 लिखा शूद्र जानधुतिको भी मिथ्या है वेदान्तसे सिद्ध वह क्षत्रियथा ॥३३६॥  
 जनेऊको जो चिन्ह विद्याका जाना । अविद्वान् को फिर लिखा क्यों पिन्हाना ॥३७९॥  
 वह विद्वान् पुरुषों ही को देव जाने । नहीं स्वर्गवासी कोई देव माने ॥३८८॥  
 जरा देवसिद्धि को जो देखलेवे । दयानंदियों को प्रकट मात देवे ॥  
 स्वतंत्र उसने जो कर्ममें जीव जाना । ये वेदादि सत्शास्त्र विपरीत माना ॥५९०॥

जोस्वर्ग औरनरक लोक माने नहीं हैं। वह सत्शास्त्रको कुछभी जानेनहींहैं॥५९०॥  
जरा स्वर्ग सिद्धि को जो देख लेवे । दयानंदियों को प्रकट मातदेवे ॥

**सत्यार्थप्रकाश सन् १=७५ ।**

लिखामांस आदिसेहोम उसने करना। लिखामांसकेपिंडपित्रोंको भरना॥४९॥१४९  
जो वधगाय और बैलका भी बतावेये कलिकाल है वह महर्षिकहावे ॥३०३॥

**संस्कारविधि संवत् १६३३ ॥**

करै भात के साथ जो मांसभक्षण । लिखा उसके हो पुत्र विद्वान् सज्जन॥११॥  
लिखा गर्भमें जब कि हो पुत्र माके । खिलाये हवा उसको कपड़े पिन्हाके॥४१॥  
ये संभव है या है असंभव कहानी । दयानन्द की देखलो बुद्धिमानी ।  
अजामांस या मांस तित्तिर खिलावेतो अन्नादि और वृद्धि विद्याकी पावे॥४२॥  
जो घी आधमनहो तो मुरदा जलाओ । नहीं दूरजंगलमें छोड़ उसको आओ॥४१॥  
दयानन्दजीकी जो आज्ञाको पाले । मृतक भस्म अस्थिको खेतोंमें डाले॥१५०॥

**ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ।**

लिखे वर्ष सृष्टि के गत शेष जो हैं । कमउनमेंभीलाखोंही और कोटिदोहैं॥२३॥२४  
वह दांत ऊंट के ओर दोनों बतावे । ये प्रत्यक्ष प्रतिकूल क्या गीत गावे ॥२४॥

**यजुर्वेद भाष्य ।**

अमुर राक्षस उसने झूठको माना । तो फिर आर्य पदको कहाँ है ठिकाना॥७॥  
जोमुख दुःखका भोगी ईश्वरको माना । भला उसने क्यावेदका अर्थजाना॥४४५  
गुदा लिंगकी शिष्य के कहिये शुद्धि । करै क्या गुरु खोई सारीही बुद्धि॥९००  
नहीं वेद आशय समझना सुगम है । दयानन्द का अर्थ मिथ्या है भ्रमहै ॥  
भला ईश्वरको भी भय है किसी का । जो वह शूरवीरों से माँगै है रक्षा ६३५  
दयानन्दजीकाजोचैलाकहाये । गधे और उल्लूभीपालेपढ़ाये॥६२अ.२४ पृ.३३२  
परस्त्री निकट जो पुरुष कोई जाये । दयानन्द ही उसको पापी बताये ॥१२०८॥  
नियोग उसने सत्यार्थ में जो लिखा है । बुरा उसके ही लेखसे सर्वथा है ॥  
लिखी नीलगायोंके वधकी जो आज्ञा । प्रकटदेखलो उसका हिंसामें मनथा॥३६३  
समान ऊंटके वैश्यको लिखदिया है । मृषा वेदका हास्य उसने किया है॥४१२  
भलावज्रआम्नादि परजो बलाओ । तोमुखपाओ इससे कितुमदुःखपाओ॥१९१८  
जो शूकरकी उपमा नृपतिको लिखी है । महाअज्ञता ये प्रकट अपनीकी है॥१९८०  
दयानन्दको जो महर्षिवताये । करै होम पशुओं का हुत शेषखाये ॥ २०५० ॥

लिखाजिसने घी दूध बकरेका भाई । प्रकट अज्ञता उसने अपनी दिखाई अ. २१ पृ. ७४  
 करो वैलसै भोगयेक्या लिखा है । नईश्वरका भय और न भयराज का है अ. २१ पृ. ११५  
 जो विद्वानको तुल्य जामा तुगावे । हंसी उसकी बुद्धि पै किसको न आवे । अ. २७ पृ. ५३४ ।  
 कहां पत्नि हो मातृसम सुख की दाता । न हीं गीत ऐसे बोई शिष्ट गाता । अ. २९ पृ. ७०१ ॥  
 जो सपोंकी ईश्वरसे बुद्धिमनावे । प्रकट अज्ञता को वह अपनी दिखावे । अ. ३० पृ. ७८३

### दयानंदजीवनचरित्र दलपतराय जगरांवीरुत उरदू ।

परब्रह्म अपने को जव उसने माना । अविद्याका उसकी है फिर क्या ठिकाना ॥ २७ ॥  
 छुरी अंगपर जो मृतक के चलाई । घृणा उसको इसकर्म से कुछभी आई ॥ ५६ ॥  
 घुसा सांडके पेटमें वह किधरको । बतायेतो कोई करै मुंह इधरको ॥ ६० ॥  
 उसै मूर्तिपूजक का भोजन न भाया । तो गोमांसभक्षीका बयों अन्नखाया ६५।९८  
 अशुद्धि दयानंद के मतकी सारी । कहांतक लिखे कोई है काम भारी ॥  
 ये संक्षेप से सज्जनों को सुनाई । इसी भांति अन्यत्र कुछ १ दिखाई ॥  
 करो सत्यका ग्रहण और झूट त्यागो । सदा शास्त्र प्रतिकूल सै दूर भागो ॥  
 नहीं पक्षपात अंतमें काम आवे । दुराग्रह करें सो जगत् को हंसावे ॥  
 करै ईश्वर धर्मकी शीघ्र रक्षा । मिले हमको परमात्मासै यह भिक्षा ॥  
 शरण सच्चिदानंदली है तुम्हारी । नहीं तुमसिवा दूसरा दुःखहारी ॥  
 हुए शोकमें मग्न धर्मानुयाई । तभी आपने धर्मकी की सहाई ॥  
 करें आप अब शीघ्र रक्षा हमारी । पड़ा धर्मपर दुःख संताप भारी ॥  
 व्यवस्था कुछ अब धर्मकी में सुनाऊं । प्रकट सत् असत् की कसौटी दिखाऊं ॥  
 करूं सत्य उपदेश धर्मोपकारी । जो है सज्जनों के लिये मोहहारी ॥  
 जो हैं वेद चारों परब्रह्मवाणी । वही मुख्यमंतव्य है सर्व प्राणी ॥  
 जो अनुकूल इन के है वह ग्राह्य सर्वहै । विरुद्ध इनके शिष्टों को स्वीकार कवै ॥  
 जो हैं वेद के अंग पद सत्य सो हैं । पढ़ें जो उन्हें सो महाप्रज्ञ हो हैं ॥  
 जो हैं उपनिषत् ईश केनादि दश दो । सो हैं शिष्ट लोगों में स्वीकार सबको ।  
 लिखे जंमिनिआदि ने शास्त्र पद जो । सकल शिष्ट पुरुषों को मंतव्य हैं सो ॥  
 लिखी शिष्टपुरुषों ने जिसकी बुराई । कहां कर्म ऐसा हो धर्मानुयाई ।  
 किसी शास्त्र में कण्ठी बंधन नहीं है । दिखावै हमें जो कहै ये कहीं है ॥  
 करो यज्ञ उपवीत जो द्विज कहाओ । नहीं नाम निज शूद्रकुल में लिखाओ ॥  
 करो अग्निहोत्र और संध्या द्विकाला । रहो वेद रत जो हृदय हो उजाला ।  
 अतिथिकाल भोजन में जो कोई पाओ । उसै सत्य श्रद्धा से भोजन जिमाओ ।

करो गुरु माता पितादिक की सेवा । यह है लोक परलोकमें सुखकी देवा ॥  
 जो विद्वान् हों और सद्धर्म चारी । उन्हें दान दो हो सदा जय तुम्हारी ॥  
 नहीं मूर्ख और दुष्ट दानाधिकारी । नहीं चौर को है अभय न्यायकारी ॥  
 मिले मूर्ख को धन असत् वृद्धि पावे । यथा सर्प को दुग्ध विषही बढ़ावे ॥  
 नहीं मांस और मद्य खाना कदापि । किसी जीवको न सताना कदापि ॥  
 तुम्हें कर्म जो दुःख सुख का हो दाता । वही अन्य जीवों में लो जान भ्राता ।  
 जो पर मांस से मांस अपना बढ़ावे । वह पर जन्म में दुःख अत्यन्त पावे ॥  
 न हिंसा बिना मांस हो प्राप्त भाई । नहीं प्राणि वध होसके स्वर्गदाई ॥  
 समझ धर्म को मांस कोई न खाओ । न मलमूत्र के हेतु जिह्वा चलाओ ॥  
 नहीं मद्य के पान में लाभ कोई । जो हैं हानि इसमें सुनो मित्र सोई ॥  
 मिटा बुद्धि को फल ये अपना दिखावे । नहीं कर्मकर्त्तव्य जोसो करावे ।  
 विषयवासना ही में निशदिन लगावे । ये जगदीश का ध्यान मनसै हटावे ।  
 करावे यह साधन नरक ही के सारे । नहीं दोषभी इसके कथनीय प्यारे ॥  
 महा विष कहैं तो कहैं बस इसी को । नहीं मद्य पीना उचित है किसीको ।  
 न हास्यार्थ भी धूतके पास जाओ । समाह्वय इसी भांति मन में न लाओ ।  
 सदा सत्य के व्रत में आरुढ़ रहना । कभी वाक् से वाक्य मिथ्या न कहना ।  
 जो दृढ चित्तसे सत्यव्रत नित्य धारें । वही लोक परलोक अपना सँवारें ॥  
 रहो काम और क्रोध से दूर भाई । बनो लोभ और मोह के मत सहाई ।  
 ये चारों बड़े बंध के हेतु जानो । महा शत्रु हैं मित्र इन को न मानों ।  
 किसी से कभी द्वेषबुद्धी न कीजे । किसी के हृदयको न संताप दीजे ॥  
 पर ऐश्वर्य को देखकर दुख न पाओ । परस्त्री और पर धन में मन मत चलाओ ।  
 कहैं जीव उत्पत्ति सो झूट जानो । प्रकृति ईश और जीव को नित्य मानो ॥  
 अनादि हैं सब जीव और कर्म उनके । हैं दुःख और सुख फल सभी पाप पुनके ।  
 गिरै कर्म ही से नरक में कोई है । लहै मुक्तिको कर्म का फल सोई है ।  
 विवाह अष्टवर्षा ने सब खोज खोया । जोहैं सुख जगत्के सभीको हुवोया ॥  
 भला कोई दिनभी वने ब्रह्मचारी । हुई आदि आश्रमही में द्वार प्यारी ॥  
 कहे काल अध्ययनका कौन माना । गृहस्थी बना पुत्र से बैर ठाना ॥  
 किया काल अध्ययन कानष्ट सारा । गृहस्थी बना सो करै क्या विचारा ।  
 विषयग्रस्त हो वालही जो अनारी । रहै दुःखदारुण उसै आयु सारी ॥  
 बनो एक ईश्वर के तुम दास भाई । नहीं उस सिवा दूसरा हो सहाई ॥  
 लिखे यज्ञ तप दान व्रत हेतु जिसके । बनो तुम उपासक भला क्यों न बिसके



करै अन्य देवोंकी जो सेवकाई । नहीं उसकी परलोक में कुछ भलाई ।  
 बिना ज्ञान ईश्वर के मुक्ति न होवे । कोई जन्म शत क्यों न रोरो के खोवे ।  
 खड़े ईशकी शक्ति सै लोक सारे । प्रकाशित उसीने किये चंद्र तारे ।  
 वही ईशहै जिसकी है सृष्टि सारी । नहीं उस बिना दूसरा दुःख हारी ।  
 कहै नाम सब उसके है शक्ति किसकीरही छाप मदिमा दशों दिक्में जिसकी  
 कहें हैं जिसै ओम् और अग्नि वायु । करै वोही विष्णु हमें दीर्घ आयु ॥  
 जिसै इन्द्र और मित्रभी वेद गावै । वही विश्व और देव सविता कहावै ॥  
 कहें चंद्रमा शुक्र आदित्य जिसको । कहें धर्म निर्भय परब्रह्म विसको ॥  
 पुरुष ईश लक्ष्मी उसीको कहें हैं । सकल शिष्ट आज्ञा में जिसकी रहै हैं ॥  
 प्रजापति और केतु भी वह कहावै । वही रुद्र है जो खलोंको रुलावै ॥  
 सामन्त नाम उसका अदिति और दिति है । सृजा जिसने अप्तेज वायु क्षिति है ॥  
 कहें अर्यमा और जिसको उरुक्रम । शरण लेकै उसकी तजोमित्र सावभ्रम ॥  
 वही शुद्ध और बुद्ध है न्याय कारी । करै वोही कूटस्थ रक्षा हमारी ॥  
 वही द्वैत अद्वैत निर्गुण सगुणहै । वही प्राज्ञ जो सर्व विद्या निपुण है ।  
 वोही सत् है और चित् है आनंद शक्ति । रहैदास उसके सदाहम सभक्ति ॥  
 उसीको कहें श्रोत्र मन प्राण वाणी । नहीं श्रोत्र जिसके नहीं पाद पाणी ॥  
 कहें जिसको जल चित्त अज चक्षु बुद्धि । हमारे हृदयकी करै वोही शुद्धि ॥  
 जिसे ज्ञान विज्ञान वसुजवि कहिये । उसीदेवके ध्यानमें मग्न रहिये ॥  
 दयान्याय भगवान् अच्युत दयालु । करै कीर्तन जिसका मुख जीभतालु ॥  
 मनुध्रुव अनादि प्रिय अप्रमेय । उसी आत्माके हैं सबनामधेय ॥  
 कहें जिसको बंधु पिता गुरु माता । हमारा वही है सकल भौति त्राता ॥  
 कहें मुक्त और नित्य आकाश जिसको ॥ भला उस सिवा हम निवै शीश किसको ॥  
 महत् एक सर्वज्ञ शिव होम अक्षर । वही भूतकृत सर्व दृक्काल श्रीधर ॥  
 कहें साक्षी और जिसको निरञ्जन । वही पूर्ण अव्यक्त है दुःख भंजन ॥  
 उसी मूक्ष्मका नाम है सत्य स्वक्ष । अनघ आप तेजसा वरुण वीर दक्ष ॥  
 जो है अन्न अन्नाद् अव्यय जनार्दन । उस पुण्य विभूतत्व कहिये सनातन ।  
 वही ईश्वर बहदी पुरुषोत्तम है । वही सोम विश्वेश्वर सिद्ध यम है ॥  
 कहें जिसको परमात्मा अद्वितीय । वही सबको है सर्वदा पूजनीय ॥  
 कहे नाम अष्टोत्तरशत मनोहर । हुए ऊर्द्धगामी जिन्हें जपकै सुरनर ॥  
 उसी ईश जगदीशको इष्ट जानो । समान उसकी मित्रो किसीको न मानो ।

धरो ध्यान उसीका जो है निर्विकारी । सुनो हो मुमुक्षु ये विनती हमारी ॥  
 उस अव्यक्तसै चित्त जिसने लगाया । मरण जन्म का फंद अपना छुड़ाया ॥  
 अनेकों अधमजीव जिसने उबारे । वही पाप काटेगा सारे हमारे ॥  
 वही जीवका जीवहै न्याय कर्त्ता । हमारा तुम्हारा सभीका है भर्त्ता ॥  
 समझले अभी कुछ न बिगड़ा है तेरा । मना अपने ईश्वरको जिसका है चेरा ॥  
 जो दृढ दामसै मनको बांधोगे प्यारे । तो परमात्मा फंद काटेगा सारे ॥  
 उसी ईशके जव समीपी बनोगे । मरण जन्मके दुःखको तब हनोगे ॥  
 जगन्नाथ जगदीशको शिर झुकाओ । उसी पूर्णसै चित्त निशिदिन लगाओ ॥  
 हुई पूर्ण यह सत् असत् की परीक्षा । करै ईश्वर इसकी सर्वत्र दीक्षा ॥

**दोहा ।**

मुरनर मुनिगण गौणवर, भजैं जिसै निष्काम ।  
 प्रणव वाच्य सोमम हृदय, करो सदा विश्राम ॥





## यज्ञोपवीत ।

विदित हो कि कुछ दिनों से हमारे देशवासी प्रायः क्षत्रिय वैश्यों ने अज्ञान वा मूर्खों के बहकाने से यज्ञोपवीत संस्कार का त्याग कर दिया है परन्तु धर्मशास्त्र में ऐसा लिखा है कि वर्णत्रय में से जिन का यज्ञोपवीत संस्कार वा गायत्री उपदेश नहीं हुआ वे ब्राह्म्य अर्थात् शूद्रों से भी अधम और श्रेष्ठों में निन्दित होते हैं तथाह मनुः अध्याय १ श्लोक ३८ । ३९ । ४० आपोड-शाद्ब्राह्मणस्य सावित्रीनातिवर्त्तते । आद्वाविंशत्क्षत्रवन्धो राचतुर्विंशतेर्विशः ॥ १ ॥ अत ऊर्ध्वत्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः । सावित्रीपतिता ब्राह्म्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥ २ ॥ नैतैरपूर्तैर्विधिवदाप्यपि हि कर्हि चित् । ब्राह्मन्यानांश्च-संबन्धान् नाचरेद्ब्राह्मणैः सह ॥ ३ ॥ अर्थात् सोलह वर्ष तक ब्राह्मण को और चाईस वर्ष तक क्षत्रियको और चौबीस वर्ष तक वैश्यको गायत्री उपदेशके बिना न रहना चाहिये ॥ १ ॥ इस से उपरान्त इन तीनों का अपने २ काल में जो संस्कार न हो तो उन को वैदिक लोग सावित्री पातित और ब्राह्म्य तथा महा निन्दित जानते हैं ॥ २ ॥ जबतक वे विधिपूर्वक पवित्र नहो उनके साथ आप-त्कालमें भी अध्ययन अध्ययनादिक और कन्यादानादिक न करे ॥ ३ ॥ इत्यादि बचनों से प्रकट है कि जिन पुरुषों का यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता वे शूद्रों से भी अधम और सर्वधर्म बहिष्कृत हैं । बड़े आश्चर्य की बात है कि जब शास्त्रमें यज्ञोपवीत और गायत्री मन्त्र रहित की ऐसी निन्दा लिखी है तो क्षत्रिय वैश्य अपने सनातनधर्म से क्यों विमुख हो रहे हैं? इस कारण हम क्षत्रिय तथा वैश्यों से निवेदन करते हैं कि जिन १ पुरुषों का यज्ञोपवीत संस्कार यथोक्त काल में नहीं हुआ वे प्रथम प्रायश्चित्त निमित्त यथा शक्ति अघमर्षण वा गायत्री मन्त्र का जप करावें फिर अब अपना २ यज्ञोपवीत करा लें और आगे को अपने पुत्र पौत्रादिकों का यज्ञोपवीत विवाह से पहिले करा दिया करें यज्ञोपवीत के बिना विवाह न करें । यह भी प्रकट हो कि मनु में वर्णत्रय को एकही गायत्री मन्त्रकी आवश्यक आज्ञा है तथा हि—एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया । ब्रह्मक्षत्रियविद्योनि गर्हणायातिसाधुषु ॥ अध्याय १ श्लोक ८० अर्थात् इस ऋचा से रहित और काल में अपनी क्रिया से रहित ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य स-ज्जनों में निन्दा के योग्य होते हैं जो कोई क्षत्रिय वैश्य को यज्ञोपवीत सं-स्कार तथा गायत्री मन्त्र से रोकते हैं वस्तुतः वे शास्त्रविरोधी हैं शास्त्रबाह्य गले में कण्ठी बांध कर गुरु कहलाने वालों को भी उचित है कि वे यज्ञोप-वीत ही का प्रचार करें । इत्यलम् ॥ जगन्नाथदास मुरादाबाद.

ओम्

परमात्मा जयति ।

छंद-किये हे मत दयानन्दी के हुकूम २ क्षणभर में । हमारी लेखिनी भी ब्रह्म माना पुनः को

शंभुनाथगण्णकुठार

और

जगन्नाथदास का वज्रप्रहार.

जगन्नाथदास सङ्कलित

वही

“लक्ष्मीनारायण” यन्त्रालय मुरादाबाद में

छपवाकर प्रकाशित किया.

सितम्बर सन् १९०१.

विक्रयार्थपुस्तकें ।

सज्जन लोग इनको आप छपवायें और सर्वत्र फहलायें

धर्म सन्ताप, दयानन्द हृदय, दयानन्दमतमूची, दयानन्दमतदर्पण, दयानन्द कीबुद्धि, मूजाकका इलाज प्रत्येक १, सैंकड़ा, दयानन्दचरित्र २, सैंकड़ा, देवसिद्धि २, सैंकड़ा, दयानन्द जीवनचरित्र ॥, प्रति, वेदद्वारप्रकाश =, अनंतत्वप्रकाश =, मुक्तिप्रकाश =, दयानन्द के यजुर्वेदभाष्यकी समीक्षा =, मङ्गल देवपराजय =, आर्यत्वप्रकाश प्रथम भाग नागरी उर्दू, दूसरा भाग उर्दू = शङ्कराचार्य दयानन्द =, कृपारामकी कजरफ्तारी =, कसीदेवेदयानन्द, दयानन्दी मत का स्वातमा, गुलजारेहिदायत प्रत्येक ॥ सैंकड़ा, दयानन्दकी चंद रङ्गत १॥, सैंकड़ा, मिशकात का संक्षेप मुसलमानों का खण्डन =,

॥ ओम् ॥

परमात्मा जयति.

शम्भुनाथ गप्पकुठार,  
और

## जगन्नाथदास का वज्रप्रहार.

तेजोऽमितेजोमयिधेहि । वीर्यमसिर्वीर्यमयिधेहि । बलमसिबलमयिधेहि ।

ओजोऽस्योजोमयिधेहि । मन्युरसिमन्युमयिधेहि । सहोऽसिसहोमयिधेहि ॥ १ ॥

( शम्भुनाथ ) कुतर्क ? दयानन्दमत सूची में से ( वादी ) प्रथम उत्पत्ति लिखी जीवों की फिर अनादि बतलाया । स० प्र० २३२ ( प्रतिवादी ) यद्यपि प्रथम सत्यार्थ प्रकाश का प्रमाण देना ठीका है क्योंकि स्वामीजी महाराज ने कई जगह अपने प्रतिकूल पाकर उस का अप्रमाणिक करदिया तथापि वादी का आक्षेप उस से भी निर्मूल सिद्ध होता है हम पृष्ठ २३२ का लेख नीचे लिखते हैं बुद्धिमान निष्पक्षजन विचारें कि ला० जगन्नाथ दास की यह सरासर बनावट है या सच्चा आक्षेप है “जब जीवों को ईश्वर ने रचा तो विचार कर के सब को स्वतंत्र ही रखदिया पृष्ठ २३२—इस लिये शरीर में जो अभिष्टाता कर्त्ता और भोक्ता है उस को जीव कहते हैं जो कि एक काल में सब बुद्ध्यादिक क्रिये कर्मों का अनुभव करता है चेतन स्वरूप है उसका नाम जीव है सो भिन्न पदार्थ ही है चारों के मिलान से जीव के गुण और जीव कभी उत्पन्न नहीं होता इस से यह बात जो कही थी कि चारों के मिलने से जीव होता है यह बात खंडित होगई पृ० २३१ महाशय गण ध्यानदीजिये पृष्ठ २३१ में साफ लिखा है कि जीव भिन्न पदार्थ है और कभी उत्पन्न नहीं होता तो भला यह कैसे होसकता है कि एक ही पृष्ठ के आगे जीवकी उत्पत्ति लिखी हो वादी को तनिक तो विचार करना चाहिये था बात यह है कि जीव ऐसा शब्द है जो हमारी बोलचाल में प्राण धारी और जीवात्मा दोनों के लिये आता है इस लिये पृष्ठ २३२ में जो लिखा है कि जीवों को रचा उस का मतलब यही है कि प्राणधारी मनुष्यादि को रचा ऐसा बोलने का महाविषय है इत्यादि ।

**उत्तर—यह लेख शंभुनाथ शर्मा टीचर हाई स्कूल मुरादाबाद के नामसे आर्यमित्र ता० १६ मई सन् १८६६में छपाथा।**

तब हमने उन से एक दिन बाज़ार में पूछा कि आर्यमित्र में एक लेख आपके नाम से छपा है क्या वह आपनेही छपवाया है तब तो वे मौन से हो रहे परंतु अगले दिन हमारे पास आकर कहा कि वह लेख बदरीदत्त का है वे मेरे नाम से छपाना कहते थे और मैंने उन से बहुत कह दिया था कि इस लेखपर मेरा नाम न छापना परंतु उन्होंने बलात्कार मेरा नाम छाप दिया—हमने उसका उत्तर भनावनधर्मपताका संवत् १९५६ भाद्रपद में मुद्रितकरा दिया हमने वहां यह भी लिखा था कि हे मित्र जो आप दयानंदी हैं तो आपके नाम के अन्त में शर्मा पद सर्वथा अनुरिक्त है क्योंकि—दयानन्दने वर्णविभाग गुण कर्मों से जाना है न कि जन्मसे जो आपमें मेरे विचारानुसार ब्राह्मणवर्ण के योग्य गुणकर्मों का चिह्न लेशमात्र भी नहीं यदि न्यायपूर्वक विचार करोगे तो चतुर्थका के अधिकारी ठहरोगे धर्मपताका संवत् १९५६ पौषमें हमने उक्तलेखके अतिरिक्त इतना और भी लिखा था कि नाथजी अपने नाम के अन्त में शर्मा लिखने से शरमायें वा दयानन्दलिखित वर्ण व्यवस्थाके अनुसार अपने को ब्राह्मणवर्ण का अधिकारी निरुद्ध करदिसागैं और प्रथम यह भी बतलायें कि दयानन्दके मतानुसार आप अपने माता पिताको किस २ वर्ण का अधिकारी जानते हैं और अपनी धर्मपत्नी को क्या मानते हैं नाथजी ने इसका उत्तर तो अधपर्यन्त नहीं दिया परन्तु जगन्नाथकुतर्ककुठारनामक अपनी पुस्तकमें अपने नाम के अन्तमें शर्मा पद नहीं लिखा यहां से जानागया कि ब्राह्मणवर्ण के गुण कर्म अपने में न पाये तब शर्मा लिखनेसे शरमाये हम फिर सविनय निवेदन करते हैं कि आप हमारे पूर्वोक्तलेखका यथार्थ उत्तर दें और अपने वर्णका सम्यक् निर्णय करें फिर आपने जो अपने नाम के अन्त में दयालु पद रक्खा है इसका आशय क्या है यह पदवी आपको बाल्यावस्था ही में कहींसे मिली है वा समाजियोंने आपके गुण कर्मानुसार अव दी है वास्त्वमें आपकी उपाधि परंपरासे संडे है दयालु होनेका मिथ्या घमण्ड है पाठकगण! जिसप्रकार शंभुनाथजीके कथनानुसार आर्यमित्र १६ मई सन् १८९९ का लेख उनका लिखा नहीं है इसीभांति यह जगन्नाथकुतर्ककुठारनामक पुस्तक भी वास्तव में नाथजी की बनाईहुई नहीं है किसी और ही महाशय ने समाजियों की प्रशंसाके अर्थ मिथ्या कपोल कल्पना की है परंतु लेखक महाशय

ने अपने लेखको सर्वथा मिथ्या और हास्यजनक जानकर नाथजीके नाम से छपवा दी है दयानन्दी मत में परपुरुषों से दश सन्तानपर्यन्त उत्पन्न कराने की आज्ञा है यदि नाथजीने किसी अन्यपुरुषसे एक छोटीसी पोथी बनवाली तो आश्चर्यही क्या है अस्तु अब मैं नाथजी की कपोलकल्पना का यथोचित उत्तर सुनाता हूँ और उनका अज्ञान मूलमहित मिटाता हूँ दयानन्दका जीवात्माकी उत्पत्ति लिखना प्रत्यक्ष दिखाता हूँ और उसकी अज्ञतापर बुद्धिमानों को हँसाता हूँ यहाँ विचारकेवल इस बातपर है कि हम ने सत्यार्थप्रकाश मुद्रित मन् १८७५ के पृष्ठ २३२ में दयानन्द के इसलेखसे कि ( जब जीवों को ईश्वर ने रचा ) दयानन्द का जीवात्मा की उत्पत्ति मानना लिखकर आक्षेप किया है और नाथजी कहने हैं कि जीवों को रचा उसका मतलब यह है कि प्राणवारी मनुष्यादि को रचा इसके निर्णयार्थ में उक्त सत्यार्थ-प्रकाश पृष्ठ २३० से पृष्ठ २३२ में ( जब जीवों को ईश्वर ने रचा ) दयानन्दजी के इस लेखतक नीचे लिखता हूँ बुद्धिमान लोग उस संपूर्ण लेख को न्याय दृष्टि से सम्यक् विचारकर न्यायकरें कि हमारा कथन सत्य है वा नाथजी की बनावट उक्त सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २३० प्रश्न पृथिवी जल अग्नि वायु इन चारोंके मिलने से चेतन भी उसमें होता है जब वे पृथक् २ होजाते हैं तब सब कला बिगड़ जाती है फिर उसमें कुछ नहीं रहता इससे जगत्का रचनेवाला कोई नहीं आपसे आपही जगत् और जीव होबा है—उत्तर आपभी इन चारोंको मिलाके जीव और जीवके जितने गुण उनको दिखलादेंगे सो कभी नहीं देखपड़ेंगे क्योंकि पहिले ही से सब स्थूल भूतों में सब सूक्ष्म भूत मिले रहे हैं फिर उन में ज्ञानादिक गुण क्यों नहीं देखपड़ते इससे जीव पदार्थ इन भूतोंसे भिन्नही है जिसके ये गुण हैं इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्पात्मनोलिंगम् । यह गौतम मुनिका सूत्र है इसका यह अभिप्राय है कि इच्छा किसीप्रकारका चाहना जिसके गुणोंको जानता है उसकी प्राप्तिकी चाहना करता है जिस में दोषों को जानता है उस में द्वेष अर्थात् चाहना नहीं करता प्रयत्न नानाप्रकार की शिल्पविद्या से पदार्थों का रचना शरीर तथा भार का उठाना इस का नाम प्रयत्न है सुख नाम अनुकूल का चाहना और जानना दुःख प्रतिकूल का जानना और छोड़ने की इच्छा करना ज्ञान जैसा जो पदार्थ है उसका तन्व पर्यन्त यथावत् विवेक करना इस का नाम जीव है ये गुण पृथिव्यादिक जड़ों के नहीं किन्तु जीव ही के हैं—लिंग शरीर बुद्धि जिस से जीव निश्चय करता है । “बुद्धिरूपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् , , । यह गौतम जी का सूत्र है बुद्धिउपलब्धि और ज्ञान ये तीनों नाम



एकही पदार्थ के हैं—मन जिस से एक पदार्थ को विचार के दूसरे का विचार करता है ॥ युगपज्जानानुत्पत्तिर्मनसोल्लिङ्गम् ॥ यह गौत० जिस से एक पदार्थ ही को एक काल में ग्रहण करता है एक को ग्रहण करके दूसरे का दूसरे काल में ग्रहण करता है एक काल में दोनों का नहीं इस का नाम मन—चित्त जिस से कि जीव पूर्वा पर का स्मरण करता है जो कि पहिले देखा और सुनाथा इसका नाम चित्त है—अहंकार जिस से अभिमान जीव करता है ये चार मिल के अंतःकरण कहाता है इस से जीव भीतर मनोराज्य करता है ये चारों एकही हैं परंतु व्यापार भेदसे चारभिन्न १ नाम-कहे—वाह्यकरण जिससे कि बाहर जीव व्यापार करता—श्रोत्र जिससे शब्द सुनाता है—त्वचा जिससे स्पर्श जानता है—नेत्र जिससे रूपको जानता है—जिह्वा जिससे रसको जानता है—नासिका जिससे गंधको जानता है ये पांच ज्ञान इन्द्रियां हैं इनसे जीव वाह्य पदार्थों को जानता है—वाक् जिससे शब्द बोलता है—पाद जिससे गमन करता है—हस्त जिससे ग्रहण करता है—पायु जिससे मलका त्याग करता है—लिंग जिससे मूत्र और विषय भोग करता है ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं इनसे जीव वाह्य कर्मकरता है—प्राण जिससे ऊर्ध्व चेष्टा करता है—अपान जिससे अधोचेष्टा करता है—व्यान जिससे सब संथियोंमें चेष्टा करता है—उदान जिससे जल और अन्नकोंकठ से भीतर आकर्षण करलेता है—समान जिससे नाभिद्वार सब रसोंको सब शरीर में प्राप्त करदेता है ये पांच मुख्य प्राण कहाते हैं—नाग जिससे डकार लेता है—कूर्म जिससे नेत्रको खोलता और मूंदता है—कृकल जिससे छींकता है—देवदत्त जिससे जंभाईलेता है—धनंजय जिससे शरीर को पुष्ट करता है और मरेपीछे शरीर को नहीं छोड़ता जोकि मुरदेको फुलाता है ये पांच उपप्राण हैं ये दश एकही हैं परन्तु क्रिया भेदसे दशनाम भये हैं ये २४ तत्व मिलके लिंग शरीर कहाता है कोई उपप्राण को नहीं मानता उसके मतमें २९ \* होते हैं और कोई पांच सुक्ष्म भूत जोकि परमाणु रूप हैं और पूर्वोक्त चारभेद अन्तःकरण के इन नव तत्वों को लिंग शरीर कहाता है इस लिंग शरीर में जो अधिष्ठाता कर्त्ता और भोक्ता उसको जीव कहते हैं जो कि एककालमें सब बुद्ध्यादिकोंके किये कर्मोंका अनुभव करता है चेतन स्वरूप है उसका नाम जीव है उसकी अधिक व्याख्या मुक्ति के प्रकरण में कीजायगी सो जीव

---

\* २४ में ५ गयेता २९ रहे वा १९ यह भी ध्यान रहे कि पहिले विद्वानों ने लिंग शरीर १७ तत्वों का माना है तथाहि पंचप्राण मनोबुद्धि दशेन्द्रिय समान्ति । भवर्त्तकृत भूतोत्पत्ति सुक्ष्माङ्ग भोग साधनम् ॥

भिन्न पदार्थ ही है चारों के मिलने से जीवके गुण और जीव कभी नहीं उत्पन्न होता इससे यह बात कही थी कि चारों के मिलने से जीव भी होता है यह बात खंडित होगई प्रश्न ईश्वर सर्वज्ञ और त्रिकालदर्शी है जैसा ईश्वरने अपने ज्ञानसे निश्चित किया है वैसाही जीव पाप वा पुण्य करेगा फिर जीव को दंड क्यों होता है क्योंकि उसमें अन्यथा जीव कुछ नहीं करसकता जो अन्यथा जीव करेगा तो ईश्वर का सर्वज्ञान नष्ट होजायगा इससे जैसा ईश्वरने पहिले ही निश्चय कररखा है वैसा जीव करता है ईश्वर जानता भी है फिर आपसे उसको निवृत्त क्यों नहीं करदेता जो निवृत्त नहीं करदेता तो दण्ड क्यों देता है-उत्तर ईश्वर है अत्यन्त दयालु जब जीवोंको ईश्वरने रचा इति अब नाथजी का वह लेख कि पृष्ठ २३१ में साफ लिखा है कि जीव भिन्न पदार्थ है और कभी उत्पन्न नहीं होता तो भला यह कैसे होसकता है कि एकही पृष्ठ के आगे जीव की उत्पत्ति लिखी हो विचारणीय है देखो पृष्ठ २३० में यह प्रश्न है कि पृथ्वी जल अग्नि वायु इन चारों के मिलने से चेतन भी उसमें होता है इत्यादि पृष्ठ २३१ में इस का उत्तर यह है कि इस लिङ्गशरीर में जो अधिष्ठाता कर्त्ता और भोक्ता उसको जीव कहते हैं जो कि एक काल में सब बुद्ध्यादिकों के किये कर्मों का अनुभव करता है चेतन स्वरूप है उसका नाम जीव है-सो जीव भिन्न पदार्थ ही है चारों के मिलाने से जीवके गुण और जीव कभी नहीं उत्पन्न होता-यहां नाथजीने बड़ा भारी छल कपट किया है और पवलिकको पूरा २ धोका दिया है ऐसा क्यों न करते दयानन्दीही तो ठहरे दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४ के पृष्ठ ११८ पर श्रुति का अंतिम टुकड़ा (अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिमत्) लिखकर शिष्यों को समझा दिया कि जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्रीको आज्ञा देवे कि हे सुभगे सौभाग्य की इच्छा करनेहारी स्त्री तू मुझसे दूसरे पति की इच्छा कर क्योंकि अब मुझ में संतानोत्पत्तिकी आशा मत करे इति यह दयानन्दका मिथ्यार्थ और छल कपट है जो कि ऋग्वेद में पूर्णसूक्त तथा एक ही श्रुतिके देखनेसे सम्यक् प्रकट है वस्तुतः वहां दयानन्दके अर्थ की गन्धभी नहीं ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं विस्तारभयसे नहीं लिखते- वास्तव में पूर्वापर विचार के बिना केवल एक वाक्य के देखने से बड़ा अनर्थ होजाता है जैसा नाथजी और उनके गुरुके लेखसे प्रकट है बुद्धिमान् लोग सम्यक् पूर्वापर विचारकर सत्यको सत्य और असत्यको असत्य कहें अब नाथजीका वह लेख कि पृष्ठ २३२ में जो लिखा है कि जीवों को रचा उसका मतलब यही है कि प्राणधारी मनुष्यादिको रचा विशेष निर्णाय है विद्वज्जन पृष्ठ २३० के प्रश्न से

पृष्ठ २३२ के इस लेखतक कि जब जीवों को ईश्वर ने रचा ध्यानपूर्वक सम्यक् विचारें कि दयानन्दजीके उक्तलेख में जीव शब्द मनुष्यादि के लिये कहीं नहीं आया किन्तु सर्वत्र जीवात्मा ही के लिये आया है वहां इच्छाद्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनोलिंगम् यह गौतमजी का सूत्र जीवात्माही के विषय में लिखकर इसकी पूर्ण व्याख्या की है फिर लिंगशरीर का पूर्ण वर्णन किया है उस लिंगशरीर में जो अधिष्ठाता कर्त्ता और भोक्ता है उसको जीव कहा है जो कि जीवात्मा ही का वाचक है मनुष्यादिका कदापि नहीं वस्तुतः यह प्रश्न कि पृथ्वी जल अग्नि वायु इन चारोंके मिलनेसे चेतन भी उसमें होता है जीवात्माही के विषय में है और उत्तर के अन्त में दयानन्दजी का यह सिद्धान्त कि इसलिंगशरीरमें जो अधिष्ठाना कर्त्ता और भोक्ता उसको जीव कहते हैं—चेतनस्वरूप है उसका नाम जीव है जीव भिन्नपदार्थ ही है चारोंके मिलाने से जीवके गुण और जीव कभी नहीं उत्पन्न होता प्रत्यक्ष जीवात्मा ही के विषय में है फिर वह लेख कि जब जीवों को ईश्वरने रचा मनुष्यादिकोंके विषय में कैसे होसक्ता है निःसन्देह उक्त लेख भी जीवात्माही के विषयमें है फिर (जब जीवों को ईश्वरने रचा) इसके उपरान्त पृष्ठ २३३ तक जहाँ २ जीवशब्द आया है जीवात्माही के विषय में आया है मनुष्यादिकों के विषय में कहीं भी नहीं वहां का लेख यह है परमेश्वर ने सब जीव स्वतंत्र रखे हैं—कर्मों के करने और पुण्यों के फल भोगने में जीव स्वतंत्र हैं और पापों के फल भोगने में पराधीन हैं—जीव कर्मों के करने वाले और भोगने वाले हैं—जैसा जीव कर्म करेगा वैसाही ईश्वर ने ज्ञान से निश्चय पहिले ही किया है—अपने कर्मों के करने में तथा भोगने में जीव स्वतंत्र है—प्रश्न जीव का निजस्वरूप क्या ? उत्तर विशिष्टस्य जीवत्वमन्वयव्यतिरेकाभ्याम् ॥ लिंगशरीर जो है उसका अधिष्ठाता है सोई जीव है—चेतन एक जीव और दूसरा परमेश्वर ही है—जहाँ २ लिंगशरीर विशिष्ट जीव रहता है—लिंगशरीर से युक्त जीव स्वर्ग नरक जन्म और मरण इत्यादिकों में भ्रमण करता है कारणशरीर के ज्ञान लोभ और क्रोधादिक गुण जीव में आते हैं और स्थूलशरीरके शीतोष्ण क्षुधा तृपादिक गुण भी जीव में आते हैं क्योंकि दोनों शरीरके मध्यस्थवर्ती जीव हैं इससे दोनोंशरीरोंके गुणका भी संग जीवकर्त्ता है—सज्जन लोग न्याय करें कि जब जीवोंको ईश्वर ने रचा इस वाक्यके प्रथम और उपरान्त जहाँ २ जीवपद आया है जीवात्माही का द्योतक आया है कारण और स्थूल दोनों शरीरों से जीवको प्रत्यक्ष पृथक् दिखाया है फिरनाथजी के लेखानुसार

( जब जीवों को ईश्वरने रचा ) इस वाक्य में जीवशब्द मनुष्यादिकों का वाचक कैसे होसक्ता है कदापि नहीं किन्तु जीवात्मा ही का वाचक है यदि हमारे इस सदुत्तर से नाथजी तथा उनके सहायकों की सम्यक् तृप्ति न हुई हो तो उसी सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३९.३ को देखें और दयानन्दका जीवों की उत्पत्ति मानना समझलें वहां लिखा है कि एक ब्रह्मसमाज मत चला है वे ऐसा मानते हैं नित्य परमेश्वर सृष्टिकर्त्ता है अर्थात् जीवादिक नये २ नित्य उत्पन्न करता है जीव पदार्थ ऐसा है कि जड़ और चेतन मिलाभया उत्पन्न ईश्वर कर्त्ता है जब वह शरीर धारणकर्त्ता है तब जड़ान्शसे शरीर बनता है और चेतनान्श जो है सो आत्मा रहता है जब शरीर छूटता है तब केवल चेतन और मन आदिक पदार्थ रहते हैं फिर जन्म दूसरा नहीं होता किन्तु पापोंका भोग पश्चात्तापसे करलेता है ऐसे ही क्रम से अनन्त उन्नतिको प्राप्त होता है यह बात उनकी युक्ति और विचारसे विरुद्ध है क्योंकि जो नित्य २ नई सृष्टि ईश्वरकर्त्ता तो सूर्यचन्द्र पृथिव्यादिक पदार्थों की भी सृष्टि नई २ देखने में आती जैसे पृथिव्यादिक की सृष्टि नई २ देखने में नहीं आती ऐसे जीव की सृष्टि भी ईश्वरने एकीवैर की है इत्यादि यहां से स्पष्ट सिद्ध है कि दयानन्द के मत में ईश्वर ने जीवों की सृष्टि एक ही बार की है नित्य नये २ जीव उत्पन्न नहीं करता यदि यहां भी नाथजी जीव शब्द को मनुष्यादिका वाचक कहेंगे तो अज्ञशिरोमणी रहेंगे क्योंकि प्रत्यक्ष के विरुद्ध है सर्वथा अशुद्ध है कि मनुष्यादि की सृष्टि नित्य नई २ होती ही है निदान दयानन्दने मुसलमानों के समान यहां जीवों की उत्पत्ति स्पष्ट लिखी है यदि अब भी नाथजी और उन के सहायक न मानें तो सर्वथा दृढ धर्मी है जिसका नाम सत्यार्थ प्रकाश है सद्धर्मका उससे सत्यानाश है शास्त्र विरुद्ध है महा अशुद्ध है कोई विद्वान् दयानन्द के सत्य वक्ता होनेका अभिमान नहीं करसकवा हमारे आक्षेपों का सच्चा समाधान नहीं करसकता जो कोई उसका पक्ष करेगा शिरके बल गिरेगा मात खायगा और अपनी अप्रतिष्ठा करायगा यहां तक पूर्व सत्यार्थप्रकाश के लेखसे दयानन्द का जीवों की उत्पत्ति मानना सम्यक् दिखायागया और झूठका पक्ष करनेवालों को झूटा बनायागया रहानाथजी का वह लेख कि प्रथम सत्यार्थप्रकाशका प्रमाण देना वृथा है क्योंकि—स्वामीजीने कई जगह अपने प्रतिकूल पाकर उसको अप्रमाणिक करदिया इति ॥ ध्यानरहे कि दयानन्दने मरणपर्यन्त पहिले सत्यार्थप्रकाश के अप्रमाणिक होने का कोई विज्ञापन नहीं छपवाया हां संवत् १९३५ में यजुर्वेद भाष्यके अङ्क २ पर यह छपवाया था कि सत्यार्थप्रकाशके ४२ पृष्ठ और २५ पङ्क्ति में पिशादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण

न करे और जितने मरगये हैं उनका तो अवश्य करे तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ मरे भये । पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छपागया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छपगया है इति यद्यपि दयानंद का यह लेख कि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छपागया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है सर्वथा मिथ्या है हमने दयानंद मत परीक्षा सत्यार्थ प्रकाश समीक्षा में इस की सम्यक् समालोचना की है परंतु दयानंद का यह निष्ठापन नाथ जी के उस कथन को कि स्वामी जीने कई जगह अपने प्रतिकूल पाकर पहले सत्यार्थ प्रकाश को अप्रमाणिक करदिया झुटलाता है क्योंकि उसने केवल तर्पण और श्राद्ध विषय को अशुद्ध छपा प्रकट किया इस से आप सिद्ध होगया कि उसके विचार में और समस्त सत्यार्थ प्रकाश प्रमाणिक रहा संस्कार विधि आदि पर उस को विज्ञीय पुस्तकों में छापते रहे और मरण पर्यन्त उस को बेचते रहे ९ वर्ष उपरान्त मरणसमीप दूसरे सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में यह लिखा कि जिस समय मैंने यह सत्यार्थप्रकाश बनायाथा मुझ को इस भाषा का विशेष ज्ञान न था इस लिये भाषा शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है अर्थ का भेद नहीं किया गया है यहां तक उसको अप्रमाणिक नहीं कहा मुझई सुस्तगवाह तुस्तका दृष्टान्त नाथ जी पर चरितार्थ है अस्तु हमने इसकी विशेष व्याख्या कृपारामकी कजरफ्तारी में की है कि दयानंद ने पहिले सत्यार्थ प्रकाश को मरणपर्यन्त अप्रमाणिक नहीं माना किंतु प्रमाणिकही जाना है जब हमने दयानंद लिखित पूर्व सत्यार्थ प्रकाशान्तर्गत गाय वैल आदि के मारने और मांसादि से होम करने मांसके पिंड देने आदि को प्रकट किया तब से दयानंदियों ने यह झूठी बात बनाई है कि पहिले सत्यार्थ प्रकाश के अशुद्ध होने का नोटिस तो स्वामी जीने आपही दे दिया था परंतु वह नोटिस आजतक किसी ने दिखाया नहीं यदि यह झूठी बात मान भी लीजाय कि दयानंद ने उसके अशुद्ध होने का नोटिस दिया था तब तो उस का अज्ञहोना स्वतः सिद्ध है कि जिस ग्रंथ को आप बनाया और छपवाया उसी को झूठा बताया यदि उससमय उस का सत्यासत्य का निर्णय न था तो फिर किस गुरु से पढ़कर विद्वान् होगया यह भी ध्यान रहे कि जिससमय वह नोटिस देना मानोगे तबतक उस ने और जो कुछ लिखा वा उपदेश किया समस्त झूठा जानोगे वस्तुतः पुराना सत्यार्थ प्रकाश ही अशुद्ध नहीं दयानंद के सभी ग्रन्थ अशुद्ध हैं शास्त्रविरुद्ध हैं शीघ्र वह दिन आनेवाला है कि

दयानंदी लोग जैसे अब पुराने सत्यार्थप्रकाश को अप्रमाणिक कहते हैं दयानंद के सम्पूर्ण पुस्तकों को अप्रमाणिक बतायेंगे और जिनका प्रारब्ध अच्छा है पक्षपात हठ दुराग्रह को छोड़कर सनातनधर्म ही की शरण आयेंगे अस्तु पाठकगण दयानंद ने पूर्व सत्यार्थप्रकाश ही में जीवों की उत्पत्ति नहीं लिखी किंतु अन्यत्र भी लिखी है देखो आर्याभिविनय मुद्रित संवत् १९३२ का पृष्ठ ४९ प्रथमोत्पन्नजीव सब संसार से आदि कार्य जीव को ही समझना । पृष्ठ ६० परमात्मा ने अनंत सामर्थ्य से इस जगत् को रचा है वही इस सब जगत् का अधिष्ठान उपादान निमित्त और साधनादि है उस अनंत स्वसामर्थ्य से इस सब जीवादि जगत् को यथा योग्य रचा है यहाँ परमात्मा को जगत् का उपादानकारण माना है यह बड़े आक्षेप की बात है पृष्ठ ६८ जीव ईश्वर के सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं—जन्य जनकादि संबंध तो जीवादि जगत् के साथ ब्रह्म का है इत्यादि नाथजी की पहिली शंका का समाधान पूर्ण हुआ और उन के मिथ्या कथन का चूर्ण २ यदि वे अब भी दयानन्द का प्रथम जीवों की उत्पत्ति मानना न मानेंगे तो बुद्धिमान लोग उन को हठी दुराग्रही और अज्ञ ही जानेंगे उन्होंने पब्लिक को धोका देने के लिये सर्वथा छल कपट किया है जो कि हमने सम्यक् प्रकट किया है । छंद-छल कपट से बुद्धिमानों में तो होगी जय नहीं । मूर्खों के आप बनजायें गुरु तो भय नहीं ॥

( शंभुनाथ ) कुतर्क २ दयानंदमत सूची में से ( वादी ) कुंभकरण की मूछ को लंबा योजन एक बनाया । तुलसीदास को दयानंद ने मिथ्या दोष लगाया ॥ प्रथम स० प्र० पृष्ठ ६०४ ।

( प्रतिवादी ) स्वामी जी महाराज का काम किसी पर दोषारोपण करना न था पर यदि लोग आपही आप ऐसा समझ बैठें तो इसका क्या उपाय बादी जी ! स्वामीजी महाराज ने मिथ्या दोष नहीं लगाया कृपा करके वेबई जगदीश्वर प्रेस स० १९१८ की छपी हरि प्रसाद भागीरथ की छपाई तुलसी-कृत रामायण को दृष्टिगोचर कीजिये आपका भ्रम दूर होजायगा उस में लिखा है कि—

अति अकार तनु चितवन जाई । चौतिस योजन की चकुलाई ॥  
 योजन तीन तीन के काना । वाइस योजन बाहु अजाना ॥  
 सत्रह योजन जांघ लंबाई । शत योजन तनु वरणि न जाई ॥  
 दुइ योजन की नाक जो बाढी । योजन एक मूछ रहै ठाढी ॥

सुंदरकाण्ड पृष्ठ ४३९ परंतु इस में यह उत्तम काम किया है कि क्षेपक अलग करदिये हैं जो प्रायः रामायणों में नहीं किये गये हैं यद्यपि यह वार्त्ता ( कुंभकरण के शरीर का विस्तार ) इस यन्त्रालय की छपी पुस्तक में क्षेपक में है पर इस से यह तो स्पष्ट विदित है कि और रामायणों में क्षेपक वार्त्ता विलग नहीं की गई और इस दशा में यह पहचानना कब सम्भव होसकता है कि अमुक विषय मूल में है वा क्षेपक में इत्यादि ।

( उत्तर ) आप के स्वामी ने सभीपर दोषारोपण किये हैं भागवतादि के नाम से झूटे इतिहास लिख दिये हैं दूसरों को दुर्वाक्य सुनाये हैं झूटे दोष लगाये हैं श्रीवेदव्यास महर्षि के वचन को वेद विरुद्ध ठहराया है मुक्ति को जेलखाना और फांसी के समान बताया है वेदों का अर्थ बिगाड़ा है सनातनधर्म की पुष्पवाटिका को उजाड़ा है अधिक व्याख्या न कराइये लोगों को न हंसाइये अब आपके मुख्य लेख का उत्तर सुनाता हूं और तुलसी दास जी पर दयानंद का मिथ्या दोष लगाना आपही के लेख से सिद्ध कर दिखाता हूं जादू वह जो शिरपर चढ़ के बोलें यहां तो आपने तुलसी दासजीपर दयानंद का मिथ्या दोष लगाना स्वयं मानलिया और अपने गुरु की अज्ञता को सम्यक् जानलिया फिर भी झूठी बातें बनाने से बाज़ नहीं रहते और अज्ञ को अज्ञ नहीं कहते जब कि आपकी माननीय जगदीश्वर प्रेस की छपी हुई रामायण में कुंभकरण के शरीर का विस्तार क्षेपक में है तुलसीदासजी के लेख में नहीं तो फिर तुलसीदासजी पर दयानंद का मिथ्या दोष लगाना स्पष्टसिद्ध है यदि इस विषय को आप किसी न्यायकारी के पास लेजायेंगे तो निःसन्देह हम ही जय पावेंगे फिर आपका यह लेख कि यद्यपि यह वार्त्ता ( कुंभकरण के शरीर का विस्तार ) इस यन्त्रालय की छपी पुस्तक में क्षेपक में है पर इस से यह तो स्पष्ट विदित है कि और रामायणों में क्षेपक वार्त्ता विलग नहीं की गई, सर्वथा असंगत है क्योंकि—यह विषय इस पुस्तक में क्षेपकमें है तो और पुस्तकों में क्षेपकमें न होगा यह तो सिद्ध नहीं होता किंतु यह अनुमान होसकता है कि इस पुस्तक में क्षेपक में है तो और पुस्तकों में भी क्षेपक में होगा इससे हमारा कोई विशेष प्रयोजन नहीं केवल आप की बुद्धि को दिखाया है और मित्रभावसे समझाया है कि समझ सोचकर लिखा करो संगंजस और असमञ्जस का विचार करलिया करो ऐसे लेखों को देखकर लड़के भी आप की हंसी करेंगे और आपका नाम अज्ञशिरोमणी धरेंगे अस्तु फिर आपका यह कथन कि—

इस दशा में यह पहचानना कब संभव होसکتा है कि—अमुक विषय मूल में है वा श्लेषक में इति सर्वथा अशुद्ध है बुद्धिमानों के विरुद्ध है जैसे जौहरी लोग असली और नकली रत्नको जानलेते हैं ऐसेही पूर्णवद्वान् मुकवि और कुकवि को कविताको पहिचान लेते हैं इस के अतिरिक्त समस्तबुद्धिमानोंपर प्रकट है कि—तुलसीदासजी की रामायण में मिलावट बहुत होगई है फिरभी अधिकतर यन्त्रालयों की छपीहुई रामायणों में आपकी लिखीहुई चौपाइयाँ कुंभकरण के शरीरके विस्तार की हे ही नहीं आपको दूहतेर एक जगदीश्वर प्रेस की छपी रामायण में उक्त चौपाइयाँ भिलीं सो उस पुस्तक में श्लेषकही में है ऐसी दशा में तुलसीदासजी पर दोषारोपण करना दयानन्द की महद-शता और द्वेष बुद्धिका प्रभाव है उस को उचित था कि प्राचीनकाल की हाथ की लिखी हुई और दश यन्त्रालयों की छपी हुई रामायणों को अपनी आँखों से देखता यदि सब में वह लेख पाता तो तुलसीदासजी के नाम से लिखता अन्यथा नहीं परंतु उस को निर्णय से क्या प्रयोजन उस को तो सब परदोषारोपण करने थे जैसे चाहा कर दिया ब्राह्मणादि मन्शास्त्रों में बिना निर्णय किये वेद विरुद्ध होने का दोष लगाया चक्रांकितों को वेद विरोधी और नानकजी को दंभी बताया तो तुलसीदास जी पर मिथ्या दोषारोपण करना कुछ बड़ी बात नहीं, हे मित्र उस को सन्यासन्यके निर्णय से प्रयोजन नहीं था किंतु अपना प्रयोजन सिद्ध करने ही से प्रयोजन था देखो 'देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते' इसे निरुक्तकी टिप्पणी में श्लेषक लिखा है उसने सन्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४ के पृष्ठ ११६ पर अपना प्रयोजन सिद्ध करने को इसे निरुक्त के नाम से लिख दिया और पृष्ठ ११८ में वेद का बता दिया दो पृष्ठ के उपरान्त अपने पिछले लिखे का भी ध्यान न रहा अस्तु ऐसे बहुत दृष्टान्त है कहांतक लिखें वस्तुतः दयानन्दने कुंभकरणके शरीरका विस्तार किसीसे सुनकर लिखा है उसने निर्णयार्थ रामायण की पुस्तकों को नहीं देखा जब वह दूसरीवार मुरादाबाद आया था हम ने उससे कहा था कि तुलसीदासजीकी रामायण में यह लेख नहीं है तब उसने किसी यन्त्रालयकी छपी रामायण का प्रमाण न दिया निदान नाथजी के लेखानुसार वह लेख तुलसीदासजी का नहीं है किंतु किसी दूसरे का मिलायाहुआ है कि जिस पुस्तक में छपा है श्लेषक में लिखा है इसकारण हमारा वह लेख कि ( कुंभकरणकी मूछ को लेवा योजन एक बताया । तुलसीदासको दयानन्दने मिथ्यादोष लगाया ) सर्वथा सत्य है और नाथजी का



वृथा प्रलाप मृषा, छन्द-स्वीकार नाथजी को मेरा आक्षेप है। बातें बनाये जात हैं फिर भी वह वेतुकी ॥ नाथजी की बुद्धिपर अज्ञान छाया है और उन के लेखने उन की अज्ञताको प्रकट करदिखाया है उनके लेख में कुम्भकर्ण की मूछको हमारे इस छन्दका पता प्रथम. स० प्र० पृष्ठ ६५४ अशुद्ध है दयानन्द-मतसूचीके विरुद्ध है वहां पृष्ठ ३५४ लिखा है जोकि ठीक पता है जिनको यहाँ तक अज्ञान है उनको हमारे आक्षेपों के उत्तर लिखने का अभिमान है छन्द-हमारे आक्षेपों का तो उत्तर मानलेना है। बनाये बात जो झूठी बनेगा आप वह झूठा ॥ नाथ जी अपने उस लेख को स्मरण कीजिये कि भला चंद्र पर धूर फेंकने से कहीं चंद्र छिपसकता है उलटी फेंकने वाले की ही आंखों में पड़ेगी-कहिये कैसी पड़ी पता लिखा वह अशुद्ध उत्तर दिया सो बुद्धिमानों के विरुद्ध अस्तु अब यह भी ध्यान रहे कि दयानन्द ने पूर्व सत्यार्थप्रकाश में तुलसीदास जी के नाम से कुम्भकर्णके शरीर का विस्तार जिस प्रकार लिखा था उसको आप झूठा जान लिया और तुलसीदास जी पर अपना मिथ्या दोष लगाना आपमान लिया क्यों कि उसे दूसरे सत्यार्थ प्रकाश में नहीं छपवाया और आप की समान झूठी बनावट करके अपनी अज्ञतापर बुद्धिमानों को अधिक नहीं हँसाया दयानन्दको हमारा आक्षेप स्वीकार है और झूठी बनावट बनानेवाले को लोकपरलोक में धिक्कार। छन्द-शत्रुने मेरे लेखकी पुष्टि जो आप की। जयर की चारों ओर से होनेलगी ध्वनी ॥ पाठकगण प्रकट होगया कि वादी हमारे आक्षेपों का उत्तर लिखने के बहाने से दयानन्द की अज्ञताको दिखारहा है अज्ञोंको सुझारहा है हम से उसकी पोल सम्यक् खुलवारहा है मिथ्यावादियों को चितारहा है अस्तु।

( शंभुनाथ ) कुतर्क ३ दयानन्दमतसूची में से-( वादी ) नारायण नाम ईश्वरका है यह पहलै छपवाया। नारायणायनमः को फिर क्यों वेद विरुद्ध बताया। स० प्र० पृ० २६ ( प्रतिवादी ) भला चन्द्रपर धूरके फेंकनेसे कहीं चन्द्र छिपसकता है उलटा फेंकनेवाले की ही आंखों में पड़ेगी-महाशयजी स्वामीजीने यह कहाँ लिखा है कि-नारायण शब्द वेदविरुद्ध है पृष्ठ २६ में तो केवल यह लिखा है कि-सीतारामाभ्यांनमः नारायणायनमः राधाकृष्णाभ्यांनमः गणेशायनमः शिवायनमः भैरवायनमः हनुमतेनमः इत्यादि से जो मङ्गलाचरण करते हैं सो ऐसा मङ्गलाचरण वेदशास्त्र विरुद्ध है वह यह कब लिखते हैं कि-नारायण नाम वेदविरुद्ध है इत्यादि।

( उत्तर ) निःसंदेह चंद्र पर धूलि फेंकने से चंद्र कभी नहीं छुपसकता अवश्य

उलटी फेंकने वाले ही की आँखों में पड़ती है हमारे सच्चे आश्रयों पर आप कितनी ही झूठी बनावटें बनायें परंतु वे कदापि न छुपेंगे किंतु और अधिक प्रकाशित होंगे यहां तो आपकी आँखों में ऐसी धूलि पड़ी कि सत्यार्थ प्रकाश की दो तीन पंक्ति लिखने में आगे पीछेकी कुछ भी सुझ न रही अस्तु देखिये सत्यार्थ प्रकाश मुद्रित सन १८८४ के पृष्ठ २६ में आपके गुरु का लेख यह है—जो आधुनिक ग्रंथों में श्रीगणेशाय नमः सीतारामाभ्यां नमः राधाकृष्णाभ्यां नमः श्रीगुरुचरणारविंदाभ्यां नमः हनुमते नमः दुर्गायै नमः बटुकाय नमः भैरवानाय नमः शिवाय नमः सरस्वत्यै नमः नारायणाय नमः इत्यादि लेख देखने में आते हैं इन को बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्याही समझते हैं इत्यादि अब आँखों की धूलि निकलवाइये और गुरु के लेख से अपना लेख मिलाइये देखिये वाक्यों के लिखने में आपने कैसी उल्ट पलट की है कि अपनी अज्ञाता सम्यक् प्रकट की है आँखों में धूलि पड़ना इसीका नाम है और मिथ्याभाषिका येही परिणाम है अस्तु छंद—हमारे सत्य लेखों पर बनाये बात कोइ झूठी । रहैगी सत्यही की जय अनृत अनृतही ठहरेगा ॥ नाथजी ! नारायणाय नमः इत्यादि लेख देखने में आते हैं इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्याही समझते हैं सत्यार्थप्रकाश में यह स्पष्ट लिखा है तो ( नारायणाय नमः को फिर क्यों वेदविरुद्ध ठहराया ) हमारे इस कथन में अशुद्ध क्या है यहां दयानन्दने नारायणाय नमः को मन्थस्र वेदविरुद्ध कहा है और ईश्वरके सर्वोत्तम नामों को ग्रंथकी आदि में लिखने से अज्ञों को रोका है वस्तुतः वह ईश्वरका नामतक जगत से उडाना चाहता था और पूर्ण नास्तिकता फटलाना चाहता था उसने उक्त सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ ७३ तथा ३२४ में नारायण शिवनामस्मरण की निंदा की है निःसंदेह अज्ञों को ईश्वरसे विमुख करनेपर कपूर बाँधी है फिर आपका यह कथन कि—स्वामीजी का अभिप्राय शिवादि नामों को वेदविरुद्ध बताने अथवा खण्डन करने का नहीं है किन्तु ईश्वरके स्थान में नवीन देवी देवताओं के नाम से मंगलाचरण करने के अभिप्राय से निषेध किया है ) आप की अज्ञता है और बनावट मिथ्या क्योंकि—नारायण और शिव नामों को आपके गुरु ने भी नवीन देवी देवताओं के नाम नहीं जाने हैं किंतु उन को ईश्वरही के नाम माने हैं अतएव उक्त नामों से मंगलाचरण करने का निषेध करना भी नास्तिकों का धर्म है और पूर्ण पापकर्म, फिर आपका यह लेख कि इस प्रकार का मंगलाचरण आर्षग्रंथों के प्रतिकूल है—रूप्युक्त

माचीन ग्रंथों में तो ओ३म् वा अय शब्द सेही मंगलाचरण किया गया है इति दयानन्द की कपोल कल्पना है और मिथ्या विद्वन्ना जव कि ऋष्युक्त माचीन ग्रंथों में ओ३म् शब्द से मंगलाचरण किया गया है तो नारायण शिवादि शब्दों से मंगलाचरण करने का निषेध करना दयानन्द की महदुष्टता है क्योंकि संपूर्ण वेदानुयायी जैसे ओ३म् शब्द को ईश्वर का वाचक जानते हैं वैसेही नारायण और शिवादि शब्दों को परमात्मा का नाम मानते हैं अतएव नारायण वा शिवादि ईश्वरवाचक शब्दों से मंगलाचरण करना कदापि आर्ष ग्रंथों के प्रतिकूल नहीं किंतु अनुकूल है और दयानन्द तथा दयानन्दिनों का कथन सर्वथा निर्मूल यदि अब भी आप अपने हठका त्यागन करें और यही कहें कि ऋषिप्रणीत ग्रंथों की आदि में नारायणायनमः शिवाय नमः इत्यादि नहीं लिखा अतएव ऐसा लिखना वेद और शास्त्रों के विरुद्ध ही है तो दयानन्दजीने आर्याभिविनय की आदि में अतमत् परब्रह्मणेनमः और सत्यार्थप्रकाश की आदि में ओ३म् सच्चिदानन्देश्वरायनमो नमः तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका संस्कारविधि और वेदभाष्य की आदि में ओ३म् सहनावतु और विश्वानिदेव इन श्रुतियों से जो मंगलाचरण किया है वेद और ऋषियों के ग्रंथों में कहीं ऐसा मंगलाचरण देखने में नहीं आता अतएव उनका उक्त लेख वेद और शास्त्रों के विरुद्ध जानिये और गुरु जी की भूल मानिये फिर सत्यार्थप्रकाश में ईश्वर के जो सौ नाम लिखे हैं वेद और ऋषियों के ग्रंथों में वे नहीं लिखे मौन न रहिये उन को भी वेद और शास्त्रों के विरुद्ध कहिये—

छंद—दयानन्द का लेख है सब अशुद्ध । सभी वेद से बाह्य है वा विरुद्ध ॥

( शंभुनाथ ) कुतर्क ४ दयानन्दमतम्ची में से ( वादी ) नमःशिवाय यह वाक्य वेद में हमनेतुझें दिखाया । तेरे गुरु नेनिंदा से उस की क्यालाभ छठाया ॥ स० प्र० पृष्ठ ३४९ ।

( प्रतिवादी ) झूठे आक्षेप करके महात्माओं की निंदा करना तो आपने अपना कर्त्तव्य बना रक्खा है इत्यादि ( उत्तर ) छंद—अनृत कथन से अपनाही विश्वास खोयगा । झूठी बनावटों से न होगी कहीं भी जय ॥ पूर्ण कलिकाल है जिस ने मांसादि पदार्थों से होम करना मांस के पिंड देना मांसभक्षण की पुष्टि यज्ञ में गोवृषभादि का वध लिखा एक स्त्री को ग्या-रह पुरुषों तक से नियोग करके संतानोत्पत्ति करने की आज्ञादी वह महर्षि और महात्मा कहलाये । महात्मा जी हमने उस की भी निंदा नहीं की किंतु

स्वधर्मरक्षार्थ उस के शास्त्रविरुद्ध महाअशुद्ध सर्वथा मिथ्या और असंग्र-  
जसादि लेखों को प्रकट किया है हमारा आक्षेप एक भी झूठा नहीं है आप  
के गुरु ही ने सनातनधर्मानिलम्बियों पर प्रायः झूठे आक्षेप किये हैं जो कि  
हमने संक्षेप से अपनी पुस्तकों में लिखे हैं महात्माओं की निंदा भी उसी ने  
पेटभर की है सत्यार्थप्रकाश ही में लिखी है संतुर्ण मतानुयायियों पर दुर्वा-  
क्यों की वर्षा की है उसकी सूचना संक्षेप से हमने सनातनधर्मपताका संवत्  
१९५६ संख्या २ में छत्रादी है सत् शास्त्रों में वेद विरुद्ध बताया है उनको  
अप्रमाण ठहराया है वेदों में भी केवल चार शास्त्रों को माना है शेष को  
ऋषि मुनि कृत जाना है धर्म को मिटाया है अधर्म को फहलाया है ऐसे  
कर्मों का परिणाम भला नहीं है जगत् में हंसी कराई और अंत में अपमृत्यु  
पाई अब सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३४९ के लेख को अवलोकन कीजिये और हमारे  
आक्षेप की सत्यता देख लीजिये यथाहि:-

( प्रश्न )-शैव मतवाले तो अच्छे होते हैं ?

( उत्तर ) अच्छे कहां से होते हैं जैसा प्रेतनाथ वैसा भूतनाथ जैसे वाम-  
मार्गी मन्त्रोपदेशादि से उनका धन हरते हैं वैसा शैव भी ओंनमःशिवाय इत्या-  
दि पञ्चाक्षरादि मन्त्रों का उपदेश करते रुद्राक्षभस्म धारण करते मट्टी के  
और पाषाणादिके लिंग बनाकर पूजते हैं इत्यादि-यहां ओंनमःशिवाय इत्या-  
दि पञ्चाक्षरी मंत्रों का उपदेश तथा रुद्राक्षभस्म धारण करने और मट्टी पा-  
षाणादिके लिंग बनाकर पूजने की स्पष्ट निंदा की है और शैवोंको उक्तकर्म  
करने के कारण वाममार्गियों से उपमा दी है आपके छुपाने से दयानन्दकी अ-  
ज्ञता कदापि न छुपेगी झूठी वनावटोंके सदुत्तर छपने से और भी अधिकतर  
खुलेगी आप की यह वनावट कि-यहां ओंनमःशिवायका उपदेश करने आ-  
दिको बुरा नहीं बताया है किंतु धनहरण करने को वाममार्गियों की सदृश ठ-  
हराया है सर्वथा अशुद्ध है बुद्धिमानों के विरुद्ध है क्योंकि-ओंनमःशिवाय इ-  
त्यादि के उपरान्त धनहरण कहीं नहीं लिखा और रुद्राक्षभस्म धारण करने  
तथा शिवमूर्तिके पूजने से किसीप्रकार धनहरण होता भी नहीं यदि कहो कि-  
मन्त्रोपदेश करके दक्षिणा लेते हैं तो उम के लिये वाममार्गियों के दृष्टांत की  
क्या आवश्यकता है और अधर्म ही क्या है क्योंकि यहाँ में दक्षिणा दीजाती  
है गुरु के लिये दक्षिणा का विधान है धर्म से कहिये कि आपके गुरु ने पुस्तकोंका  
मूल्य चतुर्गुण रखने के अतिरिक्त वेदभाष्य की सहायताके नाम से बारंबार  
विज्ञापन छापकर शिष्यों का कितना धन हरण किया राजा महाराजों से

कितना धन लिया धन हरण करने को ( विविधानिचरत्नानि विविक्तेषूपपा दयेत् मनुके नाम से यह झूठा आधा उलोक बनाया और पूर्व सत्यार्थप्रकाश के विरुद्ध नवीन सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १३५में (नाना प्रकार के रत्न सुवर्णादि धन संन्यासियों को देने ) यह अनर्थ छपवाया समाजों में सहस्रों रुपया चंदे से एकत्र होता है कि नहीं आपके पिता यजमानों से धन लेते हैं वा नहीं जिन कर्मों को आप अर्थ और पोषों का छल कपट कहते हो वे तो उन्हीं के द्वारा धन लेते हैं किसी मुमलमानी स्त्री ने भरण समय बहुत कुछ धनादि का दान किया था धर्म से कहिये कि वह कियेने लिया था —

वस्तुतः दयानंद ने शैवों को ओंनमः शिवाय इत्यादि मंत्रों का उपदेश तथा रुद्राक्षभस्म धारण करने और शिव मूर्ति पूजनेही से बुरा बताया है और वाममार्गियों की सदृश ठहराया है इस के अतिरिक्त सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ ७३ तथा ३२४ में भी नारायण और शिवनाथ स्मरण की निंदा की है अपने शिष्यों को ईश्वर से विमुख होने की शिक्षा दी है यदि बलत्कार आप अपनी ही दृष्टि पर रहोगे और यही कहोगे कि उस ने धन हरण करने ही को वाम मार्गियों की सदृश कर्म बताया है ओंनमः शिवाय मंत्रके उपदेश को निंदित नहीं ठहराया तो रुद्राक्ष भस्म धारण करने तथा मट्टी और पाषाणादि की मूर्ति पूजने को भी बुरा न जानोगे किंतु ओंनमः शिवाय मंत्र को सदृश ही मानोगे क्यों कि निंदा वा स्तुति सब की समान है न माना तो आपका महदज्ञान है ॥ छंद—आपके हाथ से घर आपका मिसमार हुआ आपके गिर पै कुठार आप का असवार ॥ हुआ सत्य भाषणसे हुई मेरी विजय लाखोंमें । झूट से आप का सर्वत्र निरस्कार हुआ ॥

( शंभुनाथ ) कुतर्क ५ दयानंद मत सूची में से ( वादी ) कहै त्रिकाल दर्शी ईश्वरको उस को मूर्ख बताया । निज मुख मूर्ख बने स्वामी जी आपवही छपवाया ॥ स० प्र० पृष्ठ १९४ ॥ ( प्रतिवादी ) यहां आपने पब्लिक को खूब धोका दिया पर अब आपकी चालाकियों का समय आपहुंचा है हम एक २ आक्षेप का ऐसा मुख मर्दन करेंगे कि आप भी याद करें अब हम पृष्ठ १९४ का लेख नीचे उद्धृत करके दिखलाते और पब्लिक को वादी की अज्ञता परहंसाते हैं—ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खताका काम है क्यों कि जो होकर न रहै वह भूतकाल और न होके होवे वह भविष्यकाल कहाता है क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता अथवा न होके होता है कभी नहीं परमेश्वर का ज्ञान सदा एक रस अखंडित

वर्त्तमान रहता है भूत भविष्यत् जीवों के लिये है हां जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है स्वतः नहीं—महाशय गण विनामिसे स्वामी जीने तो यह कहा है कि ईश्वर को अपनी अपेक्षा त्रिकाल दर्शित्व नहीं है क्योंकि वह तो सदा एक रस वर्त्तमान है देश काल और वस्तु इन सब से अप रिच्छिन्न है। इत्यादि

( उत्तर ) छंद-न्यूनता बुद्धि की है और ठठ दुराग्रह द्वेष है। वान सीधी का भी जो देता है तू उलटा जगत् ॥ नाथजी जरा तो बुद्धि से काम लीजये और कुछ तो मनुष्यत्व का काम कीजये झूठी बातें बनाते हो फूटे ढोल बजाते हो वेतुके गीत गाते हो और अज्ञों को रिझाते हो। छंद-झूठी बनावटों से कुछ भी न सिद्धि होगी। हां अज्ञता की तेरे स्वामी की पुष्टि होगी ॥ धोका देना आपका और आपके गुरु का काम है गप्पाष्टक उसकानाम है हमने उसके शास्त्र विरुद्ध महा अशुद्ध सर्वथा मिथ्या असमंजस और छलकपटादि युक्त लेखों की सम्यक् पोल खोली है और विद्वानों ने अपनी बुद्धि रूपी तुला में तोली है। छंद-दयानंद का छल कपट खुल गया। कि विद्वानों का बुद्धि में तुल गया ॥ निःसंदेह अब आपके गुरु की चालाकियों का अतिम समय निकट है कि प्रत्येक नगर और ग्राम निवासियों पर उस की अज्ञता सम्यक् प्रकट है। छंद-तेरे गुरु की अज्ञता सबपर प्रकट हुई। फंद में उसने आय गा कोई न बुद्धिमान ॥ प्रत्यक्ष देखलो कि जिन २ द्विजातियों ने प्रथम उस के मत को चर्च जान लिया था और बिना सोचे समझे अज्ञान वा किसी अन्य कारण से कुछ र मान लिया था प्रायः उसके त्यागी हुए सनातन धर्मही के अनुगामी हुए प्रायः मन में झूठा जानते हैं परंतु छोड़ने में अप्रतिष्ठा मानते हैं फिर भी उस की सब बातों को स्वीकार नहीं करते सर्वथा शास्त्र विरुद्ध नियोगादि दुष्कर्मों का प्रचार नहीं करते अधिक व्याख्या न कराइये अन्यमतावलंबियों को न हंसाइये आज कल शूद्र और पतित लोग समाजों में नाम लिखाते हैं शर्मा और वर्मा बन जाते हैं द्विजाती लोग जिन के हाथ का पान नहीं खाते थे और जिनको अपना पात्र तक नहीं छुवाते थे समाजी लोग उन के घर का भोजन खाते हैं और अपनी पंक्ति में बिठाते हैं मुसलमानों और ईसाइयों को आर्षा बनाते हैं धर्म को सर्वथा मिटाने हैं सनातन धर्म पनाका मुरादावाद वैशाख संवत् १८५८ में जलेश्वर का एक पत्र छपा है कि आर्यसमाज में एक भंगी निकला भंगियों ने पहिचान लिया पहिले कृष्ण हुआ अब आर्या है धन्य हम आपकी प्रत्येक कपोल कल्पना और झूठी बना-

बट का ऐसा खंडन करेंगे कि बुद्धिमान लोग आपके सर्वथा मिथ्या और असंगत प्रलाप को पागल की बड़ से अधिक न समझेंगे । छंद कहेंगा शास्त्र के प्रतिकूल जो कोइसामने मेरे । वह हारेगा वह हारेगा वह हारेगा वह हारेगा ॥ पाठकगण कहें त्रिकालदर्शी ईश्वर को उसको मूर्ख बनाया । निज मुख मूर्ख बने स्वामी जी आपवटी लपवाया ॥ यहाँ हमारा यही आक्षेप है कि जो कोई ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहें दयानंद उसको मूर्ख बनाता है परंतु उसने आप ईश्वर को त्रिकालदर्शी लिखा है अतएव वह अपने कथनानुसार मूर्ख हुआ सो ( ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है ) नाथ जीने दयानंद का यह लेख स० प्र० पृष्ठ १०४ से आप दिन्वाया है और दूसरे लेख का पता हमने दयानंदमत सूची में आर्याभिविनय पहिले का पृष्ठ ८ लिखा है वहाँ दयानंद जी का लेख है कि ईश्वर त्रिकालदर्शी होने से इस बात में दोष नहीं हमने जो कुछ पत्र में लिखा है वही लेख दयानंद के ग्रंथ में विद्यमान है कुछ भी न्यूनता नहीं अतएव हमारा आक्षेप सर्वथा बलवान है और नाथ जी की हठधर्मी वा अज्ञान ॥ छंद—हमने जो कुछ बताया था दोष उस के लेख में । प्रत्यक्ष उस के लेख से वह सिद्ध कर दिया ॥ ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृष्ठ ७६ में भी ईश्वर को त्रिकालदर्शी भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालों के व्यवहारों को यथावत् जाननेवाला लिखा है और उक्त आर्याभिविनय पृष्ठ ३० यजुर्वेद की श्रुति के अर्थ में ईश्वर को त्रिकाल्यज्ञ लिखा है पूर्व मतार्थ० के पृष्ठ २३२ पर ईश्वर को त्रिकालदर्शी लिखा है फिर दयानंद का यह लेख कि ( जो होकर न रहे वह भूतकाल और न होकर होवे वह भविष्यतकाल कहाता है क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता अथवा न होके होता है परमेश्वर का ज्ञान सदा एक रस अखंडित वर्तमान रहता है ) उसकी मूर्खता को और भी पुष्ट करता है क्योंकि ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है इस पहिले वाक्य से कुछ भी संबन्ध नहीं रखता और उसका हेतु कदापि नहीं होसकता—हां यदि ऐसा कहें कि ( ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना उचित है क्योंकि जो बीन गया वह भूतकाल और जो आने लाया है वह भविष्यत् काल कहाता है क्या ईश्वर को व्यतीत हुए का ज्ञान नहीं रहता अथवा आनेवाले समय का ज्ञान नहीं परमेश्वर का ज्ञान सदा एकरस अखंडित वर्तमान रहता है ) तो ठीक होगा जिस को अपने लेख में योग्यता अयोग्यता का भी ज्ञान न हुआ उस के मूर्ख होने में क्या संदेह है ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के

पृष्ठ ५ में ( योभूतंच ) इस श्रुति की व्याख्या में लिखा है कि जो परमेश्वर एक भूतकाल जो व्यतीत होगया है ( च ) अनेक चक्रारों से दूसरा जो वर्तमान है ( भव्यञ्च ) और तीसरा भविष्यत् जो होनेवाला है इन तीनों कालों के बीच में जो कुछ होता है उन सब व्यवहारों को वह यथावत् जानता है फिर पृष्ठ ३७ में ( सपर्ययात् ) इस मन्त्र की व्याख्या में लिखा है कि जो सबका अंत भी है और भूत भविष्यत् तथा वर्तमान इन तीनों कालों के व्यवहारों को यथावत् जानता है—क्या अब भी ईश्वर त्रिकालदर्शी नहीं ? फिर यह कथन कि जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है स्वतः नहीं धन्य प्रातःकाल का भूला सायंकाल को अपने घर पर आजाय तो वह भूला नहीं कहता दयानन्द जी ने इसी स्थानपर आप ईश्वर को त्रिकालज्ञ स्वीकारकर लिया वह ईश्वर की त्रिकालज्ञता जीवों के कर्म की अपेक्षा हो वा स्वतः हो इस में कोई हानि नहीं निदान ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना अनुचित कदापि नहीं किंतु उचित ही है कि वह त्रिकालज्ञ अवश्य है चाहे किसी कारण से हो ॥ छंद—करचुका आप मेरे दावे को स्वीकार रिपु । कौन मुंसिफ़ न करेगा भला डिगरी मेरी ॥ ध्यान रहे कि दयानन्द का यह कथन भी कि ईश्वर में त्रिकालज्ञता स्वतः नहीं सर्वथा अशुद्ध है और उसी के लेख से विरुद्ध है क्योंकि आर्याभिविनय पृष्ठ ८ का वह लेख कि ईश्वर त्रिकालदर्शी होने से इस बात में दोष नहीं—ईश्वर की स्वतः त्रिकालज्ञता का द्योतक है वहां जीवों के कर्म का विषय कुछ भी नहीं—फिर नाथजी का यह कथन कि (ईश्वर देश काल और वस्तु इन सब से अपरिच्छिन्न है ) केवल अप्रसंग ही नहीं किंतु उन को झुटलाता है ईश्वर के त्रिकालदर्शी होने की पृष्टि में एक अपूर्व युक्ति दिखलाता है ईश्वर देशकाल वस्तु इन सब से अपरिच्छिन्न है इसी से वह पूर्ण त्रिकालज्ञ है आपने उक्त वाक्य किसी से सुनलियाहें वा कहीं लिखा देखाहें परंतु उस का आशय उल्टा ही समझा है—राजपि भनृहरि जी का श्लोक भी हमारे अनुकूल है उसपर आश्रय ही क्याहें, हाँ आप की समझ का टोटाहै। छंद—मिटाने से तुम्हारे अज्ञता उस की नहीं मिटती । कि उस के लेख से है अज्ञता उस की प्रकट सम्यक् ॥

( शंभुनाथ ) कुतर्क द धर्म संताप में से ( वादी ) धूमना भूमिका जो उसने लिखा निर्मूल है । जो कि हैं वेदज्ञ यह उन के हृदयमें शून्य है ॥ दूसरा सत्यार्थ प्र० ३६० ठगों मिद्वान्त शिरोमणि गोलाध्याय—दूसरा सत्यार्थ०



पृष्ठ २२८ सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय में भूरचलास्वभावतः लिखा है अथर्ववेद में ध्रुवा पृथ्वी इत्यादि ऐसी श्रुति है—

( प्रतिवादी ) वेदज्ञों के हृदय में तो कदापि शूल नहीं क्यों कि वेद में तो स्वयं लिखता है कि या गौर्वर्त्तनि पर्य्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीर वारतः । साप्रभुवाणावरूणायदाशुषे देवेभ्यो दाशद्विषा विवस्वते ॥ ऋ० अ० ८ अ० २ व० १० मं १ ॥ हां किंतु वेदाज्ञों के हृदय में शूल हो तो आश्चर्य नहीं और सि० शि० के टुकड़े “ भूर चला स्वभावतः ,, का जो आपने प्रमाण दिया तो यह आप की बुद्धिमानी है या किसी कच्चे के मुख से केवल इतना टुकड़ा सुन बिना विचारे कि यह किस स्थल का है और किस आशय से वहां लिखा है अपने पक्ष का पोषक समझ लिख मारा यदि आप पुस्तक में इस का प्रसङ्ग देखलेते तो इस के प्रमाण देने का कभी साहस न करते अव हम उक्त स्थल के सम्पूर्ण श्लोकों को उद्धृत कर प्रसङ्ग दिखाने और वादी की अज्ञता पर बुद्धिमानों को हँसाने हैं इत्यादि ।

( उत्तर ) नाथजी आपका लेख सर्वथा निर्मूल है और प्रथम ही भूल है देखिये आपने जो यहां हमारे छन्द के अन्त में दूसरा सत्यार्थ ० ४६० देखो सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय यह लेख किया है अपनी अज्ञता का परिचय दिया है वस्तुतः यह पता—जो लिखी पृथ्वी की परिधी, उस छन्द का है जो कि आपने कुतर्क १२ में लिखा है धर्मसन्ताप में ( जो लिखी पृथ्वी की परिधी ) यह पूर्वार्थ और ( धूमना भूमीका जो ) यह उत्तरार्द्ध एक ही छन्द ३२ का है धर्मसन्ताप में इसका पता—दूसरा सत्यार्थ ० पृष्ठ २२८ ही लिखा है पिछले आधे को कुतर्क ६ में और फिर पहिले आधे को कुतर्क १२ में लिखना यह आपकी अज्ञता पर अज्ञता है अस्तु । छन्द—अज्ञता पर अज्ञता है लेख में तेरे प्रकट । क्या लिखेगा लेख का उत्तर मेरे तू फिर भला ॥ आपने जो यहां—या गौर्वर्त्तनि—इस श्रुति को लिखा है किसी कच्चे के मुख से सुनके बिना विचारे कि यह मन्त्र किस स्थल का है और इस का आशय क्या है अपने पक्ष का पोषक समझकर लिख मारा आपको तो संस्कृत समझने की बुद्धि नहीं है, परन्तु अपने लघुभ्राता से उसके भाष्य का भावार्थ सुनलेते तो इस के प्रमाण देने का कदापि साहस न करते इस से और पृथ्वी के घूमने वा स्थिर होने से सम्बन्धही क्या है वस्तुतः वहां प्रकरण यज्ञ का है अतएव सायणाचार्य ने गौपद से गायत्री का अर्थ किया है आगे श्रुति में प्रत्यक्ष पय शब्द पड़ा है जिस की गायत्री के साथ सम्यक् योग्यता है । छन्द—किसी कच्चे के

मुख से सुन के लिखी जो श्रुति तूने । असंगत लेख से अपने बना तू आप ही कच्चा ॥ फिर आपका यह लेख कि-सि० शि० के टुकड़े 'भ्रूचलास्वभावतः' का जो प्रमाण आपने दिया किसी कच्चे के मुख से इत्यादि आप की अज्ञता है और सर्वथा मिथ्या । छन्द-हमारे सत्य लेखों पर बनाये बात जो झूठी । बनेगा आप वह झूठा कहाये लाख में कच्चा ॥ महाशय ! हमको सिद्धान्तशिरोमणि का वचन आपके पिता मुन्नालाल पाशाजी ने बताया था आप उनको कच्चा कहिये वा सचा समझिये परंतु हमने पुस्तक में बिनादेखे और बिनाविचारे नहीं लिखा किंतु सम्यक् विचारकभी लिखा है देखिये वहां प्रथम पृथ्वीके स्वरूपका वर्णन है यथाहि इदानीं भूमेः स्वरूपमाह-भूमेःपिंडः श-शाङ्कशकवि रवि कुजेज्यार्कि नक्षत्रकक्षा-वृत्तवृत्तोद्यतः सनमृदनिलसलिलव्यो-मतेजोमयोऽयं । नान्याधारः स्वशक्त्यविविचि-नियतं तिष्ठतीहास्यपृष्ठे निष्ठं विश्वं च शश्वत्सदनुजमनुजादिन्य दैन्यं समन्तान् । यहां स्पष्ट है कि निश्चय पृथ्वी अन्याधार रहित अपनी ही शक्ति से आकाश में ठहरी हुई है श्लोक में तिष्ठति क्रिया पद है जो कि 'ष्टा' धातु से बनता है और ष्टा गति निवृत्तौ गति की निवृत्ति ही में है अतः उस को चलायमान कहना सर्वथा अशुद्ध है कि सिद्धान्तशिरोमणि के विरुद्ध है उक्त श्लोक में देवता, दैत्य और दानव भी स्पष्ट मनुष्यों से पृथक् लिखे हैं इस के उपरान्त आपके लिखे सम्पूर्ण दो श्लोक है यथाहि यथोष्णताकी नलयोश्चशीतता विधौद्रुतिःनेकठिनन्वमशपनि । मरुच्चलोभ्रूचलास्वभावतो यतोविचित्रावतवस्तुशक्तयः ॥ १ ॥ आकृष्टशक्ति श्रमहीतयायत् स्वस्थंगुरुस्वाभिमुखंस्वशक्त्या । आकृष्यतेतन्पततिविभाति समे-समन्तान्कपतन्वियं ॥ २ ॥ यहां पहले श्लोक में पृथ्वी स्वभावसे अचल है यह स्पष्ट है जो कि आपको भी स्वीकार है । हां आप ने अशों को धोका देने के लिये पृथ्वी के आगे ( मट्टी ) अधिक लिखा है मूल में भूः पद है जिस का अर्थ भूगोलही का है न कि मट्टी के ढेले आदिका-दूसरे श्लोक में पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का वर्णन है कि गुरु पदार्थ को अपनी ओर लेआती है इससे पृथ्वी के अचल होने में कोई बाधा नहीं आपने केवल लेख बढ़ाने को वृथा लिखा है इस के आगे भी भूमिही का प्रकरण है फिर आप कैसे कहते हैं कि ( भ्रूचलास्वभावतः ) किसी कच्चे के मुख से सुन बिना वि-चारे अपने पक्षका पोषक समझ लिख मारा निःसन्देह पृथ्वी अचल है उक्त वचन हमारे इस सत्य कथन की पुष्टि करता है और दयानन्द ने अंग्रेजों का अनुसरण करके शास्त्रविरुद्ध पृथ्वी का घूमना माना है उस के शिरपर अ-

ज्ञता का बोझ धरता है । छन्द—किसी कच्चे की बातों पर करेगा हठदुराग्रह जो । हमारे सामने निश्चयवनेगा आप वह कच्चा ॥ हे मित्र ! कच्चों के मुख से सुनकर बिना विचार लिख मारना आपके गुरुही का काम है जिससे सर्वत्र विद्वानों के सन्मुख आम लोगों का लज्जित होना ही परिणाम है देखो सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४ पृष्ठ ११८ ( अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिमत् ) यह श्रुति का एक टुकड़ा किसी कच्चे के मुख से सुनकर बिना विचार कैसा अनर्थ किया है पृष्ठ १२६ “ब्राह्मणस्य विजानतः” यह वेदों के नाम से लिखा वेदों में कहीं नहीं किंतु गीता का वचन है पृष्ठ १३५ “ विविधानि चरत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् ” यह मनु के नाम से लिखा मनु में कहीं नहीं पृष्ठ १९६ “ य आत्मनि ” यह श्रुति बृहदारण्यकोपनिषद् के नाम से लिखी वहाँ नहीं शत पथ में है पृष्ठ १९७ जीवे शौच—यह दो श्लोक संक्षेप शारीरक और शारीरक भाष्य के नाम से लिखे दोनों जगह नहीं पृष्ठ २१० तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति—इसे तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन कहा वहाँ नहीं छांदोग्य में है पृष्ठ २२३ ततो मनुष्या अजायन्त यह यजुर्वेद के नाम से लिखा वहाँ नहीं शत पथ में है पृष्ठ ३३३ में हिरण्याक्ष और ग्रहलाद की कथा जिस प्रकार लिखी है भागवत में उस प्रकार नहीं पृष्ठ ३३४ में रथेन वायुवेगेन जगाम गोकुलं प्रति—यह आधा श्लोक अक्रूरजी के विषय में लिखा है भागवत में कहीं नहीं पृष्ठ ३३८ छादयत्यर्कं मिन्दुर्विभुं भूमिभाः ’ इसे सिद्धान्त शिरोमणि का वचन कहा वहाँ कहीं नहीं किंतु ग्रहलाघव का है पृष्ठ ३५६ वेद पठत ब्रह्मामेर चारों वेद कहानि । इसे नानक जी के नाम से लिखा परंतु उन के ग्रंथ में यह वाक्य कदापि नहीं कहाँ तक लिखें ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिन से स्पष्ट प्रकट है कि उस ने कच्चों के मुख से सुनकर बिना विचार जी में आया सो लिख मारा ॥ छंद—पते जो कुछ लिखे उसने पता उन का नहीं लगता । कहो तो संड जी तुम ही वह सच्चा था कि था कच्चा ॥ फिर आप का यह कथन कि अथर्ववेद का—ध्रुवा पृथ्वी इत्यादि मन्त्र इस का उत्तर जगन्नाथ भ्रमनाशक में शंका नं० ३५ के उत्तर में दे दिया है यहाँ केवल इतना कहना इच्छित है कि जगत् शब्द का धात्वर्थ ‘ गच्छतीति जगत् ’ ही चलने वाला है तो फिर स्थिर किस प्रकार होसकता है इत्यादि महाशय आपके भ्रमनाशक में इस विषय पर यह लेख है कि ध्रुवा के अर्थ नियम में या स्वरूप में स्थिर के लेने चाहिये यदि यह अर्थ किया जावे कि संपूर्ण जगत् स्थिर है तो सम्पूर्ण सूर्यादि ग्रह भी स्थिर रहे क्योंकि सूर्य भी जगत् ही में है ये अर्थ

माननीय नहीं होसकता क्योंकि जो लोग पृथ्वी को स्थिर मानते हैं वह सूर्य को अवश्य चलायमान जानते हैं इति आपके गुरु ने उक्त श्रुति और उस का अर्थ दूसरी बार की छपी संस्कार विधि के पृष्ठ १२९ पर लिखा है प्रथम यहाँ उस को दिखाता हूँ और फिर आपके और आपके भ्रमनाशक का यथोचित उत्तर सुनाता हूँ—ओं ध्रुवाद्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्व मिदं जगत् । ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पति कुले इयम् ॥ अर्थ हे वरानने जैसे ( द्यौः ) सूर्य की कान्ति वा विद्युत् ( ध्रुवा ) सूर्यलोक वा पृथिव्यादि में निश्चल जैसे ( पृथिवी ) भूमि अपने स्वरूप में ( ध्रुवा ) स्थिर जैसे ( इदम् ) यह ( विश्वम् ) सब ( जगत् ) संसार प्रवाह स्वरूप में ( ध्रुवम् ) स्थिर है जैसे ( इमे ) ये प्रत्यक्ष ( पर्वताः ) पहाड़ ( ध्रुवामः ) अपनी स्थिति में स्थिर हैं वैसे ( इयम् ) यह नृ मेरी ( स्त्री ) ( पतिकुले ) मेरेकुलमें ( ध्रुवा ) सदा स्थिर रह इति मास्टर साहिब विवाद पृथ्वी के स्थिर होने और चलने में है उस को छोड़कर आप प्रथमही यह क्यों कहने लगे कि जगत् शब्दका धात्वर्थ “ गच्छतीति जगत् ” ही चलने वाला है तो फिर स्थिर किस प्रकार हो सकता है इसका उत्तर तो गुरुजी के लेख में देख लीजिये सम्यक् शांति न हो तो उनही से यथेच्छित झगड़ा कीजिये हम को जगत् के चलवा अचल होने से कुछ फल नहीं है कि विवाद का स्थल नहीं है यहाँ पृथ्वीके चलायमान वा स्थिर होने का विचार है सो श्रुति के अर्थ में आपके गुरु को सम्यक् स्वीकार है आपका भ्रमनाशक गुरुभाई भी ध्रुवाके अर्थस्वरूपसे स्थिरमानता है और स्वरूपका पर्याय वास्तविक वा स्वभाव है यह प्रत्येक बुद्धिमान् जानता है हमारा पक्ष प्रबल है कि आपके गुरु और गुरुभाई ही के लेखसे पृथ्वी स्थिर अर्थात् अचल है जब कि वेद में ध्रुवा पृथ्वी यह पद प्रत्यक्ष विद्यमान है और ध्रुव शब्द का अर्थ स्पष्ट अचलायमान है तो उस को चलायमान कहना आप की हठधर्मी वा अज्ञान है और वेद विरोधी होने की पहिचान—अब अपने पूर्व अज्ञान को भी दूर कीजिये और उसकी ओपधि हम से सुन लीजिये वस्तुतः जगत् शब्दरूढ़ है उसका धात्वर्थ कर सो मूढ़ है यदि आपके लेखानुसार यह माना जावे कि संपूर्ण जगत् चलायमान है तो ध्रुवादि नक्षत्र तथा आकाश वन पर्वतादि भी चलायमान रहे क्योंकि वे भी जगत् ही में हैं परंतु यह अशुद्ध है विद्वानों के विरुद्ध है फिर आप के गुरु भाई की युक्ति से जो लोग पृथ्वी को चलायमान मानते हैं वह सूर्य को अवश्य स्थिर जानते हैं यह मानना बड़ी भारी भूल है कि वेद के प्रतिकूल है यथाहि सूर्य

एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः । यजुर्वेद अ० २३ मंत्र १० जप कि सूर्य का चलना प्रत्यक्ष वेदानुसार है तो आप को अपने गुरुभार्षके सिद्धान्तानुकूल कि जो लोग पृथ्वी को स्थिर मानते हैं वह सूर्य को अवश्य चलायमान जानते हैं पृथ्वी का स्थिरत्व मानना अन्यावश्यक और बलान्कार है । छंद-हमारे लेखका उत्तर लिखे वह जिसका जी चाहे । वरन संसार में झूठे की निश्चय हारही होगी ॥ अंत में यजुर्वेद का एक मंत्र और सुनाते हैं और दयानंदजी के लेख में नाथ जी को पृथ्वी का स्थिर होना मनाते हैं-उपयामगृहीतासि ध्रुवोसि ध्रुवक्षितिध्रुवाणां ध्रुवतमोच्युतानामच्युतक्षितम् एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा । पदार्थः-हे परमेश्वर आप ( उपयामगृहीतः ) शास्त्र प्राप्त नियमों में स्वीकार किये जाते ( अस्मि ) हैं ऐसीही ( ध्रुवः ) स्थिर ( असि ) हैं कि ( ध्रुवक्षितिः ) जिन आपमें भूमिस्थिर होंगी हैं और ( ध्रुवाणाम् ) स्थिर आकाश आदि पदार्थों में ( ध्रुवतमः ) अत्यन्तस्थिर ( अस्मि ) हैं तथा ( अच्युतानाम् ) अविनाशी जगत् का कारण और अनादि सिद्ध जीवों में ( अच्युतक्षितम् ) अतिशय करके अविनाशिपन वमाने वाले हैं ॥ अध्याय ७ मंत्र २५-हे पृथ्वी का चलना मानने वाले वेद विरोधियों अच्छे प्रकार आंख खोलकर उजाले में देखलो कि मंत्र में ( ध्रुवक्षितिः ) पद स्पष्ट विद्यमान है और तुम्हारे गुरु दयानंद ने अपने किये भाष्य के पदार्थ में उसका अर्थ पृथ्वी का स्थिर हो नाही किया है अब भी न मानो तो गुरु को झूठा बताओ और उसके वेद भाष्य को नदी में बहाओ । छंद-वेदों से मत हमारा है सिद्धपूर्ण सम्यक् । विपरीत जो कहेंगा वह नास्तिक बनेगा ॥ मास्टर जी अंत में आपका यह लेख कि पृथ्वी के सूर्य की परिक्रमा करने का विषय ज्योतिषचंद्रिका बाबू गंगाप्रसाद एम० ए०कृत में अवलोकनकर अपने मन का अंधकार दूर कीजिये महाशय हमारे हृदय में तो वेदादि सत्शास्त्रों ने सम्यक् उजालाकर रक्खा है हमने पृथ्वी का स्थिर होना लिखा था सो वेदों में दिखवा दिया आपलोगों की बुद्धि पर वेदविरुद्ध अंग्रेजों के लेखों तथा उक्त पुस्तक के देखने सेही अंधरा छाया है वह आपहीं को सुचारिक हो सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३७५ में लिखा है कि अपने माता पिता पितामहादिके मार्गको छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना इंगलिश भाषा पढ़ के पंडिताभिमानी होकर भट्टिति एकमत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का स्थिर और वृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है-धर्म से कहिये कि आपके गुरु का उक्त लेख आपपर सम्यक् च-

रितार्थ है वा नहीं संस्कृतविद्या के बिना इन्टेंस पास होने से आपके हृदयका अंधकार कदापि नष्ट न होगा अतएव कुछ संस्कृत पढ़लीजिये और हठदुराग्रह छोड़कर सत्यासत्यका निर्णय कीजिये हिन्दी बंगवासी २७मई सन् १९०१ में लिखा है कि मिस्टर डी० वार्डलास्काटने एक किताब बनाई है कि पृथ्वी नहीं घूमती अनेक अंग्रेज इस बात को मानते हैं--बड़े शोक की बात है कि अंग्रेज लोग तो वेदादि सत्शास्त्रानुसार स्वीकार करें और आप वेदप्रतिकूल का प्रचार। छंद-वेदों के प्रतिकूल जो माने वह है पूरा कच्चा। कथन किसी का सच है झूठा झूठा सच्चा सच्चा ॥

( शंभुनाथ ) कुतर्क ६ धर्म संताप में से ( वादी ) पंचविंशे श्लोक सुश्रुत के शरीर स्थान में। लिखते हैं स्वामीजी कहिये ज्ञान या अज्ञानमें॥स० प्र० पृष्ठ ४६ ( प्रतिवादी ) यह श्लोक सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ३५ में उपस्थित है प्रेस मैनों की कृपा से पता अशुद्ध छप गयाथा अब पंचम प्रति में शुद्ध कर दिया गया है इत्यादि ॥

( उत्तर ) आपके मुख से प्रथम ही अज्ञताकी दुर्गंधि आती है झूठे की बुद्धि सर्वथा नष्ट होही जाती है आप मास्टरी करते हैं और गणितविद्या में दम भरते हैं यहां तर्क ७ के स्थान में ६ अशुद्ध लिखा है क्योंकि अंक ६ प्रथम आही चुका है अंत पर्यन्त आपका यही अज्ञान है कि सर्वत्र एक की न्यूनता समान है। छंद-येही पाठशाला है और येही पाठक। तो लड़कों की बुद्धि न क्यों नष्ट होगी ॥ नहीं २ कुछ भय नहीं आपके गुरु ने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में सृष्टिके गत शेष वर्षों की गणनाकी है हम ने उस में २५९,२०००० की भूल निकाली है--स० प्र० पृष्ठ २४१ में सौ वर्ष के दिन तीन लाख साठ सहस्र अक्षरों में छपवाये हैं एकके दश गाये हैं जिस पुस्तक का नाम षोडशसंस्कारविधि है हम ने उसमें सत्रह संस्कारोंकी गणनाकी है आपका छहके उपरान्त छह लिखना कुछ बड़ी भूल नहीं है गुरुके अनुकूल नहीं है अस्तु महात्माजी हमारा आक्षेप यही है कि उक्त श्लोक को दयानंद ने सुश्रुतके शरीरस्थानका लिखा है सो वहां नहीं यह उसका अज्ञान है सो आपने स्वीकारकर लिया सब जगह प्रेसमैनों का दोष बताना यह आपका मिथ्याभाषण है सूत्रस्थान की जगह शरीर स्थान प्रेसमैनोंकी भूल से कदापि नहीं होसकता यह तो महात्मा जी ही की भूल है और उनके अज्ञान की भूल-शुद्धाशुद्ध लिखनेपर भी न सूझा चारवार सत्यार्थ प्रकाश छपा तबतक भी किसी समाजी महाशय को उस अशुद्धि का ध्यान न हुआ जब हमने

प्रकट किंवा तब पंचम प्रति में शुद्ध किया गया वस्तुतः दयानंद की अशुद्धियों को शुद्ध करनेवाले हम हैं और अज्ञानियों का अज्ञान हरनेवाले हम छंद-शत्रु ने आक्षेप को स्वीकार कर लिया । फिर क्यों न जय ध्वनि हो जगत् में मेरे लिखे ॥

( शंभुनाथ ) कुतर्क ७ धर्म संताप में से ( वादी ) पाप विन भोगे नहीं छुटता, है यह कहना अशुद्ध । हैं वचन उन के ही ग्रंथों में अनेक इस के विरुद्ध ॥ स० प्र० पृष्ठ ३२२ — ३७८ —

( प्रतिवादी ) वास्तव में कर्म का फल भोगना ही पड़ता है परमेश्वर की न्यायव्ययस्था से कोई मनुष्य पाप करके फल से वच नहीं सकता इत्यादि

( उत्तर ) ईश्वरभक्ति दान अध्ययनादि शुभ कर्मों के करने से पाप अवश्य नष्ट होते हैं यदि विना भोगे पाप न छूटें तो मुक्ति कदापि न हो क्योंकि जीव अनादि है अनादिकाल से पाप पुण्य करता चला आता है उन की समाप्ति होना असंभव है अब प्रथम पापों का नाश होना दयानंद ही के लेख से दिखाता हूँ और पाप कभी नहीं कहीं छूट सकता विना भोगे सत्यार्थ प्रकाश सन १८८४ पृष्ठ ३२२ तथा ३७८ के वेदादि सत्शास्त्र विरुद्ध लेख को उसी के लेख से विरुद्ध ठहराता हूँ—शर्मा जी को शर्माता हूँ और उन के अज्ञता रूपी पापों को मिटाता हूँ—सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ १०७ धर्मप्रधानं पुरुषं तपमा हर्ताकलिवपम् । मनु० जिसका धर्म के अनुष्ठान से कर्त्तव्य पाप दूर होगया इति यहां कर्त्तव्य पाप लिखना दयानंद की अज्ञता का कारण है परंतु पाप दूर होना स्पष्ट है पृष्ठ १३० । प्राणायामैर्दहेदोषान् धारणाभिश्च किल्विषम् । मनु० अ० ६ पृष्ठ १३१ प्राणायामों से अत्मा अन्तःकरण और इन्द्रियों के दोष धारणाओं से पाप-को भस्मीभूत करें—संस्कारविधि मुद्रित संवत् १९३३ पृष्ठ १३५ प्राणायामैर्दहेदोषान् धारणाभिश्च किल्विषम् । यहां सत्यार्थ प्र० के विरुद्ध असत्यार्थ किया है परंतु मूल में किल्विषम् पद स्पष्ट है ।

पृष्ठ १३६ प्रियेषु स्वेषु सुकृतमप्रियेषु च दुस्कृतं । विसृज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माभ्येति सनातनम् ॥ पृष्ठ १३७ प्रिय जे धर्मात्मा सेवक तथा अप्रिय जे दुष्टात्माविरोधी उन में पुण्य और पाप को छोड़ के ध्यान योग से सनातन जो ब्रह्म उस को प्राप्त होता है यहां पाप पुण्य दोनों का छूटना स्पष्ट है और एक का कर्म दूसरों को मिलना प्रकट आर्याभिविनय मुद्रित संवत् १९३२ पृष्ठ ५ हे अधमोद्धारक पतित पावन । पृष्ठ २५ अपनः शोशुचदधम् आपकी

इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट होजाय। पृष्ठ ३७ हे महाराजाधिराज । मनसा वाचा, कर्मणा, अज्ञानेन, प्रमादेन वा, यद्यत्पापं कृतं मया, तत्तत्सर्वं कृपया क्षमस्व—मनेसे वाणीसे और कर्म से अज्ञान वा प्रमादमे जो जो पाप किया होय किंवा करने का होय उस उस पाप मेरा क्षमाकर उक्त सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ५४४ में लिखा है कि पाप क्षमा करने की बात जिस पुस्तक में हो वह किसी विद्वान का बनाया नहीं—कहो नाथ जी कुछ समझे अस्तु आर्याभिचिनय पृष्ठ ५० तथा आप अप्यारि और वम्भारि हो स्वभक्तों के अग्र ( पाप ) उस के अरि ( शत्रु ) हो अर्थात् सर्वपाप नाशक हो पृष्ठ ५१ शुन्ध्युगसिमाज्जालीयः शुद्ध स्वरूप और सब जगत् के शोधक तथा पापों का मार्जन ( निवारण ) करनेवाले आपही हो पृष्ठ ५२ देवकृतस्यैनमोऽवयजनमसि मनुष्य कृतस्यैनमोऽवयजनमसि । पितृकृतस्यैनमोऽवयजनमसि । आत्मकृतस्यैनमोऽवयजनमसि । एनस एनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार्यच्चा विद्वांस्तस्य सर्वस्यैनमोऽवयजनमसि । यजुः ८ । १३ व्याख्यान हे सर्व पाप प्रणाशक देवकृत इन्द्रिय विद्वान् किंवा दिव्यगुणयुक्तजन कृत पापों के नाशक आप एकही हो अन्य कोई नहीं एवं मनुष्य ( मध्यस्थजन ) पितृ० ( परमाविद्या युक्त जन, आत्मकृत० जीव के पापों का ) एनस० पापों से भी बड़े पापों का आपही अवयजन हो अर्थात् सर्वपाप रहित हो और हम सब मनुष्यों के भी पापदूर करनेवाले एक आपही दयामय पिता हो, हे महानन्तविद्य जो जो मैंने विद्वान् वा अविद्वान् हो के पाप किया होय उस सब पापों का छुड़ानेवाला आप के बिना कोई भी इस संसार में हमारा शरण नहीं है—

यद्यपि उक्त श्रुति के अर्थ में वाचाजी ने बहुत कुछ बनावट की है परंतु पापों का नाश होना प्रकट ही है समझनेवालों को इस एकही श्रुति से सम्यक् निर्णय हो सकता है कि परमात्मा धर्मशील स्वभक्तों के संपूर्ण पापों का अवश्य सर्वथा नाश करता है पक्षपानी और हठी दुराग्रही लाख बचनो से भी अपना हठ न छोड़ेंगे—

कुर्येदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ११३ धर्म से ही मनुष्य लोग पापों को छुड़ाते हैं—

यजुर्वेद भाष्य पृष्ठ २५१ जो २ ( एनः ) पाप वा अधर्म करा वा करेंगे सो सब दूर करते रहें पृष्ठ २५६ मन आदि इन्द्रियों से किया वा मरण धर्म वाले शरीरों से किया हुए ( एनः ) पापों को दूर कर शुद्ध होता है पृष्ठ १८३ छट गेये हैं पाप जित के पृष्ठ ६९१ पाप के दूर



करनेवाले हो पृष्ठ १४७८ अच्छे प्रकार पापों की निवृत्ति करनेद्वारा कर्म-अ-  
ध्याय २२ पृष्ठ १८७ जिस से पापरहित कृतकृत्य होकर अध्याय २४ पृष्ठ १०६५  
पापों को शुद्ध किया करो अध्याय ३५ पृष्ठ १०९२ हमारे पापों को शीघ्र  
सुखादेवे अध्याय ३५ पृष्ठ १११५ हमारे ( अघम् ) पापको शीघ्र दूरकरे  
अध्याय ३६ पृष्ठ ११४४ हे भगवन् ईश्वर पापहरनेवाले अध्याय ३९ पृष्ठ  
१२५७ पाप निवृत्ति के लिये-दयानन्द संकलित संध्योपासन ओ पञ्चयज्ञ  
मुद्रित बनारस लाइट प्रेसालय संवत् १९३१ पृष्ठ २ अथेश्वरस्यजगदुत्पादन-  
द्वागस्तुत्याघमर्षणमंत्रोर्थान्पापदूरीकरणार्थः पृष्ठ ३ अनेनाघमर्षणं कुर्यात् पृष्ठ ५  
ओम् सूर्यश्चमामन्युश्चमन्युपतयश्चमन्युकृतेभ्यः पापेभ्योरक्षन्ताम् । यद्रात्र्यापापम-  
कार्षम्मनसावाचा हस्ताभ्याम्पद्भ्यामुदरेणशिश्रा । रात्रिस्तद्वलुम्पतुयन्किचि-  
द्वुरितेमयिइदमहम्पामृतयोर्नोसूर्येज्योतिषिजुहोमिस्वाहा ॥ हे जगदीश्वर !  
हे सर्वान्तर्यामिन् अज्ञानादि प्रमादाद्यत्पापयेनयेनाङ्गेनकृतं मयातत्तत्सर्ववि-  
ज्ञानादिदानेनकृपयाक्षमस्व-यहाँ तक दयानन्द लिखित वेदादि सत्शास्त्रानु-  
सार ईश्वर भक्ति धर्म कर्म से पापों का नष्ट होना सम्यक् सिद्ध कियागया  
और पाप बिना भोगे कभी नहीं छूटता ऐसे मिथ्यावादियों को पूर्ण मातदि-  
यागया । छन्द-मैने लिखा जो लेख से उसके दिखादिया । अब भी न माने  
जो उसे कहिये तो क्या कहूं ॥ फिर भी वेदादि सत्शास्त्रों के कुछ वचन  
लिपी करताहूं और अज्ञानियों का अज्ञान मूल सहित हरता हूं-सहस्तकृत्व  
स्त्वभ्यस्य वहिरेतत्रिकं द्विजः । महतोप्येनसोमासाच्चचेवाहिर्विमुच्यते ? इस  
त्रिक् अर्थात् प्रणवब्याहृति और गायत्रिरूप का सहस्रवार ग्राम से बाहर एक  
मास मात्र अभ्यास करके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वड़े पाप से छूटजाता है जैसे  
साँप अपनी केंचुली से ? मनु अध्याय २-कृत्वापापंहिंसनप्यतस्मात्पापात्प्र-  
मुच्यते । नैवंकुर्यात्पुनरितिनिवृत्त्यापूयतेतुसः ॥ १ ॥ यथाश्वमेधः कृतुराट् सर्व-  
पापापनोदनः । तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम् ॥ २ ॥ ऋक्मंहितात्रि-  
रभ्यस्ययजुषाम्वासमाहितः । साम्नाम्वासरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥  
यथामहाहृदम्प्राण्यक्षिप्रं लोष्टं निशयति । तथादुश्चारितं सर्वं वेदेतिवृत्तिमज्जति ॥  
अर्थात् पाप करके संतापकरे तो उस पापसे छूटता है मैं फिर ऐसा न करूंगा  
ऐसी निवृत्ति करके वह पापी पवित्र होता है ॥ १ ॥ जिस प्रकार से सब य-  
ज्ञों का राजा अश्वमेध यज्ञ सब पाप को दूरकरता है इसी प्रकार से अघमर्ष-  
ण सूक्त का जप सब पाप को दूरकरता है ॥ २ ॥ निश्चित होकर ऋग्वेद,  
यजुर्वेद, सामवेद की संहिता में से कोई एक मंहिता को अर्थ सहित तीनवार

अभ्यास करके सब पाप से छूटता है ॥ ३ ॥ जिस प्रकार से अगाध जल में मट्टी का ढेला शीघ्र नष्ट होता है इसी प्रकार तीनों वेदों के पाठसे सम्पूर्ण पाप नाश होता है ॥ ४ ॥ मनु अध्याय ११ भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ १ ॥ यदा पश्यः पश्येत्स्वमवर्णं कर्त्तारं भीमं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान् पुण्यपापे विभूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ॥ २ ॥ तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रंथिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥ ३ ॥ मुण्डके—एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः ॥ ४ ॥ न जरा न मृत्युर्न शोको न सुकृतं न दुष्कृतं सर्वपाप्मानोऽतो निर्वर्त्तन्ते ॥ ५ ॥ छांदोग्ये—अपहतपाप्माऽभयरूपं ॥ ६ ॥ बृहदारण्यके—शात्वादेवं मुच्यते सर्वपापैः ॥ ७ ॥ शात्वादेवं सर्वपाशापहानि ॥ ८ ॥ श्वेताश्वतरे अर्थात् उस परमात्मा के पूर्ण ज्ञान होने पर ज्ञानी के हृदय की गाँठ खुल जाती है सारे संशय निवृत्त हो जाते हैं और पाप पुण्यरूप सारे कर्म नष्ट होते हैं ॥ १ ॥ जब ज्ञानी जीव प्रकाश स्वरूप जगत्कर्त्ता वेद के कारण ईश्वर को देखता है तब पुण्य पाप को छोड़ कर निरंजन होता हुआ ईश्वर की परम समता को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ शोक और पापरूपी नदी को तरकर हृदय की गाँठों से विमुक्त होकर अमृत होता है ॥ ३ ॥ यह मुक्त जीव पाप शून्य होता हुआ जरा और मृत्यु और शोक तथा च खाने और पीने की इच्छा से रहित होता है और सत्यकाम और सत्यसंकल्पवाला होता है ॥ ४ ॥ मुक्त जीव जरा और मृत्यु और शोक और सुकृत और दुष्कृत रहित होता है और उसके सारे पाप नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥ मुक्त जीव पाप शून्य और भय रहित होता है ॥ ६ ॥ ज्ञानी जीव परमात्मा को जानकर पाप पुण्यरूप सारे बंधनों से छूटता है ॥ ७ ॥ परमात्मा को जानकर ज्ञानी के पुण्य पापरूप सारे बंधनों का नाश होता है ॥ ८ ॥ श्री वेद व्यास मुनिने भी उत्तर मीमांसा के चतुर्थाध्याय के प्रथम पाद में मुक्त जीव के शुभाशुकर्मों का नाश कहा है तथाहि तदाधिगम उत्तरपूर्वाधयोर इत्योषा विनाशौ तद्व्यपदेशात् ॥ १ ॥ इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पातेतु ॥ १ ॥ अर्थात् परमात्मा के ज्ञान की प्राप्ति होने के अनन्तर ज्ञानी के पहिले पापों का नाश होता है और पिछले पाप उसको स्पर्श नहीं करते श्रुतियों में ऐसा प्रतिपादन होने से ॥ १ ॥ इसी प्रकार पहिले पुण्य का नाश होता है और पिछले पुण्य उसको स्पर्श नहीं करते ॥ २ ॥ वेद के मंत्रभाग से भी पापों का नाश होना स्पष्ट प्रकट है यथाहि यद्गामेयदरण्ये यत्सभायां यदिद्रिये । यदेनश्च कृमावयमिदन्तदवयवामहे स्वाहा ॥ यजुः अ० ३ मं० ४२ उदमापः प्रवहतावयं चमलं

चयत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतंयश्चशेषेऽअभीरुणम् । आपोमातस्मादेनसः पवमानश्च मुंचतु ॥ अ० ६ मं० १७-यद्देवादेवहेडनं देवासश्च कृमावयम् । अग्निर्मातस्मादेनसो विश्वान्मुंचत्वंहसः ॥ यदिदिवा यदिनक्तमेनांसि च कृमावयम् । वायुर्मातस्मादेनसो विश्वान्मुंचत्वंहसः ॥ यदिजाग्रद्यदि स्वप्नऽएनांसि च कृमावयम् । सूर्योमातस्मादेनसो विश्वान्मुंचत्वंहसः । यद्भ्रामेयदरण्येयत् सभायां यदिद्विषे । यच्छ्रेयदर्ये यदेनश्च कृमावयं यदेकस्याऽधिधर्मेणि तस्यावयजनमसि ॥ द्रुपदादिवमुचानः स्विन्नः स्नातोमलादिव । पूतंपवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तुर्मनसः ॥ अ० २० मं० १४ । १५ । १६ । १७ । २० । प्रजापतौत्वादिवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ । अपनः शोशुचदघम् ॥ अ० ३५ मं० ६ । अपाघमपक्लिपमपकृत्यामपोरपः । अपामार्गस्त्वमस्पदपदुःष्वम्रथः ५ सुवः ॥ अ० ३५ मं० ११ इत्यादि चारों वेदों में अनेक मंत्र पापनाशक विद्यमान हैं जो कि विद्वानों को स्वीकार और कल्याण के स्थान हैं सत्यको सत्य और असत्य को असत्य जानये हमारा कहना न मानो तो आपके गुरुही ने पापोंका नाश प्रत्यक्ष लिखा है उसीको मानये । छन्द-कहना मेरा न मान गुरुही का अपने मान । पापोंका नाश वेदसे उसने प्रकट लिखा ॥ पापों का नाश भोगे बिना है नहीं कहीं । सच्चा है तो तू वेद में येही मुझै दिखा ॥ विनती यही है तुझसे कि जो चाहै सो तू कर । अज्ञों को धर्म वेदके विपरीत मत सिखा ॥

( शंभुनाथ ) कुतर्क < दयानंदमनसूची में से ( वादी ) वेदों की उत्पत्ति लिखी अच्छा नित्यत्व दृढाया । ऋ० भा० भू० पृ० ९ । ( प्रतिवादी ) भूमिका में कहीं नहीं लिखा कि वेद अनित्य हैं-वरन यह स्पष्ट लिखा है कि सृष्टि की आदि में ईश्वर वेदोंको प्रकट करता है इत्यादि-

( उत्तर ) जितनी झूठी बातें बनाओगे उतने ही नये गुल खिलाओगे-झूटे का पक्ष करके झूटे ही कहाओगे और गुरु जी की अज्ञतापर जगत् को हंसाओगे । छंद-तुम्हारे झूट लेखों से अवश्य इतना तो लाभ होगा । कि सत्यासत्य खुलजायगा सम्यक् बुद्धिमानों पर ॥ नाथ जी आप के गुरु ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका मुद्रित संवत् १९३४ के पृष्ठ ६ में वेदों का नित्यत्व सिद्ध करने से पूर्व ( अथ वेदोत्पत्ति विषयः ) यह लेख किया है माने अपनी अज्ञता का प्रकट विज्ञापन दिया है वेदों को नित्य मानते हैं और उन को उत्पत्तिवाला जानते हैं यही वदता व्यापात है और अज्ञता की बात है यह भी ध्यान रहे कि उसने एकही जगह वेदों की उत्पत्ति नहीं लिखी है किं० प्रायः ईश्वर ने वेदोंको उत्पन्न किया वेदोंको रचा वेदोंको बनाया ऐसी मिथ्या

कपोलरूपना की है संक्षेप से उसका षड लेख दिखाना है और कलियुगा-  
चार्य की बुद्धिपर बुद्धिमानों को हँसाता है अज्ञों को कुमार्ग से बचाता है  
और सन्मार्ग पर लाता है ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका पृष्ठ ४ जे आपके बनाये  
वेद हैं-पृ० ८ आपके बनाये वेदों के-पृ० १० वेदों की उत्पत्ति का विषय-  
वेद किसने उत्पन्न किये हैं-ए चारों वेद उत्पन्न हुए हैं-ईश्वर से ही वेद उ-  
त्पन्न हुए हैं-पृ० ११ उसीसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ए चारों उ-  
त्पन्न हुए हैं-चारों वेद जिससे उत्पन्न हुए हैं-उसीको तुम वेदोंका कर्त्ता जानो  
जो वेदों के कर्त्ता सर्वशक्तिमान परमेश्वर को छोड़के उससे ही ऋग्यजुः साम  
और अथर्व ए चारों वेद उत्पन्न हुए हैं ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके-पृ० १२  
जब ईश्वर ने प्रथम वेद रचे हैं उन को पढ़ने के पश्चात् ग्रंथ रचने का सामर्थ्य  
किसी मनुष्य को होसकता है-पृ० १३ वेदों को ईश्वर के रचित मानने सेही  
कल्याण है-पृ० १४ ईश्वर ने वेदों की उत्पत्ति की है-पृ० १५ जो वेदोत्पत्ति  
का प्रयोजन है सो आपमुने-पृ० १६ वेद ईश्वरकेही बनाये हैं(ईश्वर) ने वेदों को  
भी सब साधनों के बिना रचा है-पृ० २३-१९६०८५२९७६ वर्ष वेदों की  
और जगत् की उत्पत्ति में होगये हैं-पृ० २४ यही व्यवस्था सृष्टि और वेदों  
की उत्पत्तिके वर्षों की ठीक है-पृ० २७ वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं-पृ० ३४  
उसी के रचे वेदों का-पृ० ३५ उनका बनाने वाला परब्रह्म है-उनको  
बिनाय परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं बना सकता परमेश्वर के बनाये  
वेदों के पढ़ने-पृ० ४० इसका समाधान वेदोत्पत्तिके प्रकरण में पृ० २७३  
वेद ईश्वर के रचे हुए हैं पृष्ठ ३३८ वेद का परमेश्वररचित होना पृ० ३३९  
ईश्वर कृत सत्य पुस्तक वेदही है आर्याभिविनय मुद्रित संवत् १९३२ का  
पृष्ठ ११ विद्या युक्त वेदों को भी बनाया है-दयानंदकृत यजुर्वेद भाष्य पृष्ठ  
७४७ वेद और संसारके पदार्थ जिससे उत्पन्न हुए हैं-इत्यादि नाथजी वेदों  
की उत्पत्ति लिखी अच्छा नित्यत्व दृष्टाया । हमारा यही आक्षेप है कि वेदों  
को नित्य जानते हैं और उन को उत्पन्न हुआ रचा हुआ तथा बनाया हुआ मानते  
हैं-सो आपके गुरु के लेखसे दिखा दिया और उसकी अज्ञताका नया गुल  
खिला दिया । छंद-अनादिओ सादिको भी जो न जाने । अवश्य ऐसी  
बुद्धि पै रोना उचित है ॥ यदि आप उत्पन्न हुए रचे हुए बनाये हुए पदार्थों  
को भी नित्य जानते हैं और नित्य अनित्य में कुछ भेद नहीं मानते तो ईश्वर  
जीवप्रकृति को नित्य और पृथ्वी सूर्यादि को अनित्य क्यों मानतेहो सबको स-  
मानही क्यों नहीं जानते हे मित्र ! जो उत्पन्न हुआ है जिसको रचा हुआ लिखा

है जिसको बनाया हुआ माना है वह कदापि नित्य नहीं होसकता—यद्यत् ज-  
न्यतस्तद नित्यं कृत्कत्वात् घटादिवत् अर्थात् जो २ उत्पत्ति वाला है वह २  
अनित्य है कृत्कत्व होनेसे घटादिक की सदृश यह विद्वानों का न्याय है—  
जीव नित्य है श्रीवेदव्यास महर्षि ने वेदान्त शास्त्रके दूसरे अध्याय के दूसरे  
पादमें जीवोत्पत्तिमूचक लेखके खण्डन में ( उत्पत्त्यसंभवात् ) यह सूत्र ब-  
नाया है और नित्य पदार्थ की उत्पत्ति कहनेवाले को शास्त्र विरोधी ठहराया  
है आपके गुरुने भी वेदों तथा नित्य पदार्थ की उत्पत्ति का निषेध किया है  
उक्त वेदभाष्यभूमिका पृष्ठ १५ वेदतो ईश्वर की नित्य विद्या है उसकी उत्पत्ति  
वा अनुत्पत्ति होहीनहीं सकती—पृष्ठ ४० नित्य किसको कहना जो उत्पत्ति और  
विनाश से पृथक् है देखिये आपही यह लिखना कि वेद ईश्वरकी नित्य विद्या  
है उसकी उत्पत्ति होही नहीं सकती—और नित्य उसको कहते हैं जो उत्पत्ति  
और विनाश से पृथक् है फिर आपही वेदोंको उत्पन्न हुआ रचाहुआ तथा  
बनाया हुआ मानना महदङ्गता नहीं तो क्या है धन्य फिर आपका यह लेख  
कि भूमिका पृष्ठ २७ से ४१ तक वेदोंके नित्यत्वपर विचार कियागया है  
जहां प्रबल्युक्ति व प्रमाण से वेदोंको नित्य सिद्धकिया है इति महाराज आप  
तो युक्ति और प्रमाण को जानतेही नहीं जिस किसीने हमारे आक्षेपों के उ-  
त्तर में अयुक्त लेख करके आपके नामसे छपवाया है उसकी भी ऐसी मोटी  
समझ है किजो लेख हमारे खण्डन में किया है वह हमारी पुष्टि करता है  
अस्तु आपके गुरुही की समझ ठीकहोती तो वेदों को नित्य मानकर उनको  
उत्पन्नहुआ रचाहुआ तथा बनाया हुआ क्यों लिखता—बारंबार वेदों  
की उत्पत्ति लिखना और फिर उनको नित्य सिद्ध करना महा मूर्खता का  
काम है यहां सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ ३३२ का न्याय स्मरणीय है कि इनदोनों  
में से एकवात सच्ची दूसरी झूटी ऐसा होकर दोनों बात झूटी। ध्यान रहे कि  
भूमिका में वेदोंके नित्य होनेके निमित्त जो वचन लिखेहैं आपके गुरुने उन  
के अर्थ में स्वकपोल कल्पना की है और जिनको आप प्रबल युक्ति समझे  
हो वे सर्वथा निर्वल हैं श्रीमान् मुंशी इन्द्रमणीजी ने आर्यत्व प्रकाश के दूसरे  
भाग में उनका सम्यक् खण्डन किया है—फिर आपका यह लेख किरहा उ-  
त्पत्ति शब्द से वेदोंका उत्पन्न होनातो—तस्मात् यस्मात् इत्यादि वेद मंत्र से  
ही प्रकट है परन्तु उत्पत्ति के अर्थ आविर्भाव के हैं इति हम पहले कहचुके हैं  
कि आपतो युक्ति और प्रमाण को जानतेही नहीं ज़रा आँखें खोलकर देखो  
कि जैसे आपके गुरुने ‘ अथवेदोत्पत्तिविषयः ’ इसवाक्य में वेदोंके लिखे-उ-

उत्पत्ति शब्द लिखा है और जिसपर हमने आपेक्ष किया है वैसे उक्त श्रुति में उत्पत्तिशब्द कहाँ है इसश्रुति में तो क्या यदि आप किसी श्रुति में भी वेदों के लिये उत्पत्ति शब्द दिखावे तो हम आप को मनमाना भोजन जिमावे और जगह से दक्षिणा के दोपैसे ही मिलते हैं हम दो मुद्रा झुकावे फिर आपका यह लेख कि ( परन्तु उत्पत्ति के अर्थ आविर्भाव के हैं ) आधा झूठा है और आधा सच्चा अर्थात् उत्पत्ति शब्द आपका कपोल कल्पित है कि श्रुति में कहीं भी नहीं उक्त श्रुति में दो क्रियापद हैं एक जज्ञिरे दूसरा अजायत दोनों जनिप्रादुर्भावे धातु से बने हैं और प्रादुर्भाव कहते हैं प्रकट होने को और प्रकट वही पदार्थ होता है जो प्रथम से विद्यमान है निदान सृष्टि की आदि में परमात्मा श्रीब्रह्माजी के हृदय में नित्य वेदों का प्रादुर्भाव करता है वेदों का उत्पन्न करना सर्वथा अशुद्ध है कि श्रुति के विरुद्ध है सो आपको स्वीकार है कि अंत में वेदों का प्रादुर्भावहोना आपने मानलिया हमारा भी यही सुविचार है । छन्द-कर-लिया तूने सत्यको स्वीकार । झूट झूटे गुरुका जानलिया ॥ ईश्वर ने प्रकट किये हैं वेद । न कि उत्पन्न ठीक मानलिया ॥ आपकी बुद्धिपर फिर अज्ञान छाया और अज्ञता पिशाची ने सर्वथा अप्रसंग आपसे यह लिखवाया कि भूमिका में तो यह दोष आही नहीं सक्ता क्योंकि उस में तो पृ० ४० में वही अर्थ लियेगये हैं वहाँ का लेख यह है 'उत्पत्ति क्या कहाती है कि जो अनेकद्रव्यों के संयोग विशेष से स्थूल पदार्थ का उत्पन्न होना और जब वे पृथक् २ होके उनद्रव्यों के वियोग से जो कारण में उनकी परमाणुरूप अवस्था होती है उसको नाश कहते हैं इति हम प्रथम कहचुके हैं कि आप युक्ति और प्रमाण को जानतेही नहीं भूमिका में यह उत्पत्ति और नाशकाल-क्षण नित्य पदार्थों के विषय में नहीं है किंतु अनित्य पदार्थों के विषय में है वहाँ उत्पत्ति क्या कहाती है इस से प्रथम यह लिखा है कि नित्य किमको कहना जो उत्पत्ति और विनाश से पृथक् है—और अन्त में यह लेख है कि जो द्रव्य संयोग और वियोगसे उत्पन्न और नष्ट होता है उसी को कार्य और अनित्य कहते हैं और जो संयोग वियोग से अलग है उसकी न कभी उत्पत्ति और न कभी नाश होता है । आपकी आँखों में ऐसी भूलिपट्टी कि गुरुका यह लेख दृष्टि ही में न आया अथवा जानपूछकर लुपाया क्या वेद अनेक द्रव्यों के संयोग विशेष से उत्पन्न होते हैं और पुनः उन द्रव्यों के वियोग से उनकी परमाणुरूप अवस्था होती है बाहरी बुद्धि यदि ऐसा है

तो वेदनित्य कहाँ रहे किन्तु अनित्य ही ठहरे । प्रश्नोत्तरी में जो उत्पत्ति और नाश का लक्षण लिखा है वह भी अनित्य पदार्थों ही के विषय में है नित्य पदार्थों की उत्पत्ति वा नाश कहना तो सर्वथा असंगत है वेदों के प्रकट होने को उत्पत्ति कहना सर्वथा सदोष और मूर्खता का काम है और आप के गुरुकी श्रम बुद्धि का परिणाम—उत्पत्ति शब्द नित्य शब्द के विरुद्ध है अतः नित्य पदार्थ की उत्पत्ति कहना सर्वथा अशुद्ध है दयानन्द पर हमारा आक्षेप पूर्ण है और आपके गण्यकुठार का चूर्ण २ । छंद—असत् को आप सत् समझे अजी सत्को मृषासमझे । पढ़ें पत्थर समझपर आप की समझे तो क्या समझे ॥

( सम्भु नाथ ) कुतर्क ९ धर्मसंताप में से ( वादी ) होम का फल वायु-बुद्धि स्वामी ने तैरे लिखा । सत्य है उसका कथन तो मंत्र पढ़ना है वृथा ॥ सोच तो बलिवेश्व का उट्टा उड़ाया उसने क्या । लोपसत्कर्मों का बस करना उससे स्वीकारथा ॥ द्वितीय स० ५० पृष्ठ ४२ प्रथम स० ५० पृष्ठ ४९ ( प्रतिवादी ) स्वामी जी महाराज ने यह नहीं लिखा कि हवन के फल केवल वृष्टि व अनादि की वृद्धि व जल वायु की शुद्धि ही है इत्यादि ।

( उचर ) ब्राह्मणादि सद्ग्रंथों में स्वर्ग प्राप्ति पापों का नाश आयु वृद्धि पशु धन यज्ञ ब्रह्म वर्चस बल तेज वृद्धि बंधन से छूटना और अनेक विपत्तियों का नाश इत्यादि होम के फललिखे हैं आह्निक सूत्रावलि मुद्रित निर्णय सागर यंत्रालय मुंबई शकाब्द १८११ के पृष्ठ ७३ । ७४ । ७५ में देखलीजिये मनु में लिखा है स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैर्विद्येनेज्यया सुतैः । महायज्ञैश्चयज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियतेतनुः ॥ अर्थात् वेदका पढ़ना व्रतहोम त्रैविद्य नामका व्रतदेव ऋषि पितरों का तर्पण पुत्रकी उत्पत्ति महायज्ञ यज्ञ इनसब कर्मोंसे यहशरीर मोक्ष प्राप्तिके योग्य होता है ॥ अध्याय २ श्लोक २८ पंचसूनायुहस्थस्य जुष्टी पेथयुषस्करः कण्ठनीचोदकुम्भश्च वध्यतेयास्तुबाहयन् ॥ ६८ ॥ तासांक्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः । पंचक्लृप्तामहायज्ञाः प्रत्यहंगृहमधिनाम् ॥ ६९ ॥ अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् । होमोदैवोबलिर्भोतोनृत्यञ्चोऽतिथि पूजनम् ॥ ७० ॥ पंचैतान् योमहायज्ञाश्चहापयति शक्तितः सगृहेपिवसन्निधं सूनादर्धैर्नैर्लिप्यते ॥ ७१ ॥ स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान्यथाविधिः पितॄन् आदैर्बभूवुर्नैर्भूतानिबलिकर्मणा ॥ ८१ ॥ वैश्वदेवस्यसिद्धस्य गृहेश्वौविधिपूर्वकम् । आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्त्रहम् ॥ ८४ ॥ एवंसभ्यग्यविद्वत्सर्वदिक्षुषदक्षिणम् । इन्द्रान्तकाप्यतीन्द्रुभ्यः सानुगेभ्यो बलि-

हरेत् ॥ ८७ ॥ अर्थात् गृहस्थ को चूल्हा घड़ी बुहारी ओखली मू-  
 राल जलका घड़ा ये पांच सूना ( अर्थात् वध का स्थान ) हैं इन सबसे ज-  
 न्तुओं का नाश होता है ॥ ६८ ॥ इन पांच सूना के प्रायाश्चित्त के लिये गृहस्थ  
 हो। पांच महायज्ञ को नित्य ही करें ॥ ६९ ॥ वेद का पढ़ना देव ऋषि पितरों  
 का तर्पण करना होम करना बलि देना आतिथि का पूजन करना इन सब को  
 क्रम से ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञ देवयज्ञ भूतयज्ञ मनुष्ययज्ञ कहते हैं ॥ ७० ॥ शक्ति  
 पूर्वक जो इन पांच महायज्ञों को त्याग नहीं करता सो गृह में बास करते  
 भी सूना दोष से लिप्त नहीं होता ॥ ७१ ॥ वेद पढ़ना होम करना श्राद्ध  
 करना अन्न देना बलिकर्म करना इन सब से ऋषि देवता पितर मनु-  
 ष्य भूत इन सबका विधिमहित क्रम से पूजन करना ॥ ८१ ॥ सं-  
 स्कारसहित अवमध्य नाम की अग्नि की जो आगे देवता कहेंगे उनको दिन २  
 में विधिसहित आहुति देवे ॥ ८४ ॥ अच्छे प्रकार से होम करके सब दिशाओं  
 में प्रदक्षिण क्रमसे इन्द्र, वरुण, यम, चन्द्र, इन सबको और इन के सेवकों को  
 बलि देवे ॥ ८७ ॥ मनुः अध्याय ३ इत्यादि शास्त्रकारों ने जो कुछ होमके हेतु  
 और फल लिखे हैं दयानन्दजीने उनको कहीं भी नहीं लिखा लिखते तो उन  
 के कपोलकल्पित शास्त्रविरुद्ध झूट मतका सर्वथा नाश ही न होजाता स्वर्गलोक  
 पापोंका नाश और मनुष्यों से पृथक् देवताओं का होना इत्यादि सम्यक्-  
 सिद्ध न होजाता वस्तुतः होम के मुख्यफल वही हैं जो कि हमने संक्षेपमें लिखे  
 हैं और सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४ के पृष्ठ ४२ में जो होमका फल यह  
 लिखा है और जिसे दयानन्द ने मुख्यफल माना है कि—दुर्मेधयुक्त वायु और  
 जल से रोग रोग से प्राणियोंको दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आ-  
 रोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है इति यह होमका गौण  
 अर्थात् अवान्तर फल है जोकि कर्त्ता की इच्छाके बिना अग्निसे धूमकी स-  
 मान आपसे आप होता है भूमिका के पृष्ठ ५५ में प्रश्न है कि जो यज्ञ से वायु  
 और वृष्टि जल की शुद्धि करना मात्र ही प्रयोजन है तो इसकी सिद्धि अक्षर  
 और पुष्पादिके घरों में रखने से भी होसकती है फिर इतना बड़ा परिश्रम यज्ञ  
 में क्योंकरना—उ० यह कार्य अन्य किसीप्रकार से सिद्ध नहीं होसकता इत्यादि  
 यहां से स्पष्टमिद्ध है कि दयानन्द यज्ञमें वायु और वृष्टिजलकी शुद्धिकारनामात्र ही  
 मुख्य प्रयोजन समझता था क्योंकि—उत्तर में उसकी पृष्टि के अतिरिक्त और  
 किसीविशेषफलका वर्णन नहीं किया पृष्ठ ५७में केवल इतना लेख है कि इनसे  
 अन्यभी होम करने के बहुत से उत्तमफल हैं परन्तु किसी फलका वर्णन नहीं



निदान दयानन्द के मतमें होम और यज्ञ से वायु और वृष्टिजलकी शुद्धिकरना मात्र ही मुख्य प्रयोजन है जो कि होमका अतिगौण फल है फिर आपने शतपथ के नाम से जो लिखा है कि—हवन के द्रव्य जो अग्नि में डालेजाते हैं इत्यादि आपकी अज्ञाना और छल कपट है यह लेख भूमिका पृष्ठ ४९ का है इस का मूल पृष्ठ ४८ में यह है—अग्नेर्वैधृषो जायते धूमादभ्रमभ्रावृष्टिमेवा एताजायन्ते तस्मादाहवतपोजा इति आपके गुरु ने शतपथका वचन लिखकर मनमाना अर्थ लिखा है श्रुति में होमका कुछ भी वर्णन नहीं भूमिका के पृष्ठ ४९ में एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः यह श्रुति लिखकर भी अर्थ में होम से वायु जल और ओषधि आदि शुद्ध होते हैं सर्वथा अप्रसंग लिखमारा है फिर आपका ऐत्तरेय ब्राह्मणके नाम से यह लेख कि यज्ञ मनुष्यों के समूह के सुख के लिये होता है यह भी भूमिका पृष्ठ ४८ में सर्वथा अप्रसंग है इसमें यह कहीं नहीं कि होमसे वायु जल की शुद्धि होती है यदि और कहीं ऐसा लेख हो भी तो वह होमका एकनुच्छ फल है हमयही कहते हैं कि होमका जो मुख्यफल है दयानन्दने वह मानाही नहीं और धर्म के तत्त्व को जाना नहीं फिर आपने जो मनुका यह वचन लिखा है कि—अग्नी मासाहुति सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायतेवृष्टि वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ अर्थात् अग्नि में डालाहुई आहुति सूर्य के समीप जाती है सूर्य से वर्षा होती है वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है और अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है इति इस में सत्यार्थप्रकाश वा भूमिकाके लेखानुसार होमसे जल वायु का सुगन्धित होना वा शुद्ध होना तो कहीं नहीं है और जो कुछ लेख है सो ठीकही है परन्तु ब्राह्मणानुसार विधिपूर्वक होम करनेका यह फल है उक्त श्लोकही में सम्यक् पद विद्यमान है श्राद्धविधिको न मानकर स्वकपोल कल्पना युक्त होम करने से यह फल कदापि नहीं सूर्य पृथ्वी से ९३०००००० मील दूर है तो आपके मतानुसार अग्नि में डालीहुई आहुति सूर्य के समीप कैसे पहुँचसकती है जहाँ होम होता है उससे आधमील भी उसकी गंध नहीं पहुँचती तो वह जल और वायु को कैसे शुद्ध और सुगन्धित कर सकती है इस के अतिरिक्त पूर्व सत्यार्थ प्रकाशके पृष्ठ ४९ में वेद के नाम से घाँसादि पदार्थों से होम करना लिखा है पृष्ठ ३०३ में यज्ञ में वृषभादि नर पशुओं और बध्यागाय का मारना लिखा है पृष्ठ १९९ में है कि पशुओं के मारने में थोड़ा सा दुःख होता है परन्तु यज्ञ में चराचर का अत्यन्त उपकार होता है यजुर्वेदभाष्य अध्याय १९ मंत्र २० के भावार्थ में है कि जो इस मंत्र में बहुत पशुशाला होम करके

हुतशेषका भोक्ता मनुष्य होने सो मंत्रसाको प्राप्त होता है इत्यादि यदि क्या-  
 नदी लोम गुरुकी आज्ञानुसार होम और यज्ञ करेंगे तो जल वायु सुगंधित होके  
 रोगोंको नष्ट करेंगे वा दुर्गंधयुक्त होके रोगों की वृद्धि—हां होमदेव यज्ञहै जो छोम  
 देवताओंके उद्देश्य से शास्त्र विधिके अनुसार यथावत् होमकरके परमात्माके अर्पण  
 करेंगे उस अग्नि में डाली हुई आहुतिको परमात्मा सूर्य के समीप क्या उससे भी  
 अधिक दूर पहुंचा सकता है और होम करनेवाले धर्मात्माओं को शास्त्रकथित  
 यथेष्ट फल देसकता है परंतु आप देवताओं को नहीं मानते और होम का  
 फल शास्त्रोक्त नहीं जानते ऐसे विधि शून्य कपोल कल्पित होम से कुछ भी  
 लाभ नहीं याद आपके विचारानुसार होम से जल वायु की शुद्धि होतीही है  
 तो मंत्रों का पढ़ना निः संदेह वृथा है और दूसरे सत्यार्थ प्रकाश का यह लेख  
 कि मंत्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित होजायें  
 सर्वथा मिथ्या—देखो वहां पृष्ठ ४२ में ओं भूरग्रये प्राणायस्वाहा इत्यादि  
 चारमंत्र और विश्वानिदेव तथा गायत्री मंत्रसे आहुति देना लिखा है उक्त  
 मंत्रों में होम करने के लाभ का कुछ भी वर्णन नहीं कहिये यह मिथ्याभाषण  
 है वा गण्य धोका देना है वा अज्ञता—अंत में जो आपने भूमिका से काटफांट  
 कर होम में मंत्रों के पढ़ने का प्रयोजन लिखा है कि हाथ से हवन करें मुख  
 से भी उत्तमकर्म वेदपाठ होतारहै इत्यादि वह सब दयानंद का कपोल कल्पित है  
 शास्त्र विधि नहीं इसकारण उसका विशेष उत्तर न लिखकर हम इतनाही कहतेहैं  
 कि गीता अध्याय १६ में श्रीकृश्न भगवान् का वचन है। यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते  
 कामकारतः। न ससिद्धिर्भवामोति न सुखं न परांगतिम्॥ पहिले सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ  
 ४९ में लिखा है कि बलिवैश्वदेवका प्रयोजन तो होमके नाई जानलेना फिर यहभी  
 प्रयोजन है कि भोजन के समय बलिवैश्वदेव करेंगे वे भी सुगन्ध से प्रसन्न  
 होजायेंगे और वह स्थान सुगन्धयुक्त होने से मक्खी मच्छरादिक जीव सब  
 निकलजायेंगे, यह भी मिथ्या कपोलकल्पना है और वैश्वदेव कर्म का ठट्टा—  
 अग्निपर घृत मिष्टान्नयुक्त रोटीभात रखने से सुगन्ध कदापि नहीं होती न उस  
 से जल वायु की शुद्धि होती है न मक्खी मच्छर निकलते हैं हां इस लेख से  
 लिखनेवाले के मनका यह अभिप्राय निकलता है कि बलिवैश्वदेव कोई धर्म  
 कर्म नहीं किंतु मक्खी मच्छर निकालने की एक ओषधि है—सो भी मिथ्या—  
 फिर आपके गुरु ने मार्जन का प्रयोजन आलस्य दूर होना—शिखाबंधन  
 का प्रयोजन केश इधर उधर न गिरें—आचमनका प्रयोजन कफ पित्तकी  
 निवृत्ति होना लिखा है और यह भी लिख दिया है कि आलस्य न हो को

अ-करना—बशोबशीत बिद्याका बिन्ही है—शिखा रखसै वान रखसै ऐसे लेखोंसे शास्त्रबिहित कर्मों की निंदा तथा हास्य और उन का लोप करना स्पष्ट प्रकट है । छंद—हमारे सत्य परचाते वृथा भूटी बनाता है । भला क्या लाभ उठाता है जगत् को तू हंसाता है ॥

( शंभुनाथ ) कुतर्क १० धर्म संताप में से ( वादी ) हो असत् मिश्रित जो सत् वह सत्य है जब विष समान । तो तू अपने स्वामी का सब लेख अना-दरर्थावधान ॥ उस के ग्रंथों में तुझे स्वीकार है अनृत निदान । छोड़ दे अब सर्व था उन को जो है तू बुद्धिमान ॥ स० प्र० पृष्ठ ७१ ( प्रतिवादी ) पं० जी साहब विचार बुद्धि को हाथ से न दीजें पूर्वा पर प्रसंग देखिये पृष्ठ ७१ में तत्र ग्रंथ पुराणादि के लिये विषयुक्त अन्न का दृष्टान्त है न कि ऋषि मणीन ग्रंथों के लिये इत्यादि

( उत्तर ) यदि आपको बुद्धि और विचार होता तो झूटका पक्ष क्यों स्वीकार होता देखिये सत्यार्थ प्रकाश मुद्रित सन् १८८४ के पृष्ठ ७१ में यह लेख है कि व्याकरण में कानन्त्र सारस्वत चन्द्रिका मुग्धबोध कौ-मुदी शेष्वर मनोरमादि—सब पुराण सब उपपुराण तुलसीदासकृत भाषा रामायण रुक्मिणीमङ्गलादि और सर्व भाषाग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं ।

प्रश्न—क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं ?

उत्तर—थोड़ा सत्य तो है परंतु इसके साथ बहुतसा असत्य भी है इससे “विषसंपृक्तान्नवत्याज्याः” जैसे अत्युत्तम अन्न विषसे युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं फिर पृष्ठ ७२ में ।

प्रश्न—जो त्याज्यग्रन्थों में सत्य है उसका ग्रहण क्यों नहीं करते ?

उत्तर—जो उन में सत्य है सो वेदादि सत्यशास्त्रों का है और मिथ्या उनके घरका है वेदादि सत्यशास्त्रों के स्वीकार में सब सत्यका ग्रहण होजाता है जो कोई इन मिथ्याग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्याभी उसके गले लपटजावे इसलिये “असत्यमिश्रंसत्यंदूरतस्त्याज्यामिति” असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्यको भी वैसे छोड़देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को इति दबालुजी ! अब विचार कीजिये और बुद्धिसे काम लीजिये आप के गुरु ने पूर्वोक्त ग्रन्थों के सर्वथा त्याग करने में ( असत्यमिश्रंसत्यंदूरतस्त्याज्यामिति असत्यसे युक्त ग्रन्थस्थ सत्यको भी वैसे छोड़देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को ) यह न्याय लिखा है और न्यायसाधारण होता है अर्थात् एक

स्थानपर कहने से उसप्रकार के सब स्थानोंपर उसका ग्रहण किया जाता है जैसा कि—किसी ने कहा कि कउओं से दही की रक्षा करो इस कथन से केवल कउओं ही से दही की रक्षा करना प्रयोजन नहीं किंतु चिल्ली आदि अन्य जो कोई दहीका हाण करना चाहें बुद्धिमान् को उन से भी रक्षा करना अवश्य है इसीप्रकार किसी ने अपने शिष्य वा पुत्र से कहा कि—ईसाइयों के पास बैठना अच्छा नहीं वे हमारे धर्म की निंदा करते हैं इसकथन से केवल ईसाइयों ही के पास बैठने का निषेध नहीं किंतु मुसलमान दयानन्दी आदि भी जोर धर्म की निंदा करते हैं उनके पास बैठने का निषेध भी स्वतः सिद्ध है दयानन्दके ग्रन्थों में प्रायः असत्य और वेदादि सत्शास्त्रविरुद्ध ही लेख हैं अतएव 'असत्यमिश्रंसत्यंदूरतस्त्याज्यमिति असत्यसे युक्त ग्रन्थस्थ सत्यको भी वैसे छोड़ देना चाहिये जैसे विषयक्त अन्न को " दयानन्द ही के उक्त न्यायानुसार सज्जनों को उनके ग्रन्थों का सर्वथा त्याग करना अत्यावश्यक है फिर उसका यह लेख कि और सर्वभाषा ग्रन्थ ये सब कपोल कल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं उसके बनाये सत्यार्थप्रकाशादि को भी कपोलकल्पित और मिथ्या ठहराता है क्योंकि वे भी भाषा ग्रन्थ हैं निदान हमारा आक्षेप सत्य और न्यायानुसार है संपूर्ण दयानन्दियों के शिरपर भार और आपकी हार है छन्द—कहेगा न्यायके प्रतिकूल जो वह आप हारेगा । भला झूठ की हे मित्रो कहीं भी जीत होती है ॥ अब यह भी बतलाइये कि सारस्वत चन्द्रिका मुग्धबोध कामुदी शंखर मनोरमा तथा शारंगधर में मिथ्या क्या है यद्यपि पुराणों में प्रायः प्रक्षिप्तलेख है जिसको बुद्धिमान् लोग नहीं मानते और धर्म नहीं जानते तथापि दयानन्दकृत वेदों के भाष्यसे उनमें शतगुण अधिक धर्मोपदेश और उत्तमलेख है जो कोई दयानन्दकृत वेदभाष्यको वेद का यथार्थ अर्थ जानेगा वेदों को अपौरुषेय अनादि और ईश्वर प्रेरित तो क्या किसी धर्मज्ञ विद्वान् के बनायेहुए भी न मानेगा—हमारी बनाई दयानन्दकृत षड्वेदभाष्य की समालोचना अवलोकन कीजिये और शक्ति हो तो पक्षपातरहित होकर सभ्यतापूर्वक उत्तर दीजिये—तंत्रग्रंथों का वृत्तान्त सब विद्वानों पर आप के गुरु की अधर्मरूप कपोल कल्पना के समान प्रकट है किसी से छुपानहीं यद्यपि दयानन्द को विद्वत्ताका अभिमान था परंतु उसके हृदय में तंत्र ग्रंथों का संस्कार विद्यमानथा—सत्यार्थ प्रकाश को हाथ में लेने से तंत्रग्रंथों की ग्रंथ आती है ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका भी उन्हीं केसे गीत जाती है इन में सर्वथा शास्त्र विरुद्ध और ऐसी २ बुरी बातें लिखी हुई हैं कि जिन से धर्म को

ग्लानि है और लोक परलोक की हानि—हमने दयानन्द जीवन चरित्र समा-  
लोचना और दयानन्द पराजयादि में उसका वर्णन किया है अज्ञों को अधर्म  
से बचने के लिये विज्ञापन दिया है । छन्द-देखले अपने स्वामी जी का लेख  
तंत्रग्रंथों से कुछ भी न्यून नहीं ॥ यदि तंत्र ग्रंथों की प्रथमकक्षा से कुछ न्यून  
है तो दूसरीकक्षा ही का सही-बे बड़े भाई हैं ये छोटे दोनों के कर्म खोटे  
छन्द—नहीं तन्त्रवालों से स्वामीजी छोटे । करो न्याय हैं कर्म दोनों के खोटे ॥ १ ॥  
न सत्यार्थ कह तू असत्यार्थ को । बुरा है लिखा तेरे स्वामी ने जो ॥ २ ॥  
गोबधतक जिसने लिखा करो न्याय धीमान । कहें आर्य उसको भला फिर कैसे  
विद्वान् ॥ ३ ॥ गोबध भी लिखते जिसको न आई तनिक दया । जो कोई  
उसको आर्य कहें आर्य वह नहीं ॥ ४ ॥ अब उसका व्याकरण होना भी  
सुनलीजिये और अपने मन ही में न्याय कीजिये उसने वाक्यप्रबोध नामक  
एक छोटासा पुस्तक बनाया था पण्डित अचिकादत्तव्यास ने उसके खण्डन  
में अवोधनिवारण छपवाया था स्वामीजी के लेख में व्याकरणानुसार बहुत  
ही अशुद्धि और भूल दिखाई थी उनके पांडित्य की सम्पत्कृष्टि उड़ाई थी  
निदान दयानन्दके सभी ग्रंथ शास्त्रविरुद्ध हैं महाअशुद्ध हैं इसकारण अवश्य  
ही सज्जनलोग विषयुक्त अन्नकी सदृश उनका सर्वथा त्याग करें और वे-  
दादि सन्शास्त्रों में अनुगम यदि आप दयानन्दलिखित पूर्वोक्त न्यायको  
मानोगे तो अवश्य उसके ग्रंथों को विषयुक्त अन्न की सदृश सर्वथा त्यक्तव्य  
जानोगे हमारे आक्षेप को स्वीकार करोगे और दयानन्द की शास्त्रविरुद्ध स-  
र्वथा अशुद्ध मिथ्या कपोलकल्पनाओं का निरस्कार छन्द हो असन्मिश्रित  
जो मन्त्र वह सत्य है जब विष समान । तो तू अपने स्वामीका मन्त्र लेख  
अनादरणीय मान ॥ उस के ग्रंथों में तुझे स्वीकार है अनृत निदान । छोड़  
दे अब सर्वथा उनको जो है तू वृद्धिमान ॥

( शंभुनाथ ) कुतर्क ११ धर्ममंताप में से शूद्र था जान श्रुति यह कैसा  
अनृत लिखदिया । है प्रकट छांदोग्य से तेरे गुरु की अज्ञता ॥ म० प्र० पृष्ठ ३३६

( प्रतिवादी ) छांदोग्य उपनिषद् का तनिक आँख खोलकर पाठ कीजै-  
वहाँ रैक्यमुनिने जान श्रुतिको शूद्र कहकर ही संवोधन किया है इत्यादि—

( उत्तर ) छन्द-श्रुतका पक्ष जो कर श्रुत कहायगा । पापी वनेगा अपनी  
प्रतिष्ठा मिटायगा ॥ मासटरसाहिब शास्त्र के अक्षरों का वास्तविकरूप दाहरी  
आँखों से नहीं दीखता किंतु विद्यारूपी नेत्रों से दीखता है आपका गुरु उन  
से सर्वथाहीन था पक्षपात और हठ दुराग्रह से उसका मन मलीन था—त-

त्वनिर्णय में उसने सर्वत्र धोका खाया है अपनी अज्ञता और हठ दुराग्रह से जी में आया सो अन्यथा गाया है जान श्रुति को शूद्र लिखना उसकी सर्वथा अज्ञता है फिर आपका उसपर पक्ष करना पबलिक को धोका देना - और निर्लज्जता है - निःसंदेह छांदोग्य में जान श्रुति के लिये शूद्रपद आया है परंतु आप को यह सुध नहीं कि उसका अर्थ वहां क्या है श्रीवेदव्यास महर्षि ने उत्तरमीमांसा के अध्याय १ पाद ३ सुगस्यतदनादर श्रवणात्तदाद्रवणात्सूच्यते हि - इस सूत्र ३४ में छांदोग्यलिखित उक्त शूद्रपद का अभिप्राय शोक लिया है और फिर क्षत्रियत्वगतेश्चोत्तरत्रचैत्ररथेनलिगात् - इस सूत्र ३५ में जान श्रुतिके क्षत्रिय होने का पूर्ण निर्णय किया है उक्त सूत्रोंपर भाष्यकारों ने सम्यक्व्याख्या की है सो किसीसे सुनलीजिये और अपने तप्त-हृदय की यथावन् शांति कीजिये - दयानन्दने उत्तरमीमांसा का कभी देखा होता तो जान श्रुतिको शूद्र कदापि न कहता आपके गुरुपर हमने यही आक्षेप किया है कि जान श्रुति को उसका शूद्रलिखना मृषा है सो हमारा कथन अचल है और आपका झूठापक्ष निर्वल छन्द झूठा है आक्षेप को मेरे कहें जो झूठ । मेरे कथन में व्यासमुनिका प्रमाण है ॥ फिर आपका यह लेख कि प्रथम तो जान श्रुतिका शूद्र होना छांदोग्य से प्रकट है ही है परंतु ऐसा न भी हो तो भी सिद्धान्तहानि तो नहीं होती और अन्यो का शूद्रत्व से ब्राह्मणत्वको प्राप्त होना सिद्ध है इति विद्वानोंपर तो जान श्रुतिका क्षत्रिय होना छांदोग्य और उत्तरमीमांसा से स्पष्ट प्रकट है अबों की कथा नहीं अंत में आप भी मान ही चुके कि ऐसा न भी हो तो भी सिद्धान्तहानि तो नहीं होती - यह भी अशुद्ध है गण्याष्टक स्वामी के विरुद्ध है दूसरी वागकेछेप सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ३३२ में लिखा है कि इन दोनों में से एकवात सच्ची दूसरी झूठी ऐसा होकर दोनों बात झूठी - आपका शेष लेख अप्रसंग और वृथा है हमने उस को निष्फल जानकर छोड़ दिया है । छंद झूठ का पक्ष तूने है मित्र क्यों लिया है । उमने ही तुज को झूठ संसार में किया है ॥

( शंभुनाथ ) कुतर्क १२ धर्म संताप में से ।

( वादी ) जो लिखी पृथिवी की परिधि उस में भारी भूल है । तेरे स्वामी का कथन सिद्धान्त के प्रतिकूल है ॥ ( सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय में इस के प्रतिकूल है ) स० प्र० पृष्ठ ४६०

( प्रतिवादी ) सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्याय भुवनकोश में लिखा है कि ' प्रोक्तोऽयं जनसंख्यया कुपरिधि समांग नंदावधयः ' अर्थात् पृथिवी की

परिधि ४९६७ योजन या लगभग ५००० योजन है—इस से प्रतीत होता है कि ५००० योजन परिधि के स्थान में १५००० योजन परिधि ऐसा अशुद्ध छप गया है या कदाचित् कि जी जैनी आचार्य ने १५००० योजन परिधि इस पृथिवी की मानी हो इत्यादि ।

( उत्तर ) इसी योग्यतापर हमारे आक्षेपों का उत्तर लिखने और गुरु जी की अज्ञता मिटाने का साहम किया है हम फिर कहेंगे कि जादू वह जो शिर पे चढ़ के बोले यहां तो आपने हमारे आक्षेप को सत्य जान लिया और दयानन्द का पंद्रह सहस्र पृथिवी की परिधि लिखना सिद्धान्त शिरो-मणि के प्रतिकूल स्वयं मान लिया फिर भी झूठी बातें बनाने से बाज नहीं रहते हम को सत्यवक्ता और गुरु का मिथ्या वादी नहीं कहते—सत्यार्थ प्रकाश में पंद्रह सहस्र अक्षरों में लिखा है यह अशुद्धि प्रेस वालों की समझना मृषा है गुरुजी ही की भूल स्वीकार है तो हमारा आक्षेप उस के गले का हार और आप के शिरपर सवार है—किसी जैनी आचार्य ने ऐसा लिखा होता तो आपके गुरु ने उसका अवश्य पता लिखा होता—जैनियों ने पृथिवी का परिमाण अमंगल्य माना है और उस को बहुत बड़ा जाना है—आप जैनियों के ग्रंथ में पृथिवी की परिधि १५००० लिखी दिखलायेंगे तो हम आपको पेट भर लड्डू और पेट खिलवायेंगे नहीं तो कच्चे चबायेंगे और बहुत नचायेंगे छंद—स्वामी की तरे में अशुद्धि प्रकट जो की । प्रत्यक्ष सिद्ध है वह तरे लेख से निदान करता है फिर बनावटें झूठी जो तृप्ति अज्ञान तेरा होता है उन से विदित महान ॥ महाशय आप तो स्कूल मास्टर हैं धर्म से कहिये यदि आप विद्यार्थियों की परीक्षा लें और वे ४९६७ वा ५००० के स्थान में १५००० उत्तर लिखें तो आप उन को कितने नंबर देंगे अवश्य फेल ही करेंगे और मूर्ख ही समझेंगे । छंद—पांच के पंद्रह लिख फिर भी अविद्वान नहीं । कौन कहता है दयानन्द का अज्ञान नहीं ॥

( शंभुनाथ ) कुतर्क १३ दयानन्द मतसूची में से ।

( वादी ) वेदशास्त्र में विद्वानों को देवशब्द जो आया । विद्वज्जन ने व्यासादिक को क्यों नहीं देव लिखाया । स० प्र० पृष्ठ ५८८ ।

( प्रतिवादी ) इस आक्षेप का उत्तर देने से पूर्व हम पूछना चाहते हैं कि स्वामी जी महाराज ने यह अवधारण कहाँ पर किया है कि केवल विद्वानों को ही देवता कहते हैं इत्यादि ।

( उत्तर ) छंद—झूठी बातों से जय मनाता है । कोई कीकड़ से आम

खाता है ॥ देखो आप के गुरु ने सन्तार्थ प्रकाश पृष्ठ ९९ में लिखा है कि जो विद्वान् हैं उन्हीं को देव कहते हैं फिर पृष्ठ ५८८ स्वयंतव्यामंतव्य प्रकाश में लिखा है कि देव विद्वानों को और अविद्वानों को असुर पापियों को राक्षस अनाचारियों को पिशाच मानता है इति आंखों से पक्षपात की पट्टी खोल कर और अज्ञान की धूलि धोकर सम्पक् देख लो कि पीर जी ने यहां केवल विद्वानों को ही देवता माना है उगमे ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका आदि में देवताशब्द से जो ईश्वर ( यक्ष इंद्रियादि का ग्रहण किया है वह अशुद्ध है सन्तार्थप्रकाशपृष्ठ ९९ और उमके स्वयंतव्यामंतव्यसे विरुद्ध है परंतु हम को इससे कुछ प्रयोजन नहीं उमार्थपत्र में हमारा केवल इतनाही विवाद है कि संपूर्ण ऋषि मुनियों और समस्त विद्वानों ने स्वर्गनिवासी इन्द्रादिदेव मनुष्यों से पृथक् माने हैं और उनके अलौकिकगुण कर्म जाने हैं दयानन्द विद्वानों हीको देवता मानता है मनुष्यों से प्रथक् स्वर्ग निवासी इन्द्रादि देवताओं का हाना मिथ्या जानता है उक्त देवताओं का न मानना सर्वथा अशुद्ध है वेदादि सत्शास्त्रों के विरुद्ध है—हमने इस विषयकी पृष्टि में देवार्थादि नामक पुस्तक छपवाया है मनुष्यों से पृथक् देवताओं का होना सम्पक् सिद्धकर दिखाया है—उमको देखकर सत्यका ग्रहण और असत्यका त्याग कीजिये वा यथार्थ उत्तर दीजिये झूठी बातें न बनाविये अज्ञोंको न शिक्षा डिये श्रीवेदव्यास महर्षिने उत्तर मीमांसा के अध्याय १ पाद ३ में ‘ विरोधः कर्मणीति चेदनेक प्रतिपत्तेर्दर्शनात् ॥ २७ ॥ यह सूत्र लिखा है भाष्यकारों ने इसका यह आशय वर्णन किया है कि देवता अनेक यज्ञोंमें अनेक शरीर धारण करके जाते हैं और किसीको दृष्टि नहीं आते सूत्र २२ तक इसी प्रकार की व्याख्या है जिस से दयानन्द का स्वर्गलोक निवासी इन्द्रादि देवताओं का न मानना और विद्वान् मनुष्यों हीको देवता जानना सर्वथा मिथ्या है—विद्वान् मनुष्यों में अनेक शरीर धारण करना और किसीको दृष्टि न आना इत्यादि सामर्थ्य किसी प्रकार नहीं है दयानन्द का विचार विद्वानों के विचारानुसार नहीं—फिर ‘ देवादि वदपिलोके ’ उत्तर मीमांसा अध्याय २ पाद १ का सूत्र २२ यह है और श्री भाष्यमें उमकी व्याख्या यह—यथा देवादयः स्वं स्वं लोके संकल्पमात्रेण स्वापेक्षितानि मृजन्ति तथा ऽर्मा पुरुषोत्तमः कृत्स्नं जगत्संकल्पमात्रेण मृजति इति अर्थान् जैसे देवादि अपने २ लोक में संकल्पमात्रसे अपने इच्छित पदार्थों को रचते हैं वैसेही परमात्मा संपूर्ण जगत् को संकल्पमात्रसे रचता है—अब कहिये क्या विद्वान् मनुष्यों में यह शक्ति है कदापि नहीं—देवताओं के गुण



कर्मों की महिमा अपार है विद्वान् मनुष्यों से देवताओं का पृथक् होना वेदादि सत्शास्त्रों के अनुसार है हग यह नहीं कहते कि विद्वानों के लिये देव शब्द आताही नहीं किंतु दयानन्द विद्वानों ही को देव जानता है उन के अनि रिक्त स्वर्गलोक निवासी इन्द्रादिक देवताओं का होना नहीं मानता—उसके इसीशास्त्र विरुद्ध कथन का खंडन करते हैं अर्थात् स्वर्गलोक निवासी इन्द्रादि देवता विद्वान् मनुष्यों से पृथक् अवश्य हैं सत्शास्त्रानुकूल इस बात का मण्डन करते हैं—यदि आप लोग ऐसा मानलें तो फिर झगड़ाही क्या है सत्य के ग्रहण और असत्य के त्यागही में लोक परलोक का भलाह छंद—शास्त्र के प्रतिकूल कहने में नतु अच्छा समझ। लोकमें अच्छा हो कुछ परलोक में अच्छा नहीं ॥ आगे जो वचन आपने अपने कथन की पुष्टि में लिखे हैं आपकी अज्ञताहै वा जान वृद्धक पबलिक को धोकादिया है—क्यों कि वे हमारे ही कथन का श्वास भरते हैं और आपका सम्यक् खण्डन करते हैं अस्तु सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या—इसका आशय यह है कि देवता सत्य भाषण ही करते हैं अनृत मनुष्यों में होता है आपका अर्थ मिथ्याहै गप्पाष्टक की कपोल कल्पना है—मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्य देवो भव—आपने इसका अर्थ ही नहीं लिखा हमने देवसिद्धि में उक्त श्रुति संकर भाष्य सहित लिखी है देवता मनुष्योंसे पृथक् हैं इस बातकी सम्यक् पुष्टि की है—देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्य त्वंच राजसाः तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः मनु अध्याय १२ इसका यह अभिप्राय है कि—मरणानन्तर सत्त्व गुणवाले देवभाव की रजोगुण वाले मनुष्य भावको तमोगुणवाले तिर्यग्भाव अर्थात् तिरछा चलने वाले सर्पादिक योनि के भावको प्राप्त होते हैं—आप का यह समझना कि सात्विकभावसे मनुष्य इसी देह में देवता बन जाता है सर्व था मिथ्या है ऐसामानो तो तमोगुणवाले तिर्यग् भाव अर्थात् सर्पादिक योनिको इसी देह में प्राप्त हो जावें यह सर्व था असंभव है इसी से आपने तिर्यग् का अर्थ असुरत्व मन गढ़त लिखा है—राजसभाववाले ( मनुष्य ) मनुष्यत्व को प्राप्त होते हैं आपका यह कथन भी वृथा है जो कि प्रथमही मनुष्य है उस का पुनः मनुष्य होना बात क्या है—जो लोग मनुस्मृति में उक्त श्लोक के पूर्वापर का विचार करेंगे आप के छल कपट को सम्यक् जानलेंगे—आपके गुरु ने सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ ८८ में ( शूद्रो ब्राह्मणतामेति—मनु अध्याय १० का यह श्लोक लिखकर ऐसा ही छल कपट किया है प्रकरण के विरुद्ध अर्थ का अनर्थ करके पबलिकको धोका दिया है छल कपट करना उसके मत की मूल है चले का लेख गुरु के

अनुकूल है—नहीं २ आप गुरु से भी बहगये और अज्ञानरूपी पर्वत की चोटी पर चढ़गये दयानंद ने दूसरी बारके छपे हुए सत्यार्थ प्रकाशके पृष्ठ २५३ तथा २५४ में ( देवत्वंसात्त्विकायान्ति । इत्यादि ११ श्लोक मनु के लिख कर जिस २ गुणों जिस २ गतिको जीव दूसरे जन्म में प्राप्त होता है वही दर्शाया है क्योंकि वहां ( जो अन्यतमोगुणी हैं वे स्थावर वृक्षादि कृमिकीट मत्स्यसर्प कच्छप पशु और मृगके जन्मको प्राप्त होते हैं ) इत्यादि लेख आया है आपने गुरु के विरुद्ध गाया है उसको स्पष्टमूर्ख ठहराया है हम उस के अशुद्ध लेखों को अशुद्ध बतलाते हैं आप शुद्ध को भी अशुद्ध ठहराते हैं धन्य । छंद-तूने विरुद्ध अपने गुरु के किया जो लेख । जय मेरी और तेरी पराजय प्रकट हुई ॥ फिर आपका यह कथन कि व्यास देव शुक्रदेव कपिलदेव इत्यादि नामों में देवपदवी लगाई जाती है—सर्वथा अशुद्ध है और हमारे आक्षेप के विरुद्ध हमारा कथन यह है कि जो विद्वानों ही का नाम देवता है तो व्यास, जैमिनि, गौतम, पतंजलि, कपिल, कणाद तथा व-शिष्ठ—भरद्वाज उद्दालक—याज्ञवल्क्य आदि जो परम विद्वान् थे उनको स-त्शास्त्रों में ऋषिमुनि ही लिखा है देवता क्यों नहीं लिखा आपके गुरुने भी स-त्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ७१ में व्यासमुनि गोतममुनि वात्स्यायनमुनि पतंजलिमुनि कपिलमुनि भागुरिमुनि वांशायनमुनि ऐसा ही लिखा है व्यासादि के अंत में देव वा देवता नहीं लिखा प्राचीन ग्रंथों में व्यासदेव—शुक्रदेव ऐसा लेख भी देखनेमें नहीं आता किंतु व्यास और शुक्र ही लिखा पाता है यदि कुछ लोग ऐसा बो-लते हैं तो वह विवाद में सिद्धान्त नहीं होसकता इसके अतिरिक्त यदि किसी ऋषिमुनि और विद्वान का नाम देवपदान्त ही हो तो इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होसकता कि वह देवपद देवता ही का वाचक है आजकल भी हरदेव बलदेव गुरुदेव मंगलदेव आदि नाम प्रायः मनुष्योंके हैं वे सब विद्वान् ही नहीं—हमारा अभिप्राय यह है कि सत्शास्त्रों में परम विद्वानों और पूर्ण धर्मात्माओं को ऋषिमुनि लिखा है देवता नहीं लिखा यदि देवता मनुष्यों से पृ-थक् न होते और विद्वान् मनुष्यों ही को सत्शास्त्रों में देवता मानाजाता तो जिसप्रकार इन्द्र बृहस्पति वरुण कुबेर आदि को सर्वत्र देवता लिखा है उसी प्रकार संपूर्ण ऋषि मुनियों को देवता लिखा होता आप लोग दयानंद को विद्वान् जानते हैं अपनी पुस्तकों में उसको महर्षि लिखते हैं देव क्यों नहीं लिखते उसके नामही के अंत में देव पद लगाइये सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ८० में नक्षत्र वृक्ष नदी आदि के नामों को कुन्सित लिखा है उसके शिरसे सर-

स्वती पद को भिटाइये और समाजोंमें दयानंददेव ऐसा बोलने का प्रचार कराइये अथवा उसको अज्ञ वताइये नामके अंतमें देवपद लगानेसे विद्वान् मनुष्य देवता कदापि नहीं होसकता धनपतिराग करोरीमल और धर्मसिंह नाम रखने से कोई धनवान और धर्मात्मा कदापि नहीं होसकता—शतपथमें देवताओं का निवास स्थान स्वर्ग लिखा है 'द्यौर्वै सर्वेषां देवा नामायतनम् श० १४।२। ३ । ८ ॥ और विद्वान् मनुष्य पृथ्वीही पर रहते हैं फिर आपने जो निरुक्त अध्याय ७ का यह टुकड़ा और उसका अर्थ तथा स्वसिद्धान्त लिखा है कि देवो दाना द्वादीपनाद्वाद्योतनाद्वाद्युस्थानो भवतीति वा अर्थात् दान देने प्रकाश करने सत्योपदेश करने से देवनाम पड़ता है अतः विद्वान् की भी इन्हीं कारणों से देव संज्ञा होसकती है इति सर्वथा छल कपट है और आपही के लेख से हमारी जय प्रकट छंद झूठीवातों के सिवा कुछतुझें स्वीकार नहीं सत्यभाषण से गुरुही को तेरेप्यार नहीं॥ वेद और शास्त्रसे कुछभी तु खबरदार नहीं छल कपट करने में तुजसा कोई हुशयार नहीं ॥ संडजी ! निरुक्तमें वह पूर्ण लेख इस प्रकार है—अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देव मृन्विजं होतारं रत्न धातमम् अग्निमीलेऽग्नियाचामीलिरध्येषणा कर्मा पृजाकर्मा वा पुरोहितो व्याख्यातो यज्ञश्च देवो दानाद्वादीपनाद्वाद्योतनाद्वाद्युस्थानो भवतीति वायो देवः सादेनता होतारं हानारं जुहोते होतेत्यौर्णवाभो रत्न धातमं रमणीयानां धनानां दातृत्तमं तस्यैषा पराभवति इति अग्निमीडे यह ऋग्वेद की पहिली ऋचा है निरुक्तकार ने उसको अग्नि देवता की स्तुति में लगाकर पूर्ण व्याख्या की है यहां निरुक्तकार के मत में देव शब्द अग्नि देवता का वाचक है न कि विद्वान् मनुष्यका—आपके गुरु ने ऋग्वेद भाष्य में उक्त ऋचा को ईश्वर और भौतिक अग्निकी स्तुति पर लगाया है और देव शब्दसे परमेश्वर तथा भौतिक अग्निही का ग्रहण किया है फिर आप निरुक्तकार और गुरु के विरुद्ध देव शब्द से विद्वान् मनुष्य का ग्रहण कैसे करते हो । छंद—अपने घर की भी तुझें सुध नहीं कहता क्या है लेख झूटा है तेरा या है गुरु का तेरे झूट ॥ फिर निरुक्तकार तथा आपके लेख में—द्युस्थानो भवति यह पद आया है उसका अर्थ आपके पेटही में समागया—द्युस्थान स्वर्गलोक विशेष है जो कि निरुक्तकारके मतमें देवताओं का निवास स्थान है जब कि आपको निरुक्त प्रमाण है तो मनुष्यों से पृथक् स्वर्गलोक निवासी देवताओं का न मानना सर्व था इष्ट धर्मा वा अज्ञान है इस के अतिरिक्त निरुक्त अध्याय ७ खंड ६ में लिखा है—अथाकार चिंतनं देवतानां पुरुष विधास्युरित्येके—यहां

यह विचार है कि देवताओं के शरीर हैं वा नहीं तथा किस प्रकार के हैं फिर कहते हैं कि देवताओं के शरीर पुरुषाकार हैं—यदि विद्वान् मनुष्यों ही को देवता कहते तो इस विचार की क्या आवश्यकता थी—क्योंकि विद्वानों के शरीर होने में किसी को संदेह नहीं दयानन्दियों को हो तो आश्चर्य नहीं—अंत में आपका यह लेख कि विद्वान् की भी इन्हीं कारणों से देवसंज्ञा हो सकती है—आपने विद्वान् मनुष्यों से पृथक् देवताओं का होना मान ही लिया और गुरु को झूठा जान ही लिया क्योंकि उक्त वाक्य में ( भी ) अवश्य स्पष्ट सिद्ध करती है कि देवविद्वान् से पृथक् हैं परंतु इन कारणों से विद्वान् की भी देवसंज्ञा हो सकती है वस देवता विद्वानों से पृथक् हैं हमारा यही विचार है सो आपको स्वीकार है झूठी हार है और सत्य की जयजयकार छन्द—सत्य की जय है सदा अनृत की निश्चय हार है । धन्य सत्यवक्ता को है फल झूठ का धिक्कार है ॥ कर लिया शत्रु ने मेरी बात को स्वीकार आज । भूमि से स्वर्लोक तक उच्चरित जयजयकार है ॥

( शम्भुनाथ ) कुतर्क १४ दयानन्दमतसूची में से ।

( वादी ) 'अज्ञादज्ञादसम्भवासि' चारों वेदों में बताया । एक वेद में भी नहीं आया वृथा तुम्हें बहकाया संस्कारविधि सं० १०.३३ पृष्ठ ३८ ) ।

( प्रतिवादी ) निरुक्त ३ । ४ तदेतद्वक्त्रं श्लोकाभ्यामभ्युक्तम् अर्थात् यह बात ऋचा और श्लोक में कही है इस के आगे 'अज्ञादज्ञात्सम्भवासि' यह ऋचा लिखी है जो निरुक्त कि उभय पक्ष को मंतव्य है इति ।

( उत्तर ) हमारा आक्षेप यह था कि दयानन्द ने—अज्ञादज्ञात्सम्भवासि—इस वचन को चारों वेदों में बताया है परन्तु वह जिनको चार वेद मानता है उन में से एक में भी नहीं आया यदि उत्तरदाता उक्त मंत्र को अपने माने हुए—चारों वेदों में दिखाता तो दयानन्द यथार्थ वक्ता समझा जाता—परन्तु वह एक वेद में भी न दिखा सका अपने स्वामी की अज्ञता को न पिटा सका अतएव उसी के लेख से हमारा जय है और उसकी तथा उस के गुरु की अज्ञता निश्चित निश्चय । छंद—तेरे गुरु की अज्ञता सब पर विदित हुई । विश्वास झूठे लेखों पर उसके करेगा कौन ॥ संमुख मेरे हुई है पराजय तेरी प्रकट । लज्जा से मुख लुपा के तू धारण कर अब तो मौन ॥ आपको अपना लिखा निरुक्त का वचन स्वीकार है तो आप की और भी एक बड़ी हार है कि निरुक्तकारने उसको ऋचा माना है अर्थात् वेद वचन जाना है आपकेवल चार शाखाओं को वेद मानते हैं शतपथादि ब्राह्मण तथा अन्य शाखाओं को वेदों के व्याख्यान जानते हैं आपके माने चार वेदों में उक्त वचन नहीं

है अब ब्राह्मण वा अन्य शाखा में जहां कहीं है उस को भी वेद मानिये और दयानन्द का केवल चार शाखाओं ही को वेद मानना मिथ्या जानिये क्योंकि निरुक्त कागका यही सद्दिचार है जो निरुक्त आपही के लेखानुसार उभय पक्ष को स्वीकार है । छंद हमारे आक्षेपों का तो उत्तर मानलेनाहै । बनाकर बात तुम झूठी नयेगुल क्यों खिलाने हो ॥

( शंभुनाथ ) कुतर्क १५ दयानन्दमतसूची में से ।

( वादी ) ' मातृमान ' यह वचन कहीं नहीं छांदोग्य में आया । गण्या-ष्टकेन विजया पीकर कैसा गण्य उड़ाया ॥ संस्कारविधि सं० १९.३६ पृष्ठ ७१

( प्रतिवादी ) मातृमान पितृमानार्च्यवान् पुरुषोवेद यह वचन शतपथ ब्राह्मण में उपस्थित है-यदि छोपे की अशुद्धि अथवा ग्रंथकार ही की लेखिनी से कार्य बाहुल्य के कारण भूल से शतपथ के स्थान छांदोग्य बनगया तो क्या सिद्धान्त हानि होगई-और आप को ऐसा कटु वचन भी कि विजया पीकर गण्य उड़ाया लिखना योग्य नथा भला यह गण्य ही क्या है इत्यादि ।

( उत्तर ) शतपथ के स्थान में छांदोग्य लिखाजाना छोपे की अशुद्धि कदापि नहीं होसकती-ग्रंथकार ही की भूल स्वीकार है तो हमारा आक्षेप दयानन्द के गले का हार और आप के गण्यकुठारपर वज्रप्रहार है आपने संस्कारविधि-सं० १९.३३ के स्थान में-सं० १९.३६ अशुद्ध लिखा है यह छोपे वालों की भूल है वा आपही की अज्ञता है अस्तु हम यह नहीं कहें कि दयानन्द के ऐसे अशुद्ध लेखों से अमुक सिद्धान्त हानि होगई किंतु यह कहते हैं कि दयानन्द महान अज्ञथा उस के लिखे ग्रंथों के पते तक भी सत्य नहीं हैं फिर वेदादि सत्शास्त्रों के वास्तविक अर्थ और सिद्धान्त यथार्थ हों यह कदापि सम्भव नहीं-वस्तुतः जिस प्रकार उस ने लिखे ग्रंथों के पते अशुद्ध हैं उसी भांति वेदादि सत्शास्त्रों के सिद्धान्त और अर्थ भी ऋषि मुनियों और समस्त विद्वानों के विरुद्ध हैं-हमारी पुस्तकों में उन का वर्णन कहीं संक्षिप्त और कहीं सविस्तार है जिन से दयानंदियों की सर्वत्र हार है-वैदिक लोगों को सब से प्रथम मुख्य इस बात का निर्णय करना चाहिये कि वेद क्या पदार्थ है अर्थात् वेद किस को कहने है और संपूर्ण धर्माधर्म रूप विधि निषेध वेद में है वा नहीं-दयानन्द का सिद्धान्त इस विषय में सर्वथा अशुद्ध है और समस्त ऋषि मुनि और विद्वानों के विरुद्ध-महाभाष्य में चारों वेदों की १.१.३१ शाखा ( भाग ) लिखी है

दयानन्द ने दूसरी बार के छपे सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ५८७ पर ११२७ वेदों की शाखा लिखकर उन को वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रंथ माना है—शाखाओं को वेद नहीं माना और जिन चार पुस्तकों को वेद माना है वास्तव में वे भी चार शाखा हैं—जब कि दयानन्द के मत में शाखा वेद नहीं तो वे चार पुस्तक भी वेद न ठहरे—किंतु उस के पूर्व लेखानुसार वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रंथ ठहरे—वस दयानन्द के मत में वेदों का जगत् में चिन्ह भी विद्यमान नहीं—फिर उक्त सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ ८३ में उस का यह लेख—कि वेदों के प्रमाण से सब काम किया करो इति उस का होना सर्वथा असंभव है—क्योंकि वेद ही विद्यमान नहीं तो वेदों के प्रमाण से सब कामों का करना कैसे—यदि केवल उक्त चार पुस्तकों को बलात्कार आपलोग वेद मान भी लें तो उन में संपूर्ण धर्माधर्म विधि निषेध लिखा नहीं—दयानन्द ने भी अपनी पुस्तकों में प्रायः जो कुछ लिखा है अपनी कपोलकल्पना वा अन्य पुस्तकों ही के नाम से लिखा है—फिर वेदों के प्रमाण से सब काम किया करो आप लोग इस आज्ञा का पालन कैसे कर सकते हैं कदापि नहीं दयानन्द के मतानुसार मुख्य सिद्धान्त की सर्वथा हानि है तो औरों की क्या कहानी है—फिर उक्त सत्यार्थ प्रकाश के पृष्ठ २०५ में ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं हैं दयानन्द ने इस रक्कपोलकल्पित सिद्धान्त के निर्णयार्थ लिखा है कि ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिस का हो उस के जन्म के पश्चात् लिखा जाता है वह ग्रंथ भी उस के जन्मे पश्चात् होता है वेदों में किसी का इतिहास नहीं—किसी मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं—इति—महाशय । मंत्र भाग दयानन्द के माने हुए चारों वेदों में भी ऋषि महर्षि और राजादि के नाम और इतिहास स्पष्ट लिखे हैं—और हमारे सनातनधर्म पताका के द्वारा प्रकट किये हैं—अब दयानन्द के लेखानुसार ( इतिहास जिसका हो उस के जन्म के पश्चात् लिखा जाता है वह ग्रंथ भी उसके जन्मे पश्चात् होता है वेदों में किसी का इतिहास नहीं—किसी मनुष्यकी संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं ) इस न्यायसे उसके माने वेद भी वेद न रहे—फिर जब कि आप लोगोंको धर्माधर्म के निर्णय में केवल वेद ही प्रमाण हैं और उनका पता नहीं तो आपके समस्त सिद्धान्तों की सर्वथा हानि है जो कुछ कहानी है मनमानी और धरजानी है यहाँतक दयानन्दके मुख्य सिद्धान्त की सर्वथा हानि दि-

खाईगई और बुद्धिमानों को सङ्केतसे समझाईगई—अब नाथजीके उस लेख का कि ( आपको ऐसा कटुवचन भी कि विजया पीकर गप्प उड़ाया लिखना योग्य न था ) उचर सुनाता हूँ और शर्माजी को शर्माता हूँ नाथजी यदि आप ( विजया पीकर गप्प उड़ाया ) हमारे इस सत्यलेख को कटुवचन जानतेहैं और अयोग्य मानतेहैं तो दूसरीबागके छपे सत्यार्थप्रकाशमें अपने गुरु का लेखदेखलीजिये और अपने तप्तहृदयकी सम्यक्शान्ति कीजिये तथाहि किसी भंगड़ आदमीने गप्प मारा होगा पृष्ठ ३१९ भांगके लोटे चढ़ा अपना जन्म सृष्टि विरुद्ध कथन करनेमें नष्ट किया पृष्ठ ३३१—देखिये क्याही असंभव कथा का गोपोड़ा भंगकी लहरीमें उड़ाया पृष्ठ ३३२—महाशय यदि विजया पीकर गप्प उड़ाया हमारा यह लेख कटुवचन है तो आपके गुरु के वचन कटुतर हैं और बहुत बढ़कर—फिर जिन विद्वानोंके विषय में दयानन्दने उक्तवाक्य लिखे हैं उनका भांग पीना किसी के लेखसे मिद्ध नहीं अतएव उनको ऐसा लिखना अवश्य अयोग्य है और दयानन्दजी का महाभङ्गड़ी होना तो उनके ही लेख से प्रकट है इसकारण उनके लिये हमारा लेख कदापि अनुचित नहीं—देखो दयानन्दजीवनचरित्र दलपतराय मेकलित उरदू पृष्ठ ५८ । ५९ । ६० इस जगह मुझे भंगपीने का अभ्यास होगया कभी२ उसके कारण में सर्वथा बेहोश होजाया करता था एक शिवालय था जहाँ मैंने उस रात को व्यतीत किया—वहाँ जब मैं भंग के नशे से बेहोश होकर घोरनिद्रा में सोता था—प्रातः काल एक वृद्धस्त्री गुड़ और दही लेकर आई मैंने उसे खालिया दही खट्टा था भङ्गका नशा उतारने के लिये एक ओपधि होगया इति अपने स्वामीका भांग पीना देखिये कि दूसरे दिन दही खाने से नशा उतरा नहीं तो न जाने कबतक बेहोश रहते—आपके गुरु ने उक्तश्रुतिको छांदोग्य की लिखा और वह छांदोग्य में नहीं है उसका वह लेख निःसंदेह गप्प है छन्द हठ दुराग्रह ने किया है आपके उर में निवास। लाख समझायेंगे हम पर आप समझेंगे नहीं ॥

( शम्भुनाथ ) कुतर्क १६ दयानन्दमतसूचीमें से ।

( वादी ) दुःख और सुख भोग जीवका जब परतन्त्र बताया । कर्मों के करने में उसको फिर स्वतन्त्र क्यों गाया ॥ स० प्र० पृष्ठ ७१ ।

( प्रतिवादी ) वास्तव में जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और फलभोगनेमें जगदीश्वर की न्यायव्यवस्था के अनुसार परतंत्रही है प्रारब्ध का फल भोगने के लिये जो कर्म हम करते हैं वह तो अवश्य दैवीप्रेरणा से होते हैं जैसे किता ने किसी को दुःख दिया और उसका फल दुःखदेनेवाले को ईश्वर की ओर

ये यह नियत हुआ कि उसको भी इसीप्रकार दुःख दिया जावे तो जोर कर्म (विश्लेषणों का परिणामरूप) वह दुःख भोगने के लिये इसजन्ममें करेगा या यों कहो कि जो इस जन्म में उसको दुःख देने का सामान बनेगे वह तो अवश्य ईश्वर की ओर से समझे जा सकते हैं न कि भार कर्म इत्यादि ।

( उत्तर ) महाशय प्रथम ही भूल देगिये आपने हमारे छन्दके अंत में- स० प्र० पृष्ठ ७१ अशुद्ध लिखा है दयानन्दमतसूची में पृष्ठ १९२ तथा ५९० छपा है जैसा गुरु वैभेदी चले अन्तु स्वतन्त्र परतन्त्र विषय को हमने दयानन्दमतपरीक्षा पत्रार्थप्रकाश समीक्षा में वेदादि सन्शास्त्रों के प्रमाण और युक्तियोंसे विस्तारपूर्वक लिखा है वहां जीवको कर्म करने तथा सुखदुःखरूप कर्मों का फल भोगने में सर्वथा अपने पूर्वकर्मानुकूल सम्यक् परतन्त्र ( ईश्वरगर्भीन ) सिद्ध किया है वहां देग्वलीजिये यदि भ्रम दूर न हो तो उसका यथार्थ उत्तर दीजिये-दयानन्दमतसूची में हमारा इतना ही आक्षेप है कि जब सुखदुःखरूप कर्मों का फल भोगने में जीवको परतन्त्र मानते हो तो कर्मों के करने में उसको सतन्त्र क्यों जानते हो- सो आप भी मानही चुके कि प्राग्बन्ध का फल भोगने के लिये जो कर्म हम करते हैं वह तो अवश्य दैवी प्रेरणा से होते हैं इत्यादि और झगड़ा ही क्या है हां दयानन्दियों का प्रसन्न करके कुछ लाभ उठाना है तो आप की इच्छा है आप का शेष लेख सर्वथा अप्रसंग अयुक्त और अन्यथा है उस का कारण हठ दुःग्रह पक्षपात द्वेष और अज्ञाना है-आपलोग केवल चार संहिताओं को प्रमाण मानते हो और उत्तर देने के समय शुकवाग्वर तथा वेपते के श्लोकों और अंग्रेजों के लेखों से अपना कल्याण जानते हो धन्य छन्द-धन्य बुद्धिको तेरी और धन्य विद्या को तेरी । धन्य पाताको तेरी और तुझ को प्यारे धन्य है ॥ वास्तव में संपूर्ण जीवोंको उनके पूर्वकर्मानुसार ईश्वर अपनी न्यायव्यवस्था के अनुकूल जैसे-जैसे और इन्द्रियोंदत्त है जैसे उनसे शरीर और इन्द्रियोंके द्वारा वैसर ही कर्म करते हैं अन्यथा कदापि नहीं कर सकते-मनुष्यों का काम पशुपक्षी और पशुपक्षियों का काम मनुष्यों से कदापि नहीं होसकता-मनुष्य अपने पूर्वकर्मानुकूल ही धनी, निधन, विद्वान्, अविद्वान्, नीरोग रोगी आदि होते हैं धनी विद्वान् और नीरोग आदि का कर्म निधन सुख और रोगी नहीं कर सकते-जैसे-जैसे शरीर इन्द्रियां धन, विद्या, आगेरपनादिकी प्राप्ति जीवोंके पूर्वकर्मानुकूल ईश्वरगर्भीन है तो जीव कर्म करने में स्वतन्त्र कहा है किन्तु परतन्त्र ही है जीवों का उनके पूर्वकर्मानुकूल जो कुछ सुखदुःखरूप भोगों की प्राप्ति हो-



तो है वह प्रायः किसी न किसी कर्म ही के करने से होता है जिसके पूर्वकर्मानुकूल जो सुख दुःख भोग ईश्वरने नियत किया है यदि वह परतन्त्रता से है तो जिसकर्म के करने से उस सुख दुःख की प्राप्ति होगी वह भी अवश्य परतन्त्रता से है क्योंकि यदि जीव वह कर्म न करे तो उस सुख दुःख की प्राप्ति न हो जैसे किसीके पूर्वकर्मानुकूल उसको सदरआला, डिपुटी, तहसीलदार आदि उच्चपदकी प्राप्ति ईश्वरने नियत की है तो उस उच्च पद के योग्य विद्या पढ़ना आदि कर्मों का करना भी परमान्मा ने उसके लिये अवश्य नियत किया है क्योंकि उन कर्मों के किये बिना उक्त पदों की प्राप्ति हो नहीं सकती यदि उक्त पदों की प्राप्ति परतन्त्रता से है तो उक्त कर्मों का करना भी अवश्य परतन्त्रता से है १ कोई लोग व्यापार और कोई नौकरी कोई शिल्पविद्या से धन प्राप्त कर के सुख भोग करते हैं यदि उनका वह सुख भोग परतन्त्रता से है तो उनका व्यापार आदि कर्म करना भी अवश्य परतन्त्रता से है २ किसान लोग पृथ्वी को जोतते हैं उस में अन्नादि को बोते हैं उस की वृद्धि और रक्षा के अर्थ पानीदेना आदि और भी कर्म करते हैं तब अन्नादि उत्पन्नहोते हैं और उनकी प्राप्ति से वे सुख भोग करते हैं यदि उनका वह सुखभोग परतन्त्रतासे है तो पृथ्वी जोतना आदि कर्म भी अवश्य परतन्त्रतासे है क्योंकि उक्त कर्मोंके बिना उनका उस सुखकी प्राप्ति कदापि न होती ३ दरजी सुनार लुहार बढ़ई आदि अपने २ कर्म के द्वारा धनप्राप्त करके सुख भोग करते हैं उनका वह सुख भोग उनके पूर्व कर्मानुकूल परतन्त्रता से है तो उनका वह २ कर्म जो कि धन प्राप्ति का कारण है वह भी अवश्य परतन्त्रतासे है ४ जो लोग चौरा आदि दुष्कर्मों के करने से बंदीग्रह वा कालेपानी को जाते हैं तथा फाँसी पाने पर्यन्त दुःखोंको भोगते हैं यदि उनका वह दुःख भोग परतन्त्रतासे है तो चौरा आदि दुष्कर्मों का करना भी परतन्त्रतासे है क्योंकि उन कर्मोंको न करते तो उन दुःखोंको भी न भोगते—सन् १८५७ में जिन लोगों ने सरकार के विरुद्ध कर्म किये उनको कठिनदंडरूप दुःख भोगना पड़ा और जिन्होंने सरकार के हितकारी कर्मोंको किया उनको सरकारने ग्रामादि पारितोषिकादिया जिससे उनको अतिसुख भोग प्राप्तहुआ यदि उनका वह दुःख और सुख भोग परतन्त्रता से है तो उनका उक्त कर्म करना भी परतन्त्रतासे है ५ कोई अपने घर से निकलकर परदेश को चला गया और परदेश में उसको उसके पूर्व कर्मानुकूल सुख वा दुःख की प्राप्तिहुई यदि वह परतन्त्रता से है तो उसका निकलजाना आदि कर्म भी अवश्य परतन्त्रतासे है—दयानंदजी ने अपने घरसे निकलकर

चिरकाल पर्यन्त नाना प्रकार के दुःख भोगे जाँ कि उनके जीवन चित्र से प्रकट हैं यदि वह अपने घरमें न निकलते और वन पर्वतों में न फिरते तो उन दुःखों को कदापि न भोगते फिर जब उन्होंने वन से आकर गंगाजी के निकट २ फिरना प्रारंभ किया केवल लंगोटी और एकगाढ़े की चादर पास थी भीखमाँगकर रोटीखाते थे फिर नगर २ फिरकर अपने मतका उपदेश करने लगे तो ऐसा ऐश्वर्य बढ़ा कि चादर और दुशाले ओढ़नेलगे निवाड़ के पलंगपर पौढ़नेलगे—रसोइया उत्तमोत्तम भोजन बनाने लगा कहार हाथ पाँव धुलवाने लगा—कोठी और बंगलों में निवास हुआ हुक्का और चाय पीने का अभ्यास हुआ—पान चबाने लगे मुखरचाने लगे—शरद ऋतु में पुष्टि कारक पाकादि बनवाये—दुग्ध और घृतमय भोजन भोग लगाये सहस्रों रूपया भेट पूजा में आने लगा—और सहस्रों छापेखाना कमाने लगा निदान उनका यह सुख भोग परतंत्रता से है तो नगर २ में जाकर अपने मतका उपदेश करना पुस्तक बनाना आदि समस्त कर्मभी अवश्य परतंत्रता से है यदि वे वनही में रहते तो इन सुखों का भोग कदापि संभव नथा उन के उपदेशों से जोकुछ धर्म की हानि हुई कभी नहोती जोकुछ अधर्म और रागद्वेष बढ़े कदापि न बढ़ते ६ कोई किसिमिकार के क्लेशों से विष खाकर कोई कृपादि में डूबकर मरण पर्यन्त दुःखों को भोगता है यदि उसका वह दुःख भोग परतंत्रता से है तो विषपानादि कर्म भी अवश्य परतंत्रता से है ७ कोई वृक्ष वा घोड़े आदिपर से गिरकर महान दुःख को भोगता है यदि उसका वह दुःख भोग परतंत्रता से है तो वृक्षादि पर चढ़ना आदि कर्म भी अवश्य परतंत्रता हीसे है ८ प्रायः रेलके टकराने वा नावके डूबने से मनुष्यादि को नानाप्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं यदि उनका वह दुःखभोग परतंत्रता से है तो उनका उमरेल वा नाव में बैठना और रेलके टकराने वा नाव डूबने के कारणों का होना भी अवश्य परतंत्रता हीसे है ९ जिसके प्रारब्ध में परमात्मा ने पुत्रोत्पत्ति का सुख नियत किया है यदि वह स्वतंत्रता का अभिमानी यह कहें कि मैं विवाह और स्त्री प्रसङ्ग कदापि न करूँगा मरण पर्यन्त ब्रह्मचर्यही से रहूँगा तो उसका कथन निष्फल होगा परमात्माही का नियत करना प्रबल होगा वम जबकि उसको पुत्रोत्पत्ति का सुख परतंत्रता से स्वीकार है तो उसको विवाह और स्त्री प्रसङ्ग आदि कर्म करना भी परतंत्रता से आवश्यक और बलात्कार है यदि आप कहें कि हमारे मत में ११ पुरुषों तकमे संतानोत्पन्न कराने की आज्ञा है हम किसी से नियोग

करायेंगे और पुत्रवान होजायेंगे हमारी स्वतंत्रता से ब्रह्मचर्य अचल होगा—और परतंत्रता से पुत्रोत्पत्ति सुखरूप फल सफल—तो हमारा कथन औरस-पुत्रके विषय है आप नियोग से पुत्रोत्पन्न करायेंगे तो वे औरस न कहायेंगे परतंत्रताही प्रबल रहैगी और आपकी स्वतंत्रता सर्वथा निष्फल ? जिस कन्या के प्रारब्ध में उसके पूर्व कर्मानुकूल ईश्वर ने बाल्यावस्था में विधवा होना नियत किया है यदि उसका पति मरणरूप दुःख भोग परतंत्रता से है तो उसके माता पिता आदि का उसका उस काल में विवाह करना भी अवश्य परतंत्रता से है ? पांडवों का तेरह वर्ष पर्यन्त ब-नादि में रहकर महान दुःख भोगना परतंत्रता से है तो श्री महाराज युधिष्ठिर का द्यूत आदि कर्म करना भी अवश्य परतंत्रता से है—भारत के घोर संग्राम में सहस्रों को पुत्र पौत्रादि के मरण का दुःख हुआ. सहस्रों विधवा हुई सहस्रों के प्राण गये यदि वह सब परतंत्रता से है तो दुर्योधन का पांडवों से द्वेष करना और श्रीकृष्ण महाराज के समझाने पर भी संधि को न मानना अवश्य परतंत्रता से है—यदि कौरव और पांडव स्वतंत्र होते और परस्पर प्रीति से रहते तो इस प्रकार भारत का सत्यानाश कदापि न होता—परंतु ईश्वर के न्यायानुकूल जैसा होना था वैसाही हुआ—भीष्म पितामहादि परम विद्वानों की भी कुछ न चली किभी ने भी उस महा उपद्रव की शांति कर्गने में स्वतंत्रताका अभिमान न किया सक्ने यही कहा कि अवश्य नाश होनाहै एतत्प्रधानं न च काम कारो यथा नियुक्तोऽस्मि तथा कर्गमि इत्यादि हमने अनेक वचन महाभारत से पूर्ण परतंत्रता द्योतक दयानंद मत परीक्षा सत्यार्थप्रकाश समीक्षा में लिखे हैं शस्त्र के वचनों को मानना वा विपरीत जानना इस में भी कोई स्वतंत्र नहीं किंतु संपूर्ण जीव कर्म करने तथा सुख दुःख भोगने में अपने पूर्व कर्मानुकूल सर्वथा परतंत्रही हैं ? मुसलमानों के राज्य में प्रजा को नाना प्रकार के दुःखों का भोग हुआ और अंग्रेजों के राज्य में भांति २ के सुखों की प्राप्तिहुई यदि उक्त दुःख और सुख भोग उक्त प्रजाके पूर्वकर्मानुसार परतंत्रता से है तो मुसलमानों का अन्याय करना और अंग्रेजों का न्यायकारी दयालु तथा प्रजा पालक शुभगुणों वाला होनाभी अवश्य परतंत्रता से है क्योंकि ऐसा न होतातो जिन २ के प्रारब्ध में ईश्वरने दुःख वा सुख भोग नियत किया उनको उसकी प्राप्ति कैसे होती ? अधिक लोग जत्रपार्ग में चलते २ क्षुधा पिपासा गरमी आदि से अति पीड़ित होजाते हैं तब जहां कहीं जलाशय और छाया आदि का सुखदेखतेहैं ठहर जातेहैं उनको वहां शीतलवायु लगने स्नान भोजन शयनादि

करनेसे अतिसुख प्राप्त होता है यदि वे वहां न उड़ें और निरंतर चले ही जायें तो उक्त सुखकी प्राप्ति तो क्या किंतु और अधिक दुःखकी प्राप्ति हो यदि उनको उस सुख की प्राप्ति परतंत्रता में अवश्य है तो उनका वहां ठहरना आदि सब कर्म भी परतंत्रता में अवश्य है—धनी लोग सायंकाल को जंगल में हवा खाने वा बागों की सैर करने को जाते हैं—कोई २ ग्रीष्मकाल में नैनी ताल आदि शरद देशों में जा निवास करते हैं उनको वहां अतिसुख प्राप्त होता है यदि वे वहां न जायें तो उस सुख की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती यदि उनका वह सुख भोग परतंत्रता में है तो उनका उक्त स्थानों में जाना आदि कर्म भी अवश्य परतंत्रता में है १४ कहाँ तक कहें उठना बैठना खाना पीना सोना जागना आदि जितने कर्म होते हैं सब अपने पूर्व कर्मानुसार ईश्वरार्थीन परतंत्रता ही से होते हैं क्योंकि प्रत्येक कर्म से कुछ न कुछ सुख वा दुःख की प्राप्ति अवश्य होती है प्रायः देखा जाता है कि हम अपने स्थान में बैठे हैं लघुशका वा और किसी कार्य को उठे दीवार वा किवाड़ चौखट आदि से हाथ पाँव में कुछ चोट लग गई वा पाँव में काँटा कंकड़ी आदि लगकर कुछ दुःख हुआ यदि न उठते तो वह दुःख कदापि न होता—अपने अनुकूल उत्तम भोजन से सुख और प्रतिकूल निकृष्ट भोजन से दुःख होता ही है—ग्रीष्मकाल में शरद जलपान करने से कैसा आनंद होता है इत्यादि यहाँ तक संक्षेप से युक्ति पूर्वक यह बात सिद्ध की गई कि जीव सुख दुःख भोग में परतंत्र है तो कर्म करने में भी अवश्य परतंत्र है अतएव दुःख और सुख भोग जीवका जव परतंत्र बताया कर्मों के करने में उसको फिर स्वतंत्र क्यों गाया ॥ दयानन्द पर हमारा यह आक्षेप सर्वथा बलवान है और जीवों को कर्म करने में स्वतंत्र मानना पूर्ण नास्तिकता और अज्ञान-कौशीतिक उपनिषत् में लिखा है—एषश्च साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकैभ्य उन्निर्नापत एष उवा साधु कर्म कारयति तं यमधो निर्नापते । अर्थात् बही (परमात्मा) अच्छे कर्म कराता है उसको कि जिसको इन लोकों से ऊपर ले जाने की इच्छा करता है और बही बुरे कर्म कराता है उसको कि जिसको नीचे ले जाने की इच्छा करता है ॥ सनातन धर्मावलम्बी धर्म जिज्ञासु मत्पुरुषों को उपनिषत् का एक ही वचन परम प्रमाण है सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग ही में कल्याण है—श्रीवेदव्यास महर्षि ने भी जीवको सर्वथा परतंत्र ही माना है कर्मों के करने में स्वतंत्र कहने को अशुद्ध और युक्ति विरुद्ध जाना है तथा हि परात्तुतच्छ्रुते—कृतप्रयत्नापेक्षस्तु—उत्तरमीमांसा अ० २ पाद ३ सू० ४१ । ४२ उक्त सूत्रों पर भाष्यकारों ने सम्यक् व्याख्या की है हमने विस्तार भय

से नहीं लिखी है सत्यके निर्णय की इच्छा होतो वहां देखलीजिये और अपने नास्तिकता रूप अज्ञान को शीघ्र दूर कीजिये अब दयानन्द ही के पुस्तकों से जीवका कर्म करने में सर्वथा परतंत्र होना सिद्ध किया जाता है और दयानन्दियों को मातपर मात दिया जाता है देखो सत्यार्थ प्रकाश मुद्रित सन् १८८४ ( ईश्वर ) सर्वान्तर्यामी—सर्व नियन्ता पृष्ठ १८१—हेदयानिधे ! आप की कृपा से मेरा मन जगत् में दूर २ जाता दिव्यगुण युक्त रहता है और वही सोतेहुए मेरामन सुषुप्ति को प्राप्त होता वा स्वप्न में दूर २ जानेके समान व्यवहार करता सब प्रकाशकों का प्रकाशक एक वह मेरा मन शिवसंकल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियों के अर्थ कल्याण का संकल्प करने द्वारा होवे किसीकी हानि करने की इच्छा युक्त कभी नहोवे ॥ २ ॥ हे सर्वान्तर्यामी ! जिससे कर्म करनेहारे धैर्ययुक्त विद्वान लोग यज्ञ और पुद्गादि में कर्म करते हैं जो अपूर्व सामर्थ्ययुक्त पूजनीय और प्रजा के भीतर रहने वाला है वह मेरा मन धर्म करने की इच्छायुक्त होकर अधर्म को सर्वथा छोड़देवे ॥ ४ ॥ जो उन्कृष्ट ज्ञान और दूसरे को चितानेहारा निश्चयात्मकवृत्ति है और जो प्रजाओं के भीतर प्रकाशयुक्त और नाशरहित है जिसके बिना कोई कुछभी कर्म नहीं करसकता वह मेरा मन शुद्धगुणों की इच्छा करकेदुष्टगुणों से पृथक् है ॥ ५ ॥ हे जगदीश्वर जिससे सब योगीलाग इन सब भूत भविष्यत् वर्तमान व्यवहारों को जानते जो नाशरहित जीवात्माको परमात्मा के साथ मिलके सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है, जिस में ज्ञान क्रिया है पांच ज्ञानेंद्रिय बुद्धि और आत्मायुक्त रहता है उस योगरूप यज्ञको जिस से बढ़ाने हैं वह मेरा मन योग विज्ञानयुक्त होकर विद्यादि क्लेशों से पृथक् रहै ॥ ६ ॥ हे परमविद्वन् परमेश्वर ! आप की कृपासे मेरे मन में जैसे रथ के मध्य धुरा में आरा लगेरहते हैं वैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और जिस में अथर्ववेद भी प्रतिष्ठित होता है और जिसमें सर्वज्ञ सर्वव्यापक प्रजा का साक्षी चित्त चेतन विदित होता है वह मेरा मन अविद्याका अभावकर विद्याप्रिय सदा रहै ॥ ७ ॥ हे सर्वनियन्ता ईश्वर ! जो मेरा मन रस्सी से घोड़ों के समान अथवा घोड़ों के नियन्ता सारथी के तुल्य मनुष्यों को अत्यन्त इधर उधर डुलाता है जो हृदय में प्रतिष्ठित गतिमान और अत्यन्तवेगवाला है वह सब इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोकके धर्मपथ में सदा चलाया करै ऐसी कृपा मुझपरकीजिये ॥ ७ ॥ पृष्ठ १८४। १८५। हे परमात्मन ।

आप हम को श्रेष्ठमार्ग से संपूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये और जो हम में कुटिल पापाचरणरूप मार्ग है उससे पृथक् कीजिये-आप हमारे छोटे बड़े जिनगर्भ माता पिता और प्रियवन्धुवर्ग तथा शरीरों का हनन करने के लिये प्रेरित मन कीजिये ऐसे मार्ग से हम को चलाइये जिससे हम आपके दण्डनीय न हों ॥ १ ॥ आप हम को अमन्मार्ग से पृथक्कर सन्मार्ग में प्राप्त कीजिये अविद्यान्धकार को छुड़ाके विद्यारूप सूर्य को प्राप्त कीजिये पृष्ठ १८२ । १८६ ।

( परमेश्वर ) जीवों को नियम में रखता है । पृष्ठ १९६ संस्कारविधि मुद्रित संवत् १९३३ परमेश्वर बृहस्पति जो सबसे बड़ा सो मेरे पास तुझ को नियुक्त करदे पृष्ठ ५६ हमारा इष्ट उपास्यदेव हमारी बुद्धियों को प्रेरणा करें सद्विद्या, सत्कर्म, सत्संग, सद्धर्म, सद्ब्रह्म परमात्मा इत्यादि उत्तम कामों में सब दुष्टता से छुड़ा के स्थिर करें पृष्ठ ६५ परमात्मन् । ब्रह्मचर्यादि व्रतों का पालन तथा पूर्ति करानवाले आप ही हो पृष्ठ ६९ हे इन्द्रपरमात्मन् ! इन स्त्री पुरुष दोनों को प्रेरणाकर पृष्ठ ११३ सब इष्टकर्म हम से करावै सब कामों की सिद्धि और वृद्धि करें पृष्ठ ११८ जो परमात्मा सब को व्यवस्था में रखनेवाला-हमारे मन का भद्र व्यवहार में चला पृष्ठ १४७ परमेश्वर ! जो हमारे शत्रु उत्पन्न होयें उनको तू प्रेरणा कर जिससे वे दूर छोड़ें तथा हम भी पृष्ठ १४८ आर्याभिनियम मुद्रित संवत् १९३२ उत्तम कामों में प्रेरक दुष्ट कार्यों से निरोधक आप हमारे होयें पृष्ठ १२ हे ईश्वर हमको सब दुष्टकामों से सदा पृथक् रख-हम को अभर्म करने की इच्छा भी न होय पृष्ठ ३० हे सहनशीलेश्वर ! आप की कृपा से हमलोग सदैव आप की ही स्तुति प्रार्थना और उपासना करें आप को ही पितामाता वन्धु राजा स्वामी सहायक सुखद सुहृद परमगुरुवादि जानें आपको भूल के क्षणमात्र भी न रहें-आपके अनुग्रहसे सब हमलोग परस्पर प्रीतिमान् रक्षक सहायकारक होयें एक दूसरे को दुःख न देखसकें स्वदेशस्थादि मनुष्यों को अत्यन्त परस्पर निर्वैर प्रीतिमान् पाखण्डरहित करें हमलोग नाना पाखण्ड असत्य वेदविरुद्ध मतों को शीघ्र छोड़ के एक सत्य सनातनमतस्थ होयें-हे विश्वगुरो ! मुझ को असत् ( मिथ्या ) और अनित्यपदार्थ तथा असत् कामसे छुड़ा के सत्तथानित्य पदार्थ और सद् व्यवहारमें स्थिर कर-ज्ञान पूर्वक पाप करनेसे भी मुझको रोकदे-हे न्यायाधीश ! कुकाम कुलोभ कुमोह भयशोकालस्येर्ष्याद्वेषप्रमाद विषयतृष्णानैर्धूर्वाभिमान दुष्टभाषा विद्याभ्यो निवारय एतेभ्यो विरुद्धेषूत्तमेषुगुणेषु संस्थापयतुमां हे ईश्वर ! कुकाम कुलोभादि पूर्वोक्त दुष्ट दोषों को स्वकृपा से छुड़ाके

श्रेष्ठकामादि में यथावत् मुझ को स्थिर कर पृष्ठ ३६ । ३७ । ३८ । सब के मनका दमन करनेवाला है पृष्ठ ३९ । हे दुष्टस्वभावनाशक विदीर्ण कर्म में विज्ञानादि शुभ गुणों का नाश करनेवाले में मुझको मत रख किंतु उससे मेरे आत्मादि को उठाके विद्या सत्य धर्मादि शुभ गुणों में सदैव स्वकृपा सामर्थ्य से ही स्थिर कर ॥ पृष्ठ ४० ॥ हे दुष्टानामुपरिक्रोधकृत् मुझ में भी दुष्टोंपर क्रोध धारण करा मुझमें भी आव सहन सामर्थ्य धारण कर पृष्ठ ४४ सर्वोत्तम बुद्धि हमको आप दीजिये पृष्ठ ४५ परमात्मा सब जगत् को यथायोग्य अपनी २ चालपर चलारहा है—सो आत्मा का भी आत्मा है पृष्ठ ४६ हम लोगोंको भी कृपा से धर्मात्मा कर—निर्वैर कर पृष्ठ ५६ मेरा मन सदा धर्म कल्याण संकल्पकारी ही आपकी कृपा से हो कधी अधर्मकारी न हो वह मन—आपके वक्ष्यमें ही है सो उसको आप हमारे वक्ष्य में यथावत् करें जिससे कुकर्म में कधी न फसे सदैव विद्या धर्म और आपकी सेवामें ही रहै पृष्ठ ६७ दयानन्द कृत यजुर्वेदभाष्य वही ईश्वर उक्त श्रेष्ठ कर्म करने के लिये कर्म करने और करानेवालों को नियुक्त करता है पृष्ठ १९ अच्छे कामों में जलदी प्रवेश करने वा करानेवाला जगदीश्वर है पृष्ठ २२८ जो अन्तर्यामी सब सुखों का देनेवाला है वह अपनी कृपा करके हम लोगों की बुद्धियोंको उत्तम २ गुण कर्म स्वभाओं में प्रेरणा करे पृष्ठ २३५ परमेश्वर जीवों को दुष्ट मार्गोंसे अलग और धर्ममार्ग में स्थापन करके इस लोक के सुखों को उनके कर्मानुसार देता है—पृष्ठ ४५३ मंसर्वभेदक चराचरात्मा परमेश्वर के लिये—पृष्ठ ५५६ हे सुखके देनेहार सत्यकर्मों में प्रेरक जगदीश्वर—पृष्ठ २०८३ ( परमेश्वर ) हमको शुभ गुण कर्म स्वभाओं में प्रेरणा करे । हम लोग इस बात को यथार्थ प्रकार से नहीं जानते कि वह ईश्वर किमयुक्तिसे हमको प्रेरणा करता है कि जिसके सहाय से ही हम लोग धर्म अर्थ काम और मोक्षों के सिद्ध करने को समर्थ हो सकते हैं अध्याय ३६ पृष्ठ ११२३—आप हम लोगों से कुटिलतारूप पापाचरण को पृथक् कीजिये—ईश्वर पापाचरण मार्ग से पृथक् कर धर्मयुक्त मार्ग में चलाके विज्ञान देके धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध करने के लिये समर्थ करता है—अध्याय ३६ पृष्ठ १२८७ दयानन्द ही का इत्यादि लेख जो कि वेदमंत्रों का उल्लाह है जीवों को कर्म करने में सर्वथा परतंत्र अर्थात् अपने पूर्वकर्मानुसार ईश्वराधीन सिद्ध करता है अनन्व उन्हीं जो दूसरीबार के छपे सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ १९२ तथा ५९० में यह लिखा है

कि जीव अपने कामों में स्वतन्त्र उनका वह लेख उनही के विरुद्ध है और वेदादि सत्शास्त्रों तथा समस्त विद्वानोंके प्रतिकूल होने से सर्वथा त्याज्य और अशुद्ध है फिर उक्त सत्यार्थप्रकाशके पृष्ठ १६२ में लिखा है ।

प्रश्न—स्वतन्त्र किमको कहने हैं ?

उत्तर—जिस के आधीन शरीर प्राण इन्द्रिय और अन्तःकरणादि हों इति कहिये शरीर प्राण इन्द्रियादि जीव के आधीन हैं वा जीव के पूर्व-कर्मानुसार ईश्वराधीन—यदि शरीर प्राणइन्द्रियादि जीव के आधीन हों तो कोई कभी रोगग्रस्त न हो और न कभी मरे छन्द—दयानन्दका लेख निर्मूल है । कहाँ शिष्टपुरुषोंके अनुकूल है ॥ दयानन्दकी सर्वथा भूल है । असङ्गत है और वेद प्रतिकूल है ॥ असत्को आप सत् समझे अजी सत्को मृषा समझे । बुरा समझे बुरा समझे जो कुछ समझ बुरा समझे ॥ मेरे कथन की पुष्टि शत्रुने आप की है । लाखोंमें आज बाजों हमने रिपुमें ली है ॥ अब हम को इसविषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है कि जीवों का कर्म करने में स्वतन्त्र मानना दयानन्दहीके लेखों से मञ्चा नहीं है आप अपने स्वामी से लड़िये और दिल खोलकर झगड़िये कि तूने हम को झूठा बनाया है और असन्मार्गपर चलाया है जगन्नाथदास के साक्षी वेदमंत्र हैं कि—जीव सर्वथा परतंत्र हैं सत्यको शिरपर धारिये अन्तपर लात मारिये सत्य से जय है और अन्त से भय सत्यमेव जयतेनान्तम् ॥ छन्द—झूठ का पक्ष करके झूठा ही तू कहाया । सच तो बता कि तूने लाभ इसमें क्या उठाया ॥ तू जानता है मनमें गप्पाष्टक की माया । फिर बुद्धिपर ये तेरी अज्ञान कैसा छाया ॥ पुस्तक पे नाम तेरा किमने मृषा छपाया । दोष अपनी अज्ञता का तुजपर वृथा लगाया ॥ कर सत्य ग्रहण अब भी सत्शास्त्र में जो गाया । होकर हितैषी तुज को मैंने यह कह सुनाया ॥ परमात्मा के अनुग्रहमे यह ग्रंथ समाप्त हुआ मिथ्या भाषियों को दुःख और सत्याभिलाषियों को सुख प्राप्त हुआ छन्द—काटने को मत दयानन्दी के है यह इन्द्रवज्र । दुकड़े २ होगया है देखलो शंभुकुठार ॥ लोक और परलोक में सुख सत्यभाषण ही से है । सत्य की जय है सदा अन्तकी है सर्वत्र हाग ॥

दोहा—सिद्धि प्राणनिधि चन्द्रमा, विक्रमाब्द पहिचान ।

शुक्रपक्ष आषाढ ऋषि, पूति ग्रंथ की जान ॥



रेमूर्ख भजनकर भगवत् का यह काल भलाही पाया है ॥ था उदय तेरेगुप्त कर्मों का जो मिली मनुजकी काया है ॥ १ ॥ अबहुआ विमुख क्यों कर्त्तासै किसने तुझको बहकाया है ॥ हैं काम तेरे सब उलटेही क्या भांगधतूरा खाया है ॥ २ ॥ क्यों अन्यदेवका भक्तवना क्यादिल में तेरे समाया है ॥ निर्भय होगया निरंजन सै जिसने यह जगत् बनाया है ॥ ३ ॥ क्या धर्म लोपजी ने अपनी माया का जाल बिछाया है ॥ धनहरण हेतु बहुकपट किये सत् पथका चिन्ह मिटाया है ॥ ४ ॥ एक स्त्रीको दशपुरुषों से जिसने नियोग बतलाया है ॥ करदिया धर्मका नाश हाय व्यभिचार कर्म फहलाया है ॥ ५ ॥ पहलै पुरदों का श्राद्ध आप विस्तार सहित छपवाया है ॥ फिर वेद विरुद्ध कहा उसको अज्ञान है यह या माया है ॥ ६ ॥ खाकरकैमांसपराये को जिसने निज मांस बढ़ाया है ॥ परलोक विगाड़लिया उमने पापों का पुंज कपाया है ॥ ७ ॥ जिहाका स्वादमनाने को जीवों को बूया सताया है ॥ कलपायाजायेगा तूभी जो दीनोंको कलपाया है ॥ ८ ॥ पीकर्मक मद्यभला प्यारे कह किसने लाभ उठाया है ॥ मवनेही जिसै कहानिदित तू क्यों उमपर ललचाया है ॥ ९ ॥ जिसने परधन परनारी में मनको क्षणमात्र चलाया है ॥ रौरव में अपने रहनेको घर उसने आप बसाया है ॥ १० ॥ श्री ब्रह्मादिक सत्पुरुषोंको क्यों मिथ्या दोष लगाया है ॥ करकै निन्दा निज शिष्टोंकी अपना ही हास्य कराया है ॥ ११ ॥ उपनयन कर्मको त्यागदिया कंठीसे गला बंधाया है ॥ होगयावाह्य द्विज कर्मोंसे हा वृथा ब्राह्म्य कहलाया है ॥ १२ ॥ ब्रह्मा के द्वारा वेदों को जिसने हम तक पहुंचाया है ॥ है एक उपास्य वही सबका इत उत क्यों मन भटकाया है ॥ १३ ॥ ले जगन्नाथ जगदीश शरण जो सकल विश्व में छाया है ॥ गुरु इन्द्रमणी ने वाग २ तुज को यही मंत्र सुनाया है ॥ १४ ॥

फंसा है जाल में पक्षी खुशी तू क्या मनाता है ॥ पहुँगी वेड़ियां भारी अभी ( निकट ) वह काल आता है ॥ १ ॥ हुआ है काम के वश में वही है क्रोध की ज्वाला ॥ नदी में लोभ और मोह की तू क्यों मन को बहाता है ॥ २ ॥ जगत्में प्रीति कर बैठा विमुख होकर निरंजन से ॥ सुधा को छोड़ कर प्यारे वृथा ( भला ) क्यों विष को खाता है ॥ ३ ॥ करे क्या दर्प परिजन का बने हैं सुख के सब साथी ॥ पृथक् जब प्राण हों तन से न कोई साथ जाता है ॥ ४ ॥ लगा मन ब्रह्म से निश दिन जो भव सागर तरा चाहें ॥ नहीं परलोक में रक्षक पिता सुत वंधु भ्राता है ॥ ५ ॥ धनी को धन नहीं देना न देना कर कर्मों को ॥ दरिद्री और सत्पुरुषों को धन

देना बढ़ाता है ॥ ६ ॥ प्रथम सब सृष्टि के जिसने दिये हैं वेद ब्रह्मा को ॥ वही अव्यय स्वभक्तों को चतुष्फल का प्रदाता है ॥ ७ ॥ किसी प्राणी को तन मन से कभी मत दुःख दो किंचित् ॥ न पावैगा कभी सुख वह जो औरों को सताता है ॥ ८ ॥ वृथा क्यों दोष देता है किसी को दुःख में अपने ॥ समझ ले कर्म का अपने ही तू सुख दुःख पाता है ॥ ९ ॥ प्रणव का ध्यानकर मन से जगन्नाथ अपने तू सम्यक् ॥ वही है मुक्ति का दाता कि जो सब का विधाता है ॥ १० ॥

अरे मन काल खड़ा लकलारै शिर पर ॥ ध्रु ॥ उत्तम अश्व कोई नहीं रहता जब आ मृत्यु पुकारै ॥ रहे कहां वे नृप थीं जिन के असौहिणी अठारै ॥ १ ॥ जिस दिन बजे कूच का बाजा आपही आप सिधारै ॥ केवल धर्म मित्र हो तेरा तू उस को क्यों मारै ॥ २ ॥ परमेश्वर हरण करै जो कोई पर अप्रिय विचारै ॥ निज परलोक बिगाड़ें तीनों जो परदार निहारै ॥ ३ ॥ वेद विरुद्ध मिथ्या जालों में काहें को शिर मारै ॥ परब्रह्म की शरणागत हो वहि भवपाश उतारै ॥ ४ ॥ जगन्नाथ जगदीश हेतु जो निजतनमन सबवारै ॥ मृत्यु पाश कटजां सब उस के सदा रहै पौ वारै ॥ ५ ॥

दिल रँगा जिमने नहीं कपड़े रँगाये क्या हुआ ॥ सत् असत् जाना नहीं पंडित कटोये क्या हुआ ॥ १ ॥ है जगत् का ईश जो उसपर न दृढ़ विश्वास है ॥ आयों में नाम की गणना काये क्या हुआ ॥ २ ॥ वेद के अनुकूल जो करते नहीं आचार आप ॥ ऋग् यजुः और साम के लेखर सुनाये क्या हुआ ॥ ३ ॥ है जगत् का एक स्वामी रूप से वह है रहित ॥ और को उस के सिवा मस्तक निवाये क्या हुआ ॥ ४ ॥ वेद के अनुकूल जो कुछ शास्त्र हैं सो मत्स्य है ॥ तद्विरुद्ध और बाह्यमत लाखों चलाये क्या हुआ ॥ ५ ॥ वश किया दश को नहीं एक क्रोध की अग्नि है तीव्र ॥ भस्म को धारण किये और कच बढ़ाये क्या हुआ ॥ ६ ॥ मांस को छोड़ा नहीं और मद्य के मद में है मग्न ॥ लेकर माला हाथ में दाने फिराये क्या हुआ ॥ ७ ॥ अन्न को त्यागा जिन्होंने वन में खाये कन्दमूल ॥ जाना न ब्रह्मानन्द को तो तन सुखाये क्या हुआ ॥ ८ ॥ तीन वर्णों के लिये उपनीत का उपदेश है ॥ छोड़कर सद्धर्म को कंठी बंधाये क्या हुआ ॥ ९ ॥ लोभ वा भय से करें मिथ्या कथन जो रात दिन ॥ लोक दर्शन के लिये आसन बिछाये क्या हुआ ॥ १० ॥ हो जिसे शक्ति करै दुष्टों का मर्दन क्यों नहीं ॥

जो कि निर्वल आप हैं उन के सताये क्या हुआ ॥ ११ ॥ जिसेन मा और वाप का आदर किया सम्यक् नहीं ॥ दूसरों को धन दिया लड़कू खिलाये क्या हुआ ॥ १२ ॥ दान दो विद्वान् को या दीनजन हो जो कोई ॥ मूर्ख और धनवान को धन के झुकाये क्या हुआ ॥ १३ ॥ सृष्टि की आदि में ईश्वर ने दिये ब्रह्मा को वेद ॥ अग्निवायु की कथा झूठी सुनाये क्या हुआ ॥ १४ ॥ व्यास ने वेदों से लिखवा मुक्त को बंधन नहीं ॥ तुमने झूठे और मिथ्या गीत गाये क्या हुआ ॥ १५ ॥ शोक है विद्वान् को जामातु की सहश कहो ॥ नष्ट बुद्धि ने नये नाते सुझाये क्या हुआ ॥ १६ ॥ जैनियों ने विष दिया शङ्कर को यह भी झूठ है ॥ दोष यूँ निर्दोषको झूठे लगाये क्या हुआ ॥ १७ ॥ वेद की व्याख्या में बकरे का लिखें जो दूध घी ॥ ऐसे अज्ञानी भी अवज्ञानी कहाये क्या हुआ ॥ १८ ॥ बुद्धि साँपों की जो चाहो खोई है बुद्धि कहाँ ॥ स्वामीजी ने काम सब उलटे कराये क्या हुआ ॥ १९ ॥ हूँ जगत् के नाथ का मैं दाम तनमन से सदा ॥ दाम जो उसका नहीं तो जन्म पाये क्या हुआ ॥ २० ॥ इन्द्रमणि गुरु की कृपा से जिसेन पाया सत्यज्ञान ॥ मूर्खों ने तीर यदि उसपर चलाये क्या हुआ ॥ २१ ॥

### शुद्धि पत्रम् ।

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध    | शुद्ध     |
|-------|--------|-----------|-----------|
| ३     | २४     | दयालु     | कृपालु    |
| ३     | २६     | दयालु     | कृपालु    |
| १३    | १      | जात       | जाते      |
| १६    | १३     | मनवाले    | मतवाले    |
| २५    | २९     | भटिति     | आटिति     |
| २९    | १८     | सहस्र     | सहस्र     |
| ३०    | ३४     | शुभाशु    | शुभाशुभ   |
| ३०    | २६     | प्राति    | प्राप्ति  |
| ३१    | १०     | दुःखजन्यः | दुःखजन्यः |
| ३८    | ९      | याद       | यदि       |
| ४५    | ५      | विरुद्ध   | विरुद्ध   |

यह शुद्धिपत्र संक्षेपसे लिखा गया शेष अशुद्धियों को बुद्धिमान् लोग आप समझलेंगे ।

# विज्ञापन ।

मुरादाबाद निवासी जिन महाशयों ने दयानन्दखण्डन की पुस्तकों के छपवाने और विक्रय करके फहलाने को स्वधर्म रक्षार्थ चन्दा लिखा और दे दिया उनके नाम धन्यवाद सहित प्रकाशकरते हैं और जिन महाशयों ने लिख दिया है परन्तु उन से अभी लिया नहीं गया जिस समय ले लिया जायगा उनके नाम तब प्रकट करेंगे तथा और भी जो स्वधर्म रक्षा के उत्साही इस धर्म कार्य में चंदा देंगे उनके नाम भी धन्यवाद सहित प्रकट किये जायेंगे सम्पूर्ण सनातनधर्मावलम्बियों से निवेदन है कि वे अपने २ नगर में सौ २ पचास २ रुपया चंदा से एकत्र करके हमारी दयानन्द खण्डन की छोटी २ पुस्तकें नागरी और उर्दूकी आप छपवावें और अनुमान लागतपर विक्रय करके सर्वत्र फहलावें यदि बिना मूल्य बाँटे तो और भी उत्तम है जो महाशय हम से दश २ पाँच २ रुपये की पुस्तकें मँगाकर धर्मार्थ बाँटेंगे वे भी धर्म के सहायक समझे जायेंगे इससमय दयानंदालोग धर्म को सर्वथा नष्ट भ्रष्ट कर रहे हैं अतः उनके खण्डन की पुस्तकों का सर्वत्र फहलाना अति पुण्यजनक लाभदायक और आवश्यक है जिस से सम्पूर्ण को सत्यासत्यका सम्प्रकृति निर्णय होजाय और कोई शास्त्रविरुद्ध बातों में फँसकर अपने धर्म से पातित न हो इत्यलम् ।

जिन से चन्दा आगया उनके नाम ये हैं—

- लाला सांवलदास खत्री २०, रुपया
- लाला गणेशीलाल अग्रवाल १०, रुपया
- बाबू जगमोहनलाल रईस १०, रुपया
- लाला ललिता प्रसाद कमेरे ५, रुपया
- लाला गणेशीलाल रस्तोगी खण्डशाली ५, रुपया
- लाला हीरालाल रस्तोगी खण्डशाली ५, रुपया
- लाला रतनलाल खत्री आड़नी ५, रुपया
- लाला ताराचन्द तमोली ५, रुपया
- लाला मिसरीलाल कमेरे ५, रुपया
- जगन्नाथदास रस्तोगी १०, रुपया

जगन्नाथदास

दीनदारपुरा मुरादाबाद

ॐ

सच्चिदा नंदाय नमः

# प्रश्नोत्तर दीपिका

जोकि गवर्मेन्ट की तरफ से मारफत

जैन सभा के

दिगम्बरास्त्राय के जेनियों से प्रश्न  
करे गये उनके उत्तर में जैन सभा देहली

की तरफ से बनाई

पंडित शिवचंद्र ने

PRISHNOTERDEPKA

*Completed by*

P. SHOW CHANDER.

پرشن اوٹر  
منقہ  
پندت شوچندر

रसिककाशी प्रेस देहली वा रहत्यान बाबू राम चंद्र के से छपी सं-१९५५



१  
श्री:

धर्मा वस्तु स्वभावस्तदिह परिणतान्तं धर्मात्मकन्ते ॥  
धर्माः स्वस्थे विवर्ते रुदनं विनशनं धौव्यमास्कंदितारः ॥  
संतस्या द्वादविद्यामृतरसविलसत्त्वादसं वैद्यमाना ॥  
भूयांसस्तन्नात्मन्यजघनविधितो दिव्यमाराजयंति ?

प्रश्न - जैन शब्द का क्या अर्थ है

उत्तर - जिनः जैनः जैनी तीन शब्द हैं

१ जिनः पुलिंगे अहंति जित्वरे जयन शीले जयति  
कर्माष्टका राती निति जि. धातोः इण् धिञ् जि  
री दुःख विभ्या नक् इति जिनः सर्वज्ञे प्राप्त

२ जैनः जिना देवता यस्येति स वा जिनस्यायं जैनः  
इत्यत्राण प्रत्ययः जैन धर्म वा तेन प्रोक्तः जैनः

३ जैनी जिनस्यायं श्रावकः जैनी स्त्री प्रत्ययः

अपत्यास्त्यर्थे यथा ज्ञानी आत्मा जीवः

सर्वज्ञो वीतरागोऽहं केवली तीर्थ कृत् जिनः  
देवता नामा निषट्

प्रश्न - जैन मत प्राचीन है इसकी पुष्टता अन्यमत  
के ग्रन्थों से तथा प्रतिमा मंदिर शास्त्रों से

उत्तर - जैन मंदिरों की प्राचीनता सांगी मुंगी के गज पं  
थजी मुक्ता गिरि आदि पहाड़ों पर देखनी चाहिये  
और प्रतिमाओं की प्राचीनता

जन रत्नक नीग हाम साहब के पास जैन मूर्ति  
बहुत प्राचीन है और सांगी मुंगी गज पंथ के पहा-

डों में प्राचीन मूर्ति देखनी चाहिये बड़ोदेसे आगे पावा  
 गिरि पर और दक्षिण दिशामें श्रवण विलगुल अर्थात्  
 जैन बड़ी नगर प्राचीन है उहापर बत पर प्राचीन ५२  
 गज ऊंची १ प्रतिमा है और बड वाणी के पहाड़ में १  
 खुदी हुई ५२ हाथ की १ प्रति मा है जैन बड़ी में ताड़  
 पत्र पर जैन मत के बहोत प्राचीन शास्त्र है और नि-  
 गुल ग्राम में राजा जैनी है उसके मन्दिर में प्राचीन प्र-  
 तिमा है उसी देशमें गिरि नारी ग्राम में १ मंदिर में २६  
 हाथ की उची प्राचीन दिगम्बर मूर्ति है उहां का भी रा-  
 जा जैनी था मूल बड़ी नगर में प्राचीन मंदिर और प्र-  
 तिमा जैन मत की बहोत हैं उहां का राजा भी पह लें  
 जैनी था कारकुल नगर के पास पहाड़ के ऊपर ३२  
 हाथ ऊंची प्रति मा प्राचीन है वारंग नाम नगर में  
 एक तालाब में एक कोस तक अधाह जल भरा है उ-  
 सके बीच में एक जैन मंदिर प्राचीन है इत्यादि जैन म-  
 तके प्राचीन ताकी बहोत साक्षी है उक्त मन्दिर और  
 प्रतिमा ओंके देखने से सत्या सत्य विदित होगा ऐसी  
 प्राचीन ता और कोई मत की विख्यात देखने में नहीं  
 आती अब अन्य मतके शास्त्रों से लिखते हैं

भागवत के पंचम स्कन्धमें तीसरी अध्याय में कृती  
 अध्याय पर्यंत ऋषि भाव तार का वर्णन है जो कि  
 जैन मत में प्रथम तीर्थ कर हुये उनका मन्दिर उ-  
 सी वखत का बनाया हुआ मय उनकी मूर्ति के कैलाश  
 पर्वत पर वर्त मान है



पुनः सनुस्मृतौ अध्याय ६ श्लोक ७४

सम्यग्दर्शन संपन्न कर्म भिन्न निवध्यते

दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रति पद्यते ७४ इति

तत्त्वा र्थे अज्ञानं सम्यग्दर्शन मिति जैना बदीति

पुनः सनु० अध्याय ६ श्लोक ८३ । ८४

दश लक्षणा निधर्मस्येत्यादि

उत्तम क्षमा १ मार्दवा २ र्यव ३ सत्य ४ शौच ५ संय

म ६ तप ७ त्यागा ८ किंचन्य ९ ब्रह्म चर्येति दशधा

धर्म वा दश लाक्षणा क धर्म इति जैना मन्यंते

पुनः इति हास अध्याय २० श्लोक ५२ । ५३

अहिंसा परमो धर्म तथा हिंसा परं तपः इति  
धर्मस्य मूलं दया इति जैन मते

और अन्य मता चलम्बी योंके इति हासा नुकूल नि  
श्रय होताहै श्री कृष्ण जीको हुये ५००० वर्ष हो चु  
के उन्नीके समय में व्यासजी वैसंपायन याज्ञवल्क्य  
दि वेदके संग्रह कर्ता और शुक्ल यजुर्वेद शत पथ आ  
ह्वरादि के कर्ता हुये जब कि उन्नीने वेदानु कूल जे  
न मत के स्या द्वाट सप्त भंगी बाराणी का खंडन करा  
और वेदान्त मतके मुख्य कर्ता मुख्य व्यास उदधिने  
ब्रह्म सूत्र के दूसरे अध्याय के दूसरे पाद के ३३ सूत्र  
में देखा यदि जैन मत अनादि नहीहै अर्थात् श्री-  
कृष्ण से पहिले तथा तौ खंडन किरारह करा  
और सिद्धान्त कौमुदी के ठरादि के तृतीय पादमें  
जिन ऽहिन ऐसा शब्द लिखाहै यदि जिन शब्द-

अनादिनही तो व्याकर्ण जिससे सम्पूर्णा अनादि शब्द सिद्ध होते हैं उसमें क्यों लिखा पुनः उक्तं हि वाराही संहितायां ज्योतिष शास्त्रे पत्र ३४३ पुस्तक उत्तर दा :

विष्णो भाग वतां भगाश्च सवितु शंभोः सभस्म हि जा मातृणा अपि मंडल क्रम विरो विप्रा न्विदुः ब्राह्मणाः शाक्या न्सर्व हितस्य शांत मनसो नग्ना जि नानां विदुः अर्थात् इनसे पहले प्राचीन जन मत था +

पुनः वाराही संहिता या पत्र ३३७ उत्तर दाता का पुस्तक +

अथा हतां देवस्य लक्षणा माह आजानु लंबु बाहु कार्य्यः जानु संप्राप्त हस्तः श्री वत्साकः प्रशान्त मूर्ति जितं द्रियो राग द्वेष रहितः दिग्वासा नग्नः तरुणो पैतः रूप वान शोभन वयुः इति जिन प्रति मा लक्षणा म् और राम चंद्र समय में भी जैन मत था और विष्णु नारायण के समय में भी था क्योंकि मुनी स्तत्रत नाथ बीसवे नमि नाथ इकशवे तीर्थं कर के मध्यमें राम चंद्र जी हुये और वाईसवे तीर्थं करके समय में श्री कृष्ण जी सिन्धु पारं वादि सब राजा हुये और राम चंद्र जीके पला चौसठ हजार वर्ष पीछे श्री कृष्ण जी हुये ऐसा जैन मत के शास्त्र में लिखा है इसी से जैन धर्म अनादि सिद्ध है पुनः उक्तं च हरि भर्तारि शत के एका की निष्प

हः शान्तः पारिण पात्रो दिगम्बरः

कदा शंभो भविष्यामि कर्म निर्मूल नक्षमः इति  
मुनि सत्र तीर्थ करके ६००००० छः लाख वर्ष पीछे  
नमी नाथ और इनके ५००००० पांच लाख वर्ष पी  
छे नेमि नाथ तीर्थ कर हुये इनके समय में श्री कृ  
ष्ण जी हुये इसी से जैन मत जैन शास्त्रों से और  
अन्य मत के शास्त्रों से बहोत प्राचीन समझ ना चा  
हिये और जैन मत के अनादि होने का वृत्तान्त जे  
न इति हासों से जान ना चाहिये और ज्योतिष शा  
स्त्र भी अनादि समझ ना चाहिये जिसका वृत्तान्त  
जिसको ईश्वर बादी अपौरुषये ईश्वर कृत कह  
ते हैं उस वेद में भी स्वीकार किया है और जैन शा  
स्त्रों से भी ऐसा ही ज्योतिष शास्त्र जाना जाता है और  
वैष्णवी पंडित यात्रयि योंके बनाये ज्योतिष के  
ग्रन्थ है उनमें जैन का वृत्तान्त जधे जधे है और  
जहाँ २४ की संख्या लिखी है उहां उन्होंने जिन ऐ-  
सा शब्द लिखा है अर्थात् जैन मत में २४ तीर्थ कर  
हो चुके हैं इसी वासी २४ संख्या गिनते हैं

उक्तं हि ब्रह्मत्यारा शर होरा शास्त्रो त्र भागे पृष्ट २५६  
त्रि षट् नव त्रिंश कांश्चिजिनदंत सराः क्रमादिति  
पुनः सिद्धान्त शिरो मणो गोला ध्याये पृष्ट १२  
तथा हो सूर्यो ह्यौ चन्द्र मसौ चतुः पञ्चा शन क्ष त्रा  
णि चतुर्भुज संभ निभो मेरु एकान्तर कोरा स्थो सूर्यो मेरुः कोरा वशेन एकान्तरो ता बुदयं गच्छत

इति जैना श्रावुवन ॥

इत्यादि अनेक प्रमाणा से जैन मत अनादि सिद्ध है और येभी जान ना चाहिये कि वर्तमान काल में जितने मत मतां तर हैं उनके उपासकों ने प्रत्यक्ष अथवा अथवा इष्ट देव किसने भी नहीं देखा कि नु निज शास्त्रों के प्रमाणा सेही सम्पूर्ण व्यवहार सिद्ध करते हैं नव समीक्षा कारकों को उक्त शास्त्रों से ही निश्चय हो सक्ता है यदि श्रम करा जाय गातो विजेयु किं बहुना

३ प्रश्न - जैन मत बौद्ध मत से अलग है इसकी पूर्णता स्व परमत के शास्त्रों से और बुद्ध और महावीर स्वामी अलग अलग थे

३ उत्तर - जिन देव और बुद्ध देव जैन धर्म और बौद्ध धर्म में मेरु पर्वत और सरस के समान भिन्नता है और पहले यह भी समझ ना चाहिये कि जिस धर्म का देव गुरु शास्त्र या क्रिया आचरण नव था भिन्न है वह धर्म किसी प्रकार से एक या उसकी सारवा नहीं हो सक्ता जैसा चरण गेह जैसा बीज वैसाही वृक्ष होगा और नाममात्र सभी एक नहीं समझ ना चाहिये जैसा कि दूध नाम से संपूर्ण दूध समान नहीं समझे जाते गऊ का भैंस बकरी आक थोहर सबके दूध को जाह माद समान समझ ने से सोचिके कि में कैसी हानि होती है उसरो उसकी परीक्षा -

गुराय गुरासे समझ नी चाहिये

प्रथम षट् दर्शन की भिन्नता हनुमान नाटक का  
श्लोक प्रथम वैष्णव मते

यं शैवाः समुपासते शिवः १ इति ब्रह्मेति वेदंति नो २  
बौद्धाः बुद्धः ३ इति प्रमाणा पटवः कर्त्तैति नैयायिकाः ४  
अर्हन्ति त्वथ जैन शासन रता ५ कर्मेति सीमां शकाः ६  
सोयं वो विदधातु वां वितपदं त्रैलोक्य नाथो हरिः ॥ १

इसी प्रमाणा से जैन मत बौद्ध मत भिन्न भिन्न  
समझना चाहिये ॥

आगे बौद्ध मत वर्णन लिखते हैं ॥

उक्तं च धर्म परीक्षायां अध्याय १० श्लोक ६४  
सृष्टः श्री वीर नाथस्य तपस्वी मोक्षला यनः  
शिष्यः श्री पार्श्व नाथस्य विदधे बुध दर्शनम् ६४  
श्रुद्धो दन सतं बुद्धं परमात्मानमब्रवीत् ॥  
प्राणिनः कुर्वते किं कोपं वैरि पराजितः ॥ १० ॥

उक्तं च १ मर कोशे प्रथम कांडे पत्र ६ छाया काशी  
शाक्य मुनिस्तुयः १४ सशाक्य सिंहः सर्वार्थ सिद्धः  
सुद्धो दनि अरः गौतम श्रार्क बन्धुश्च माया देवी  
सततश्चरः इति उक्तं च अकलं काष्ट के श्लोक ५  
यो जग्ध्वापि शितं समत्स्य कवलं जीवस्य श्रूयं वदनं  
कर्त्ता कर्मफलं न भुक्त इति यो वक्ता स बुद्धः कथम् ॥  
यद्भानं क्षणा वर्ति वस्तु सकलं ज्ञातुं न शक्यं सदा ॥  
यो जानन्न युगयज्जगन्नयमिदं साक्षात्स बुद्धो मय ५  
इति श्रीर जैन बौद्ध का अंतर अवीतरे डाक्टर

वृत्तर साहब ने सिद्ध करके एक जैन दंतकथा की पुस्तक सत्यता वास्ते बनाई है उसके देखनेसे सब निर्णय हो सक्ता है

पुनः मोक्ष लिखाति पुत्राभ्यां शौ द्रो दनिं ध्वजी कृत्य प्रकाशितः अस्यार्थः मोक्षलायन और स्वाति पुत्र अर्थात् सारी पुत्र इनोंने श्रुद्धी दन के पुत्र कों सर्व मताध्यक्षों से अधिक ऊँचा सर्वोत्तम रूप करके प्रकाश्या है उसी को बुद्ध मानके बौद्ध मत स्व रुचि से कल्पना कराहै तथाच तच्च निको पासको नंद वलात बुद्धो त्यति कथान कात द्वेष मुप गच्छेत् बुद्ध का उपासक आनन्द नामक मनुष्य था उसकी बुद्धि के बलसे बुद्ध की उत्पत्ति हुईहै उसका जोधर्म वह बौद्ध मत समझना चाहिये पुनः दर्शन सार ग्रन्थे गाथा सिरि पा सगाह तिरये सर ऊतीरि पलासगा यर त्ये पि हि आस वस्स सीहे महा लुबो बुद्ध किंति मुणिग इत्यादि गाथा ५. लिखीहै

श्री पार्श्व नाथ के तीर्थ में सरयू नदीके किनारे पलास नगर में पिहिता श्रव मुनि का शिष्य बुद्ध कीर्ति था एक समय सरयू नदीका पूर बढा उस के प्रवाहमें अनेक मरे हुये मछ बहते हुये किनारे आके लगे उन को देखके बुद्ध कीर्तिने मनमें विचार कि जो जीव स्वतः मर जाय उसके मांस खाने में क्या पाप है ऐसा विचार उसने मुनि भेष

छोड़ मन्स्य के मांस का भक्षण करा और जिह्वा लं  
पटी मांस खाने के लालची मनुष्यों को वैसा ही ।  
उपदेश सुनाया कि मांस में जीव नहीं इसी वा-  
स्ते मांस खाने में मदिरा पीने में दोष नहीं है इसी  
तरी की प्ररूपणा करके अपने नाम से बौद्ध मत च-  
लाया और यह भी उपदेश दिया कि सर्व पदार्थ क्ष-  
णिक हैं इस वास्ते पुण्य पाप का कर्ता अन्य है  
और भोक्ता अन्य है और जीव को मृण्य कहते हैं  
कि जीवात्मा कोई पदार्थ नहीं है और ज्ञान को क्ष-  
णिक मानते हैं कि ज्ञान क्षण क्षण मात्र में आ-  
या गमन कर्ता है पंच तत्व से आत्मा की उत्पत्ति  
कहते हैं और सर्वशक्त सप्त भंगी स्याद्वाद बारी  
के विरोधी हैं इसीसे बुद्ध महावीर अलग अलग  
समझो और बौद्ध मत के पुस्तकों में ऐसा भी लिखा  
है कि बुद्ध के देव दत्त शिष्यने उसको मांस खाने वा-  
स्ते बहोत भगड़ा तौभी शाक्य मुनि बुधने मांस खा-  
ना न छोड़ा तब गुरु शिष्य अलग अलग हो गये

पुनः उक्तं च योग शास्त्रे २ प्रकरणे ॥

स्वजन्म का ल एवात्मा जन न्युद्गर दारिणाः ॥

मांसापदेश दातुश्च कथं शौद्धो दत्ते दया १ इति  
अर्थात् बौद्ध मत निर्दयी मांसाहारी नास्तिक है उ-  
नका काल्पित बुद्ध देव बस्त्र धारी है बुद्धकी मूर्ति अ-  
जायब घर बंबई कलकत्ते या दिल्ली के में बहोत  
रक्खी हैं उनके गुरु रक्ता म्वरी कमंडल धारणा -

करते हैं पूर्वाह्न कालमें भिक्षाटन करते हैं और हिंसो प देशके शास्त्र जानने चाहिये बुध देव को सगुप्त भी कहते हैं और बौद्ध धर्म को सौगत भी कहते हैं उसकी प्रतिमा या अग्नि या वि क्रिया रूप स्थापना करते हैं

और बौद्ध मत के ४ भेद हैं वैभाषिक १ सौत्रांतिक २ योगाचार ३ साध्यमिक ४ इस भांत जानों और इसी के अन्तर्गत चार्वाक नास्तिक और भूरायवादी भूतवादी भी सम्भन्धने चाहिये इनका विशेष वर्णन जैन मत के न्याय शास्त्रों में और आदि पुराणा चंद्र प्रभका व्यादि अनेक शास्त्रों में है

तथा जैन मत प्रबोधनी में भी है बौद्ध मत वाले स्वर्ग नरक मुक्ति को नहीं मानते इसीसे बौद्ध धर्म और जैन धर्म का बहोत फरक है ॥

जैन मत स्वरूप लिखते हैं :-

जैन धर्म दया मयी पुण्य पाप का फल स्वर्ग नरक जानते हैं जैनी जन जीव को कर्म कर्म फलका करता भोक्ता मानते हैं तीन काल द्रव्य छः नव पदार्थ जीव काय छः ले श्याक अस्ति काय पांच व्रत १२ या ५७ समिति ५ गति ४ ज्ञान ८ दर्शन ४ चारित्र्य के १३ भेद कहते हैं मधु मांस मदिरा के खाने पीने वालों को धर्म भूय कहते हैं जीव की दया करनी सत्य वचन बोलना धोरी का त्याग परस्त्री का त्याग परिश्र



ह का प्रमारा यही जैनियों का मुख्य कारणा है  
 जैन मत में द्यूत क्रीडादि ७ कुब्य सनो का त्याग  
 अपने देव गुरु शास्त्र के विषे मुख्य प्रतीति को स  
 म्य न्दर्शन कहते हैं श्री पार्श्व नाथ तेई शवे तीर्थ  
 करके शिष्य मुद्ग लि उनका शिष्य मौद्गलाय न  
 ने श्री महा वीर स्वामी के समय में बौद्ध धर्म का  
 प्रारम्भ करा तब किसतरे जैन बौद्ध एक हो सक  
 तेहैं बौद्ध धर्म उन्मान अठा इससे २००० वर्ष  
 सं प्रकट हुवा क्यों कि पार्श्व नाथ के २५० वर्ष  
 पीछे बर्द्ध मान याने महा वीर तीर्थ कर हुये औ  
 र उनके ६०५ वर्ष ५ महीने के बाद विक्र मा  
 दित्य हुवा जिसका सम्बत् १६४८ वर्त्त मान में  
 हैं और महा वीर स्वामी के १७०६ वर्ष पीछे त  
 क जैनी राजा बहोत हुवै जिनका वृत्तान्त जैन त  
 वारीख अर्थात् इति हास से मालूम हो सका  
 है और वैष्णवी शास्त्रों सेभी जैन बौद्ध भिन्न  
 सिद्ध हैं ॥

विगगः केवला लोक विलोकि न जगच्चयः॥  
 पर सेष्टी जिनो देवः सर्व गीर्वाण बन्दितः ॥

॥ इति सर्वत्र जिन देव लक्षणां  
 यत्र निर्वर्णा संसारो निगद्ये ते स कारणो  
 सर्वा बाधक निर्मुक्तो वागमो सौ बुधस्तुतः

॥ इति जिना गम सिद्धान्त लक्षणां  
 त्यक्त बाध्यां तर श्रुत्या निःकषायो जितेन्द्रियः

परी यह सहसाधु जीत रूप धरो मतः ॥

इति जैन गुरु दिगम्बर चार्य्य लक्षणा मू ॥

द्वि विधा देहि नः संति त्रसथा वर भेदतः ॥

रक्षणी यास्त्र सास्त्र गोहिना व्रत मिब ता ॥ १७

वसाः द्वित्य चतुः पंच हृषी का संति भेदतः ॥

चतुर्विधा परिज्ञाय रक्षणीया हितैषिभिः ॥ १८

आरं भज मना रंभं हिंसनं द्विविधं स्मृतं ॥

अगृहो मुंचति द्वेधा द्वितीयं संगृहं पुनः १९

स्थावरेष्वपि जीवेषु न विधेयं निरर्थकं ॥

हिंसनं कस्य धार मोक्ष कांक्षैरुपासकैः

इति जिन धर्म मूल मू ॥

यः स्वादतिजनो मांसं स्वकाले वरपुष्टये हिंस्र

स्यतस्य नोत्तारः स्वभ्रनोऽनंत दुःखतः ॥ २४

मांसाग्निनो दया नास्ति कुतो धर्मोऽस्ति निर्दये ॥

सप्तमं व्रजति स्वभ्रं निर्द्धर्मी भूरिवेदनं ॥ ॥

देवताऽतिथि भौषज्य पितृ मंत्रादि हेतवैः ॥ नहिं

सनं विधातव्यं सर्वेषां अपि देहिना मिति हिंस्रस्य च

हिंसायाः निदानम्

जानना चाहिये कि उपर लिखे हुये बौद्ध जैन धर्म

के लक्ष्य लक्षणा को ज्ञाता जन बिचारें कि जैन बौ

द्ध किसतरें एकहैं अद्यपि चीन देशमें बौद्ध मत की

सान्यता विशेष है वर्तमान काल के जैनी और

चीनी मनुष्यों के धर्म कर्म में कितना अन्तरहैं

विशेष कि बहुना ॥

४ प्रश्न - जैन मत की दो सार्वे अर्थात् दो भेद कब से हुये और क्यों कर हुये

५ उत्तर - प्रथम अनादि काल से जैन मत एक रूप था फेर सम्बत् विक्रम १३६ में श्वेताम्बर मत का आरम्भ हुवा उक्तच भद्रबाहु चरित्रे पत्र २७ निज पुस्तक

सूते विक्रम भूपाले षट् त्रिंशदधिके शते ॥

गते स्या नाम भूल्लो के मतं श्वेताम्बरमिधं ५५

आगे जैन मतमें २ भेद क्यों कर हुये सो लिखते हैं भद्र बाहु दिगम्बराचार्य सम्पूर्ण शास्त्र के ज्ञाता और बहोत तपश्च साधु वोंके साथ विहार करते २ अवंती देशमें उज्जयिनी नगरी के वनमें आनकर तिथे उहां का राजा चंद्र गुप्ती जैनी था संवत् १२४ एक दिन भद्र बाहु आचार्य जिनदाश श्रेष्ठ के घर आहार के वासे गये उहां किसी गृह्य गृह में पालरों में १ बालक २ मास का सोता था उसने कहा गच्छ गच्छ स्वामी ने पूछा कितने दिन उसने उत्तर दिया कि बारह वर्ष मुनि अंतराय समझ अपने स्थान क १ आपके अस्त्रांग निमित्त से विचार कि इस देशमें १२ वर्ष का महा दुर्भिक्ष होगा तो मुनि राजों का आचरण नहीं निभेगा इस वास्ते मालवे में चलना चाहिये ऐसा विचार सब संघका विहार करणों की आज्ञा दी उस वकत उज्जयिनी के श्रावकों ने प्रार्थना की कि आप इस सहर में रहिये हम सब श्रद्धा पूर्वक

अपनी संपदा से आपके सम्पूर्ण संधकी सेवा भली  
 भांत करेंगे स्वामी ने उत्तर दिया कि सत्य है परन्तु  
 दुर्भिक्ष के कारण मुनि राजों की क्रिया में अन्तर  
 होगा तब उन श्रावकों ने भक्ति बश अलग अलग  
 ग साधु वेंसे प्रार्थना की तब रामल्य स्थूल भद्र और  
 स्थूला चार्थ ने उनकी बीनती स्वीकार करी तब  
 स्थूल भद्रादि १२००० मुनि उज्जयिनी में रहें और  
 भद्र बाहू श्राचार्य १२००० मुनि राजों को साथ ले ना  
 लव देश को गये सुख से धर्म ध्यान युक्त काल क्षे  
 प उस देशमें कराने लगे और उज्जयिनी नगरी में  
 दुर्भिक्ष असह्य सुरू हुवा तब हजारों दरिद्री क्षुधा  
 तुर इकट्ठे होगये परन्तु उहांके जैनी लोगों ने अन्न  
 दान कर यथा योग्य सब का पालन करने लगे तथापि  
 गली गली में रंक फिरते थे कि एक दिन रामल्यादि  
 दिगम्बर आहार करके सहर से जंगल को जाते थे कि  
 एक मुनि अकेले सहर में किसी गली में रह गये उ  
 नको कंगालोंने मिलके पटक दिया और उदर फा  
 डके उसका अन्न निकाल के खा गये तब सम्पूर्ण  
 श्रावकों को बड़ा शोक हुवा और सब पंच इकट्ठे  
 होके रामल्या चार्थ से प्रार्थना की कि आप सं  
 पूर्ण मुनि सहित जंगल को छोड़ नगर में मकानों  
 में रहें तब हम निश्चित होंगे उत्ताने भयसे कारण  
 वैसाही कर जोकि उनको योग्य तथा मकानों में स  
 ब साधु रहने लगे अलग अलग और दुर्भिक्ष दिन

प्रति कठताथा इहांतक कि जब साधु श्रावणों के घर  
 आहार को जाते तब उनके पीछे कंगाल लगलेते ।  
 और उनको दुखी करते तब जैनी भूखों को ताड़ना ।  
 करते तौभी गुनि श्वरों को भोजन मिलना दुर्लभ हुवा  
 तब श्रावकों ने मिलके गुरुवों से बिनती की कि ह  
 म ना चार हैं दिनसे हमको रंक रसोई भी नहीं ।  
 बनाने देते इससे हम लोग कि बाड़ बंध करके ।  
 भोजन बनाते हैं इससे अब आप रात्रि में भोजन  
 हमारे इहां से ले आया कीजिये पात्रों में और ।  
 दिनमें भकान बन्ध करके भोजन कर लिया करें  
 उन्हांने अपने प्राणों की रक्षा के वास्ते वैसेही करने  
 लगे तथापि नग्न भेषसे पात्र लेके ग्रन्थे रे में रा  
 त्रि को भोजन के वास्ते जाते तौ कुत्ते उनको दुख दे  
 ते और लोग डरते तब फेर जैनि यों ने प्रार्थना की  
 कि आप रंकड़ी रखा करें आधे अंगमें बस्त्र धा  
 रणा करके आया करें साधुवोंने उनको भी स्वीका  
 र करा उस समय से दिगम्बरों की अर्द्ध फालक  
 जैसा चारु दुस पैले कन्धो से गोडे तक आधे अंग  
 में कपड़ा लटकाते है और यति जन इस समय  
 मेंभी घट के भीतर बगल में लपेटते है संज्ञा अर्द्ध फालक ।  
 रखी गई इसी तरे उज्जयिनी के साधु सब सिध  
 ला चारी होगये और उसी भेषमें श्रावक जन उन  
 का सत्कार करते रहे और ९२ वर्ष का दुर्मिक्ष  
 भी पूरा हुवा परन्तु सिधला चारी साधु वोंने अ-

पना भेष नहीं छोड़ा और अपने ज्ञान से अपने  
 आचरणा के अनुकूल नवीन शास्त्र बनाके उ-  
 सी माफक श्रावकों को उपदेश देने लगे इहां तक  
 कि उहांका राजा भी उनका सेवक होगया और य  
 ह दृष्टान्त उनको समझाया कि कलि युग में दि  
 गम्बर मुद्रा का आचरण और परीषह का स  
 हना हीन शक्ति वालों को सुसकिल होगा और अ  
 र्द्ध फालिक भेष का निर्वह हो जायगा इस वास्ते स्थ  
 विर कल्पी यही मुद्रा समझ नी चाहिये इसतरै कु  
 छ काल पूरा होने केबाद उज्जयिन नगरी का राजा  
 चंद्र कीर्ति उसके चंद्र श्री राणी से चंद्र लेखा नाम  
 पुत्री हुई जबकि वह विद्याध्ययन योग्य हुई त  
 ब अर्द्ध फालिकाचार्य के पास पढ़ने को जाने ल  
 गी थोड़े दिनों में अपने योग्य शास्त्राध्ययन में नि  
 पुरा होगई जबकि यौवन वती हुई तब सोरठ देश  
 में बल भी पुर का राजा प्रजा पाल उसके प्रजावती  
 राणी से लोक पाल पुत्र था उसके साथ चंद्र ले  
 खा का विवाह हुआ जबकि लोक पाल को साधीन  
 पिताका राज्यासन मिला तब चंद्र लेखा को पट  
 राणी पद मिला उसने अवसर पाके अपने स्वा  
 मीसे कहाकि मैं गुरु जगन्मान्य इन दिनों कान्य  
 कुब्ज देशमें ऋषी भित्ति हैं उनको आप बुलवावें  
 वह महात्मा बड़े योगी हैं तब राजाने प्रिया के आ  
 ग्रह से उनको बुलवाया वह संघ संयुक्त आके -

नगर के बाहर तिष्ठे तब राजा बड़े उत्सव से उनके लेने को गया तौ दूरसे उनका भेय अर्द्ध फालक १ देख विचार ने लगा कि यह भेय नतो दिगम्बर न बस्त्र धारी इससे यह पूज्य नहीं रोसा विचार उलटा नगर मे आके रागी से कहा उसने राजा का आशय समझ कर जिन चंद्र नाम संघा चार्य के पास राजा से गुप्त बहोत धोती डुपट्टे स्फेद भेज दिये कि आप इन को सब साधुओं को बाट दे और इन को पहन नकी आगे दें दें प्रभात राजा आप के दर्शन को आयेगे इसमें आपकी शोभा और भेरी बढ़ाई जिन चंद्र चार्य ने रागी का बचन मान कर ख्याति लाभ पूजा के कारणा श्वेत वस्त्र धारण करा दिये समस्त संघको तब से अर्द्ध फालक मत छोड़ श्वेता वर मत सुरू हुवा यही कारणा जिनमत में दो सारवा होने का समझ ना चाहिये

उनका चिन्ह धोती डुपट्टा पागरागी लकड़ी १

उनका उघा काष्ठ के पात्र समझो

५ प्रश्न- दिगम्बर दिगम्बरी का अर्थ

उत्तर - दिक् कहते हैं १० दिशा अम्बर कहते हैं

वस्त्र दिशा आकाश मात्र जिनके वस्त्र हैं ओ

र वस्त्रादि किसी तरे का परि ग्रह नहीं है

वह दिगम्बर साधु उनके मताव लम्बी

दिगम्बरी स्त्री प्रत्यय

६ प्रश्न- श्वेताम्बर स्वेताम्बरी का अर्थ

उत्तर- श्वेत कहते हैं सफ़ेद, अम्बर कहते बरख जि  
न के वह श्वेत वस्त्र धारी यति श्वेतम्बर उन  
के मता नु यायी श्वेतां स्वरी ॥

प्रश्न- दिगम्बरी श्वेताम्बरी में कितना अन्तर है

उत्तर- देव गुरु शास्त्र क्रियामे बहोत अन्तर है

| दिगम्बर                                                                                                                                                                                                               | श्वेताम्बर                                                                                                                                                                                                                                                                                 |
|-----------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| १ देव निराभरणानिर ।<br>आयुध निर्भय निर्वि<br>कार रङ्गार वर्जित<br>शान्ति मुद्रा के धारक                                                                                                                               | १ देव सा भरणारङ्गार<br>युक्त रागरूप सचस्त्र                                                                                                                                                                                                                                                |
| २ शास्त्र पूर्वी पर विरो<br>ध वर्जित संशय रहि<br>त मोक्ष मार्ग का प्ररू<br>पक                                                                                                                                         | २ शास्त्र संशय रूप पू<br>र्वी पर विरोध युक्त हैं                                                                                                                                                                                                                                           |
| ३ गुरु निर्ग्रन्थ २८ ब्रह्म<br>गुण धारक जिन क<br>ल्यी प्रकट पीछी सा<br>वर रखते हैं सोना ल<br>म्बी विहार करते हैं<br>अकेले भूय्या गर<br>निर्जन चन उद्यान<br>पहाड गुफा कोट ।<br>रादि शशु कस्थान<br>में रहते हैं तीनों - | ३ गुरु सग्रन्थ श्वेत व<br>स्त्र धारी पात्र यही<br>युक्त वारं वार भोज<br>करते हैं जिनको ।<br>स्थ विर कल्यी संज्ञा<br>मानते हैं मकानो<br>में गृहस्थ के स<br>मान रहते हैं<br>पंचम कालके दोष<br>से यह भेद प्रकट<br>हुवा<br>४ यह सग्रन्थ स्याद्विर<br>कल्यी को ओर स्त्री<br>को मुक्ति कहे तेहें |



कालमें  
और स्थ विर कल्पी  
मे इतना विशेष है  
कि यह काष्ठ का  
कमंडल पीछी रख  
ते हैं संध में विहार  
करे धर्मो प देशक  
रे परन्तु परि ग्रहसू  
त मात्र भी नहीं  
और मोक्ष मार्गो  
प देशमें फरक है  
दिगम्बर निर्ग्रन्थ  
के सिवा अन्य लिं  
ग से मोक्ष नहीं स्त्री  
को भी नहीं कहते  
इत्यादि बहुत अ-  
न्तर है ॥

५ मूल रत्न त्रय के व्या  
ख्यान मेही अन्तर है  
केवली सर्वज्ञ को अ  
न्तका आहार सबस  
कहते हैं

इति

जानना चाहिये  
जब मूल धर्म के  
कारण देव गुरु शा  
स्त्र और मोक्ष मार्ग  
पदेश है जबकि इ  
नीमें पृथ्वी और  
आकाश के समान  
अन्तर है तब और  
लिखत वे प्रयोजन  
है ॥

७ प्रश्न - तीर्थ और शास्त्र अन्य मत को कौन  
कौन है

७ उत्तर - हर फिर के के तीर्थ या शास्त्र बहोत  
प्रसिद्ध है जिसको कुल वैष्णवी पंडित जानते हैं  
उनीसे पूछना चाहिये ॥

८ प्रश्न - दिगम्बरी श्वेताम्बरी मत की कौन कौन  
जाति पैरवी करती है

८ उत्तर - विशेषतः अग्रवाल खंडेलवाल इस देश में अन्य देशों में ८४ जाति दिगम्बर मत की पैरवी करती है और ध्वेताम्बरी मत की उस वाल श्रीमाल इस देश में और अन्य देशों में और जाति भी मानती है

५ प्रश्न - हर फिर के के दस्तूर क्या है

५ उत्तर - सब मतों के दस्तूर अलग अलग है जिसको वही लोक पूरा पूरा बता सकते हैं जो कि उसके सेवक हैं जो जिसकी इष्ट होता है उसका परिचय उसके भक्त को पूरा होता है और वही उसकी रीति भी अच्छी तरह जानता है इस वास्ते इहां नहीं लिखा है बुद्ध बौद्ध गौतम यह पार्श्वनाथ ते बीस में तीर्थ करके वक्त में पलास नगर में हुये जिनको शोद्धो दानि मौद्गला यानि भी कहते हैं

और महावीर चौबीसवें तीर्थ कर कुंडल पुर में हुये राजा सिद्धार्थ के पुत्र जिनको २६५३ वर्ष के अनुमान मुक्ति पधारें होगये

बौद्ध मत को अनुमान २८०० वर्ष के हुये इसीसे निश्चय है कि बुद्ध और महावीर अलग २ थे

महावीर को केवल ज्ञान प्रघट होने के बाद सम व शरणा में जो गराधर हुये उनका नाम गौतम था गौतम और गौतम में एक मात्रा का और शब्दार्थ का अन्तर है ॥

वही ज्ञान महावीर अति वीर वीर सन्मति यह ५

नाम महावीर चौबीस वे तीर्थ करके जानों  
 के जो गोत्रम गरा धर हुये वह गोतमा न्वय  
 के ब्रह्मरा के पुत्र जूंभिक ग्राम के रहने वाले  
 थे इसी कारणा बुध गोत और गरा धर गोतम  
 में बड़ा अंतर समझ ना चाहिये ॥

१० प्रश्न - हूं दिया पन्थ कबसे सुरू हुवा और  
 इसका अर्थ क्या है

१० प्रश्न - संवत् १५७२ में श्वेताम्बर मत में पास  
 चंद्र साधु हुवा और इनी की संप्रदाय में लुंपक, हुं-  
 ढक और हुंढक तेरा पन्थी हुये यह तीनों पन्थ ग्र  
 हन्ध के चलाये हैं इनका कोई गुरु नहीं और जि  
 न मंदिर जिन प्रतिमा को भी पूज्य नहीं समझते  
 शास्त्र वही हैं परन्तु शब्दार्थ बदल के कपोल कल्पि  
 त बहोत बातें मानली हैं इस का वृत्तान्त थोड़ा लि  
 खते हैं ॥

गुज रात देश में अहमदा बाद नगर में एक लोंका  
 नाम लिखाई करने वाला था वह याति के उपाश्र  
 य में लिखाई करता था एक दिन उसने लिखने  
 में एक शास्त्र के अपत्र छोड़ दिये तब मालिक ने गु-  
 स्से होके उसको मकान से निकास दिया और लों  
 कों से कह दिया कि यह खेरबक वे धर्म है तब उ  
 सकी आजीव का गर्दौ तौ जैन मत का झोही हो और  
 र उहां से ४५ कोश एक लिंबडी गाव में गया उहां  
 इसका संबंधी लखमसी बगिया राज्य कार्या ग्रणी

था उसको बह काया कि मैं जैन धर्म का सत्य उपदेशकर्ता था सो यतियों न अपनी हानि समझ अहं महाबाह से मुझे निकास दिया अब तुम सहायी हो तब तो जिन धर्म रहेंगे नहीं लोप हो जायगा तब उक्त महाशय ने स्वीकार कर कहा कि तुम लिंगडी के राज्यमें निस्सं देह सत्य धर्म का उपदेश करो तब उसने १५०८ में जैन मत का व्याख्यान निंदा रूप करना सुरु करा लेकिन २६ वर्ष तक इसका उपदेश किसी ने नहीं माना संवत् १५३४ में भूणा नाम वशिष्ठा ने लोके का उपदेश मान और स्वत भेयी हो गया और भूख लोको को जैन मार्ग से भ्रष्ट करना सुरु करा और लोके ने ३१ शास्त्र सच्चे माने जिसमें उसने अपना प्रयोजन साध्य देखा और जिन प्रतिमा मंदिर के अधि कार का कपोल कल्पित अर्थ बदल दिया जैसा कि दया नंद जीने वेद मंत्रों का भूषण का शिष्य १५६८ के संवत् में रूप जी हुवा उसका शिष्य संवत् १६०६ में वर सिंह हुवा तिस का शिष्य संवत् १६४६ माह सुदी १३ गुरु वार प्रहर दिन चढ़े यश वंत हुवा इसके बाद सं० १७०१ में बज रंग जी लुंपका चार्य्य हुवा यह लोका की पर पायी हुई इसीमें हुंढक यानि हुं दि या मत हुवा वही लिखते हैं ॥

लुंपका चार्य्य का शिष्य लवजी नाम साधु हुवा जब गुरु पास २ वर्ष पढ़ते हो चुके और शास्त्र का

ज्ञान हुआ तब गुरु से कहा कि आप साधु मार्ग से  
 भ्रष्ट हो गुरु से लड़ाई करी और लुंपक मत की निं  
 दा कर और रीय थो भरा सखी और जो को साथ ले  
 स्वतः भेष धारण कर मुख पट्टी बांधी इसका शि  
 व्य सोम कानजी और लुंपक मती कुंदर जी के चले  
 धर्म सी श्रीपाल और अमी पाल ये भी गुरु को  
 छोड़ स्वतः भेष धारी हुआ इसतरे लुंपक मत की सा  
 खा हुई उनमें धर्म सीने अब को भी पञ्चर कारा  
 का पन्थ चलाया वह गुजरात देशमें प्रसिद्ध है औ  
 र लवजी के चले कानजी के पास गुजरात का एक  
 छोपी नामक मनुष्य ने दिक्षा लेनी चाही परन्तु उ  
 नका आचरण भ्रष्ट देख स्वतः साधू बन के मुख  
 पट्टी बांध उपदेश देने लगा और एक हुंदा अर्था  
 त् फूटा हुआ मकान था उसमें रहने लगे तब हुंदा  
 वाले साधू विख्यात हुये और इनके पन्थ का नाम  
 भी हुंदा हुआ जिसको अब हुंदिया कहते हैं यह श  
 ब्द अभ्रुद्ध है यह हुंदि या शब्द का अर्थ ऐसा क  
 हते हैं कि हमने हुंदा क अर्थात् तलास कर के स  
 चा मत निकाला है इस वास्ते हम हुंदिये हैं इनके  
 मतमें बहोत जाति के लोग हैं इसको सुरू हुये अ  
 नुमान २०० वर्ष हुये इति हुंदाक मत व्यवस्था  
 ११ प्रश्न - दिगम्बरी और श्वेताम्बरी योंसे कुल  
 बाँटे मिलती हैं या कुछ भेद है  
 ११ इसका उत्तर - अंक में दे चुके हैं सब बा

तों में नई है दस्तूर शास्त्रों में भी बहोत अन्तर है परन्तु तीर्थ स्थान ध्वेताम्बर दिगम्बर के एक ही हैं उहां जाके अपनी रीत्य नुसार पूजा करते हैं

और कौन कौन कोसे उसकी पैर वी करती हैं

इसका उत्तर भी पहले लिखा गया ॥

तीर्थ और शास्त्रों की संख्या बहोत है इस वास्ते इस जंघे लिखने से एक पुस्तक पूरी पूरी हो सकती है और जल्दी लिखी भी न जायगी कुल जैन शास्त्रों के नाम छः महीने में भी तैयार नहीं हो सकते इस वास्ते नहीं लिखा गया

जैनियों के तीर्थों की भी एक पुस्तक बनी हुई है उसके पढ़ने से कुल समाचार मालूम हो सकता है इसीसे इसमें उनके नाम भी नहीं लिखे इति

प्रार्थना यदि प्रश्न करता वोंको किसी वृत्तान्त में संदेह रहै तो फेर प्रश्न करणों से संदेह निवृत्ति हो जायगा जब तक उनका समाधान नहो तब तक स्वच्छ चित्तसे प्रश्न करै उत्तर दाता अपनी बुद्धि के अनुकूल समाधान कर सक्ते हैं शास्त्रोक्त रीति से ॥

इति प्रार्थना ॥



## विज्ञापन ॥

यह पुस्तक रजिस्ट्री कसई गई है  
इस वाले कर्ता की आज्ञा के  
बिना और किसी को इस के  
छपाने का या नकल  
लेने का अधिकार  
नहो

मा०

اشعار

یہ کتاب حسب قانون رجسٹری ہو چکی  
ہے۔ اس لئے بعد اہل مطابع کو اطلاع  
دیجاتی ہے کہ بغیر اجازت مصنف  
کے قصد طبع جزو یا نقل  
اس کتاب ہذا کا نہ  
فرماوین







वैदिक धर्म के रक्षक और अवैदिक मतों के मूलोच्छेदक धर्मवीर पं० लेखराम जी आर्य्यपान्थ ' यद्यपि इस समय आपका पञ्चत्व शरीर संसार में विद्यमान नहीं, तथापि विरोधियों के आघातों से आहत हुई आर्य्यसमाज-रूपी-चमू आपकी संवर्धित मासग्री से ही महर्षि-प्रदर्शित वैदिक-दुर्ग की रक्षा कर रही है । जिस समय वैदिक-धर्म-विद्वेषी मत्तवालों ने इस गढ़ को नष्टभ्रष्ट करने का दृढ़ मङ्गल्य करके चहुँओर से इसके ऊपर आक्रमण कर दिया था तो आपने कलिदान की वह परिखा, जो रक्षार्थ इसे परिधाकार घेरे हुये है, जल के अभाव में आपने रक्त से परिपूर्ण कर दी थी, जिसका अगाध-लोहित-जल संसार में आर्य्यसमाज के विद्यमान रहने हुये कदापि परिष्कृत न होगा ।

साखनी खुरी से आहत होकर सत्य-शय्या पर पड़े हुये भी वेद-प्रचार की ही चिन्ता में संलग्न होना और अरुण्य शारीरिक वेदना की उपेक्षा करते हुये उपस्थित आर्य्य भद्र-पुरुषों की यही आदेश करना कि—  
आर्य्यसमाज से तहरीर का काम बन्द न होने पावे ।

वैदिक धर्म के प्रति आपके अगाध प्रेम और निष्कपट अनुराग का सर्वत्र विज्ञाप कर रहा है । आपके दुःखान्तःकरण से निकले इन्हीं उपयुक्त वाक्यों में प्रेरित हो मैंने यह छोटा सा निबन्ध लिखने का साहस किया है, जनाब इसे आपकी अजर, अमर, एवं निमल और पवित्रात्मा के प्रति सादर समर्पण करना हूँ ।

आपका पद-रज

बाबुराम शर्मा

## ॥ अनुभूमिका ॥

मनुष्य-समाज में भूतपूर्व महान् पुरुषों के इतिवृत्त जानने की स्वाभाविक अभिलाषा पाई जाती है इसीलिये प्रत्येक कोटि के मनुष्यों में इतिहास का समादर है। आर्यावर्त के अपि महर्षियों ने अपनी दूरदर्पिता से, इतिहास की उत्कृष्टता का अनुभव कर, इसे मानवीय सृष्टि की निर्दोष बनाने का सांचा निश्चित किया था, तदनुकूल ही वे मानवीय जीवन को इस में ढाल कर अनुकरणीय बनाने का आदेश विस्पष्ट शब्दों में कर गये हैं। परन्तु शोक का स्थान है कि पतित-पावन मनुष्यों का स्थान सम्प्रति विषय-वासनाओं के एक मात्र स्रोत और असम्भव गायत्रियों के भागहार उपन्यास पुस्तकों ने ले रक्खा है जिन से मनुष्य समाज अनाचार के अन्ध-कूप में रात्रिन्दिवा गिरता चला जा रहा है ॥

हमें कई आर्य्य मन्त्रानों के हाथों में ऐसी विषमयी पुस्तकें देल कर परम दुःख हुआ और उसी समय से प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों को इस शैली पर लिखने का दृढ़ निश्चय कर लिया। प्रथम इस भाषा-रामायण नामक लघु पुस्तक का आरम्भ किया गया है और इस के आरम्भ में अनेक विद्वान् तथा आम पुरुषों के उपयोगी २ नैत्यों का, उपोद्घात-स्वल्प में इस कारण सहज कर दिया है जिससे न केवल आर्य्यमन्त्रानों का ही वैदिकधर्म में विश्वास दृढ़ हो; किन्तु आर्य्य-धर्मेतर पाठकों को भी इस धर्म में अनुराग उत्पन्न होजावे ॥

इस पुस्तक में कोई बात किसी व्यक्ति, जाति वा सम्प्रदाय विशेष के प्रति निन्दा वा स्तुति सूचक नहीं लिखी गई है परन्तु अनुसन्धान से जो ज्ञात हुआ है उस का निष्कण्ठ भाव से स्पष्ट शब्दों में वर्णन कर दिया गया है। यदि कोई महाशय हमारी वास्तविक भूल बतलावेंगे तो आगामी मुद्रण में उसे ठीक कर दिया जायगा और उन की इस दया के हम अत्यन्त आभारी रहेंगे ॥

तारीख २५।१२।१९०७ ई० } बाबूराम शर्मा

## \* निवेदन \*

भाषा-रामायण के प्रेमियों की हमारी शिथिलता से जो कष्ट मिला होगा उस का अनुभव हम भली भांति कर रहे हैं परन्तु खेद है कि अनुमान से आकार में बढ़ जाने के कारण, पुस्तक, धनाभाव से बीच में ही रोक देनी पड़ी है। अन्तिम उस के निस्तारण का यही उपाय सोचा गया है कि पहले उपोद्घात छाप कर बेचा जावे। इस की २०० प्रति निकलते ही शेष पुस्तक छापने में कुछ भी कठिनता न पड़ेगी, आशा है कि ग्राहक सहानुभाव इस अनिवार्य देरी के लिये हमें क्षमा प्रदान करेंगे।

जिन महाशयों ने पत्र भेजकर अवधि के भीतर ही नाम लिखाया है उन्हें, प्रतिज्ञानुसार १) में, सम्पूर्ण पुस्तक दी जावेगी और जिन्होंने कृपा करके अग्रिम मूल्य भेज दिया है उन से डाकव्यय भी नहीं लिया जावेगा परन्तु भावी ग्राहकों को सम्पूर्ण पुस्तक ॥) और १॥) कुल २) से कम में न मिलेगी।

**भाषा-रामायण**—छपने के पश्चात् **भाषा-महाभारत** और **तत्पश्चात् भारतवर्ष का इतिहास** नामक पुस्तक उत्तरोत्तर छपेंगे जिन में अनेक नवीन २ अनुसन्धानों से प्राचीन आर्योंवर्ष का गौरव निरूपित किया जायगा, परन्तु इन के मुद्रण में ग्राहक सहोदरों के साहाय्य की भारी आवश्यकता है ॥

इस उपोद्घात में, चाहे हमारे पाठकों को अनेक बातें निरर्थक जान पड़ें परन्तु जिस समय उपर्युक्त तीनों पुस्तक छप कर तय्यार हो जावेंगे तो उपोद्घात के सभी विषय उपकारी दृष्टिगोचर होंगे। भारत का इतिहास लिखने वाले भूतकालिक विद्वानों ने, आर्यों के धार्मिक सिद्धान्तों से अनभिज्ञ हो कर ही अनेक स्थानों में ठोकरें खाई हैं और बौद्ध, खालिमा प्रभृति अवैदिकमतों ने इस, ईश्वर प्रदत्त, पवित्र धर्म को, ब्राह्मणों का कल्पित मत बतलाकर, ब्राह्मणेत्तर वर्णों को भड़का, अपने गल्ले भरने में भारी सफलता प्राप्त की है, इसी लिये हमें, इस ऐतिहासिक पुस्तक में वैदिकधर्म को स्पष्ट कर देने की आवश्यकता पड़ी है।

बाबूराम दाम्मा

# भाषा-रामायण के उपोद्घात की अनुक्रमणिका ।

| विषय                               | पृष्ठ | विषय                               | पृष्ठ |
|------------------------------------|-------|------------------------------------|-------|
| जगत् को ईश्वर ने रचा है ।          | १     | आर्यावर्त की प्राचीन सभ्यता ।      | ४०    |
| आत्मा का अनादित्व ।                | २     | प्राचीन वैदिक वर्ण व्यवस्था ।      | ४९    |
| प्रकृति भी अनादि है ।              | ३     | अशुर शब्द की मीमांसा और            |       |
| सृष्ट्युत्पत्ति एवं ईश्वर, जीव और  |       | मांसाहार का खण्डन ।                | ५१    |
| प्रकृति के अनादित्व में वैदिक      |       | वर्तमान समय की उपलब्ध              |       |
| प्रमाण ।                           | ३     | ऐतिहासिक सामग्री से प्राचीन        |       |
| भूगोल, खगोल का संक्षिप्त वर्णन ।   | ५     | इतिहास का अनुसन्धान करना ।         | ५७    |
| वेदों को ईश्वर ने रचा है और        |       | आर्यों के नित्य, नैमित्तिक कार्यों |       |
| ये ही सब विद्याओं के भाण्डार हैं । | ८     | का संक्षिप्त वर्णन ।               | ६४    |
| सृष्ट्युत्पत्ति और स्थिति के       |       | चार आश्रम ।                        | ६७    |
| काल का निर्णय ।                    | १७    | ईश्वर का स्वरूप और उस के           |       |
| सृष्ट्युत्पत्ति के विषय में आधु-   |       | गुण, कर्म, स्वभाव ।                | ७२    |
| निक विद्वानों की साक्षी द्वारा,    |       | स्तुति और प्रार्थना ।              | ७३    |
| ईसाई, मुसलमान आदिकों के            |       | उपासना विधि ।                      | ७५    |
| निदान्तों का खण्डन ।               | २२    | पुनर्जन्म और मुक्ति ।              | ७६    |
| बाइबिल और कुरान, ईश्वरीय           |       | आर्यग्रन्थों तथा रामचन्द्र जी      |       |
| ज्ञान के पुस्तक नहीं हैं ।         | २३    | के समय का निर्धारण ।               | ७८    |
| जेन्दावस्था भी वैदिकज्ञान की       |       | रामायण की परताल ।                  | ८०    |
| छाया लेकर बनाई गई है ।             | २७    | आर्यों की अवनति ।                  | ८७    |
| आर्यावर्त देश की सीमा और           |       | ब्राम्हण की उत्पत्ति ।             | ८८    |
| उस का प्राचीन इतिहास ।             | २८    | बौद्ध ( जैन ) मत की उत्पत्ति       |       |
| भारत के धार्मिक और ऐति-            |       | और उस का काम ।                     | ९२    |
| हासिक ग्रन्थों की नष्ट करने में    |       | वेदों के उद्धारक मुद्रहस्य कुमा-   |       |
| गोरीजातियों की कुटिल नीति ।        | ३२    | रिल महाचार्य ।                     | ९४    |

| विषय                                                                                                                                                 | पृष्ठ | विषय                                                                                                                          | पृष्ठ |
|------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------|-------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|-------|
| अवैदिक मतों के उच्छेदक स्वा०<br>शङ्कराचार्य और उन के माया-<br>वाद की शिक्षा ।                                                                        | ८७    | वैष्णव धर्म की मीमांसा और<br>तुलसीकृत रामायण पर एक<br>सामान्य दृष्टि ।                                                        | ११६   |
| शैवादि मतों के साथ मायावा-<br>दियों का सम्मेलन, जैन<br>मत का पुनरागमन, तथा उसके<br>प्रदमनार्थ अर्बुद-गिरि के हवन-<br>कुण्ड से राजपूतों की उत्पत्ति । | ११२   | भारतवर्ष के पराधीन होने के<br>कारण ।                                                                                          | ११९   |
| पुराणों की उत्पत्ति और उनकी<br>शिक्षा तथा समीक्षा ।                                                                                                  | ११४   | कबीर मत तथा उस की अन्य<br>शाखा प्रशाखाओं का वृत्तान्त ।                                                                       | १२३   |
|                                                                                                                                                      |       | ब्राह्म समाज का संक्षिप्त वर्णन,<br>वेदों के उद्धारक ब्रह्मर्षि दया-<br>नन्द सरस्वतीजी का शुभागमन<br>और अवैदिकमतों का खण्डन । | १२५   |



॥ ओ३म् ॥

## उपोद्घात ।

### संसार के इतिहास पर एक सामान्य दृष्टि ।

जिस समय हम किसी महान् आत्मा की जीविनी का अवलोकन करते हैं तो हमारे हृदय में यह प्रश्न स्वतः उत्पन्न होता है कि यह संसाररूपी नाटक-शाला जिसमें अनेक पात्र सतत ऐसे ही अभिनय करते रहते हैं किसने और क्यों निर्माण की है ? संसार में इस प्रश्न की सीमांसा करने वाले मनुष्य दो भागों में विभक्त हैं अर्थात् एक 'नास्तिक' और दूसरे 'आस्तिक' नास्तिककोटि के मनुष्यों का यह सिद्धान्त है कि यह संसार स्वभावः से उत्पन्न होकर अनादिकाल से ऐसा ही चला आ रहा है, इसका बनाने वाला कोई नहीं है और आस्तिक दल बड़ी प्रबल यह युक्ति देकर कि कोई वस्तु बिना कर्ता (बनाने वाले) के नहीं बनती ईश्वर के आस्तित्व का समर्थन करना है । वास्तव में आस्तिक दल की युक्ति (दलील) बड़ी प्रबल है और आज तक कोई अनैश्वरवादी उचित रीति पर इसका खण्डन नहीं कर सका, इसलिये यह मानना पड़ता है कि सृष्टि की सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् वस्तुएं जिनके भीतर एक नियम काम कर रहा है, विना, निराकार, सर्वव्यापक और पूर्णज्ञानी कर्ता के उत्पन्न नहीं हो सकतीं और वही जगत् का कर्ता संसार में ईश्वर, ब्रह्म, परमेश्वर आदि असंख्य नामों से अपने अनन्त गुण, कर्म, स्वभावानुसार पुकारा जाता है ।

\* प्रकृति में एक ऐसी आकर्षण शक्ति है कि वह अपने से अल्प परिमाण के प्राकृतिक पदार्थों को अपनी ओर खींचा करती है । यही शक्ति हमारे ४९६७ योजन परिधि के भूमिपिण्ड में इतनी प्रबल हो जाती है कि आकाश में उड़ने वाले पक्षी भी इससे आकृष्ट हो कर भूमि से इधर उधर नहीं जा सकते । यदि भूमि में यह शक्ति न होती तो ऊपर की फेंकी हुई कोई वस्तु भूमि पर न गिरती वरन् जहाँ फेंका था वही स्थित रहती । यही शक्ति पाषाणादि पदार्थों को बटाया करती है ।

बहुत से लोगों का सिद्धान्त है कि जीवात्मा अनादि नहीं है  
 और जिस प्रकार घूना और जल के संयोग से  
 आत्मा का अनाविच्छेद ।  
 एक शक्ति उत्पन्न होती है उसी प्रकार जब  
 पञ्चभूत परस्पर मिलते हैं तो एक चेतन शक्ति स्वतः उत्पन्न हो जाती  
 है; परन्तु यह सिद्धान्त भी सत्य नहीं है क्योंकि मनुष्य के शरीर का  
 बहुत सा भाग नष्ट होजाने पर भी हमलोग देखते हैं कि चेतनता  
 पूर्ववत् बनी रहती है और सृष्टि के पश्चात् जब कि भौतिक शरीर  
 पूर्ववत् विद्यमान रहता है चेतनशक्ति नष्ट होजाती है, इसलिये मानना  
 पड़ता है कि शरीर के अतिरिक्त जीवात्मा कोई दूसरा द्रव्य और  
 परमात्मा के समान अनादि है ।

बहुत से मनुष्य जो आस्तिकदल में परिगणन किये जाते हैं ईश्वर  
 के अतिरिक्त प्रकृति को अनादि नहीं समझते  
 प्रकृति भी अनादि है ।  
 उन के विचार में यह जगत् ईश्वर से उत्पन्न  
 होता है और अन्त में ईश्वर में ही विलीन हो जाता है; परन्तु ऐसा  
 मानना भी अज्ञानता है, क्योंकि जब ईश्वर अनादि है तो उसके गुण,  
 कर्म, स्वभाव भी अनादि हुए क्योंकि गुण; गुणी से पृथक् नहीं हो  
 सका । यदि कोई मनुष्य ईश्वर को सृष्टि का कर्ता मानता है और  
 साथ ही उसे अनादि भी समझता है ऐसी दशा में यदि वह जगत् के  
 उपादान कारण (प्रकृति) को अनादि नहीं मानता तो वह ईश्वर का  
 अनादित्व कदापि सिद्ध नहीं कर सका और ऐसे मनुष्यों का ईश्वर  
 वास्तव में उस मनुष्य से अधिक अपनी स्थिति नहीं रखेगा जो  
 किसी भूमि का अध्यक्ष नहीं है परन्तु राजा कहलाता है । वैशेषिक  
 दर्शन में लिखा है कि: --

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः ॥ अ० २ आ० १ सू० २४

अर्थात् जो गुण किसी वस्तु के कारण में होते हैं वे उस के कार्य  
 में अवश्य विद्यमान रहते हैं । इस नियम से भी यदि यह संसार  
 ईश्वर से उत्पन्न हुआ होता तो कदापि जड़ न होता और इस में  
 ईश्वर के से ही गुण, कर्म और स्वभाव होते यदि यह मानाजावे कि  
 ईश्वर ने अभाव से भाव की दशा में परिणत कर दिया है तब भी



यह सिद्धान्त ठीक नहीं है क्योंकि भगवद्गीता में लिखा है:—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।

उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

अर्थात् कभी असत् ( जो नहीं है ) का भाव ( विद्यमानता ) और सत् का अभाव नहीं होता इन दोनों का निर्णय तत्त्वदर्शी लोग जानते हैं न कि भूर्ख और दुराग्रही । अतएव स्पष्ट सिद्ध है कि न तो यह जगत् ईश्वर से ही उत्पन्न हुआ है न उसने अभाव से ही बनाया है वरन् प्रकृति से जो ईश्वर के समान ही अनादि है और प्रलय काल में परमात्मा में सूक्ष्मभाव से विद्यमान रहती है, बनया है । जो पुरुष प्रलय के पश्चात् प्रकृति का अभाव मानते हैं वे अज्ञानी हैं ।

बहुत से मनुष्यों का सिद्धान्त है कि यह सृष्टि जो हमें दृष्टिगत मृष्टपुष्पाणि एवं ईश्वर, जीव होती है हम इसके विषय में कुछ नहीं कह और प्रकृति के अनादित्वं में वैदिक प्रमाणः— सकते हैं कि यह इससे पूर्व भी उत्पन्न हुई थी या नहीं । वास्तव में ऐसे मनुष्यों का कथन सत्य है और उन्हें वास्तव में सबर नहीं है क्योंकि जिन पुस्तकों को वे ईश्वरकृत मानते हैं वास्तव में वे ईश्वरीय ज्ञान के पुस्तक नहीं हैं और इसी लिये ऐसे पुस्तकों से हमें कुछ लौकिक वा पारलौकिक वृत्तान्त सत्य २ ज्ञात नहीं हो सकते । वेद भगवान् जो ईश्वरी ज्ञान का भण्डार हैं और जो सृष्टि के आरम्भ में उस परमदयालु परमात्मा की ओर से मनुष्यों को प्रदान किये गये हैं हमें बतलाते हैं कि:—

मूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ।

अर्थात् उस परमात्मा ने सूर्य, चन्द्र आदि लोकों को इसी प्रकार बनाया और धारण किया है जैसा कि पूर्वकल्पों में बनाया और धारण किया था । यदि सूक्ष्मदृष्टि से देखा जावे तो परब्रह्म परमात्मा ने उपर्युक्त वैदिक वाक्य के अन्तर्गत इतने विषय वर्णन कर दिये हैं कि जिनकी व्याख्या के लिये १८० पृष्ठ भी अलम् नहीं हैं । साधारण-तया इस वैदिक वचन से हम यही अर्थ ग्रहण करते हैं कि इससे पूर्व भी सृष्टि असंख्यवार उत्पन्न हो चुकी है, जिस प्रकार रात्रि के पश्चात् दिन और दिन के पश्चात् रात्रि का चक्र सदा चलता रहता है और हम किसी को आदि या अन्त नहीं कह सके इसी प्रकार प्रलय के

पश्चात् सृष्टि और सृष्टि के पश्चात् प्रलय का चक्र अनादि काल से चल रहा है जिसकी गणना करने का साहस करना इस अल्पज्ञ जीव की शक्ति से बाहर है। बहुत से मनुष्य वैदिकसिद्धान्त पर यह आशेष किया करते हैं कि बारंबार प्रलय और सृष्टि करने की ईश्वर की आवश्यकता ही क्या है? इसका उत्तर वैदिकसिद्धान्त इस उत्तमता से देते हैं कि अनन्तःकरण उस से सन्तुष्ट हो जाता है। वह कहते हैं कि जो वस्तु कार्यरूप में परिणत होती है समय पाकर उसका नाश अवश्य होता है इसलिये यह सृष्टि जो अनन्त परमाणुओं का संघातरूप दृष्टिगोचर हो रही है समय पाकर इस का नाश ( प्रलय ) अवश्य होगा और प्रलय के पूर्व जो २ जीव जैसा कर्म करते हैं उन का फल देने के लिये ही प्रलय के पश्चात् परमात्मा सृष्टि को उत्पन्न करते हैं। वेदों में लिखा है कि:-

द्वा सु॒पर्णा स॒यु॒जा सखा॑या स॒मानं वृक्षं॑ परि॒षस्व जा॒ते ।  
तयो॒रन्यः पिप्प॑लं स्वा॒दवत्य॑न॒श्नन्न॑न्यो अ॒भिचा॑कशीति ॥

ऋग्वेद सण्डल १ सूक्त १६४ मं० २०५ ॥

अर्थात् ( द्वा ) जीव और ब्रह्म ( सुपर्णा ) चेतनतादि गुणों में समान ( सयुजा ) व्याप्यव्यापकभाव में संयुक्त ( सखाया ) सदा से मित्र अर्थात् अनादि हैं ( समानम् ) वैसीही ( वृक्षम् ) प्रकृति भी है ( तयो ) इन में से एक [ जीव ] फलों को ( स्वाद्वत्ति ) खाता है और दूसरा [ ईश्वर ] ( अन्नश्नन् ) न खाता हुआ ( अभिचाकशीति ) चहुं ओर प्रकाशित हो रहा है।

उपरोक्त मन्त्र में ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों को अनादि वर्णन किया गया है अब एक मनुस्मृति का श्लोक नीचे उद्धृत किया जाता है जिस से विदित होगा कि प्रलयकाल में जगत् की क्या अवस्था होती है और प्रसुप्त होने के कारण जीव उस की दशा को अनुभव नहीं कर सक्ता:-

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।

अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥

अर्थात् यह जगत् सृष्टि के पहले प्रलय में अन्धकार से अन्ध्यादित था उस समय यह प्रसुप्त ( गह्रनिद्रा में ) था एवं किसी के तर्क में लाने और जानने योग्य न था ।

जिस समय सृष्टिरचन का समय आता है तब परमात्मा इन परमसूक्ष्मपरमाणुओं को इकट्ठा करते हैं जिस प्रकार यह, कारणमय जगत् क्रमशः स्थूल होता जाता है, सांख्यशास्त्र में उसके प्रत्येक रूपान्तर के पृथक् २ नाम लिखे हैं अर्थात् प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चस्थूलभूत; उसके उत्तरोत्तर स्थूलरूपोंकी संज्ञा है जिनकी संख्या इन के अवान्तरभेदों के सहित उक्त दर्शन में २४ वर्णन की गई है और २५वें पुरुष की गिन कर इन सब की समस्त चराचर सृष्टि का मूल माना गया है। तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है कि:—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः । वायो-  
राग्निः । अग्नेरापः । अपद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः ओषधिभ्यो-  
ऽन्नम् । अन्नाद्रेतः । रेतसः पुरुषः । सवा एष पुरुषोऽनरसमयः ॥

अर्थात् जब कारणरूप द्रव्य जो सर्वत्र फैला रहता है स्थूल होने लगता है तो आकाश ( खाली जगह ) की उत्पत्ति होती है; आकाश के पश्चात् वायु; वायु के अग्नि; अग्नि के जल और जल के पश्चात् पृथिवी उत्पन्न होती है; पृथिवीसे ओषधियें; ओषधियों से अन्न; अन्न से वीर्य और वीर्य से पुरुष ( प्राणियों ) की उत्पत्ति होती है।

सूर्य सिद्धान्त नामक ज्योतिष के अति प्राचीन ग्रन्थ में जिसे बने  
भूगोल खगोल का साक्षिप्त संवत् १८६४ विक्रमी में २१६५०० वर्ष व्यतीत हुए  
वर्णन लिखा है कि:—

अग्निषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्वङ्गारकादयः । तेजो भूखाम्बुबोतभ्यः  
क्रमशः पञ्चजक्षिरे ॥ १ ॥ पुनर्द्वादशधात्मनं विभजद्राशिसंज्ञकम् । नक्षत्र-  
रूपिणं भूयः सप्तविंशत्मात्मके वशी ॥ २ ॥ ग्रहनक्षत्रताराणां भूमेविश्वस्य  
वा विभुः । देवासुरमनुष्याणां सिद्धानां च यथाक्रमम् ॥ ३ ॥ ब्रह्माण्ड  
मेतत्पुषिरं तत्रेदं भूर्भुवादिकम् । कटाहद्वितयस्येव स्रम्पुटं गोलकाकृति ॥ ४ ॥  
ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते । तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रम-  
शस्तथाः ॥ ५ ॥ मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजन्दवः । परिश्रमन्तधोऽप्यस्याः  
सिद्धविद्याधरायनाः ॥ ६ ॥ मध्ये समन्तादगडस्य भूगोलोव्योम्नि तिष्ठति ।  
विभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥ ७ ॥ तदन्तरं पुटाः सप्त  
नागासुरसमाश्रयाः । दिव्योषधिरसोपेता रम्या पातालभूमयः ॥ ८ ॥

सूर्य सिद्धान्त अध्याय १२ श्लो० २३, २४ तथा २८ से ३३ पर्यन्त ॥

अर्थ—उस परमात्मा ने अग्निरूप सूर्य, जलस्वरूप चन्द्रमा की

रच कर, पुनः तेज से मङ्गल, पृथिवी से बुध, आकाश से बृहस्पति, जल से शुक्र, और वायु से शनि इन पांच ग्रहों की उत्पन्न किया ॥ १ ॥ पुनः उस वशी ( ब्रह्म ) ने अपनी इच्छा से १२ विभागात्मक राशि चक्र और २७ नक्षत्रादिकों की रचा ॥ २ ॥ फिर ग्रह, नक्षत्र, तारा, पृथिवी, देव, असुर, मनुष्य, सिद्ध इनके स्थानों का विभाग किया ॥ ३ ॥ पूर्वोक्त ब्रह्माण्ड में भूर्भुवादि लोक\* अवस्थित हैं, यह ब्रह्माण्ड गोल है जैसी कि दो कटाहों को मिलाने से आकृति बनती है ॥ ४ ॥ ब्रह्माण्ड के मध्य में परिधि को आकाशकक्षा कहते हैं जिस में सब से ऊपर राशि चक्र, उस के नीचे शनि, उस के नीचे बृहस्पति, उस के नीचे मङ्गल, उस के नीचे सूर्य, उस के नीचे शुक्र, उस के नीचे बुध, और बुध के नीचे चन्द्रमा भ्रमण करता है, उस के नीचे सिद्धविद्याधरगण के घूमने का मार्ग अन्तरिक्ष है और सब से नीचे मेघमण्डल है ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ परमात्मा की धारणात्मिका परमांशक्ति के आधार यह भूगोल ( पृथिवी ) ब्रह्माण्ड के मध्य आकाश में घूम रहा है ॥ ७ ॥ भूगोल के भीतर नाग और असुर आदि के निवासार्थ ७ पाताल† हैं ४ जिन में अनेक प्रकार की स्वप्रकाशयुक्त रमणीक ओपधि उत्पन्न होती हैं ।

सिद्धान्त शिरोमणी नामक ज्योतिष के ग्रन्थ में जिसे संवत् १८६४ विक्रमी में बने १८२९ वर्ष बीते पृथ्वी के गोल तथा बिना किसी मूर्तिमान् धर्ता के आधार स्थित होने एवं अपनी आकर्षण शक्ति से सब पदार्थों की अपनी ओर खींचने के विषय में अति प्रबल युक्तियों वर्णन की गई हैं जिन में से कुछेक का उल्लेख हम यहां भी करते हैं ।

समोयतः स्यात्परिधे शतांशः पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान् ।

नरश्च तत्पृष्ठगतस्य कृत्स्ना समेवतस्य प्रतिभायतः सा ॥१॥

मूर्त्तौ धर्ता चेद्भरिष्यास्ततोऽन्यस् तस्याप्यन्योऽस्यैवमत्रानवस्था ।

अन्ये कल्प्या चन्म्वशक्तिः किमाद्ये किं नो भूमेः साष्टमूर्त्तेश्च मूर्त्ति ॥२॥

\* १-लोक यह है १. भूर्लोक २. भुवर्लोक ३. स्वर्लोक ४. महर्लोक ५. जनलोक ६. तपलोक ७. सत्यलोक ॥

† ७-पाताल-१. महातल २. ( शाश्वत ) ३. रसानल ( युरोप ) ४. अतल ( बोहोमीनिया ) ५. सुतल ( आर्मेनिया ) ६. वितल ( आस्ट्रेलिया ) ७. तलातल ( बर्लिया अमेरिका ) ८. पाताल ( इन्डो-चीन ) ९. पाताल ( इन्डो-चीन ) १०. जम्बूद्वीप १. शाकद्वीप २. कुशद्वीप ३. औचद्वीप ४. शाकद्वीप ५. यमुद्वीप और ६. पुष्करद्वीप भी कहते हैं ॥

आकृष्टिशक्तिश्च मही तथा यत् खस्यं गुरु स्वाभिमुखं स्वशक्त्या ।

आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात्क पतित्वयं खे ॥३॥

अर्थः—मनुष्य जो पृथ्वी के पृष्ठ पर रहता है भूमि की अपेक्षा बहुत छोटा होने के कारण पृथ्वी की परिधि के बहुत छोटे भाग को देख सकता है इसलिये उसे भूमि बपटी दिखाई देती है परन्तु वास्तव में गोल है ॥ १ ॥ यदि पृथ्वी का कोई मूर्त्तिमान धर्त्ता [ शेषनाग, बैल आदि ] माना जाय तो उसका कोई और धर्त्ता मानना पड़ेगा और उसका कोई अन्य, इसी प्रकार कहीं अन्त न पावेगा और अंत में यही मानना पड़ेगा कि पृथ्वी अपनीही शक्ति से स्थित है ॥ २ ॥ पृथ्वी अपने ऊपर के सब पदार्थों की आकर्षण शक्ति से अपनी ओर खींचती है इसलिये सब पदार्थ पृथ्वीपर गिरते हैं और उसपर स्थित रहते हैं ॥

बौद्ध लोग जो भूमि को भारी होने के कारण नीचे की चली जाती है ऐसा मानते हैं उपरोक्त पुस्तकके प्रणेता इसका खरडन इस प्रकार करते हैं :-

भूः खेऽथः खलु यातीति बुद्धिर्बुद्ध ! मुधाकथम् ।

जातायानं तु दृष्ट्वापि खं यत् क्षिप्तं गुरु क्षितम् ॥

यदि भूमि नीचे की जाती है तो ऊपर की फेंकी हुई गेंद फिर पृथ्वी पर न गिरनी चाहिये क्योंकि दोनों नीचे गिरती हैं यदि कोई कहे कि भूमि की गति मन्द है और गेंद की शीघ्र है तो यह असम्भव है क्योंकि भारी वस्तु शीघ्र गिरा करती है ॥

यह बात निश्चित है कि जैसे पृथ्वी के इस भाग में मनुष्यादि बसते हैं वैसेही पाताल में भी रहते हैं जैसा कि सि०शि०में लिखा है:-

सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः ।

कदम्बकुमुमग्रान्यः केसरप्रकरैरिव ॥ \*

पृथ्वी के सब ओर पर्वत, आराम ( बाग ) और ग्रामादि हैं जैसे कदम्ब के फूल के चारों ओर पङ्कड़ियाँ होती हैं ॥

\* यहाँ बहुत से मनुष्य शङ्का करते हैं कि पाताल निवासी नीचे कैसे बसते हैं और उलटे होने के कारण गिर क्यों नहीं पड़ते ? परन्तु नीचे ऊपर वस्तुनः नियत नहीं हैं जो पैरों की ओर है उसको नीचे, और जो शिर की ओर है उसको ऊपर कहते हैं जैसे पातालदेश निवासियों के पैरों की ओर हम रहते हैं और हम ऊपर की नहीं उड़ जाते इसी प्रकार वे भी हमारे नीचे रहते हैं और भूमि के आकर्षण से कहीं की नहीं गिर सके ।

पृथ्वी की परिधि और व्यास के मान विषय में उपरोक्त गृन्थ में लिखा है कि: —

प्रोक्तो योजनसंख्या कुपरिधिः सप्ताङ्गनन्दावधयः ।

तद्व्यासः कुभुजङ्ग सायक भुवः सिद्धांशकेनाधिकाः ॥

याम्योदकपुरयोः पलान्तरहतं भूवेष्टनं भांशहत ।

तद्भक्तस्य पुरान्तराध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम् ॥१॥

पृथ्वीकी परिधि ४९६७ योजन और व्यास १५८१ योजन लम्बा है दो ऐसे नगरों के जिन में एक भूमध्यरेखा के उत्तर और दूसरा दक्षिण में स्थित दो पलान्तर की भूमि की परिधि में गुणन करने और ३६० पर भाग देने से उन नगरों का योजनों में अन्तर जाना जाता है ।

डार्विन प्रभृति यूरोप के अनेक विद्वानों ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि ज्ञान और भाषा ईश्वरप्रदत्त वेश को ईश्वरने रचा है और वे ही सब विद्याओं का भण्डार हैं ॥

नहीं है प्रत्युत मनुष्यों ने ही इन्हें बनाया है, परन्तु युक्ति और प्रमाण शून्य होने से उन का यह कथन कदापि माननीय नहीं हो सकता । यदि किसी शिशु को उत्पन्न होते ही किसी ऐसे स्थान में रख कर उसका पालन किया जावे जहां वह किसी प्रकार का शब्द न सुन सके तो वह किसी भाषा का ज्ञाता नहीं हो सकता और न किसी विद्या का ही आविष्कार कर सकता है । भेड़ियों की मांदों से पकड़े हुए बालक इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं कि वे न तो भाषाज्ञ ही होते हैं न किसी विद्याको ही प्रकाशित कर सकते हैं । अतएव सिद्ध है कि मनुष्योंको उत्पन्न करते ही उस परमपिता परमात्मा ने अपना ज्ञान भी प्रदान किया था जिसके द्वारा मनुष्य अपने भाव एक दूसरे पर प्रकट कर सकें और सृष्टि की समस्त वस्तुओं के गुणावगुणों का अनुभव कर के उस को धन्यवाद देते हुए अपने जीवन को सुख और शान्ति पूर्वक बितावें । जिस समय हम संस्कृत साहित्य का अवलोकन करते हैं तो कोई पुस्तक ऐसी नहीं पाते जो वेदों की महिमा और उनके अप्री-

\* यदि एक योजन ५ मील के बराबर माना जाय तो पृथ्वी की परिधि ४९६७ × ५ = २४८३५ मील और व्यास १५८१ × ५ = ७९०५ मील होता है योरूपवेशवासियों ने भूमि की परिधि २४८५६ मील और व्यास ७९१२ मील निश्चित किया है; यह थोड़ा अन्तर भी इस कारण है कि एक योजन ५ मील में कुछ अधिक का होता है ।

रूपेयत्वं का वर्णन न कर रही हो और यह न बतला रही हो कि सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने यही ज्ञान मनुष्यों को दिया था। महर्षि जैमिनि, कणाद, गोतम, पतञ्जलि, व्यास और कपिल प्रभृति तत्त्व-वेत्ता और कर्कश तर्क वाले अपने उन छत्रों शास्त्रों में जिन्हें देखकर यूरोप के बड़े २ फिलाफ़र्स (विद्वान्) विस्मित हैं एक स्थर से वेदों को नित्य और स्वतः प्रमाण मान रहे हैं और जहाँ पर उन के सिद्धान्त में वेदों से विरोध आया है मौन धारण करके वहाँ उन्होंने वेदों का ही प्रमाण स्वीकार किया है 'शास्त्र योनित्वात्' इस वेदान्त दर्शन के सूत्र का अर्थ करते हुए स्वा० शङ्काचार्य जी ने भी वेदों को नित्य मान के यह व्याख्यान किया है कि ऋगादि चारों वेद अनेक विद्याओं से युक्त और सूर्य के समान सब विद्याओं का प्रकाश करने वाले हैं और वे परमात्मा ने प्रकाशित हैं।

मनुस्मृति में भी जिसे बने चारह करोड़ वर्ष में अधिक वीते लिखा है कि:-

अर्थकामध्वगक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते । धर्मं जिज्ञा समानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥१॥ श्रुतिं द्वैधं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मादुर्भा रक्षता । उभावपि हि ते धर्मा मम्यगुक्ता मनीषिभिः ॥२॥ मनु० २ । १३-१४ ॥

अर्थात् धर्म और काम पाने की इच्छा रहित मनुष्यों को यह उपदेश है कि जो धर्म को जानना चाहते हैं उनके लिये श्रुति ही सब से अधिक प्रमाण के योग्य है। जहाँ श्रुति और स्मृति में विरोध हो वहाँ श्रुति का वचन प्रामाण्य है स्मृति का नहीं यदि कहीं श्रुतियों में दो प्रकार के धर्मों का प्रतिपादन किया गया हो तो वहाँ दोनों काही प्रमाण करना चाहिये ॥

कहाँ तक प्रमाण लिखें ब्राह्मण ग्रन्थ, दर्शन और पुराणादि आधुनिक ग्रन्थ जिनका आर्या से पूर्णतया अथवा किञ्चित् सम्बन्ध है। वेदों के महत्त्व और अपौरुषेयत्व को स्वीकार कर रहे हैं अतएव आर्यावर्त निवासी ऋषि मुनियों ने इसी ईश्वरीय ज्ञान अर्थात् चारों वेदों से, अनेक विद्याओं का विकास करके भूमण्डल भर में फैलाया था जैसा कि मनुस्मृति के निम्न श्लोक से विदित होता है:-

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः ।

स्वं स्वं चरितं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवः ॥ मनु० २ । २७ ॥

अर्थात् इस देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों से भूमण्डल भर के सब मनुष्यों ने आकर अनेक प्रकार की शिक्षाएँ ग्रहण कीं ।

बहुत से लोग वेदों को ईश्वरवाक्य नहीं मानते और कहते हैं कि इन्हें ब्रह्मा जी ने अपने चार मुखों द्वारा उत्पन्न किया है परन्तु सञ्ज्ञास्त्रों में इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता । सहर्षि याज्ञवल्क्य अपनी पण्डिता स्त्री मैत्रेयी को उपदेश करते हैं कि:—

एवं वा अरस्य महता भूतस्य निःश्वसितः मेतद्वद्वेदो यजुर्वेदः साम-  
वेदोऽथर्ववेदः ॥ १ ॥ शतपथ काण्ड १४ अध्याय ५ ब्रा० ४ कं० १० ॥

अर्थात् हे मैत्रेयी ! जो आकाशादि से भी बड़ा परमेश्वर है इससे ही ऋगादि चारों वेद उत्पन्न हुए हैं । जैसे मनुष्य के शरीर से श्वास बाहर आकर फिर भीतर की जाती है इसी प्रकार सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके संसार में प्रकाशित करता है और प्रलय होने पर संसार में वेद नहीं रहते परन्तु उस के ज्ञान के भीतर सदा विद्यमान रहते हैं । मनुस्मृति में भी लिखा है कि:—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।

दुर्गाह यज्ञमिदं यथामृग्यजुः साम लक्षणम् ॥ १ । २३ ॥

अर्थात् ब्रह्मा जी ने यज्ञ की सिद्धि के लिये अग्नि, वायु, आदित्यादि ऋषियों से वेदों को ग्रहण किया । उपर्युक्त शतपथ तथा मनुस्मृति के प्रमाणों से विदित है कि सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा ४ ऋषियों के अन्तरात्मा में उनके पूर्व कल्पके पुण्यफलों के कारण ऋग्यजुः, साम और अथर्व, वेदोंका प्रकाश किया था और उपर्युक्त चारों ऋषियों से वेदों का ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि में अनेक मनुष्यों को शिक्षा दी न कि ब्रह्मा जी ने वेद स्वतः बनाये ।

यूरोप के विद्वान् वेदों को ईश्वरकृत नहीं मानते और उनके मनुष्यकृत होने में यह दो प्रमाण देते हैं कि यदि वेद परमेश्वर का ज्ञान होता तो ४ पुस्तकों में विभक्त कदापि न होता प्रत्युत एक पुस्तक में ही यह समस्त ज्ञान वर्णन किया जाता । इस-लिये यह चारों पुस्तक भिन्न २ समयों में निर्माण की गई हैं और



बहुत समय के पश्चात् मनुष्य इन्हें एक ही समय में निर्मित और परब्रह्म परमात्मा से प्रकाशित मानने लगे हैं। बहुत से मनुष्य इस युक्ति की पुष्टि में मनुस्मृति का उपर्युक्त श्लोक भी पेश किया करते हैं और कहते हैं कि इसमें तीन ही वेदों का वर्णन है चीथे अथर्व-वेद का नहीं है इसलिये अथर्ववेद मनुस्मृति के भी पश्चात् बनाया गया है, परन्तु ऐसे आक्षेप प्रायः उन्हीं लोगों की ओर से होते हैं जिन्हें आर्षग्रन्थों से पूर्ण अभिज्ञता नहीं है। शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि:-

स ऐक्षत प्रजापतिः त्रयां वाविविद्यायां सर्वणि भूतानि ।

हन्त त्रयमेव विद्यामात्मानमभिमस्तरेव ॥१०।४।२।११ तथा १२॥

अर्थात् उस प्रजापति ( परमेश्वर ) ने सब सृष्टि को देखा और कहा कि सब पदार्थ “ त्रयी-विद्या ” के अन्तर्गत हैं, मैं त्रयीविद्या से ही मन और जीवात्मा का संस्कार करूँ ।

उपर्युक्त शतपथ वाक्यसे विदित है कि वेदोंका नाम त्रयी-विद्या है और उनका यह नाम इसलिये है कि उनमें तीन विद्याओं अर्थात् ( १ ) ज्ञान ( २ ) कर्म और ( ३ ) उपासना का वर्णन है । जिन मन्त्रों में सृष्टि के समस्त पदार्थों के गुण वर्णन किये गये हैं उन के समुदाय का नाम ऋग्वेद है । जिन मन्त्रों में पदार्थों के गुणों से कार्य की सिद्धि बताई गई है उन के संग्रह को यजुर्वेद कहते हैं । जिन मन्त्रों में ईश्वर के उपासनाकाण्ड का उपदेश है उन के समुदाय को सामवेद कहते हैं । और जिन मन्त्रों में विज्ञान अर्थात् ज्ञान, कर्म और उपासनासे यथावत् उपयोग लेकर अनेक कार्यों की सिद्धि बतलाई गई है उनके संग्रह को अथर्ववेद कहते हैं वास्तव में अथर्ववेद किसी विद्याका प्रतिपादन नहीं करता प्रत्युत उपर्युक्त त्रयीविद्याओं की सिद्धि बतलाता और रक्षा करता है इसलिये यह त्रयीविद्या के ही अन्तर्गत माना गया है । शास्त्रों में अनेक स्थलों पर त्रयीविद्या

\* अथर्ववेद में प्रागुक्त तीनों वेदों में कथित विद्याओं की सिद्धि बतलाई गई है और यह वे प्रकार की है ( १ ) सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ के गुणों का ज्ञान प्राप्त करके उनसे अनेक प्रकार की निष्काओं अर्थात् रत्न, तार आकाशयान, अस्त्र-सस्त्रादिकों का निर्माण करना ( २ ) परमेश्वरका यथावत् ज्ञान और उसको प्राप्त होना । उपर्युक्त दोनों प्रकार की विद्याओं में ईश्वर की आज्ञानु-कूल चरने पर उसे पान करने की विद्या को ही प्रधान माना गया है ।

के वर्णन में चारोंवेदों का ग्रहण किया जाता रहा है जैसा कि महा-  
भारत के निम्न श्लोक से विदित होगा:-

त्रयीविद्यामवेक्षेत वेदसूक्तामथाङ्गतः ।

ऋक्सामवर्णाक्षरता यजुषोऽथर्वणाम्भ्यः ॥ शान्ति पर्व १३५ ॥

अर्थात् ऋग्, यजु, साम और अथर्व इन चार वेदों में कही हुई  
त्रयीविद्याओं की साङ्गोपाङ्ग पढ़े ।

सम्प्रति योरोपदेशीय विद्वानों ने जो अनेक रेल, तार, व्योम-  
यान प्रभृति विद्याओं का आविष्कार किया है और अनेक नवीन  
सिद्धान्त ज्ञात किये हैं, या प्रकाशित कर रहे हैं उनके विषयमें हमारे  
बहुत से भोले भाई यह समझते हैं कि यह सिद्धान्त इन्होंने अपने  
बुद्धिवैभव से नवीन ही ज्ञात किये हैं, प्राचीन लोगों को इनका कुछ  
परिज्ञान न था परन्तु यह उनका केवल भ्रम है, हम पीछे सिद्ध कर  
चुके हैं कि सनुष्य में किसी विद्या को आविष्कार करने की शक्ति  
नहीं है, वही वैदिक सिद्धान्त जो प्राचीन ऋषि और मुनियों ने वेदों से  
निकाल कर भूमण्डलभर में फैलाये थे किसी न किसी देश में पृथिवी के  
अनेक भागोंमें विद्यमान हैं और उन्हीं की सिद्ध करनेके लिये केवल युक्ति  
और प्रमाण एकत्रित कर लिये जाते हैं अन्यथा किसी नवीन सिद्धान्त  
का आविष्कार सनुष्यों ने न कभी किया और न कर सकेंगे । यदि चौदहवीं  
शताब्दि के अन्त “कोलम्बस” (columbus) ने भूमिके गोल होने और  
पन्द्रहवीं शताब्दि के अन्त में “कोपरनीकस” (Copernicus) नामी  
महात्मा ने पृथ्वी के घूमने और गोलाकार होने का सिद्धान्त लोगों  
को बताया और सोलहवीं शताब्दि के आरम्भ में जर्मनी के “केपलर”  
( Kepler ) और इटली के “ गेलीलियो ” ( Galileo ) \* ने इसी  
सिद्धान्त की अनेक प्रमाण देकर पुष्टि की तो यह विचार करना सत्य  
नहीं है कि इन महापुरुषों के पूर्व पृथ्वी के गोलाकार होने और भ्रमण  
करनेका सिद्धान्त संसारमें उपस्थित नहीं था । यज्ञानके प्रसिद्ध इकीम

\* महात्मा गेलीलियो ने जब भूमि के गोलाकार होने और घूमने का सिद्धान्त प्रका-  
शित किया तो पादरी लोगों ने उस का बड़ा भारी विरोध किया यहाँ तक उस को पादरी के शत्रु  
इन गये थे क्योंकि बाइबिलमें भूमि की चपटी होना लिखा है । परन्तु वेही पादरी लोग आज अपने  
विद्वान्मण्डलों में पृथ्वी के गोल होने की शिक्षा देकर अपने पृथ्वीका नाँव मूर्खता और बाइबिल के  
असत्य लेख का स्वयंभू स्तम्भन कर रहे हैं ।

“पैथेगोरस” (Pythagoras) ने यूरोप देशोंको इससे बहुत पहले यह सिद्धान्त बतलाया था परन्तु पीछे स्कन्दरियाके ‘टालमी’ ( Ptolemy ) नामक ज्योतिषी ने अविद्या के कारण हकीम पैथेगोरस के सिद्धान्त का खण्डन कर के लोगों को पृथ्वी के स्थिर और चपटी होने की शिक्षा दी और इसी कारण बहुत काल तक इस सिद्धान्त को मानने से “कौपरनिकस” ( Copernicus ) के सिद्धान्त को लोगों ने नवीन समझा । परन्तु आर्यावर्त निवासी इस सिद्धान्त को अनादि काल से जानते चले आये हैं जैसा कि हम भूगोल और खगोल के विषय में वर्णन करते समय इसका उल्लेख कर चुके हैं ।

यदि “जैम्सवाट” ने पकती हुई खिचड़ीके ऊपर खड़कते हुए ढकनेका कारण वाष्प (भाप) की शक्तिको अनुभव किया तो भापके गुण जानने पर भी वह स्टीम एंजिन तब तक नहीं बनामका जब तक कि उसे “न्यूकोमन” के बनाये हुए एंजिन की मरम्मत करने का अवसर न मिला ।

यदि सूर्यकी किरणें ७ प्रकारके रंगों से बनी होनेका सिद्धान्त १६वीं शताब्दिमें ‘न्यूटन’ (Newton) साहबने निकाला तो यह मानलेना मूर्खता है कि १६वीं शताब्दि से पहले यह सिद्धान्त संसार में उपस्थित नहीं नहीं था इस समय हम यह नहीं बतला सकते कि न्यूटन साहब ने यह सिद्धान्त कहां से लिया परन्तु इस विषय में आर्यावर्तीय विद्वानों की बनाई पुस्तकों के प्रमाण देकर हम सिद्ध करेंगे कि अनादिकाल से आर्य लोग इस सिद्धान्त को जानते थे और उन्हें न्यूटन साहब से भी १६०० वर्ष पूर्व तक यह सिद्धान्त ज्ञान था । बहत् संहिता जिसे वराहमिहिर ने, महाराज विक्रमादित्य के समय में बनाया है उस के अध्याय ३४ में लिखा है कि:

संमूर्च्छिता रवेन्द्रा किरणाः पवनेन मण्डलीभूतः ।

नानावर्णा कृतयन्तन्यध्रे व्योम्नि परिवेपः ॥

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा की किरणें बादल में पवन के जलकणों से पृथक् २ हो मण्डलाकार और नानावर्ण की (रंगबिरंगी) हो कर आकाश में दिखाई देती हैं ।

---

\* सूर्य किरणें ( १ ) लाल ( २ ) नारंगी ( ३ ) पीली ( ४ ) हरी ( ५ ) आम्बानी ( ६ ) नीली ( ७ ) बैजनी सात प्रकार के रंगों से बनीं हैं, इन का प्रत्यक्ष हम एक तिकोने कांच के शीशे में देखने से कर सकते हैं, सूर्यरश्मि उस कांच में पड़ कर ७ प्रकार की दृष्टि आने लगती है । आकाश में जो इन्द्रधनुष दृष्टि पड़ता है उस का कारण भी यही है अर्थात् सूर्य की किरणें जब कांचमर्पण करने पर मृदुला में होकर निकलती हैं तो उनके ७ रंग पृथक् २ हो जाते हैं ।

फिर ३५ वें अध्याय में लिखा है कि:-

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विजादिताः कराः साधे ।

विपति धनुः संस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्र धनुः ॥

अर्थात् सूर्य की विविध रंग वाली किरणों बादल वाले आकाश में पवन के जलकणों से फटकर जब धनुष रूप से दिखाई देती हैं तब उसको इन्द्रधनुष कहते हैं ।

आर्यों ने इस सिद्धान्त को भी अन्य विद्याओं की तरह वेदों से प्राप्त किया था वेदों में इस विषयके “ अग्नी ये सप्तरश्मयः ” “ सप्त-त्वा हरितो रथे ” “ अयुध सप्त शुन्धुध्रुवः ” आदि बहुत मन्त्र पाये जाते हैं ।

अब हम कुछ ऐसे वेद मन्त्र उद्धृत करते हैं जो इस पुस्तक से विशेष सम्बन्ध रखते हैं ।

त्रयः पुरयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व  
द्विदुः । त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं या  
धस्त्रिर्वाश्वेना दिवा ॥ ऋ० १ । ३ । ४ । १ ॥

अर्थ:-यान इस प्रकार का बनाना चाहिये कि जिस में ३ पहिये हों जिन से वह जल और पृथिवी के ऊपर चलाया जा सके, उस के सब अङ्ग वज्र के समान दृढ़ हों, उन में तीन २ यम्भे ऐसे बनाने चाहियें जिन के आधार सब कलायन्त्र लगे रहें तथा वे यम्भे भी दूसरे काष्ठ वा लोहेके साथ लगे रहें । सब शिल्पी लोग ऐसे यानोंको बनावें जिन से सुख की सिद्धि होती है और उन यानों से जिन के आरम्भ में अग्नि और जल ही मुख्य हैं तीन दिन और तीन रात्रि में चाहे जहां जा सके हैं ।

द्वादश प्रथेशचक्रमेकं त्रीणि नभ्यामि कउनाञ्चिकेत ।  
तस्मिन्त्साकं त्रिंशत्ता न शङ्कवोऽपिताः षष्ठिर्न चला-  
चलासः ॥ ऋ० २ । ३ । २३ । ४८ ॥

अर्थ:-इन यानों में बारह यम्भे रचने चाहियें जिन में सब कला-यन्त्र लगाये जायें । उन में एक चक्र बनाना चाहिये जिस से सब घूर्में । फिर उस के मध्य में तीन चक्र रचने चाहियें जिन में एक को चलाने

से सब रुक जायें दूसरे के चलाने से आगे और तीसरे के चलाने से पीछे चलें। उन में तीन २ सौ बड़े शङ्खवः (पेंब) लगाने चाहियें जिन से उन के सब अङ्ग जुड़जायें। उन में ६० कलायन्त्र ऐसे रचने चाहियें जिन में कुछ चलते रहें और कुछ बन्द रहें। अर्थात् जब विमान ऊपर को उठाना हो तो बाष्पघर के ऊपर के मुख बन्द रखने चाहियें और जब नीचे उतारना हो तो वे खोल देना चाहियें इसी प्रकार पूर्व पश्चिमादि जिस दिशा को चलाना हो उस ओर के मुख अनुमान से बन्द कर देना उचित है।

अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे निन्धूनां रथः । प्रिया यु-  
युजु इन्दवः ॥ ऋ० ॥ १ । ३ । ३४ । ८ ॥

अर्थः—जो पूर्वोक्त अरित्रयुक्त यान बनते हैं वे रथ बड़े २ समुद्रों को भी पार कर जाते हैं उन तीन प्रकार के ( जल, स्थल और आकाश में गमन करने वाले ) यानों में बाष्प वेग के लिये एक जलाशय बनाकर जलसंचयन करना चाहिये।

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ॥  
नीन्वीनाः स्थुरुपरिं बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहितां केतवः  
स्युः ॥ ऋ० १ । ६ । २४ । ७ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो ! तुम जो (पूतदक्षः) पवित्र बल वाला (राजा) प्रकाशमान ( वरुणः\* ) जल का समूह अर्थात् सूर्य ( अबुध्ने ) आकाश में ( वनस्य ) जो संसार है ( ऊर्ध्वम् ) उस पर ( स्तूपम् ) अपनी किरणें ( ददते ) छोड़ता है जिसकी ( नीन्वीनाः ) नीचे गिरती हुई ( केतवः ) किरणें ( एषाम् ) इस संसारके पदार्थोंके (उपरि) ऊपर ( स्थुर ) ठहरती हैं ( अन्तर्निहिताः ) जो उसके मध्य में वायु, जल, और अनल तथा ( बुध्नः ) मेघादि पदार्थ ( स्युः ) हैं और ( केतवः ) प्रकाश का ज्ञान ( अस्मे ) हमें (निहितः) कराते हैं उन्हें यथावत् जानों।

इस मंत्र में बतलाया गया है कि यदि जल आदि के अति सूक्ष्म विन्दुओं से यह अन्तरिक्ष आच्छादित न हो तो सूर्य इसे प्रकाशित

\* सूर्य की किरणें निरन्तर जल को ऊपर लेजाती हैं इसलिये यहाँ वरुण शब्द सूर्य के अर्थ में प्रयुक्त किया है।

नहीं कर सकता क्योंकि प्रकाश जब तक किसी भौतिक पदार्थ के ऊपर नहीं पड़ता तब तक उसको हम लोग नहीं देख सकते। आकाश में जल, वायु, और अग्नि सर्वत्र भरी हुई है अतएव उस का ज्ञान कराकर ईश्वर ने धारुणाग्नेय और वायव्यादि अस्त्र बनाने की इस मंत्र में शिक्षा दी है।

संसारमें जितने पदार्थ पाये जाते हैं उनमें बहुतसी सूक्ष्म शक्तियां ऐसी विद्यमान रहती हैं कि जब तक रासायनिक प्रयोग द्वारा ऐसे अन्य पदार्थों के साथ उन का सम्मेलन न किया जावे जिन में कि वही शक्ति विद्यमान है, उसका प्रत्यक्ष नहीं होता। 'मैनशिल' और 'पोटाश' दोनों में अग्नि सूक्ष्मतया वर्तमान हैं परन्तु बिना दोनों को मिलाये उन का प्रत्यक्ष नहीं होता। जबकि रासायनिक प्रयोग द्वारा दोनों को मिलाया जाता है तब वही शक्ति प्रबल हो जाती है और किञ्चित् संघर्ष से आकाश में घोर शब्द उत्पन्न कर देती है। सम्प्रति यूरोप के देशों में बम्ब के गोले इसी नियम को लक्ष्य में रखकर बनाये जाते हैं और उस में अग्निचूर्ण (डाइनामाइट या रुद) आदिके साथ ऐसे ही पदार्थ रखे जाते हैं जो किञ्चित् संघर्ष से ही अग्नि उत्पन्न कर देते हैं और वह अग्नि बारूद को प्रज्वलित कर के सैकड़ों प्राणियों का संहार कर देती है। प्राचीन आर्य लोग अन्तरिक्ष में फैले अग्नि, जल और वायु के परमाणुओं की अनेक पदार्थों के रासायनिक प्रयोग से प्रबल कर के शत्रु सेना पर अग्नि की वृष्टि करते थे, एवं अग्नि वृष्टि से रक्षा करने के लिये जल वर्षाते थे और वायु वेग से बड़े २ बली शत्रुओं के सुदृढ़ शरीरावयवों को इस प्रकार दूर से ही तोड़ देते थे जिस प्रकार वायु अति विशाल वृक्षों को तोड़कर क्षणमात्र में भूमिपर गिरा देती है।

हमारे पौराणिक भाइयों का विश्वास है कि अस्त्र केवल मन्त्रों से चलते हैं परन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि महर्षि विश्वामित्र प्रणीत धनुर्वेद के प्रथम पाद में लिखा है कि:—

तत्र धनुः शब्दश्चापे स्तद्वोऽपि चतुर्विधायुधवाची वर्तते। तच्चतुर्विधम्; मुक्तम्, अमुक्तम्, मुक्तामुक्तम्, यन्त्रमुक्तञ्च। तत्र मुक्तं;। चक्रादि अमुक्तं; खड्गादि। मुक्तामुक्तं; शल्यावान्तरभेदादि। यन्त्रमुक्तं शरादि। तत्र मुक्तं अस्त्रमित्युच्यते, अमुक्तं शस्त्रमित्युच्यते।

अर्थात् धनुः शब्द चाप के अर्थ में रुढ़ि है और चार प्रकार के

आयुधों ( हथियारों ) का वाची है । वे चार प्रकार के ये हैं अर्थात् मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और यन्त्रमुक्त । उन में से चक्रादि मुक्त, खड्गादि अमुक्त, शल्य के आवान्तरभेद मुक्तामुक्त और शरादि यन्त्रमुक्त कहलाते हैं । सारांश यह है कि मुक्त आयुध अस्त्र और अमुक्त शस्त्र कहलाते हैं ।

उपर्युक्त प्रमाण से प्रकट है कि यन्त्र से मुक्त होकर दूर से से ही शत्रुओं को विध्वंस करने की शक्ति का नाम अस्त्र और साधारण आयुधों ( हथियारों ) को शस्त्र कहते हैं । शस्त्रों से अस्त्रों की शक्ति वास्तव में बड़ीही प्रबल होती है । प्रायः इस समय भी देखने में आता है कि जिन सुदृढ़ प्राकारों ( किलों ) के तोड़ने में अस्त्रधारी सहस्रों योद्धा अशक्त होजाते हैं वहां थोड़ी सी 'डायनामाइट बारूद' उम की भित्तियों को जड़ से उखाड़ कर घोरशब्द करती हुई आकाशमें उड़ा लेजाती है । प्राचीन आर्यों के द्वारा ५०० अस्त्र और ५०० शस्त्रोंका निर्माण होना उनके पदार्थविद्या में पूर्ण-उन्नत होने का भारी प्रमाण है ।

वेदों में ऐसे पदार्थों का अनेक स्थानों में वर्णन आया है जिन से अग्नि आदि तत्त्व प्रबल होजाते हैं, इनके अतिरिक्त और भी अनेक विद्यार्थें भरी पड़ी हैं जो पूर्णतया उन्हें विचारने से ही विदित होती हैं ज्यों २ संसार में वेदों के पठन पाठन का उत्साह मनुष्यों में उत्पन्न होगा वैसे ही वे अनेक विद्याओं की प्राचीन काल की भांति संसार में प्रकाशित करेंगे ।

परमपिता परमात्मा वेद में उपदेश करते हैं कि:—

सृष्टिर्नृपति ओग्नियति शान्तेऽयुतं दायनान्दे युगे त्रीणि चत्वारि कृणमः ॥  
के काल का निर्णय

अथर्व काण्ड ८ अनु० १ मन्त्र २१

अर्थात् हे मनुष्यो ! सृष्टि की स्थिति का हिसाब समझने के लिये इस प्रकार जानो कि वे वर्ष दश हजार सैकड़ा अर्थात् दश लाख तक शून्य देने और तत्पश्चात् २, ३, ४ यथाक्रम लगाने से प्राप्त होते हैं । अतएव इस से स्पष्ट है कि सृष्टि ४३२००००००० चार अरब बत्तीस करोड़ \*

\* इकाई, वहाँई आदि की आर्य-शास्त्रों में इस प्रकार गणना लिखी है "एकं दश शतञ्चैव सहस्रमयुतं तथा । लक्षञ्च नियुतञ्चैव कोटिरवुडेमेव च ॥ १ ॥ वृन्दः स्वर्गो निसर्बंदयः सङ्गः पञ्च सागरः । अन्त्यं मध्यं पराद्धर्षञ्च वशवृद्धञ्च यथाक्रमम् ॥ २ ॥

अर्थात्—एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, नियुत, कोटि, अवुड, वृन्द, स्वर्ग, निसर्ब, संख, पञ्च सागर, अन्त्य, मध्य और पराद्धर्ष इनमें यथाक्रम वश २ गुणा बढ़ा कर गणना करनी चाहिये

वर्ष तक स्थिति रहती है। सृष्टि की उत्पत्ति से अद्य पर्यन्त ( संवत् १८६४ विक्रमी तक ) १८७२८४८००८ एक अरब, सत्तानवे करोड़, उन्तीस लाख, उननचास हजार, आठ, वर्ष, बीते। सृष्टि-उत्पत्ति से आज तक आर्य विद्वान् बराबर एक २ वर्ष बढ़ाते चले आ रहे हैं और काशी, काश्मीर आदि नगरों में जो पञ्चाङ्ग अच्छे ज्योतिषियों के हाथों से निकलते हैं उन में यह अङ्क बराबर दिये जाते हैं अब हम उपर्युक्त सृष्टि काल की पुष्टि में आर्यशास्त्रों के प्रमाण उद्धृत करते हैं:-

सूर्यविद्वान्त मध्याधिकार के पूर्वखण्ड में लिखा है कि-

ऐन्द्रवसिन्धिभिस्तद्वसंक्रान्त्या सौर उच्यते । मासैर्द्वादशभिर्वर्ष दिव्यं तदहरुच्यते ॥ १ ॥ मुरामुराणा मन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात् । तत्पष्टिः पटु-  
गुणा दिव्यं वर्षमामुरमेव च ॥ २ ॥ तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाह-  
तम् । सूर्याब्दमंख्याद्वित्रि मागैरयुताहृतः ॥ ३ ॥ सन्ध्या सन्ध्यांश मलिनं  
विज्ञेयं तच्चतुर्युगम् । कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्मपादव्यवस्थया ॥ ४ ॥ युगस्य-  
दशमो भागश्च तुष्विद्वयेकपटुगुणः । क्रमात्कृतयुगादीनां पष्टांशः सन्धयोः  
स्वकः ॥ ५ ॥ युगानां सप्ततिः सैका सन्वन्तरमिहोच्यते । कृताब्द सन्ध्या  
तस्यान्ते सन्धिः प्राक्तेः अलपुवः ॥ ६ ॥ समन्वयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश ।  
कृत प्रमायाः कल्पादौ सन्धिः पञ्चदशः स्मृतः ॥ ७ ॥ इत्थं युग सप्तसेया  
भूतमंहारकारकः । कल्पो ब्राह्म मह प्राक्तं शर्वरी तस्य तावती ॥ ८ ॥

अर्थ:- ३० तिथियों का एक चान्द्रमास\* होता है और एक सं-  
क्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक का एक सौर मास होता है। और  
चान्द्र वा सौर, बारह मास का एक चान्द्र वा सौर वर्ष होता है जो  
देवताओं का एक अहोरात्र ( रात, दिन ) कहलाता है ॥१॥ देव और  
असुरों+ का दिन रात्रि विपर्यय से होता है। ऐसे ३० दिव्य अहोरात्र

\*१--चन्द्रमा प्रतिदिन पश्चिम से पूर्व की ओर राशिचक्र में १३ अंश १० कला ५५ विकला जाता है और सूर्य ५९ कला और ८ विकला चलता है अतः चन्द्रमा प्रतिदिन सूर्य से १२।११।४७ अंश जाता है चन्द्रमा की इस दैनिक गति से एक २ तिथि बनती है, चन्द्रमा जब सूर्य के ठीक सम्मुख अर्थात् १८० अंश पर होता है तो पूर्णमासी होती है और जब एक स्थान में आजाता है तो अमावस्या होती है। चन्द्रमा अपने ३६० अंश २९ दिन ३१ घड़ी और ५० पल में पूर्ण करता है और वही अमान्त चान्द्रमास कहलाता है। भारतवर्ष में अमान्त चान्द्रमास का प्रचार है हसीलिय सावन मास से इसे मिलाने में तिथियों का ह्रास और वृद्धि होती है।

+ -उत्तरीय मेरु ( ध्रुव ) के निवासी वेद और बक्षिणी ध्रुव के निवासी पूर्व कालमें असुर कहलाते थे चूँकि भूमि के घूमने के कारण सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन होनेसे एक स्थान ६ मास



का एक दिव्य मास, और १२ दिव्य महीनोंका एक वर्ष होता है ॥२॥ पूर्वोक्त १२००० दिव्य वर्षों की एक चतुर्युगी होती है जिसके सौर वर्ष ४३२०००० होते हैं ॥ ३ ॥ उक्त चतुर्युगी का परिमाण सन्ध्या और सन्ध्यांश मिलाकर है और उसमें सत्युगादि क्रम से धर्मपाद अर्थात् ४,३,२ और १ की तरह हैं ॥ ४ ॥ पूर्वोक्त महायुग वा चतुर्युगीके दशम भाग को ४,३,२ और १ से गुणा करने पर क्रमसे सत्युग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के वर्षों का परिमाण होगा और प्रत्येक युगीका षष्ठांश उसकी सन्धि का परिमाण होता है ॥ ५ ॥ पूर्वोक्त ७१ महायुगों की मन्वन्तर संज्ञा है और मन्वन्तर के अन्त में सत्युग के वर्ष परिमाण ( १७२०००० सौर वर्ष ) उनकी सन्धि का परिमाण है, इस सन्धिके समय पृथ्वी जलमय × होजाती है ॥ ६ ॥ पूर्वोक्त १४ मन्वन्तर का १ कल्प होता है और इसमें १ आदि की तथा १४ अन्त की कुल १५ सन्धि होती हैं और कल्प के आदि में एक सन्धि कृत युग के परिमाण की होती है ॥ ७ ॥ पूर्वोक्त रीति से १०००० चतुर्युगी का एक कल्प होता है जिसके अन्त में सब प्राणियों का नाश हो जाता है । एक कल्प का एक ब्राह्म दिन होता है और इसी परिमाण की रात्रि होती है और पूर्वोक्त २ कल्प का एक ब्राह्म अहोरात्र होता है ।

उपर्युक्त प्रकार गणित करनेसे एक मन्वन्तरमें निम्नप्रकार वर्ष होतेहैं:-

|                 |          |         |
|-----------------|----------|---------|
| कलियुग के       | सौर वर्ष | ४३२०००  |
| द्वापर    ,,    | ,,       | ८६४०००  |
| त्रेता       ,, | ,,       | १२९६००० |
| कृतयुग   ,,     | ,,       | १७२८००० |
| एकचतुर्युगी,,   | ,,       | ४३२०००० |

$४३२०००० \times ७१ = ३०६७२०००० +$  सन्धि वर्ष १७२८००० सत्युगके सौर वर्षों के परिमाण के अतएव कुल ३०८४८००० सौर वर्षका एक मन्वन्तर होता है ।

मनुस्मृति के निम्न श्लोकों से विदित है कि ६ मन्वन्तर इस कल्प

मनु सूर्य के सामने रहता है और दूसरा अन्धकार भे । इसी कारण जब उत्तरीय ध्रुव पर ६ मास का दिन होता है तो दक्षिणीय ध्रुव पर ६ मास की रात्रि और जब दक्षिणीय ध्रुव पर ६ मास का दिन होता है तो उत्तरीय पर ६ मास की रात्रि होती है ।

× सूर्यसिद्धान्त के मतानुसार इस समय समस्त प्राणी नष्ट नहीं होने वरन् अनेक स्त्री पुरुष और ऋषि मुनि बच कर वेदों तथा प्राचीन इतिहासों की रक्षा करते हैं ।

में बीत चुके हैं और यह सातवां वैवस्वत मन्वन्तर बीत रहा है: —

स्वायम्भुवस्यास्य मनोः पङ्क्श्यामनवाऽपरे ।

सृष्ट वन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौजसः ॥१॥

स्वारोचिपश्चात्तमिश्च तामसो रैवतस्तथा ।

चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वन्मुत एवच ॥२॥

मनु अ० १ श्लो० ६१ । ६२ ॥

अर्थात् स्वायम्भव मनु के पश्चात् छै और बड़े मनु हुए उन्होंने अपने २ सृष्टि पालनके समयमें अपनी २ प्रजा उत्पन्नकीं १ स्वारोचिप २ औत्तमि ३ तामस ४ रैवत ५ चाक्षुष और ६ वैवस्वत ॥ २ ॥

अतएव उपरोक्त प्रमाण से स्वायम्भुव मनु से लेकर चाक्षुष पर्यन्त  $305880000 \times 4 = 1223520000$  वर्ष सृष्ट्युत्पत्ति को व्यतीत होते हैं:—

जिस समय आर्यावर्त यत्रनों के अधिकार में आया तो राज्य श्री और स्वाधीनता के साथ ही साथ उस के धार्मिक सिद्धान्तों और वैज्ञानिक ग्रन्थों को भी भारी आघात पहुंचा, उस समय आर्यजाति के रक्त की ही नदियें नहीं बहाई गईं बरन् उनके साहित्य को बिलकुल निश्शेष करने की पूरी र चेष्टा की गई और वर्षों तक हम्माम (स्नानालय) संस्कृत ग्रन्थों से ही गरम किये जाते रहे। ऐसे समय में जब कि अनेक विद्याओं के ग्रन्थ लुप्त हो गये ब्राह्मणों ने सृष्टि मन्वत् की रक्षा बड़े ही यत्न से की जिसके लिये हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिये। उन्होंने उसी समय से यह व्यवस्था कर दी थी कि जार्यों का कोई काम बिना निम्नस्थ संकल्प का पाठ किये सफल नहीं हो सकता:—

ओं तत्सत् श्रीब्रह्मणा द्वितीय प्रह्मगर्हं श्रीश्वेतवाराह कल्पे वैवस्वते मन्वन्तरेऽष्टाविंशति तमे कलियुगे कलि प्रथमचरणे अमुक संवत्सराय नर्तु-  
मामपक्षातिधिनक्षत्रलक्ष्महूर्त्तेऽष्टौ कर्म क्रियन्ते ।

अर्थात् ओं तत्सत् ब्रह्म के द्वितीय आधे प्रहर में, श्रीश्वेतवाराह नामक कल्प में, वैवस्वतमन्वन्तर में, अष्टादशवीं चतुर्युगी के कलियुग में और उस की पहिली बीयाई में अमुक वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, लग्न और मुहूर्त्त में यह कर्म किया जाता है ।

उपयुक्त नियमानुसार गणित करने से वैवस्वत मन्वन्तर की २८ वीं

चतुर्युगी में द्वापर के अन्त तक निम्न प्रकार सृष्टिवत्सर निकलते हैं:-

|                                                                  |           |
|------------------------------------------------------------------|-----------|
| ६ मन्वन्तरो का समय                                               | १८५०६८००० |
| वैवस्वत मन्वन्तर के आदि की सन्धि                                 | १९२८०००   |
| २७ चतुर्युगियों का समय                                           | ११६६४०००० |
| २८वीं चतुर्युगी के तीन युगों अर्थात् कृत, त्रेता व द्वापर का समय | ३८८८०००   |

कुल योग अर्थात् सृष्ट्युत्पत्ति से लेकर अट्ठाईसवीं

चतुर्युगी के द्वापर तक का समय १९७२८४०००

अब यह जानने के लिये कि कलियुग का आरम्भ हुए कितने वर्ष बीते कुछ ग्रन्थों के प्रमाण उद्धृत करते हैं ।

( १ ) सिद्धान्तशिरोमणि नामक ज्योतिष के ग्रन्थ में लिखा है कि:-

याताः पगमनवो युगानि भविता न्यन्ययुगाधिवयं । नन्दादीन्दु गुणोऽस्तथा शकनृपम्यान्ते कलैर्धनमर ॥

अर्थात् छै मन्वन्तर बीत चुके मातवां वर्त्तरहा है उसकी सत्ताईस चतुर्युगी बीत चुकीं तथा अट्ठाईसवीं के भी तीन युग बीतगये हैं और चौथा कलियुग है उसके भी शाका शालिवाहन के आरम्भ तक ३१७९ वर्ष बीतगये हैं । अब शकवत्सर (संवत् १९६४ विक्रमी में) १८२९ है अतएव  $३१७९ + १८२९ = ५००८$  वर्ष कलियुग को आरम्भ हुए बीते ।

( २ ) संस्कृत के प्रसिद्ध कविकालिदासजी अपनी ज्योतिर्विदाभरण नामक पुस्तक में जो विक्रम के संवत् २३ की लिखी है लिखते हैं:-

वर्षे सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणैर्या ते कलौ संमिते ।

यामे माधव संमितेऽत्र विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः ॥

अर्थात् जब कलियुग के ३०६७ वर्ष बीत चुके थे तब मैं ने माधव (वैशाख) मास में यह ग्रन्थ पूर्ण किया ।

अतएव  $३०६७ + १९६४$  संवत् विक्रमी  $= ५०३१ - २३ = ५००८$

उपरोक्त प्रमाणों के अतिरिक्त अन्य बहुत से आर्य-शास्त्रों की सान्दी से भी विक्रम संवत् १९६४ ई० तक कलियुग को ५००८ वर्ष बीते इस लिये सृष्ट्युत्पत्ति का समय निम्न प्रकार निकलता है ।

सृष्ट्युत्पत्ति से लेकर अट्ठाईसवीं

चतुर्युगी के द्वापर तक का समय

१९७२८४०००

संवत् १९६४ विक्रमी तक कलियुग  
के व्यतीत हुए वत्सर ५००८  
कुन योग अर्थात् संवत् १९६४ विक्रमी  
तक सृष्ट्युत्पत्ति का समय १९७२९४९००८  
यदि कल्प के वत्सर ४३२००००००० में से १९७२९४९००८ वर्ष कम कर  
दिये जावें २३४७०५०९९२ वर्ष शेष निकलते हैं और इतने दिनों तक  
ही यह सृष्टि और वर्तमान रहेगी ।

भारतवर्षीय ऋषि मुनियों ने केवल पृथ्वी की सृष्टि और स्थिति  
के काल का ही वर्णन नहीं किया किन्तु उन्होंने इस सारे ब्रह्माण्ड के  
आयु का भी निर्णय किया है जैसा कि सूर्य सिद्धान्त के निम्न श्लोकों  
से विदित होगा:--

परमायुः शतं तस्य तथाहोरात्र संख्यया ।

आयुषोऽर्द्धमितं तस्य शेष कल्पोऽयमादिमः ॥मू० १। २१॥

अर्थात् ऐसे १०० वर्षों के अहोरात्र की संख्या \* से ब्राह्म आयु  
कल्पित की गई जिसमें आधी आयु अर्थात् ५० वर्ष व्यतीत होगये हैं  
इस समय ५१ वां ( श्री श्वेतवाराह ) कल्प वर्त रहा है ।

बाइबिल के अवलोकन से विदित होता है कि मसीह से नूह  
२९४८ वर्ष पूर्व हुआ है उसी पुस्तक में आदम से  
लेकर लमक तक की वंशावलीका अवलोकन करने  
से प्रकट होता है कि नूह और आदम के मध्य १०५६  
वर्ष का अन्तर है चूंकि अब मसीही सन् १९०७ है  
अतएव इन तीनों का योग कर देने से ५९११ वर्ष

ईसाइयों के सिद्धान्तानुसार सृष्ट्युत्पत्ति को व्यतीत होते हैं । यूरोप  
की प्रायः सभी जातियें बाइबिलकी अनुयायी हैं अतएव हमारे शास्त्रों  
के विषय में जो अन्वेषण उन्होंने किया है वह महामुद्द और अमा-  
ननीय है । प्रथम इसके कि हम इस विषय में कुछ कथन करें यह  
उचित प्रतीत होता है कि यूरोप के भूगर्भवेत्ताओं के ही द्वारा इस  
सिद्धान्त की असारता दिखलाई ।

\* उपर्युक्त लेखानुसार १ कल्प का १ ब्राह्म दिन तथा इतने ही समय की एक रात्रि भी  
कल्पिता करके ऐसे ३० अहोरात्रका एक मास और १२ मासका एक ब्राह्म वर्ष कल्पित किया गया  
है ऐसे १०० वर्ष व्यतीत होने पर महाप्रलय होती है अर्थात् जब ३६००० कल्प बीत जाते हैं तब  
समस्त ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाता है ।

( १ ) भूगर्भ विद्या ( Geology ) के ज्ञाता प्रोफेसर डेम्सर साहिब प्रकाशित करते हैं कि स्काटलेण्ड के पुराने खदानों के ढेरों में मनुष्यों की हड्डियां हाथी के जोड़ कीमिलती हैं जिन की विद्यमानता का विषय उत्तमोत्तम गणित से २४०००० दो लाख चालीस हजार वर्ष निश्चित होता है । ( रिसाला थियोसाफिस्ट अक्टूबर १८७९ )

( २ ) प्रोफेसर एस० न्यूकोम्प साहिब कहते हैं कि जबसे पृथ्वी ठण्डी होकर वनस्पति उगने के योग्य हुई तब से अब तक २००००००० दो करोड़ वर्ष बीते होंगे ( देखो सिक्रेट डाक्टरिन जिल्द २ सुफहा ६९४ )

( ३ ) प्रोफेसर लिचाफ साहिब कहते हैं कि पृथ्वीकी दो महत्त अंश की गरमी से दोसौ अंश तक की उष्णता पर पहुंचने के लिये ३५००००००० पैंतीस करोड़ वर्ष बीते होंगे ( सिक्रेट डाक्टरिन जिल्द २ )

( ४ ) प्रोफेसर रीड साहिब कहते हैं कि पचास करोड़ वर्ष बीते होंगे जब से यूरोप में वनस्पति आदि उत्पन्न होना आरम्भ हुई ( देखो मिस्टर लीड का लैक्चर जो उन्होंने सन् १८७६ में जियोलोजिकल सोसाइटी में दिया था )

( ५ ) प्रोफेसर हक्सली साहिब प्रसिद्ध भूगर्भवेत्ता ( Geologist ) ने अन्त में यह निश्चय किया है कि दुनियां में जब से वनस्पति उगना आरम्भ हुई उस से आज तक १००००००००० एक अर्ब वर्ष व्यतीत हुए होंगे ( देखो वर्ल्ड लाइफ सुफहा १८७ ) ।

उपर्युक्त प्रमाणों से बाइबिल और कुरान में सृष्टि उत्पत्ति का जो समय अत्यल्प वर्णित है उसका भली भांति खण्डन होजाता है । वास्तव में योरुपदेश के परीक्षकों का अन्वेषण अभी पराकाष्ठा को नहीं पहुंचा है परन्तु तब भी हमारे निश्चित किये हुए समय और उनके अन्वेषण में बहुत थोड़ा अन्तर रह गया है । एक समय आवेगा जब वे ऋषि मुनियों के बतलाये हुए सृष्टिकाल का समर्थन करेंगे ।

जिस समय वैदिक-भुवन-भास्कर की अविद्यारूपी मेघमालाओं ने आच्छादित करके संसार में अन्धकार का आधिपत्य जमाया तो अत्यन्त आकुल होकर मनुष्य चहुं-ओर प्रकाश का अनुसन्धान करने लगे । भारतवर्ष में इस अन्धकार के

बाइबिल और कुरान  
ईश्वरीयज्ञान के पुस्तक  
नहीं हैं-

समय में जो २ मतरूपी दीपक निर्माण किये गये उनका वृत्तान्त पाठक आगे चलकर ज्ञात करेंगे परन्तु आर्यावर्त से इतर अन्यदेशों में जिन २ अवैदिक मतों की सृष्टि हुई है उन के धर्मग्रन्थों में कुरान और बाइबिल मुख्य समझे जाते हैं यद्यपि इन पुस्तकों पर विश्वास रखनेवाले मनुष्यों में भी बड़ा मत भेद है जैसे मुसलमानों के दहरिये, नैचरिये इत्यादि १२ सम्प्रदाय और इंजील को छोड़कर पुराने अहदनामे के मानने वाले यहूदी इत्यादि । इसलिये हमें किसी मत विशेष से सम्बन्ध न रख कर उपर्युक्त पुस्तकों की ही परताल करना उचित है जिस से ज्ञात हो सके कि ये ईश्वरीय ज्ञान के पुस्तक हो सकते हैं वा नहीं । विद्वानों ने विचार करके निश्चय किया है कि ईश्वरीय ज्ञान वही होसکتा है जो:—

- ( १ ) सृष्टि की आदि में हो और अन्त तक स्थिति रहे ।
- ( २ ) किसी देश की भाषा में न हो और वह भाषा संसार की सब भाषाओं में उत्कृष्टता रखती हो ।
- ( ३ ) उस में किन्हीं विशेष पुनप खियों के इतिहास और उपाख्यान न लिखे हों ।
- ( ४ ) उस का एक आदेश दूसरे का खण्डन न करता हो ।
- ( ५ ) उस की कोई आज्ञा सृष्टि-नियम के प्रतिकूल न हो ।
- ( ६ ) किसी व्यक्ति विशेष पर ईमान लाने की शिक्षा उसमें न पाई जावे ।
- ( ७ ) जीवहिंसा का उस में विधान न पाया जावे ।
- ( ८ ) किसी पुरुष वा जातिविशेष का पक्षपात न करती हो ।
- ( ९ ) मनुष्यों की विद्या तथा बुद्धि की वृद्धि करने वाली हो ।
- ( १० ) सृष्टि के समस्त पदार्थों से लेकर परमात्मा तक का ज्ञान उस में पूर्णतया वर्णित हो ।

अब हम उपर्युक्त लक्षणों के द्वारा ही पूर्व पुस्तकों की परीक्षा करते हैं ।

कुरान—के विषय में प्रसिद्ध है परमेश्वर ने मुहम्मद साहब के द्वारा उसे प्रकट किया है । मुहम्मद साहब जब मक्के से मदीने गये थे हिजरी सन् तभी से जारी हुआ है और इस समय हिजरी सन् १३२५ है अतएव सिद्ध है कि कुरान को बने १३०० वर्ष बीते ।

इस पुस्तक में ११४ सूरत और ६६६ आयत इसप्रकार पाई जाती हैं:—

| सं० | विषय                                                                                                                                                         | सूरत | आयत  |
|-----|--------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|------|------|
| १   | मृतपूर्व राजाओं और पैगम्बरों के किस्से कहानियाँ।                                                                                                             | ४०   | १००० |
| २   | लूट, खसोट, डाकैजनी, विग्रह, जिहाद (प्राणादि दण्ड देकर स्वमतावलम्बी बनाना) और पशु-हिंसा इत्यादि।                                                              | १६   | ११५० |
| ३   | बददुआओं (आपों) दोज़ख (नरक) और क़यामत (प्रलय) के सम्बन्ध में तथा काबे का पूजन करना इत्यादि।                                                                   | २०   | २०६६ |
| ४   | सौगन्दों (शपथों) के विषय में जो मुसलमानों का खुदा वारंवार खाता है।                                                                                           | १५   | २००  |
| ५   | स्त्रियों तथा मुहम्मद साहब के गृह-सम्बन्धी भगड़ों के विषय में।                                                                                               | १४   | ५००  |
| ६   | वहिशत (स्वर्ग) इरों (अप्सराओं) गिलमानों (खूबसूरत लौंडों) तथा दूध और शहद (मधु) की नहरों के मिलने के वादे जो काफ़िरो* के मारने वाले मुसलमानों से किये गये हैं। | ५    | १६५० |
| ७   | ईश्वर प्रार्थना तथा दुआओं (आशीर्वादों) के विषय में                                                                                                           | ४    | १००  |
| योग |                                                                                                                                                              | ११४  | ६६६६ |

बाइबिल—इसके दो खंड हैं एक पुराना धर्म-नियम और दूसरा नया-नये धर्म-नियम में मसीह का जीवन वृत्तान्त सच्ची, मार्क, लूक और योहन उसके चार शिष्यों द्वारा लिखा गया है तथा उसमें अन्य बहुत से पत्र सम्मिलित हैं यह भाग इज़ील कहलाता है। पुराने धर्म-नियम में १ 'तौरत' अर्थात् उत्पत्ति, यात्रा, लय, गिनती समुल्ल और राजाओं की पुस्तकों का सङ्ग्रह है २ 'ज़बूर' जिस में काल के समाचार, ऐयूब और उप-देश की पुस्तक आदि सम्मिलित हैं और यह सब मिलकर होली बाइबिल कहलाती है—ज़बूर को दाउद बादशाह ने बनाया है जिसे बने २०४२ वर्ष बीते और तौरत मूसा तथा उसके एक शिष्य की रची हुई है जिसे ३४८० वर्ष होते हैं अब प्रश्न होता है कि आदम से लेकर मूसा

✽ यह शब्द भिन्न मतवालीम्बवों के प्रति घृणा का द्योतक है।

५००० पांच सहस्र वर्ष बीते रचा था । इस पुस्तक के अवलोकन से विदित होता है कि यह पुस्तक वैदिक सिद्धान्तों की छाया लेकरही रची गई है क्योंकि इस में वेदों का नाम लिखा है, चार वर्णों का नाम भी पाया जाता है, यज्ञोपवीत का विधान है और हवन के लाभ वर्णन किये गये हैं, आवागमन की मान्यता है तथा गोमांस के भक्षण का भी निषेध किया है । जेन्दावस्था में अनेक शब्द सादर, पिदर, हपता, बाजू, अजम आदि ऐसे आये हैं जो संस्कृत के सातृ, पितृ, सप्ताह, बाहू, अहम् आदि शब्दों से बिगड़ कर बने हुए स्पष्ट प्रतीत होते हैं । निदान जर्मन देशके प्रसिद्ध विद्वान् मैक्समूलर मा-हब लिखते हैं कि:-

I still hold that the name जन्द् derived from छन्द ।

अर्थात् मेरा अभी तक विश्वास है कि पारसी शब्द 'जेन्द' की उत्पत्ति संस्कृत शब्द 'छन्द', से हुई है । अवस्था शब्द संस्कृत का है जिसके अर्थ कानून के हैं अतएव जो कानून कि छन्दों में रचा गया है उसका नाम 'जेन्दावस्था', है । इस के अनिश्चित गो, उजन्, पत्र वैद्य, नमस्ते, वस्तु, वृत्रहन्, वायु, गायत्रि आदि अनेक शब्द यथा तथ्य जेन्दावस्था में पाये जाते हैं गोमेज ( गोमेध ) का भी वर्णन आया है परन्तु वहां उसके अर्थ भूमि खोदने के लिये गये हैं गाय की वध करने के नहीं लिये गये । एक स्थान पर लिखा है कि जरदस्त पैगम्बर का वषास जी से मुवाहिदा ( शाखार्थ ) हुआ था इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जेन्दावस्था कुरान और बाइबिल से पुरानी है और वैदिक गीता की छाया लेकर बनाई गई है ।

आर्यावर्त्त देश जिसमें हम लोग वास करते हैं उसकी सीमा (हद्)

आर्यावर्त्त देशकी सीमा  
जो उसका प्राचीन  
इतिहास ।

प्राचीन काल में कहां से कहां तक मानी जाती  
थी इसके परिज्ञानार्थ हम मनुस्मृति का एक श्लोक  
उद्धृत करते हैं:-

आममुद्रात्तु वे पूर्वादिमद्रात्तु पश्चिमाम् ।

तयोरेवान्तर्गं गिर्योर्गार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥ मनु ० २ । १२

अर्थात् पूर्व में समुद्र से लेकर पश्चिमके समुद्र पर्यन्त और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिणीय पर्यन्त के मध्य में जितने देश हैं वह भूभाग आर्यावर्त्त देश कहलाता है ।



महाभारतादि ग्रन्थों के अवलोकन से विदित होता है कि सृष्टि के आदि से ही आर्य लोग इस देश में वास करते चले आये हैं इसी कारण यह देश आर्यावर्त कहलाता है। उपर्युक्त ग्रन्थों में यह भी लिखा है कि सृष्टि की आदि से लेकर महाभारत के युद्ध पर्यन्त आर्य लोग ही इस समस्त भूमण्डल का चक्रवर्ती राज्य करते रहे हैं। जिन में से अनेक प्रतापशाली सम्राटों के नाम भी उपर्युक्त ग्रन्थों में लिखे पाये जाते हैं। सम्प्रति भारत का अति प्राचीन इतिहास उपलब्ध नहीं होता इस लिये यूरोप के अनेक विद्वानों का कथन है कि आर्यावर्तदेश के निवासी जो अपनी सभ्यता को इतना प्राचीन बतलाते हैं इसमें बहुत कुछ अत्युक्ति है, और अनेक विद्वानों ने यह भी सिद्ध करने की चेष्टा की है कि प्राचीन आर्यों ने इतिहास की उत्कृष्टता का पूर्णतया अनुभव नहीं किया इसी कारण उन के पास ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं पाये जाते। जो लोग आर्यों की सभ्यता और उन के निर्धारित सृष्टि संवत् की सत्यता में सन्देह करते हैं यह उन का भ्रम है क्योंकि हम यूरोप देश के अनेक भूगर्भवेत्ताओं की सलाह देकर सिद्ध कर चुके हैं कि भूगर्भ विद्या ( Geology ) के अनुसार भी सृष्टि की उत्पत्ति हुए एक अरब वर्ष न्यूनतम समय कदापि नहीं बीता और जो मनुष्य यह कह कर कि “आर्य लोग इतिहास लिखना नहीं जानते थे” उन्हें असमर्थ सिद्ध करने की चेष्टा में लगे हुए हैं उन्हें फ्रांसीसी विद्वान् मि० ओरिएण्टलिस्ट ( Orientalist ) के इस कथन पर ध्यान देना चाहिये कि जब “हिन्दुओं ( आर्यों ) में इतिहास लिखने की परिपाटी थी नहीं थी तो अब्बुलफजल ने हिन्दुओं का प्राचीन इतिहास लिखने के लिये सामग्री कहाँ से प्राप्त की थी ?” करनल टाड सहस्र भी ‘राजस्थान’ नामक इतिहास की भूमिका में लिखते हैं कि “हिन्दु जैसी बड़ी ही सभ्य जाति के लोग जिन में सद्धियाओं का पूर्णरूपेण प्रचार था और जो शिल्प, कविता एवं सङ्गीत शास्त्र आदि अनेक कलाओं से स्वयं ही अभिज्ञ न थे वरन् दूसरों की भी सिखाते थे क्या वे अपनी ऐतिहासिक घटनाओं और राजशासन के कार्यों को लिखने की साधारण रीति कुछ भी न जानते रहे होंगे ?” यह तो रहे निष्पक्ष विदेशियों के हमारे इतिहासों के विषयमें सरल विचार परन्तु क्या यह सत्य है कि आर्य लोगों

ने इतिहास लिखने की ओर ध्यान नहीं दिया ? जिस देश में रामायण और महाभारत जैसी इतिहासों की दो बड़ी २ पुस्तकें मिलती हैं, जिस देशमें १८ पुराण और उपपुराण जैसे ग्रन्थ अनेक उपाख्यानों और राज-वंश-तालिकाओं से पूरित इस समय पाये जाते हैं क्या सम्भव है कि उस देश में कभी वास्तविक ऐतिहासिक ग्रन्थ विद्यमान न होंगे ? वास्तव में आर्यावर्त में प्राचीन अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ विद्यमान थे और यदि वे खौदों, जैनियों और यवनों द्वारा नष्ट न किये जाते तो हम सृष्टिकी आदि से लेकर महाराज पृथ्वीराजके समय तक का मुकम्मिल इतिहास पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर सकते परन्तु शोक कि इन वैदिक-धर्म-विद्वेषी मलिनात्माओं ने इन ग्रन्थों को नष्ट कर के इतनी हानि इस देश को पहुंचाई जितनी कि एक २ पुस्तक के बदले में दो २ आर्य पुरुषों का जीवित अग्नि संस्कार कर देने से मेरे विचार में कदापि नहीं पहुंचती । इन अविश्वेकी पुरुषों ने ऐतिहासिक पुस्तक ही नष्ट नहीं किये बरन् अनेक विज्ञान और कलाकौशल के ग्रन्थ भी नष्ट कर दिये जो इस समय नहीं पाये जाते। वेदोंकी ११२१ शाखायें, मानव-गृह-सूत्र, ज्योतिषके कई अपूर्व ग्रन्थ, धनुर्वेद (युद्ध क्रियाका पुस्तक) आदि अनेक ग्रन्थ इस समय नहीं मिलते । किसी समय में एक 'भृत-भाष' नामक इतिहास का पुस्तक लिखा गया था वह भी इस समय नहीं मिलता । वर्तमान भविष्य पुराण में जिस प्राचीन भविष्य पुराण का वर्णन पाया जाता है वह भी सम्प्रति उपलब्ध नहीं है । उपर्युक्त पुस्तकों का उल्लेख तो हमने इस लिये कर दिया कि उन के नाम इस समय के वर्तमान पुस्तकों में मिलते हैं परन्तु नहीं कह सकते कि इन के अतिरिक्त और कितने ग्रन्थ-रत्न नष्ट कर दिये गये हैं । इस समय जो श्री मद्रागवत आदि १८ पुराण के पुस्तक मिलते हैं उन के ऐतिहासिक वृत्त यथातथ्य मानने योग्य नहीं हैं क्योंकि हमारा विचार है कि जब मुसलमानों ने ऐतिहासिक ग्रन्थों को नष्ट कर दिया तो ब्राह्मणों ने अनेक ऐतिहासिक वृत्त जो उन्हें मालूम थे या जिस से जैसे सुने लेख बढ़ कर दिये इन्द्र, वृत्रासुर, गीतस, अहल्या और त्रिशङ्कु आदि राजाओं के इतिहास जो पुराणों में वर्णित हैं हमारे इस कथन की पूर्णतया पुष्टि कर रहे हैं क्योंकि वे वास्तव में ऐतिहासिक घटनायें

नहीं हैं वरन् वेदों और ब्राह्मणादि ग्रन्थों में अलङ्कार रूप में उसका वर्णन आया है। इस के अतिरिक्त इन पुराणों में अनेक साम्प्रदायिक भगवद् बख्ते शैव, शाक्त और वैष्णव आदिकों के पाये जाते हैं और विधि, निषेध की आज्ञायें भी इन में ठीक २ भरी पड़ी हैं जो कि पुराणों का विषय ही नहीं है यथा:—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।

वंशानुचरितञ्च पुराणां पञ्चलक्षणम् ॥ कूर्मपुराण ॥

अर्थ ( सर्ग ) संसार की रचना ( प्रतिसर्ग ) लय ( वंश ) वंशावलि ( मन्वन् ) मन्वन्तरों का उपकथन ( वंशा० ) वंशों में होने वाले पुरुषों के चरित्र जिस में यह पांच बातें हों वह पुराण कहनाता है ।

उपर्युक्त प्रमाण से विदित है कि इस समय जो पुराण पाये जाते हैं वे पौराणिक लक्षणों से युक्त नहीं हैं और जिन पुस्तकों में अनेक असम्भव एवं युक्ति और सृष्टिकर्म के विस्तृत बातें भरी पड़ी हैं और एक की ऐतिहासिक घटनायें और वंशावलियों दूसरों की ऐतिहासिक घटनाओं और वंश-तानिकाओं से नहीं मिलनी हैं ऐसी दशा में उनके कथन का सर्वोपयोग में प्रमाण करना हमारी भूल है और यह सब बातें हमारे विश्वास को और भी दृढ़ कर देती हैं कि उनसे पहिले इतिहास के अनेक ग्रन्थ अवश्य विद्यमान होंगे ।

अब हम यवनों द्वारा आर्य ग्रन्थों के नष्ट-भ्रष्ट किये जाने विषय में कुछ साक्ष्यों उद्धृत करते हैं:—

(१) आनरेबिल राजा शिवप्रसाद जी सी० एस० आई० लिखते हैं कि आत्मतत्त्व, ज्योतिष, गणित, भूगोल, खगोल, इतिहास, नीति, व्याकरण काव्य, अलङ्कार, न्याय, नाटक आदि के अच्छे २ ग्रन्थ (भारतवर्ष में) मौजूद थे परन्तु मुसलमानों की असलदारी में हिन्दुओं के सब शास्त्र नष्ट कर दिये गये (देखो भूगोल हस्तामलक) ॥

(२) फतूहात फ़ीरोज़शाही में लिखा है कि फ़ीरोज़शाह तुगलक ने कोहाने में हिन्दुओं की पीछियां फूंक दीं ।

(३) कश्मीर के पंडित कहते हैं कि यहां पर मुसलमानों ने पुल बांधने के लिये लकड़ी और पत्थर की जगह असंख्य पुस्तकों से \* \* \* नदी को भर दिया ।

(५) अलाउद्दीन खिलजी ने अनहलवाड़े पटन के प्रसिद्ध पुस्तकालय को भस्म कर दिया ।

(५) सैयद गुलम हुसैन अपनी मशहूर तवारीख 'सैरमताखूखरीन' की जिल्द अठ्ठवल पृष्ठ १४० पर लिखता है कि औरंगज़ेब को जब और जहां हिन्दुओं के पुस्तक हाथ लगते हैं जला देता है ।

(६) रायबहादुर शरच्चन्द्रदास भारतवर्ष के प्राचीन विश्व विद्यालयों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि 'बुढ़ गया' में एक नौमंजिला लाइब्रेरी थी और इसी प्रकार का एक पुस्तकालय 'मालन्दह' में भी था जिन में बौद्धमत की पुस्तकों के अतिरिक्त प्राचीन समय की अनेक उत्तम से उत्तम पुस्तकें विद्यमान थीं एवं दोनों से बढ़ कर 'ओदन्तपुरी' के ग्रन्थ-भाण्डार में प्राचीन पुस्तकों का सङ्ग्रह था परन्तु सन् १२०२ ई० में जब कि बख्तियार खिलजी के सेनापति मुहम्मद बिन साम ने इस प्रान्त को विजय किया तो उसने आज्ञा दी कि समस्त पुस्तकें जला दी जावें निदान भारत की लाखों और करोड़ों वर्ष की कमाई को इस पापात्मा ने एक दम में भस्मीभूत कर दिया ।  
( देखो सरस्वती जुलाई १९०६ पृष्ठ ७ )

इसी प्रकार के अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं परन्तु स्थानाभाव से हम इस विषय को यहीं समाप्त किये देते हैं ।

परमात्मा की सृष्टि में हम कोई वस्तु ऐसी नहीं पाते जो निराधार स्थित हो । यदि सघन-लता-कुछों और गगन-भेदी-विशाल-वृक्षों को हम अत्युच्च-शैल-शिखरों के आश्रित अवलोकन करते हैं तो वे अति प्रवृद्ध और दीर्घकाय पर्वत-मालायें भी भगवती-धरणी का आश्रय लेकर संसार में स्थित हो रही हैं । जिस प्रकार संसार की किसी वस्तु को हम निरावलम्ब नहीं पाते उसी प्रकार संसार की कोई जाति भी निराश्रित अपना अस्तित्व संसार में स्थिर नहीं रख सकती और उसका यह अवलम्ब अपना इतिहास है । इस समय हम देख रहे हैं कि अमरीका के आदिम निवासी रेड इण्डियन ( Red Indian ) तथा आफ्रिका, और आस्ट्रेलिया के जङ्गली लोग जो अपना इतिहास नहीं रखते दिन प्रतिदिन संसार से नष्ट होते चले जा रहे हैं

भारत के धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रन्थों का नष्ट कर्तन में मोरो जातियों की कुटिलनीति

और यूरोप देश की जातियों ने जिन्होंने अपने इतिहासों की रक्षा की है शनैः र उन्नति के सोपान पर चढ़ रही हैं। कुछ समय बीता कि विलायत के कतिपय समाचारपत्रों में इस पर विचार चला या कि गोरी जातियों की सन्तुष्ट संख्या अहर्निश बढ़ती चली जा रही है अन्त में इस के लिये इतनी भूमि कहां से आवेगी? उन्होंने निश्चित किया कि एशिया इनके रहने की उपयुक्त नहीं है क्योंकि एशिया का प्रायः प्रत्येक देश अपना इतिहास रखता है अन्त में उन्होंने अमेरिका, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के देशों को इस के लिये मनोनीत किया जहां के निवासी असभ्य और जंगली हैं तथा अपना कोई इतिहास नहीं रखते, इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि गोरीजातियों का सदा सर्वदा यह प्रयत्न रहता है कि हम से भिन्न जातियों का इतिहास सर्व-तोभायेन नष्ट होजावे। क्योंकि जब तक विजित जाति के पास अपना इतिहास उपस्थित है विजेता जाति कभी अपना राज्य निष्कण्टक नहीं समझ सकती। जिस प्रकार एक जाति अपनी प्राचीनता के गौरव का स्मरण रखती हुई भिन्न जाति की आधीनता बहु-काल-पर्यन्त स्वीकार नहीं कर सकती उसी प्रकार एक धर्म को मानने वाली जनसंख्या अपने से भिन्न धर्मावलम्बियों की आधीनता (यदि वह संख्या से उस से अत्यल्प न हो) कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। निदान मारिस माहब जो इण्डिया कौन्सिल में हैं कहते हैं कि:-

*If a conqueror practises a different religion to the majority of his subjects, and is determined to reserve the privileges of command to the followers of his own creed, his best policy will be to convert, by force if necessary, all his subjects to that creed; by that means he will secure homogenous empire.*

अर्थात् यदि विजेता ( राजा ) का धर्म भिन्न हो और वह अपना राज्य अपने सहधर्मियों द्वारा रखना चाहे तो सर्वोत्तम नीति यह होगी कि विजित ( प्रजा ) को अपने धर्म का अनुयायी कर डाले यदि यह कार्य सरल रीति से साध्य न होती बलात्कार ( जबरदस्ती ) किया जावे। तभी एक प्रकार का राज्य होकर सदैव आधीन रहेगा।

यद्यपि वर्तमान राज्य व्यवस्था के विद्यमान होते गवर्नेमेण्ट के विषय में यह कल्पना करना कि यह उसका मत है अन्याय है परन्तु

जो गोरे-कर्मचारी हमारे ऊपर शासन करने के लिये भारतवर्ष में आते हैं उन्हें इस बात की अहर्निश चिन्ता लगी रहती है कि ३३००:०००० तैंतीस करोड़ भारतवासियों पर १०००० सत्तर हजार सिविलियन तबतक निष्कण्टक शासन नहीं करसके जब तक उन्हें अपने इतिहासों से घृणा उत्पन्न न होजावे और वे सबही हमारे सतावलम्बी (ईसाई) न बनजावें निदान उनकी श्रद्धा उन के धार्मिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों से दूर करने के लिये “ हण्टर साहब ” आदि योरुप के विद्वानों ने जो भारतवर्ष के ऐतिहासिक पुस्तक लिखे हैं उनका किञ्चित् सारांश हम यहां प्रकाशित करते हैं:-

( १ ) आर्य्य शब्द संस्कृत के आर् शब्द से बना है जिसके अर्थ हल के हैं उस समय यह लोग कृषिकर्म ( खेती ) करते थे इसी लिये इन का आर्य्य नाम प्रसिद्ध हुआ ।

उत्तर आर्य्य शब्द आर् शब्द से नहीं निकला वरन् “ऋ” धातु में “ण्यत्” प्रत्यय लगाने से सिद्ध होता है और इस के अर्थ स्वामी, गुरु, पूज्य, श्रेष्ठ, शान्तिचित्त आदि के हैं जैसा कि ‘शब्दस्तोम महानिधिः’ नामक संस्कृत कोष में लिखा है:—

आर्य्य \* पु० ऋ+ण्यत् । स्वामिनि, गुरौ, मुहृदि च । श्रेष्ठकुलोत्पन्ने, पूज्ये, श्रेष्ठे, सङ्गते, नाट्योक्तौ मान्ये, उदारचित्ते, शान्तिचित्ते, “ कर्तव्य-माचरन् कामसकर्मव्य मनाचरन् । तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य्य इति स्मृतः ” इत्युक्त लक्षणो जने च त्रि० ॥

इसके अतिरिक्त आर्य्यग्रन्थों में भी कहीं आर्य्य शब्द कृषक के अर्थ में ग्रहण नहीं किया गया है वरन् उपर्युक्त अर्थों में ही आया है यथा:-

आर्य्यपुत्र ! पिता माता ॥ वा० अयोध्या काण्ड २१। ४ ॥ अधिरो हार्य ! पादाम्ब्यां अयो० ११२ । २१ ॥ आर्य्य पुत्र ! सहानुज ॥ आरण्य० ४३ । २ ॥ भरतस्यार्य पुत्रस्य ॥ आर० ४३ । १८ ॥ इत्यादि २

उपर्युक्त वाक्यों में सीताजी ने रामचन्द्र तथा भरत को आर्य्यपुत्र तथा भरत ने रामचन्द्रजी को आर्य्य कहा है जिन्होंने कि अपने समस्त जीवन में कभी कृषिकर्म नहीं किया । इसी प्रकार रामायण तथा महा-भारत में अनेक स्थलों पर आर्य्य शब्द पूज्य, श्रेष्ठ, शान्तचित्त और उदारचरितादि अर्थों में व्यवहृत किया गया है जिन प्रमाणों को हम

स्थानाभाव से यहां पर उद्धृत नहीं करते। संस्कृत में “आर्” कोई धातु भी नहीं है अतएव सिद्ध है कि इस शब्द का गढ़नेवाला संस्कृत से अनभिज्ञ है और आर्यग्रन्थों के तो मानों उस ने कभी दर्शन ही नहीं किये।

( २ ) आर्य लोग इस देश के आदिम निवासी नहीं हैं किन्तु मध्य एशिया के पश्चिमीय भाग ( तुर्किस्तान ) से यहां आकर आबाद हुए हैं।

उत्तर-आर्यों के किसी ग्रन्थ में यह नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान वा तुर्किस्तान से आकर यहां आबाद हुए हैं वरन् अनेक पुस्तकों में लिखा है कि आर्यों ने इस देश को बसाया है जैसा कि मनुस्मृति के निम्न श्लोक से विदित होगा:—

सरस्वती दृषद्वन्योर्देवनोर्यबन्तरम् ।

तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त्तं प्रचक्षते ॥ २ । ११ ॥

अर्थात् सरस्वती और दृषद्वती ( ब्रह्मपुत्र ) दोनों नदियों के मध्य का देश जो देवों ( आर्यों ) ने बसाया है ब्रह्मावर्त्त कहलाता है ॥

उपर्युक्त श्लोक में “तं देवनिर्मितं देशं”, वाक्य स्पष्ट बतला रहा है कि आर्यों ने ही इस देश को बसाया है। जब आर्यों के ग्रन्थ इस बात की मात्नी दे रहे हैं कि आर्य यहां के आदिम निवासी हैं तब विदेशियों की प्रमाणशून्य बातों को कौन बुद्धिमान् पुरुष मान सका है ? यदि आर्यों के फारिम ( ईरान ) के निकट आने जाने के कुछ चिह्न मिल भी जावें तो वे भी विदेशियों का पक्ष कदापि पुष्ट नहीं कर सकते क्योंकि प्राचीन आर्य युद्ध और व्यापार आदि के लिये भरतखण्ड की सीमोलङ्घन करके दूर देशों में जाते थे और बहुत से आर्यपुरुष ईरान, तूरान, आदि देशों में यहां से उठ कर जा भी बसे थे जैसा कि मनु जी ने लिखा है:—

शनैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः ।

दृष्टव्यं गतालोके ब्राह्मणादर्शनेन च ॥

• फारसी भाषा के बिगड़, पूर, सर, अरम, आब, गन्दुम, शीर, शास्त्र, अर्य, खर, शमाल, बरमन आदि अधिकांश शब्द संस्कृत के आतु, पुत्र, शिर, वधु, अप, गोधुम, भीम, शाखा, अरव, खर, भृगाल, ताहमान आदि शब्दों से बिगड़ कर बने हैं इस प्रकार के अन्य भी चिह्नों से आर्यों का ध्रु देश में जा बसना ही सिद्ध होता है परन्तु जो इन चिह्नों से यह अर्थ निकालते हैं कि आर्य ईरान से बहा आकर आबाद हुए हैं यह उनका भ्रम है।

पाण्डकाशचोद्द्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः ।

पारदा पट्टवाश्चीनाः किराता दम्द्राः खशा ॥ १० । ४३-४४

अर्थात् कितनी ही क्षत्रिय जानियें क्रिया का लोप होने अर्थात् वैदिक संस्कार न करने और मद्य मांसादि का सेवन करने से वृषलत्व ( शूद्रत्व ) को प्राप्त होगईं वे इस समय पाण्डूक (मेदिनीपुर प्रदेश) ओडू (कटक) द्रविड़ ( दक्षिण देश ) काम्बोज (अरब) यवन (यूनान) शक (तुर्किस्तान) पारद (चीनका एक खण्ड) अपहूव (काबुल) चीमाः (चीन) किरात (सौताल परगना) दरद, भूटान तथा खश (ईरान) में बसती हैं ॥

( ३ ) आर्य लिखना नहीं जानते थे और अपनी सन्तानों की वेद मन्त्र कण्ठस्थ कराया करते थे ॥

उत्तर -आर्य्य लोग वेद मन्त्रों को क्या इस समय कण्ठस्थ नहीं करते ? द्रविड़ देशमें लतां ब्राह्मणपुत्र अब भी वेदोंको कण्ठस्थ करते हैं तो क्या इस का यह अर्थ है कि वे लिखना नहीं जानते ? प्राचीन समय के जो वाण मिलते हैं उन पर राजाओंके नाम खुदे हैं तो क्या यह उनके लिखना जानने का प्रमाण नहीं है ? पाणिनि मुनि का “ लिख अक्षर विन्यासे .. क्या हमारे कथनकी पुष्टि नहीं कर रहा ? आर्य्य लोग सृष्टि काल के आरम्भ में ही लिखना जानते हैं जैसा कि इस वेद मन्त्र में लिखा है :-

उत त्वः पश्यन् देदर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्

ऋग्वेद १० । ७१ । ४ ॥

अर्थात् “ मुख वाणी को देखता हुआ नहीं देखता और सुनता हुआ नहीं सुनता .. भला बिना लिखी हुई वाणी को मनुष्य कैसे देख सकता है ? इससे मिट्ट है कि सृष्टि के आरम्भ से ही आर्य्य लोग लिखना पढ़ना जानते थे ॥

( ४ ) वे ( आर्य्य ) अग्नि, इन्द्र और वायु आदि देवताओं की पूजा करते थे और घादल के गर्जने को इन्द्र का शब्द और बिजुलों की धमक को उसके भाले समझते थे उनका विश्वास था कि इन्हीं भालों से इन्द्र काले घादलों को छेद कर खेतोंमें पानी पहुंचाता है ।

उत्तर जो लोग संस्कृत के शब्दों का ठीक उच्चारण भी नहीं कर सकते यदि वे वेदमन्त्रोंके अर्थोंका अनर्थ कर डालें तो कोई आश्चर्य्य



नहीं है। उपयुक्त वेद वाक्य ऐसे मनुष्योंकी दशा पर ठीकही घटता है कि “मुखं वाणी को सुनता हुआ भी नहीं सुनता,, अर्थात् वाणी को सुनकर भी उसके ठीक २ अभिप्रायको नहीं समझ सकता। वास्तव में बात यह है कि ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभावानुसार उसके असंख्य नाम हैं और अग्नि आदि शब्द वेदों में परमात्मा के ही वाची आये हैं जैसा कि निम्न वेद मंत्र से प्रकट होगा:-

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्  
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

ऋ० १। १६। ४। २६ ॥

अर्थात् विद्वान् लोग एक ही ब्रह्म की इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि नामों से स्तुति करते हैं।

वेद के मन्त्रों में यही तो विलक्षणता है कि जहां वे ईश्वर की स्तुति का उपदेश करते हैं वहीं वे एक २ प्राकृतिक वस्तु के गुणों से भी मनुष्योंको अभिज्ञ कर रहे हैं क्योंकि जब तक मनुष्य जड़ पदार्थों के गुण, दोष भली भाँति नहीं जानता तब तक उसे परमात्मा का ज्ञान पूर्णतया कदापि नहीं होता इसीलिये महर्षि कपिल ने अपने सांख्य शास्त्र में प्रकृति की सविस्तर व्याख्या की है ॥

अब हम एक वेद मन्त्र उद्धृत करते हैं जिससे विदित होगा कि इन्द्र के वज्र वा भालों का अभिप्राय क्या है:-

अहनृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता बधेन ।

स्कन्धांसीवकुलिशेना विवृक्ष्णाहं शयत उपपृक्पृथिव्याः

ऋ० १। १। ३२। ५ ॥

अर्थ:- हे सेनापते ! जैसे ( इन्द्रः ) सूर्य वा बिजुली (महता) अति विस्तार युक्त ( कुलिशेन ) अति धार वाले खड्ग रूप ( वज्रेण ) किरण समूह से ( विवृक्ष्ण ) करे हुए ( स्कन्धांसीव ) कर्मों के समान ( व्यंसम् ) जिस प्रकार छिन्न भिन्न हों वैसे ( वृत्रतरं ) अत्यन्त सघन ( वृत्रम् ) मेघ को ( अहनृ ) मारता व छिन्न भिन्न करके पृथिवी पर वर्षाता है और वह ( बधेन ) सूर्यके गुणोंसे मृतकवत् होकर ( अहिः ) मेघ ( पृथिव्या ) पृथ्वी के ( उपपृक् ) ऊपर ( शयते ) सोता है वैसे ही शत्रुओं का हनन कीजिये ।

इसका भावार्थ यह है कि हे सेनापति ! जैसे इन्द्र, वृत्र को वज्र से मारता है और भूमि पर गिरा देता है वैसे ही आप शत्रुओं का

हनन करें। अब उपर्युक्त अर्थ में इन्द्र का मन्त्र सूर्य, वज्र का अर्थ किरण और वज्र वा अहिः का अर्थ मेघ का ग्रहण किया गया है उस में प्रमाण क्या है? अब हम इसके प्रमाण देते हैं:—“ वृत्रो मेघ इति निरुक्त २ । १६ ॥ ” “ अहरिति मेघनामसु पठितम् ॥ निघण्टु १ । १० ” जब वायु से प्रतारित होकर दो मेघ आपस में मिलते हैं तो उनके मिलने से शब्द उत्पन्न होता है और रगड़ से विद्युत् उत्पन्न होती है। वेदों में “ अस्मिन्तहत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि ” आदि मन्त्रों बतलाया गया है कि बिजुली; क्या जल, क्या पृथ्वी, क्या सूर्य सर्वत्र विद्यमान है यद्यपि बिजुली के कुलिश, पवि, वज्र आदि नाम प्रसिद्ध हैं और बिजुली के गिरनेकी साधारण मनुष्य भी वज्रप्रात हुआ बोलते हैं इसलिये इसका प्रमाण देने की आवश्यकता न समझकर हम महाभारतका केवल एक प्रमाण उद्धृत करते हैं जिसमें इन्द्र शब्द सूर्य के अर्थ में आया है।

धाताऽर्घ्यमा च मित्रश्च वरुणाऽशो भगस्तथा ॥

इन्द्रो विवस्वान् पूषा च त्वष्टा च सविता तथा ।

पर्जन्यश्चैव विष्णुश्च आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ आदिपर्व २६।६५-६६॥

अर्थात् धाता, अर्घ्यमा, मित्र, वरुणांश, भग, इन्द्र, विवस्वान् पूषा, त्वष्टा, सविता, पर्जन्यः और विष्णु; ये आदित्य के बारह नाम और भी हैं।

उपर्युक्त मन्त्र में यह बतलाया गया है कि आकाशमें जो पर्वतों के समान अति स्थूल वादल दृष्टिगत होते हैं यदि वे पृथ्वी पर गिर पड़ें तो प्राणियों को नष्ट कर दें इसलिये सूर्यकी किरण और बिजुली अपने तेज (गम्भी) से उन्हें वाष्प रूप में परिणत करके भूमि पर गिराती हैं। इसी प्रकार अन्य मन्त्रोंमें भी जल, सूर्य, पृथ्वी आदिकों में बिजुली की विद्यमानता दिखला कर अनेक कार्योंकी सिद्धि बतलाई गई है। सम्प्रति अनेक मनुष्य महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के ऊपर यह दोषारोपण करते हैं कि उन्होंने वेदों के अर्थ बदल दिये हैं परन्तु महर्षि प्रत्येक मन्त्रार्थके साथही वेदके ६ अंगों और ६ उपांगों की साक्षियों उद्धृत करते हैं अर्थात् महर्षि, ब्रह्मा से लेकर व्यास पर्यन्त जो ऋषि, मुनि हुए हैं और उन्होंने वेदों के जो अर्थ ग्रहण

किये है वही ग्रहण करते हैं तब दूसरे पुरुषोंके मनमाने वेदभाष्य का जो श्राव्यग्रन्थोंके सर्वथा प्रतिकूल हो कौन बुद्धिमान प्रमाण कर सकता है और यह विश्वास कर सकता है कि वेदों में भी इन्द्र, वज्रासुर आदि मनुष्यों के इतिहास पाये जाते हैं ? । वेदों में अनेक सूक्ष्म विषय अलङ्कारोंमें वर्णन किये हैं क्योंकि वैज्ञानिक विषय शुष्क (Dry) होने के कारण इस प्रकार सुगमता से समझ लिये जाते हैं । यदि हम इस पुस्तक में कहीं यह लिख दें कि ज्यों २ मनुष्य वैदिक महासागर में गोते लगावेंगे वैसे ही वे मुक्ता रूपी अनेक सद्विद्याओं को प्रकाशित करके मनुष्यों के लिये सुख की सामग्री एकत्रित कर देंगे और कोई हमारे इस कथन का यह अभिप्राय निकाले कि इस पुस्तक का लेखक वेदों को समुद्र और विद्याओं को सोती समझता है तो यह कथन हमारे साहित्य में उसकी अनभिज्ञता ही सिद्ध करेगा।

( ५ ) आर्य्य लोग एक प्रकार की मद्य ( शराब ) पीते थे जो सोम के अर्क से बनाई जाती थी ।

उत्तर-शान्त ! शान्त ! ! ज्ञात होता है कि इन लेखकों ने या तो आर्योंके ग्रन्थोंका अवलोकन ही नहीं किया अथवा इनका लेख सर्वथा पक्षपात से पूर्ण है देखिये धर्मशास्त्र में क्या लिखा है:—

ब्रह्महत्या मृगपानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।

महान्ति पातकान्याहुः मर्मगश्चापि तैः सह ॥

अर्थात् ब्रह्महत्या, मद्य का पीना, चोरी, गुरु-पत्नी का समागम और इन के साथ संसर्ग रखना यह पांच महापातक कहलाते हैं ।

जब आर्य्यग्रन्थों में मद्य के कृते तक का प्रायश्चित्त लिखा है तो यह कहना कि आर्य्य लोग मद्य पीते थे प्रभाद है । आयुर्वेद शास्त्र का मदनपाल निघण्टु एक प्रामाणिक ग्रन्थ है देखिये उसमें क्या लिखा है:—

सोमवल्ली यज्ञेता सोमक्षीरी द्विजप्रियः ।

सोमवल्ली त्रिदोषघ्नी कटुस्तिक्ता रसायिनी ॥

अर्थात् सोमवल्ली त्रिदोष ( वात, पित्त, कफ ) को नष्ट करती है और कड़वी, चर्परी एवं रसायन है ।

इस में कहीं भी सङ्केत नहीं है कि सोमलता मादक ( नशा करने वाली ) है जिन्हें वैद्यक के इस ग्रन्थ पर विश्वास न होवे स्वयं इस का अर्क पीकर परीक्षा करें ।

इसी प्रकार की अनेक निरर्थक बातें इन ऐतिहासिक पुस्तकों में भरी पड़ी हैं जिन से यह मिट्टी करने की चेष्टा की गई है कि ये लोग लिखना नहीं जानते थे, विधवा स्त्रियें अपना विवाह कर लेती थीं \* मद्य, मांस के भक्षण से इन्हें कोई परहेज न था, असभ्य पुरुषों कीसी खनी हुई गाड़ियों में चढ़ते थे और जङ्गली भीलों की तरह तीर कमान रखते थे। साधारणतया इनकी सभ्यता आज कल के ग्रामीण पुरुषों से कुछ विशेष नहीं थी।

आर्यावर्त की प्राचीन सभ्यता का वर्णन करने के लिये उसके इति-  
 आर्यावर्त की प्राचीन  
 सा-यना- हाम का प्रश्न फिर हमारे सम्मुख उपस्थित ही आता है। यह सत्य है कि हम किसी प्राचीन इतिहास के मिले बिना इस की सभ्यता का साङ्गोपाङ्ग चित्र ( फोटो ) नहीं उतार सकते परन्तु क्या यह सम्भव है कि जिस जाति ने सृष्टि संवत् की बड़े यत्न के साथ रत्ना की वह अनेक इतिहास, विज्ञान और कला कौशलके ग्रन्थ नष्ट होते समय हाथ पर रखे बैठी रही होगी। इस समय जङ्गलों में पाषाणों से दबी हुई अनेक ऐसी पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं कि जिन के अपूर्व विषयों की देख कर आज कल के विद्वान् पुरुष भी चकित हो जाते हैं। कागज़ भी उन पुस्तकों का ऐसा है कि वह पानी में भी नहीं गलता। इससे अनुमान होता है कि जब पुस्तक नष्ट किये गये होंगे तो अनेक असभ्य पुस्तकों की आर्या ने बड़े यत्न से भूमि में गाढ़ दिया होगा इनके अतिरिक्त बहुत से असूक्ष्म पुस्तक मूर्ख-ब्राह्मण सन्तानों की आर्थिक प्रलोभ देखकर अनेक यूरोप के विद्वान् अपने देशों को उड़ा लेगये हैं जिन में से बहुत सों का तो पता ही नहीं चलता और बहुत से फ्रांस, लण्डन और जर्मन के पुस्तकालयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। यद्यपि मूर्ख आदमियों के पास अब भी यत्र तत्र बहुत से ग्रन्थ विद्यमान हैं परन्तु बिना यथेष्ट धन खर्च किये उन का मिलना असम्भव है। निदान प्राचीन ग्रन्थों का संग्रह करना एक परिश्रमसाध्य

\* विधवा विवाह ऐनक गिहान्नर के विगद हे चोर मायों ने इसे कभी विहित नहीं माना धर्मशास्त्र में लिखा है कि - न वत्या कर्माचिन्क-या पुनर्जन्माह-चभय । वत्या पुन प्रयच्छाह्नि प्राप्नोति पुरुषात्तुतम ॥ मनु० १ । ७१ ॥ यदि किसी को कन्या देकर पुनः उस को मरने पर जो दूसरे को दान करना है वह असत्य बालन के साथ का प्राप्त होता है। बिजि स्त्री पृथक् दूसरा विवाह करने में गृहस्थ को प्राप्त हो जाना है। मृत पति और पत्नीकी स्त्री पुरुष को सम्मान की इच्छा होने पर धर्मशास्त्र में नियोग का विधान किया गया है।

कार्य है और इस में बहुत सा अर्थ और समय लगाने की आवश्यकता है परन्तु जब तक आर्यों की सभ्यता का कोई इतिहास न मिले अथ-  
शिष्ट चिह्नों से ही हमें अपना प्रयोजन सिद्ध करना उचित है । अब  
हम उन में से भी केवल आर्यवर्णमाला की ही अन्य वर्णमालाओं से  
तुलना कर के फिर अन्य लोगों की सान्निध्य प्रस्तुत करेंगे:—

लिखना—इस समय संसार में जितनी वर्णमालायें प्रचलित हैं  
यदि देवनागरी के साथ उनकी तुलना करते हैं तो हमें इस से ही  
आर्यों के अगाध-बुद्धि-वैभव का परिचय मिलता है और यह मानना  
पड़ता है कि उन्होंने समस्त विद्याओं को इसी प्रकार उन्नति की  
पराकाष्ठा को पहुँचा दिया था । (प्रथम) तो इस वर्णमालामें स्वरसब  
एक जगह और व्यञ्जन दूसरे स्थान में रखे गये हैं जैसा कि अरबी,  
फारसी वा अंग्रेजी की वर्णमालाओं में नहीं है यथा ( अलिफ़, बे )  
वा ( ए, बी ) । (द्वितीय) एक स्थानीय ग्व व्यञ्जन एक ही स्थान में  
पाये जाते हैं यथा— “क, ख, ग, घ, ङ” इनका कण्ठ स्थान है और  
एकही जगह रखे गये हैं परन्तु फारसी आदि में यह बात भी लक्ष्य  
में नहीं रखी गई यथा ‘बे’ का और ‘मीम’ का ओष्ठ स्थान है परन्तु  
२० अक्षर के पश्चात् बे मे मीम आया है वही प्रकार अंग्रेजी में “के”  
के इधर उधर जो कण्ठस्थानी है ‘जे’ और ‘ऐल’ आये हैं जिन में से  
पहला तालुस्थानीय और दूसरा दन्तस्थानीय है । (तृतीय) उन वर्णों में  
कोई निरर्थक वर्ण न हो और न कोई छोड़ा ही गया हो । नागरी  
अक्षरमाला में अ, कवर्ग ( क, ख, ग, घ, ङ ) और ह का कण्ठस्थान  
है; इसी प्रकार इ, चवर्ग, य और श का तालु; ञ, टवर्ग, र, प का  
मूर्धा; ल, तवर्ग, ल और स के दन्त ओष्ठ स्थान हैं । कोई अनुष्य आज  
तक इन स्थानों से दूसरे अक्षर उत्पन्न नहीं कर सका और न कोई यह  
ही सिद्ध कर सका है कि इन में से अमुक अक्षर अमुक स्थान से उत्पन्न  
नहीं होता वा अमुक उच्चारण का ठीक २ काम नहीं दे सका । अब  
फारसी और अंग्रेजी अक्षरों की लीला सुनिये:—कण्ठ से ख, घ, ङ यह  
तीन अक्षर और उत्पन्न होते हैं परन्तु उपर्युक्त दोनों वर्णमालाओं में  
जाल हाल दीजिये इन का पता न मिलेगा । इसी प्रकार छ, ज, झ,  
झ, ठ, ड, ण, ष, घ, फ, भ, ष, ज्ञ, य, की भी व्यवस्था समझ लीजि-

येगा। सीन, सेखाद, ते, तोय आदि अक्षर फ़ारसी में और वी, डवन्यू आदि अंग्रेज़ी में निरर्थक ही आये हैं। यही कारण है कि आर्यभट्ट लोग अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं के कठिन से कठिन शब्दों का उन भाषाओं के आजन्म बोलने वालों की तरह उच्चारण कर सकते हैं परन्तु सभ्यताभिमानी अंग्रेज़ लोग अपनी अपूर्ण वर्णमाला होने के कारण ही आर्यभाषा का शुद्ध उच्चारण नहीं करसके और मुसलमान लोग जो इस देश के बहुकाल से निवासी बन गये हैं आर्यों के सह-वास से भी उन्हें तब तक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वृश्निवर्क और ज्ञान आदि शब्दों का उच्चारण ठीक २ नहीं आया। (चतुर्थ) यह बात होनी चाहिये कि जो लिखा जाये वही पढ़ा जाये यथा नसीरुलदीन लिखते और नसीरुदीन पढ़ते हैं इसी प्रकार अंग्रेज़ों में थ्रू (through) लैफ़्टिनेण्ट (Lieutenant) आदि की दशा समझिये कि जिनके स्मरणमात्र से ही रोमाञ्च होता है। (पञ्चम) बात यह होनी चाहिये कि छोटे बालक भी उन शब्दों की सुगमता से सीख लें इसलिये ऋषियों ने एक स्थानी क, ख, ग, घ, ङ आदि वर्णों में पहिले तीसरे और पांचवें वर्ण अर्थात् क, ग, ङ, च, ज, झ आदि अल्पप्राण अर्थात् बोलने मृदु और दूसरे चौथे ख, घ, ङ, फ़ आदि महाप्राण अर्थात् कठोर; उच्चारण की सुगमता के लिये रक्खे हैं यदि इस के विरुद्ध डधर उधर ये वर्ण कर दिये जायें तो कितनी कठिनता होगी परन्तु फ़ारसी अंग्रेज़ी आदि वर्णमालाओं में जो अल्प वृद्धि मनुष्यों की यत्नाहं हुई है उन बातों पर ध्यान नहीं रक्खा गया है और इसी लिये छोटे २ वर्णों को इन के सीखने में बड़ी कठिनता पड़ती है। देवनागरी अक्षर भी अधिकांश गोल रक्खे गये हैं क्योंकि गोल अक्षर अति शीघ्रता से लिखे जाते हैं कहां तक लिखें देवनागरी वर्णमाला के एक २ अक्षर के भीतर विज्ञान (Science) भरी हुई है और उन सब बातों पर विचार करने के लिये यहां स्थान नहीं है अतएव इस विषय को यहीं समाप्त करके अब कुछ भारत की सभ्यतासूचक सम्मतियों का उल्लेख करते हैं।

१ भाषा-मर यिनियम जीन्स साहय कहते हैं कि संस्कृत की बनावट अत्यन्त अद्भुत है यह यूनानी से बढ़कर परिपूर्ण, त्पटित से बढ़ कर विग्रह और दीनों की अपेक्षा ललित और सुमधुर है। (देखो साइंस आव दी लैंग्वेज पृष्ठ १२४)

रवैद्यक-मिश्र व यूनान वाले जिन्होंने सम्पूर्ण फरंगिस्तानकी आदमी बनाया अपने दो बड़े २ चैद्योंके विषयमें लिखतेहैं कि वे आर्यावर्त से विद्योपार्जन करके आये थे । और वगडाद के बड़े खलीफा नामूने भी यहां से वैद्य बलवाये थे और उन्हींकी औषधि लेवन करता था ( देखी भूगोल हस्ताभलक पृष्ठ ६२ व ६४ )

३-शालाक्य तन्त्र ( सर्जरी )-आलरेखिल इलफिनेस्टन साहब बहादुर गवर्नर बम्बई से कहते हैं कि “ शालाक्य तन्त्र ( चीर फाड़ की विद्या ) में जो आर्योंकी परिज्ञान था वह भी ऐसा ही आश्चर्य्य-प्रद है जैसा कि रसायन-विद्या का । निदान पथरी निकालनी, आंखें बनामी, गर्भ से बच्चा निकालना यह सब उनके यहां प्रचलित था १२५ सवासी से अधिक शालाक्य-तन्त्र उनके पास उपस्थित थे, चेचक में टीका लगाना भी उनमें चिरकाल से प्रचलित था । ( देखी इलफिनेस्टन साहब का बनाया हुआ भारत का इतिहास )

४-गान विद्या-सर विलियम जौन्स और पैट्रुन्स साहब वर्णन करते हैं कि आर्योंमें गानविद्या अति कम और सभ्यता पूर्वक परिपूर्ण है । उनके यहां ८४ रागनियां हैं जिनमेंसे ३६ रागनियां साधारणतया प्रचलित हैं । और प्रत्येक के ताल स्वर पृथक् २ हैं जो अन्तःकरण के मुख्य २ भावों को आह्लादित करने में पृथक् २ प्रभाव रखती हैं । ( देखी मखजान-उल-अल्म जि० १ नं० ११ )

५-शिल्प क्रिया ( इंजीनियरी )-आर्य्य लोग शिल्प कर्म के ज्ञाता थे, जलयान ( जहाज़ ) बनाना जानते थे ( माइन्स आफ दी लैंग्वेज सफ़हा २७३ )

६-हस्तक्रिया-आर्य्यजाति लोहार के काम और दस्तदगरी के गुण से अभिज्ञ थी यह लोग, घड़ी, पियाना, तलवार, कवच आदि सब बनाया जानते थे ( हिस्ट्री मेहिशन मि० वाइज़ साहब पृष्ठ १२ )

७-धर्मशास्त्र-मिस्टर विलियम जौन्स साहब बहादुर कहतेहैं कि यह मनुस्मृति किसी समय यूनान और मिश्र देश तक प्रचरित थी और इसके अनुसार उस देशके निवासियों का व्यवहार चलता था । ( देखी भागवधर्मसार राजाशिवप्रसाद कृत मन् १८८१ ई० )

८-ज्योतिष-सर विलियम जौन्स साहब कहते हैं कि ज्योतिषविद्या

का विभाग यूनानी और अरबी नहीं जानते थे परन्तु भारतवर्ष में वह विचरकाल से विद्यमान थी ( देखो हिस्ट्री आफ़ मिडीशन पृ० २६ )

९ अंक गणित--(अ) एल० सी० फ़ाडी साहब अरब देशके एक यात्री लिखते हैं कि अंक गणित ( इल्लह हिन्दुस्तान ) किसी देश के मनुष्य नहीं जानते थे परन्तु केवल आर्य लोग जानते थे ( देखो सुफ़ीदुल-हयात पृष्ठ १ ) ।

(क) सन् १८८१ ई० में मौज़े बख़्शअली परगना यूसुफ़राय जिला पेशावरसे एक केप्टनको एक प्राचीन मन्दिर खोदते समय उस स्थान की पाषाणशिलाओं से दबी एक ऐसी पुस्तक मिली है जो किसी वृक्ष के पत्रों पर लिखी हुई थी । इसके विषय में डा० आरनबली साहब ने एक पत्र प्रकाशित किया जो वायना की पूर्वीय कांग्रेस में पढ़ा गया उस पत्र का आशय यह है कि इस का एक भाग बहुत कुछ नष्ट हो गया है । इस समय इसके सुरक्षित पत्र ७० के लगभग हैं । ग्रन्थ और उसके रचिता का नाम नहीं मिलता । इस में केवल गणित का वर्णन है । प्रश्नोंके समाधान करने की रीति ऐसी सुगम है कि सोचने की कठिनता नहीं पड़ती और उत्तर बहुत शीघ्र प्राप्त होता है । इस के नियम सुगम और पद्य में हैं परन्तु भाष्य गद्य में हैं । डाक्टर हार्नबली की यह सम्मति बहुत ठीक है कि हिन्दुओंने गणित विद्या किसीसे नहीं सीखी किन्तु स्वयं इसका आविष्कार किया है । इत्यादि । इत्यादि ( देखो कोहनूर १ सन् ८८ ई० )

१० बीज गणित--मैक्समूलर साहब कहते हैं कि खलीफ़ा मामू के समय में मुहम्मद बिन मूसा ने संस्कृत से बीजगणित (Algebra) का तथा अलब्रूनी ने सांख्यशास्त्र तथा योग शास्त्र का अरबी में अनुवाद किया । ( देखो माइंड आफ़ निरखेज पृष्ठ १६५ )

११ रेखा गणित--डा० डिवो साहब प्रिन्सपिल बमरस कालिजने यह सिद्ध किया है कि आर्योंको वैदिक समयमें रेखा गणितकी विद्या विदित थी ( देखो रिमाला संस्कृत की फ़ज़ीलत )

११ तार--कनल अल्काट साहब कहते हैं कि “निश्चय आर्योंके पास तार था जिसके द्वारा बड़ी दूर से समाचार आते जाते थे उसमें खम्भे गाढ़ने, तार लगाने और तूतिया आदि पदार्थ रखने की आव-



शक्यता नहीं होती थी और अब भी उसकी सन्तति में वह ऋषि विद्यमान हैं। वह क्या है? योग विद्या। (भारत त्रिकालदशा पृष्ठ ६)

१२०योन यान-फिर कर्नल साहब कहते हैं कि आर्य्य लोग वह विद्या भी जानते थे जिस के लिये यूरोप वाले बड़ा उद्योग कर रहे हैं अर्थात् विमान। आर्यों की वायु द्वारा आकाश में चलने की शक्ति थी वे केवल आकाश में चलने की शक्ति ही नहीं रखते थे वरन् वही युद्ध भी किया करते थे (भारत त्रिकालदशा पृष्ठ ६ व ७)

१३यन्त्र और कलायें-फिर कर्नल साहब कहते हैं कि “उस समय सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्र (खुर्दबीन) और दूर-दर्शक-यन्त्र (दूरबीन), धर्म घड़ियां, जेबी घड़ियां और यन्त्रों के द्वारा बोलने वाले कृत्रिम पशु आदि विद्यमान थे। आर्यों में अस्त्रविद्या के ऐसे २ पूर्ण ज्ञाता और प्रयोगकर्ता लोग थे कि वे विषयुक्त वायु से शत्रु सेना को अचेत कर के और वायु में भयङ्कर शब्द उत्पन्न करके उन्हें विनष्ट कर देते थे और आकाश में भयावह आकृतियों बना कर विरोधियों की भयभीत और विस्मित करते थे। इस विद्या का नाम तक भी इस समय के लोग नहीं जानते (भारत त्रि० द० पृष्ठ ६। ७)

१४-वनस्पति विद्या-कश्मीर में वनस्पति के विषय का तीन भागों में संस्कृत भाषा का ऐसा बृहत् ग्रन्थ मिला है कि कदाचित् ही इस से बड़ी कोई पुस्तक टूटि पड़ी होगी यह अति प्राचीन पुस्तक है। अस्त्रधार-उलमदीक पृष्ठ ७ ता० २५। ११। १८८७।

१५ रेल-महाशय काशीराम जी अहलकार जि० पेशावर ने ता० २५ अगस्त सन् १८८९ ई० को एक स्वतः स्वर्गवासो पं० लेखराम जी आर्य्य-पथिक को निम्न आशय का लिखा था “दिसम्बर सन् १८८२ का यह वृत्तान्त है जब कि मैं तहसील मवाली में नीकर था उस समय एक साहब बहादुर पुरानी इमारतों के देखने और प्राचीन समय के वृत्तान्त ज्ञात करने को आये देख भाल करने के पश्चात् उन्होंने निरञ्जनाम्नी-रुद्दीन के सम्मुख कहा था कि रेल आदि कारीगरियों को लोग इस समय देख कर समझते हैं कि इसी समय इन का आविष्कार हुआ है परन्तु यह उनका भ्रम है क्योंकि प्राचीन समय में इस से बहुतकर आर्या-वर्त में मौजूद थी यह समस्त वृत्तान्त उन पत्थरों पर अङ्कित है जो

कि मीर्जे शहबाजगढ़ जि० पेशावर में इस समय भी विद्यमान हैं और ऐसे पत्थर हैदराबाद, लङ्का आदि स्थानों से भी मिले हैं। इस समय जिस प्रकार विज्ञापन वा आज्ञापन कागज़ों पर लिखे जाते हैं उस समय में पत्थरों पर अङ्कित करा कर उन्हें राज्य के विशेष स्थानों में खड़ा करा दिया जाता था। निदान शहबाजपुर के पत्थर पर यह विज्ञापन मुद्रित है जिसे एक राजा ने जारी किया था जिसे कि चार सहस्रवर्ष के लगभग समय बीता उस में नौकरों की राजा की ओर से निम्न चार आज्ञायें दी गई हैं:—

( १ ) धुपें गाड़ी में लकड़ी न जलाई जावे और इस के स्थान में पत्थर का कौपला जलाना चाहिये।

( २ ) समस्त राज्य में मनुष्यों के लिये तो औषधालय विद्यमान हैं परन्तु पशुओं के लिये कोई चिकित्सालय नहीं है अतः शीघ्र खोलने चाहियें।

( ३ ) यद्यपि यात्रियों के ठहरने की धर्मशालायें विद्यमान हैं परन्तु अब इतनी विशेषता होनी चाहिये कि जो पथिक किसी वस्तु की वहां से समन्द कर के ले जाना चाहे मेरे नौकर उसे तत्काल दें।

( ४ ) राजसर्गों, सड़कों, पर दोनों ओर अच्छे २ फलों के सघन वृक्ष लगाये जावें जिन से यात्रियों को पूर्णतया सुख पहुंचे।

१६-भूगोल-अमेरिका के विषय में प्रसिद्ध है कि कोलम्बस के ज्ञान करने से पूर्व वह किसी को मालूम नहीं था परन्तु सि० ए० पी० वाइनिंग माह्व लिखते हैं कि:—“अमेरिका के पुराने मत और रीतियों का हिन्दुओं से बहुत कुछ सादृश्य होने पर मालूम होता है कि हिन्दु लोग अमेरिका गये थे या अमेरिका वालों ने उनका किसी प्रकार का सम्बन्ध हुआ था। यथा विवाह में अग्नि के सहुंओर करे लेना। पांचवीं शताब्दि में अमेरिका में एक सम्प्रदाय बौद्ध संन्यासियों का भी गया था” ( यह वृत्तान्त चीनके राजकीय इतिहासमें लिखा हुआ है और वाइनिंगसाह्व ने अब उन का अंग्रेज़ी में अनुवाद कर दिया है। )

सदाचार-मेगस्थनीज़ (Megasthenes) यूनानी इतिहास वेत्ता जो सम्राट से ३०६ वर्ष पूर्व राजा चन्द्रगुप्त के दरबार में राजदूत की भांति नियुक्त था लिखता है कि:—“आर्यावर्त में दासता (गुलामी) का नाम तक न था, मनुष्य बड़े वीर, धर्मात्मा, सत्यवादी, शुद्धाचारी

और परिश्रमी थे। कृषि और कला कौशल में सम्यक् ढ्युत्पन्न थे। यहां की स्त्रियां अत्यन्त सती, साध्वी और पवित्राचरणी होती थीं। राजकीय प्रबन्ध मनुस्मृतिके अनुसार होता था। वैश्य अर्थात् कृषक युद्ध और अन्य राजकीय सेवाओंसे त्रानन्त्र थे (देखो तवारीख हिन्द)।

वास्तव में खन, कपट, चोरी आदि दुर्व्यपन मुसलमानों ने ही आकर इस देश में फैलाये हैं और पहाड़ी देशों में जहां कि यह लोग नहीं पहुंचे अब तक ऐसे मनुष्य पाये जाते हैं जो उपर्युक्त दुर्गुणों से सर्वथा रहित हैं।

स्त्रियों का मान्य-आर्य जाति की स्त्रियों के मध्य मुहम्मदियों (मुसलमानों) के समयसे पूर्व किसी प्रकार का परदा न था। क्योंकि मुहम्मदियों के भय से स्त्रियां चल फिर नहीं सकती थीं इमीनिये हिन्दुओं ने इसे स्वीकार किया था। स्त्रियां सुशिक्षिता होती थीं और राज्य प्रबन्ध में पूर्ण अभ्यास रखती थीं। संयाग-भूमि में भी युद्धार्थे जाती थीं स्त्रियों की दशा तो मुहम्मदियों के समय से ही बिगड़ना आरम्भ हुई जिन्होंने स्त्रियों को लोंडी, गुलाम और घाम, पात की तरह मसक लिया निदान उनकी कुरान सजीदके सूरत इनशामें लिखा है कि “औरतें तुम्हारी खेती हैं” (नूरअफ़शां २६ जनवरी मन् १८६९ ई०)

यह तो संक्षेपसे विदेशी और विधर्मी पुरुषों की सम्मतियों हमने उद्धृत की हैं जिन्होंने न मानूस क्या २ इस देश के गुलाम-सूचक चिह्नोंकी देगकर उपर्युक्त स्वसम्मतियों प्रकटकी होंगी अब हम प्राचीन पुस्तकों से जो इस समय पाई जाती हैं भारतीय सन्तानों के बुद्धि वैभव, हस्तकला और विज्ञान में पूर्ण दक्ष होने के कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं:—

१ शत्रुघ्नय (शतरंज) का खेल-राक्षस-राज रावण को युद्ध-क्रीड़ा का बड़ा भारी व्यसन था इस लिये उसकी परम चतुर, नानिज्ञ और विदुषी स्त्री मन्दोदरी ने जो तामिल के राजा की पुत्री थी यह खेल इस लिये निकाला था जिस से उसका चित्त बहला रहे और व्यर्थ नर-संहार न हो। शतरंज शब्द किसी भाषा का नहीं है और यह संस्कृत के शत्रुघ्नय शब्द से बिगड़ कर बना है जिसके अर्थ शत्रु (दुश्मनों) पर जय (फ़तह) पाने के हैं।

२-रामायण के समय में कलाकौशल इतनी उन्नति को पहुँच गई थी कि रामचन्द्र के बनावटी शिर और धनुष के देख कर सरल-हृदया सीता ही विक्षिप्त नहीं होगई थीं वरन् भारीच के बनाये हुए सृग और मेघनाद को कृत्रिम सीता शिर काटते हुए देख कर रामचन्द्र जैसे बुद्धिमान् और नीतिज्ञ पुरुष भी मोहित और शोकित होगये थे ।

३-महाभारत के समय में भी गिनप विद्या इसी प्रकार उन्नति की पराकाष्ठा को पहुँची हुई थी; महाराज युधिष्ठिर के समय में एक ऐसा सकान बनाया गया था जिसे देख राजपुत्र दुर्योधन की भी अम उत्पन्न हुआ था और उभे सूखे स्थान में पानी और जहाँ जल था वहाँ स्थल दृष्टि आया था ।

४-विज्ञान में भी ऐसी उन्नति हो चुकी थी कि विराटराज की गौर्वे हरते समय अकेले अर्जुन ने ही कीरवों की मैना को मूर्च्छित कर दिया था और महाभारत युद्ध में श्रीकृष्ण ने नृप की अन्त-गति में ऐसे भौतिक पदार्थ फैला कर आच्छादित कर दिया था जिस में दिन की रात्रि बन गई थी ।

कहाँ तक लियें प्राचीन समय की अस्त्र विद्या के सामने आज कल की तोप, बन्दूक अक्रमगय हैं और रेल तथा मोटरकार पुष्पक विमानों के समस्त लज्जित हो रही हैं । आजकल की बाइमिकल आदि कलायें प्राचीन समय के उन यन्त्रों \* की बराबरी नहीं कर सकती जिनके द्वारा हनुमान् प्रभृति वानर अन्तरिक्ष में गमन करके सागर पार होजाते थे । जिन लोगों ने महाभारत और मनुस्मृत्यादि ग्रन्थों में दण्ड, शक्र, बराह, सूत्री, पद्म, सर्प, वज्र और चक्र आदि व्यूहों की रचना देखी है वे आज कल की क्वाइद् की लड़कों का खेल समझते हैं । निदान उपलब्ध पुस्तकों में भी अनेक प्राचीन सम्भ्यता के चिह्न शेष मिलते हैं जो मनुष्य इन प्रमाणों के होते हुए भी आयों की असम्भ्य सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं उन्हें स्वार्थी और पक्षपाती ही समझना उचित है ।

\* राजा भोज के समय में भी एक ऐसा कृत्रिम योद्धा विद्यमान था जो भूमि और अन्तरिक्ष दोनों स्थानों में गमन करता था एक पक्ष में २१॥ काम जाता था (देखो भोज पत्रिका) ।

परमपिता परमात्मा ने मनुष्यों को उनके गुण, कर्म, स्वभाव-  
 वाच्यीन वैदिक वर्ण व्यवस्था अनुसार ४ चार वर्णों में विभक्त किया है जैसा कि  
 वेद के निम्न मन्त्र से प्रकट होगा:-

**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य कृतः**

**ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां च शूद्रो भजायत ॥ यजु० ३१/११**

इस मन्त्र में परमात्मा ने शरीर के रूपक में वर्णव्यवस्था का  
 उपदेश किया है अर्थात् इस वर्णव्यवस्था रूपी शरीरमें ब्राह्मण शिर,  
 क्षत्रिय बाहू, वैश्य ऊरू (पेट) और शूद्र पैर के तुल्य हैं। जिस प्रकार  
 एक भी शरीरावयव के बिना देह निरुत्पन्ना है उसी प्रकार वर्णव्यवस्था  
 रूपी शरीर के एक भी अवयव रूपी वर्ण की हीनावस्था होने से  
 शेष तीनों वर्णों की स्थिति में भी आघात पहुँचता है।

अब हम आर्यवर्णों के प्रमाण देकर चारों वर्णों के गुण कर्म  
 स्वभाव वर्णन करते हैं।

**शमो दमस्तपः शौच सान्तिगर्भेयव च।**

**ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ भ० गी० १८/४२**

अर्थ:- (शमः) मन को बुरे कामों से रोकना (दमः) इन्द्रियों को  
 धर्म में बलाना (तपः) जितेन्द्रिय रहना (शौच) जन में शरीर और  
 धर्मानुष्ठान से आत्मा को शुद्धि करना (ज्ञान्ति) निन्दा, स्तुति; हर्ष,  
 शोक का त्याग (आर्जव) कीमलता को धारण तथा कुटिलतादि दोषों  
 को छोड़ देना (ज्ञान) वेदादि शास्त्रों की सांगोयोग पढ़ना (विज्ञान)  
 पृथिवी से लेकर ईश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करके अनेक  
 कला, यन्त्र और अस्त्र आदि बनाना और ईश्वर का साक्षात् करना  
 (आस्तिक्य) वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व जन्म आदि बातों को सत्य मानना  
 यह कर्म और गुण ब्राह्मणवर्णस्य मनुष्यों में होने उचित हैं।

इसी प्रकार धर्मशास्त्र में ब्राह्मणादि वर्णों के निम्न प्रकार कर्म  
 वर्णन किये गये हैं अर्थात् (१) पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना,  
 दान देना और दान लेना यह है कर्म ब्राह्मणों के बतलाये हैं। परन्तु  
 मनुस्मृति में ही लिखा है कि “प्रतिग्रहः प्रत्यवरः” अर्थात् दान

लेना नीच कर्म है इसलिये प्राचीन ब्राह्मणों की अत्यल्प संख्या ऐसा करती थी ।

२-प्रजा का रक्षण करना, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना और विषयों का परित्याग करना यह पांच कर्म क्षत्रियों के बतलाये हैं ।

३-पशुरक्षा, दान, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार करना, व्याज लेना, और खेती करना ये सात कर्म वैश्यों के वर्णन किये हैं ।

४-और चारों वर्णों की सेवा करके अपना निर्वाह करना यह कर्म शूद्रों का बतलाया ।

प्राचीन समय की वर्णव्यवस्था आज कल की भांति अपूर्ण दशा की प्राप्त नहीं थी और यह वर्णव्यवस्था जन्म से नहीं किन्तु अपने २ कर्मों से मानी जाती थी धर्मशास्त्र में अपने कर्मों से पतित होने पर ब्राह्मणादि वर्णों को शूद्र बनाने तथा श्रष्ट करने पर शूद्रों को उच्च वर्ण में सम्मिलित करने का आदेश वर्णित है यथा:—

शूद्रो ब्राह्मण्युत्तमेति ब्राह्मण्यश्चेति शूद्रताम् ।

अनियोजातमेवन्तु विद्याद्विषयात्तथैव च ॥ मनु० १० । ६५ ॥

अर्थात् शूद्रकुल में उत्पन्न होकर शेष तीनों वर्णों में जिस २ वर्ण के तुल्य गुण कर्म स्वभाव हों वह उसी वर्ण का होजाय इसी प्रकार ब्राह्मणादि वर्ण यदि शूद्र के तुल्य आचार करें तो वे शूद्र बनादिधे जायं ।

यही भय था कि चारों वर्ण अपने २ कर्तव्य पालन करने में कदापि शिथिल-प्रयत्न नहीं होने थे । उस समय में ब्राह्मणों के ब्राह्मण क्षत्रियों के क्षत्रिय और वैश्यों के वैश्य ही सन्तान विशेष कर उत्पन्न होती थीं । क्योंकि गर्भाधान से लेकर वेदारम्भ काल के समय तक के एक ही प्रकार के संस्कारों का बालकों के चित्त पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ही उत्पन्न होजाता है । परन्तु प्राचीन काल में जहां ब्राह्मणादि वर्णों को कर्तव्य श्रष्ट होते ही तत्काल पतित कर दिया जाता था वहां नीच से नीच कुलोत्पन्न ब्राह्मणादि वर्णोचित कर्तव्यों का पालन करने योग्य पुरुषों की तत्त्वार्थमय मानने में कभी पक्षपात से काम नहीं लिया जैसा कि निम्न प्रमाणों से सिद्धित होगा:—

गणिकागर्भसम्भृतो वामिष्ठश्च महामुनिः ।

नपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तत्र कारणम् ॥ भविष्यपुराण

अर्थ—अर्थात् गणिका के गर्भ से वसिष्ठ जी की उत्पत्ति हुई थी परन्तु वह तप से ब्राह्मण होगये जिसका कारण संस्कार ही हैं ।

जातो व्यासस्तु कैवर्त्या श्वपाक्यस्तु पराशरः ।

वह्वान्यपि विप्रत्वं प्राप्तये पूर्वमद्विजः ॥ महाभारत वनपर्व

अर्थ—व्यास जी कैवर्त्या ( मत्लाह की पुत्री ) से और अन्त्यज कन्या से पराशर ऋषि उत्पन्न हुए थे और भी बहुत से पुरुष जो जन्म से ब्राह्मण नहीं थे परन्तु तप से ब्राह्मण होगये ।

महर्षि वानर्सीकि जी व्यास और विश्वामित्र जी क्षत्रिय थे परन्तु तप से ब्राह्मण बने । इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् में जाबाल ऋषि की कथा लिखी है कि जब वे पढ़ने योग्य तो अपनी माता से कहने लगे कि मैं ब्रह्मचर्याश्रम ग्रहण करना चाहता हूँ कृपया मुझे बताइये कि मेरा गोत्र क्या है उनकी माता ने उत्तर दिया कि पुत्र ! मैंने बहुत से पतियों से सम्बन्ध किया है मुझे ज्ञात नहीं कि तू किस से उत्पन्न हुआ है; मेरा नाम जवाला है तेरा जाबाल इसलिये यही आचार्य को बतला देना । निदान आचार्य से इन्होंने यही आकर कह दिया और उनकी यह सत्यवादिता देख कर आचार्य ने तत्काल उन्हें विप्र-कीटि में सम्मिलित कर लिया ।

हम बतला चुके हैं कि वेद भगवान् मनुष्यों के चार विभाग करके परस्पर मिलकर उन्हें काम करने की शिक्षा और आज्ञा प्रदान करते हैं और बतलाते हैं कि हे मनुष्यो ! यदि तुम संसार में मिलकर काम न करो तो किसी पदार्थ को प्राप्त नहीं कर सकते । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीनों वर्ण विद्वान् होने के कारण आर्य कहलाते हैं और चौथा शूद्र वर्ण यद्यपि वेदविरुद्ध कर्म न करने के कारण चारों वर्णों के अन्तर्गत माना गया है परन्तु विद्यादि गुणों से हीन होने के कारण उसका आर्य नाम से सम्बोधन नहीं किया जाता । इस से सिद्ध है कि शूद्र वेदानुसूक्त चल कर दास कर्म करके अपने शरीर का पालन करते हैं परन्तु वेदविरुद्ध, मांस भक्षण आदि दुष्कर्म कदापि नहीं कर सकते । वेदविरुद्ध कर्म करने वाले मनुष्यों को शास्त्रों में मनुष्य कीटि से

अष्टादशवर्ष की सीमा  
आर्य समाज का नियम

गिरा दिया गया है और म्लेच्छ, दस्यु, असुर, राक्षस, पिशाच आदि नामोंसे पुकारा गया है जैसा कि मनु के निम्न श्लोकसे विदित होगा--

मुख बाहुरूपज्ञानां या लोके जातयो बहिः ।

म्लेच्छवाचश्चार्यावाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृतः ॥ १० । ४५ ॥

अर्थात् जो ब्राह्मणादि चारों वर्ण अनाचारसे भ्रष्ट हो गये हैं इस समय चाहे वे म्लेच्छ-भाषा बोलते हैं चाहे आर्य-भाषा; सब दस्यु हैं।

यद्यपि द्यूत, चोरी, मद्यपान, व्यभिचार और मांस भक्षण आदि सबही अनाचार और निषिद्ध कर्म हैं परन्तु सम्प्रति जिन मनुष्योंको हम असुर कीटिमें मानते हैं वे प्रागुक्त ४ दुर्गुणोंको तो बुरा समझते हैं परन्तु अन्तिम मांस भक्षण को वे निन्दनीय कर्मों की कीटि में नहीं गिनते इसलिये इसीके विषय में हमें कुछ कथन करना है।

इस समय का असुर-समूह दो भागों में विभक्त है। एक दल का कथन है कि संसार में अपर्याप्त शक्ति बढ़ाने के लिये मांस का भक्षण करना अत्यावश्यक है क्योंकि आभिय-भोजन किये बिना शरीर पुष्ट नहीं होता और न शूर, वीरतादि गुण ही प्राप्त कर्त हैं दूसरा दल वेद शास्त्रों को बदनाम करके इसका भक्षण विहित सिद्ध करता है और यह उन्हीं आर्यपुरुषों की अयोग्य ( नालाइक ) सन्तान है जो “ मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि सतीक्षन्नाम् ” वेद मन्त्रका सतत पाठ किया करते थे । अब हम प्रथम यह सिद्ध करते हैं कि मांस भक्षण करनेसे शूर, वीरतादि गुण उत्पन्न नहीं होते वरन् इससे स्वास्थ्य को उलटी हानि पहुंचती है।

प्रत्येक मनुष्य को भोजन करने की इसलिये आवश्यकता पड़ती है कि शरीर से जो शिथिल परमाणु निकलते रहते रहते हैं उन के स्थान को नवीन परमाणुओं से भरा जावे । हमारा भोज्य पदार्थ साधारणतया ऐसा होना उचित है कि उस में शरीर को पुष्ट करने वाले, अंश अधिक हों एवं यह जीव ही पचने वाला हो और सड़ने वाला न हो। रसायन-शास्त्र के ज्ञाताओंने जो नकूश मांस और वा-नस्पतिक वस्तुओंकी परीक्षा करके तय्यार किया है उसे हम उद्धृत



करते हैं। इस चित्र से विदित होगा कि मांस की अपेक्षा खानस्पतिक पदार्थों में गर्मी देने वाले अंश अधिक विद्यमान हैं।

| संख्या | नाम वस्तु             | जल<br>मांस<br>वस्तु<br>में<br>अंश | गर्मी<br>देने<br>वाले<br>अंश | खनिज (मादनी)<br>पदार्थों के अंश | जल (पानी) और<br>मेद (चर्बी) के अंश | विशेष                                                                                                                                                                     |
|--------|-----------------------|-----------------------------------|------------------------------|---------------------------------|------------------------------------|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|
| १      | मक्खन और घी           | ०                                 | १००                          | ०                               | ०                                  | जिन मनुष्यों को परीक्षा करने की अभिलाषा हो उन्हें अग्नि प्रज्वलित करके घृत, अन्न तथा मांस की आहुति देकर परीक्षा कर लेनी उचित है कि अग्नि किन पदार्थों से प्रज्वल होती है— |
| २      | दूध                   | १५                                | २५                           | ३                               | ५७                                 |                                                                                                                                                                           |
| ३      | चावल                  | ७                                 | ७८                           | १०                              | १४                                 |                                                                                                                                                                           |
| ४      | आलू                   | २                                 | २३                           | १०                              | ७४                                 |                                                                                                                                                                           |
| ५      | गेहूं                 | १३                                | ७२                           | २                               | १३                                 |                                                                                                                                                                           |
| ६      | ज्वार                 | ९                                 | ७४                           | १०                              | १५                                 |                                                                                                                                                                           |
| ७      | बाजरा                 | १०                                | ७३                           | २                               | १५                                 |                                                                                                                                                                           |
| ८      | कंगनी                 | १२                                | ७०                           | १०                              | १७                                 |                                                                                                                                                                           |
| ९      | गव ( जौ )             | ११                                | ७२                           | २                               | १५                                 |                                                                                                                                                                           |
| १०     | मन्स्य ( मछली )       | १५                                | ७                            | १०                              | ७७                                 |                                                                                                                                                                           |
| ११     | रंधा ( पका ) हुआ मांस | २२                                | १४                           | १०                              | ५३                                 |                                                                                                                                                                           |
| १२     | चना की दाल            | १९                                | ६२                           | ३                               | १६                                 |                                                                                                                                                                           |
| १३     | अरहर की दाल           | २४                                | ५९                           | २                               | १५                                 |                                                                                                                                                                           |
| १४     | मटर की दाल            | २६                                | ५६                           | २                               | १६                                 |                                                                                                                                                                           |
| १५     | मसूर की दाल           | २४                                | ५९                           | २                               | १५                                 |                                                                                                                                                                           |
| १६     | लोबिया                | २३                                | ५९                           | ४                               | १४                                 |                                                                                                                                                                           |
| १७     | उड़द                  | २२                                | ६२                           | ३                               | १३                                 |                                                                                                                                                                           |
| १८     | हरी मटर               | ७                                 | ३६                           | २                               | ५५                                 |                                                                                                                                                                           |
| १९     | लौंग                  | २३                                | ५९                           | ३                               | १४                                 |                                                                                                                                                                           |
| २०     | मांसादामा व अरारोट    | ४                                 | ८२                           | १                               | १३                                 |                                                                                                                                                                           |

प्रत्येक मनुष्य के भीतर जठराग्नि की एक भट्ठी जल रही है जो रस से रक्तादि धातुओं को बनाती है और इसी अग्नि से जला हुआ लगभग आधपाच के कीचला प्रत्येक मनुष्य मलादि के साथ बाहर निकालता है यह आधुनिक विद्वानों ने निश्चित किया है। अतः यह गर्मी हमारे स्वास्थ्य के लिये अत्यावश्यक है और इस बात को सभी जानते हैं कि स्वस्थ (तन्दुरुस्त) मनुष्य ही बलवान् होता है।

दूसरी बात यह होनी चाहिये कि वह शीघ्र पचने वाला ही अनु-भव से ज्ञात हुआ है कि पका चावल १ घण्टे में, उबला दूध दो घण्टे में, आलू ढाई घण्टे में, भेड़ और गोमांस ३ घण्टे में एवं वराह (सूअर) का मांस ३॥ घण्टे में पचता है इस तरह से भी वानस्पतिक आहार ही मनुष्य प्रकृति के अनुकूल ठहरता है ।

तीसरी बात यह होनी चाहिये कि वह शीघ्र सड़ने वाला न हो और उस का रस ( Chyle ) शुद्ध रहे डाक्टर मार्सेट आलीवियर ( Marcet ) और दूसरे फिजियोलोजिस्ट कहते हैं कि मांस से बना रस तीन, चार दिन में सड़ जाता है परन्तु वनस्पति से बना रस अधिक समय तक नहीं बिगड़ता है ।

मनुष्य के मुख, दन्त और आमाशय ( मँदे ) आदि की आकृति देखने से भी वह चन्दर आदि पशुओं की तरह शाकाहारी ही विदित होता है । उपाध्नादि हिंसक जन्तुओं की तरह मांसाहारी प्रतीत नहीं होता । एक विद्वान् का कथन है कि शाकाहारी और मांसाहारी प्राणियों की यह परीक्षा सब से उत्तम है कि जब मांसाहारी जन्तु पानी पीते हैं तो उन की जिह्वा पानी में घुपड़ की भांति लगा करती है और निरामिषहारी मनुष्य तथा पशुवादि घुंम कर जलपान करते हैं ।

अब हम कुछ प्रमाण उद्धृत करते हैं जिन से विदित होगा कि मांसाहारियों की अपेक्षा निरामिषहारी ही अधिक बलिष्ठ होते हैं ।

( १ ) स्मिथ साहब लिखते हैं कि पोलैण्ड और हंगरी देशों के सिपाही पृथ्वी भर में सब से चतुर और बलिष्ठ हैं वे रोटी और आलू पर निर्वाह करते हैं ( देखो फ्रूट्स ऐण्ड फेयरनेशिया पृष्ठ ५३ )

( २ ) डा० इलफ़िनस्टन साहब लिखते हैं कि ग्रीनलैण्ड के निवासी जो संसार में सब से अधिक आमिषभक्षी हैं वे सब से टिंगते और हर्षोक्त हैं क्योंकि मांस में हड्डी बनाने वाले अंग नहीं होते इस लिये मांसाहारी टिंगने रहते हैं ।

( ३ ) डा० गदाधरसिंह जी 'चीन में तेरह मास' नामक पुस्तक में लिखते हैं कि वाक्सर युद्ध में भारतीय और जापानी सेना जो मांसाहारी न थी धूप में भी धावा करनी थी परन्तु रूस आदि देशों की फौजें जो विशेषता से मांस भक्षण करती थीं धूप के समय चलने में सर्वथा असमर्थ हो जाती थीं ।

( ४ ) भारतवर्ष में चार जातियों अर्थात् काश्मीरी, बङ्गाली, कायस्थ और मद्रासी आनिष भली हैं परन्तु ये चारों ही निर्बल और कायर समझे जाते हैं ।

( ५ ) पशुओं में सांस भली सिंह सब से बलिष्ठ समझा जाता है परन्तु एक खड्ग ( गेंडे ) से (जो वनस्पति खाता है) दश सिंह भी लड़ने का साहस नहीं रखते ।

( ६ ) गोरिल्ला ( Gorilla ) और ( Chimpanze ) नामक वन-मानुष जो केवल शाकपात ही खाते हैं इतने बलिष्ठ होते हैं कि बन्दूक तथा लोहे के बड़े २ लट्टों को जब वे क्रोध में आते हैं दोनों हाथों से पकड़ कर तोड़ डालते हैं । इसी प्रकार हाथी, घोड़े, बैल आदि पशु जितना शारीरिक परिश्रम कर सकते हैं मांसाहारी उतना नहीं कर सकते क्योंकि उन्हें वास्तव में बलदायक भोजन प्राप्त नहीं होता ।

अब हम कुछ वेद शास्त्रों के प्रमाण उद्धृत करते हैं जिन से प्रकट होगा कि आर्य्य लोग इस से कितनी घृणा करते थे ।

अध्वं मा हिंसी मां माहि॥मी अविं माहि॥पीः । माहि॥मीर्दिपादं पशुं सपुं पशुं मेधमग्ने जुपस्व इमं॥माइस्व॥शतधारं माहि॥मीः ॥ यजु० ४२  
अर्थात्—घोड़ा, भैंस, गौ, बकरी, भेड़ और दो पाद वाले जीव इन सब को मत मारो ।

योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यान्ममुत्प्रेच्छया ।

स जीवन्श्च मृतश्चैव न कचिन्मुखमेधते ॥ मनु० ५ । ४५

अर्थ—जो आत्मसुख के लिये जीवों की हिंसा करता है वह इन लोक और परलोक में सुख को प्राप्त नहीं होता ।

फलमुष्ठाशनैर्मैथैर्मून्यन्नानां च भोजनैः ।

न तत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्जनात् ॥ मनु० ५ । ५४

अर्थ—फल, मूल, सना आदि मुनियों के खाने योग्य वस्तुओं से भी यह फल नहीं मिलता है जो नियमपूर्वक मांस न खानेवाले को मिलता है ।

मांस भक्षयित्वा मुत्र तस्य मांसमिहाद्भ्यहम् ।

एतन्मांसस्य मासन्त्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ मनु० ५ । ५५

अर्थ—इस लोक में जिस के मांस को मैं खाता हूँ परलोक में वह मुझे खायगा पण्डितों ने मांस शब्द का यही अर्थ किया है ।

यक्षरक्षः पिशाचार्धं मयं मांसं सुरासवम् ।

तद्वाह्येण नात्तव्यं देवानामश्रुता हविः ॥ मनु० ११ । ८६

अर्थ-मद्य, मांस और सुरा यह यक्ष, राक्षस और पिशाचों के अन्न हैं यह देवताओं की हवि खानेवाले ब्राह्मणों की कदापि न खाने चाहिये ।

कामकाराद्भिर्हिमन्ति बहिर्वैद्यं पशून्मराः ।

सर्वं कर्मस्वाहमा हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत् \* ॥ महा० शान्ति०

अर्थ-मांस के लालच से ही मनुष्य यदि के समीप पशु को मारते हैं मनु \* ने तो सर्व कामों में अहिंसा कही है ।

दुष्करं हि रम इने मांसस्य परिवर्जनम् ।

चर्तु वृत्तिमिदं श्रेष्ठं सर्वपापयभयपदम् ॥ महा० अमु० ११४ । १८

अर्थ-जिह्वा के स्वाद के सारे मांस छोड़ना यद्यपि कठिन है परन्तु सब प्राणियों को अभय देने वाले इस व्रत का अवश्य पालन करना चाहिये ।

नाहि मांसं वृणाणांष्टादुपलाद्वापि जायते ।

हन्वा जन्तुं ततो मांसं तस्मादोपस्तु भक्षणे ॥ महा० अमु०

अर्थ-वृण, काष्ठ, उपल आदि से मांस नहीं मिलता वरन् जीव-हिंसा से प्राप्त होता है इसलिये इसके भक्षण में बड़ा पातक है ।

कहां तक प्रमाण लिखें केवल महाभारत के अनुशासन पर्व में ही ११४ से लेकर ११६ अध्याय तक में ४५ एक सौ पैंतालीस श्लोक मांस के खण्डन में विद्यमान हैं और मनु ने तो ( १ ) नारने की आज्ञा देने वाला ( २ ) अंग प्रत्यंग काटने वाला, ( ३ ) लेने वाला ( ४ ) बेचने वाला ( ५ ) पकाने वाला ( ६ ) परोसने वाला और ( ७ ) खाने वाला, इन सब को मारने वाले के समान ही पातकी बनलाया है अतएव स्पष्ट है कि यदि कहीं २ आयों के किसी ग्रन्थ में इसका विधान पाया जाता है तो वह मिलावट है अन्यथा आय लोगो ने सदा से ही इस से घृणा की है और कभी विहित नहीं माना ।

\* मनुस्मृति में जहां मांसभक्षण की निन्दा की है वहां ऐसे श्लोक भी पाये जाते हैं जिन में बड़े से पशु हिंसा विहित माना है "मनुष्यं च यत्ते च \* \* \* नान्यैर्व्यवर्त्तन्मनु" मनु० ५ । ४१ ॥ अर्थात् मनु ने मनुष्य, यक्ष, पित्र तथा देवताओं से पशु मारने की आज्ञा दी है अन्यत्र नहीं । प्रथम तो यह मनु का वचन नहीं है क्योंकि यदि उन का वचन होता तो वे अपना नाम न लिखते । द्वितीय महाभारत के उपर्युक्त श्लोक में प्रकट है कि उस समय में मनु में ऐसे श्लोक नहीं मिलाये गये थे अन्यथा यह न लिखा जाता कि मनु ने सर्व कामों में अहिंसा कही है । तिसरम्बह महाभारत के पञ्चम धर्म नामसार्गिया में उक्त श्लोक मनु में मिलाये है ।

हम लिख चुके हैं कि इस समय पुराणादि ग्रन्थों में जो प्राचीन राज-पुरुषोंके ऐतिहासिक वृत्तान्त और वंशावलि-कार्यें मिलती हैं वे यथातथ्य मानने योग्य नहीं हैं कारण यह है कि जब बौद्ध और जैन प्रभृति नास्तिकों ने अपनी प्राचीनता सिद्ध करने के लिये ऐतिहासिक ग्रन्थों को नष्ट कर दिया तो ब्राह्मणों ने अनेक ऐतिहासिक घटनाओं को जो उन्हें याद थीं या किसी से सुनी सुनाईं लिख कर पुराणों की सृष्टि आरम्भ कर दी। अतएव उन के ऐतिहासिक विषयों में परस्पर बड़ा मत भेद है और वंशावलियों भी एक की दूसरे के साथ नहीं मिलतीं। यह मत्त है कि पुराणों में अनेक अमंगल और युक्ति शून्य विषय भरे पड़े हैं जैसा कि हम पुराणों की समीक्षा में आगे चल कर वर्णन करेंगे परन्तु आर्यों को यदि अपने प्राचीन इतिहासों की सामग्री कहींसे प्राप्त हो सकती है तो वे १८ से अधिक पुराण ही हैं और उनके ऐतिहासिक विषय उपेक्षा से देखने योग्य कदापि नहीं हैं। अब हम पुराणों के मत भेद विषय में स्वतः कुछ न लिख के टाड माहबके लेख का कुछ अंश उद्धृत करते हैं:-

“ अधिकतर पुराणों में ऐतिहासिक और भौगोलिक वृत्तान्तका कुछ अंश मिलता है परन्तु भागवत, स्कन्द, अग्नि और भविष्य पुराण ही इन में मुख्य हैं। खेद की अपेक्षा यह सौभाग्य का विषय है कि उनमें दी हुई वंशावलियां परस्पर एक दूसरी के साथ पूर्ण रूप से नहीं मिलतीं उन में प्रत्येक वंश के राजाओं की संख्या भिन्न २ है और नाम भी कहीं २ उलट पुलट गये हैं परन्तु प्रत्येक में मुख्य २ बातें स्पष्ट रूप से एक सी मिलती हैं जिन में यह सिद्ध होता है कि वे भिन्न ग्रन्थकारों के रचे हुए हैं और उन सभी ने किसी एक ही मूल-स्रोतसे अपनी सामग्री प्राप्त की है ” (देखो टाडमराजस्थान)

अब हम पुराणों के अन्य विषयों को न छेड़ कर केवल पुराणोंमें लिखी वंशावलियों का ही वर्णन करते हैं।

श्रीमद्भागवत में इक्ष्वाकु से लेकर रामचन्द्र तक नृप्य वंश के ५५ राजाओं के नाम लिखे हैं इसी प्रकार चन्द्र वंश की वंशावली में भी जो बुध से चलकर श्रीकृष्ण तक समाप्त होती है ४८ नाम पाये जाते

वर्तमान समय की उप-  
न्य ऐतिहासिक सामग्री  
में प्राचीन इतिहास का  
अनुसन्धान करना।

हैं। इससे रामचन्द्र का श्रीकृष्ण के समकालीन होना सिद्ध होता है परन्तु जब महाभारत ग्रन्थ रामचन्द्र का त्रेता और द्वापर की सन्धि में होना बतलाता तब हमारा सन्देह और भी बढ़ जाता है और पुराणों में लिखी वंशावलियाँ अपूर्ण अवश्य माननी पड़ती हैं हमारे इस कथन की पुष्टि हम से भली भाँति हो जाती है कि वाल्मीकि-रामायणमें उद्धवाकुम्भ केवल ३४ पीढ़ियों के पश्चात् ही रामचन्द्र का होना पाया जाता है हालांकि अन्य पुराणों में ५५ से लेकर ५९ तक राजाओं के नाम मिलते हैं। इसी प्रकार रामचन्द्र, विश्वामित्र, और राजा जनक भी इन वंशावलिओंमें समकालीन नहीं ठहरते प्रत्युत वे सब एक ही समय में विद्यमान थे। इसके अतिरिक्त पुराणों में अनेक स्थानों में अनेक राजा समकालीन बताये गये हैं जो वंशावलियों से एक दूसरेसे बहुत आगे पीछे आते हैं अतएव हम यहां उन सब का उल्लेख न करके सूर्य और चन्द्रवंश का प्राचीन वंशवृक्ष श्रीमद्भागवत तथा वाल्मीकी-रामायण से लेकर उद्धृत करते हैं।



## ॥ सूर्यवंश की वंशावली ॥

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार

अव्यक्त ब्रह्म  
ब्रह्मा  
मरीचि  
कश्यप  
विवस्वान् वा सूर्य  
वैवस्वत मनु  
१ इक्ष्वाकु

श्रीमद्भागवत के अनुसार

नारायण वा विष्णु  
ब्रह्मा  
मरीचि  
कश्यप  
विवस्वान् वा सूर्य  
आदुदेव  
(१) इक्ष्वाकु

- २ कुन्ति
- ३ विकुन्ति
- ४ वास
- ५ अनरण्य
- ६ पुषु
- ७ त्रिशकु
- ८ धुन्धुमार
- ९ युवनाश्व
- १० मान्धाता
- ११ सुमन्धि
- १२ प्रवमन्धि
- १३ भरत
- १४ अमित
- १५ सगर
- १६ असमञ्जस
- १७ अशुमान
- १८ दिनीप
- १९ भगीरथ
- २० ककुत्स्थ
- २१ रघु
- २२ प्रवृद्ध वा पुरुषाद्
- २३ शङ्ख
- २४ सुदर्शन
- २५ अश्विन
- २६ शीघ्र
- २७ मरु
- २८ प्रशुशुक
- २९ अम्बरीष
- ३० नहुष
- ३१ ययाति
- ३२ नाभाग
- ३३ अज
- ३४ दशरथ
- ३५ राम

- २ निमि
- ३ मिथि
- ४ जनक
- ५ उदावसु
- ६ नन्दिबर्द्धन
- ७ अतिशरसुकेतु
- ८ देवरात वृहद्रथ
- ९ महावीर
- १० सुप्रति
- ११ धृष्टकेतु
- १२ हरश्च
- १३ मरु
- १४ प्रतीधक
- १५ कौत्सिरथ
- १६ देवमीड
- १७ द्विविध
- १८ महीधक
- १९ कौत्सिरात
- २० सहरोमा
- २१ स्वरोमा
- २२ हरीरोमा
- २३ अश्विन वा मीना के पिता (जनक)

मद्र  
मद्र

- २ विकुन्ति
- ककुत्स्थ
- अनेना
- ५ पुषु
- विश्वगन्ध
- चन्द्रमा
- युवनाश्व
- आवस्त
- १० वृहद्रथ
- धुन्धुमार
- हृद्गोश्व
- हयगोश्व
- निकुम्भ
- १५ वृहन्नाश्व
- कृपाश्व
- मेनजित
- युवनाश्व
- मान्धाता

- २० पुनकुम्भ
- एमदरथ
- अनरण्य
- प्रासुण
- मिश्रन्धन
- त्रिशकु
- हरिश्चन्द्र
- रोहित
- हरित
- चम्प
- ३० विजय
- भरुक
- वृक
- वाहुक ( रामायण में अस्ति [लिखा है] )

- ३५ सगर
- असमञ्जस
- अशुमान
- दिनीप
- भगीरथ
- ४० श्रुत
- अश्वनाभ
- अयुतायु
- अनुपण
- सखकान
- ४५ सुदाम, कन्सापपाद्
- अशमक
- सुलक
- सन्धव्रत वा दशरथ
- तेजविह
- ५० विश्वमह
- खट्वाङ्ग
- दीर्घवाहु
- रघु
- अज
- ५५ दशरथ
- ५६ रामचन्द्र

- २ निमि
- मिथिल
- उदावसु
- ५ नन्दिबर्द्धन
- सुकेतु
- देवरात
- वृहद्रथ
- महावीर्य
- १० सुप्रति
- धृष्टकेतु
- हयगोश्व
- मरु
- प्रतीप
- १५ कृतरथ
- देवमीड
- विश्रुत
- महाधृति
- कृतिगत
- २० महारोमा
- स्वरोमा
- हस्वरोमा
- कौरध्वज
- कुशध्वज
- २५ धर्मध्वज
- कुशध्वज
- केशध्वज
- भानुमान
- शतद्युम्न
- ३० गुह्य
- सन्धुज
- उज्ज्वलकेतु
- पुरुजित
- अरिष्टनेमि
- ३५ अनायु
- सुपाश्व
- चित्ररथ
- तेमाधि
- समरथ
- ४० सत्यरथ
- उपगुरु
- उपगुप्त
- वस्वन्त
- युग्वान
- ४५ सुभाषण
- श्रुत
- जय
- विजय
- वतु
- ५० जनक
- वीनहृद्य
- धृति
- वृहन्नाश्व
- ५५ कृति







रामायण और भागवत की उपर्युक्त वंशावलियों से स्पष्ट विदित होता है कि यह पूर्ण और यथाक्रम कदापि नहीं हैं वरन् स्मरणसे वा जुन जुनाकर इनका पीछे संग्रह किया जाना स्पष्ट विदित होता है और यह हमारा अनुमान ही नहीं है प्रत्युत भागवतस्वयं इन वंशावलियोंको पूर्ण नहीं बतलाती जैसा कि निम्न श्लोकसे प्रकट होगा:-

श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतपः ।

न श्रूयते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ स्कन्ध७ अ० १११ श्लो० ७७ ॥

अर्थात् हे रामन् ! इस मानव-वंश का सविस्तर वर्णन यदि आप के सम्मुख किया जावे तो सौवर्ष में भी समाप्त न होगा ।

इन्हीं अपूर्ण वंशावलियों को लेकर यूरोप के विद्वान् राम और कृष्ण का एक समय स्थिर करने की चेष्टा करते हैं और प्रत्येक राजा का शासन काल २० वर्ष का अनुमान करके बुध और इक्ष्वाकु का समय मसीह से २२०० वर्ष पूर्व निश्चित किया है ।

जिस प्रकार कूप-मण्डूक ( कुएँ के मेंढक ) के ध्यान में महासागर का विस्तार कदापि नहीं आ सकता उसी प्रकार बाइबिलकी शिक्षा-नुसार ५००० वर्ष से सृष्टि की मानने वाली श्वेत जातियां आर्यों के इतने बड़े सृष्टि काल को असत्य समझती हैं अथवा सत्य मान कर भी बाइबिलकी रक्षार्थ पक्षपातसे काम ले रहीं हैं परन्तु वैदिक मैग-ज़ीन के आगे अब इस शीशेके महल की रक्षा होना कठिन है ।

टाड साहिब ने सूर्य और चन्द्र वंश के वंश-वृक्ष में बड़ा गड़बड़ कर दिया है उन्होंने सूर्यवंश में रामचन्द्र तक ५८ राजा लिखे हैं जिनमें सगरकी स्त्री केशिनी वा सुकेशी तथा नल आदि कई राजाओं के नाम लिख दिये हैं इसी प्रकार चन्द्रवंशमें एक स्थान पर घृताक्षी नाम लिखा है जो कि एक अप्सरा थी और कहीं भरत को शकुन्तला का पति लिख मारा है । जन्हु जो हमारे चन्द्रवंश के वृक्ष में पुरुरवा से सातवां राजा लिखा है उसे रामचन्द्र और विश्वामित्र का समय मिलाते के लिये बिना किसी प्रमाण के अजमीदूका पुत्र लिख दिया है । निदान हमें इन वंशावलियोंको अपूर्ण मानकर रामचन्द्र, विश्वामित्र आदि राजाओं के समकालीन होने में जिन का वर्णन ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये ।

प्राचीन समय में देव और असुरों के संग्राम की अनेक घटनायें जो हमें पुराणों में लिखी मिलती हैं ( आर्य ग्रन्थों की इन्द्र, वृत्र आदि आलङ्कारिक कथाओं की छोड़कर ) सब बातें हमें बड़े ध्यान से मनन करने योग्य हैं । प्राचीन समय में अनेक युद्धों में राजाओं ने आर्यों को पराजित किया उसका कारण सदैव यही देखने में आया है कि आर्य लोगों ने जब २ अनेक कलायन्त्रों का आविष्कार किया तो दूसरों को उन के निर्माण आदि की विधि अताने में कभी सङ्कोच नहीं किया और वे ऐहिक और पारमार्थिक दोनों प्रकार के सुखों की सामग्री मनुष्यमात्र के लिये एकत्रित करते रहे परन्तु राजा लोग जब कभी विज्ञान में आर्यों से बढ़ गये अधर्म युद्ध कर के उन्हें अनेक प्रकार से पीड़ित करना आरम्भ कर दिया । इतिहास हमें बतलाता है कि राजाओं ने बाहुबल से कभी आर्यों को पराजित नहीं किया वरन् अनेक कलायन्त्र निर्माण करके ही उन को परास्त करते रहे हैं । राजाओं का आर्यों से कभी २ कलायन्त्रों के निर्माण करने में आगे बढ़ जाने का एक यह भी कारण था कि उन्हें खाने, पीने और संसार में अपनी शक्ति बढ़ाने के अतिरिक्त अन्य कोई काम नहीं था इस के प्रतिकूल आर्यों का काम से कम  $\frac{3}{4}$  समय विद्या प्राप्त करने और पारमार्थिक सुखों के सञ्चय में समान होता था परन्तु जब ही आर्यों ने अपने शिर पर उनके शान-नरूपी भार को अनुभव किया वैदिक विज्ञान से उनके समस्त कलायन्त्रों का मान सदेन कर दिया ।

ताटका, सुबाहु, मारीच, इन्द्रजित प्रभृति राजा जो धर्मधर्म का कुछ विचार न करके आकाश में युद्ध करते थे और दूसरों के आघात से बचने के लिये वहां भी अनेक भौतिक पदार्थों से सूर्य को आच्छादित करके अन्धकार में अन्तर्धान होजाते थे वैदिक-विज्ञान की प्रज्वलित अमल में पतंग की तरह भस्म होगये । इसी प्रकार त्रिपुरा आदि राजा जो सोलह २ चक्रों के ऐसे शीघ्रगामी यान रखते थे कि जिन पर आतङ्क हो ३ स्थानों से शत्रुओं पर प्रहार होता था परन्तु आर्यों के विज्ञान ने उन्हें भी भूतल-शायी बना कर 'सत्यमेव जयते मानृतम्' का पाठ इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णक्षरों से लिख दिया है जो अमिट है और सदा चमकता रहेगा ।

आर्यों के विजातीय पुरुषों के साथ ही संग्राम नहीं हुए वरन् उन के पारस्परिक युद्ध के अनेक वर्णन भी पुराणों में पाये जाते हैं भविष्य पुराण में एक उस युद्ध का वर्णन पाया जाता है जो सगर और ताल-जङ्घ के मध्य हुआ था और जिस में हैहय-वंशियों की बड़ी भारी हानि उठानी पड़ी थी। इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण आदि पुस्तकों में ब्राह्मण और क्षत्रियों के मध्य भी युद्ध की कई कथायें मिलती हैं निदान टाड साहय ब्राह्मण और क्षत्रियों के युद्ध विषय में लिखते हैं कि:-

“बड़े २ राजा महाराजा अपनी कन्यायों का विवाह राजर्षियों तथा ब्रह्मर्षियों से करते थे। पराक्रमी पाण्डालिक की कन्या अहल्या; गौतम ऋषिकी भार्या हुई; यदुकुलकी बड़ी शाखा अर्थात् हैहय-वंशोत्पन्नमाहि-ष्मती के राजा महस्त्रार्जुन की कन्या से जमदग्नि का विवाह हुआ था”

फिर महस्त्रार्जुन शब्द पर टिप्पणी देते हुए लिखते हैं कि:-

“\* \* \* \* जमदग्नि के पुत्र परशुराम के अवतार लेने तथा उन के वीरकार्यों की कथायें आलङ्कारिक आख्यान स्पष्ट प्रतीत होते हैं जिस से राजाओं का पृथ्वी पर अत्याचार करने का आशय विदित होता है जिस को उन्होंने पवित्र गोमूत्र \* से वर्णन किया है और ब्राह्मण लोग क्षत्रियों से राज्य छीनने की समर्थ हुए इस से प्रकट होता है कि वे लोग संरूपा में कितने बढ़ गये थे \* \* \* \*”

फिर आगे लिखते हैं कि:- “जमदग्नि से मरहटे पेशवा तक भारत-वर्ष में राज्याधिकार के लिये ब्राह्मणों के लड़ने के कई उदाहरण हमको मिले हैं राजर्षि विश्वामित्र और वसिष्ठ के नाहें जिन्हें पूज्य मानकर मिथिला का राजा जनक हाथ जोड़ कर निवेदन करता था आज भी ब्राह्मणों को अधिकार और सम्मान की बड़ी अभिलाषा रहती है”

फिर विश्वामित्र शब्द पर टिप्पणी बढ़ाते हुए लिखते हैं कि:-

“वसिष्ठ ऋषि के पास शबला नामक एक ऐसी फलदाता गऊ (काम-धेनु) थी जिस की सहायता से वह अपनी सर्वकामना पूर्ण कर सके थे उसकी सहायता से उन्होंने राजा विश्वामित्र का सेना सहित आतिथ्य स्तकार किया। इस कथा से प्रत्यक्ष है कि यहां पर गऊ से से अभिप्राय किसी भुनि भाग से है जो ऋषि के अधिकार में था (स्मरण रहे कि

\* संस्कृत कोषों में निस्तनेह पृथिवी का नाम “गौ” लिखा है यथा-“गौः, ग्नात्मेन्द्रावां स-विशतिषु पृथिवी नामसु” निघण्टु ॥ तथा “गौर्गति पृथिव्या नामधेय” निरुक्त २।५ ॥

गौ का अर्थ पृथिवी और गाय दोनों हैं ) जो निरुसन्देह विश्वामित्र के किसी पूर्वज का दिया हुआ दान था । जिस को वह पीछा सेना चाहता था । उसी गौ से देवताओं एवं पित्रेश्वरों के लिये नैवेद्य अग्नि-होत्र तथा यज्ञकार्य चलते थे यही शवला धर्मानुष्ठान की जड़ थी जिस के बदले राजा ( विश्वामित्र ) एक लक्ष गऊ देने लगा ( वास्तव में ) यह एक ऐसा रत्न था जो एक राजा ही के पास रहना चाहिये था प्रतीत होता है कि ऋषि की प्रजा ने ऐसे बदले को पसन्द नहीं किया और शवला गऊ के रँभाने से बहुत से विदेशी सहायक उपस्थित हो गये जिस से वह ऋषि उस राजा का सामना करने योग्य हो गये इन में से पल्लव ( ईरानी ) राजा, भयानक शक्ति, तथा तलवार एवं झुन-हरे कवचधारी यवन ( यूनानी ) और काम्बोजी आदि कमशः इस कामधेनु से उत्पन्न हुए पल्लव राजाओं की सेना को विश्वामित्र ने खरड २ कर दिया और वह लगातार सहायक सेना उत्पन्न होने से अन्त में वसिष्ठ के सैन्य-समूह से पराजित हो गया \* \*

फिर आगे चलकर “ब्राह्मणों को अधिकार” शब्दों पर निम्न प्रकार टिप्पणी चढ़ाते हुए अपने अन्तर्भावों का परिचय देते हैं:-

“भारतवर्ष में ब्राह्मण बहुत हैं जिन में वीरता का गुण होने से वे अच्छे सिपाही बन सकते हैं परन्तु हमारे अनुभवी अफसर रिताले और पलटन में उनके बहुत से आदमी भरती न करने में सावधान रहते हैं क्योंकि उन में अब तक खड़े-खड़ा करने का स्वभाव बना हुआ है । मैंने कई कम्पनियों में देखा है कि ब्राह्मण और वीर जाति के सिपाहियों की संख्या बराबर है यह बड़ी भयानक भूल है ।”

हम उपर्युक्त लेखों के ऊपर किसी प्रकार की टिप्पणी चढ़ाना उचित नहीं समझते परन्तु यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण और क्षत्रियों के मध्य युद्धाग्नि उसी समय प्रज्वलित हुई थी जब कि वर्णव्यवस्था में कुछ न कुछ त्रुटि उत्पन्न हो गई थी । इतिहास तो हमें यही बतलाता है कि इस समर-यज्ञ में आहुति डालने का आरम्भ क्षत्रियों की ओर से किया गया और यह सम्भव भी है क्योंकि ग्रीसम्पन्न पुरुषों में अभिमान आदि अवगुण अवश्य ही प्रवेश कर जाते हैं । निदान यह अग्नि बराबर प्रज्वलित होती चली गई और तब तक ज्ञान्त न हुई

जब तक कि महर्षि जनदग्नि के पुत्र परशुराम ने सहस्रार्जुन के पुत्रों द्वारा बधकिये अपने पिता का बदला लेने के लिये अत्यन्त कोपित हो भारतवर्ष के क्षत्रियों को एक सिरे से दूसरे सिरे तक और एक बार नहीं २१ बार हूँट न कर मेट न कर दिया। यद्यपि क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों से भय, सहान्धक आदि वलों में अधिक थे परन्तु महर्षि वसिष्ठ और विश्वामित्र जी के युद्ध का परिणाम देखने से विदित होता है कि ब्राह्मणों के विजय-फल से ही उन्हें जय-लाम हुआ था। वसिष्ठ और विश्वामित्रके युद्ध में क्षत्रियोंकी इतनी हानि नहीं हुई जितनी कि उन्हें परशुराम के साथ संग्राम करने में उठानी पड़ी निदान भारतके एक सिरेसे लेकर दूसरे सिरे तक २१ बार जय-पताका उड़ाके परशुरामने क्षत्रियों से भारतको शून्य कर दिया जैसा कि महाभारत आदिपर्व अध्याय ६४ के निम्न श्लोकों से विदित होता है:-

त्रिसप्त कृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां पुरा ।

जामदग्न्यस्तपस्तेपे महेन्द्रे पर्वतोत्तमे ॥ १ ॥

तदा निःक्षत्रिये लोके धार्गवेण कृतं सति ।

ब्राह्मणान् क्षत्रिया राजन् ! मुनार्थिन्योऽभि चक्रमुः ॥ २ ॥

ताभिः सह समापेतुर्ब्राह्मणाः शमित वृताः ।

अनावृत्तो नरव्याघ्र ! न कामान्नृत्तौ तथा ॥ ३ ॥

तेऽप्यथ लोभरे मर्भ क्षत्रिया स्ताः सहस्राः ।

तथा मुषाधिरे राजन् ! क्षत्रियान् वीर्यवत्तरान् ॥ ४ ॥

अर्थ:-जब २१ बार युद्ध करके भार्गव ( परशुराम ) ने क्षत्रियों से पृथ्वी को शून्य कर दिया तो वे महेन्द्राचल पर तप करने चले गये ॥ १ ॥ भार्गव द्वारा क्षत्रियों से शून्य लोक देख कर उन की विधवा स्त्रियों ब्राह्मणों के पास आकर सन्तान की इच्छा करने लगीं- ॥ २ ॥ ब्राह्मणों ने प्रत्येक को मासिक धर्म के पञ्चात् और काम के वशी-भूत न होकरः अतु दान दिया ॥ ३ ॥ इससे सहस्रों क्षत्रिया गर्भवती हुईं और शूर वीर बालक उत्पन्न किये ।

धर्मशास्त्र में द्विज स्त्रि-पुरुषों को एक से अधिक विवाह करने की आज्ञा नहीं है। यदि सन्तान की इच्छा हो तो धर्म समान वा धर्म से अलग वर्ग के साथ नियोग करने की विधि मिली है ।

धर्मशास्त्र में मिली है कि यदि निष्कृष्ट स्त्रि, पुरुष कामचंटा से समागम करे तो गुरु और पुत्र-वधू के साथ गमन करने के कौप की प्राप्ति है अर्थात:- "साधुर्भा पतिर्नो स्थिता सन्तुषा गच्छुः सत्यगौ" मनु० ९ । ६३ ॥

निदान इसी प्रकारकी अनेक ऐतिहासिक घटनायें रामायण और महाभारतके अतिरिक्त अनेक पुराणोंमें भरी पड़ी हैं चाहें वर्तमान अपूर्ण वंशावलिसे एक राजा दूसरे राजा अथवा ऋषि, मुनियों का समकालीन न ठहरे तथापि वास्तवमें वे एक ही समय में उत्पन्न हुए हैं।

प्राचीन ग्रन्थों में राजाओं तथा अनेक महान् पुरुषों का नाम मात्र ही लिखा होनेसे और भी एक प्रकार का गड़ बड़ उत्पन्न होता है क्योंकि बहुत से राजपुरुषों के वंशवृक्षों में एक ही प्रकार के नाम पाये जाते हैं यथा भरत, दिलीप सत्यव्रत, दशरथ आदि। अर्थात् “एक भरत राजचन्द्रके भाई सूर्यवंशी थे दूसरे शकुन्तला-पुत्र चन्द्रवंशी” चन्द्रवंश में “एक जह्नु राजा का नाम बुध से ३७वीं पीढ़ी में लिखा है और दूसरे का ३९वीं पीढ़ी में” इसी प्रकार सूर्यवंश के वृक्षकी ४८वीं में “दशरथ वा सत्यव्रत” तत्पश्चात् ५५ वीं पीढ़ी में ‘दशरथ’ नाम लिखा है। इसी प्रकार चन्द्रवंशके वंशवृक्षमें भी दिलीप आदि नाम पाये जाते हैं यदि किसी ग्रन्थ में हमें दो भिन्न २ समयों में उत्पन्न हुए एक ही नाम के राजाओं की दो समयों की (जिन में कि सहस्रों वर्षोंका अन्तर है) ऐतिहासिक घटनायें मिलती है तो उन की इतनी बड़ी आयु का चिन्तन करके हमें परमाश्चर्य होता है। परन्तु यह ऐतिहासिक घटनायें जिन का हम पुराणादि अनेक ग्रन्थों में लगभग एक सा ही उल्लेख पाते हैं “मनुमूला जन-श्रुति” की लोकोक्ति के अनुसार अविश्वस्त कदापि नहीं हैं।

किसी जाति की उच्चता, सम्पत्ता और विद्वत्ता का परिचय उस के आचार, विचार और व्यवहारों से ही मिलता है यदि मूर्ख जातियें अपने समय की धार्य नष्ट करना भी आनन्ददायक समझती हैं तो इसके प्रतिकूल शिक्षित जातियें अपने समय और धन की ऐसे सुकार्यों में लगाती हैं जिससे उन्हें ही ऐहिक और पारलौकिक सुखों की प्राप्ति न हो वरन् संसार की भी लाभ पहुंचे। जब हम किसी जाति विशेष वा सम्प्रदाय के मनुष्यों से यह प्रश्न करते हैं कि अनेक स्तूपहारों

“जिन परशुराम से भीष्म और कर्ण ने अस्त्र-विद्या सीखी थी बहुत से लोगों का विश्वास है कि यह वही थे जिन्होंने २९ बार लज्जितों को पराजित किया था परन्तु यह उनका नाम है। यह ज्यों नाम के दूसरे व्यक्ति थे।



पर पशुहिंसा करने, मुर्दा (शव) गाढ़ने, किसी शारीरिक अंग विशेष को काटने, एक २ मास तक निरन्तर दिन को भूखे रहने और रात्रि को सूख डट कर पैट भरने आदि बातोंमें क्या २ लाभ हैं ? तो उत्तर यही मिलता है कि यह हमारे मत की रीति ( रस्म ) हैं परन्तु आयों के एक २ नित्य नैमित्तिक कर्मों के अन्दर विज्ञान ( Science ) भरी हुई है और एक २ के लाभों की व्याख्या करने में एक २ वृहद् ग्रन्थ लिखा जा सकता है आयों के ५ नित्य और १६ नैमित्तिक कर्म आर्ष-ग्रन्थोंमें वर्णित हैं उनमें से पहले हम नित्य कर्मों का वर्णन करते हैं।

१ ब्रह्मपद्म—इसी की सन्ध्योपासन भी कहते हैं मनु में प्रातः और सायंकाल दो समय इसके लिये निर्धारित किये हैं। प्रातःकाल की सन्ध्या का समय ४ बजे प्रातः से लेकर सूर्य के उदय होने तक और सायंकाल का सूर्यास्त से नक्षत्रों के भली भाँति लक्षित होने लिखा है। सन्ध्योपासन करनेसे प्राणायाम द्वारा जहाँ मन एकाग्र एवं बुद्धि सूक्ष्म होकर अनेक गुप्तरहस्यों के समझने योग्य होती है वहाँ ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभावों का नित्य चिन्तन करने से क्रमशः ज्ञान की उन्नति होकर आत्मा बलवान् होता चला जाता है और इसी प्रकार अभ्यास करते २ मनुष्य स्वात्मा से परमात्मा की अनुभव करने और योगाभ्यास द्वारा उसे प्राप्त करने का अधिकारी बनता है। प्राचीन आर्य खि-पुरुष चाहे कितना ही सङ्कट क्यों न आपड़े इसकी नियमपूर्वक दोनों समयें करते थे। जब हनुमान् जी सीता जी को ढूँढने लङ्का में गये थे तो उन्होंने अनुमान किया था कि "सन्ध्या काल मनाः श्यामा ध्रुव मैघ्यति जानकी। नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यायै वरवर्णिनी॥" सुन्दर काण्ड १४। ४९ अर्थात् सन्ध्या काल होने पर शुभमुखी जानकी जी अवश्यही इस निर्मल-वारि-पूरित-सरिताके तट सन्ध्या करने आवेंगी निदान ऐसा ही हुआ।

२ देवपद्म—इसे अग्निहोत्र भी कहते हैं आर्षग्रन्थों में लिखा है कि मनुष्य मल मूत्रादिसे जितने जल, वायु को दूषित करता है उतने ही दुग्न्धित द्रव्य जलाकर उसे दुर्गन्धि का निवारण करना उचित है जब २ संसार में वैदिककर्मों का लोप होकर जल वायु दूषित होजाते हैं तब म्लेघ ( महामारी ) आदि अनेक भयानक रोग संसार में फैल

जाते हैं। इसी लिये द्विजमात्र को दोनों समय अग्निहोत्र करने की ताकीद की गई है।

**३ पितृयज्ञ—वृद्ध पितर\*** ( माता, पिता ) की सेवा करना पितृ-यज्ञ है इसके दो भेद हैं ( १ ) आहु ( २ ) तर्पण। आहु से जो कर्म किया जाता है उसे आहु कहते हैं यथा “ आहुया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम् ” और जिस से माता पितादि पितर प्रसन्न हों वह तर्पण कहलाता है। पितृयज्ञ जीवित पितरों का ही होता है मरे हुएों का नहीं।

**४ भूतयज्ञ—**इसे बलिवैश्वदेव कहते हैं भोजनके पूर्व दशों दिशाओं तथा जल के भीतर इसमें आहार डाला जाता है और कुत्ता, पतित, चारडाल, पापरोगी, काक और कृमि तक को भी भाग देनेका विधान है इसका मुख्य तात्पर्य यह है कि असमर्थ मनुष्यों तथा जल में रहने वाले जीव जन्तुओं तक को आहार पहुंच जावे।

**५ अतिथियज्ञ—**जो मनुष्य कि चतुर्थाश्रम अर्थात् संन्याश्रम में प्रवेश कर के मनुष्यों को अविद्यान्धकूप में बाहर निकालने के लिये नित्य यत्र तत्र भ्रमण करते हैं उनका भोजनादि में सत्कार करना अतिथियज्ञ कहाता है।

**१६ संस्कार** जिन का वर्णन मनुस्मृति और गृह्य सूत्रादि आर्ष ग्रन्थों में पाया जाता है आयों के नैमित्तिक कर्म हैं। संस्कार शब्द का अर्थ ही यह है कि “ संस्क्रियते अनेन इति संस्कारः ” अर्थात् जिससे मनुष्योंकी शुद्धि और सुधार हो उनका नाम संस्कार है। जिस प्रकार एक कच्चा घड़ा बिना अग्निसंस्कार हुए जल धारण करने के योग्य नहीं बनता उसी प्रकार मनुष्य भी संस्कृत हुए बिना मेधावी, बलवान् और धर्मात्मा कदापि नहीं बन सकता। यह वैदिकसंस्कारों का ही प्रभाव था कि इस देशमें कुमारिल, शङ्कराचार्य और दयानन्द सरस्वती<sup>१</sup> जैसे परम-विद्वान्, अमित-मेधावी और वेदों के ज्ञाता ब्रह्मर्षि इस युग में भी उत्पन्न हुए। इन संस्कारों से मनुष्य यशस्वी

\* संस्कृत में माता पिता दोनों के लिये पितर शब्द आता है यथा:—

“ अपश्य तस्य पितरं लुपन्ता विर्वाहजो ” अथो० ६४।४॥ अर्थात् भ्रमण करने के मार्ग पर पाया ब्रह्मर्षि जब जल का घड़ा ले गये तो उनके पितरों की पत्थरीन पंक्तियों के समान बैठे देखा।

सुश्रवणपि इस प्रवेश में वैदिक संस्कार लुप्त प्राय हो गये हैं परन्तु वंशश-प्रान्त में अब तक संस्कारों का नाम ही पाया जाता है।

और प्रतापी ही नहीं होते वरन् बाल्यकाल के अनेक शीतला आदि रोग उत्पन्न होने का भय भी बिलकुल नहीं रहता । माता पिता के आचार विचारों का सन्तान के ऊपर जो प्रभाव पड़ता है उस का सूक्ष्म दृष्टि से अनुभव करके ही आर्यों ने गर्भाधान को भी एक संस्कार माना है यद्यपि एक २ संस्कार की व्याख्या करने को यहां स्थान नहीं है परन्तु हम यहां केवल उन के नाम मात्र दिये देते हैं जिन्हें विधि देखनी हो वे गृह्यसूत्रों वा महर्षि दयानन्द सरस्वती निर्मित संस्कार-विधि में देखें ।

( १ ) गर्भाधान ( २ ) पुंमयन ( ३ ) सीमन्तोन्नयन ( ४ ) जात-कर्म ( ५ ) नामकरण ( ६ ) निष्क्रमण ( ७ ) अन्नप्राशन ( ८ ) चूड़ा-कर्म ( ९ ) कर्णवेध ( १० ) उपनयन ( ११ ) वेदारम्भ ( १२ ) समावर्तन ( १३ ) विवाह ( १४ ) गृहस्थाश्रम ( १५ ) वानप्रस्थ ( १६ ) संन्यास ।

इन के अतिरिक्त अन्त्येष्टि भी एक संस्कार है परन्तु वह जीवन दशा में नहीं होता अन्य १६ जीव से सम्बन्ध रखते हैं ।

संसाररूपी महासागर से पार उतरने के लिये ऋषियों ने इस आयुरूपी यात्रा के चार विभाग किये हैं जो चार आश्रमों के नाम से विख्यात हैं अर्थात् १ ब्रह्मचर्य २ गृहस्थ ३ वानप्रस्थ और ४ संन्यास । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के बालकों को सामान्यतया आठवें, ग्यारहवें और बारहवें वर्षों में क्रमशः उपनयन करा कर गुरुकुल में भेज १५, ३०, ३६, ४४ वा ४८ वर्ष तक इन्द्रियजित हो साङ्गोपाङ्ग \* चारों वेदों तथा उपवेदों का यथाविधि पढ़ना ब्रह्मचर्याश्रम कहाता है । सुश्रुत में लिखा है कि:—

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णाता किञ्चित्पारहाणिर्यौते ।

\* प्राचीन ऋषियों ने वेदों की रक्षार्थ वेदों के छः अङ्ग और छः उपाङ्ग रचे हैं जिससे त्वार्य लोग आज कल की भांति वेदार्थों का अनर्थ न करने लगे । वेद सन्त्रों के अर्थ जो साधन, महीधर आदि एतदशीय और मैत्रसमलर, विलसन आदि विदेशीय विद्वानों ने किये हैं वे वेद के अङ्ग और उपाङ्गों के प्रतिकूल होने से कदापि माननीय नहीं हो सकते । वेद के छः अङ्ग ये हैं अर्थात् १- सिला ( शुद्ध उच्चारण के नियम ) २-कल्प ( गृह्यसूत्र और वेदी आदि बनाने के रीत्यागणित सम्बन्धी नियम ) ३-व्याकरण ( शास्त्र शास्त्र ) ४-निघण्टु ( वैदिक शास्त्रों का कोष ) ५-छन्द ( छन्द रचना का शास्त्र ) ६-ज्योतिष ( ज्योतिष तथा खगोल विद्या का शास्त्र ) । शास्त्रों को उपाङ्ग कहते हैं यथा १ सांख्य २ योग ३ वैशेषिक ४ न्याय ५ पूर्वमीमांसा और ६ वैदान्त ।

† चार उपवेद यह हैं १ आपुर्वेद ( चिकित्सा शास्त्र ) २ अथर्ववेद ( दान्य शास्त्र ) ३ मान्धर्व ( गान तथा वाद्य का शास्त्र ) ४ अतुर्वेद ( अस्त्र शास्त्र विद्या का शास्त्र ) ।

आषोडशाद्वृद्धिः । आपञ्चविंशतेर्यौवनम् । आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता ॥

सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय ३५ ॥

अर्थात् इन शरीर की चार अवस्था हैं १ वृद्धि ( १६ से २५ वर्ष तक धातुओं की वृद्धि होती है ) २ यौवन २५ के पश्चात् युवावस्था का आरम्भ ३ सम्पूर्णता ( २५ से ४० तक सब धातुओंकी पुष्टि होती है )

उपर्युक्त सुश्रुत-वाक्य से प्रकट है २५ वर्ष से पूर्व ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश करना सन्तानकी निर्बल और निस्तेज बनाना है क्योंकि वीर्य जिस का इस आश्रम में शरीर से वियोग होता है सर्व धातुओं के पश्चात् बनता है यथा:—

रमाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ।

मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जः शुक्रस्य सम्भवः ॥

सुश्रुत सूत्रस्थान अध्याय १४ ॥

अर्थ रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद ( चर्बी ), मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा ( जो अस्थियों के भीतर भरा रहता है ) और मज्जा से वीर्य उत्पन्न होता है ।

जो मनुष्य २५ से लेकर ४८ वर्ष पर्यन्त उत्तरोत्तर जैसे २ ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह उत्तरोत्तर वैसा ही बली, मेधावी और पराक्रमी होता है और ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले के तीनों समस्त अंग वज्र के समान ऐसे दृढ़ हो जाते हैं कि अस्त्र, शस्त्र भी उन पर बहुत कम असर करते हैं । परशुराम ने यदि अकेले खड़े होकर २९ बार क्षत्रिय को पराजित किया और वृद्ध भीष्मपितामह ने महाभारत में प्रतिदिन दश २ सहस्र योद्धाओं का संहार कर दिया तो यह उन के ब्रह्मचर्य का ही प्रताप था । सुश्रुत में लिखा है कि:—

यथा पयमि सर्पिन्मु गूढञ्चेक्षौ रसो यथा ।

शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्विषयम् ॥ ( शरीरस्थान )

जैसे दूध में घी और हँस में रस गुप्त भाव से उसकी सब भागों में व्याप्त रहता है इसी प्रकार वीर्य समस्त देह में व्याप्त ही रहा है । यह वीर्य स्त्रि-प्रसङ्ग से ही नष्ट नहीं होता वरन् कुविचारों और कुचेष्टाओं के करने से भी इसका पात होजाता है इसी से शास्त्रकारों ने स्त्रियों के स्मरण, कीर्त्तन, आलिङ्गन और एकान्त में भाषण करने आदि आठ प्रकार की कुचेष्टाओं को भी मैथुन के अन्तर्गत माना है ।

ब्रह्मचर्य्य के न धारण करने से मनुष्य निर्बल, निस्तेज और अल्प पराक्रमी ही नहीं होता बरन् अजितेन्द्री पुरुष मस्तिष्क की निर्बलता के कारण पूर्णविद्या धारण करनेकी शक्ति की भी खो बैठता है जैसा कि मनु में लिखा है:-

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दोपकचित् ।

कायाद्रि स्कन्दत्रेतो हिमस्ति व्रतमात्मनः ॥ २ । १८० ॥

अर्थ ब्रह्मचारी अकेला सीवे और क्षीर्य स्थलित कभी न करे जो कामजा से क्षीर्य स्थलित कर दे तो जानों कि अपने ब्रह्मचर्य्य व्रत का नाश कर दिया ।

२ गृहस्थ-जब कुमार और कुमारी ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन कर गुरुकुल से लौटें तो उन्हें प्रमत्तता पूर्वक अपने तुल्य भर्त्सिका और भर्त्ता को प्राप्त ही गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने का नियम है जिस प्रकार पुरुषों का २५ । ३० । ३६ । ४० । ४४ और ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य धारण करनेकी आज्ञा है उसी प्रकार कुमारी को १६ । १७ । १८ । २० । २२ और २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य धारण करके अपने तुल्य ब्रह्मचारी पति को प्राप्त होने का आदेश मिलता है। इस से आगे समस्त आयु पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य धारण की विधि है। सुश्रुत नामक वैद्यक के मान्य ग्रन्थ में यह लिखा हीते हुए भी कि “ यदि १६ वर्ष की अवस्था से न्यून की स्त्री और २५ से कम का पुरुष गर्भाधान करते हैं तो यह गर्भ नहीं रहता या सन्तान निर्बल हीती है ” आर्य्यसमाज के गुरुकुलों की स्कीम देखकर यौरुप के विद्वान् परिहास किया करते थे और कहा करते थे कि इस गरम देशमें इतने अधिक समय तक ब्रह्मचर्य्य धारण नहीं किया जा सकता परन्तु हरद्वार, फ़तुल्लाबाद आदि गुरुकुलों ने प्रत्यक्ष प्रमाणों से उन के भ्रम का मूलोच्छेदन कर दिया है ।

माता पिता के आचार का भी सन्तान के ऊपर भारी प्रभाव पड़ता है जिस पुरुष के माता पिता जितेन्द्रिय नहीं है वह ब्रह्मचर्य्य धारण करने पर भी जैसा चाहिये वैसा बलवान् नहीं होसकता । हम देखते हैं कि घोड़े, बैल आदि पशु जो कठिन से कठिन परिश्रम कर सकते हैं उनमें यह शक्ति केवल इसी कारण है कि वे ऋतुगामी होते हैं परन्तु मनुष्य इस समय पशुओं से भी आचारमें गिर गया है और

यही कारण है कि हम दिन पर दिन निर्बल होते चले जा रहे हैं। प्राचीन पुरुष जो ऋतुगामी होते थे उनकी सन्तानें भी ऐसी बलिष्ठ होती थीं कि सोलह २ वर्ष की अवस्थाके बालक सिंहशावकोंका मुल फाड़ २ कर उनके दान्त गिनते थे। पाश ( कमन्द ) डाल कर दौड़ते हुए बलवान् घोड़ों को अर्जुन द्वारा एक साथ रोक देनेकी बातें चाहें हमें मिथ्या जान जान पड़ें परन्तु इस समय में जिन्होंने बाल ब्रह्म-चारी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के द्वारा दो घोड़ोंकी चलती हुई गाड़ी को पकड़ कर रोक देने का दृश्य देखा है वे इन बातोंको कभी असत्य नहीं समझ सकते। इसी कारण धर्म-शास्त्र में ऋतुगामी पुरुष की बड़ी प्रशंसा की है यथा:-

निन्याम्बुशु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ।

ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ ३ । ५० ॥

अर्थात् जो अपनी स्त्री से प्रसन्न और निषिद्ध रात्रियों में पृथक् रहता है वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारीके सदृश है।

३-वानप्रस्थ जब शिरके केश प्रवेत और त्वचा ढीली होजावें एवं लड़के का पुत्र उत्पन्न होगया हो तब सब सुख-सामग्री को त्याग और स्त्री को पुत्र के पास छोड़ वा अपने साथ ले आरण्य में बसनेकी धर्म-शास्त्र में आज्ञा है। वहां शाक, मूल, फल, फूल आदि ही खाने का विधान है और उन ही से पञ्चपक्व करने का आदेश पाया जाता है।

प्राचीन मुनि लोग वहां अनेक प्रकारके शीतोष्णवातादि कष्ट सहन करके योगाभ्यास द्वारा परमात्मा का साक्षात् ही नहीं करते थे बरन् वहीँ उन्होंने गुरुकुल भी बना रखे थे जिनकेद्वारा वे ब्रह्मचारियोंको वेद वेदाङ्गों की शिक्षा प्रदान करते थे। इस प्रकार आर्यों ने अपनी दूरदर्शिता से सर्वसाधारण के चित्त से अविद्या-रूपी-तृषा के वैकल्य को दूर करनेके लिये विद्या-रूपी-शान्ति-प्रदायिनी-सरिता का पीयूष प्रवाह वहा रक्खा था और छोटी २ अवस्था से ही ब्रह्मचारियों को अनेक आरण्य-कष्ट सहन कराकर इस योग्य बना दिया जाता था कि वे संसारके महान्से महान् कष्टोंको सहन करने तथा कठिनसे कठिन कार्य

\*शकुन्तला पुत्र भरत जब कण्व ऋषिक आश्रममें अपनी माताके साथ रहे थे सिंहशावकोंका मुल फाड़ कर उनके दान्त गिना करते थे। यह बड़े प्रतापी राजा हुए थे और इन्हींके समयमें आर्या-यज्ञसंघ हम देश का नाम भारतवर्ष हो गया था।

कैं करने योग्य बन जाते थे। इस समय में जब कि विद्यार्थी सहस्रों रुपये अपठघय करके सेवा-वृत्ति (नौकरी) करनेके अतिरिक्त संसार के और किसी कामकी करने योग्य नहीं रहते इस आवश्यक और लाभदायक आश्रम का नाम ही नाम सुनाई देता है और उन जितेन्द्रिय, पूर्ण विद्वान्, सदाचारी ऋषि मुनियोंकी जगह अजितेन्द्रिय, मूर्ख और क्रोधी वैरागी आदि सम्प्रदाइयों ने एवं अग्निहोत्रादि वैदिक कर्मोंका स्थान सुलझे और गांफेकी लपटोंसे ले रक्खा है। आर्य्यसमाज का प्रादुर्भाव होने से अब कहीं २ एक १ ऐसे पुरुषों के नाम सुनने में आये हैं जिन्होंने इस आश्रम में प्रवेश किया है अतएव आशी है कि आर्य्यसमाज ही इस मरणात्मक आश्रम को कभी न कभी अवश्य चैतन्य करेगा।

४-संन्यास-इस प्रकार वनमें आयुका तीसरा भाग अर्थात् ५०वें वर्ष से लेकर ७५वें ३ वर्ष तक व्यतीत करके यज्ञोपवीत, शिखादि विह्वों एवं अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मकाण्ड का त्याग कर के परिव्राट् अर्थात् संन्यासी होजावे ब्राह्मण-ग्रन्थों में लिखा है कि:—

यद्दहरेव विरजेत्तद्दहरेव प्रवजेद्दनाद्वा गृहाद्वाः ब्रह्मचार्या देवप्रवजेत् ।

अर्थात् जब वैराग्य हो वानप्रस्थ, गृहस्थ वा ब्रह्मचर्य से ही संन्यासी होजावे ।

यद्यपि ब्रह्मचर्य से ही संन्यास धर्म का पालन करना बड़ा कठिन है परन्तु ऐसे परिव्राट् पुरुष की शास्त्रों में बड़ी प्रशंसा लिखी है संन्यासी के मुख्य कर्म यही दो हैं कि एक तो ज्ञानकाण्ड में रत हो ओंकार पूर्वक समव्याहृतियों से विधिपूर्वक जितनी शक्ति हो उतने प्राणायाम करे क्योंकि मनुमें लिखा है कि जैसे अग्निमें तपाने और गलानेसे धातुओं के मल नष्ट होते हैं वैसे ही प्राणों के निग्रह से इन्द्रियों के दोष भस्मीभूत होते हैं दूसरे यत्र तत्र भ्रमण करके गृहस्थादि आश्रमोंको सब प्रकार के सत्य का निश्चय करा धर्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त कराया करें जिस समय संन्यासाश्रम भारतवर्ष में नीरोग था उस समय मनुष्यों की सदुपदेशों से धर्म में ही प्रवृत्ति नहीं होती थी वरञ्च ईसाई, मुस-

ॐ सम्प्रति मनुष्यों की अवस्था १०० वर्ष की नहीं होती इस का कारण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न करना है वेदों में मनुष्य की अवस्था सामान्यता १०० वर्ष की लिखी है एवं अनेक विद्वानों का कथन है कि मनुष्य जितने वर्ष ब्रह्मचर्य धारण करता है उस की अतुल्य आयु होसती है इस हिसाब ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी की आयु से वर्ष २०० के समीप पहुँचती है ।

समान आदि आर्चदिक मंत भी सूर्यको समस्त दीपकके समान स्वतः ही श्रीहीन होकर भट्ट भ्रष्ट होजाते थे । यहाँ इन चारों आश्रमोंकी संक्षिप्त व्याख्या की है इनका सर्वांतर वृत्त धर्मशास्त्र में देसना चाहिये ।

यद्यपि हम पूर्व लिख चुके हैं कि ईश्वर निराकार और सर्व-  
ईश्वर का स्वरूप और उसके गुण कर्म स्वभाव व्यापक है अब हम अपने कथन की पुष्टि में वेद और शास्त्रों के प्रमाण उद्धृत करते हैं ।

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः । हिरण्यगर्भ इत्येषा मादि५३  
सीदित्येषा यस्मात् वृजात इत्येषः यजु० ३२ । ३

अर्थ:- उस परमात्मा की मूर्ति नहीं है, उसका नाम और यश बड़ा है वह सीमारहित अनन्त और सब व्यापक है और जो तेज धारी सूर्यादिकों की उत्पत्ति का कारण है उसी की उपासना करनी योग्य है ।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।

अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं विचार्यतं मृत्युमुग्रान्प्रमुच्यते ॥

कठोपनिषद् ३ । १५ ॥

अर्थ वह ब्रह्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि इन्द्रियों के विषयों से जानने योग्य नहीं है एवं वह अविनाशी है, नित्य है, अनादि है, अनन्त है और महत्तत्त्व से भी सूक्ष्म है उसी को ज्ञान के मनुष्य मृत्यु के मुख से छूटता है ।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमाग्निः ।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भा सा सर्वमिदं विभाति । मुण्डक ३।१० ॥

अर्थ-जब ब्रह्ममें सूर्य, चन्द्र, तारे और बिजुलीही प्रकाश नहीं कर सकते तो यह भौतिक अग्नि कैसे प्रकाश कर सकती है किन्तु यह सूर्य और समस्त पदार्थ केवल उसी की आभा से प्रकाशित हो रहे हैं ।

न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।

स कारणान्तः करणाधिपाधिपो न चास्य कच्चिज्जानिता न चाधिपः ॥

श्वेताश्वर ६ । ८ ॥

अर्थ:- उस परमात्मा का जगत् में न तो कोई पति है और न कोई उसका जनिता है वह सबका कारण है और वही जीवों

\* प्रत्येक कार्यके ३ कारण होते हैं यथा १ निमित्त २ उपादान और साधारण । यदि घट का दृष्टान्त ले तो १ कुम्हार निमित्त २ मृत्तिका ( मिट्टी ) उपादान और ईंट, चक्र आदि साधारण कारण होंगे । परमात्मा जगत् का निमित्त कारण है उपादान नहीं है ।



का पति भी है; उसका न कोई उत्पत्ति-कर्ता है और न अधिपति है  
स पर्यगाच्छुक्रपकायमवग्रामस्नाविरश्च शुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी  
परिभूः स्वम्भूर्यायातथ्यतां ऽर्यान् व्यदधाच्छ्रान्त्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ ईषो० ॥

अर्थ-वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी, अनन्त-पराक्रम  
युक्त, शुद्ध और सर्वज्ञ है एवं वह सब प्रकार के शरीर; नाड़ी, नसों के  
बन्धन, सर्वदुःखों और पापों से रहित है उसीकी उपासना करनी योग्य है।

उपर्युक्त प्रमाणों से विदित है कि वह परमात्मा निराकार और  
जीवन, मरण के दुःखों से सर्वथा रहित है जो अनुप्य उस की अवता-  
रादि लेने की कल्पना करते हैं वे भ्रम में पड़े हैं।

बहुत से मनुष्य यह गढ़ा क्रिया करते हैं कि जब ईश्वर अपने  
नियम को छोड़ कर स्तुति और प्रार्थना करनेवाले  
मृति और प्रार्थना

पुरुष के किये हुये पाप जमा नहीं करता उसकी  
स्तुति और प्रार्थना करना निरर्थक है परन्तु हमारे विचार में जो  
मनुष्य ऐसी आशङ्का करते हैं उन्होंने उन संस्कृत शब्दों के अर्थ को भली  
माँति नहीं समझा। संस्कृत में 'स्तुति' किसी वस्तु के गुण वर्णन करने  
को कहते हैं यथा आकाश का गुण शब्द, वायु का रूप, अग्नि का रूप,  
जल का रस और पृथ्वी का गन्ध है तो यही उपर्युक्त पञ्चभूतों की स्तुति  
हुई। ईश्वर अत्यन्तगुणस्वभाव वाला है और जब तक निराकार,  
सर्वशक्तिमान्, दयालु, अनन्त आदि उसके गुणों का कीर्तन न किया जावे  
तब तक उस में प्रेम उत्पन्न नहीं होता और न अपने आवरण ही सुधार  
सकते हैं। ईश्वर की प्रार्थना करने से बुद्धि बढ़ती है और जेदानुसूत  
शुभकर्मों के करने में परमात्मा भूयायता भी प्रदान करते हैं परन्तु किसी  
अशुभ-कामना से यदि कोई पुरुष ईश्वर की प्रार्थना करे तो उस की  
प्रार्थना उस मनुष्य की तरह निष्फल हो जाती है जो राज्य व्यवस्था  
के प्रतिकूल कार्य करने के लिये राजा से सहायता की प्रार्थना करता है।

परमात्मा को साक्षात् करने वा उन से मिलने की क्रिया को उपा-  
सना कहते हैं महर्षि पतञ्जलि अपने योग शास्त्र में  
लिखते हैं कि:—

“योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ १॥ १॥ २॥ तदाद्रष्टुः स्वरूपं यस्याग्रम् ॥ १॥ १॥ ३॥

अर्थात् चित्त की वृत्तियों को सब ओर से हटा कर परमेश्वर के  
समीप लगाने को योग कहते हैं। जैसे जल के प्रवाह को जड़ एक ओर

से रोक दिया जाता है तो वह नीचे स्थान में जाकर स्थिर होजाता है इसी प्रकार चित्त की वृत्ति जब बाहर से रुकती हैं तब स्वतः परमेश्वर में स्थिर हो जाती हैं उपर्युक्त शास्त्र में योग के निम्न आठ अङ्ग लिखे हैं जिन से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त होते हैं ।

यमानियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधियोगऽष्टावङ्गानि ॥

योग । १ । २ । २८ ।

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह योग के आठ अङ्ग हैं। यद्यपि उपर्युक्त शास्त्र में इन की विस्तृत व्याख्या की गई है परन्तु हम उन का संक्षिप्त भाग उद्धृत करते हैं ।

( १ ) यम—सब प्राणिनों में प्रीति, मत्स्य बोलना, चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य, विषयों से पृथक् रहना ये पांच यम कहलाते हैं ॥

( २ ) नियम—जल और धर्माचरण से शरीर के बाहर और भीतर की शुद्धि करनी, मन्तोष, तप ( आत्मा और मन को धर्माचरण से शुद्ध कर लेना ) शास्त्रों का पठन पाठन, एवं आत्मा और मन के प्रेमभाव से आत्मादि मत्स्य द्रव्यों को ईश्वर के समर्पण करना यह पांच नियम कहलाते हैं ।

( ३ ) आसन—जिस में सुखपूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हो उसे आसन कहते हैं और वे ५४ प्रकार के होते हैं ।

( ४ ) प्राणायाम—श्वास प्रश्वास की गति का रोकना; प्राणायाम कहलाता है इस के नित्य करने से आत्मा का अज्ञान नष्ट होता है और मन एकाग्र होकर ज्ञान का प्रकाश शनैः २ बढ़ता जाता है ।

( ५ ) प्रत्याहार—जब मनुष्य अपने मनको जीत लेता है तो इन्द्रियां स्वतः वग में हो जाती हैं क्योंकि वे मन के आधीन हैं फिर वह अपने मन को जहां लगाना चाहता है वहीं लग जाता है यही प्रत्याहार कहाता है ।

( ६ ) धारणा—उस को कहते हैं कि मनकी चञ्चलता से छुटा कर नाभि, हृदय, मस्तक, नासिका और जिह्वा के अग्रभाग आदि देशों में स्थिर कर के ओङ्कार का जप और तदर्थ परमेश्वर का विचार करना ।

( ७ ) ध्यान—धारणा के पश्चात् उसी देश में आश्रय लेने योग्य जो अन्तर्यामी सर्व-व्यापक परमेश्वर है उसके प्रकाश और आनन्दमें अत्यन्त

विचार और प्रेम-भक्ति ने इसप्रकार प्रवेश करना जैसे समुद्र के बीच नदी प्रवेश करती है। उस समय किसी अन्य पदार्थ का स्मरण भी नहीं होना चाहिये किन्तु उसीके ज्ञानमें मग्न होना चाहिये यही ध्यान कहलाता है।

( ८ ) समाधि—इन मात अङ्गों के फल की समाधि कहते हैं ध्यान और समाधि में इतना अन्तर है कि ध्यान में तो ध्यान करनेवाला, जिस मन से, जिस वस्तु का ध्यान करता है वे तीनों विद्यमान रहते हैं परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर के ही आनन्द-स्वरूप-ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है और वहां तीनों का भेदमात्र नहीं रहता।

अथ उपायना विषय में कुछ उपनिषदोंके प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं:—

नाविगतो दृश्यान्नाशान्तो नासमाहितः ॥ नाशान्तगानसो वापि प्रज्ञादेनैवमाप्नुयात् ॥ कठो० पृष्ठी २। २४ ॥

अर्थ:—उपासना योग, दुष्ट-मनुष्य को मिट्ट नहीं होता क्योंकि जब तक मनुष्य दुष्ट कामों में पृथक् होकर अपने मन और आत्मा को शान्त और व्यवहारों को शुद्ध नहीं करता तब तक कितना ही क्यों न पढ़े पढ़ावे परमेश्वर की प्राप्ति नहीं होती।

तपः श्रद्धये तपुषवमन्यगण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्या चरन्तः। सूर्य-द्रोष्णा ते विज्जाः प्रयान्ति यत्रासृजः स पुण्यो ह्यवात्मा ॥ मुण्डक १।२।११॥

अर्थ: जो मनुष्य धर्माचरण से शुद्ध हृदयरूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं वे परमेश्वर के ही समीप वास करते हैं और जो लोग अधर्म के छोड़ने और धर्म के करने में दृढ़ संन्यास वा किसी अन्य आश्रम में हैं वे प्राणद्वार से परमात्मा को प्राप्त होकर सब दोषों से छूट कर मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

परमात्मा की उपासना इस प्रकार करनी उचित है:—

अथ यदिदस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोस्मिन्नन्तराकाश-स्तस्मिन् यदन्तस्त्वं दन्वेष्वयं तद्वाव विजिज्ञापितव्यमिति ॥ १ ॥ तं चेद् ब्रूयुर्यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्वयं यद्वाव विजिज्ञासि तव्यामिति ॥ २ ॥ सर्वथा ध्यावात्वा अयमाकाशस्तावपोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन्नन्यावा पृथिवी अन्तरेव समाहते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसा तुभौ विशुब्रह्मवाणि

यच्चाप्ये हास्त्रि यच्च नास्ति सर्वं तदीप्सन् समाहितमिति ॥ ३ ॥

छान्दोग्योपनिषद् प्रपा० ८ सं० १ । २ । ३

अर्थ:—अण्ड के नीचे दीनों स्तनों के बीच और उद्ग के ऊपर जो हृदय-देश है उस को ब्रह्मपुर वा परमेश्वर का नगर कहते हैं । उस के बीच में जो गत्तं है उस में कमल के आकार का एक स्थान है उस में सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एकरस होकर नर रहा है । वह आनन्द-स्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच खोज करने से मिल जाता है \* दूसरा उस के मिलने का कोई मार्ग नहीं है ॥ १ ॥ और कदाचित् कोई पूछे कि उस हृदयाकाश में क्या रक्खा है जिस का खोज किया जाय तो उत्तर यह है कि हृदय देश में जितना आकाश है वह परमात्मा में भर रहा और उनी हृदयाकाश के मध्य में सूर्य आदि अकाश तथा पृथिवी लोक, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, बिजुली और सब जलज लोक भी टहर रहे हैं जितने कि गोचर और अगोचर पदार्थ हैं वे सब उसी की सत्ता के बीच में स्थिर हो रहे हैं ।

उपायना भी शास्त्रों में दो प्रकारकी लिखी है अर्थात् एक 'मगुण' दूसरी 'निगुण' । न्यायी, दयालु, मनीषी, परिभू, स्वयंभू इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर मगुण है और अकाम, अव्रण, अस्नाविर आदि गुणों के निषेध होने से निगुण कहाता है ।

संसार में निब्रतचक्रवान्, निब्रुद्धि और धीमान्, मूर्ख तथा विद्वान् और दरिद्र एवं श्रीमान् पुनर्पों को देखकर पुनर्जन्म और मुक्ति

हमें निश्चय होता है कि यह मनुष्य अपने पूर्व-कृत शुभाशुभ कर्मों का ही पाप पुण्य भोग रहे हैं । ईसाई, मुसलमान आदि मतवाहियों से ( जो पुनर्जन्म को नहीं मानते ) जब प्रश्न किया जाता है कि परमात्मा ने जो संसार में अनेक काणे, अग्ने, लूने, लंगड़े

\* परमात्मा अति सूक्ष्म होने से इन्द्रियो के विषय नहीं है अतएव नचात्रि पदार्थ उन्हे नहीं देख सके वरन् जीवात्मा ही उन का अनुभव कर सक्ता है । तर्जान शास्त्रों में जीवात्मा के रहने का स्थान भी हृदय देश ही लिखा है ( और युक्ति में भी यही सिद्ध होता है क्योंकि जब कोई मनुष्य किसी कार्य में अपना उत्तर-शक्ति प्रकट करता है तो दूसरे को निश्चय कराने के लिये वह अपना हाथ किसी अन्य अङ्ग प्रत्यङ्ग के ऊपर न ले जाकर हृदय के ही ऊपर ले जाता है ) अतएव उसे अन्य स्थानों में न भटक कर प्रवेश समीप ही परमात्मा का अनुभव करना चाहिये । परमात्मा सर्वत्र एक-रस व्यापक है और वे सर्वत्र है इस लिये एकदेशीय जीव जब सर्व-देशीय परमात्मा में प्रवेश करता है तो उसे सब लोकोंका सत्य ज्ञान हो जाता है अतः कार्य निर्वर्ण होने है और इसी कारण भाषा में आप्रवाक्या को भी प्रमाण-कोटि में माना है ।

मनुष्य उत्पन्न किये हैं इन्होंने उस का क्या बिगाड़ा है ? तो वे इन बातों का कुछ भी उत्तर नहीं दे सकते, अतएव पुनर्जन्म; शास्त्रके अतिरिक्त; युक्ति ( दलील ) से भी सिद्ध होता है। शास्त्रोंमें बतलाया गया है कि जन्म और मृत्यु के समय मनुष्य को बड़ा कष्ट होता है इसलिये इससे बचने का उपाय करना उचित है। महर्षि गौतमचार्य लिखते हैं कि दुःख से छूट जाने का ही नाम मुक्ति है यथा:—

दुःखजन्मप्रवृत्तदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तापाये तदनन्तरापायाद-  
पवर्गः ॥ न्याय दर्शन १ । २२ । २ ॥

अर्थात् दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष, मिथ्याज्ञान के उत्तरोत्तर छूट जाने नाम अपवर्ग ( मुक्ति ) है। अर्थात् जब मनुष्य के मिथ्या-ज्ञान का नाश हो जाता है तब दोष, दोषों के नाश होने पर प्रवृत्ति ( विषयादि की वासनायें ), प्रवृत्ति के नाश होने पर जन्म, और जन्म के नाश होने पर समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं; और यही मुक्ति है ॥

उपर्युक्त प्रमाणों से विदित है कि जब तक मनुष्य विषय वासनाओं को नहीं छोड़ता तब तक वह आवागमन के चक्र से कदापि बाहर नहीं निकल सकता। जिस प्रकार अग्नि के संसर्ग से लोहा उसके गुण धारण कर लेता है इसी प्रकार जब मनुष्य योगाभ्यास द्वारा ईश्वर की उपामना करता है तो उस में निष्पक्षता, पवित्रता और निर्वैरता आदि ईश्वर के गुण प्रवेश करते जाते हैं और विषय-वासनायें कम होती चली जाती हैं। इस प्रकार एक जन्म में नहीं जन्मान्तर में मनुष्य आवागमनसे छूट कर “ते ब्रह्मलोकेऽपरान्तकाले” उपनिषद् वाक्य के अनुसार ब्रह्मा की आयु के परिमाण अर्थात् ३६००० कल्पों तक ( जैसा कि पूर्व लिख चुके हैं ) सुख का आनन्द भोगता है। उस समय जीव शरीरादि के बन्धन में न होने के कारण स्वतंत्र होकर चाहे जिस लोक व स्थान में इच्छानुसार गमन करता है।

शास्त्रों में प्रकृति को सत्, जीव को सत्-चित्, और परमात्मा को सच्चिदानन्द बतलाया गया है और यह उपदेश दिया गया है कि यदि जीव आनन्द प्राप्त करना चाहे तो उसे परमात्मा की ही प्राप्ति करनी उचित है समाधि-अवस्था में जो आनन्द जीवात्मा को मिलता है उपनिषदों में उसे अनिर्यत्नीय ( वाणी से वर्णन करने के अयोग्य )

कहा है यही कारण था कि बड़े-र सच्चाट्, चक्रवर्ती राज्य को छोड़ कर मुक्ति-सुख को प्राप्त करने के लिये कन्द-मूल-फलादि भोजन करतेहुये आरण्याँ में नाना कष्ट सहन करते थे ।

जिस प्रकार यूरोप के विद्वानों ने वेदों को गहरियों के गीतोंका संग्रह और आर्य-ग्रन्थों को युक्ति-ग्रन्थ और अ-  
 आर्यग्रन्थोंका रामचन्द्र जीके समय कानिधारण सम्भव बातोंका भाण्डार बतलाया है उसी प्रकार

उन्होंने उनके समय स्थिर करने में भी भारी पक्ष-पात से काम लिया है । उनके विचार में अष्टाध्यायी मसीह से ३५० वर्ष पूर्व, मनुस्मृति ५०० वर्ष पूर्व रची गई है वे रामचन्द्र की कृष्ण वा युधिष्ठिरके समकालीन अथवा उनसे ४ पीढ़ी पूर्व उत्पन्न हुआ बतलाते हैं तथा महाभारत युद्ध का मसीह से १००० एक सहस्र वर्ष पूर्व होना निश्चित किया है । अब हम इस के सत्यासत्य की परीक्षा करते हैं ।

महाभारत के समकालीन श्रीकृष्ण जी का समय; श्रीमद्भागवत में इस प्रकार लिखा है कि:—

यस्मिन्कृष्णो दिवं यातस्तामिन्नेव तदाऽहनि ।

प्रतिपन्नं कलियुगमिति प्राहुः पुगविदः ॥

श्रीमद्भागवत द्वादश स्कन्ध अध्याय २ श्लोक ३३ ॥

अर्थ:— जिस दिन श्रीकृष्ण ने शरीर छोड़ा उसी दिनसे कलियुग का आरम्भ हुआ ऐसा प्राचीन विद्वान् कहते हैं ।

उपर्युक्त श्लोकसे विस्पष्ट है कि महाभारत को ५००० वर्षसे ऊपर समय बीता क्योंकि इतना समय तो कलियुग काही आरम्भ हुये बीत चुका है जैसा कि हम पीछे सिद्ध कर चुके हैं ।

राज तरङ्गिणी-नामक ग्रन्थ में लिखा है कि कलियुग के ६६३ वर्ष व्यतीत होने पर महाराज युधिष्ठिर ने राज्य पाया परन्तु यह असत्य है क्योंकि बौद्ध और जैनो ने आर्यों के समय का निर्धारण निष्पक्ष-भाव से नहीं किया है ।

१ अष्टाध्यायी- यह प्रसिद्ध है कि महर्षि पाणिनि निमित्त अष्टा-ध्यायी के सूत्रों पर महर्षि पतञ्जलि ने महाभाष्य रचा है और पतञ्जलि ऋषि के बनाये हुए योगशास्त्र के ऊपर महर्षि व्यास ने [ जो महाभारत के समय में विद्यमान थे ] वेदान्त दर्शन बनाया है अतएव महर्षि पाणिनि का समय महाभारत से बहुत प्राचीन सिद्ध होता है ।

२ षट् शास्त्र १ सांख्य २ वैशेषिक ३ न्याय ४ योग ५ मीमांसा और ६ वेदान्त आर्यों की छै विज्ञान ( फिलामफी ) की पुस्तकें हैं जिन्हें १ कपिल २ कणाद ३ गौतम ४ पतञ्जलि ५ जैमिनि और ६ व्यास; महर्षियों ने रचा

है। उपर्युक्त दर्शनों में सृष्टि के छः कारणों अर्थात् १ प्रकृति २ काल ३ परमाणु ४ पुरुषार्थ ५ कर्म और ६ ब्रह्म की ऐसी विद्वत्ता के साथ व्याख्या की गई है कि आज तक भूमण्डल भर में इन की उपमा की दूसरी पुस्तकें नहीं पाई जातीं। १ सांख्य में लिखा है कि तत्वों के बिना मिले कोई कार्य नहीं बनता, इस प्रकार २ वैशेषिक में बिना समय लगे, ३ न्याय में बिना उपादान कारण के, ४ योग में विद्या, ज्ञान और विचार बिना किये ५ मीमांसा में कर्म चेष्टा किये बिना और ६ वेदान्त में बिना कर्ता ( बनाने वाले ) के प्रत्येक कार्य की असिद्धि बतलाई गई है। अतएव छः शास्त्रों में परस्पर कुछ भी विरोध नहीं है।

इन छः दर्शनों पर ऋषियों के भाष्य इस प्रकार इस समय उपलब्ध होते हैं अर्थात् सांख्य पर भागुरिमुनि का, वैशेषिक पर गौतमऋषि का, न्याय पर वात्सायन मुनि का, योग पर व्यासऋषि का, मीमांसा पर बोधायन और व्यास ऋषि का और वेदान्त पर बोधायन और वात्सायन ऋषि का।

उपर्युक्त भाष्यों के देखने से विदित होता है कि वैशेषिक, न्याय से प्राचीन है, गौतम और रामचन्द्र जी का एक समय है, और कपिल का समय इन दोनों के पूर्व का है। व्यास जी महाभारत के समय में हुए हैं अतएव मीमांसा और योग की रचना उन से पहले की है और बोधायन तथा वात्सायन मुनि का समय व्यास जी के पश्चात् मिष्ट होता है। बहुत से विद्वानों का कथन है कि चाणक्य ऋषि का ही दूसरा नाम वात्सायन है जिन्होंने अपने बुद्धि-वैभव से महानन्द जैसे प्रतापी राजा को नष्ट कर के उस के बेटे चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया था और इस से हम भी सहमत हैं।

( ३ ) रामायण—रामचन्द्रजी की जन्मतिथि वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग १७ श्लोक ८ व ९ में इस प्रकार लिखी है।

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां पद् समत्ययुः । ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥ नक्षत्रेऽदिति दैवत्येस्वोच्च संस्थेषु पंचमुः । ग्रहेषु कर्कट लग्ने वाक्पतां विदुनां सह ॥ २ ॥

अर्थ—यज्ञ होने के दिन से छे ऋतु बीत जाने पर बारहवें मास चैत्र शुक्ल की नवमी तिथि पुनर्वसु नक्षत्र में जब ५ ग्रह उच्चस्थान में पड़े थे और कर्कटलग्न में चन्द्रमा स्थित थे रामचन्द्रजी को कौसल्या ने उत्पन्न किया।

यद्यपि रामायण के उपर्युक्त श्लोकों से रामचन्द्र के जन्म की तिथियों का ज्ञान होता है परन्तु उन के समय का ठीक निर्धारण नहीं होता । रामचन्द्र जी के समय का महाभारत से कुछ पता चलता है इस के अतिरिक्त और किसी पुस्तक में इन के समय का उल्लेख नहीं है । महाभारत का श्लोक यह है:-

त्रेता द्वापरयोः सन्धौ रामः शत्रुभृतां वरः ।

असकृत पार्थिवं धर्मं जयानामर्प चोदितः ॥

महाभारत आ० प० अध्याय २१ श्लो० ३ ॥

अर्थ:-त्रेता व द्वापर की सन्धि में शत्रुधारियों में श्रेष्ठ राम हुए जिन्होंने दुष्टराजाओं को मार कर धर्म का संस्थापन किया ।

यदि त्रेता के अन्त में भी रामचन्द्रजी का समय मान लिया जाये तो ५००८ वर्ष कलियुग । ८३४००० वर्ष द्वापर कुल ८८४००८ वर्ष से न्यूनसमय किसी दशा में भी नहीं होता । महाभारत में उपर्युक्त श्लोक विद्यमान होने पर भी जो योरूप के विद्वान् उन्हें महाभारत के समय में उत्पन्न हुआ बतलाते हैं हम तो उन्हें पक्षपाती ही कहते हैं ।

( ४ ) मनुस्मृति - जिस प्रकार महाभारत, रामायण और ब्राह्मण ग्रन्थों में मनुस्मृति के प्रमाण विद्यमान हैं उस प्रकार मनुस्मृति में उपर्युक्त किन्हीं पुस्तकों का नाम नहीं लिखा अतएव मनुस्मृति वैकस्वत मन्वन्तर की पहली चतुर्युगी के मत्स्युग में निर्माण हुई है जिसे १२०५३००५ वर्ष होते हैं ।

यह संस्कृत-काव्य का एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है जिसे ऋषि वाल्मीकि जी ने रचा है । यह पुस्तक बहुत स्थानों

रामायण की पन्ना

में मुद्रित हुई है और हस्त-लिखित भी इस की प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं परन्तु मध्य में एक दूसरी से कुछ न कुछ न्यूनाधिकता पाई जाती है शैव, शाक्त और वैष्णवों ने इस में बहुत कुछ गड़बड़ कर दिया है परन्तु जहां तक ऐतिहासिक विषयों को सम्बन्ध है कुछ गड़बड़ नहीं है । वाल्मीकि रामायण के आदि में कोई मनुष्य सूची का बनाने वाला लिखता है कि:-

चतुर्विंशंसहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः ।

तथा भग्न शतान्पञ्च पट् काण्डानितथोत्तरम् ॥ वाल० ३ । २ ॥

अर्थात् ऋषि ने २४००० श्लोक, पांच सौ सर्ग, छै काण्ड और उत्तर काण्ड भी रचा ।



इस समय जो पुस्तक रामायण का हमारे सम्मुख विद्यमान है उसमें सात काण्डों में ६५६ और बाल से युद्ध काण्ड तकमें अर्थात् छे काण्डों में ५३५ सर्ग उपस्थित हैं। किन्हीं २ पुस्तकों में इससे भी न्यूनाधिक पाये जाते हैं अतएव स्पष्ट है मूल पुस्तक में बड़ा गड़बड़ कर दिया गया है इस के अतिरिक्त उत्तर-काण्ड भी जिस में सीता-वन-वास आदि अनेक निरर्थक बातें भरी पड़ी हैं लिश्चय किसी ने पीछे से बनाकर रामायणमें सम्मिलित कर दिया है और हमारे इस कथनकी पुष्टि निम्न युक्ति और प्रमाणोंने भली भांति हो जाती है:-

( १ ) 'छे काण्ड तथा उत्तर काण्ड' वाक्य क्यों कहा गया है सीधे सात काण्ड क्यों नहीं कह दिये गये।

( २ ) बाल काण्ड में रामचन्द्र जी का जन्म और युद्ध में उन के युवराजपद भरत को देने तथा अनेक यज्ञ करने का वर्णन है फिर उत्तर को रचने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी।

( ३ ) प्रोफेसर ग्रिफ़िथ साहब कहते हैं कि " रामायण ७ काण्डों में विभाजित है परन्तु कविताकी वह विचित्रता छठे काण्ड में ही समाप्त होती है अतएव यह विश्वास योग्य बड़ी भारी युक्ति है कि सातवां काण्ड पीछे किसी की मिलावट है ( देखी इनके अंगरेजी रामायण की भूमिका )

( ४ ) वङ्गवासी नामक अखबार आषाढ़ शुक्ल ५ संवत् १९६४ के एष ३ कालम ७ में बलिद्वीप के विषय में जो जावा के पूर्व एक छोटा सा टापू है इस प्रकार लिखा है " \* \* \* रामायण वाल्मीकि प्रणीत है यह स्वीकार किया जाता है पर राजा केसुम के द्वारा खी हुई रामायण ही देश में प्रचलित है इस रामायण में उत्तरकाण्ड एक दम है ही नहीं और बालकाण्ड के भी अनेक अंश नहीं देख पड़ते \* \* \* "

उपर्युक्त प्रमाणों से प्रकट है कि मूल रामायण में भी बहुत कुछ न्यूनाधिकता करदी गई है और सातवां काण्ड तो किसी ने पीछे से ही बना कर लगा दिया है। इस समय रामायण में निम्न विषय ऐसे पाये जाते हैं जिन में प्रायः मनुष्यों को शङ्का उत्पन्न हुआ करती है:-

वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में इस समय अनेक उपाख्यान अर्थात् ( १ ) कुशनाभ की कन्याओं का वायु के

द्वारा कुठजा होना ( २ ) भगीरथ के द्वारा गङ्गा आने के सप्ता-  
चार ( ३ ) समुद्र मंथन ( ४ ) गौतम की स्त्री अहल्या से इन्द्र का व्य-  
भिचार करना इत्यादि पाये जाते हैं जिन में से कुछ ऐतिहासिक हैं और  
कुछ आर्ष-ग्रन्थों के अलङ्कार परन्तु यह सब ही पीछे मिलाये गये हैं  
जो सुन कर वा स्मरण से लिखे हुए स्पष्ट प्रतीत होते हैं । वाल्मीकि  
रामायण में इन्द्र और अहल्या का उपाख्यान इस प्रकार लिखा है कि:-

“एक दिन जब गौतम मुनि स्नानार्थ गये तो चन्द्रमा की सहा-  
यता से इन्द्र ने उनकी स्त्री अहल्या से व्यभिचार किया । अहल्या ने  
जान कर भी यह वृत्तान्त ऋषि से छिपाया इसलिये उन्होंने आप  
देकर अहल्या को पाषाण कर दिया और इन्द्र को सहस्र भग वाला  
बना दिया । दोनों के प्रार्थना करने पर उन्होंने इन्द्र से कहा कि  
तेरे भग के स्थान में सहस्र नेत्र हो जायं और अहल्या से कहा कि  
रामचन्द्र के चर्णस्पर्श से तू फिर अपने स्वरूप में आजावेगी ।”

अब हम यह देखते हैं आर्षग्रन्थों में इन्द्र, गौतम, अहल्या का  
अर्थ क्या ग्रहण किया गया है:-

इन्द्रा गच्छेति । गौरावस्कन्दिअहल्यायं जारेति । तद्यान्ये वास्य चर-  
णानि तैरेवैनं मेतत्प्रमुोदयिष्यति ॥ शतपथ काण्ड ३ प्र० ३ अ० ३ ब्रा० १  
के० १८ ॥ रेतः सोमः श० ३। ३। ५। १ ॥ रात्रिरादित्यस्यादित्योदयेऽन्तर्धी-  
पते । निरुक्त १२। ११ ॥ सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्व इत्यपि निगमो भवति  
सोपि गौरुच्यते ॥ नि० २। ६ ॥ जार आभगः । जार इव भगमादित्योत्र  
जार उच्यते रात्रिर्जरायिता । निरुक्त ३ ॥ एष एवन्द्रोय एष तपति ॥ १। ६। ३। १८ ॥

इनका भावार्थ यह है कि सूर्य का नाम इन्द्र, रात्रि का अहल्या  
और चन्द्रमा का नाम गौतम है यहां रूपकालङ्कार है जिस प्रकार  
चन्द्रमा अपनी स्त्री रात्रि के साथ रहकर सब प्राणियों को आनन्द  
देता है और सूर्य अपने प्रकाश से रात्रि का शृङ्गार नष्ट कर देता है  
वही उसका जार कहलाता है । गौतम का नाम चन्द्रमा इसलिये है  
कि वह अति शीघ्रता से चलता है और रात्रि का नाम अहल्या इस-  
लिये है कि उसमें दिन लय हो जाता है ।

इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण में सूर्य का नाम प्रजापति और उषा  
और प्रकाश उसकी दो कन्या लिखी हैं । सूर्य की किरण ( वीर्य ) जब

उषा के गर्भ में जाकर पड़ती हैं तब दिन की उत्पत्ति होती है इन आर्य-ग्रन्थों के सत्य अलङ्कारों को वाममार्गियोंने इसी कारण खिगा-इकर रामायण तथा श्रीमद्भागवतादि पुराणोंमें लिख दिया है जिस से ऋषि मुनियों को भी ऐसा ही बतला कर बुरे से बुरे कर्म भी निशङ्क किये जावें उसी प्रकार अन्य उपाख्यानों की भी व्यवस्था समझनी चाहिये ।

(२) गृध्र पक्षी का युद्ध करना—आरभ्य काण्डमें लिखा है कि जब रामचन्द्र जी पञ्चवटी में पहुँचे तो उन्हें एक अति भयानक और पराक्रमी जटायु नामक गृध्र मिला जिसने रामचन्द्र जी को बतलाया कि हम तुम्हारे पिता के मित्र हैं । रामचन्द्र जी के पूछने पर उस ने अपनी वंशावली भी वर्णनकी और अपने को प्रजापतियोंके वंशज अरुण जी का पुत्र बतलाया इससे अनुमान होता है कि कदाचित् इस वंश के राजा लोग नाग आदि वंशों की तरह गृध्र वंशी कहलाते हों और यह जटायु राज्य छोड़ कर अपना शीसरा और चीथा आ-अस वन में ठहरीत करने आये हों परन्तु वाल्मीकि रामायण में इस समय इनके विषय में जितने सर्ग वा श्लोक मिलते हैं वे सब पीछेकी मिलावट हैं इसलिये हमने भी उन्हें छोड़ दिया है ।

(३) वानरों का मनुष्यवत् सभ्य तथा विद्वान् होना—जिस प्रकार हम आज कल ज़ार रूस को ऋच्छराज(रीछों का राजा), जापानको अहिराज और अपनी गवर्नमेण्टको मृगराज वा ब्रिटिश-केसरी कहते हैं उसी प्रकार प्राचीन समयमें भी जातियें अपने वर्ण, गुण, कर्म और स्वभावानुसार ऋच्छ, वानर, गरुड़, यक्ष, गन्धर्व किन्नर और पिशाच आदि नामों से प्रसिद्ध थीं । रामायण में वानरों का स्वरूप “ बालि सकनकप्रभः ” तारा पिङ्गाक्षम् ” आदि वर्णन किया गया है जो सुश्रुत में लिखे हुए निम्न “वारुणकाय” भेदके मनुष्यों में स्पष्ट घटता हैः—

शीतसेवा सहिष्णुत्वं पैङ्गल्यं हरिकेशता ।

प्रियवादि त्वमित्येतद्धारुणं काय लक्षणम् ॥ शारीरस्थान ॥

अर्थ—पर्वतादि शीत प्रधान देशों में रहने तथा पराई बातों को नहने की जिनमें शक्ति हो, जिनका रंग पीला, केश भूरे तथा वक्त्र प्रिय हों ऐसे मनुष्यों की वारुणकाय कहते हैं ।

जिस समय रामचन्द्र जी अष्टमस्क पर्वत के समीप पहुँचे तो सुग्रीव ने उन्हें बालि का भेजा हुआ सम्भार कर बड़ा भय किया था तब हनुमान् जी ने उन्हें सम्भाषण या कि:-

अहो शाखासृगत्वं ते व्यक्तमेव प्रवंगम ।

लघुचित्तं तथात्मानं नस्थापयसि यो मर्ता ॥ कि० २ । १७ ॥

अर्थ:-हे सुग्रीव ! इस समय आप बुद्धिमान्नी से काम नहीं लेते और भय से छोटा चित्त कर रहे हो ॥ इससे तो आपका शाखासृगत्व (वानरत्व) सिद्ध होता है ।

उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट विदित है कि यदि सुग्रीव वास्तविक वानर होते तो हनुमान् जी यह वाक्य कदापि न कहते । इसके अतिरिक्त जब हनुमान् जी ने रामचन्द्र जी से वार्त्तालाप किया तो उन्होंने लक्ष्मण जी से कहा था कि:-

नानृगेद विनीतस्य ना यजुर्वेदधारिणः ना सामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥१॥ न्यूनं व्याकरणां कृत्स्नं मनेन बहुधा श्रुतम् । अवहृव्या हरतानेन न किञ्चिदशब्दितम् ॥२॥ कि० ३ । २७—२८ ॥

अर्थ:-हे लक्ष्मण हनुमान् ने जैसी वार्त्ता की है वैसी ऋगादि चारों वेदों का न पढ़ने वाला मनुष्य कदापि नहीं कर सकता है ॥१॥ इन्होंने ने ठयाकरण भी अच्छी तरह पढ़ा है क्योंकि ये बहुत देर से बोल रहे हैं परन्तु कोई अपशब्द नहीं कहा ।

उपर्युक्त प्रमाणों से विदित है कि हनुमान् आदि मनुष्य थे क्योंकि पशु जाति विद्वान् और ऐसी सभ्य कदापि नहीं होसकती । और फलाहार करने तथा उछलने कूदने में अभ्यस्त होने के कारण वानर, प्रवंगम आदि नामों से पुकारे जाते थे ।

(४) रावण के दश शिर और बीस हाथ होना-वाल्मीकि रामायण के अनेक स्थलों में रावण के १० शिर और २० हाथ लिखे हैं परन्तु हम ऐसे श्लोकों को इस लिये प्रक्षिप्त समझते हैं कि उक्त पुस्तक में ही अनेक स्थानों में रावण का एक शिर और दो हाथ सृष्टि नियम के अनुकूल लिखे हुए पाए जाते हैं । यह ध्यान रखना चाहिये कि संस्कृत में एक के लिये एक वचन, दो के लिये द्विवचन और तीन वा तीन से अधिक के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है अब हम

रामायण के ही ऐसे प्रमाण उद्धृत करते हैं जिन में रावण के शिर के लिये एक वचन और हाथों के लिये द्विवचन का प्रयोग किया गया है। यथा:—

संवृतौ परिधाकारौ वृतौ करि करोमपौ । विक्षिप्तौ शयने शुभ्रे पञ्च-  
शीर्षा विवोरगौ ॥ सुन्दर काण्ड १० । १८ ॥

अर्थ—हनुमान् जी ने सीता को ढूँढ़ते समय रावण के शयनागार में जाकर देखा कि रावण की भुजायें हाथी की सूँड़ के समान गोल पांच मुख के दो सर्पों के समान शय्या पर पड़ी हैं।

उत्क्षिप्य च भुजौ काचिद् भूमौ मुपरिवर्त्तते । इतरय वदनं दृष्ट्वा का-  
चिन्मोह मुपागमत् । काचिद् के शिरः कृत्वा सरोद मुखमीक्षती \* \* \* ॥

युद्ध काण्ड १११ । ४-६

अर्थ:—जब रावण सरगया तो उसकी स्त्रियें आकर उसके ऊपर गिर पड़ीं उन में से कोई अपने हाथ फैला कर पृथ्वी पर लोटने लगी कोई उसका मुख देख कर मोहित होगई। कोई अङ्ग में उसका शिर धर मुख देख कर रोने लगी।

इन के अतिरिक्त अन्य बहुत से स्थानों में रावण के शिर के लिये एक वचन और बाहुओं के लिये द्विवचन; आया है परन्तु वे सब प्रमाण विस्तारभय से यहां नहीं लिखे जाते। ऐसा अनुमान होता है कि प्राचीन समय में रावण असाधारण बुद्धिमान् होने के कारण १० शिरों वाला तथा बलवान् और पराक्रमी होने के कारण २० हाथों वाला कहा जाता होगा। अन्धकार के समय में वास्तविक तात्पर्य न समझ कर यह गड़बड़ कर दी गई है।

( ५ ) लङ्का स्थान का निर्णय—यद्यपि सम्प्रति सीलोन ( सिंहलद्वीप ) को लङ्का माना जाता है परन्तु भारत और सीलोन के मध्य सागर का विस्तार ३० कोस के लग भग है हालांकि रामायण में ४०० कोश वर्णन किया गया है। ज्योतिष ग्रन्थों में सीलोन को लङ्का नहीं माना है जैसा कि निम्न श्लोक से विदित होगा।

याम्यायां भारतेवर्षे लङ्का तस्मिन्महापुरी । पश्चिमे केतुमालाख्ये रोम-  
कख्या प्रकीर्तिता ॥ सूर्यसिद्धान्त अ० १२ श्लोक ३८ ॥

अर्थ:—उत्तरीय भूवृत्त ( पूर्वीय गोलार्द्ध ) के चतुर्थांश योजन के अन्तर पर दक्षिण में भारतवर्ष देश है और उस ( उत्तरीय भूवृत्त )

के मध्य में लङ्का नामक महापुरी है। तथा चतुर्थांश-योजन-परिमाण-  
ठयवधान में पश्चिम की ओर केतुमालवधं है जिस में रोमक नामक  
एक अति प्रसिद्ध नगरी है।

उपर्युक्त प्रमाण से लङ्का का उत्तरीय भूवृत्त के ठीक मध्य में होना  
सिद्ध होता है और ऐसा ही सिद्धान्तशिरोमणि में लिखा है। यथा:—

यल्लङ्कोज्जपिनीपुरोपरि कुरुक्षेत्रादि देशान् स्पृशत् ।

मूर्धं मेरु गतं बुधैर्निर्गदिता सा मध्यरेखा भुवः ॥ मध्यगतिवासना ७२४ ॥

अर्थ.—जो सूत्र ( रेखा ) लङ्का से उज्जयिनी नगरी के ऊपर होती  
हुई और कुरुक्षेत्रादि देशों को स्पर्श करती हुई मेरुपर्यंत सीधी चली  
जाती है वही भूमि की मध्य रेखा है। और ऐसा ही आर्यभट्ट-भटीय\*  
नामक ग्रन्थ में भी लिखा है।

स्थलजलमध्यलङ्का भूकभाया भवेच्चतुर्भागे ।

उज्जयिनीलङ्कायास्तत्तुरंशे समोत्तरतः ॥ तृतीय पाद श्लोक १४॥

अर्थ.—स्थल तथा जल मध्य से भूकक्षा के चतुर्थ भाग अन्तर पर  
लङ्का है और भूकक्षा के चतुर्थ अंश के चौथे भाग अर्थात् १६ अंश पर  
उज्जयिनी नगरी है—

निदान उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि सीलोन ( सिंहलद्वीप )  
लङ्का नहीं है क्योंकि वह भूमध्य रेखा से ५ अंश पूर्व के पार्श्व की  
ओर हठी हुई है। वास्तविक लङ्का सिंहलद्वीप के पश्चिम और  
दक्षिण कोण में उत्तरीय भूवृत्त के मध्य में विद्यमान थी जहां कि इस  
समय महागम्भीर वरुणालय\* दृष्टि पड़ता है।

अब केवल एक शङ्का शेष रहजाती है और वह यह है कि पुल  
का रुख सीधा सिंहल द्वीप की ओर जाता है और रामेश्वर से सीलोन

\* यह ग्रन्थ पं० आर्यभट्ट जी कुसुमपुर ( पटना ) निवासी ने शके ४२३ में रचा है इस में  
भूगोल खगोल विद्या का सुपुर्णरीत्या वर्णन होने के भातिरिक्त अंक गणित, बीज गणित, समस्त  
क्षेत्रों का फल जाना, व्यासार्ध नुन्यजा का ज्ञान, ध्रुव की परिधि का प्रमाण, जीवा की परिकल्पना  
विधि, गीतिकोन्म खगड्डयात्रों के जाने का उपाय आदि २ गणित के समस्त विषय ऐसी उत्तमता  
से सिद्ध किये गये हैं कि जो देशों से ही सम्बन्ध रखते हैं।

\* इस परिवर्तन-शील संसार में अनेक नवीन द्वीप बनते और पुराने नष्ट होते रहते हैं। अरब  
के मरुस्थान ( रेगिस्तान ) और हिमालय के उच्च शिखरों पर अनेक जलधरो की अस्थित्ये, घांघे  
आदि चिह्न इस समय पाये जाते हैं जिन्हें देख कर विद्वान् पुरुष अनुमान करते हैं कि यह स्थान तथा  
उच्च २ पर्वत किसी समय महासागर के गर्भ में छिपे हुए थे। हाल ही में बंगाल की खाड़ी में चिह्न  
होप के उस पश्चिमीय कोण में ( जो ब्रह्मा के अरैनाक कुम्हार के पास है। ता० १६। ७। ११०० के  
आर्यामित्र नामक समाचार पत्र में ) एक नवीन द्वीप के निर्माण होने की विभिन्न खबर मिली हुई है।

तक बराबर पुल के चिह्न मिलते हैं परन्तु इसका समाधान यह है कि सम्भव है कि सिंहल द्वीप तक पुल बनाकर वहां से लङ्का के ओर ले गये हों और ऐसा करने की उन्हें इस लिये आवश्यकता पड़ी हो कि समुद्र में पुल को विश्राम देने वाले पर्वत आदि उस मार्ग से जाते हुए समुद्र के गर्भ में अधिक पाये गये हों निदान यह बात बात रेलवे-लइनो की देखने से भली भांति समझ में आसकती है कि वे कितनी पून फिर कर स्थान विशेष तक पहुंचती हैं।

इस परिवर्तन-शील-संसार में हम किसी वस्तु को एक दशा में स्थित नहीं पाते। जिस प्रकार दिन के पश्चात् रात्रि और रात्रि के पश्चात् दिन का प्रादुर्भाव होता है और जन्म के पश्चात् मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् पुनः जन्म ग्रहण करना पड़ता है ठीक इसी प्रकार अनेक जातियों धर्म के अग्रित होकर उन्नति के सोपान पर चढ़ती और अधर्म में आसक्त होकर नीचे की पतित होती रहती हैं। शास्त्रकारों ने धर्म को प्रज्वलित अग्नि की चपला दी है कि उसे चाहे जितना नीचे की गिराया जावे उस की शिखा सतत उर्ध्व मार्ग में गमन करती है और इस के प्रतिकूल अधर्म की पार्थिव-द्रव्यों के रूपक में वर्णन किया है कि वे चाहे जितने ऊपर की उछाले जावें अन्तिम पृथ्वी पर आही गिरते हैं। निदान जब आर्य्य जाति ने ईर्ष्यारूपी वारुणी का पान करना आरम्भ कर दिया तो उस के मयङ्कुर दुष्परिणाम; इस के अतिरिक्त और किस जाति को उठाने पड़ते ? सती, साध्वी और पतिव्रता द्रौपदी को सभा में नष्ट करने का सर्वथा अनुचित कर्म कौरवों के विनाश का ही हेतु नहीं हुआ वरन् उस का कल आर्य्य-जाति अब तक भोग रही है।

यद्यपि भारतवर्षरूपी सुदृढ़ दुर्ग उत्तर में हिमालय जैसे विशाल पर्वत और पूर्व, पश्चिम एवं दक्षिण में अति गम्भीर महासागर रूपी परिखा से संरक्षित था तथा इस कोट के रक्षक (भारतवासी) भी उस समय अति बलवान् तथा युद्धविद्या में ऐसे कुशल थे कि भूमयङ्गल भर की जातियों इन का लोहा मान रही थीं परन्तु उस समय के परम-विद्वान्, नीबि-विद्या-विशारद और दूरदर्शी महात्मा श्रीकृष्ण के ऊपर जब पश्चिमीय समुद्र के मार्ग से होकर कालयवन चढ़ आया तो उन्हें

आर्यावर्त में रागद्वेष और विदेशियों में ऐक्यभाव की वृद्धि देख कर देश-रक्षा की बड़ी भारी चिन्ता हुई, उन्होंने दोनों ओर की सेनाओं का संहार बिना किये ही युक्ति से कालयवन को यहां नष्ट कर डाला और आर्यावर्त को भावी आपत्तियों से बचाने के लिये केवल तीन बातों को निश्चय किया, अर्थात् एक तो परस्पर युद्ध कर के अपनी शक्ति को न घटाया जावे, दूसरे विदेशियों का मार्ग पश्चिमी सीमा पर ही रोक दिया जावे और तीसरे भारत के नरेशों में जो परस्पर ईर्ष्या, द्वेष उत्पन्न हो रहा है उसे किसी प्रकार दूर करके इन में से किसी योग्य और धर्मात्मा पुरुष को भारत का सम्राट् बना दिया जावे जिस से इन की शक्ति बिखरी न रहे और एक ओर लग कर गुरुतर बन जावे। निदान अपने प्रबल शत्रु जरासन्ध से लड़ कर भारतीय शक्ति का ह्रास न करने तथा सिन्धु नदी की ओर से आये हुए यवनों का मार्ग अवरुद्ध करने के लिये उन्होंने मथुरा परित्यक्त कर के द्वारिका बसाई और अपने तीसरे मन्तव्य को पूर्ण करने के लिये महाराज युधिष्ठिर को भारत का सम्राट् बनाना निश्चय किया। यद्यपि उन्होंने बिना युद्ध के महाराज युधिष्ठिर को सम्राट् बनाने के अनेक उपाय किये परन्तु वे अपनी इस मनोकामना में सफलीभूत न हो सके। निदान महाभारत का युद्ध हुआ और दोनों ओर की बड़ी भारी हानि होकर पाण्डव विजयी और कौरव पराजित होकर नष्ट भ्रष्ट होगये। यद्यपि इस जय के उपलक्ष में महायुधिष्ठिर को भूमण्डल भर का चक्रवर्ती राज्य उपलब्ध हुआ परन्तु असंख्य जनसमूह नष्ट होने से उन्हें यह राज्य श्री अति महँगी पड़ी। इस युद्ध में देश के कला, कौशल, विज्ञान और सामरिक शक्ति का ही ह्रास नहीं हुआ वरन् इस से भारत के धार्मिक सिद्धान्तों को भी बड़ा भारी आघात पहुंचा जिस की पूर्ति ५००० वर्ष से ऊपर होने पर भी अद्य पर्यन्त नहीं हुई है। उपर्युक्त अवधि के भीतर जो २ राष्ट्र-विप्लव हुए उन का वर्णन हम “भारतवर्ष का इतिहास” नामक पुस्तक में कभी आगे करेंगे परन्तु धार्मिक सिद्धान्तों में जो परिवर्तन हुए हैं यहां उन का ही संक्षिप्त उल्लेख करते हैं:—

महाभारत के युद्ध में जब अनेक विद्वान् और वीर पुरुष काम आये तो आर्यावर्त में बहुत और अविद्यान्धकार फैल गया।

वाममार्ग की उत्पत्ति

उस समय पुष्कल धन और ऐश्वर्य्य विराजमान था इस लिये मनुष्य विषयी और आलसी बन गये और व्यभिचारादि



निन्दित कर्मों के साथ ही मद्य, मांस का सेवन भी बढ़ता गया । जिस समय ऐसे मनुष्यों के प्रति घृणा प्रकट की गई और उन की कड़ी आलोचनायें हुईं तो उन्होंने वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के अश्व, गो आदि शब्दों से वैदिक कर्म सिद्ध करके वेद में मांस की आहुतियाँ देना भी आरम्भ कर दीं । उन्होंने वेदों को बदनाम कर के मद्य, मांस का सेवन ही आरम्भ नहीं किया प्रत्युत वे वेदों के इन्द्र, अहल्या, प्रजापति और दुहिता आदि शब्दों की खेँच तान कर के वेदों में व्यभिचारादि की शिक्षा का भी उल्लेख बताने लगे और ऋषि मुनियों को बदनाम कर के दूषित से दूषित कर्मों को खुल्लम खुल्ला करना आरम्भ कर दिया और जिन कर्मों को लोक में निन्दित माना जाता था उन्हें मुक्ति का साधन मानलिया जैसा कि निम्न श्लोक से प्रकट होगा ।

मयं मांसञ्च मीनञ्च मुद्रा मैथुनमेव च

एते पञ्चमकारास्त्युर्मोक्षदा हि युगे युगे ॥

अर्थात्, मद्य, मांस, मछली, मुद्रा और मैथुन, इन पञ्चमकारों का सेवन ही युग २ में मोक्ष का दाता है ।

निदान इसी शिक्षा के प्रभाव से आज तंत्र ग्रन्थों में हमें लिखा मिलता है कि:—

मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत्सर्वयोनिषु ।

अर्थात् केवल एक माता को छोड़ कर भगिनी और पुत्री आदि सब के साथ विहार करना चाहिये ।

मनुष्यों की प्रवृत्ति स्वभाव से ही विषयों की ओर आकृष्ट हो जाती है इस लिये महाभारत के पश्चात् यह मत बहुत फैला, दूसरा इस की वृद्धि का यह भी कारण हुआ कि इन धूर्त लोगों ने धर्मशास्त्र, ब्राह्मण ग्रन्थ एवं कर्मकाण्ड के अन्य शास्त्रों में भी मांस-विधायक वाक्य मिश्रित कर दिये । निदान वेदों को छोड़ कर कर्मकाण्ड का ऐसा कोई ग्रन्थ इस समय नहीं मिलता जिस में कि मांस का विधान न पाया जावे । इस मत के फैलाने में इन्होंने एक और भी चाल चली और वह यह कि प्रत्येक मत में मिल कर यह उस के ऊपर अपना रँग चढ़ाने लगे । यथा:—

अन्तः शाक्ता वह्निश्शैवः सभामध्ये च वैष्णवाः ।

नानारूपधरा कौलाः विचरन्ति महींतले ॥

अर्थ:—भीतर शाक्त ( वामी ), बाहर शैव और सभाके मध्य वैष्णव

वन जाते हैं इसी प्रकार नानारूप धर कर कौल ( वाम मार्गी ) लोग पृथ्वी पर विचरते हैं ।

निदान इन्होंने ने अपनी इस कृपा से भारत वासियों को ही उपकृत नहीं किया वरन् अन्य-देश-निवासियों को भी इस अनायास मुक्ति दिलानेवाले लटके से वञ्चित न रक्खा, यही कारण है कि आज हम ईसाइयों की 'होली बैबिल' में भी यह लिखा हुआ पाते हैं कि :-

“ नूह ने परमेश्वर के लिये वेदी बनाई और पवित्र पशु और हर एक पवित्र पंक्षियों में से लिये और होम की भेट उस वेदी पर चढ़ाई और परमेश्वर ने सुगन्ध सूंघा,, तौरेत पर्व ८ आयत २० । २१ ॥

निदान जब वाममार्ग भारत के राजाओं का धर्म होगया तो 'यथा राजा तथा प्रजा' की लोकोक्ति के अनुसार इस सत के अवलम्बियों की संख्या निरन्तर बढ़ती ही चली गई और इस के साथ ही साथ पशुहिंसा, मद्य, मांस और व्यभिचारादि दुष्कर्मों ने मनुष्यों को बहुत ही पतित कर दिया । कुछ कालोपरान्त इन्हें नरमांस के खाने की सूझी और तुरन्त वेदों से इस के पोषक मन्त्र भी पेश कर दिये गये । निदान आज कल इन्हीं वासमार्गियों के आचार्य, मायण और महीधर के वेदार्थों को लेकर ही यूरोप के विद्वान् वेदों में इतिहास, पशुहिंसा और व्यभिचारादि के लेख होने का स्वप्न देख रहे हैं ।

अब हम वेदों के कोष निघण्टु, निरुक्त और ब्राह्मणग्रन्थों के कुछ प्रमाण उद्धृत करके अपने कथन को समप्त करते हैं जिनसे प्रकट होगा कि वेदों के अश्वमेध, गोमेध आदि शब्दों के सत्य अर्थ क्या हैं—

क्षत्रं वा अश्वः ॥ शतपथ १३ । १ । २ । ११ । १७ ॥ राज्यप्रबन्ध और गूरत्व को अश्व कहते हैं ।

प्रजा व पशवा ॥ शतपथ १३ । १ । २ । १४ । २ ॥ पशु और प्रजा दोनों एकार्थवाची हैं ।

कतसो यज्ञति पशवः ॥ शतपथ १४ । ८ । ६ । ७ । ७ ॥ यज्ञ का अर्थ पशु और पशु का यज्ञ है ।

राष्ट्रं वा अश्वमेधः ॥ शतपथ १३ । १ । ६ । ३ ॥ प्रजा के पालन को अश्वमेध कहते हैं ।

गो स्तोतृ नाम ॥ निघण्टु ३ । १६ ॥ गो स्तुति को कहते हैं ।

गो पृथिवी नाम ॥ निघण्टु १ । १ ॥ गो पृथिवी को कहते हैं ।

मेघ यज्ञ नाम ॥ निघण्टु ३ । ७ ॥ मेघ यज्ञ को कहते हैं ।

निदान प्राचीन ऋषियों का यही सिद्धान्त रहा है कि वेदों में किन्हीं पुरुष विशेषों के इतिहास नहीं लिखे हैं और न वे पशुहिंसा और मांस भक्षण ही की आज्ञा देते हैं जैसा कि महर्षि व्यास ने अपने भारत नामक ग्रन्थ में लिखा है । यथा:-

सुरा मत्स्याः पशोर्मांसं द्विजातीनां बलिस्तथा :

धूर्तं प्रवर्त्ति ह्यनैवैतद्भेदेषु कथ्यते ॥ महाभारत शान्तिपर्व २६४ । ६ ॥

अर्थ:-मत्स्य, मछली, पशुमांस और द्विजातियों की बलि यह धूर्त लोगों ने चलाई है, वेदों में कदापि इनकी आज्ञा नहीं है ।

जब वामनाश्रम सत भारत में चहुंओर फैल गया तो साथही साथ अनेक कुकर्म, भयङ्कर दुष्परिणामों को लिये हुए चारवाक मत की उत्पत्ति इसका साथ देने लगे । सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि गोरखपुर के एक राजा से इन धूर्त वामियों ने एक यज्ञ कराया और उसकी प्रिया रानी का घोड़े के साथ समागम कराया गया \* जिससे उसका देहान्त होगया । रानी के मरने पर राजा पुत्र को राज्य देकर साधु हो इन धूर्तों की खूब पोल खोलने लगा उसी मत की चारवाक और आभाखक नाम से दो शाखायें प्रसिद्ध हुईं और उन्होंने इस प्रकार के श्लोक बना कर इस मत का खंडन करना आरम्भ कर दिया:-

न स्वर्गो नाऽपवर्गो वा नैवान्मा पारलौकिकः । नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥१॥ पशुश्चेन्नित्यतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति । स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥२॥ स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छे-  
युस्तत्र दानतः । प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥५॥ अग्निहोत्रं त्रयो वेदस्त्रिदशदं भस्मगुगुठनम् । बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकंति वृहस्पतिः ॥४॥  
त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भगवद् धूर्त निशाचराः जर्फरी तुर्फरीत्यादि पाण्डितानां वचः स्मृतम् ॥६॥

अर्थ:-स्वर्ग, अपवर्ग, आत्मा, परलोक और वर्णाश्रम का फल देने

\* बात्मीकि रामायण के बालकांड का ब्रह्म-प्रकरण बिल्कुल प्रामाण्य है, उस में रामचन्द्र की माता कौशल्या का भी धोड़ के साथ समागम कराया जाना लिखा है ।

वाली क्रिया कोई वस्तु नहीं है ॥ १ ॥ यदि यज्ञ में पशु मर कर स्वर्ग को जाता है तो यजमान अपने पिता को क्यों नहीं मार कर भेज देता ॥ २ ॥ यदि मर्त्यलोक के दान से स्वर्गस्थिति पितर तृप्त होते हैं तो खत पर बैठा हुआ पुरुष क्यों नहीं तृप्त होता ॥ ३ ॥ अग्निहोत्र, तीन वेद, तीन दण्ड और भस्म लगाना यह बुद्धि और पौरुष-हीन पुरुषों ने जीविकार्थ ढोंग रचलिये हैं ॥ ४ ॥ वेदों के बनाने वाले भांडू, धूर्त और राजस हैं और जर्फरी तुर्फरी पंडितों के वचन धूर्तता से भरे हुए हैं ।

यद्यपि चार्वाक मत ने वामसागं और उस की जैव \* और शाक्त बौद्ध अथवा जैन मत की दो शाखाओं का खण्डन किया परन्तु उसकी आत्मा उत्पत्ति और उसका काम आदि न मानने वाली शिक्षा ने मनुष्यों के ऊपर कुछ विशेष प्रभाव नहीं डाला । निदान कलियुग के ५४५ वर्ष बीतने पर 'कपिलवस्तु' के राजा शुद्धोदन के यहां महात्मा 'शाक्यमुनि' वा 'गौतम-बुद्ध' की उत्पत्ति हुई । महात्मा बुद्ध के चित्त पर जगत् की अनित्यता ने इतना प्रभाव जमाया कि वह अपने राज्य को छोड़कर वन में तप करने चले गये । जब उन्होंने ने अपने जीवन को अति शुद्ध और पवित्र बना लिया तो वामसागं को ससार से शून्य कर देने का उन्होंने बीड़ा उठाया और बौद्ध वा जैन धर्म की बुनियाद डाली तथा निम्न शिक्षाओं का देना आरम्भ किया:—

१—सब मनुष्य एक हैं और जातिभेद झूठे हैं । मोक्षप्राप्ति का उपाय यह है कि हम तृष्णा और विषय वासनाओं से बचे रहें । पवित्रता और धर्मभाव को अपने जीवन में दिखायें । पशुओं का बलिदान न करें और समस्त सृष्टि के साथ मित्रवत् वर्तें ॥ २ ॥

चारवाक मत देह की उत्पत्ति और नाश के साथ ही जीवात्मा की उत्पत्ति और नाश मानता है, परलोक और पुनर्जन्म नहीं मानता, एक प्रत्यक्ष प्रमाण मानता है परन्तु बौद्ध मत इस के प्रतिकूल जीवात्मा को अनादि, पुनर्जन्म, परलोक और निर्वाण ( मुक्ति ) एवं प्रत्यक्षादि चारों प्रमाण मानता है । शेष बातों में अर्थात् जगत् का कर्त्ता कोई ईश्वर नहीं है, वेद में पशु हिंसा का विधान है इसलिये उन्हें न मानना चाहिये; आदि बातों में दोनों बराबर हैं ।

\* यह लोग शिव के उपासक होते हैं भस्म लगाते हैं रुद्राक्ष समस्त शरीर में लपेटे रहते हैं ।

निदान बौद्धमत की सीधी सादी और पवित्र शिक्षा ने लोगों के चित्तों पर गहरा प्रभाव डाला और कुछ काल के अनन्तर भारत का अधिकांश जन-समुदाय बौद्ध मत में प्रविष्ट होकर ईश्वर और वेदों का विरोधी बन गया ।

बहुत से मनुष्यों का कथन है कि महात्मा बुद्ध वास्तव में नास्तिकनहीं थे । यद्यपि तप और योगाभ्यास से उन का जीवन आदर्शनीय और पवित्र होगया था परन्तु वे इतने विद्वान् नहीं थे जो वेदों के सत्य-अर्थ का प्रकाश मनुष्यों को दिखा सकें । निदान जब उन्होंने ने मांस-भक्षण और पशु-हिंसा का निषेध किया तो उन्हें उत्तर मिला कि यह वैदिक कर्म हैं और जब उन्होंने ने वेदों का खण्डन किया तो बतलाया गया कि वेद ईश्वर ने बनाये हैं । सम्भव है कि महात्मा बुद्ध ने वाममार्ग का खण्डन करने के लिये ही ईश्वर के अस्तित्व से इनकार कर दिया हो परन्तु निम्न प्रमाणों से विदित होता है वेदादि मत्त-शास्त्रों की वे बड़ी प्रतिष्ठा करते थे:-

महाशय आर० सो० दत्त “भारत की सभ्यता का इतिहास” नामक पुस्तक में लिखते हैं कि:- “बुद्ध मरते समय तक मानता रहा कि मैं केवल प्राचीन और पवित्र धर्म का जो कि ब्राह्मण आदि लोगों में प्रचलित रह चुका है उपदेश दे रहा हूँ” पृष्ठ ३८३ ॥

इसी प्रकार महा बुद्ध के अंगरेजी जीवन चरित्र में भी लिखा हुआ है:-

“बुद्ध ने जब ब्राह्मणों की पशुओं के मांस से हवन करते देखा तो कहा कि तुम यह दुष्ट-कार्य क्यों करते हो इसे छोड़ दो ब्राह्मणों ने कहा कि हमारे बड़े करते थे और शास्त्रानुकूल है तो बुद्ध ने कहा कि वेदों में जीवहिंसा को वर्जित किया है, प्राचीन आर्य ब्राह्मण, क्षत्रियादि मांस नहीं खाते थे जब से क्षत्रिय राजा लोग व्यभिचारी होगये हैं सभी से मांस खाना और मांस का हवन करना प्रचलित हुआ है” इत्यादि-

यह बड़े दुःख और शोक का स्थान है कि महात्मा बुद्ध ने स्व-लिखित कोई पुस्तक नहीं छोड़ी इसलिये उन के मिद्धान्त ठीक २ जानना कठिन है परन्तु उनकी मृत्यु के पीछे नास्तिकवाद ने बड़ा भयङ्कर रूप धारण किया, तथा ईश्वर और वेदों के वे लोग भारी

निन्दक बन गये। उस समय, आज कल की भांति, बौद्ध और जैन पृथक् २ दो मत नहीं थे परन्तु एक ही मत के दोनों पर्यायवाची शब्द माने जाते थे और ऐसा ही अमरकोष में लिखा मिलता है। राजा शिव-प्रसाद जी सितारे हिन्दू भी जो जैन थे लिखते हैं कि:-

“बौद्ध और जैनियों की पुस्तक मिलाने से और पुराने मन्दिर और मूर्ति देखने से इस बात में कुछ भी सन्देह बाकी नहीं रहता कि किसी समय यह दोनों मत एक थे, थोड़े दिनों से भेद पड़ा है”  
( देखो भूगोल हस्तामलक भाग पहिला नोट १ पृष्ठ १०१ )

निदान वेद और ईश्वर से विमुख मनुष्यों की जैसी दुर्दशा होनी चाहिये थी इन लोगों की भी वैसी ही दुर्दशा हुई। ईश्वर के स्थान में ये लोग अविद्यावश महात्मा बुद्ध तथा अनेक तीर्थङ्करों की मूर्तियों पूजने लगे। तथा और भी अनेक अविद्या की बातें इन में प्रविष्ट होगई जिन का पूर्ण वृत्तान्त इस मत की पुस्तकें देखने से विदित होता है।

जिस समय भारतवर्ष में चहुंओर बौद्धधर्म फैला तो मनुष्य ईश्वर से विमुख होकर जड़मूर्तियों का पूजन करने लगे।  
वेदों के उद्धारक सुब्रह्मण्य कुमारिल भट्टाचार्य— उस समय सन्ध्या, अग्निहोत्र आदि वैदिक कर्मों के करने वालों से भारत प्रायः शून्य हो चुका था।

काशी, कश्मीर तथा द्रविड़ आदि देशों में वैदिक धर्म के मानने वाले जो २ मनुष्य शेष रह गये थे उनकी संख्या नास्तिकों की अपेक्षा बहुत ही थोड़ी रह गई थी। यदि बौद्धों से इतर भारत में किसी दूसरे मत-वादियों की गणना की जाती थी तो वाममार्ग की शाखारूप शैव, शाक्त, पाशुपत, कापालिक आदि वेदविरोधी मत ही दृष्टि पड़ते थे, जो अहर्निश मद्यपान करने और मांस भक्षण करने में निमग्न रहते थे। भैरव के सामने द्विजों के गिर काट कर चढ़ाना ही कर्मकाण्ड की पराकाष्ठा समझी जाती थी। निदान ऐसे भयङ्कर समय में ब्राह्मणों ने फिर वैदिक धर्म के उद्धार का बीड़ा उठाया और एक ब्राह्मण-कुमार पं० कुमारिल नामक ने ब्रह्मचर्य आश्रम के समस्त नियमों को पूर्ण कर के वेद और शास्त्रों के रहस्यों से पूर्ण अभिज्ञ हो अपने जीवन को इस पवित्र काम के लिये अर्पण कर दिया। यह जनश्रुति अब तक चली जाती है कि एक दिन कुमारिल भट्टाचार्य किसी राजप्रासाद के

नीचे होकर चले जा रहे थे इतने में ही उस राजा की पुत्री के यह वचन उन के कर्णगोचर हुए:-

किं करोमि क्वगच्छामि कां वेदानुद्धरष्यति ।

अर्थात् क्या करूँ और कहां जाऊँ वेदों का अब कौन उद्धार करेगा:-

यह सुनकर कुमारिल तत्काल बोल उठे कि:-

मां चिन्त्य वरारोहे भट्टाचार्योऽसि भूतले ।

अर्थात् हे कुमारी ! कुछ चिन्ता मत कर, भट्टाचार्य अभी संसार में जीवित है ।

निदान कुमारिल जी ने वेद और आषंग्रन्थों के सूक्ष्म सिद्धान्तों का प्रचार मनुष्यों में करना आरम्भ कर दिया। यद्यपि कुमारिल असाधारण मेधावी और वेद, शास्त्रों के अद्वितीय पण्डित थे परन्तु वे बौद्धों के ग्रन्थों से भली भाँति अभिज्ञता नहीं रखते थे इसी लिये वे वेद शास्त्रों का खण्डन तो भली भाँति करते थे परन्तु जैन-ग्रन्थों का खण्डन यथोचित नहीं कर सके थे। अपनी इस न्यूनता को दूर करने के लिये उन्होंने निश्चय किया कि जब तक बौद्ध-ग्रन्थों को गुरुमुख हो कर न पढ़ा जावेगा तब तक इन का खण्डन भली भाँति न हो सकेगा। निदान अपनी इस अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये वे जैनियों की एक पाठशाला में पहुँचे और कुछ काल के अनन्तर जैन-शास्त्रों से पूर्ण अभिज्ञ हो गये। एक दिन कुमारिल के गुरु ने वेदों पर दोष लगा कर वैदिक धर्म को कुमार्ग सिद्ध किया, कुमारिल इस अपमान को न सह सके, उन का चेहरा क्रोध से सुर्ख हो गया और नेत्रों में पानी भर आया। निदान जैन लोग ताड़ गये कि यह बौद्ध नहीं है वरञ्च किसी ब्राह्मण का लड़का है, और उसी दिन से वे लोग कुमारिल को बध कर देने का उपाय सोचने लगे। एक दिन कुमारिल मन्दिर के एक ऊँचे प्रासाद के ऊपर बैठे कुछ सोच रहे थे कि इन “अहिंसा परमो धर्मः” माननेवाले विचार-शून्य-जैन-मतावलम्बियों ने उन्हें धक्का देकर नीचे गिरा दिया। नीचे गिरने ही कुमारिल के मुख से यह शब्द निकले-“क्या श्रुति अपने शरणागतों के दुःख नहीं काटती यदि वेद प्रमाण हैं तो मैं अवश्य जीता रहूँगा” यह शब्द प्रकट करते हैं कि कुमारिल का वेदों पर कितना गहरा विश्वास था। इस चोट से

उनकी एक आंख बैठगई और इसको भी वे अपने इस कर्म का फल बतलाया करते थे कि मैंने अपने को विना प्रकाश किये बौद्ध दर्शन पढ़े हैं।

इस प्रकार जैन मत के ग्रन्थ पढ़ कर कुमारिल ने वेदप्रचार का काम करना आरम्भ कर दिया और अपने निरन्तर उद्योग से बौद्ध धर्म को एक भारी धक्का लगाया। कुमारिल की विद्वत्ता को सुन कर बौद्ध मतानुयायी सुधन्वा राजा ने कुमारिल की अपनी सभा में बुलाया और बड़े आदर के साथ उन्हें विद्वानों में स्थान दिया। एक दिन जब कि राजसभा लगी हुई थी आम के वृक्ष पर से कीयल बोली; कुमारिल ने उस का शब्द सुन कर राजा को इस श्लोक से उपदेश दिया।

मलिनैश्चेन्न सङ्गस्ते नीचैः काक्कुलैः पिक । ॥

श्रुतिदूषक मिहार्दैः श्लाघनीयस्तदा भवेः ॥

अर्थात् हे कीयल 'यदि श्रुति (कान को पीड़ा देने का शब्द करनेवाले मलिन और नीच कौओं से तेरा संसर्ग न हो तब तू प्रशंसनीय हो।

श्रुति; वेद को भी कहते इस लिये कुमारिल ने उपर्युक्त श्लोक में राजा को बौद्धों के साथ संसर्ग न करने का उपदेश दिया। इस श्लोक को सुनते ही जैनमतावलम्बियों के चित्तों पर एक चोट लगी और क्रोध के मारे उन के नेत्रों से खून बरसने लगा। उन्होंने ने वैदिक धर्म को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिये कुमारिल पर बड़े २ प्रबल आपत्त प किये परन्तु कुमारिल ने शान्ति के साथ, सब को युक्ति पूर्वक उत्तर दे, उनका मुख बन्द करदिया। कुमारिल के उत्तर सुनकर सब के चित्त पर एक विशेष प्रभाव जम गया। और राजा ने उनका बौद्धों के साथ पुनः एक बृहत्तशास्त्रार्थ कराया। इस शास्त्रार्थ में दूर २ के जैन पंडित एकत्रित हुये। निदान यह शास्त्रार्थ कई दिन तक होता रहा। बौद्धों ने जो २ आपत्तप वैदिक धर्म पर किये कुमारिल ने उन का उत्तर युक्तिपूर्वक दिया और उस में बौद्धों को वेदों के सत्यार्थ का न समझने वाला सिद्ध कर दिया। फिर कुमारिल ने बौद्ध मत पर वे २ प्रबल आपत्त प किये कि जिन से बौद्ध धर्म दहला उठा और उस की रत्तार्थ विरोधियों से कोई उत्तर न बन आया। इस के पश्चात् राजा ने एक और शास्त्रार्थ कराया और उस में भी कुमारिल की ही विजयलाभ हुआ।



कुमारिल ने शास्त्रार्थों में विजयी होकर जैमिनि मुनि के मीमांसा दर्शन और आश्वलायन गृह्यसूत्रों पर घालिक लिखे, बहुतसे अलङ्कारों को जो वेद और शास्त्रों में आते हैं विस्पष्ट किया। इन्द्र और अहल्या की कथा का जो महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में सत्य अर्थ किया है उनसे पहिले कुमारिल इसकी व्याख्या कर गये हैं। वे लिखते हैं कि:—

प्रजा पतिस्तावत्प्रजापालनाधिकारात् आदित्य एतोच्यते। सचारुणोदय वेलयामुपममुद्यन्तभ्येति सा तदागमनादेवोपजायत इति तद् बुद्धित्वेन व्यपदिश्यते। तस्यां चारुण किंयाग्यवीजनिक्षेपात् स्त्रिपुरुषसंयोग-वदुपचारः। एवं समस्ततेजाः परमेश्वरत्वनिबिन्द्रेन्द्र शब्द वाच्यः सवित्रेवाह निलीयमानतया रात्रोरहल्याशब्दवाच्यायाः क्षयान्मकनरगडेतुत्वात् जीर्यस्थस्मादनेनवोदितेनवत्पहल्याजार इत्युच्यते न परस्त्रीव्यभिचारात्॥

इस का अर्थ हम पहले लिख चुके हैं उस से विशेष कुछ नहीं है॥

कुमारिल का वेद, ईश्वर, पुनर्जन्म आदि वैदिक सिद्धान्तों पर पूरा विश्वास था। निदान जब वे अपना काम कर चुके तो उन्होंने ने छल से जैन शास्त्र पढ़ने का यह प्रायश्चित्त निश्चित किया कि जीवित शरीर को तुपानल (चावलों के छिल की अग्नि) में जला दिया जावे। निदान वे अपने जीवन का यह अन्तिम दृश्य दिखला कर संसार से सदैव के लिये विदा होगये।

दक्षिण देश के मालावार प्रान्त के पूर्णा-नदी-के तटस्थ कालटी

अवैश्विक मतां के उच्छेदक  
स्वामी शङ्कराचार्य और  
उनके मायावाह की शिक्षा

ग्राम में शिवगुरु नामक एक विद्वान् ब्राह्मण के घर एक बालक का जन्म हुआ। माता पिता ने नामकरण संस्कार करके बच्चे का नाम शङ्कर रक्खा, पर शोक कि जिस समय शङ्कर की अवस्था केवल तीन वर्ष की थी शिवगुरु इस असार संसार को छोड़ परलोकवासी होगये। विधवा माता इस बालक की असाधारण चेष्टाओं से जो प्रायः होनहार बच्चों में पाई जाती हैं आनन्द और प्रमोद का अनुभव किया करती थी। यद्यपि शङ्कर के बाल्य काल के वृत्तान्त नहीं मिलते परन्तु हमारा विश्वास है कि वे बहुत मनोहर होंगे। शङ्कर की माता आज कल की स्त्रियों की भांति मूर्खी न थीं, उन्होंने शङ्कर की स्वयं

शिक्षा देनी आरम्भ की और जब उनकी अवस्था ५ वर्ष की हुई तो उपनयन संस्कार करा, हाथ में दण्ड और कमण्डलु दे, ब्रह्मचारी बना उन्हें गुरुकुल में पढ़ने भेज दिया। माता से विदा हो शङ्कर गुरुकुल में पहुँचे और वहाँ रह कर विद्याध्ययन में अभ्यास करने लगे। शङ्कर की असाधारण मेधा मनुष्यों को आश्चर्य में डालने वाली थी इसी लिये इनके आचार्य ने प्रति सावधानी से इन्हें शिक्षा देनी आरम्भ की जिसका परिणाम यह हुआ कि साधारणतया थोड़े ही समय में अनेक शास्त्रों के सूक्ष्म रहस्य उन्होंने धारण कर लिये। जब शङ्कर विद्या पढ़ कर गुरुकुल से लौटे तो वैदिक धर्म के उद्धार का उन्होंने ने दृढ़ निश्चय कर लिया। समावर्तन के पीछे कुछ काल तक स्वातन्त्र्य ब्रह्मचारी रहकर वे विद्यार्थियों को पढ़ाने लगे और उस से जो समय मिलता उसे बौद्ध-धर्म के ग्रन्थों का विचार करने में व्यतीत करते थे। थोड़े ही दिनों में शङ्कर की विद्वत्ता का प्रकाश समस्त मालावार में फैल गया और वहाँ के राजा ने इन के लिये बुलावा भेजा एवं अपनी सभा का सभ्य बनाने की भी प्रार्थना की। शङ्कर ने इस के उत्तर में राजा को कहला भेजा कि आप अपनी प्रजा के पिता हैं, आपके लिये यह उचित नहीं कि हमें अपने कर्म छोड़ने का उपदेश करें। राजा का मन्त्री यह वक्तृता सुन, उन्हें प्रणाम कर वहाँ से चल दिया और राजा को समस्त वृत्तान्त जा सुनाया। यह सुन कर राजा के चित्त में शङ्कर की ओर से भारी प्रतिष्ठा जम गई और वह स्वयं शंकर से भेंट करने चला आया। शंकर की आयु इस समय १६ वर्ष से अधिक न थी अतएव राजा ने इनकी आयु और विद्या को देख परमाश्चर्य किया। शंकर ने बड़े आदरसे राजा की स्वागत कर के कुशलसेन पूछी और दोनों एक ही आसन पर बैठ गये। बैठते ही राजा ने दश सहस्र मुहरें और अपने तीन नाटक उनकी भेंट किये। शंकर ने नाटक तो ले लिये परन्तु मुहरें फेर दीं और कहा कि एक स्नातक के लिये इनका अपने पास रखना हानि और पाप का कारण है, आप यह धन किसी गृहस्थ को दें जो अपने कुटुम्ब के भरण पोषण में इसे लगा कर आप को आशीर्वाद दे। इस के पश्चात् शङ्कर ने उन नाटकों को सुना और उन की बड़ी प्रशंसा की। शोक कि उन

नाटकों का इस समय कुछ पता नहीं चलता। शंकरदिग्विजय से इतना ही मालूम होता है कि यह नाटक अपनी उपमा नहीं रखते थे। देर तक राजा और शंकर परस्पर वार्त्तालाप करते रहे अन्ततः राजा ने आज्ञा मांगी और शंकर ने आशीर्वाद दिया इस पर राजा ने कहा कि महाराज मेरे सन्तति नहीं होती आप कोई विधान बतावें तब शंकर ने राजा की पुत्रेष्टि यज्ञ का उपदेश कर के बड़े आदर के साथ उसे विदा कर दिया।

शंकर की महती अभिलाषा यह थी संन्यास लेकर बौद्धों की भारत से निकाला जावे परन्तु उन की माता इस के प्रतिकूल उन्हें गृहस्थ बनाने का आग्रह कर रही थीं। निदान शंकर ने माता को समझा बुझा कर उन्हें अपने अनुकूल कर लिया और माता ने इसके उपलक्ष में उन से दो प्रतिज्ञायें लेलीं कि एक तो जब मैं चाहूं मुझ से मिल जाना दूसरे मेरे मरने पर मेरा अग्निसंस्कार अपने हाथों से करना।

अपनी माता से प्रतिज्ञा कर के शंकर अपने बन्धुओं की ओर प्रवृत्त हुए और उन्हें अपनी माता की सौंप के अन्तिम प्रणाम किया। शंकर की माता उस समय मुक्तकण्ठ से रो रही थी। ऐसे अवसर पर शङ्कर ने बड़े धैर्य से अपने आप को वश में रक्खा और बन्धुओं की अभिवादन कर के अपने उद्देश्य की सिद्धार्थ घर से चल निकले। शङ्कर के चले जाने पर अनेक लोग उन्हें कटुवचनों से स्मरण करने थे और कहते थे कि यह नीच पुरुष अपनी माता की झीड़ पाखण्ड-जाल में जा फँसा है।

निदान शंकर, घर से चलकर, ब्रह्मविद्या की प्राप्त्यर्थ, आरण्य में पहुंचे और वहां गोविन्दाचार्य नामक प्रसिद्ध योगि-राज के समीप पहुंच कर अपने उद्देश्यों का वर्णन किया। गोविन्दाचार्य शंकर के विचारों की सुन अति प्रसन्न हुए और उन्हें संन्यास आश्रम में प्रवेश करा उनका नाम स्वामी शंकराचार्य रख दिया। स्वामी शङ्कराचार्य वहां कुछ दिन रह कर अपने सन्देशों के निवृत्त करने तथा योगाभ्यास और वेदान्त-शास्त्र के पठनपाठन में लगे रहे। जब गोविन्दाचार्यने देखा कि शंकर अपने सब सन्देश निवृत्त कर चुके हैं तो उन्हें वैदिक धर्म का प्रचार करने की अनुमति दे दी।

निदान गुरु की आज्ञा पा, उनके चरणों पर शिर धर और उन्हें अभिवादन करके स्वामी शङ्कराचार्य जी वैदिक धर्म के प्रचारार्थ काशी की ओर पधारे। वहाँ कुछ काल की स्थिति के पश्चात् उनकी योग्यता, विद्वत्ता और उदासीनता की धूम चहुँओर फैल गई, और आपने भी वहाँ के विद्वानों और संन्यासियों के सत्संग से बहुत कुछ लाभ उठाया। उस समय नास्तिक-वाद का प्रवाह बड़े प्रबल आवेग से भारत में बह रहा था। बौद्ध-मत की शिक्षा ने मनुष्यों को ईश्वर से विमुख कर के उनके हृदयस्थल पर जगत् की नित्यता का विश्वास जमा रक्खा था। निदान स्वामी शङ्कराचार्य ने निश्चय किया जब तक अद्वैत मत की पुष्टि करके जगत् को मिथ्या सिद्ध न किया जावेगा तब तक बौद्धादि नास्तिक मतों का सामना हम न कर सकेंगे, और यह भी आवश्यक है कि अद्वैत मत की पुष्टि में कुछ भाष्य भी विद्यमान हों। इस अभिप्राय को पूर्ण करने के लिये शङ्कर स्वामी ने ऐसे स्थान पर रहना चाहा जहाँ का जल, वायु उत्तम हो, और काशी की अपेक्षा वह स्थान एकान्त देश में भी स्थित हो। निदान ऐसा स्थान उन्हें बदरीनारायण से बढ़ कर अन्य दृष्टि नहीं आया, अतएव तत्काल उन्होंने व्यास प्रभृति महर्षियों के पवित्र आश्रम बदरीनारायण की ओर प्रस्थान कर दिया। वहाँ पहुँच कर आपने नये सिरे से उपनिषदों पर विचार किया और फिर वेदान्त सूत्रों, उपनिषदों और महाभारत के एक भाग भगवद्गीता पर अद्वैत मत के पोषक भाष्य लिखे। बदरीनारायण में स्वामी शङ्कराचार्य जी का पाशुपत मतावलम्बियों का एक अच्छा शास्त्रार्थ हुआ परन्तु इनकी प्रबल युक्तियों के सामने वे अपने मत की यौक्तिक सिद्धि न कर सके।

इस समय स्वामी शङ्कराचार्य जी की अपनी शक्ति और विद्वत्ता पर पूरा भरोसा होगया। कई एक विद्वान् भी आपके साथ काम करने के लिये सम्मिलित होचुके थे। अब उन्होंने अद्वैत मत के प्रचार और वेद-विरुद्ध मतों के ध्वस्त करने का निश्चय कर लिया। इस काम को आरम्भ करने के पहिले उन्होंने उचित समझा कि उन के साथ ऐसे विद्वानों का समूह होजाय जिन्होंने अपनी तपस्या और विद्वत्ता के कारण देश में प्रसिद्धि लाभ की हो। उस समय कुमारिल-

भट्टाचार्य; अपने गुणों से देश में प्रसिद्ध हो रहे थे, निदान शङ्कर स्वामी ने उन्हें अपने उद्देश्य का सहायक बनाना स्थिर किया, और इसी अभिप्राय से वे दक्षिण की ओर प्रस्थित हुए। जिन कुमारिल के प्रयत्न से वैदिक कर्मकाण्ड का देश में पुनः प्रचार हुआ था, जिन कुमारिल के प्रयास से देवताओं की पुनः यज्ञ के भाग मिलने लगे थे, जिन कुमारिल ने वेदों की रक्षार्थ बड़े-२ कष्ट सहन किये थे और जो कुमारिल वैदिक धर्म को पुनर्जीवित करने के कारण भट्ट पाद और सुब्रह्मण्य के नाम से विख्यात हो रहे थे; मार्ग में शङ्कर स्वामी ने बड़े शोक के साथ सुना कि वे ही कुमारिल तुषानल में जल रहे हैं। यह बात सुन कर शङ्कर स्वामी को बड़ा शोक हुआ और उन की समस्त आशाएँ निराशाओं में परिवर्तित होगईं। इस भयानक समाचार की सुनकर उन्हें मार्ग के परिश्रम का कुछ ध्यान न रहा और वे सीधे उस ओर की प्रस्थित हुए जहाँ बैठे कुमारिल अपना प्रायश्चित्त कर रहे थे। उनके वहाँ पहुँचते ही तृषों में अग्नि देदी गई थी जो शनैः २ धक २ करके जल रही थी और उस के मध्य वेदों उद्धारक कुमारिल बड़ी शान्ति के साथ बैठे हुए थे। उस समय कुमारिल के मुख पर अद्भुत तेज चमक रहा था और उन की शिष्य और मित्र-मंडली के लोग अग्नि के चहुँओर फूट २ कर रो रहे थे। कुमारिल की इस ईश्वर-निष्ठा एवं पवित्रता की देख शङ्कर स्वामी के जीवन ने एक पलटा खाया और वे कुमारिल को देखकर कहने लगे हे सुब्रह्मण्य ! तूने वेदों की भीमांसा की, मनुष्यों को कुमार्ग से हटा सुमार्ग पर लाया, वेदों का उद्धार करना तेरा ही काम था शास्त्रों पर इतनी अट्टा तुझ ही में देखी है।

यद्यपि कुमारिल ने शंकर की इससे पूर्व नहीं देखा था परन्तु इन की ख्याति उन के कानों तक पहुँच चुकी थी। जब उन्होंने ने देखा कि शंकर स्वामी मेरे पास खड़े हैं वे बड़े प्रसन्न हुए और शिष्यों सहित उन की अति पूजा की। शंकर स्वामी ने कुमारिल को अपना भाष्य दिखाया जिसे देख वे बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि जगत् में दुर्ध पुरुष ईर्ष्या करते हैं परन्तु बुद्धिमान् इस में नहीं गिरते यदि अनुचित न माना जावे तो कह सका हूँ कि मैं अध्यास भाष्य पर आठ सहस्र वार्तिक लिख सका हूँ। यद्यपि शंकर स्वामी ने बहुतेरा

चाहा कि कुमारिल अपने विचार को बदल कर उन के सहायक बनें और अनेक भांति उन्हें उत्साह दिलाया परन्तु वे अपने वर्तव्य से तनिक भी विचलित न हुए और शान्ति के साथ यही उत्तर दिया कि मुझे धर्म की मर्यादा पर स्थिर रहना बड़ा प्यारा है, यह मेरा निर्णय नहीं, अपितु, शास्त्र का निर्णय है और इस का उल्लङ्घन करना मुझे कदापि सख्त नहीं है। यदि आप वैदिक धर्म का प्रचार और बौद्धों को पराजित करना चाहते हैं तो मरुडन मिश्रको अपने साथ मिलायें वह मेरा योग्य शिष्य और सब शास्त्रों का ज्ञाता है वह आप के भाष्य पर उत्तम वार्त्तिक रचेगा। अब जब तक मेरा शरीर भस्म न हो आप मेरे सम्मुख खड़े रहें मुझे आप से बड़ी प्रीति है क्योंकि आप ने वेदों के उद्धार का भरपूर खड़ा किया है।

इतनी वक्तृता के पश्चात् दोनों चुप होगये और तुषाग्नि प्रतिज्ञा अधिक तीव्र होती गई। परन्तु कुमारिल धीरभाव से सब को रोते देखते हुए परमात्मा के ध्यान में मग्न थे। उन्हें विश्वास था कि मैंने जीवन के उद्देश्य को पूरा कर लिया है और शाश्वत जीवन की ओर जा रहा हूँ। उस समय वे अग्नि को अग्नि नहीं समझते थे किन्तु समझते थे कि दुःख दूर करने वाली माता की गोद में बैठा हूँ। निदान उस समय उन की सृष्ट्यु का दृश्य समीपस्थ बहुतसी पवित्रात्माओं विशेष कर स्वा० शङ्कराचार्य जी के जीवन की पलटा दे रहा था।

जब कुमारिल का शरीर भस्म हो गया तो शङ्कर स्वामी प्रयाग से माहिष्मती नगरी की ओर प्रस्थित हुए और वहाँ पहुँच कर मरुडन-मिश्र से शास्त्रार्थ करने की अभिलाषा इस प्रतिज्ञा के साथ प्रकट की कि यदि मेरा पराजय हुआ तो मैं गृहस्थ बनूँगा और तुम पराजित हुए तो गृहस्थ छोड़ कर तुम्हें संन्यासी बनना पड़ेगा। निदान मरुडन मिश्र की परम-विदुषी स्त्री सरस्वती को शास्त्रार्थ का मध्यस्थ बनाया गया और फिर दोनों के मध्य शास्त्रार्थ होने लगा।

शङ्कर स्वामी का मत-ब्रह्म एक ही है वही अविद्या से जगत् रूप प्रतीत होता है जिस प्रकार कि सीप; भ्रान्ति से चान्दी प्रतीत होती है। उस के ज्ञान से प्रपञ्च का लय हो जाता है और स्वात्मा में स्थिति होती है यही मुक्ति है जिस से फिर जन्म नहीं होता—

मण्डन मिश्र का मतः—निर्विशेष ब्रह्म में प्रमाण नहीं हो सके क्योंकि शब्दों की शक्ति कार्य के बोधन करने में है इस लिये सारा कर्म वेद का ही बोधक है और उसी के अनुष्ठान से मुक्ति होती है।

निदान यह शास्त्रार्थ कई दिन तक होता रहा अन्त में स्वामी शंकराचार्य जी का मत प्रबल रहा। पति के पराजित होने पर सरस्वती ने स्वयं शंकर स्वामी से शास्त्रार्थ किया और सत्तरह दिन तक यह शास्त्रार्थ भिन्न २ विषयों पर होता रहा परन्तु अन्तिम स्वामी शंकराचार्य, इस में भी विजयी हुये और सब ने उन की छोटी सी आयु और अगाध पारिहृत्य पर परमाश्चर्य किया।

अब हम मण्डन मिश्र और स्वा० शङ्कराचार्य के कतिपय प्रश्नोत्तरों का सारांश यहां लिखते हैं :—

(मण्डन मिश्र) आप जीव और ईश्वर की एकता बताते हैं इस में कोई प्रमाण दीजिये (शंकर स्वामी) उद्दालक ने श्वेतुकेतु को उपदेश किया है कि हे सोम्य 'तत्त्वमसि ✽' अर्थात् तू वह [परमेश्वर] है (मं० मि०) ऐसे वचन केवल जप के लिये हैं उन के जप से पाप दूर होते हैं ये किसी अर्थ की विवक्षा से नहीं बोले गये "जैसे 'हुं' और और 'फट्' (शं० स्वा०) हुं, फट आदि शब्दों में अर्थ की प्रतीति न होने से इन्हें जपोपयोगी कहा है परन्तु उपनिषद् के इस वचन के अर्थ स्पष्ट हैं फिर यह कैसे जपोपयोगी हो सक्ता है (मं० मि०) तत्त्वमसि शब्द आत्मा की नित्यता प्रकट करता है और आत्मा को नित्य समझने से मनुष्य पारलौकिक कर्मों में तत्पर होता है (शं० स्वा०) कर्मकाण्ड के अर्थवाद तो कर्म का अङ्ग बन सक्ते हैं क्योंकि वे इसी प्रकरण में आये हैं परन्तु जीव और ब्रह्म की एकता के बोधक वचन प्रकार कर्मकाण्ड का अंग बन सक्ते हैं जिनका प्रकरण सर्वथा पृथक् है॥

टिप्पणी—प्रथम तो तत्त्वमसि शब्द वेदवाक्य नहीं, छान्दोग्योपनिषद् का वचन है द्वितीय तत् शब्द से ब्रह्म की अनुवृत्ति लेना प्रकरण के विरुद्ध है क्योंकि छान्दोग्योपनिषद् के छठे प्रपाठक में जहां तत्त्वमसि शब्द आया है जीवात्मा का वर्णन है नकि परमात्मा का "स तथा तत्र नादृश्येत तदात्म्यमिदं३ सर्वं सत्ये३ स आत्मा तत्त्व-

मसि श्वेतकेतो ! ” अर्थात् तप्त फरसे के ग्रहण से जो नहीं जलता वही सत्य और सूक्ष्म जीवात्मा है श्वेतकेतो तू है । यहां शंकर स्वामी ने आत्मा से ब्रह्म का ग्रहण किया है वह प्रकरण के विरुद्ध है इस से पहले मन्त्रों में अनेक दृष्टान्त देकर जीवात्मा को अजर, अमर और परमात्मा से भिन्न सिद्ध किया है जिन्हें आवश्यकता ही छान्दोग्य उपनिषद् देखलें ।

इस में एक शङ्का होसक्ती है और वह यह कि ‘ तत् ’ शब्द अव्यय है अतः श्वेतकेतु के लिये सः पुल्लिङ्ग शब्द आना चाहिये या अर्थात् तत्त्वमसि के स्थान में सत्त्वमसि होना चाहिये था। परन्तु जानना चाहिये यहां आत्मा का वर्णन है जो स्त्री, पुरुष आदि कोई लिङ्ग नहीं वरन् अव्यय है अतएव यहां “ तत्त्वमसि ” शब्द का प्रयोग सर्वथा प्रकरण के अनुकूल और उचित है । मण्डन मिश्र का भी हुं, फट् की तरह तत्त्वमसि को व्यर्थ बताना निरर्थक था इसीलिये स्वा० शंकराचार्य ने उस का खण्डन कर दिया ।

( सं० मि० ) ‘ द्वा सुपर्णा सयुजा सखायाऽ+ ’ इस श्रुति से जीव और ईश्वर का भेद सिद्ध होता है ( शं० स्वा० ) यद्यपि यह मंत्र जीव, ब्रह्म में प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध भेद को प्रकट करता है परन्तु इस का मुख्य अभिप्राय भेद को सिद्ध करना नहीं । वास्तव में यह मंत्र आत्मा को अन्तःकरण से पृथक् बताने का उसका सब प्रकार के भोगों से पृथक् रहना बतलाता है अर्थात् भोगनेवाला अन्तःकरण है और आत्मा उसे देख रहा है ( सं० मि० ) यदि यह श्रुति जीव, ब्रह्म को प्रकट नहीं करती तो इस का अर्थ यह हुआ कि चेतन जीवात्मा नहीं वरन् जड़ अन्तःकरण भोगता है ( शं० स्वा० ) जैसे लोहा आग के साथ मिलने से जलाने वाला बन जाता है वैसे ही अन्तःकरण भी चेतन के साथ भोक्ता बन जाता है ।

टिप्पणी—यद्यपि मण्डन ने इस मन्त्र को अन्तःकरण और जीव-परक ही जान लिया जैसा कि माधवीय शंकर-दिग्विजय में लिखा है परन्तु हमारी सम्मति में यह दृष्टान्त निबल है । यदि अग्नि के संयोग से लौह में दाहक शक्ति उत्पन्न होजाती है तो उसे कोई लोहे का

+ इस श्रुति का पूरी उद्धृत कर, हम इस का अर्थ जीव, ईश्वर और प्रकृति के अनादि प्रकरण में लिख चुके हैं ।



धर्म नहीं कह सका अपितु उस से किसी वस्तु का जलना अग्नि का ही धर्म माना जाता है। द्वितीय यदि परमात्मा के स्थान में जीव को ही साक्षी मान लिया जावे तो कई दोष आते हैं प्रथम तो मन की गति, इन्द्रियों के अन्तर्विकार, सुख, दुःख, इच्छा और द्वेष आदि लक्षण जो जीव के शास्त्रों में लिखे हैं वे जीव में असम्भव हो जायेंगे क्योंकि इन्द्रिय आदि जड़पदार्थ जीवात्मा के विषय भोग के साधन हैं वे भोक्ता कदापि नहीं होसकें। द्वितीय यदि बुद्धि का, जीव के साथ नित्य सम्बन्ध माना जावे तो शंकर स्वामी की मुक्ति का खण्डन हो जायगा तृतीय उपर्युक्त मन्त्र से आगे श्वेताश्वतर में “समाने वृक्षो पुरुषो निमग्नो” मन्त्र में जीवात्मा का वर्णन आया है अतएव अन्तःकरण को भोक्ता मानना प्रकरण के भी विरुद्ध होगा।

उपर्युक्त प्रश्नोत्तरों से प्रकट है कि मण्डन मिश्र ने या तो छान्दोग्य उपनिषद् को विचारा नहीं था या साधवाचार्य जी ने जो अद्वैत वादी थे मण्डन की प्रबल युक्तियों का सङ्ग्रह नहीं किया है। अब हम नवीन वेदान्तियों के प्रश्न तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के उत्तरों का कुछ अंश सत्यार्थ प्रकाश से यहां उद्धृत करते हैं।

(प्रश्न) मुक्ति किस को प्राप्त नहीं होती (उत्तर) जो बद्ध है (प्र०) बद्ध कौन है (उ०) अज्ञान में फंसा जीव (प्र०) बन्ध, भोक्तृ स्वभाव से होता है ? (उ०) निमित्त से, यदि स्वभाव से हो तो बन्ध और मुक्ति की कभी निवृत्ति न हो (प्र०) जीव ब्रह्म होने से न आवरण में आता न जन्म लेता न बन्ध है और न कभी इसकी मुक्ति है (उ०) यह नवीन वेदान्तियों का कथन सत्य नहीं जीव का स्वरूप अल्प होने से आवरण में आता, शरीर के साथ प्रकट होने रूप जन्म लेता, कर्मों के फल भोग रूप बन्धन में फंसा और उससे छूट कर मुक्तिसुख भी भोगता है (प्र०) यह सब धर्म देह और अन्तःकरण के हैं जीव तो पाप पुण्य से रहित साक्षिमात्र है (उ०) देह और अन्तःकरण जड़ हैं उन्हें शीतोष्णप्राप्ति और भोग नहीं हैं, जो चेतन प्राणी, उन्हें स्पृश करता है उसी को शीतोष्ण का भान होता है वैसे ही प्राण भी जड़ हैं उन्हें क्षुधा पिपासा नहीं लगती किन्तु प्राण वाले जीव को लगती है (प्र०) जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है जैसे दर्पण के टूटने से जीव की

हानि नहीं होती इसी प्रकार अन्तःकरण में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव जब तक है तब तक वह अन्तःकरणोपाधि है जब अन्तःकरण नष्ट होगया तब जीव मुक्त है । ( ३० ) प्रतिबिम्ब साकार का साकार में होता है ब्रह्म निराकार है उसका प्रतिबिम्ब नहीं होसका ( प्र० ) जैसे स्वच्छ जल में निराकार आकाश का आभास पड़ता है वैसे ही स्वच्छ अन्तःकरण में परमात्मा का आभास जीव है । ( ३० ) यह वाल बुद्धि का मिथ्या प्रलाप है । जब आकाश से स्थूल वायु को नहीं देखा जासक्ता तब निराकार आकाश कैसे देखा जासक्ता है ( प्र० ) तो यह नीला और धुंधला जो दीखता है आकाश नहीं है ( ३० ) नहीं यह पृथ्वी, जल और अग्नि के त्रसरेणु हैं इसमें नीला जल और धुंधला पन पृथ्वी से उड़ी हुई धूलि है ।

इस के आगे स्वामी जी नवीन वेदान्तपर इस प्रकार शंका करते हैं ( प्रश्न ) जीव किस को कहते हो ( नवीन ) अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन को ( प्र० ) अन्तःकरणावच्छिन्न दूसरा है वा वही ब्रह्म ( नवीन ) वही ब्रह्म है ( प्र० ) तौ क्या ब्रह्म ही ने अपने में भूटी कल्पना करली ( नवीन ) हो, ब्रह्म की इस से क्या हानि ( प्र० ) जो मिथ्या कल्पना करता है क्या वह भूटा नहीं ( नवीन ) नहीं मन वाणी में कथित वा कल्पित सब भूटी है ( प्र० ) फिर मन वाणी से भूटी कल्पना करने और मिथ्या बोलने वाला ब्रह्म कल्पित और मिथ्या-वादी हुआ या नहीं ? वाहरे भूटे वेदान्तियो ! तुमने सत्यस्वरूप, सत्यकाम और सत्यसंक्रम परमात्मा को मिथ्याचारी कर दिया, क्या यह तुम्हारी दुर्गति का कारण नहीं है ? इत्यादि २ ॥

निदान कुछ ही कारण हो, स्वामी शंकराचार्य ने मण्डनमिश्र को जीत कर, उन्हें मन्त्र्यासी बना, उन का नाम सुरेश्वराचार्य रख दिया । इस शास्त्रार्थ में विजय पाने से शंकर स्वामी की प्रसिद्धि समस्त आर्यावर्त में फैल गई । जब शंकर स्वामी के साथ काम करने के लिये कई विद्वान् एकत्रित होगये तो उन्होंने ने नियमानुसार कार्य करना आरम्भ किया और उज्जैन नगरी में राजा सुधन्वा के पास ( जिसे कुमारिल ने वेदमत का प्रेमी बनादिया था ) पधारे । यहां आकर उन का फिर जैन मत वालों से एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ । स्था०

शङ्कराचार्य जी का सिद्धान्त ईश्वर और वेद मत का स्थापन करने के अतिरिक्त परमात्मा को जगत् का कर्त्ता सिद्ध करना था इस के विपरीत जैनियों का सिद्धान्त था कि सृष्टि का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं है, यह जगत् और जीव केवल दो ही अनादि हैं इन दोनों की उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता । इस के अतिरिक्त एक पक्ष दूसरे मत का खण्डन भी करता था यह शास्त्रार्थ कई दिन तक होता रहा अन्त में जैनियों को बड़ी भारी पराजय प्राप्त हुई । इस के पश्चात् राजा सुधन्वा ने वेद मत स्वीकार कर लिया और अपने अन्य दृष्ट मित्र राजाओं को लिख कर शास्त्रार्थ कराये जिन में स्वा० शङ्कराचार्य की बराबर विजय प्राप्त होता चला गया । उस समय से सब के यज्ञोपवीत होने लगे और प्रति दिन इतने पतित शुद्ध होते थे कि विशेष विधि के साथ प्रायश्चित्त न होकर केवल शङ्खध्वनि की जाती थी और जिन २ के कान में वह ध्वनि पड़ती थी वे उसी समय में अपने को वैदिक धर्मानुयायी समझने लगते थे । स्वामी शङ्कराचार्य ने उस समय जैनमन्दिरों में जितनी मूर्तियां पाईं तुड़वा २ कर सब को फिंकवा दिया परन्तु विशाल जैनमन्दिरों को, उन में वैदिक पाठशालाएँ खोलने के अभिप्राय से कोई आघात न पहुंचाया गया । निदान सुधन्वादि राजाओं ने शङ्कर स्वामी के सर्वत्र आर्यावत्त में घूमने का प्रबन्ध कर दिया और उन की रक्षार्थ नौकर चाकर भी रख दिये । वहां से चल और रामेश्वर में पहुंच कर उन्होंने ने शाक्त-मत का खण्डन किया और बहुत से मनुष्यों को वैदिक धर्म बनाया, फिर पाण्ड्य, चौल और द्रविड़ देशों में प्रचार करते हुए हस्ती पर्वत पर काञ्ची नगरी में पहुंचे और वहां एक मठ स्थापन किया । इसी प्रकार आन्ध्रदेशों में प्रचार करते और वेङ्कटाचल से होते हुये विदर्भ ( विहार ) की राजधानी में पहुंचे, यहां आप के शिष्यों ने भैरव मत का बड़े जोर शोर के साथ खण्डन किया यहां से आप का विचार कणाटक जाने का हुआ परन्तु विदर्भ के राजा ने वहां जाने से रोका और कहा कि उस जगह कापालिक लोग अधिकता से रहते हैं और वे वेदों के बड़े विरोधी हैं परन्तु सुधन्वा ने इस की कुछ अपेक्षा न कर के कहा कि आप मेरी विद्यमानता में सब जगह

वैदिक धर्म का प्रचार कर सकते हैं। निदान वे अपने विचारों से विश्रुत न होकर सीधे कर्णाटक की ओर चल दिये। इन के वहां पहुंचते ही कापालिकों में एक प्रकार की खलबली मच गई। एक दिन कापालिकों का गुरु ऋषभ नामक भस्म रमाये तथा हाथ में मनुष्य की खोपड़ी और त्रिशूल लिये बहुत से शिष्यों के साथ स्वा० शंकराचार्य जी के पास आया और उन्हें सम्बोधन कर के कहने लगा कि जो भस्म तूने रमाया है वह तो ठीक है परन्तु पवित्र खोपड़ी छोड़ कर अपवित्र कमण्डलु क्यों पकड़ा है और तू भैरव की उपासना क्यों नहीं करता जब तक मनुष्य नर कपाल को रुधिर से भर कर मद्य से भैरव की पूजा नहीं करता, वे प्रसन्न नहीं होते। राजा सुधन्वा ने उस की यह असम्भ्यता देख तत्काल नौकरों को आज्ञा दे उसे सभा से निकलवा दिया। इस पर ऋषभ को बड़ा क्रोध आया उसकी आंखें लाल हो गईं और अपनी कुल्हाड़ी उठा उसने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं तुम्हारे शिरों को इस कुठार से न काट डालूं तो मेरा नाम ऋषभ नहीं, यह कहकर वह चला गया और थोड़ी देर पीछे बहुत से अनुयायियों को सज्जद करके शंकराचार्य से लड़ने ले आया। यह सारे पुरुष मद्य पिये और भैरव की जय मनाते हुए चले आ रहे थे। राजा सुधन्वा ने उन्हें आते ही अपने सैनिकों को लड़ने की आज्ञा दी, इधर ऋषभ ने बहुत से शिष्यों को राजा सुधन्वा की सेना के आगे कर के दूसरी ओर से शंकर स्वामी के ऊपर आक्रमण कर दिया। स्वा० शंकराचार्य जी के प्राण उस समय संकट में पड़ गये थे परन्तु उन्होंने दिखा दिया कि वे न केवल शास्त्रार्थ, वरञ्च शस्त्रार्थ करने में भी विरोधियों को पराजित कर सकते हैं। इस समय स्वा० शंकराचार्य ने मानों विप्र द्रोणाचार्य का रूप धारण कर रक्खा था और आपने कुछकाल में ही बाहुबल से लगभग समस्त कापालिकों को मृत और आहत कर दिया। निदान ऋषभ इस लड़ाई में काम आया और उस के पश्चात् पद्मपादादि शंकर स्वामी के शिष्यों ने कापालिक मत का बड़े जोर शोर से खण्डन करना आरम्भ कर दिया। उन के उपदेशों से बहुत से कापालिक गुदगुद हुए और उन के उपनयन आदि संस्कार कराये गये तथा पञ्च महायज्ञों के करने का उपदेश किया गया। यहां से वे पश्चिम की ओर चले गये और वहां गोकर्णस्थान पर नीलकण्ठ नामक विद्वान्

से जो शैवमतानुयायी या शास्त्रार्थ कर के उसे अपने मत का अनुयायी बनाया । वहां से सुराष्ट्र आदि देशों में प्रचार करते द्वारिका में पहुंचे वहां आप के शिष्यों ने पञ्चरात्रों के मत का बड़ा खण्डन किया फिर वैष्णव, शैव, शाक्त और सौर आदि मतों का खण्डन करते वे उज्जैन में पधारे और वहां भट्टभास्कर से शास्त्रार्थ हुआ परन्तु उस ने इन के मत को स्वीकार नहीं किया । यहां से बाह्लीक प्रान्तों की ओर गये और वहां जैनमत वालों से कई शास्त्रार्थ कर के उन्हें पराजित किया । वहां से इन की इच्छा कामरूप (आसाम) की ओर जाने की हुई और वहां पं० अभिनव गुप्त नामक शाक्त को शास्त्रार्थ में पराजित कर स्वमतानुयायी बनाया । यहां से वे उदीच्य, विदेह, कोशल और अङ्ग, वङ्ग आदि देशों में प्रचार करते गौड़देश की ओर चले गये परन्तु शोक कि दो जैनियों ने विश्वासघात करके यहां उन्हें ऐसी विषयुक्त औषधि खिला दी कि जिस से उन के समस्त शरीर में फोड़े निकल आये । यद्यपि बहुत चिकित्सा हुई परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ । ऐसी दशा में भी आपने प्रचार का काम ढीला नहीं किया और कश्मीर की ओर चल दिये । यहां एक मठ स्थापन करके आप बदरीनारायण, वहां से केदारनाथ गये और वहां पूर्ण युवावस्था में अर्थात् ३२ वत्तीस वर्ष की आयु में इस नश्वर शरीर को छोड़ स्वर्गवासी होगये ।

स्वामी शंकराचार्य जी की मृत्यु से इस देश को बड़ी हानि पहुंची और जो वैदिक धर्म का प्रचार देश में होने वाला था कुछ काल के लिये रुक गया । उन के पीछे उन के शिष्य 'ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या' का उपदेश [ जो जैनियों के खण्डन के लिये स्वीकार किया गया था ] आर्यावर्त में करने लगे और सब मनुष्यों को ब्रह्म बना कर ईश्वर से विमुख कर दिया ।

स्वामी शंकराचार्य जी ने दक्षिण में शृङ्गेरी, पूर्व में भूगोवर्द्धन उत्तर में जोसी और पश्चिम (द्वारिका) में सारदा मठ; ब्रह्म विद्या के उपदेशार्थ नियत किये थे । इन के अतिरिक्त प्रयाग, हरिद्वार आदि स्थानों में बारहवें वर्ष कुम्भ के मेलों का भी आरम्भ इसी लिये कराया गया था कि वहां सर्वसाधारण को वैदिक धर्म का उपदेश मिलतारहे और वे फिर कभी नास्तिक-वाद के गढ़े में न गिर जावें ।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि स्वा० शंकराचार्यजी की अवस्थाकुछ और अधिक होती तो वे अपने सिद्धान्तों को परिष्कृत अवश्यही करते।

बहुत से लोगों का मत है कि प्रशंसित स्वामी जी वैदिक सिद्धान्तों से अनभिज्ञ थे इसी कारण उन्होंने ने वेदविरुद्ध इस मायावाद की सृष्टिकी परन्तु हम उन से सहमत नहीं हैं। स्वामी शंकराचार्यजी के हृदय में वेदों की बड़ी श्रद्धा थी और जब उन्होंने ने द्वैतवाद का खण्डन किया है तो यह कहना निरर्थक है कि वे इस सिद्धान्त से अभिज्ञ नहीं थे। वास्तव में उन्होंने ने यह पक्ष जैनियों के सिद्धान्त को खण्डन करने के लिये ही स्वीकार किया था जो कार्यरूप जगत् को अनादि और कर्मों की ही फलप्रदाता मानते थे और उस के कर्ता ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते थे। तथा मण्डन मिश्र आदि को अपने पक्ष में मिलाने की इस लिये आवश्यकता पड़ी होगी कि जिस से न केवल खण्डन मण्डन के कार्य में उन से सहायता मिले वरन् नास्तिकों को यह कहने का अवसर न मिले कि यह अद्वैतवाद वैदिक सिद्धान्त नहीं है।

स्वामी शङ्कराचार्य जी के पश्चात् उन के मतानुयायियों को भी इस विषय में शङ्कायें उत्पन्न हुईं और अन्तिम उन्होंने ने जीव और ईश्वर के भेद को ही सर्वतन्त्र सिद्धान्त माना है प्रसिद्ध वेदान्ती विज्ञानभिक्षु जी भी लिखते हैं:—

लयस्तु सूक्ष्मी भावेनाऽवस्थानं न तु नाश इति ॥

अर्थात् ब्रह्म में जीव का लय होना; सूक्ष्म भाव से रहना है, उसके नाश होजाने का नाम, लय होना, नहीं है।

इसी प्रकार अन्य विद्वानों ने भी इसे वैदिक सिद्धान्त नहीं माना निदान पद्मपुराण का बनाने वाला लिखता है कि:—

मायावादममच्छात्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च । मयैव कथितं देवि ! क्लृप्तां ब्राह्मणस्त्रिपिण्डा ॥ १ ॥ अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयन्लोकगर्हितम् । कर्मस्वरूपस्याज्यन्वमत्र च प्रतिपाद्यते ॥ २ ॥ सर्वकर्मपरिभ्रंशान्नैकस्म्यै तत्र चोच्यते । परात्मजीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते ॥ ३ ॥ ब्रह्मणोऽस्य परं रूपं निर्गुणं दर्शितं मया । सर्वस्य जगतोऽप्यस्य नाशनार्थं क्लृप्तां युगे ॥ ४ ॥ वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम् । मयैव कथितं देवि ! जगतां नाशकारणात् ॥ ५ ॥

अर्थ—पार्वती जी से महादेव जी कहते हैं हे देवि ! मायावाद का

असत् शास्त्र जो खिया हुआ बौद्ध मत है मैं ने ही कलियुग में ब्राह्मण \* का रूप धर के रचा है ॥१॥ जिस में वैदिक श्रुतियों का उलटा अर्थ किया है तथा वेद की निन्दा है और कर्मों को सर्वथा छोड़ देने का वर्णन है ॥२॥ तथा जिस में सर्वकर्मों से रहित को ही निष्कर्म कहा है और साथ ही परमात्मा तथा जीव की एकता भी करदी है ॥३॥ जिस में परब्रह्म को सर्वथा गुणों से रहित कहा है वह मैं ने स्वयं जगत् के नाशार्थ इस लिये कि कलियुग में वेद के सदृश प्रकट हो (परन्तु वास्तव में वह अवैदिक है) रचा है ॥४॥ हे देवि ! जगत् के नाश के लिये वेदार्थ के सदृश वेद विन्दु यह मायावाद शास्त्र मैं ने ही कहा है ।

स्वामी शङ्कराचार्य जी के समय में भी बड़ा मत भेद है कोई सन् १००० ई० में और कोई ८०० ई० में इन का होना बतलाते हैं । प्रोफ़ेसर विलमन्, कालब्रुक, राजा राममोहनराय, जनेश्वर शास्त्री तथा प्रोफ़ेसर जयनारायण तर्कपञ्चानन सब की यही सम्मति है कि शङ्कर स्वामी इस आठवीं शताब्दि में हुए हैं । कोई २ विद्वान् इन से भी बढ़कर ११०० और १४०० ईसवी से आगे नहीं बढ़ते और इन्हीं की देखा देखी मिस्टर आर० सी० दत्त ने भी सन् ११०० ई० स्थिर किया है परन्तु उकीसवीं शताब्दि के परम विद्वान् वेद और शास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता योगिराज सहर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज अपने सत्यार्थप्रकाश नामक ग्रन्थ में लिखते हैं कि:-

“बाईस सौ वर्ष हुए कि शङ्कराचार्य द्रविड़देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़ कर शोधने लगे कि अहह ! सत्य आस्तिक वेद मत का छुटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानि की बात हुई है इस को किसी प्रकार हटाना चाहिये । शङ्कराचार्य शास्त्र तो पढ़े ही थे परन्तु जैन मत के पुस्तक भी पढ़े थे \* \* \* \* \*”

यद्यपि हमें किसी विद्वान् के मत का पक्षपात नहीं परन्तु प्रमाणाओं से जो सिद्ध हो वही मानना चाहिये । स्वामी शङ्कराचार्य के पश्चात्

\* परशुराम, श्रीराम, कृष्ण, भिकन्दर, ईसा, आदि की तरह शङ्कर स्वामी को भी उन का सृष्ट्यु के पीछे, दामार्गी क्षेत्रों में, अपने मत के खड्ग की आशका से शिव जी का अवतार मान कर अहंन-वाङ् की सहानुभूति प्राप्त की प्रतीत होता है ।

द्वारकापुरी के शतरदा पीठ पर श्री सुरेश्वराचार्य से लेकर श्री नृसिंहा-  
श्रम तक २८ शङ्कराचार्य \* जी विराजमान हुए हैं अन्तिम श्री नृसिं-  
हाश्रम जी को गुर्जरदेशाधिपति श्रीमान् राजा सर्वजिह्म ने महाराज  
विक्रम की नवीं शताब्दि में ताम्रपत्र अर्पण किया था जो अब तक  
द्वारकापुरी में वर्तमान है, और जिस में उपर्युक्त २८ शंकराचार्यों का  
अनुशासनकाल न्यूनाधिक १३३७ वर्ष लिखा है, यदि इस में महाराज  
विक्रम के शेष १००० वर्ष जोड़ दिये जावें तो कुल २३३७ वर्ष श्री स्वामी  
जी महाराज के निर्धारित समय से मिलजाते हैं ।

( २ ) राजा सुधन्वा ने आदि शङ्कराचार्य जी को जो ताम्रपत्र  
अर्पण किया था उस में २६६३ युधिष्ठिर संवत् लिखा है अब युधिष्ठिर  
संवत् ५००९ है अतः शेष २३४६ वर्ष का समय भी उपर्युक्त समय से  
मिलता है ।

( ३ ) गोवर्धन पीठ पर आज तक १४१ आचार्य विराजमान हुए  
यदि प्रत्येक आचार्य के समय का मध्यभाग ( औसत ) १७ वर्ष भी  
माना जावे तब भी २३०० वर्ष के ऊपर ही समय आता है ।

हम पूर्व लिख चुके हैं कि वाममार्ग को खुल्लमखुल्ला अनेक कुकर्म  
करने का साहस केवल इस लिये ही हो गया था  
कि उस ने अपने पक्ष को पुष्ट करने के लिये खींच  
तान करके वेदों के प्रमाण देने आरम्भ कर दिये  
थे, शनैः २ उसने अपने साहस को इतना बढ़ाया  
कि मनु, मीमांसाशास्त्र, गृह्यसूत्र और ब्राह्मण  
ग्रन्थों में भी अपने मत के पोषक वाक्य मिश्रित करना आरम्भ कर दिये।  
हमारा विश्वास है कि यदि वेदों की रचना असामुषीय न होती और  
उन्हें प्राचीनकाल से कण्ठस्थ करने की परिपाटी न चली आती तो  
इन में भी अवश्यमेव मिलावट की जाती परन्तु यह काम उनकी शक्तिसे  
बाहर होने के कारण नहीं हो पाया। उपर्युक्त प्रमाणों पर दृष्टिपात  
करते हुए यदि हम यह कहने का साहस करें तो अनुचित न होगा  
कि भारतवासियों को इस जालसाजी का पाठ सब से पहिले वाममार्गियों  
ने ही सिखलाया था। स्वामी शङ्कराचार्य जी का शरीरपात होने पर

\* प्रागुक्त चारों मठों में जो आचार्य विराजमान होते हैं वे अब तक शङ्कराचार्य ही कहलाते हैं ।



शैव-मत ने फिर शिर उठाया और जैनियों के तीर्थङ्करों की तरह उन स्वामी शङ्कराचार्य जी महाराज को, जिन्होंने शैवों के भस्म आदि अवैदिक चिह्नों का रुद्ररूप धारण कर के खगड़न किया था, शिव का अवतार मानने लगे । इधर स्वा० शंकराचार्यजी के शिष्य और प्रशिष्यों ने भी वेदप्रचाररूपी कठिन व्रत के पालन से मुख मोड़, मठों में घैन उड़ाना और विरक्त हो कर भी राजसीठाट से रहना आरम्भ कर दिया । शैवमत ने भी, शंकरस्वामी को शिव का अवतार ठहराकर और उनके शिष्यों को भेट पूजा देकर, अपनी एक कठिनता दूर कर डाली, इधर शंकर स्वामी के मतानुयायी मायावादी भी अपने गुरु की प्रतिष्ठा और अपनी आय में सन्तोषजनक वृद्धि देख, शैवमत के साथ नीर-क्षीर बन गये ।

शाक्त मत; जिस का प्रत्येक मत के साथ मिल कर ही अपना रंग चढ़ा देना मुख्य उद्देश्य था और जो शंकर स्वामी के पूर्व शैवमत का आधा अङ्ग बन रहा था, कब चूकने वाला था, इस लिये जहां भस्म और रुद्राक्त को मुक्ति का साधन माना जाता था, वहां इस ने जैनियों की देखा देखी, इस बिगड़े हुए वैदिक अथवा पौराणिकमत की, मूर्ति-पूजा भी मिखला दी और उस में भी अपने सिद्धान्तों के प्रचार पर विशेष लक्ष्य रक्खा, अर्थात् योनि, या जलाधारी ( जलहरी ) में लिङ्ग को स्थित कर के उस के पूजन को मुक्ति का साधन मान लिया ।

शंकर स्वामी के १० वर्ष के अविश्रान्त परिश्रम ने यद्यपि जैन (बौद्ध)मत को बड़ा भारी धक्का लगाया था परन्तु वह पकड़े हुए विष-धर की तरह, वैदिकधर्म को डमने का, बराबर अवसर देखता चला आरहा था; उस की दशा ठीक आजकल के ईसाई पादरियों की सी होरही थी जो वैदिकधर्म के प्रबल आक्षेपों के समक्ष ठहरने की शक्ति न रख कर गुप्तरूपेण उसे हानि पहुंचाने का सतत उद्योग करते रहते हैं । निदान बौद्धों ने फिर शिर उठाया और अनेक उपायों का अवलम्बन कर के, नास्तिकवाद का प्रचार, जोर शोर से करना आरम्भ कर दिया । जब बौद्धों की संख्या भारत में पुनः बढ़ गई तो ब्राह्मणों ने बलपूर्वक उसे दमन करने का एक उपाय सोचा अर्थात् अर्बुद-गिरि अथवा आबू-पर्वत के ऊपर एक वृहत्-यज्ञ रचा, और वहां युद्धोपयोगी

ऐसी जातियों को जो उस समय द्विज-कोटि से वाञ्छ \* सम्झी जाती थीं, शुद्ध करके एक गुरुतर सामरिक शक्ति सम्पादन करली। उन संस्कृत क्षत्रियों ने मार २ कर बौद्धों के भीतर से नास्तिकवाद की शिक्षा को निकाल डाला और शैव, शाक्त, वैष्णव आदि मतों के सम्मेलन से उत्पन्न हुए पौराणिक मत का अटक से लेकर कटक तक और हिमालय से लेकर सेतबन्ध-रामेश्वर तक भारत में पुनः प्रादुर्भाव कर दिया।

यद्यपि यह प्रसिद्ध है कि अर्बुद-गिरि के बृहत यज्ञ में देवताओं का आह्वान किया गया था जिन्होंने आकर हवनकुण्ड में चार मूर्तियाँ डाल दीं जिन से परमार, चौहान, सोलंकी और परिहार चार प्रकार के राजपूतों की उत्पत्ति हुई परन्तु यह बात सृष्टि-क्रम के विरुद्ध और असम्भव है अतएव कदापि माननीय नहीं है। ऐसा केवल इसी लिये किया गया होगा कि कोई व्यक्ति वा जाति विशेष, उन्हें द्विज कोटि में सम्मिलित करने के लुपर, आक्षेप न करने पावे, परन्तु पौराणिक शिक्षा से उस समय वर्णव्यवस्था के दन्धन ऐसे ढीले पड़ गये थे कि यह नव संस्कृत क्षत्रिय-वर्णोचित-जातियाँ अब तक राजपूत, राजपूत अथवा ठाकुर नामों से ही प्रसिद्ध चली जा रही हैं।

बौद्धमत की कमर टूटते ही पौराणिक मत ने फिर जोर पकड़ा। इस बार उस ने जैनियों की भांति बड़े २ मन्दिर निर्माण किये और तीर्थङ्करों के स्थान में राम, कृष्ण आदि प्रतापी राजाओं की प्रतिमाएँ स्थापन कर

पुराणों की उत्पत्ति  
और उन की शिक्षा  
तथा समीक्षा-

दी गईं। निदान जिन २ सामग्रियों के वर्णोचित हो कर जन मनुज जैनियों की ओर आकर्षित हो जाना था वे मन्त्र ही इन मन्दिरों में प्रस्तुत कर दी गईं और अपने मिथ्यान्तों की रक्षार्थ अठारह से अधिक पुराणों के हर्म्य की नींव भी लगभग इसी समय के रखी गई जिसके कि निर्माण का कार्य सिक्खों के समय तक बराबर जारी रहा। उस समय महाराज विक्रमादित्य और भोज + प्रभृति नृपतिगण संसार में विद्यमान

\* राजा शिवप्रसाद जी सितागढ़ हिन्दू के इस लेख से कि "उनका नया जन्म मानकर असन्नी क्षत्रिय बना लिया" यही ध्वनि प्रकट होती है कि उस समय वे जातियें द्विज-कोटि के अन्तर्गत नहीं मानी जाती थीं।

+ महाराज भोज के समय में मार्कण्डेय और शिवपुराण बना कर ध्यास जी के नाम से प्रसिद्ध किये गये। जब उन्हें यह समाचार मिला तो बनाने वाले के हाथ कटवा डाले और आज्ञा दी कि भाग्य को कोई मनुष्य अपनी बनाई पुस्तकों में ऋषि, मुनिवों का नाम न डाले।

नहीं थे जो इस अनुचित कर्म को रोकने का प्रयत्न करते निदान जहां बौद्धों द्वारा नष्ट किये प्राचीन पुराणों के अनेक अंश इन भवीन पुराण-पुस्तकों में लिखे गये, उनके साथही इन्द्र, अहल्या आदि के उपाख्यान जिन्हें अब तक वेदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों से खेंचतान करके सिद्ध किया जाता था इन में लेखबद्ध करदिये गये और महर्षि ठ्यास जी उन पर मुद्रा (मुहर) लगादी ताकि किसी को उन्हें अन्यथा कहने का साहस न पड़े । इससे पूर्व कि हम पुराणों के विषय में कुछ कथन करें यह उचित प्रतीत होता है कि १८ पुराणों के नाम आप को बतला दें ।

ब्राह्मं पार्श्वं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा । अथान्यन्नारदीयञ्च मार्कण्डे-  
यञ्च मत्स्य ॥ १ ॥ आग्नेयमष्टमञ्चैव भविष्यं नवमं तथा । दशमं ब्रह्मवैवर्तं  
लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ॥ २ ॥ वाराहं द्वादशञ्चैव स्कान्दं चात्र त्रयोदशम् ।  
चतुर्दशं वामनञ्च कौर्म्यं पञ्चदशं स्मृतम् ॥ ३ ॥ मानस्यञ्च गारुडञ्चैव ब्रह्मा-  
ण्डञ्च ततः परम् ॥ ४ ॥

अर्थात् १ ब्राह्म २ पद्म ३ विष्णु ४ शिव ५ भागवत ६ नारद ७  
मारकण्डेय ८ अग्नि ९ भविष्य १० ब्रह्मवैवर्त ११ लिङ्ग १२ वाराह १३  
स्कन्द १४ वामन १५ कूर्म १६ मत्स्य १७ गरुड और १८ वां ब्रह्माण्ड पुराण हैं ।

यद्यपि हम पद्मपुराण के कुछ श्लोक मायावाद के खण्डन में पीछे  
निख आये हैं जिस से पद्मपुराण का शङ्कर स्वामी के पश्चात् लिखा  
जाना । विदित है कि इसी प्रकार भागवत के श्लोक से भी जो हम  
श्रीकृष्ण के परलोक गमन विषय में पीछे उद्धृत कर चुके हैं ज्ञात  
होता है कि यह यह ठ्यास जी की रची हुई नहीं क्योंकि यदि ठ्यास  
जी रचते तो ऐसा कदापि न लिखते कि “जिस दिन से श्रीकृष्ण का  
स्वर्गवास हुआ है उसी दिन से कलियुग आरम्भ हुआ है ऐसा प्राचीन  
विद्वान् कहते हैं” इस में ‘प्राचीन विद्वान् कहते हैं’ वाक्य स्पष्ट बतला  
रहा है कि यह ठ्यास जी की रची नहीं है इसी प्रकार अन्य पुराणों  
की भी ठपवस्था समझिये । यद्यपि सर्व पुराणों के रचनकाल का यहां  
उल्लेख करना असम्भव है अतएव हम उन की शिक्ता का कुछ अंश  
उद्धृत करते हैं जिस से विदित होगा कि इन में साम्प्रदायिक भगड़े  
बखड़े भरे पड़े हैं और एक दूसरे का खण्डन कर रहे हैं ।

विभूतिर्यस्य नां भाले नांगे रुद्राक्षधारणम् ।

नास्ये शिवमयी वाणी तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥ शिवपुराण  
जिस के साथे पर भस्म नहीं, और अंग में रुद्राक्ष नहीं है, मुख  
से शिव २ नहीं कहता उसे चाण्डाल के समान त्याग देना चाहिये ।  
ब्राह्मणः कुलजो विद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि । वर्जयेत्तादृशं देवि !  
मद्याच्छिष्टं घटं यथा । ( पद्म पुराण )

जो ब्राह्मण-कुलोत्पन्न-विद्वान् भस्म धारण करे उसे मद्य के भूटे  
घड़े की तरह त्याग देना चाहिये ।

यन्मु मन्तप्रशङ्कादि त्रिङ्गचिह्नधरोन्मरः ।

म सर्वयातनाभेगी चाण्डालो जन्मकोटिषु ॥ पृथ्वीचन्द्रोदय  
जो मनुष्य तपे हुए शङ्खादिकों के चिह्न धारण करता है वह  
सब नरकयातनाओं को भोगता है और कोटि-जन्म-पर्यन्त चाण्डाल  
होता है ।

उपर्युक्त श्लोकों से विस्पष्ट है कि यह पुराण एक पुरुष के रचे हुए  
नहीं हैं वरन् इन्हें भिन्न २ मत के मानने वालों ने रचा है, इसी कारण  
उन में से प्रायः प्रत्येक में दूसरे का खण्डन पाया जाता है । जो मनुष्य  
यह समझते हैं कि इन्हें महर्षि ठ्याम जी ने रचा है उन्हें गहरी  
भाग के नजे में निमग्न समझना उचित है ।

यद्यपि वैष्णव मत के स्थापक शटकोप और मुनि वाहन ( जिन  
का समय महाराज भोज से लग १५० वर्ष के पीछे  
बेष्णव धर्म की संस्थापना  
और तुलसीकृत रामायण  
का एक सामान्यदृष्टि  
मिदु हुआ है ) बतलाये जाते हैं परन्तु शङ्कर-  
दिग्विजय से ज्ञात होता कि शङ्कर स्वामी ने  
जैव, शास्त्र, लपसक और कापालिकादि अवैदिक मतों के साथ ही  
वैष्णव मत का भी खण्डन किया है अतएव यह स्वीकार करना  
पड़ता है कि स्वामी शङ्कराचार्य जी के समय में यह मत किसी न  
किसी वेश में अवश्य विद्यमान था । शास्त्रों में परमात्मा की उपास्य  
तथा जीव की उपासक बतलाया गया है अतएव जो जीव परमात्मा  
से विमुख हों उन का जड़ पदार्थों के समान शिर झुकाना स्वाभाविक  
नियम है । इतिहास हमें बतला रहा है कि बौद्ध (जैन) प्रभृति प्रबल  
नास्तिक मतधर्मी ईश्वर से विमुख होते ही आचार में इतने गिर

गये कि वे पाषाण की मूर्तियों को ही मुक्तिदाता मान उन के आगे मत्वा रगड़ने लगे । इसी प्रकार सम्भव है कि महाभारत के पश्चात्, जब भारत में अविद्यान्धकार फैल रहा था मनुष्यों ने सूर्य को ही अपना उपास्य देव मान लिया हो क्योंकि विष्णु, सूर्य का पर्याय-वाची शब्द है, जैसा कि हम महाभारत का प्रमाण देकर पीछे सिद्ध कर चुके हैं । द्वितीय पुराणों में “शुक्राम्बरधर” आदि विष्णु भगवान् का जो श्वेत रूप वर्णन किया है वह हमारे कथन की भली भांति पुष्टि कर रहा है । शङ्कर स्वामी ने जिस वैष्णव मत का खण्डन किया था वह हमारी सम्मति में वर्तमान मूर्तिपूजक और कण्ठी, तिलक आदि को मुक्ति का साधन मानने वाले वैष्णव सम्प्रदाय से पृथक् केवल सूर्य ( विष्णु ) का ही उपासक था जिस का कुछ २ अवशिष्ट चिह्न वर्तमान पौराणिक धर्म में, मूढ़न दृष्टि से देखने पर, अब भी अभिविदित होता है ।

शठकोप नामक पुरुष के विषय में, जो इस मत का प्रवर्तक था, चक्राङ्कितों के पुस्तक भक्तमाल में, जिसे नाभा डोम ने बनाया है, लिखा है कि “विकीर्यं शूषं विवचार योगी” अर्थात् शठकोप शूष खेचा करता था, इस से प्रसिद्ध है कि वह जाति का कछार था । अनुमान है कि उसने ब्राह्मणों से पढ़ने की अभिलाषा की होगी, परन्तु उस समय के ब्राह्मण संस्कृत विद्या को अपनी ही मिलकियत समझते थे अतएव सम्भव है कि उस का तिरस्कार करके न पढ़ाया हो । चाहे कुछ भी कारण क्यों न हो उस ने ब्राह्मणों के विरुद्ध तिलक, कण्ठी, माला, मूर्तिपूजन, शङ्खचक्रादिकों से शरीर दागना इत्यादि, अशास्त्रीय बातों को मुक्ति का साधन मान, अपने मत का प्रचार करना आरम्भ कर दिया । शठकोप का चेला, मुनिवाहन, जो चारहाल वर्ष में उत्पन्न हुआ था और उसका शिष्य यावनाचार्य, जिसने यवनकुल में जन्म लिया था, उत्तरोत्तर उपर्युक्त मत का प्रचार करते रहे । उस समय शङ्कर स्वामी के मायावाद की शिक्षा लगभग समस्त भारत में फैल चुकी थी जिसने कि मनुष्योंको ब्रह्म बनाकर आलसी, निरुद्यमी और ईश्वर से विमुख बनादिया था अतएव अनेक मूर्ख लोग मायावाद की शिक्षा से चबरा कर इस मत में प्रविष्ट होने लगे । कुछ कालोपरान्त

रामानुज नामक एक ब्राह्मणकुलोत्पन्न पुरुष चकाङ्कित हुआ जिसने शङ्कर स्वामी के विरुद्ध जीव, ब्रह्म और माया; तीन पदार्थों को अनादि माना और अपने बनाये संस्कृत ग्रन्थों में तथा उपनिषद् की टीकाओं में शङ्कर स्वामी की भारी निन्दा की, तथा इसी समय के लग भग वैष्णव मत का आधार रूप विष्णु पुराण नामक ग्रन्थ भी रचा गया।

रामानुज का चेला रामानन्द हुआ और इस ने संस्कृत के स्थान में भाषा में अनेक ग्रन्थ रचे एवं मोची, नाई, जुनाहे आदि नीच-वर्णस्थ पुरुषों को अपना शिष्य बनाना आरम्भ कर दिया।

इस मत के मानने वालों ने श्री रामचन्द्र जी को साक्षात् विष्णु भगवान् का अवतार मान कर; भांफ, घड़ियाल और शङ्खध्वनि आदि अनेक आडम्बरों के सहित ठाकुर-पूजा आरम्भ कर दी, और अपना अभूल्य समय विद्याध्ययन तथा शास्त्रों के विचारने में न लगा कर पाषाण-शिलाओं की बस्त्राभूषणों में अलङ्कृत करने और उन्हें अनेक पदार्थों का भोग लगाने में व्यर्थ नष्ट करने लगे।

गोस्वामी तुलसीदास जी; रामचन्द्र जी को ईश्वर का अवतार माननेवाले परमवैष्णव थे इस लिये उन्होंने ने जो भाषाकाव्यमयी-रामायण लिखी है वह ऐतिहासिक ग्रन्थों की कोटि में नहीं गिनी जा सकती हां हम उसे भाषाकाव्य का अथवा वैष्णव मत को प्रतिपादन करने वाला एक अपूर्व ग्रन्थ कह सकते हैं। कारण यह है कि उस में अनेक बातें मूल ऐतिहासिक ग्रन्थ अर्थात् वाल्मीकीय रामायण से विरुद्ध लिखी हैं यथा:—

तुलसीकृत रामायण में लिखा है कि रामचन्द्र जी ने जनकपुर की पुष्पवाटिका में सीता को देखा जो देवी की पूजा करने के लिये गई थीं तथा उन्होंने ने समुद्र के किनारे रामेश्वर नामक शिव की स्थापना की परन्तु वाल्मीकि रामायण में कहीं इन का पता नहीं है। इसी प्रकार तुलसीकृत रामायण में लिखा है कि मृतु बांधते समय, केवल नल नील के डू देने से ही, पट्टर की गिलायें तरजाती थीं परन्तु वाल्मीकि रामायण में इस के प्रतिकूल शिल्प विद्या से पुल का बनाना लिखा है। इत्यादि २।

तुलसीकृत रामायण को बने अभी पूरे तीन सौ वर्ष भी नहीं हो

पाये हैं क्योंकि तुलसीदास जी की मृत्यु की २८४ वर्ष बीते जैसा कि निम्न दोहे से विदित होगा:—

संवत् सोलहमौ असी असी गंग के तोर ।

सावन शुक्राश्वमी तुलसी तज्या शरीर ॥

अर्थात् गु० तुलसीदासजी ने आवणशुक्रा सप्तमी सं० १६८० में शरीरत्यागा।

आधुनिक विद्वानों का प्रायः यह निश्चय है कि आर्य्यजाति के पराधीन होने का मुख्यकारण, इस का धर्म कर्म में अपने असमर्थ समय को व्यर्थ नष्ट कर देना है, परन्तु हम उन के इस विचार से सहमत नहीं हैं। प्रत्येक वस्तु की स्थिति संसार में तभी तक विद्यमान है जब तक उस में अपना धर्म उपस्थित है, क्योंकि यदि कोई धर्म अपने धर्म को परित्यक्त करदे तो संसार में उस के स्वरूप का चिह्न भी न मिलेगा। यद्यपि हमारा यह निश्चय है कि कोई व्यक्ति वा पदार्थ विशेष अपने ममस्त धर्म से पराङ्मुख नहीं होसका परन्तु अविद्या तथा संस्कार आदि के दोष से उस में ठीक इसी प्रकार अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिस प्रकार शीतल जल, अग्नि संयोग से उत्पन्न हो जाता है।

संसार में बड़े से बड़े मिथ्यावादी और परद्रव्यापहारणादि-दुर्गुण-विशिष्ट पुरुषों में अधर्मकार्यों की अपेक्षा, उनके धर्मकार्यों के परिमाण में ही गुरुता मिलती है। यथा कल्पना करो किसी मनुष्य ने यह प्रतिज्ञा करली है कि मैं कभी सत्य न बोलूंगा तो वह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहते हुए कदापि अपना अस्तित्व संसार में नहीं रखसका। सिद्धान्त यह निकला कि धर्म; आत्मा का स्वाभाविक गुण है और अपने स्वाभाविक गुण को धारण करने से किसी व्यक्ति वा जाति की अवनति कदापि नहीं होती वरन् धर्म से वह सदा उन्नति के अत्युच्च शिखर की ओर अति वेग के साथ गमन करती हैं। भारत की अधोगति धर्म से नहीं, वरन् अधर्म और अनाचार के अवलम्बन से हुई है, अर्थात् जब से भारत की शासक जाति ने विद्या देवी का विसर्जन किया तभी से उसमें अनेक दुर्गुण प्रवेश कर गये क्योंकि नीति में लिखा है कि:—

यौवनं धन सम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता ।

एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥

अर्थात् यौवन, धन की वृद्धि, ऐश्वर्य्य और कुविचार इन में एक र

ही अनर्थ का कारण हैं परन्तु जहां चारों उपस्थित हों वहां का कहना ही क्या है।

निदान जब भारत की ऐश्वर्य-सम्पन्न जातियों के समीप चारों ही नाश के हेतु एकत्रित होगये तो वे ईश्वरीय न्यायव्यवस्थानुसार नष्टभ्रष्ट हुए विना कैसे रह सकी थीं ?।

शोक है कि शृङ्खलाबद्ध किसी इतिहास के न मिलने से हम उस समय का पूरा चित्र नहीं खींच सके और भाट तथा चारणों से जो कुछ भी उपर्युक्त राजाओं के सम्बन्ध में बातें मालूम होती हैं वे सब विश्वास योग्य नहीं है, कारण यह है कि उस समय भाटों या चारणों का भूँटी स्तुति करके राजाओं को प्रसन्न करना और उन की वंशाव-लियों को सीधी सूर्य अथवा चन्द्रमा तक पहुँचा देना ही मुख्य उद्देश्य रह गया था। निदान राजा शिव प्रसाद जी सितारै हिन्द लिखते हैं कि:-

“हम को इन भाटों के बनाये इतिहासों के नष्ट होजाने का कुछ बहुत बड़ा अफ़सोस भी नहीं है क्योंकि वे अपने स्वामियों को प्रसन्न करने के लिये और उन की बड़ाई दिखलाने के लिये सन माननी बातें बनाकर जोड़ लेते थे, एक सच होती थी तो उस में दस भूँट मिला देते थे, जो बात राजा के अपमान की हुई बिल्कुल उड़ादी और जो उन के प्रतिष्ठा की पाई सौगुनी बड़ादी, यदि किसी राजा के बाप का पता न लगा तो देवता को उस का बाप बनाया, यदि उस ने कुछ मन्द काम किया तो किसी का आप उसके गले लगाया। यदि मिसाल चाही तो एक नहीं हम सौ देसके हैं। अभी कुछ दिन काठियावाड़ में पोरबन्दर अथवा सुदामातट के पुंछड़िया राजा ने उदयपुर वाले की लड़की चाही, उदयपुर के राजा ने वंशावली पूछ भेजी, तब तो तरदुद पैदा हुआ, भाटों पर ताकीद की गई कि जल्द वंशावली दाखिल करें। भाट घबराये, राजा कुछ खानदानी न था, वंश दश, पांच पुरत से आगे न चल सका। राजा ने भाट को धमकाया, भाट ने कुछ दिन की मोहलत लेकर एक अर्ज़ी इस मज़मून की पेश की कि अन्नदाता ! मैंने देवीजी के मन्दिर में धरना दिया था सो आज सात दिन निराहार, निर्जल रहने के बाद देवी जी ने स्वप्न दिया है कि आप के वंशावली साक्षात् हनुमान् हैं, लूका जाते समय समुद्र में पसीना



गिरा, मगर के मादे ( स्त्री ) ने निगला, वह गर्भवती हो समुद्र में बहती हुई काठियावाड़ के किनारे आलगी, यहां दुमदार बच्चा दिया, उस की औलाद आप हैं। आगे आप के खानदान में सब के पूछ होती थी इसलिये पुंछड़िया नाम पड़ा अब कुछ दिनों से, कलिकाल के प्रभाव से मौकूफ होगई है। राजा ने खुश होकर भाट को बहुत सा इनाम दिया और कागज़ उदयपुर भेज दिया \* \* \* \* \* ( देखो इति-हास-तिमिर-नाशक भाग तीसरा पृष्ठ ३ और ४ छापा सन् १८८७ ईसवी।

यही कारण है कि रजवाड़ों में विद्वान् पुरुषों की इतनी प्रतिष्ठा नहीं होती जितनी कि इन आकाश और पाताल एक कर देने वाले भाटों या चारणों की हुआ करती है। निदान इन के कथन में से किसी तथ्य का अनुसन्धान करना अपने समय का नितान्त नष्ट करना है परन्तु भागवतादि पुराणों से उस समय के कुछ २ वृत्तान्त विदित होते हैं। भागवत में महाराज रामचन्द्र के बेटे कुश के वंशधर राजा वृहद्रथ के पश्चात्, जो महाभारत के समय में उपस्थित था और अर्जुन के बेटे अभिमन्यु के हाथ से मारा गया, सुनित्र तक २८ राजा लिखे हैं, और फिर यह भी लिखा है कि राजा सुनित्र के पश्चात् इक्ष्वाकु वंश की इति श्री हो जायगी।

पुनः प्रत्योदक, शिशुनाग, नन्दवंशीय आदि भावी राज वंशों का वर्णन भविष्यतवाणी में करने के पश्चात् उनके आगे होनेवाले राजाओं के विषय में लिखा है कि यह राजा शूद्रतुल्य होंगे और म्लेच्छवत आचार ग्रहण कर के प्रजा को विविध प्रकार से पीड़ित करेंगे।

उपर्युक्त लेख से ज्ञात होता है कि जिस समय भागवत का पुस्तक रचा गया है उस समय शासकों का वर्त्ताव प्रजा के प्रति उत्तम नहीं था, तथा यह भी सुना जाता है कि उस समय वे मद्य, मांस और स्त्रिप्रसङ्गादि दोषों में स्वयं ही निमग्न नहीं रहते थे वरन् उनका अत्याचार यहां तक जोर पकड़ गया था कि वे अपने अभीष्टकी सिद्ध्यर्थ विशेष जातिके पिता-विहीन ऐसे बालक को, जो अपनी माता का आश्रय-दाता एकाकी ही होता था देवी के सामने बलात्कार बलि चढ़ाते थे। उनके इस अत्याचार की इतिश्री यहीं नहीं हो जाती थी परन्तु इस से भी बढ़ कर उन का अत्याचार कभी २ यहां तक भयङ्कररूप धारण कर

लेता था कि उस की शोक-सन्तप्ता माता की पाषाण-हृदया बनाने की पूरी २ चेष्टायें की जाती थीं अर्थात् उस को इतना विवश किया जाता था कि वह उस के बलि की कुल रस्सों को अदा करे और अश्रुओं का एक बिन्दु भी अपने नेत्रों से न निकाले ! ! ! । इस से भी बढ़ कर पुत्री-बध की महा घृणित और निन्दनीय रीति उन में बड़े जोर शोर के साथ जारी थी जिसकी विद्यमानता, राजा शिव प्रसाद जी ने, अपने समय तक स्वीकार की है । वे लिखते हैं कि:—

“केवल एक बुरी बात अब तक जड़ से नहीं गई यद्यपि सरकार उस के मिटाने में बहुत उद्यम और परिश्रम कर रही है तथापि होही जाती है । अर्थात् कोई दुष्ट राजपूत अपनी लड़कियों को मार डालते हैं जिस में किसी का \* \* \* न बनना पड़े । पहले तो जीव का मताना ही बुरा है, जिस में पञ्चेन्द्रिय आदमी को मारना, जिस में भी स्त्री को और जिस में भी ऐसी अवस्था में कि जिसे देख कर राज्ञ को भी दया आवे और जिस का हाल सुन कर पत्थर भी एसीज जावे और जिस में भी आत्मजा लड़की को ? हम नहीं जानते कि ऐसे आदमियों को कैसी सजा देनी चाहिये, फांसी तो इन के वास्ते कुछ भी नहीं है । ये अपनी पूरी सजा को तभी पहुंचेंगे जब रौरव नरक की अग्नि में जलेंगे” ( देखो भूगोल हस्तामलक प्रथम भाग पृष्ठ ५२ ) ॥

परमात्मा दीन बन्धु हैं और उन की न्यायव्यवस्था के अनुसार मनुष्य तो क्या, बड़े से बड़ा प्राणी भी, दूरे, छोटे से छोटे जीव को कष्ट पहुंचा कर उस का प्रतिफल पाये बिना नहीं रह सकता । पुनर्जन्म के भिद्धान्त पर दृढ़ विश्वास रखते हुए यदि हम यह कल्पना कर लें कि उन द्विजानी-पुत्रों एवं अयोध-राजपूत-कन्याओं ने गजनी और गोर के यवनकुलों में अपने निर्दोष बध किये जाने का बदला लेने को जन्म धारण किया तो कुछ भी अनुचित न होगा । निदान यावनी सैन्य-समूह-रूपी प्रचण्ड-वायु के भयङ्कर भोंके बड़े प्रबल वेग से भारत में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक चलने लगे, जिन्होंने ने भारतवर्ष के स्वाधीन-सम्राट् महाराज पृथ्वीराज के भौतिक-शरीर और राज्यश्री के साथ ही भारत के स्वातन्त्र्य की स्वल्प-काष्ठ से

उत्पन्न हुई अग्नि-शिखा को सदा, सर्वदा के लिये प्रशान्त कर दिया । यद्यपि पीछे अनेक महान् आत्माओं ने उस वह्नि को प्रदीप्त करने की चेष्टायें कीं परन्तु समाज में इतने दीप उत्पन्न हो गये थे कि उन प्रचण्ड-वायु-वेगों को रोकने के साधन न मिलने से वह आरम्भिक दशा में ही शान्त हो गई । एक और महाराणा प्रताप जैसे वीर, दृढ़प्रतिज्ञ सदाचारी और तपस्वी विरले पुरुष भारत को स्वाधीन करने का प्रयत्न करते थे तो दूसरी ओर राजा मानसिंह प्रभृति अनेक खैण और लोभी पुरुष यवनों की अनुचित रीति पर प्रसन्न करके बड़े-२ पदों पर विराजमान हो रहे थे, निदान यवनों की कुटिल रीति से यह जाति अपने अस्तित्व को बहुत कुछ विस्मरण कर बैठी और आलसगीर के समय में, जयपुराधीश जयसिंह और जोधपुर नरेश जस्वन्तसिंह, स्वतन्त्रता के दो टिमटिमाते हुए दीपक ही भारत में अवशिष्ट रह गये, जो इन वायु-वेगों के सामने विशेष काल तक अपनी स्थिति संसार में न रख सके । निदान इन दोनों की मृत्यु के पश्चात् राजपूत जाति ने स्वतन्त्रता का किञ्चिद्वशिष्ट अंश भी सदा के लिये पृथक् हो गया और तत्पश्चात् भारत की महाराष्ट्र और सिक्ख जातियों का सितारा चमका जिन का इस पुस्तक से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

कबीर मत तथा उनकी  
अन्य भाषा प्रशस्ति का  
वृत्तान्त ।

रामानुज के शिष्यों में अलीनूर जुलाहे का बेटा कबीर बहुत प्रसिद्ध हुआ जिसने नीच वर्णस्थ पुरुषों को अपने मत में भिलाने का, अपने गुरु और आचार्यों से भी अधिक प्रयत्न किया, परन्तु वह अपने गुरुओं से

केवल एक बात में विरोध रखता था अर्थात् मूर्ति का खण्डन करता था । कबीर के मरते ही उसके चेले तिलक लगाने, चन्दन की कण्ठी बांधने आदि २ चिह्नों की मुक्ति का साधन मानने लगे । कबीर के प्रचार का समय सन् ईसवी १३८० और १४२० के मध्य अनुसन्धान से ज्ञात होता है ।

कबीर के कई चेले थे परन्तु उन में सिक्खमत का प्रवर्तक नानक-शाह बहुत प्रसिद्ध हुआ है जिसने मूर्तिपूजा का खण्डन और एक ब्रह्म का उपदेश दिया, किन्तु वेदों से विमुख होने के कारण इस मत के अनुयायी भी पुस्तक की भोग लगाने, उसकी सवारी निकालने, उस

पर चँवर दुलाने और उसकी आर्त्ती करने आदि वैष्णव धर्म के समान पोपलीलाओं में फँस गये ।

वैष्णव मत का एक प्रचारक चेतन भी हुआ है जो कि सन् १४८५ में उत्पन्न हुआ था, बंगाल और उड़ीसा में इसने वैष्णव मत का प्रचार किया, भक्ति, विश्वास और जगन्नाथ की पूजा का प्रचार करना इस का मुख्य उद्देश्य था । इसके चेले इसे विष्णु का अवतार मानने लग गये।

इसी मत का आश्रय लेकर बल्लभ स्वामी ने राधा और कृष्ण की मूर्तियों की शिदा दी, और इस मत के अनुयायी गोकुलिये गुसाईं कंठी बांधते हैं, 'श्री कृष्णः शरणं मम' आदि मन्त्रों का उपदेश करके चेले और चेलियों के मूँड़ने में प्रवृत्त रहते हैं, और शिष्याओं को समर्पण कराते हैं। गुसाईं लोग स्त्रि-प्रसंग बहुत करते हैं और अभीष्ट की सिद्धय इन्होंने ऐसे श्लोक गढ़ लिये हैं ।

सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिता । संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कदाचन ॥१॥ अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन । असमर्पित वस्तूनां तस्माद्दर्जनमाचरेत् ॥२॥

अर्थात् (सहज) जो काम क्रोधादि से उत्पन्न होते हैं (देश का) जो किसी देश काल में किये जायं (लोक) भद्रयाभद्र आदि (वेद) मिथ्या भाषणादि (संयोगज) भगिनी कन्या, पुत्रवधू, गुरुपत्नी आदि से समागम (स्पर्शज) अर्थात् चायडाल आदि का स्पर्श करना; इन पांच दोषों को गुसाईं लोग कभी न मानें ॥१॥ गुसाईं मत से भिन्न अन्य कोई मार्ग निवृत्ति का नहीं इस लिये अपनी कोई वस्तु भी (चाहे स्त्री ही क्यों न हो) उन के चेले गुसाईं जी को समर्पण किये बिना कदापि न भोगें ॥२॥

शिवदयालु सिंह खत्रिय ने जो सन् १८१८ में आगरा में उत्पन्न हुए और सन् १८७८ में मरे अपनी स्त्री राधा बाई के नाम से एक राधास्वामी नामका मत चलाया और कबीर, दूलान, जगजीवन, चरन-दास, तुलसी, दादू दरिया, सूरदास, नाभा जी, भीका जी, ईतनी सूफी, और मौलाना रूस आदि पुरुषों के वचनों को पुस्तक में संग्रह करके उसका प्रचार करने लगे । यह स्त्रियों को भक्तिमार्ग का उपदेश करते और गुरु की झूठन खाने को ही मुक्ति का साधन समझते हैं इस लिये राधास्वामी को ईश्वर से भी बड़ा मानते हैं ।

यद्यपि सन् १८३० ई० के लगभग राजा राममोहनराय ने ईश्वर तथा वेदों के आधार पर ब्राह्म समाज की बुनियाद डाली परन्तु वेद वेदांगों के ज्ञाता न होने के कारण ब्राह्म समाजी लोग ईसाई मत की ओर झुक गये । जिस समय भारत में, यह नाना प्रकार के वेद विरुद्ध मत फैल रहे थे, ईसाइयों की अपने गल्ले भरने का खूब अवसर मिल गया था, क्योंकि ये मत ईसाई मत के प्रतिरूप (मुलम्मे) की धमक, दमक के सामने निस्तेज हो रहे थे । निदान ऐसे कठिन समय में वेद, वेदांगों के पूर्ण ज्ञाता, योगिराज ब्रह्मर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने वैदिक मार्तण्ड का प्रकाश संसार को दिखाने का कठिन व्रत धारण किया और १६ वर्ष के अविश्रान्त परिश्रम से, वैदिक भुवन-भास्कर के आवरण को दूर कर के, न केवल अवैदिक मतों को निस्तेज कर दिया, बरञ्च उसके उत्ताप से ईसाई धर्म के प्रति रूप का कृत्रिम रंग शीघ्र ही उड़ा कर उसकी वास्तविक आकृति सब को दिखला दी । महर्षि के उपकारों का जो उन्होंने सामान्यतया संसार और विशेषतया आर्य्यजाति पर किये हैं सविस्तर वर्णन करने की ऐसी शत पुस्तकें भी अलम् नहीं हो सकतीं इस लिये उनके कार्यों का अवलोकन उनकी जीवनी से ही ज्ञात करने का सङ्केत करके, इस विषय को, हम, यहीं समाप्त करते हैं ।

आगरा २५ । १२ । १९०९

}

बाबूराम शर्मा



पुस्तक मिलने का पता:—

**बाबूराम शर्मा**

प्रबन्धकर्ता आर्यभास्कर यन्त्रालय

**आगरा.**

